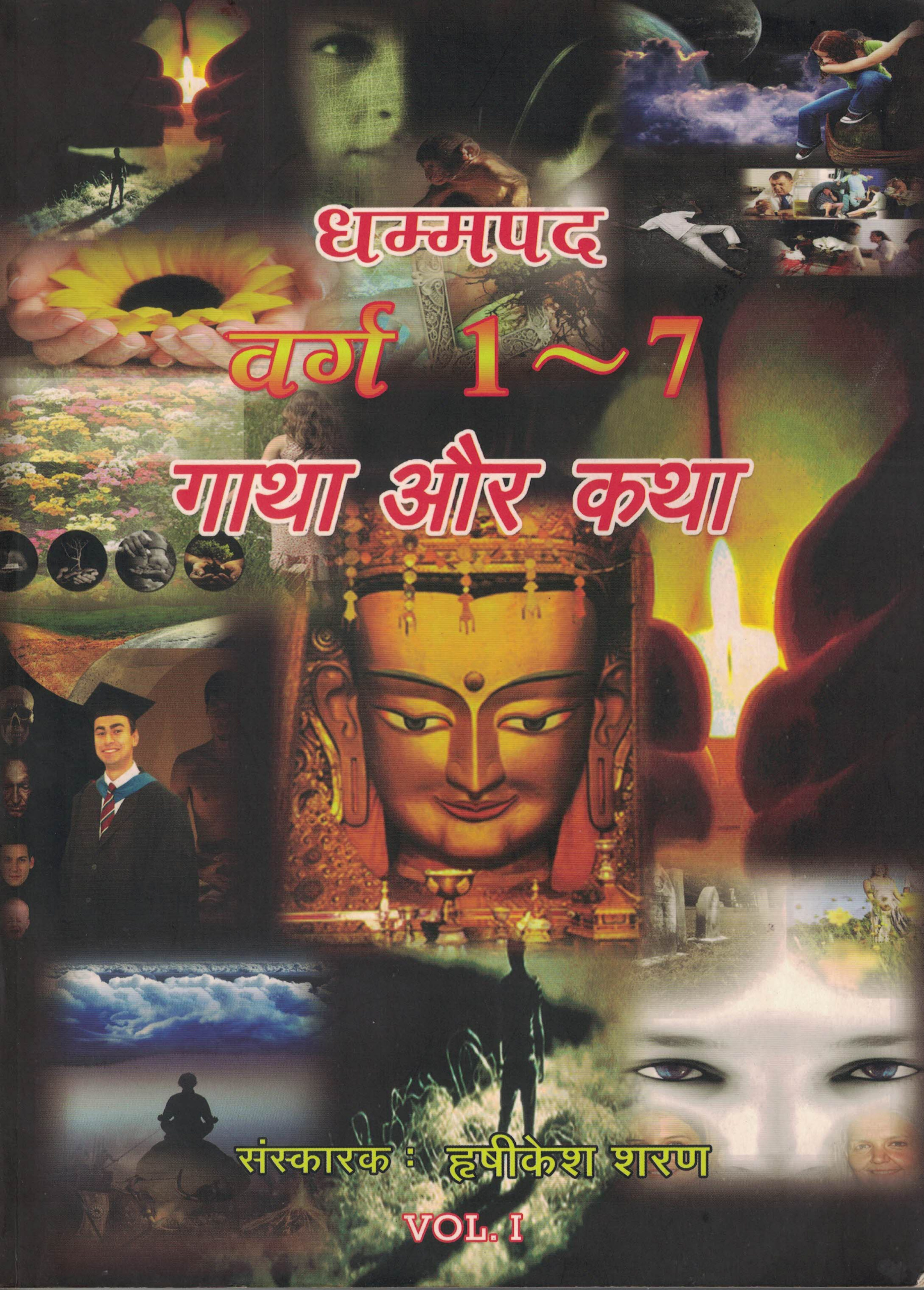

धम्मपद

वर्ग 1 ~ 7

गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

VOL. I

धम्मपद
वर्ग 1 ~ 7
गाथा और कथा

यमक वर्ग 9

अप्रमाद वर्ग 53

चित्त वर्ग 81

पुष्प वर्ग 107

बाल वर्ग 143

पंडित वर्ग 179

अर्हन्त वर्ग 211

लेखक एवं प्रकाशकः
हृषीकेश शरण
इस्ट ऐंड अपार्टमेन्ट्स
ब्लॉक - VI, फ्लैट नं 103
मयूर विहार, फेज़ - I एक्सटेन्शन
दिल्ली - 110 096
मोबाईलः 9871212294
ई-मेलः hsharan@hotmail.com

©सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करणः
मई, **2010**

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
This book is strictly for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

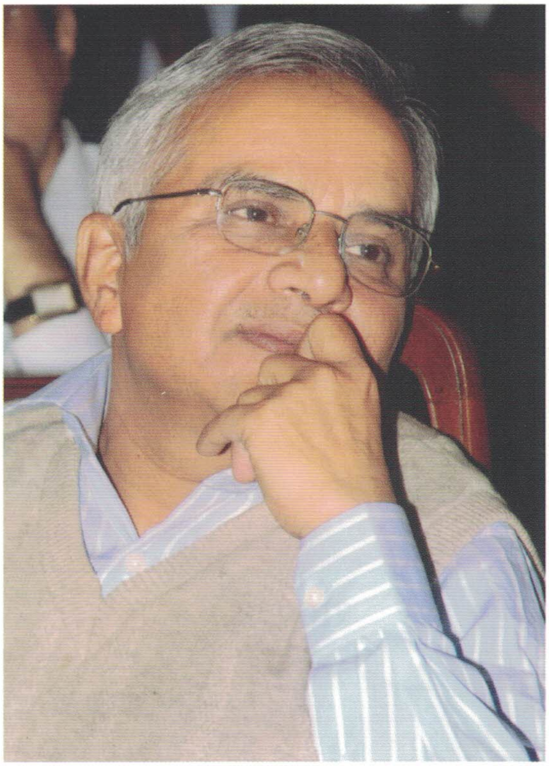

हृषीकेश शरण

जन्म बेतिया, पश्चिम चंपारण, बिहार। पटना विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। 1975 में भारतीय राजस्व सेवा (केन्द्रीय उत्पाद् शुल्क एवं सीमा शुल्क) में प्रवेश किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और ऑपरेशनल रिसर्च सोसाइटी आफ इण्डिया से ऑपरेशनल रिसर्च में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लामा प्राप्त किया। 1994 में कैलास मानसरोवर यात्रा के यात्री दल का नेतृत्व किया। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया। विभिन्न पदों पर आसीन रहने के बाद इन दिनों कोलकाता में मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर के पद पर कार्यरत हैं।

पिछले 33 वर्षों से बुद्ध की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। कालेज के दिनों से ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। बुद्ध के जीवन एवं शिक्षा, होलिस्टिक मैनेजमेन्ट एवं अन्य विषयों पर संपूर्ण भारत में व्याख्यान देने के अलावा युगाण्डा, केन्या, तंजानिया, जाम्बिया, निदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर एवं भूटान में भी व्याख्यान दे चुके हैं।

2007 में सर एडविन ऑरनाल्ड की पुस्तक "लाइट आफ एशिया" का हिन्दी अनुवाद "जगदाराध्य तथागत" के रूप में किया। कैलाश मानसरोवर यात्रा पर संस्मरण भी लिखा है। संपूर्ण सचित्र धम्मपद: गाथा एवं कथा के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया के तत्वाधान में दिनांक 9 मई 2009 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन किया जा चुका है।

समर्पण

दादाजी	-	स्व० राघव शरण जी
दादीजी	-	स्व० विंध्याचली देवी
पिताजी	-	स्व० शम्भू शरण जी
माताजी	-	स्व० शकुन्तला देवी

यह पुस्तक समर्पित है मेरे परम पूजनीय स्व० दादा एवं दादीजी और पूजनीय स्व० माता-पिताजी को, जिनकी सदाशयता एवं कुशल मार्ग दर्शन ने मेरे जीवन को प्रभावित और प्रेरित किया।

आमुख

थेरवादी परंपरा के अनुसार संसार से मुक्ति पाने की तीन धाराएं हैं :-

(1) सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति

(2) पच्येक बुद्ध की प्राप्ति

(3) अरहंत की प्राप्ति

उपर्युक्त तीन धाराओं में से सर्वज्ञ बुद्ध होना आसान नहीं है। यह सबसे कठिन है। दस पारमिता, दस उपपारमिता, दस परमत्तपारमिता, साराशंक्य, कल्प, लक्ष्य से भी अधिक संसार में दान, शील, नैशक्रम्य, प्रज्ञा आदि दस पारमिता पूरा करने के बाद ही सर्वज्ञ बुद्ध प्राप्ति संभव है। बुद्ध वंश की कथा के अनुसार बोधिसत्व ने महासागर में विद्यमान जल से भी ज्यादा रक्त दान दिया है। आसमान में विद्यमान तारों से अधिक नेत्रदान दिया है, महापृथ्वी की मिट्टी से ज्यादा मांस दान दिया है। इन कहानियों का उल्लेख बुद्ध वंश कथा एवं जातक कथाओं में मिलता है।

सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति के लिए संसार में अनेक योनियों में विविध रूपों में जन्म लेना पड़ता है। दुनिया के अनुभवों से अनेक छोटे-बड़े पुण्य प्राप्त करने होते हैं। ठीक इसी प्रकार छोटे-बड़े पापों के अनुभव भी प्राप्त करने होते हैं।

बुद्ध सर्वदा दूसरों का हित ध्यान में रख उपदेश दिया करते थे। एक बार एक प्रज्ञ पण्डित ने बुद्ध से पूछा, "शाक्य मुनि, मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। यदि आप अनुमति दें तो मैं प्रश्न करूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम मुझ से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हो।" तदुपरान्त ब्राह्मण ने बुद्ध से प्रश्न किया, "आपके द्वारा धर्मदेशना देते समय आपके श्रीमुख से कमल की सुगंध निकलती है, इसके पीछे क्या कारण है ?" बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, बुद्धत्व प्राप्ति के लिए संसार में व्याप्त छोटे-बड़े सभी पाप-पुण्य करना जरूरी है, केवल एक पाप को छोड़कर।" "यह पाप क्या है, तुम जानते हो ? " ब्राह्मण ने कहा, "हमें इसकी जानकारी नहीं है।" बुद्ध ने कहा, "यह पाप है झूठ या असत्य बोलना। झूठ या असत्य बोलना एक ऐसा पाप है जिसके गर्भ में सभी पाप छिपे हुए हैं। इस दुनियाँ में कोई भी व्यक्ति

कभी भी, किसी भी समय, किसी के साथ, कहीं भी छोटा-बड़ा पाप कर सकता है। बोधिसत्व में जन्म लेने के उपरान्त मैंने मुख से कभी भी झूठ नहीं बोला। इसीलिए उसी शक्ति से मेरे मुख से कमल की सुगंध निकलती है।"

कमल की सुगंध वाले बुद्ध वचनों को हम लोग बुद्ध-देशना कहते हैं। आगे चलकर इस बुद्ध-देशना को तीन भागों में बाँटा गयाः सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक और विनयपिटक - । "धम्मपद", सुत्तपिटक के 'खुद्धक निकाय' के अन्तर्गत आता है। 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत 19 ग्रंथ हैं और इन ग्रंथों में एक ग्रंथ है- "धम्मपद"। "धम्मपद" के संगीतिकारक अरहंत भिक्षुओं ने इसे 26 वर्गों में बाँटा है। सनातन धर्म में गीता का जो महत्व है उतना ही महत्व बौद्ध धर्म में "धम्मपद"का है। "धम्मपद" का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। लेकिन लिखने में थोड़ी लज्जा महसूस हो रही है कि विभिन्न भाषा भाषियों वाले भारतवर्ष में 26 भाषाओं में आज भी "धम्मपद" उपलब्ध नहीं है। ग्रीक, चीनी भाषा के क्षेत्र बुद्ध के जन्म स्थान से बहुत दूर हैं फिर भी उन भाषाओं में "धम्मपद" उपलब्ध है।

श्री हृषीकेश शरण, मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद् एवं सीमा शुल्क, कोलकाता, भारत सरकार के एक उच्च्य पदस्थ पदाधिकारी हैं। इतने बड़े पदाधिकारी होने के बावजूद धर्म के प्रति उनका लगाव अति प्रशंसनीय है। हमें पूरा विश्वास है कि श्री शरण द्वारा हिन्दी भाषा में संपादित सचित्र "धम्मपदः कथा और गाथा" का "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" धर्मप्रिय सभी पाठकों की मानसिक पीड़ा को दूर करने में एक महान सोपान के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया की तरफ से इस सद्धर्म कार्य के लिए श्री एच. के. शरण तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों एवं इस काम के लिए तन-मन से जिस किसी ने भी मदद दी हो, उन सभी को त्रिरत्न से दीर्घायु, निरोगी, सर्व सम्पत्ति एवं सुखी जीवन हेतु प्रार्थना करता हूँ।

डॉ. डी. रेवत् थेरो
महासचिव
महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया

4ए,बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,कोलकाता 73
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

प्रस्तावना

मई 2006. अभी तक मैंने जगदाराध्य बुद्ध की अमर कृति "धम्मपद" को कभी छुआ नहीं था, खोलने और पढ़ने की बात तो दूर की थी। कारण- लोग कहते थे कि पाली भाषा में होने के कारण बुद्ध की शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन है। दूसरे, बौद्ध साहित्य पढ़ने से हतोत्साहित करते थे क्योंकि अधिकांश लोगों की सोच थी कि बौद्ध साहित्य पढ़ने वाला बुद्ध की तरह संन्यासी हो जायेगा; गृहस्थ धर्म नहीं निभा पायेगा। सलाह देने वाले डराते थे और सलाह ग्रहण करने वाला, जिनमें मैं भी शामिल था, डरता था कि कहीं गेरुआ वस्त्र तो धारण नहीं कर लूँगा? इस डर से कभी "धम्मपद" को छुआ तक नहीं था।

6-8 मई 2006. डॉ. राधा बर्नियर, अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी ने जूनागढ़, गुजरात में "धम्मपद" पर अध्ययन शिविर का संचालन किया। संयोगवश मुझे भी उसमें भाग लेने का मौका मिला। वहाँ जब मैंने प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" में 'मन की महत्ता तथा बैलगाड़ी' और 'मनुष्य की छाया' का उदाहरण सुना तो "धम्मपद" के संदेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। "वैर का बदला वैर से नहीं चुकाया जा सकता; इसे प्रेम, दया, करुणा और मैत्री से ही समाप्त किया जा सकता है।" - यह गाथा तो हृदय के अंदर उतर गई। "धम्मपद" से लगाव हो गया।

उन दिनों श्री जितेन्द्र चतुर्वेदीजी, आयुक्त, जयपुर के सौजन्य से पता चला कि "धम्मपद" के प्रत्येक गाथा के पीछे एक कथा है। उनकी मदद से पूरी कथा को वेबसाइट से उतार लिया गया और कहानियों को पढ़ने में मुझे आनंद आने लगा। साथ ही मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह इतना प्रेरणादायक, सारगर्भित सद्साहित्य है; कहीं हिंदी का पाठक इससे वंचित तो नहीं है ? यह सोचकर मैंने हिंदी में अनुवाद करना प्रारंभ कर दिया। उद्देश्य था कि अपने व्याख्यानों में इन कथाओं तथा गाथाओं को उद्धृत कर सकूँ।

पदोन्नति पर जुलाई 2007 में जयपुर से कलकत्ता स्थानान्तरण हो गया। 2008 में "महाबोधि सोसाइटी" के महा सचिव, डॉ. रेवत् भन्ते जी से परिचय हुआ। उनसे पता चला कि हिंदी में भी "धम्मपद : गाथा और कथा" प्रकाशित हो चुकी है। मैंने प्रयत्न कर श्री ताराराामजी द्वारा लिखित पुस्तक की प्रति प्राप्त कर ली और जून 2008 में उसे पढ़ गया।

"धम्मपद" में मेरी रुचि जानकर महाबोधि सोसाइटी, सारनाथ के भिक्षु प्रभारी, डॉ. सुमेध भन्ते जी ने परम आदरणीय भिक्षु सारद महा थेरो जी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित "ट्रैजरी ऑफ ट्रूथ", "सचित्र धम्मपद" की प्रति पढ़ने के लिए दी। इस पुस्तक में दाहिने पृष्ठ पर गाथा से सम्बन्धित कथा तथा बाँये पृष्ठ पर उससे सम्बन्धित चित्र, गाथा और उसका अर्थ दिया हुआ है। इस पुस्तक को भी मैं पढ़ता गया, पढ़ता गया। आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हुई। अन्त में मन में आया कि क्यों न इसी प्रकार की एक पुस्तक हिन्दी में लिख दी जाए जिसमें कथावस्तु दाहिनी ओर हो और तस्वीरें बाईं ओर। भन्ते सारद जी से अनुमति ले तस्वीरों को प्रकाशित किया जाय। मैंने इस कार्य को दिसंबर 2008 में प्रारंभ किया और 31 मार्च 2009 तक संपन्न कर डाला।

इस बीच डॉ. रेवत् भन्ते जी से विचार-विमर्श हुआ कि क्यों न "बुद्ध पूर्णिमा" के पावन अवसर पर "धम्मपद" के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन किया जाए। उन्होंने इस दिशा में कदम उठाया और "बुद्ध पूर्णिमा 2009" के कार्यक्रम में इसे शामिल कर लिया। इस प्रकार ये दोनों पुस्तकें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

जनवरी - फरवरी 2009 में मुझे दो बार बोधगया जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और सिंहली भाषा के मूर्धन्य विद्वान भन्ते ज्ञानानंद जी से परिचय हुआ जिनकी जनसाधारण के लिए सिंहली भाषा में लिखी बौद्ध साहित्य की चार करोड़ से भी अधिक मूल्य की पुस्तकें बँट चुकी हैं। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक सुझाव दिए,

गाथाओं एवं अध्यायों का शीर्षक चुनने में मेरी मदद की। इससे मेरा काम आसान हो गया। उन्होंने श्रीलंका में अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि वे आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि में "धम्मपद" के प्रत्येक अध्याय का मुखपृष्ठ बनाकर भेजें। मैं श्री ज्ञानानंदजी एवं उनके शिष्य श्री ज्ञानविजयजी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस लेखन की प्रक्रिया में डॉ. रेवत् भन्ते जी मेरे अग्रज एवं अभिभावक की तरह मुझे प्रोत्साहित करते रहे। अगर उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन नहीं मिलता तो शायद यह कृति संभव नहीं हो पाती।

आज जब मैं विश्लेषण करता हूँ तो देखता हूँ कि बौद्ध-शिक्षा के प्रति समाज में बहुत सारी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इसलिए भारतीय जनमानस बौद्ध-शिक्षा से लाभान्वित होने से वंचित रह गया है। वस्तुतः बौद्ध शिक्षा से अधिक व्यवहारिक और प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध नहीं है। पर यह कहना कि 'भोजन स्वादिष्ट है' पर्याप्त न होगा; अगर हम उस भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं। बौद्ध साहित्य को मात्र पढ़ना और कहना कि 'यह अच्छा है' पर्याप्त नहीं है। इसका सही लाभ उसे ही मिल पायेगा जो उन उपदेशों को अपने जीवन में उतारेगा।

"धम्मपद" की गाथा 51 तथा 52 में इसे ही स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते हैं :-

गाथा 51: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलरहित होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण न करे।

गाथा 52: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त के साथ-साथ गंधयुक्त हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलदायी होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण करे।

आज समाज में सर्वत्र उच्छृंखलता फैली हुई है। उसे दूर करने के लिए बुद्ध के उपदेश से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। **अतः समाज के प्रबुद्ध वर्ग को चाहिए कि वह उन संदेशों को आत्मसात करे तथा समाज के अंदर लगी नफरत की आग को बुझाने की चेष्टा करे।**

बुद्ध चरित्र इतना सुन्दर और विशाल है कि हर आदमी इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सुंदरमय बना सकता है, सँवार सकता है। हर पाठक के जीवन में इस पाठ्य सामग्री द्वारा विमल ज्योति जगे, मेरी यही प्रार्थना है।

मैं अपनी पत्नी श्रीमती मीनू शरण का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने धैर्य रखा तथा प्रोत्साहित किया जिससे मैं यह कार्य सम्पन्न कर पाया। बेटियाँ रूचि, प्रतीची एवं दामाद निशंक- के प्रति भी आभारी हूँ। उन्हें दैनिक जीवन में उतना समय न दे पाया जितना देना चाहिए था पर उन्होंने इस विषय पर कभी शिकायत नहीं की।

हृषीकेश शरण

(हृषीकेश शरण)

कोलकाता
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

अविद्या का अंधकार, ज्ञान की रोशनी

धम्मपद

यमक वर्ग

गाथा और कथा

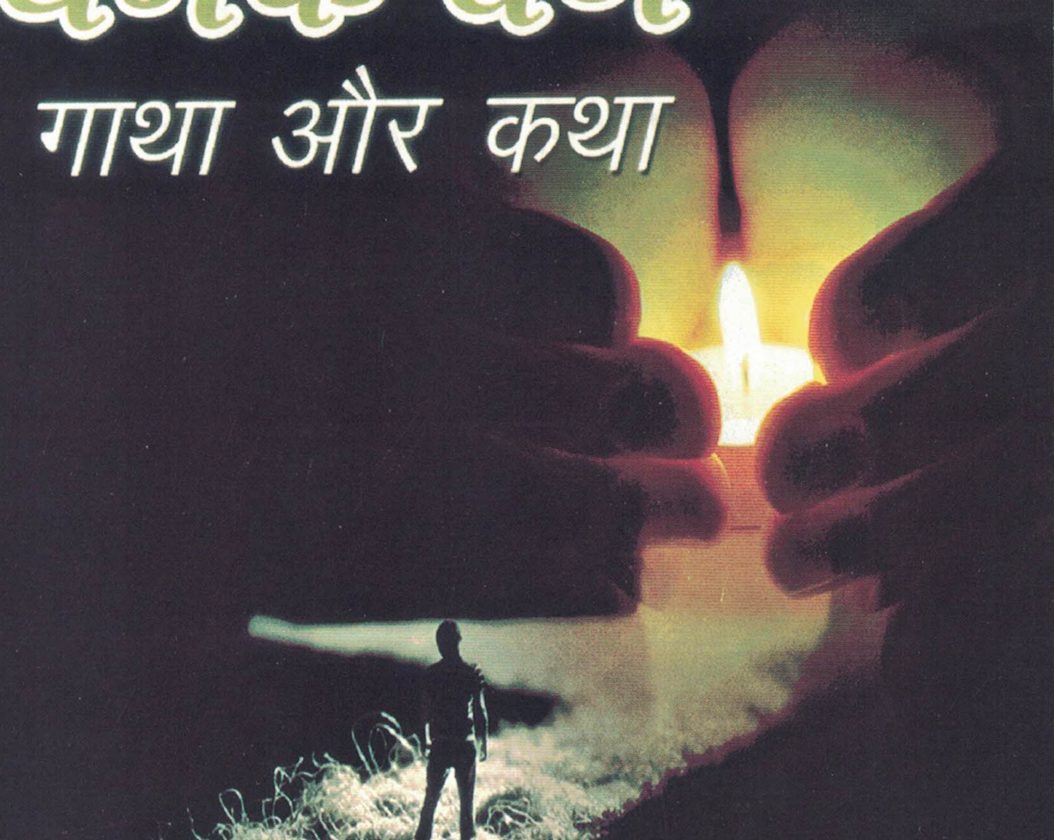

संस्कारक

हृषीकेश शरण

अविद्या का अंधकार, ज्ञान की रोशनी

धम्मपद

यमक वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

यमक वर्ग

क्र. सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	चक्षुपाल की कथा	1	मन से बड़ा कुछ नहीं	13
2.	मट्ठकुण्डली की कथा	2	मन ही सर्वेसर्वा है	15
3.	स्थविर तिस्स की कथा	3	वैर शांत करने के उपाय	17
4.	स्थविर तिस्स की कथा	4	वैर शांत करने का उपायः क्षमा कीजिए	19
5.	काली यक्षिणी की कथा	5	वैर रूपी बीमारी का उपचारः प्रेम, दया, करुणा	21
6.	कौसाम्बी के भिक्षुओं की कथा	6	कलह समाप्त करने का उपाय	23
7.	महाकाल-चूल्लकाल की कथा	7	जो कमजोर (वृक्ष) हैः मार (तूफान) उसे उखाड़ फेंकेगा	25
8.	महाकाल-चूल्लकाल की कथा	8	जो चट्टान की तरह है, मार जैसा तूफान उसका क्या बिगाड़ेगा?	27
9.	देवदत्त की कथा	9	काषाय वस्त्र का अधिकारी कौन?	29
10.	देवदत्त की कथा	10	देवदत्त, तुम्हारे ऊपर यह काषाय नहीं शोभता	31
11.	स्थविर सारिपुत्र की कथा	11	किसे सार प्राप्त नहीं होता?	33
12.	स्थविर सारिपुत्र की कथा	12	किसे सार प्राप्त होता है?	35
13.	नन्द स्थविर की कथा	13	किसके चित्त में राग घुसता है?	37
14.	नन्द स्थविर की कथा	14	किसके चित्त में राग नहीं घुसता है?	39
15.	चुन्द सुकरिक की कथा	15	पापी इस लोक में भी दुःख पाता है, उस लोक में भी	41
16.	चुन्द सुकरिक की कथा	16	पुण्यात्मा इस लोक में भी सुख पाता है और उस लोक में भी	43
17.	देवदत्त की कथा	17	पापी सर्वत्र दुःख ही पायेगा	45
18.	सुमना की कथा	18	उम्र से कोई बड़ा नहीं होता, ज्ञान से बड़ा होता है	47
19.	दो मित्र भिक्षुओं की कथा	19	श्रामण्य का अधिकारी कौन?	49
20.	दो मित्र भिक्षुओं की कथा	20	श्रामण्य का अधिकारी	51

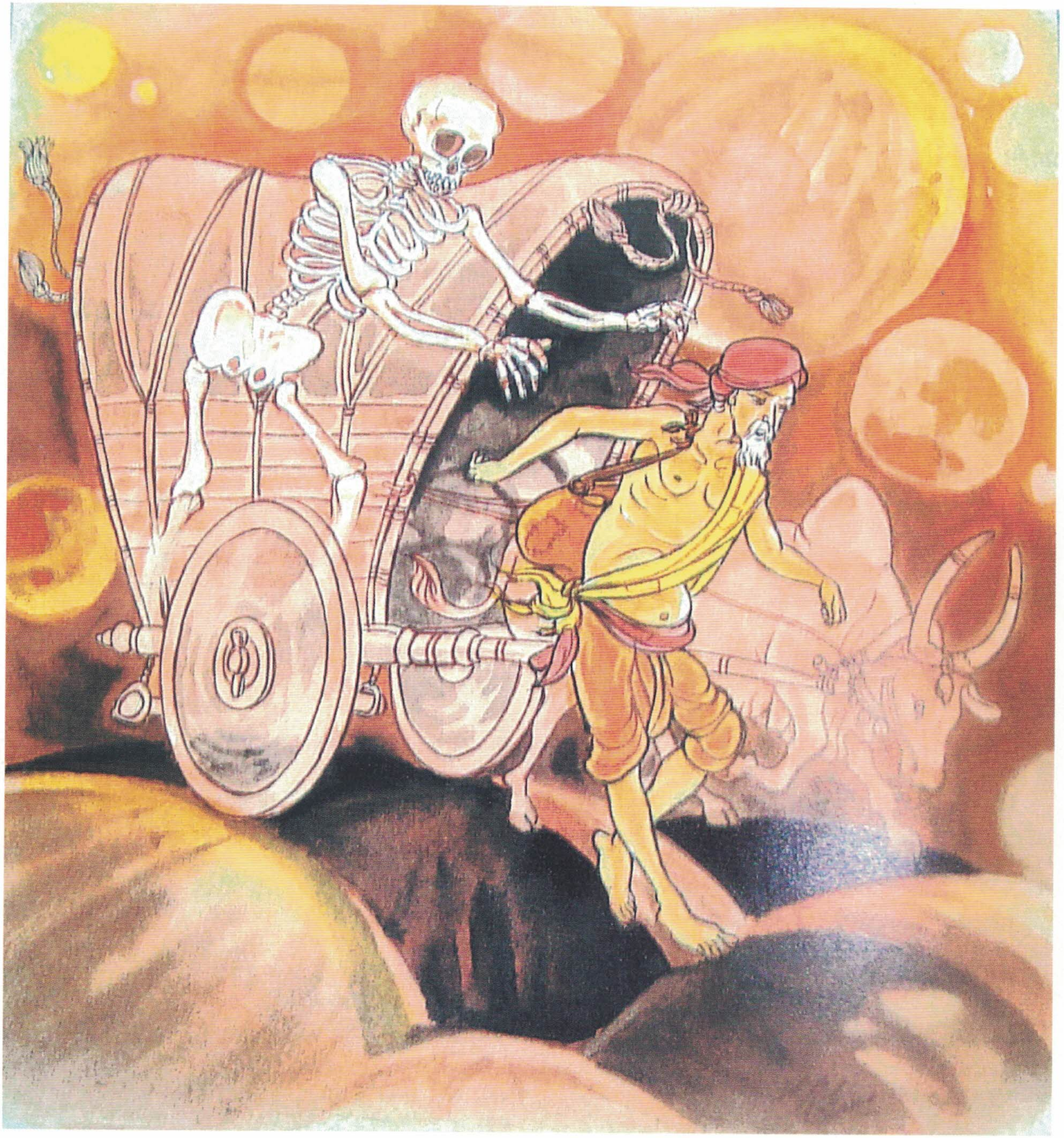

गाथा: मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा ।
ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं ।।1 ।।

अर्थ: मन सभी प्रवृत्तियों का प्रधान है । सभी धर्म (अच्छा या बुरा) मन से ही उत्पन्न होते हैं । यदि कोई दूषित मन से कोई कर्म करता है तो उसका परिणाम दुःख होता है । दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार बैलगाड़ी का पहिया बैल के खुर के निशान का पीछा करता है ।

मन से बड़ा कुछ नहीं
चक्षुपाल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा बुद्ध ने श्रावस्ती के जेतवन विहार में चक्षुपाल नामक एक नेत्रहीन भिक्षु के संदर्भ में कही थी।

एक दिन भिक्षु चक्षुपाल जेतवन विहार में बुद्ध को श्रद्धा सुमन अर्पित करने आया। रात्रि में वह ध्यान साधना में लीन टहलता रहा। उसके पैरों के नीचे कई कीड़े-मकोड़े दबकर मर गए। सुबह में कुछ अन्य भिक्षुगण वहाँ आये और उन्होंने उन कीड़े-मकोड़ों को मरा हुआ पाया। उन्होंने बुद्ध को सूचित किया कि किस प्रकार चक्षुपाल ने रात्रि बेला में पाप कर्म किया था। बुद्ध ने उन भिक्षुओं से पूछा कि क्या उन्होंने चक्षुपाल को उन कीड़ों को मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया तब बुद्ध ने उनसे कहा कि जैसे उन्होंने चक्षुपाल को उन कीड़ों को मारते हुए नहीं देखा था वैसे ही चक्षुपाल ने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। "इसके अतिरिक्त चक्षुपाल ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। अत: उसके मन में हिंसा का भाव नहीं हो सकता था। इस प्रकार वह निर्दोष है।" भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर कि अर्हत होने के बावजूद चक्षुपाल अंधा क्यों था, बुद्ध ने यह कथा सुनाई :

अपने एक पूर्व जन्म में चक्षुपाल आँखों का चिकित्सक था। एक बार उसने जान बूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने वचन दिया था कि अगर उसकी आँखें ठीक हो जायेंगी तो वह अपने बच्चों के साथ उसकी दासी हो जाएगी और जीवन पर्यन्त उसकी गुलामी करेगी। उसकी आँखों का इलाज चलता रहा और आँखें पूर्णत: ठीक भी हो गईं। पर इस भय से कि उसे जीवन पर्यन्त गुलामी करनी होगी, उसने चिकित्सक से झूठ बोल दिया कि उसकी आँखें ठीक नहीं हो रही थीं। चिकित्सक को मालूम था कि वह झूठ बोल रही थी। अत: उसने एक ऐसी दवा दे दी जिससे उस स्त्री की आँखों की रोशनी चली गई और वह पूर्णत: अंधी हो गई। अपने इस कुकर्म के कारण चक्षुपाल कई जन्मों में एक अन्धे व्यक्ति के रूप में पैदा हुआ था।

टिप्पणी: हमारे सभी अनुभवों का सृजन विचार से होता है। अगर हम बुरे विचारों से बोलते हैं या कोई कार्य करते हैं तो उनसे कष्टदायक परिणाम प्राप्त होता है। हम जहाँ कहीं जाते हैं बुरे विचारों के कारण बुरे परिणाम ही पाते हैं। हम अपने दु:खों से तब तक मुक्त नहीं हो सकते जब तक हम अपने बुरे विचारों से ग्रस्त हैं।

गाथा: मनोपुब्बंगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छाया व अनपायिनी ।।2।।

अर्थ: मन सभी धर्मों का प्रधान है। पुण्य और पाप सभी धर्म मन से ही उत्पन्न होते हैं। यदि कोई प्रसन्न मन से कुछ कहता है या कुछ करता है तो उसका फल सुख होता है। सुख उसका पीछा उसी प्रकार नहीं छोड़ता जिस प्रकार मनुष्य की छाया उसका कभी साथ नहीं छोड़ती।

मन ही सर्वेसर्वा है
मट्ठकुण्डली की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

मट्ठकुण्डली ब्राह्मण अदिनपुब्बक का पुत्र था। पिता बहुत ही कृपण था और कभी भी दान-पुण्य नहीं करता था। यहाँ तक कि जब उसे अपने पुत्र के लिए आभूषण बनाने की आवश्यकता पड़ी तो उसने उन आभूषणों को भी स्वयं ही बनाया ताकि स्वर्णकार को आभूषण बनाने की मजदूरी न देनी पड़े। जब उसका पुत्र बीमार पड़ा तब पैसे बचाने के लिए उसने चिकित्सक को भी इलाज के लिए नहीं बुलाया। लड़के की तबियत बिगड़ती गई। अंत में पिता को लगा कि अब उसका ठीक होना संभव नहीं है। फिर भी चिकित्सक को बुलाने के बजाय, अदिनपुब्बक ने अपने पुत्र को घर के बाहर खाट पर लिटा दिया ताकि लोग घर के अंदर न आ सकें और उसके धन-दौलत को न देख सकें।

उस दिन प्रातः बुद्ध ने अपनी अन्तर्दृष्टि से सर्वेक्षण किया और अपने सर्वेक्षण में मट्ठकुण्डली को पाया। उन्होंने देखा कि मट्ठकुण्डली के आध्यात्मिक कल्याण का समय आ गया था । अतः उनके चरण मट्ठकुण्डली के आवास की ओर चल पड़े। घर-घर भिक्षाटन करते हुए शास्ता अदिनपुब्बक के घर के सामने पहुँच गए।

मट्ठकुण्डली बरामदे में लेटा हुआ था। तथागत की दिव्य आभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। भीतर से उसका हृदय शास्ता के दर्शन के लिए बेचैन हो रहा था पर उसका शरीर जवाब दे रहा था। उसकी काया खाट पर थी पर वह बुद्ध के साथ जुड़ चुका था।

अंतिम समय आ गया। मट्ठकुण्डली ने आँखें मूँद लीं। मरते समय उसका हृदय बुद्ध के प्रति श्रद्धा से भरा हुआ था। इतना काफी था। उसका जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ।

तावतिंस दिव्य लोक से मट्ठकुण्डली ने देखा कि उसका पिता उसकी मृत्यु पर विह्वल होकर रो रहा है। अतः वह अपने पुराने रूप में पिता के सामने प्रकट हुआ। उसने अपने पिता को अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया तथा आग्रह किया कि वह बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित करे। बुद्ध भोजन के लिए आमंत्रित हुए। भोजन के बाद अदिनपुब्बक के परिवार वालों ने बुद्ध से प्रश्न किया, "क्या कोई व्यक्ति बिना दान दिए, उपवास किए, कर्मकांड किए, मात्र बुद्ध में पूर्ण समर्पण से तावतिंस दिव्य लोक में जन्म ले सकता है?" प्रत्युत्तर में बुद्ध ने मट्ठकुण्डली को उपासकों के सम्मुख प्रकट होने के लिए कहा। आदेश पाकर मट्ठकुण्डली दिव्य आभूषणों के साथ आम जनता के सामने प्रकट हुआ तथा स्पष्ट किया कि उसका जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ है। उसे देखकर सबों को विश्वास करना पड़ा कि बुद्ध के प्रति पूर्ण समर्पण मात्र से मट्ठकुण्डली को इतना अधिक लाभ हुआ था।

टिप्पणी: मनुष्य के जीवन में जो कुछ भी घटित होता है वह विचारों का ही परिणाम है। अगर विचार पवित्र हों तो वाणी और कर्म भी पवित्र होंगे। पवित्र विचार, वाणी और कर्म से जीवन में सुख प्राप्त होगा।

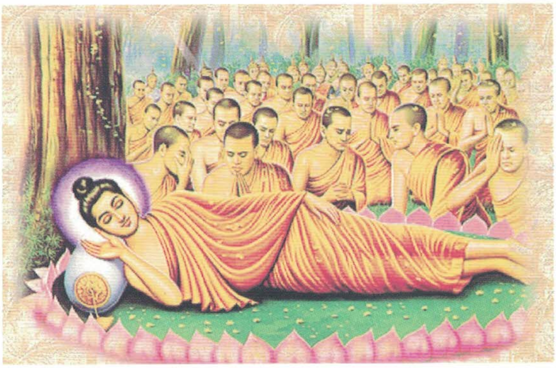

गाथाः अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति, वेरं तेसं न सम्मति ।।3।।

अर्थः उसने मुझे मारा, उसने मुझे हराया, उसने मुझे गाली दी, उसने मेरा बुरा किया - जो इन बातों को जीवन में याद रखते हैं उनके जीवन से वैर का अंत नहीं होता।

वैर शांत करने के उपाय

स्थविर तिस्स की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स स्थविर वृद्धावस्था में प्रव्रजित हुए थे। वे शास्ता के रिश्तेदार थे और अपने संबंध को कभी भूल नहीं पाते थे। वे स्थूल शरीर वाले थे तथा भिक्षु के कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं करते थे। बाहर से आने वाले युवा भिक्षु उनकी उम्र का ख्याल कर उनकी सेवा करते थे पर जल्द ही उन्हें पता चल जाता था कि तिस्स का ज्ञान असंपूर्ण है तथा वे अपनी साधना तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति समर्पित नहीं हैं। शास्ता के साथ अपने संबंधों को पृष्ठभूमि में रख, वे अक्सर युवा भिक्षुओं से लड़ पड़ते थे। उनके इस प्रकार के व्यवहार पर यदि कोई उन्हें डाँटता तो वे रोने लगते और उस व्यक्ति की शिकायत लेकर शास्ता के पास जा पहुँचते थे। शास्ता सभी बातें सुन तिस्स को समझाने की कोशिश करते कि गलती उनकी थी पर तिस्स इस बात को समझने के लिए राजी नहीं होते। इसके अलावा दूसरों के साथ हुए दुर्व्यवहार को अपने हृदय में गाँठ बाँध कर रख लेते थे।

बुद्ध ने शिष्यों को समझाते हुए बताया " जो व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को याद रखता है, उसे भूल नहीं जाता और न भूलने की चेष्टा करता है उसके जीवन से वैर का कभी अंत नहीं होता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति दूसरों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को भूल जाता है, उसे याद नहीं रखता उसके जीवन से वैर का सदा के लिए अंत हो जाता है।"

ऐसा समझाते हुए बुद्ध ने ये दो गाथायें कहीं।

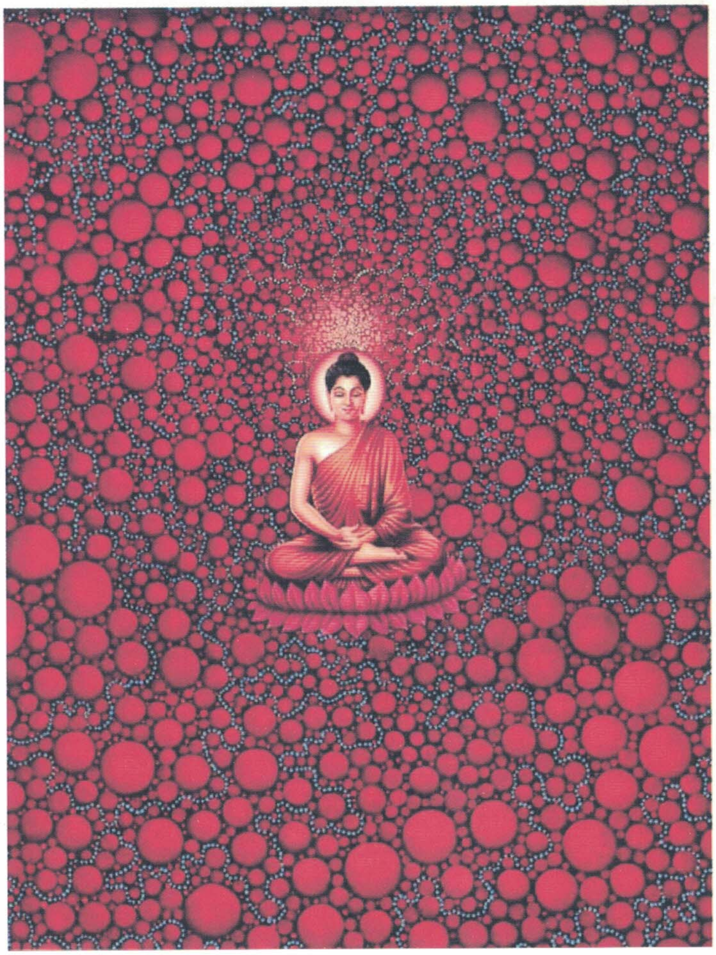

गाथाः अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति, वेरं तेसूपसम्मति ।।4।।

अर्थ: उसने मुझे मारा, उसने मुझे हराया, उसने मुझे गाली दी, उसने मेरा बुरा किया - जो इन बातों को जीवन में याद नहीं रखते हैं उनके जीवन से वैर का अंत हो जाता है।

वैर शांत करने का उपायः क्षमा कीजिए
स्थविर तिस्स की कथा

टिप्पणी: आज के समाज में इतना तनाव है कि अक्सर आदमी-आदमी से लड़ बैठता है। एक बार अगर किसी से लड़ाई हो जाए या एक बार भी किसी ने हमारा बुरा कर दिया तो हम अक्सर उस लड़ाई और बुराई को याद रखते हैं। ऐसा होने से हमारा क्रोध कम/समाप्त होने के बजाय और बढ़ता ही जाता है। इसके विपरीत जो लड़ाई और बुराई को याद नहीं रखते, क्षमादान कर देते हैं तथा भूल जाते हैं उनके जीवन से क्रोध का अंत हो जाता है। वे शांतिपूर्वक जीवन जीते हैं।

बुद्ध ने सदैव अपने शिष्यों एवं उपासकों को सीख दी है कि हमें हर समय, हर जगह तथा हर परिस्थिति में धैर्य रखना चाहिए। कोई हमें कितना भी उद्वेलित करने की चेष्टा करे, हमें किसी के प्रति प्रतिक्रिया नहीं दिखानी चाहिए। बुद्ध सदैव उनकी प्रशंसा करते थे जो प्रतिक्रिया स्वरूप प्रत्युत्तर दे तो सकते थे पर प्रत्युत्तर नहीं दिया और न प्रतिक्रिया व्यक्त की। "धम्मपद" में बहुत जगह इसका दृष्टांत आया है कि बुद्ध ने उनको भी क्षमादान दिया जो उन्हें अपमानित या निन्दित किया करते थे। क्षमा कमजोरी का लक्षण नहीं है। वरन् यह हमारे अन्दर विद्यमान आन्तरिक शक्ति का द्योतक है।

गाथाः न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।।5।।

अर्थः घृणा का अंत घृणा से नहीं होता। घृणा का अंत होता है प्रेम, दया, करुणा एवं मैत्री से।

वैर रूपी बीमारी का उपचारः प्रेम, दया, करुणा

काली यक्षिणी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक गृहस्थ की पत्नी बाँझ थी। उसने किसी संतान का जन्म नहीं दिया। इसलिए उसके पति के परिवार वाले उससे बहुत नाराज रहते थे तथा उसे तरह-तरह से प्रताड़ित किया करते थे। इस समस्या से मुक्ति के लिए उस स्त्री ने अपने पति का ब्याह एक दूसरी औरत से करा दिया। पर हृदय से उसे सौतन का आगमन अच्छा नहीं लगा। अतः दो अवसरों पर जब वह नई औरत गर्भवती हुई तब उस औरत ने उसे एक ऐसी दवा दे दी कि गर्भपात हो गया। तीसरे अवसर पर उसने एक ऐसी दवा दे दी कि उस स्त्री का भी उसके गर्भ के साथ ही देहान्त हो गया। मरते समय उस औरत के मन में बाँझ औरत के प्रति घृणा और प्रतिशोध का भाव भरा हुआ था।

अगले जन्मों में उन दोनों में दुश्मनी का सिलसिला जारी रहा। किसी जन्म में पहली औरत दूसरी से बदला लेती तो उसके प्रत्युत्तर में अगले जन्म में दूसरी औरत पहली से बदला लेती। इसी प्रकार भिन्न योनियों में जन्म लेने पर भी उनमें द्वेष का सिलसिला जारी रहा।

समय बीतता गया। जन्म-जन्मान्तर बीत गए। बुद्ध काल आया। बुद्ध काल में उनमें से एक ने श्रावस्ती के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया तथा दूसरी 'काली' यक्षिणी के रूप में पैदा हुई। वैर का सिलसिला जारी रहा। पहली को एक संतान हुई। दूसरी उसे मारने के पीछे पड़ गई। पहली घबड़ा गई और उसने शास्ता की शरण में जाने का निर्णय लिया। उसे पता चला कि बुद्ध जेतवन में प्रवचन दे रहे हैं। अतः वह दौड़ती हुई सीधी वहाँ पहुँची और अपनी संतान को बुद्ध के चरणों में रखकर उनसे अपनी संतान की रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगी। उधर यक्षिणी को बौद्ध विहार में प्रवेश की हिम्मत नहीं हो रही थी। बाद में बुद्ध ने काल यक्षिणी को भी बुलाया तथा दोनों को डाँटा। बुद्ध ने सबों को बताया कि किस प्रकार हर जन्म में वे एक-दूसरे से बदला लेती रही हैं और किस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के प्रति घृणा भाव से भरी हुई हैं। बुद्ध ने समझाया कि किस प्रकार घृणा का अंत घृणा से नहीं होता। वरन् घृणा से और अधिक घृणा का सृजन होता है। घृणा का अंत होता है प्रेम, दया, करुणा एवं मैत्री से। दोनों ने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध के उपदेश के बाद उनके बीच का कलह समाप्त हो गया।

तब बुद्ध ने महिला को आदेश दिया कि वह अपने पुत्र को यक्षिणी की गोद में दे दे। औरत पहले तो हिचकिचाई पर बाद में बुद्ध में अटूट श्रद्धा और विश्वास के कारण उसने अपने पुत्र को उसे दे दिया।

यक्षिणी ने बड़े प्यार से उस बालक को गोद में लिया और उसे चूमा मानों वह उसका ही पुत्र हो। फिर उसे उसकी माँ को वापस कर दिया। दोनों के बीच की घृणा समाप्त हो गई।

गाथाः परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा।।6।।

अर्थः मूर्ख लोग नहीं समझते कि उन्हें एक न एक दिन संसार से जाना ही होगा। जो इस बात को समझते हैं उनके कलह शांत हो जाते हैं।

कलह समाप्त करने का उपाय
कौसाम्बी के भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार कौसाम्बी में विनयधर और धर्म कथिक भिक्षुओं में विनय के एक छोटे से नियम को लेकर झगड़ा होने लगा। बुद्ध ने बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार दोनों पक्षों में सुलह कराई जाए पर वे सुलह नहीं करा पाए। अत: उन्होंने उन्हें कुछ और अधिक कहना उचित नहीं समझा। वर्षाकाल बिताने के लिए पारिलेयक वन में रक्खित गुफा में चले गए। वहाँ हस्तीराज पारिलेयक ने उनकी खूब सेवा की।

बुद्ध के वन प्रस्थान के बाद नगरवासियों को पता चला कि बुद्ध वन क्यों गए । अत: उन्होंने भिक्षुओं को दान देना बंद कर दिया। अब भिक्षुओं को अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्होंने आपस में सुलह किया। फिर भी उपासकगण उनके प्रति उसी श्रद्धा से पेश नहीं आ रहे थे जैसा वे पहले पेश आते थे। उपासकगण की सोच थी कि इन भिक्षुओं को अपनी गलती स्वीकार कर शास्ता से माफी माँगनी चाहिए। लेकिन बुद्ध तो वन में थे और यह वर्षाकाल का समय था। भिक्षुओं की बड़ी दुर्दशा हुई। वर्षाकाल बड़ा ही कष्टमय बीता।

वर्षाकाल के बाद भन्ते आनन्द उन भिक्षुओं के साथ वन में गए और बुद्ध से विहार लौटने का आग्रह किया। उन्होंने अनाथपिंडिक एवं अन्य उपासकों की प्रार्थना भी सुनाई और बौद्ध विहार वापस चलने की विनती की । बुद्ध तो महा कारूणिक हैं। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और बौद्ध विहार लौट आए। सभी भिक्षु उनके चरणों पर गिर पड़े और अपनी गलती के लिए क्षमा माँगने लगे। बुद्ध ने उन्हें उनकी गलती का एहसास कराया और समझाया कि उन्हें सदैव याद रखना चाहिए कि सबों की मृत्यु एक न एक दिन अवश्य होगी। अत: आपस में कलह करने का कोई औचित्य नहीं है।

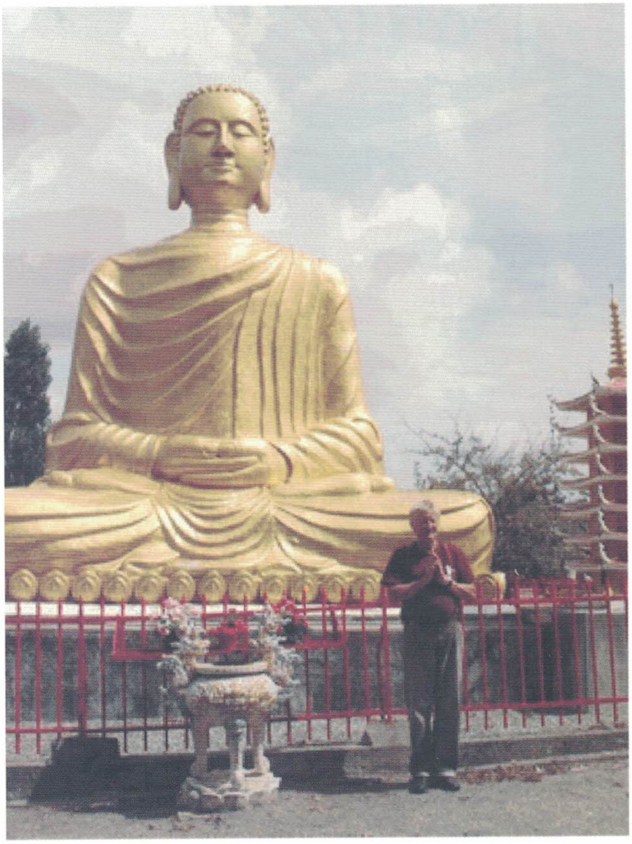

गाथाः सुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं, कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो, वातो रुक्खं व दुब्बलं।।7।।

अर्थ: जो व्यक्ति काम भोग में लीन रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके अधीन नहीं हैं, जिसे भोजन की सही मात्रा का ज्ञान नहीं है, जो आलसी है और परिश्रम नहीं करता, मार उसे उसी प्रकार गिरा देता है जैसे वायु एक दुर्बल वृक्ष को गिरा देती है।

जो कमजोर (वृक्ष) हैः मार (तूफान) उसे उखाड़ फेंकेगा

महाकाल-चूल्लकाल की कथा

स्थान : श्रावस्ती (सेतव्य नगर)

बुद्धकाल की बात है। सेतव्य नगर में महाकाल, मध्यकाल तथा चूल्लकाल नामक तीन भाई व्यापार कर जीविका चलाते थे। बड़ा भाई महाकाल तथा छोटा भाई चूल्लकाल भिन्न-भिन्न जगह व्यापार हेतु जाते तथा गाड़ियों में सामान लादकर लाते । मँझला भाई मध्यकाल उन वस्तुओं की बिक्री करता।

एक बार दोनों भाई गाड़ियों में खरीदा हुआ सामान लेकर गाँव लौट रहे थे। रास्ते में उन्होंने श्रावस्ती एवं जेतवन के बीच अपना काफिला रोक दिया। वहाँ महाकाल ने कुछ उपासकों को बुद्ध का उपदेश सुनने जाते हुए देखा। उत्सुकतावश अपने भाई को बैलगाड़ियों की निगरानी का जिम्मा देकर स्वयं शास्ता की धर्मसभा में जाकर, उन्हें प्रणाम कर धर्म कथा सुनने लगा। शास्ता ने उस दिन दुःखस्कन्धसूत्र पर प्रवचन दिया। यह सुनकर महाकाल को शरीर की नश्वरता का भान हो गया। उसने तुरंत प्रव्रज्या लेने का मन बना लिया। शास्ता के पास प्रव्रज्या की प्रार्थना लेकर गया। बुद्ध ने पूछा, "प्रव्रज्या की अनुमति देने वाला कोई है ?" तब महाकाल ने अपने छोटे भाई चूल्लकाल को बुलाया। छोटे भाई ने समझाने की बहुत कोशिश की कि वह प्रव्रज्या धारण न करे पर महाकाल नहीं माना। वह प्रव्रजित हो गया। छोटे भाई ने भी प्रव्रज्या ले ली।

महाकाल श्मशान साधना करते-करते अर्हत्व तक पहुँच गया। इसके विपरीत छोटे भाई चूल्लकाल का मन साधना में नहीं लगता था। वास्तव में वह विहार में यह सोचकर रह रहा था कि एक न एक दिन अपने भाई को पुनः गृहस्थ आश्रम में वापस खींच लाएगा।

महाकाल के अर्हत्व प्राप्ति के बाद एक दिन शास्ता भिक्षुगण के साथ चारिका करते हुए सेतव्य में सिन्सपावन पधारे। चूल्लकाल की पत्नियों ने जब सुना कि शास्ता भिक्षुसंघ के साथ सेतव्य पधारे हैं तो उन्होंने चूल्लकाल को पुनः गृहस्थ बनाने के लिए एक योजना बनाई।

शास्ता और भिक्षुसंघ को भोजन दान के लिए आमंत्रित किया गया। 'व्यवस्था ठीक है या नहीं' यह देखने के लिए चूल्लकाल को पहले भेजा गया। लेकिन चूल्लकाल के वहाँ पहुँचने पर उसकी पत्नियाँ उसे तरह-तरह के ताने देने लगीं, मजाक करने लगीं तथा वस्त्र खींचने लगीं। उन्होंने चूल्लकाल का चीवर उतार दिया और उसकी जगह उसे सफेद वस्त्र पहनाकर विहार भेज दिया। चूल्लकाल को प्रव्रजित हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था। उसे बुद्ध, धर्म एवं संघ में कोई विशेष श्रद्धा नहीं थी।अतः उसे चीवर छोड़ने में कोई संकोच नहीं हुआ।

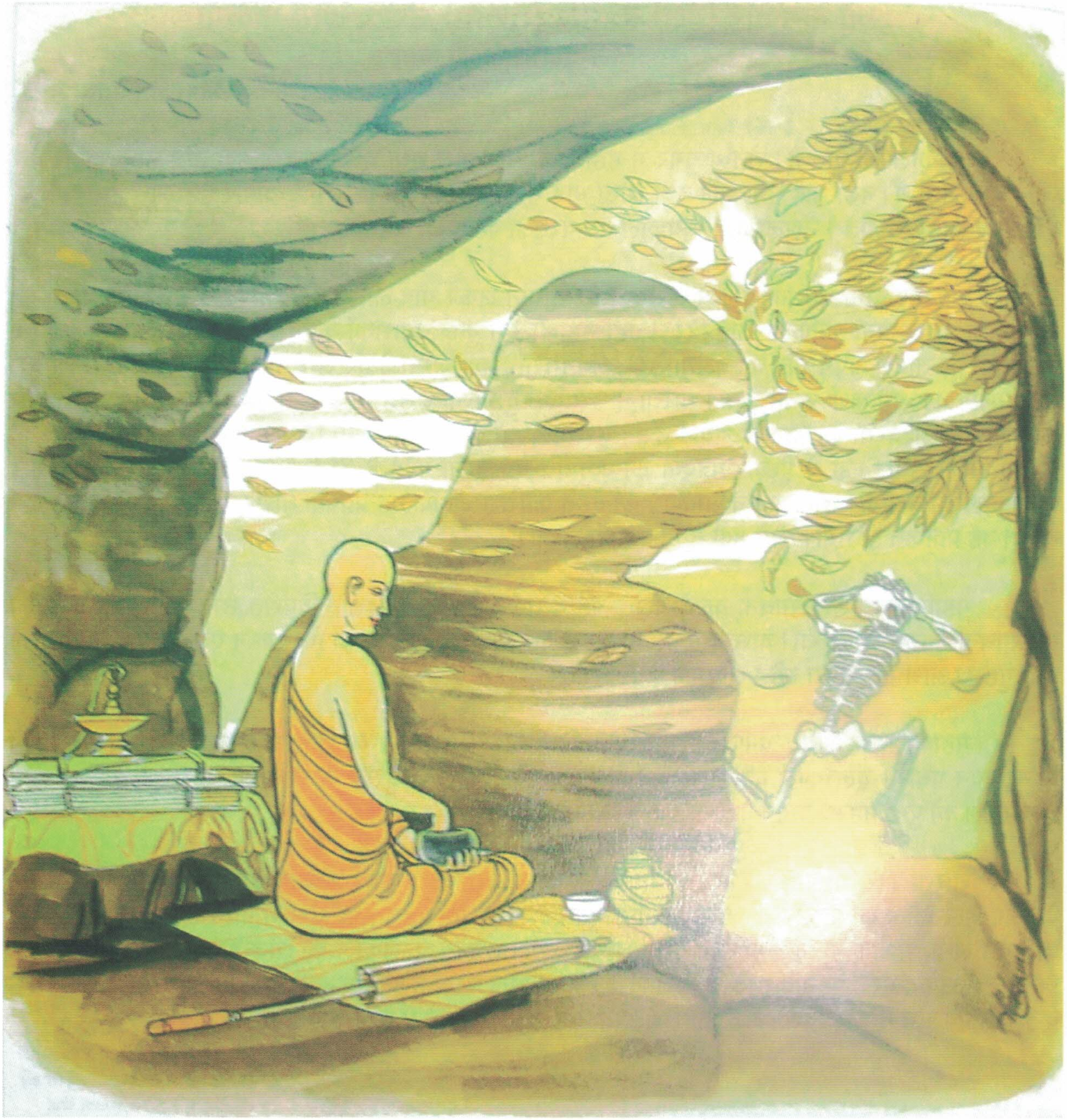

गाथाः असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं ,सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलं व पब्बतं।।8।।

अर्थः जो व्यक्ति काम भोग में लीन नहीं रहता, जिसकी इन्द्रियाँ उसके अधीन हैं, जिसे भोजन की सही मात्रा का ज्ञान है, जो आलसी नहीं है, मार उसे उसी प्रकार हिला नहीं सकता जैसे वायु एक चट्टान का कुछ बिगाड़ नहीं पाती।

जो चट्टान की तरह है, मार जैसा तूफान उसका क्या बिगाड़ेगा?
महाकाल-चूल्लकाल की कथा

बुद्ध भिक्षु संघ के साथ आए। भोजन-दान हुआ। अनुमोदन हुआ। शास्ता भिक्षु संघ के साथ चले गए।

महाकाल की पत्नियों ने भी सोचा कि महाकाल को भी गृहस्थ बना लिया जाए। अतः शास्ता तथा भिक्षुसंघ को भोजन दान के लिए एक बार फिर अगले दिन निमंत्रित किया गया। पर उस दिन पूर्व व्यवस्था देखने के लिए महाकाल को न भेजकर किसी अन्य भिक्षु को भेजा गया। उस भिक्षु ने वहाँ जाकर व्यवस्था देख ली। महाकाल की पत्नियाँ वह सब कुछ नहीं कर पाईं जिसे चूल्लकाल की पत्नियों ने किया था। चूल्लकाल की दो पत्नियाँ थीं और महाकाल की आठ। महाकाल की पत्नियों ने भोजन दान के उपरान्त शाक्य-मुनि से आग्रह किया कि महाकाल को भक्तानुमोदन के लिए छोड़ दें। शास्ता ने इसकी स्वीकृति दे दी और भिक्षुसंघ के साथ स्वयं विहार के लिए निकल पड़े । गाँव से बाहर आते ही भिक्षुओं ने बुद्ध से प्रश्न किया " आपने जान बूझकर महाकाल को छोड़ दिया या अनजाने में ही वह छूट गया ?" चूल्लकाल का अनुभव उनके मन को कचोट रहा था। उन्होंने कहा, "भन्ते ! महाकाल एक सीधे स्वभाव वाला, शीलवान भिक्षु है। संभव है उसके परिवार वाले उसे पुनः गृहस्थ बना दें। चूल्लकाल की तो सिर्फ दो पत्नियाँ हैं, महाकाल की तो आठ ।" शाक्य-मुनि ने रुककर भिक्षुओं को समझाया, "तुम चूल्लकाल और महाकाल को एक जैसा मानकर गलती कर रहे हो। चूल्लकाल और महाकाल दोनों एक जैसे नहीं हैं। चूल्लकाल तो विहार में रहता हुआ भी सदैव गृहस्थ जीवन का ही चिंतन किया करता था। वह इस प्रकार व्यवहार करता था जैसे वह नदी के किनारे का एक दुर्बल वृक्ष हो, जो जरा सी हवा के झोंके से उखड़ कर गिर सकता है। दूसरी ओर महाकाल प्रव्रज्या लेने के बाद गृहस्थ जीवन को एक बाधा के रूप में देखता रहा है। वह तो एक चट्टान की तरह है जिस पर किसी भी तूफान का कोई असर नहीं पड़ता।"

उधर महाकाल की पत्नियाँ भी चूल्लकाल की पत्नियों की तरह पति के चीवर बदलने की कोशिश करने लगीं। महाकाल ने तुरंत परिस्थिति की गंभीरता को भाँप लिया। वे अपने ऋद्धिबल से घर की छत तोड़कर बाहर निकल गए और गाँव के बाहर वहाँ जा पहुँचे जहाँ भिक्षुगण शाक्य-मुनि से उनके विषय में ही चर्चा कर रहे थे।

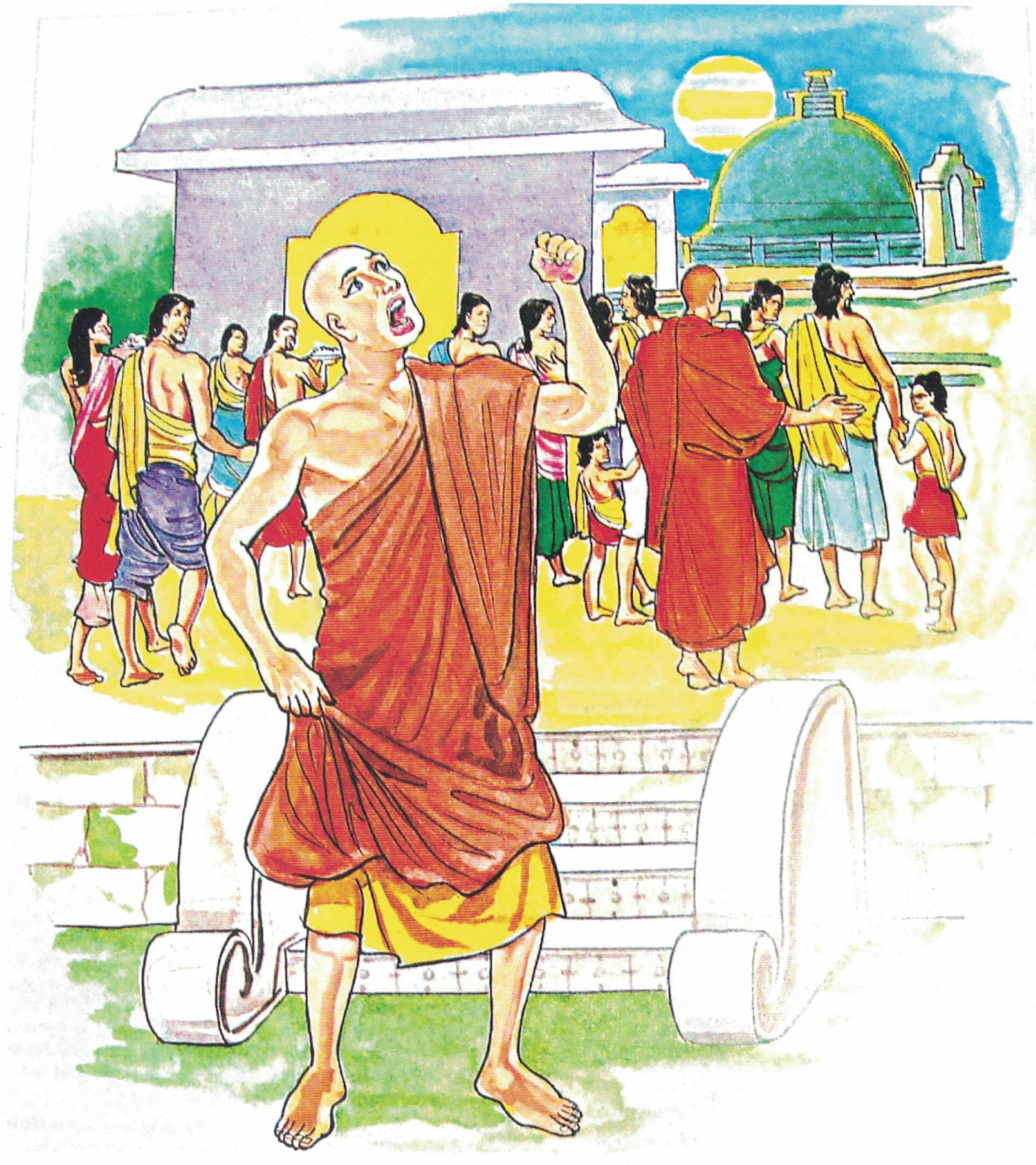

गाथाः अनिक्कसावो कासावं, यो वत्थं परिदहेस्सति।
अपेतो दमसच्चेन, न सो कासावमर्हित।।9।।

अर्थ: जिसने अपने मन को स्वच्छ नहीं किया है और काषाय वस्त्र धारण करता है, सत्य और संयम हीन ऐसा व्यक्ति, काषाय-वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं है।

काषाय वस्त्र का अधिकारी कौन?

देवदत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार अग्रस्रावक सारिपुत्र तथा महामोग्लान अपने भिक्षुओं के साथ राजगृह में चारिका के लिए निकले। राजगृह वासी उन्हें दो, तीन या बड़े समूह में दान देने लगे। भन्ते सारिपुत्र ने उन्हें दान की महिमा समझाते हुए बताया, "1.कोई व्यक्ति अगर स्वयं दान तो करता है पर दूसरों को दान के लिए प्रेरित नहीं करता, वह अगले जन्म में स्वयं तो भोग-ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है परन्तु परिवार-सम्पत्ति प्राप्त नहीं करता। 2. कोई व्यक्ति जो स्वयं तो दान नहीं करता पर दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है वह अगले जन्म में परिवार सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है पर स्वयं कोई भोग-ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता। 3. जो व्यक्ति न तो स्वयं दान देता है और न दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है वह अगले जन्म में न तो कोई परिवार सम्पत्ति प्राप्त करता है और न स्वयं कोई भोग-ऐश्वर्य प्राप्त करता है, उसे भोजन भी दुर्लभ हो जाता है। इसके विपरीत चौथे किस्म का आदमी वह होता है जो स्वयं भी दान देता है और दूसरों को भी दान देने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा व्यक्ति अगले जन्म में स्वयं सैकड़ों, हजारों गुना भोग-ऐश्वर्य प्राप्त करता है और साथ ही साथ उसी मात्रा में परिवार-सम्पत्ति भी पाता है और इन भोगों का उपभोग भी करता है।"

दान की महिमा सुनकर एक समझदार पुरुष ने विचार किया, "दान की महिमा बड़ी ही अपरंपार है। क्यों न भोजन के लिए भिक्षुओं को निमंत्रित किया जाए ?" यह सोचकर उसने भिक्षु संघ को अपने आवास पर अगले दिन भोजन के लिए निमंत्रित किया तथा घर-घर घूमकर लोगों से दान ले लिया, जिससे भोजन-व्यवस्था अच्छी तरह हो सके। किसी धनी व्यक्ति ने उस उपासक को एक बहुमूल्य कपड़ा देते हुए कहा, "अगर भोजन-दान का आयोजन करने में पैसों की कमी पड़ जाए तो इस बहुमूल्य कपड़े को बेच देना और उस पैसे से बची हुई कमी पूरी कर देना। अगर कमी न पड़े तो फिर इस कपड़े को किसी योग्य भिक्षु को दान कर देना।"

कार्यक्रम का आयोजन ठीक से हो गया। किसी चीज की कमी नहीं पड़ी। तब उस उपासक ने अन्य दानकर्त्ताओं से कहा, "दान कर्म बिना पैसों की कमी के पूरा हो गया। इस कपड़े को किसे दिया जाए ?" किसी ने सुझाव दिया, "स्थविर सारिपुत्र ही इसके योग्य हैं।" किसी अन्य ने कहा, "भिक्षु देवदत्त धान पकने के समय से ही हम लोगों के साथ रह रहा है, अत: यह वस्त्र उसे ही दे दिया जाए।" विचार-विमर्श हुआ। बहुमत भिक्षु देवदत्त के साथ था। अत: वह वस्त्र देवदत्त को दे दिया गया। देवदत्त के पास काषाय की कमी नहीं थी। भिक्षु संघ का नियम था कि अगर किसी को इस प्रकार का दान मिल जाता है और उसके पास पहले से ही काषाय है तो फिर उस वस्त्र को संघ को दे देना पड़ता था। जिस भिक्षु को वस्त्र की आवश्यकता होती, वह वस्त्र उसे ही दे दिया जाता। देवदत्त ने उस वस्त्र को भिक्षु संघ को नहीं दिया। वरन् उस वस्त्र को लेकर उसे अपने अनुरूप कटवाकर, सिलवाकर और रंगकर धारण करने लगा।

गाथाः यो च वन्तकसावस्स, सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन, स वे कासावमर्हित।।10।।

अर्थः जिसने अपने मन को स्वच्छ कर दिया है और तब वह काषाय वस्त्र धारण करता है, सत्य और संयम युक्त ऐसा व्यक्ति काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी है।

देवदत्त, तुम्हारे ऊपर यह काषाय नहीं शोभता
देवदत्त की कथा

आम जनता ने देवदत्त को वह वस्त्र धारण किए देखा। वे अपने आपको रोक नहीं सके और आपस में कहने लगे, "यह वस्त्र देवदत्त के ऊपर शोभा नहीं देता। इसके सही पात्र तो भन्ते सारिपुत्र लगते हैं।"

बुद्ध उन दिनों श्रावस्ती में विराजमान थे। कुछ समय बाद एक भिक्षु राजगृह से श्रावस्ती पहुँचा और शाक्य मुनि के सम्मुख पहुँच, उन्हें सादर प्रणाम कर एक किनारे बैठ गया। शास्ता ने उससे कुशल-मंगल पूछा। बातचीत के क्रम में उसने राजगृह की घटना बताई कि किस प्रकार देवदत्त नूतन वस्त्र धारण कर विचरण कर रहा था और लोगों में इस बारे में आक्रोश था। इन बातों को सुनकर शाक्य मुनि ने कहा, "भिक्षुगण! ऐसी घटना पहली बार नहीं हुई है कि सही पात्र न होने पर भी देवदत्त ने ऐसे कीमती कपड़े पहने हैं। पूर्व जन्म में भी वह ऐसा कर चुका है।" ऐसा कहकर शाक्य-मुनि ने भूतकाल की कथा सुनाई।

पूर्वकाल में जब वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज करते थे तब एक गजघातक हाथियों को मारकर, उनसे प्राप्त दाँत, नख, आँत, मांस आदि बेचकर जीवन-यापन करता था। उन दिनों पच्चेक बुद्ध जंगल में साधना करते थे।जंगल में विचरण करते समय हाथी जब भी पच्चेक बुद्ध को देखते तो वे उन्हें झुककर प्रणाम कर आगे बढ़ते थे। एक दिन गजघातक ने यह देखा तो सोचा, "इन हाथियों को मारना बड़ा ही आसान है। अगर मुझे भी कहीं से काषाय वस्त्र मिल जाये तो उसे पहनकर मैं इन हाथियों को आसानी से मार सकूँगा।" ऐसा विचार कर वह काषाय वस्त्र की खोज में लग गया। एक दिन उसने किसी भिक्षु को वस्त्र उतार, तालाब में स्नान करते हुए देखा। उसने भिक्षु का वस्त्र चुरा लिया। वह उसे ओढ़ कर बैठने लगा। हाथी जब उसे प्रणाम कर आगे बढ़ते तो वह अंतिम हाथी को भाला मारकर उसकी हत्या कर दिया करता था। उसका दाँत आदि निकालकर बेच देता था तथा बचा-खुचा अंश धरती में गाड़ देता था।

आगे चलकर एक बोधिसत्व हाथियों के राजा बने। वह बोधिसत्व हाथी भी, अपने पूर्वजों की आदत के अनुसार, गजघातक को प्रणाम कर आगे बढ़ता था।एक दिन हस्तीराज ने अपने साथियों से विचार किया, "लगता है, हमारी संख्या प्रतिदिन घटती जा रही है। अगर कोई हाथी यहाँ से कहीं जाता तो बिना बताये नहीं जाता। अवश्य ही कोई हमारे साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार कर रहा है। मुझे उस काषायधारी पर शक हो रहा है।"एक दिन सभी हाथियों से मंत्रणा कर गजराज ने हस्ति-समूह को आगे भेज दिया और स्वयं सबसे अंत में चला।

प्रतिदिन की तरह उस हत्यारे ने हाथियों के प्रणाम कर चले जाने पर, राजा-हाथी पर भाला फेंक दिया। हाथी सावधान था, वह मुड़ गया और भाले के वार से बच गया। उसने उस गजघातक को पकड़ लिया और उससे पूछा कि क्या उसने हाथियों की हत्या की थी। हत्यारे ने अपनी गलती स्वीकार कर ली। तब हस्तिराज ने सोचा, "अगर मैं इसकी हत्या कर देता हूँ तो हजारों बुद्ध, पच्चेक बुद्ध और क्षीणास्त्रव भिक्षुओं को यह सोचकर लज्जा होगी कि काषायधारी भी जीव-हत्या करते हैं।" ऐसा सोचकर हाथी ने उस घातक के प्राण नहीं लिये और उससे यह कहा, "संसार से विरक्त भिक्षुओं के वस्त्र पहनकर तुमने हत्या करके बहुत बड़ा पाप किया है। तुम उस काषाय वस्त्र के अधिकारी नहीं थे। जो व्यक्ति भीतर से निर्मल और पवित्र है वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है।"

शाक्य मुनि ने कथा सुनाते हुए बताया, "उस जन्म में हाथियों की हत्या करने वाला देवदत्त था और हाथियों का राजा मैं था। इस प्रकार अधिकारी न होते हुए भी देवदत्त ने भूतकाल में भी काषाय वस्त्र धारण किया था। "ऐसा कहकर शास्ता ने ये दो गाथाएं सुनाई।

गाथाः असारे सारमतिनो, सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति, मिच्छासंकप्पगोचरा।।11।।

अर्थः जो सार को निःसार और निःसार को सार समझता है ऐसे गलत चिंतन वाले व्यक्ति को सार प्राप्त नहीं होता।

किसे सार प्राप्त नहीं होता?

स्थविर सारिपुत्र की कथा

स्थान : राजगृह (वेणुवन)

शाक्य-मुनि के पृथ्वी पर पदार्पण के पहले से ही राजगृह के पास उपतिष्य तथा कोलित नाम के दो गाँव थे। जिस दिन उपतिष्य गाँव की 'सारी' नामक ब्राह्मणी ने गर्भधारण किया, उसी दिन कोलित गाँव की 'मोग्गली' नाम की ब्राह्मणी ने भी गर्भधारण किया। यह संयोग की बात थी कि दोनों ब्राह्मणियों ने एक ही दिन गर्भधारण किया। इन दोनों परिवारों में सात पीढ़ियों से गाढ़ी मित्रता थी। समय आने पर दोनों परिवारों में पुत्र पैदा हुए। सारी ब्राह्मणी के पुत्र का नाम उपतिष्य रखा गया और मोग्गली ब्राह्मणी के पुत्र का नाम कोलित रखा गया। उम्र आते ही वे दोनों सर्वगुणसम्पन्न हो गए।

उन दिनों राजगृह में प्रत्येक वर्ष 'गिरिजसमज्ज' नामक मेला लगता था। दोनों मित्र एक ही मंच पर बैठकर मेला देखते। हँसने की बात पर हँसते थे, उदासी की बात पर उदास होते थे तथा दान देने के अवसर पर उचित दान देते थे। इस प्रकार एक बार, अपने प्रारब्ध के अनुसार, वे हँसने की बात पर भी चुप रहे, रोने की बात पर भी मौन रहे तथा दान का अवसर आने पर भी कुछ नहीं किया। वे दोनों चुपचाप कुछ इस प्रकार सोचते रहे, "इस मेले में क्या रखा है ? सौ साल के अन्तराल में सब कुछ ही खत्म हो जायेगा। हमें तो इस संसार रूपी मेले से छुट्टी पानी चाहिए।" इस प्रकार जब दोनों शांत बैठे थे तब कोलित ने उपतिष्य से पूछा, "बन्धु उपतिष्य ! आज तुम प्रतिदिन की तरह प्रसन्न न दिखकर चिंतित दिख रहे हो। क्या बात है ?" "कोलित ! इस मेले में क्या रखा है ? समय के अन्तराल में सब कुछ नष्ट हो जाएगा। हम भी नष्ट हो जायेंगे। अतः मैं सोच रहा हूँ कि इससे मुक्ति कैसे मिले। परन्तु मित्र ! आज तो तुम भी उदास बैठे हुए हो। तुम्हारी उदासी का क्या कारण है ? " कोलित ने कहा, "बन्धु ! मैं भी वही सोच रहा हूँ जो तुम सोच रहे हो। हम दोनों की ही सोच ठीक है। पर मुक्ति के लिए तो प्रव्रज्या लेनी होगी। किससे प्रव्रज्या ली जाए ? "

उन दिनों राजगृह में संजय नाम का एक परिव्राजक अपने शिष्यों के विशाल समूह के साथ रहता था। उपतिष्य तथा कोलित ने उसी से प्रव्रज्या लेने का विचार किया। वे उसके पास गए, उससे प्रव्रज्या ग्रहण की और बहुत जल्द ही संजय द्वारा बताये सारे सिद्धान्तों को पूरी तरह हृदयंगम कर गए। तब उन्होंने संजय से पूछा, "आचार्य ! हमने आपके द्वारा बताये सारे सिद्धान्तों को हृदयंगम कर लिया। अब आगे कुछ बताइए।" "आगे बताने के लिए कुछ नहीं है। जितना मालूम था, उतना बता दिया।" यह सुनकर दोनों मित्रों ने राय की, "इस आचार्य के पास रहने से कोई फायदा नहीं है। आर्यावर्त्त बहुत विशाल देश है। अगर हम यहाँ घूमेंगे तो निश्चय ही कोई न कोई सही आचार्य मिल जाएगा।" ऐसा सोचकर दोनों मित्र पूरे जम्बूद्वीप घूमते रहे। उन्हें एक के बाद एक आचार्य मिलते गए पर जब वे उन आचार्यों से शंका समाधान के लिए प्रश्न करते तो वे उत्तर नहीं दे पाते थे। कुछ समय के बाद उन दोनों ने अनुभव किया कि अब और अधिक भटकना बेकार है। अतः हार-थककर वे राजगृह वापस आ गए और परस्पर निर्णय लिया, "हममें से जिसको भी सत्य की पहले अनुभूति होगी, वह दूसरे को तुरंत सूचित करेगा।"

गाथाः सारं च सारतो ञत्वा, असारं च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासंकप्पगोचरा।।12।।

अर्थ: जो सार को सार और नि:सार को नि:सार समझता है ऐसे शुद्ध चिंतन वाले व्यक्ति को सार प्राप्त हो जाता है।

किसे सार प्राप्त होता है?
स्थविर सारिपुत्र की कथा

इस प्रकार विचार कर दोनों अपनी-अपनी साधना में लग गए। उसी समय शाक्य मुनि राजगृह पधारे। वे वेणुवन में रह रहे थे। उनके साथ पंचवर्गीय भिक्षुओं में से अश्वजित नाम का भिक्षु भी आया । उसने किसी दिन भिक्षाटन के लिए नगर में प्रवेश किया। उसी समय उपतिष्य भी भिक्षाचर्या हेतु निकल पड़ा। रास्ते में उपतिष्य ने अश्वजित को देखकर मन ही मन सोचा, "मैंने आज तक ऐसा तेजस्वी परिव्राजक नहीं देखा है। क्यों न मैं इससे बातें करूँ तथा इसके आचार्य आदि के बारे में पुछूँ ?" अत: सही अवसर पाकर उपतिष्य अश्वजित के पास गया तथा उनसे उनके बारे में पूछा। अश्वजित स्थविर ने "जो धर्म हेतु उत्पन्न है" गाथा सुनाई। दो पद सुनते ही उपतिष्य स्रोतापन्न हो गया। फिर आचार्य ने शाक्य मुनि के विषय में बताया जो उस समय राजगृह के वेणुवन में वास कर रहे थे। उपतिष्य ने अश्वजित से आज्ञा ली और कोलित के पास गया तथा उसे भी स्थविर द्वारा सुनाई गई गाथा सुनाई। उसे सुनते ही वह भी स्रोतापन्न हो गया। तब दोनों मित्रों ने शाक्य मुनि के पास जाकर उनसे आशीर्वाद लेने का विचार किया। सोचा " अपने आचार्य संजय को भी साथ ले चलते हैं।" ऐसा सोचकर दोनों शिष्य संजय के पास गये तथा उससे शाक्य मुनि के पास चलने के लिए आग्रह किया। पर संजय इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जब शिष्यों ने इसका कारण पूछा तो संजय ने उत्तर दिया, "मैंने उच्च कुल के महाजनों का गुरू बनकर अभी तक जीवन यापन किया है। अब मेरे लिए किसी का शिष्य बनना असंभव है।" दोनों शिष्यों ने समझाने की पूरी कोशिश की पर संजय तैयार नहीं हुआ तथा उनसे कहा, "संसार में बुद्धिमान की तुलना में मूर्ख अधिक हैं। अत: बुद्धिमान अगर शाक्य मुनि के पास जायेंगे तो मूर्ख तो मेरे ही पास आयेंगे।" ऐसा सुन उपतिष्य और कोलित दोनों शास्ता से मिलने चल पड़े। संजय के अधिकांश शिष्य भी उन दोनों के पीछे हो लिए। संजय यह आघात बर्दाश्त नहीं कर पाया और वहीं तुरंत उसकी मृत्यु हो गयी। उधर उपतिष्य और कोलित शास्ता के पास पहुँचे और उनसे प्रव्रज्या की प्रार्थना की। शास्ता ने दोनों को प्रव्रज्या दी । उन्होंने बुद्ध को बताया कि किस प्रकार उन्होंने बहुत कोशिश की कि संजय त्रिरत्न की शरण मे आयें पर वह तैयार नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद कोलित (महामोग्लान के रूप में) तथा उसके बाद उपतिष्य (सारिपुत्र के रूप में) अर्हत हो गये।

शाक्य मुनि ने समझाया, "अपनी गलत दृष्टि के कारण संजय एक मूर्ख की तरह असार को सार और सार को असार समझ बैठा था। इसके विपरीत मोग्लान तथा सारिपुत्र समझदार थे और उन्होंने असार को असार तथा सार को सार समझ लिया था।"

तब शास्ता ने ये दो गाथायें सुनाईं।

आगे चलकर महामोग्लान तथा सारिपुत्र दोनों ही तथागत के प्रधान तथा श्रेष्ठ शिष्य बन गए।

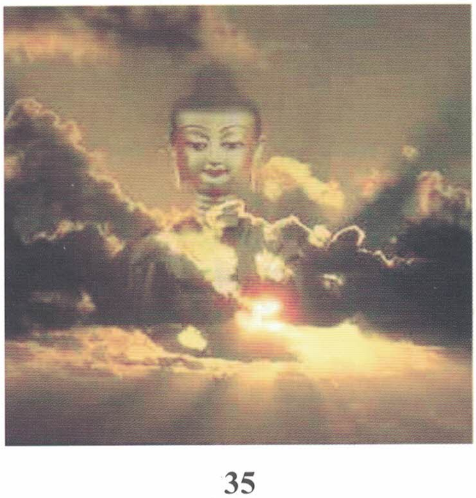

गाथाः यथा अगारं दुच्छन्नं, वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं, रागो समतिविज्झति।।13।।

अर्थः जैसे यदि घर की छत ठीक न हो तो उसमें वर्षा का पानी घुस जाता है, उसी प्रकार असंयमित मन में राग घुस जाता है।

किसके चित्त में राग घुसता है?

नन्द स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजकुमार सिद्धार्थ गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण) के बाद छः वर्षों तक गहरी साधना करते रहे और अंततः उन्होंने बोधगया में बोधि वृक्ष के नीचे सत्य के दर्शन किए।

इन अनेक वर्षों में महाराज शुद्धोदन शाक्य-नायकों के मध्य खिन्न मन से किस प्रकार दिन काटते रहे , कोई नहीं जानता। यशोधरा पति वियोग में कितनी तड़पीं, कितनी व्यथित रहीं, उसका दुख वर्णनातीत है । महाराज और यशोधरा ने भी अपने-अपने तरीके से राजकुमार सिद्धार्थ की खूब खोज-खबर करवाई , पर सब व्यर्थ गई। एक दिन यशोधरा के मुँह से जब यह बात निकली कि 'अब मैं थोड़े दिन की मेहमान हूँ' तब ही अनुचरियों ने सूचना दी कि नगर के दक्षिण तोरण से आए दो व्यापारी कह रहे हैं कि उन्होंने 'शाक्य कुमार' को देखा है। वे जगदाराध्य राजकुमार अब अति शुद्ध महान 'बुद्ध' बन चुके हैं और इसी ओर आ रहे हैं। यह सुनते ही यशोधरा ने, इससे पहले कि उन्हें महाराज अपने पास बुलवा पाते , दूतों के माध्यम से उन्हें अपने महल में बुलवा लिया । पूछने पर 'त्रपुष' नामक व्यापारी बोला- "हे देवी ! हम उन्हें अपनी आँखों से देख कर आ रहे हैं । वे तो राजाओं के भी राजा बन चुके हैं । नगर -नगर , गाँव-गाँव जाकर वे जैसे -जैसे उपदेश देते हैं , लोग उनका अनुसरण कर सुख और शांति पाते हैं। हमने 'गया' के निकट क्षिरिका -वन में उनके उपदेश सुने हैं । चौमासे के पहले ही वे यहाँ आ पहुँचेंगे ।" इसके बाद 'भल्लिक' ने सविस्तार वृतांत सुनाया और बताया कि अब उन्हें 'बुद्ध' नाम से सम्बोधित किया जाता है । वे लोगों को" अष्टमार्ग " और " द्वादश निदान " सुझाते हैं । ज्ञान प्राप्ति पर उन्हें पंचवर्गीय भिक्षुओं का ध्यान आया और वे तुरंत वाराणसी की ओर चल पड़े । वहां उन्होंने उन्हें धर्म चक्र का ज्ञान दिया ,साथ में "मध्यमा प्रतिपदा", "आर्यसत्य " और " अष्टांगमार्ग " में भी दीक्षित किया । इन पांच में से सर्वप्रथम "कौडिन्य" नामक शिष्य दीक्षित हुआ , बाद में "महानाम","भद्रक","वासव"और"अश्वजीत" दीक्षित हुए ।

फिर वाराणसी का "यश " नामक नगर सेठ प्रव्रज्या का अधिकारी बना । यहीं से बुद्ध ने साठ भिक्षुओं को प्रचार हेतु भेजा । फिर राजगृह के निकट "यष्टिवन" पहुँचे जहां महाराज बिंबसार ने परिजनों व पुरजनों सहित उनकी शरण ग्रहण की । इतना कह, यशोधरा से विदा ले दोनों व्यापारी चल दिए । यह समाचार सुने तो महाराज ने तथागत को लिवा लाने के लिए नौ सामंतों को भेजा। वे वेणुवन पहुँचे पर तथागत के उपदेश सुन सबकुछ भूल गए और उनके धर्म संघ में शामिल हो गए। तब उन्होंने अपने सचिव के सूत व सिद्धार्थ के बाल सखा को भेजा। वह भी उनके सम्मुख जाते ही भिक्षु बन गया । पर अवसर देख कपिलवस्तु चलने की प्रार्थना की । बुद्ध कपिलवस्तु पहुँचे और निकट आते ही यशोधरा अधीर हो उनके चरणों पर गिर पड़ी । उन्होंने वहीं यशोधरा को दीक्षा दे स्थिर-चित्त किया । बाद में एक भिक्षु ने शंकालु हो प्रश्न किया कि आपने यशोधरा को अपना आलिंगन क्यों करने दिया । शास्ता ने उत्तर देते हुए समझाया कि महा प्रेम लघु प्रेम को इसी भांति सहारा देता है ।

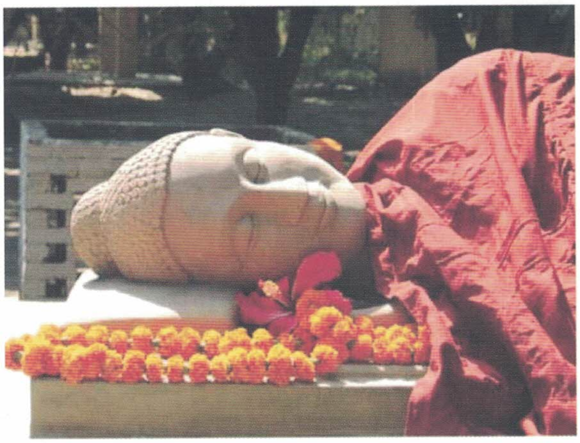

गाथाः यथागारं सुच्छन्नं, वुट्ठी न समतिविज्झति
एवं सुभावितं चित्तं, रागो न समतिविज्झति ।।14।।

अर्थः जैसे यदि घर की छत ठीक हो तो उसमें वर्षा का पानी नहीं घुस पाता, उसी प्रकार संयमित मन में राग नहीं घुस सकता।

किसके चित्त में राग नहीं घुसता है?
नन्द स्थविर की कथा

उधर भूप ने जब सुना कि राजकुमार पुर के द्वार तक आ पहुँचे हैं और भिक्षार्थ नीचों के आगे हाथ फैला रहे हैं तो नृप श्वेत मूछों को ऐंठते, दाँत पीसते, तुरंग पर सवार हो, रोष सहित महल से निकले । पर बुद्ध के सम्मुख पहुँचते ही क्रोध लुप्त हो गया; तथापि इतना कहा कि , "पुत्र ! यह राजपाट ,वैभव आदि सब तुम्हारा है। तुम्हें यहां इसी गौरव गरिमा के साथ आना चाहिए था। " शाक्य मुनि ने उत्तर दिया - " हे तात् ! मर्त्यों की कोई कुल परंपरा होती ही नहीं , कुल परंपरा तो 'बुद्ध- अवतारों' की होती है ।"

तत्पश्चात् शास्ता ने महाराज को मोक्ष के आठ सोपान समझाए। इस प्रकार उस रात राज-कुल ने शांति मार्ग पर चलने हेतु मंगलमय प्रवेश किया । राजा शुद्धोदन स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गए। बुद्ध की मौसी माँ महापजापति गौतमी ने भी स्रोतापत्तिफल प्राप्त कर लिया। शाक्य मुनि ने राहुल की माता के सद्‌गुणों का जिक्र कर चन्दकिन्नरी जातक सुनाया।

तीसरे दिन तथागत के छोटे भाई नन्द का विवाह था।

भोजनोपरान्त चलने के समय नन्द ने तथागत का भिक्षा पात्र उठाया। बुद्ध ने नन्द के हाथ से अपना पात्र वापस नहीं लिया। वे अपने आसन से उठे और विहार की ओर चल दिए। शिष्टाचारवश नन्द उनका पात्र लिए पीछे-पीछे चलता गया। शाक्य मुनि चलते गए, चलते गए, रुके नहीं। उधर होने वाली पत्नी, जनपदकल्याणी भी नन्द के पीछे-पीछे दौड़ती गई और बोलती गई , "आर्यपुत्र ! जल्द लौट आइयेगा।" विहार पहुँचने पर तथागत ने नंद से प्रश्न किया, "नन्द, प्रव्रजित होवोगे ? " नन्द 'ना' नहीं कह सका और प्रव्रजित हो गया।

इधर माँ के कहने से राहुल भी शास्ता के पास गया और अपना हक माँगने लगा। तब शास्ता ने राहुल को भी प्रव्रजित कर दिया। राजा शुद्धोदन को जब पता चला तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने तथागत से आग्रह किया कि भविष्य में माता-पिता की अनुमति के बिना बच्चों को प्रव्रजित नहीं किया जाए। शास्ता ने राजा को यह आश्वासन दिया और विनय का नियम बदल दिया।

उधर प्रव्रजित होने पर भी नन्द को जनपदकल्याणी के शब्द बार-बार याद आ रहे थे। उसका मन साधना में नहीं लग रहा था। उसने बुद्ध से चीवर छोड़ने का आग्रह किया। तथागत ने उससे कहा कि अगर वह तन्मयता से साधना करेगा तो वे जनपदकल्याणी से भी अधिक सुन्दर स्त्री दिला देंगे। नन्द ने स्वीकृति दे दी और साधना में लग गया। भिक्षुओं में चर्चा होने लगी कि नन्द स्त्री के लिए साधना कर रहा है। उधर तन्मयतापूर्वक साधना करते-करते नन्द अर्हत्व प्राप्त कर गया। अब उसे किसी स्त्री में कोई रूचि नहीं रह गई थी। नन्द के अर्हत्व प्राप्त करने से अब शाक्य-मुनि भी वचनबद्ध नहीं रह गए थे।

तब शाक्य-मुनि ने ये दो गाथायें सुनाईं।

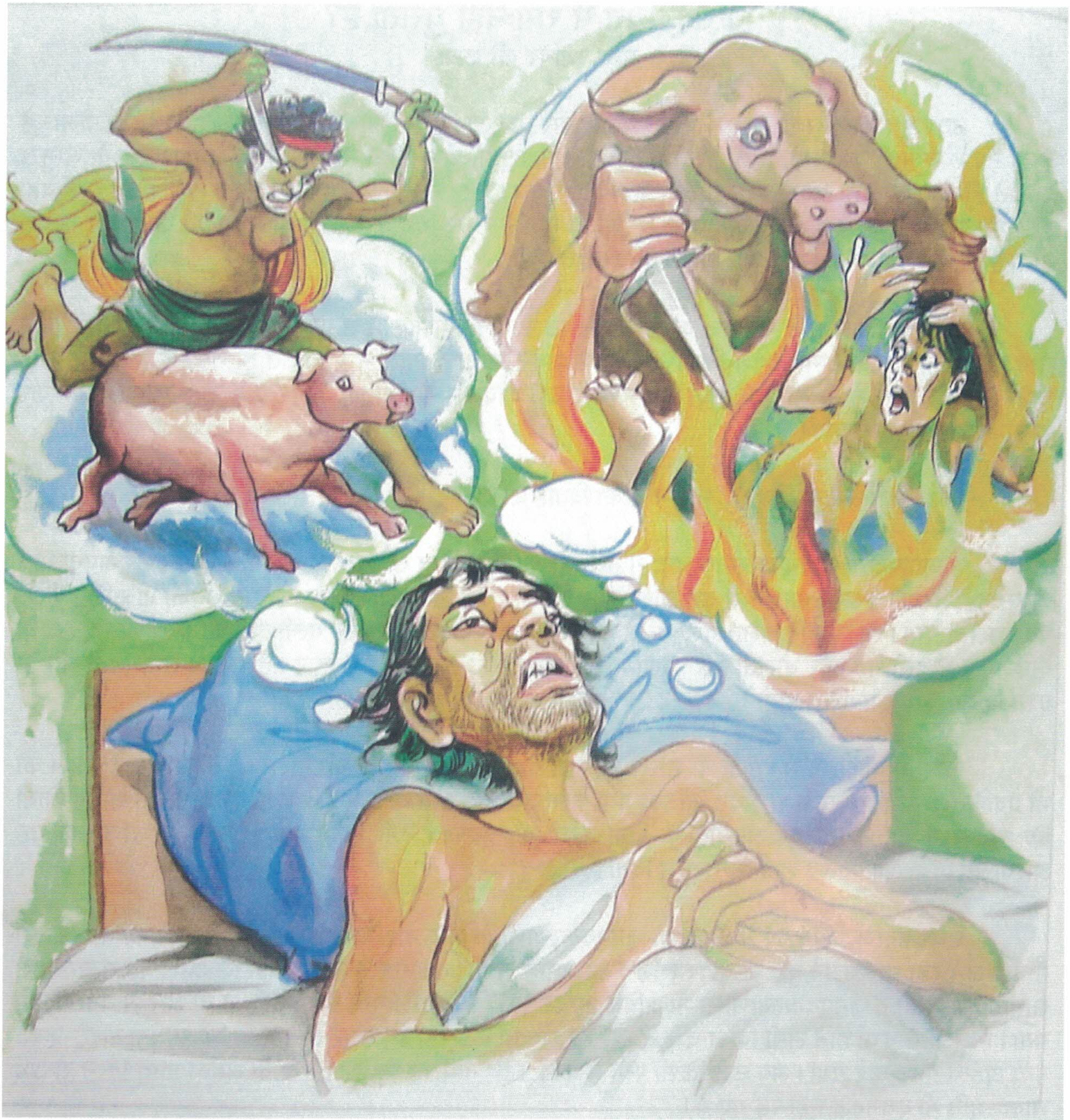

गाथाः इध सोचति पेच्च सोचति, पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति, दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो।।15।।

अर्थः वह इस लोक में शोक करता है तथा मरणोपरान्त परलोक में शोक करता है। पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने कर्मों के पाप फल को देखकर शोकग्रस्त तथा पीड़ित होता है।

पापी इस लोक में भी दुःख पाता है, उस लोक में भी

चुन्द सुकरिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में चुन्द सुकरिक नामक एक कसाई पचपन वर्षों से सूअरों की हत्या कर अपना जीवन यापन कर रहा था। जब उसके पास सूअर की कमी हो जाती तो वह धान के बदले सूअर के बच्चों को खरीद लेता था और अपने घर के पीछे एक बाड़े में रख देता था। वहीं उन्हें खाद्यसामग्री खिलाता था। तरह-तरह के वृक्षों के पत्ते या शरीर का मल खिलाकर उन्हें बड़ा करता था। जब किसी सूअर को मारना चाहता था तो उसे वधस्थान पर बाँध देता था और उसके शरीर को बेंत से मार-मारकर फुला देता था। इस प्रकार उस सूअर के शरीर का मांस गाढ़ा और मोटा हो जाता था। तब बाँस की एक नली से उसके पेट में गर्म जल डालता था। ऐसा करने से गर्म जल पेट में जाकर उसके गुदा से बाहर निकल जाता था। ऐसा बार-बार करता था और इस प्रकार उस सूअर का पेट पूरी तरह साफ हो जाता था। इसके बाद वह गर्म जल डालकर उस सूअर के काले और कड़े बालों को नर्म कर देता था। फिर एक चिमटी से बालों को बेरहमी से उखाड़ता हुआ उसके चमड़े को साफ कर देता था। उसके बाद एक तेज तलवार लेकर उस सूअर का सर काट देता था। खून को एक बर्तन में इकट्ठा कर लेता था। उसके मांस में खून मिलाकर उसे भूनता था और फिर परिवार के साथ बैठकर खाता था। बचे हुए मांस को वह बाजार में बेच देता था। इस प्रकार निर्दयता से जीवन जीते हुए चुन्द सुकरिक ने पचपन वर्षों तक सूअरों की हत्या की।

निर्दयता का सिलसिला यह था कि इन वर्षों में यद्यपि वह बौद्ध विहार के पास ही रहता था पर कभी भी वह बौद्ध विहार नहीं गया। एक कड़छुल के बराबर भी दान नहीं दिया। लगातार पापकर्म में लिप्त रहने के कारण वर्षों बाद उसका शरीर रोग ग्रस्त हो गया। उसका जीवन नरक के समान हो गया। वह घोर कष्ट में जीवन जीने लगा। लोग उसे देखते तो आपस में चर्चा करते कि उसकी कितनी भयंकर स्थिति है । उसकी दयनीय स्थिति देखकर देखने वाला भी आश्चर्य से भर जाता था। कहते हैं कि नरक का जीवन इतना भयावह होता है कि यह देखने वाले को भी त्रस्त कर देता है।

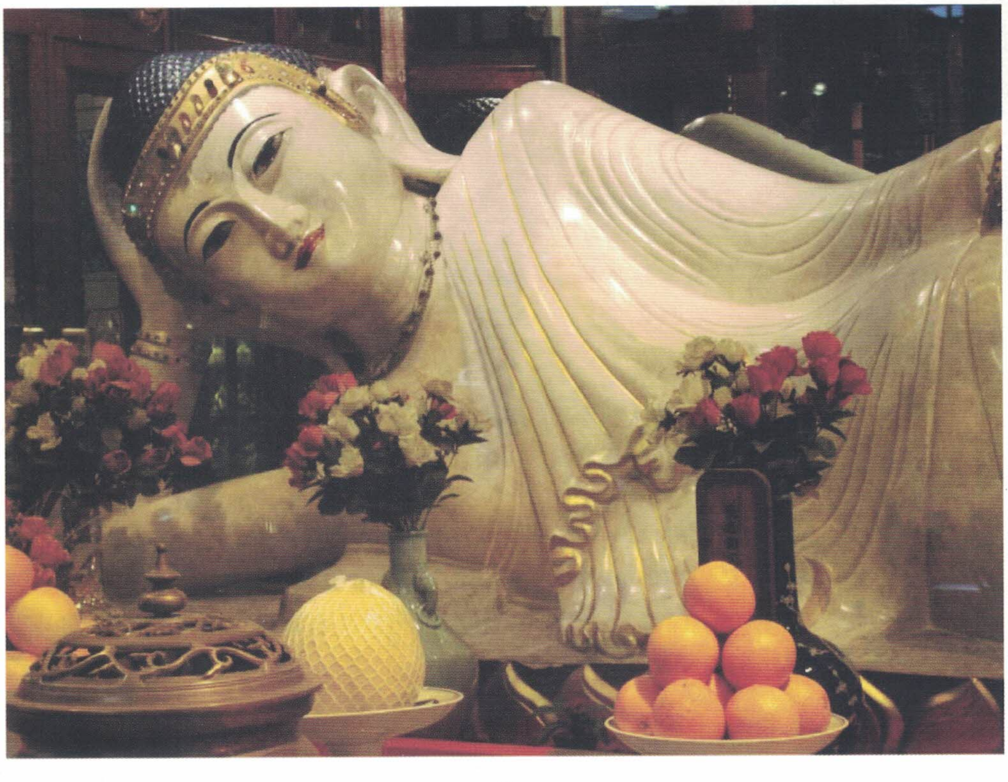

गाथाः इध मोदति पेच्च मोदति, कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति, दिस्वा कम्मविसुद्धमत्तनो।।16।।

अर्थः वह इस लोक में प्रसन्न होता है तथा मरणोपरान्त परलोक में प्रसन्न होता है। पुण्य करने वाला व्यक्ति दोनों जगह प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों का पवित्र फल देखकर मुदित होता है, आनन्दित होता है।

पुण्यात्मा इस लोक में भी सुख पाता है और उस लोक में भी

चुन्द सुकरिक की कथा

सुकरिक सूअर की बोली बोलता, सूअर की तरह अपने शरीर को घसीटता तथा घर के अंदर की चीजें तोड़-फोड़ देता। उसके घर के लोग उसका मुँह बंद कर देते पर वह मुँह खोल लेता था। उसकी चिल्लाहट इतनी तीव्र होती थी कि कभी-कभी पड़ोसियों का रात में सोना भी हराम हो जाता था। घर से बाहर निकलता तो घर वाले उसे जान से मारने की धमकी देते पर उस पर इसका कोई असर नहीं होता। अतः घर वालों ने उसे एक कमरे में बंद कर दिया और बाहर पहरेदार बिठा दिया कि वह बाहर नहीं निकल सके। अब वह विवश होकर कमरे में ही लोटता तथा चिल्लाता। आठवें दिन उसकी मृत्यु हो गई और वह नरक में जा गिरा।

घर के बाहर से जब भिक्षुगण गुजरते तो सोचते कि घर के अन्दर कोई सूअर बोल रहा है। उन्होंने बुद्ध को बताया कि सुकरिक सात दिनों से लगातार सूअर मार रहा था। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाते हुए बताया, "वह सात दिनों से कोई सूअर नहीं मार रहा था। उसका कर्म फल पूरा होकर सामने आ गया था। अतः जीवित रहते हुए भी वह यहीं पर नरक का भोग, भोग रहा था। लोट-पोट करता हुआ अब वह मर गया है तथा नरक में जा गिरा है।"

तब बुद्ध ने ये दोनों गाथाऐं कहीं।

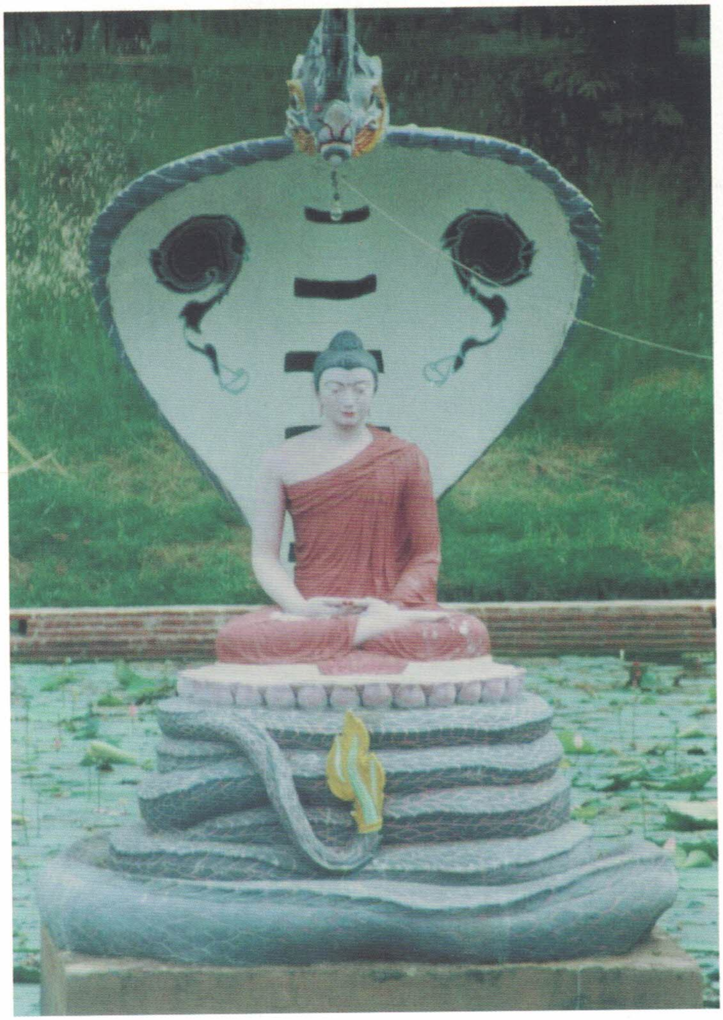

गाथाः इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतं ति तप्पति, भीय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो।।17।।

अर्थ: पापी इस लोक में संतप्त होता है तथा प्राणान्त के बाद परलोक में भी संतप्त होता है। इस प्रकार पाप करने वाला दोनों जगह ही संतप्त होता है। "मैंने पाप किया है" यह सोचकर संतप्त होता है और दुर्गति प्राप्त कर और भी अधिक संतप्त होता है।

पापी सर्वत्र दुःख ही पायेगा
देवदत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कहानी श्रावस्ती के जेतवन विहार की है। देवदत्त तथागत का ममेरा भाई था। हालाँकि वह उनके संघ में भिक्षु था पर वह भीतर ही भीतर उनसे जलता था और बदला लेना चाहता था। उसने तीन बार बुद्ध की हत्या करनी चाही पर वह सफल नहीं हो पाया। अंततः उसने संघ में फूट डाली, अपने साथ पाँच सौ नए भिक्षुओं को लिया और गयाशीर्ष पर्वत चला गया। सारिपुत्र तथा मोग्लान ने बुद्ध को इस बात की जानकारी दी।

कुछ समय बाद एक दिन सारिपुत्र और मोग्लान गयाशीर्ष पर्वत पहुँचे। देवदत्त ने उन्हें देखा तो बहुत खुश हुआ। उसने भिक्षुओं से कहा, "देखो! हमारा धर्म कितना महान है कि सारिपुत्र और मोग्लान भी आ रहे हैं।" आदर-सत्कार के बाद देवदत्त भिक्षुओं को प्रवचन देने लगा। पर वह थका हुआ था, उसे नींद आने लगी। उसने सारिपुत्र से आग्रह किया कि वह प्रवचन जारी रखे और स्वयं वहीं लेट गया। उसे नींद आ गई। सारिपुत्र ने प्रवचन जारी रखा। धर्म के सही तत्वों को सुनकर भिक्षुओं की आँखें खुलने लगीं। उनके विचार बदलने लगे और उन्होंने महसूस किया कि उन्हें सही ज्ञान शास्ता के पास ही मिल सकता है, देवदत्त के पास नहीं। वे उठे। सारिपुत्र तथा मोग्लान के साथ हो लिए तथा शाक्य-मुनि के यहाँ जाने के लिए प्रस्थान कर गए। देवदत्त का भिक्षु कोकालित देवदत्त को उठाने लगा, "देवदत्त! उठो! उठो!! भिक्षुगण तुम्हें छोड़कर जा रहे हैं।" पर उसकी नींद न खुली, वह सोता रहा।

भिक्षुओं के चले जाने से देवदत्त को बहुत गहरा धक्का लगा। वह बुरी तरह बीमार पड़ गया। उसका मित्र राजा अजातशत्रु भी किसी प्रकार उसकी मदद नहीं कर सका। वह सबों से अलग-थलग पड़ गया।

देवदत्त अब बूढ़ा हो चुका था। उसके अन्दर पश्चाताप की अनुभूति होने लगी। उसका पुराना सम्बन्ध, उसका हृदय कचोटने लगा। उसने सोचा कि तथागत के पास जाकर क्षमा माँग लूँ। शाक्य-मुनि उन दिनों श्रावस्ती में थे। वह चला, रास्ते में पुष्करणी नदी आई। उसने सोचा कि स्नान कर, तैयार होकर शास्ता के पास चलूँ। वह तट पर पहुँचा। नदी में स्नान करने के लिए प्रवेश करने जा ही रहा था कि उसके प्राण निकल गए। मरने से पहले उसने दुःख प्रकट किया, "शाक्य मुनि की शरण के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है।"

बुद्ध को देवदत्त की मृत्यु का समाचार दिया गया। भिक्षुओं ने उसके विषय में जानना चाहा। बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने अनेक पाप किए थे। अतः उसका जीवन दुःखी रहा तथा उसका अंत भी दुःखद रहा। पाप करने के कारण वह सदा दुःखी रहेगा।

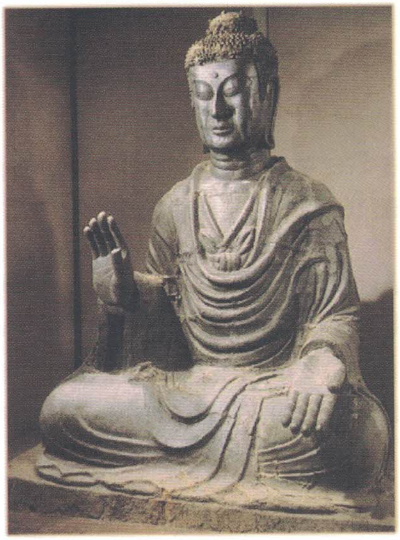

गाथाः इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतं ति नन्दति, भीय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो।।18।।

अर्थः पुण्य करने वाला इस लोक में आनन्दित होता है तथा प्राणान्त के बाद परलोक में भी आनन्दित होता है। इस प्रकार पुण्य करने वाला दोनों ही जगह आनन्दित होता है। "मैंने पुण्य किया है" यह सोचकर आनन्दित होता है और सद्गति प्राप्त कर और भी अधिक आनन्दित होता है।

उम्र से कोई बड़ा नही होता, ज्ञान से बड़ा होता है

सुमना की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अनाथपिंडिक शास्ता के समर्पित शिष्यों में एक था। उसे 'अनाथों के नाथ' के रूप में जाना जाता है। उसने जेतवन में शास्ता के लिए एक बहुत बड़ी धनराशि खर्च कर विहार बनवाया था।

उसकी एक पुत्री थी। उसका नाम सुमना था। वह पिता के धर्म के काम में हाथ बँटाया करती थी। अनाथपिंडिक अपनी बेटी से बहुत खुश था। पर समय पर किसका वश चलता है ? एक बार सुमना बीमार पड़ी और फिर बिस्तर से उठ नहीं सकी। दुनियाँ से ही चल बसी। चलने से पूर्व उसने अपने पिता को "भाई" कहकर संबोधित किया।

अनाथपिंडिक पुत्री के देहावसान पर बहुत दु:खी था और उससे भी अधिक दु:खी था यह सोचकर कि मरने से पहले उसकी बेटी ने उसे "भाई" कहकर पुकारा था। उसका मन विक्षिप्त था। उसे लग रहा था कि मरने से पहले उसकी बेटी ने अपना मानसिक संतुलन खो दिया था। कुछ समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा कैसे हो गया।

बोझिल मन से वह शाक्य-मुनि के पास पहुँचा तथा उन्हें प्रणाम कर बैठ गया। शास्ता ने उसके चेहरे का हाव-भाव देखकर उससे पूछा कि वह इतना परेशान क्यों दिख रहा है। तब अनाथपिंडिक ने अपनी परेशानी का कारण बताया। उसकी समस्या सुनकर बुद्ध ने उसे समझाया, "अनाथपिंडिक ! तुम्हें चिंता करने की बात नहीं है। तुम्हारी पुत्री ने अपना मानसिक संतुलन नहीं खोया था। तुम स्त्रोतापन्न हो और वह सकृदागामी थी। इस प्रकार आध्यात्मिक सीढ़ी पर वह तुमसे एक कदम आगे थी। इस नाते अगर उसने तुम्हें भाई कहकर संबोधित किया तो तुम्हें इसका बुरा नहीं मानना चाहिए।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।

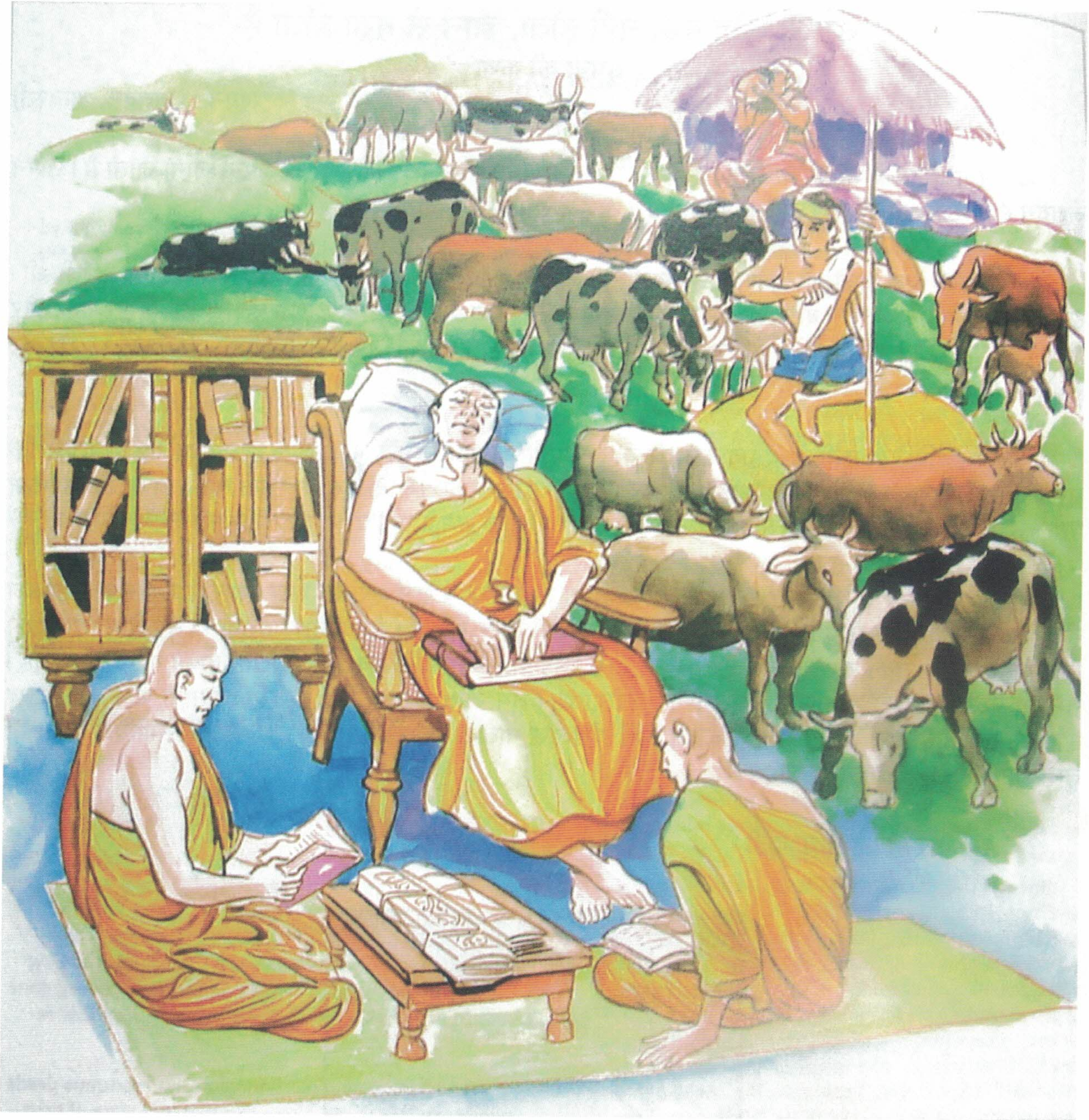

गाथाः बहुं पि चे सहितं भासमनो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो व गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति।।19।।

अर्थः ग्रंथों का कितना भी पाठ करे लेकिन प्रमाद के कारण उन धर्म-ग्रंथों के अनुसार आचरण न करे तो दूसरों की गायें गिनने वाले की तरह वह श्रमणत्व का अधिकारी नहीं होता है।

श्रामण्य का अधिकारी कौन?
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक बार दो उपासक मित्र शास्ता के संघ में शामिल हो गए। उनमें से एक धर्मोपदेश ध्यान से सुनता था और इसके परिणाम स्वरूप उसके अन्दर कामभोगों की चाह समाप्त हो गई। पाँच वर्षों तक साधना करने के बाद, शास्ता से प्रार्थनाभाव से बोला "भन्ते ! मैंने वृद्धावस्था में प्रव्रज्या ग्रहण की है। अब मेरी स्मृति भी दुर्बल है। अब मैं ग्रंथों को कंठस्थ नहीं कर पाऊँगा। हाँ, मैं विपश्यना की साधना पूरी तन्मयता तथा लगन से करूँगा।" ऐसा सुनकर शाक्य-मुनि ने विपश्यना की कर्म विधि समझा दी। वह भिक्षु हृदय से साधना में लग गया। कुछ समय बाद तपस्या ने रंग दिखाया। वह अर्हत्व प्राप्त कर गया।

दूसरे भिक्षु ने संकल्प किया, "मैं ग्रंथों के माध्यम से अपने कर्त्तव्यों का पालन करूँगा।" ऐसा सोचकर वह बुद्ध वचनों को कंठस्थ करने लगा तथा जहाँ-तहाँ जाकर उन पर धर्म प्रवचन करने लगा। उसका स्वर सुन्दर था। अतः बुद्ध देशना/ उपदेश प्रभावशाली था। इस प्रकार वह कई महासंघों का आचार्य बन गया।

गाथाः अप्पं पि चे सहितं भासमानो, धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
राग च दोसं च पहाय मोहं, सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, स भागवा सामञ्ञस्स होति।।20।।

अर्थः ग्रंथों का थोड़ा ही पाठ करे लेकिन राग, द्वेष तथा मोह रहित होकर धर्म के अनुसार आचरण करे तो ऐसा बुद्धिमान, अनासक्त तथा भोगों के पीछे न दौड़ने वाला व्यक्ति श्रमणत्व का अधिकारी होता है।

श्रामण्य का अधिकारी
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

बुद्ध संघ में दो प्रकार के भिक्षु थे। एक वे जो शाक्य-मुनि के उपदेशों को सुनकर उन पर धारा प्रवाह प्रवचन इस प्रकार करते थे कि नौसिखुआ भिक्षुओं के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता था। इस प्रकार वे अपनी विद्वता सिद्ध करते थे। पंडित भिक्षुओं को पंडिताई के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता था।

दूसरी श्रेणी के भिक्षु संसार का त्याग कर धर्म और निर्वाण को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा करते थे। वे धर्म के पथ पर स्वयं चलते थे और अपने अनुभव के आधार पर वे बहुत कुछ प्राप्त कर लिया करते थे । लेकिन जब कभी वाद-विवाद होता तो पंडित भिक्षुओं के वाग्जाल से वे बाहर नहीं निकल पाते थे। पंडित भिक्षुगण बाजी मार ले जाते थे।

शाक्य मुनि को इस बात की पूरी जानकारी थी। एक दिन उन्होंने धर्म-सभा में समझाया, "जो व्यक्ति ग्रंथों का पाठ याद कर लेता है पर उन पर आचरण नहीं करता वह वैसा ही है जैसा गाय चराने की नौकरी करने वाला व्यक्ति। उसका काम मात्र गाय चराना होता है तथा शाम में गायें गिनना। वह श्रमण का अधिकारी नहीं होता है। दूसरी ओर अगर कोई थोड़े ही ग्रंथों का पाठ करे पर उसके अनुकूल आचरण करे तो वह वैसा ही होता है जैसे वह स्वयं गायों का मालिक हो। उसे दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ, मलाई सभी की प्राप्ति होती है। "

Dhammapada
Yamaka Vagga

आप अमर क्यों नहीं होना चाहते ?

धम्मपद

अप्रमाद वर्ग

गाथा और कथा

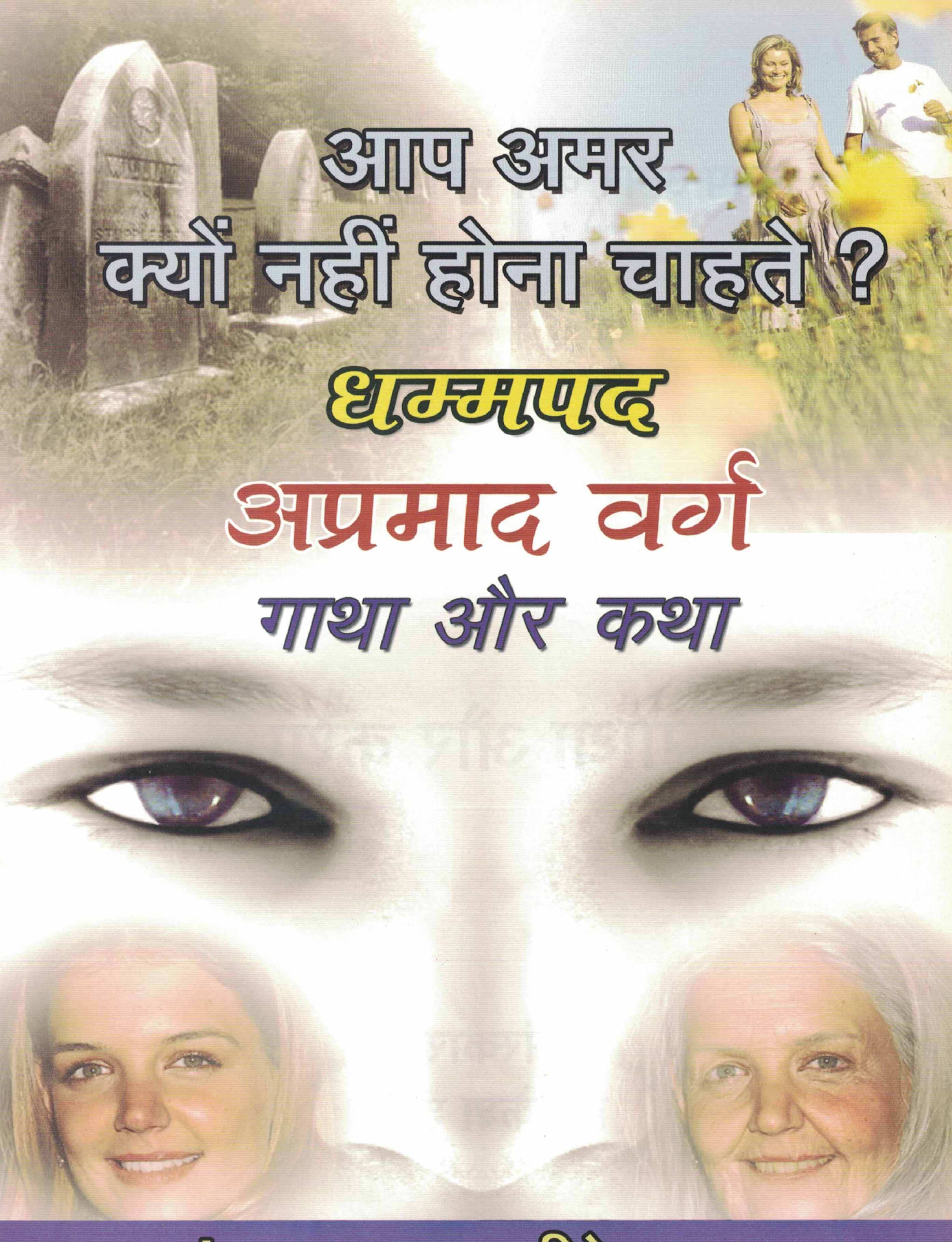

संस्कारक : हृषीकेश शरण

आप अमर क्यों नहीं होना चाहते ?

धम्मपद

अप्रमाद वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

अप्रमाद वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	सामावती और मागन्दिय की कथा	21	अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें	57
2.	सामावती और मागन्दिय की कथा	22	अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें	59
3.	सामावती और मागन्दिय की कथा	23	कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?	61
4.	कुम्भघोसक की कथा	24	अप्रमादी का यश बढ़ेगा ही	63
5	चूल्लपन्थक की कथा	25	अपना द्वीप बनें	65
6.	मूर्खों के मेले की कहानी	26	मूर्ख प्रमाद तथा बुद्धिमान अप्रमाद में रत रहते हैं	67
7.	मूर्खों के मेले की कहानी	27	अप्रमादी महान सुख पाता है	69
8.	स्थविर महाकाश्यप की कथा	28	प्रमाद को अप्रमाद से हटायें	71
9.	दो मित्र भिक्षुओं की कथा	29	अप्रमादी आगे बढ़ जायेगा	73
10.	महाली के प्रश्न की कथा	30	अप्रमादी प्रशंसनीय हैं	75
11.	किसी भिक्षु की कथा	31	प्रमाद से भय खायें : पतन नहीं होगा	77
12.	तिस्स स्थविर की कथा	32	अप्रमादी का पतन असंभव है	79

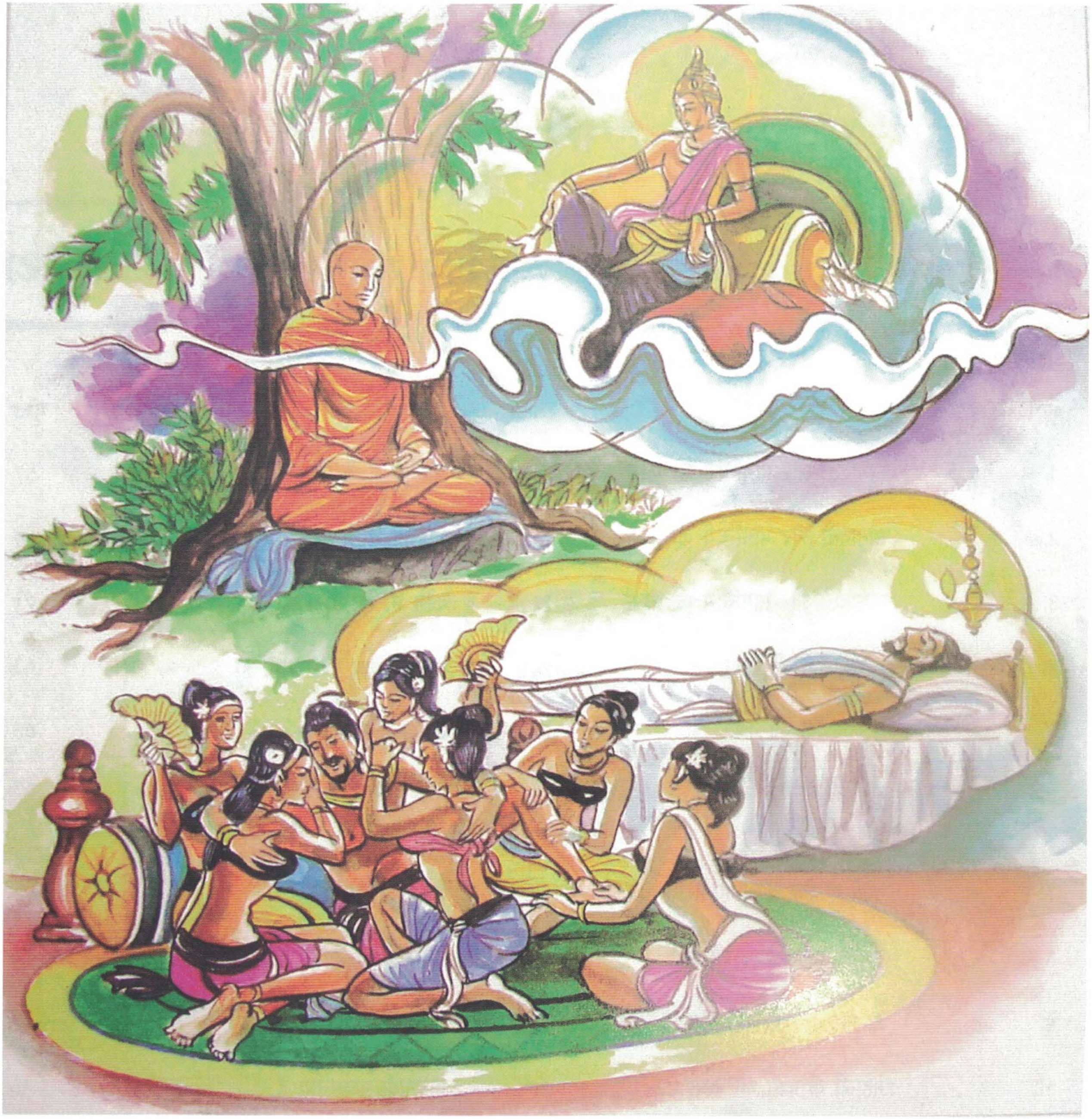

गाथा: अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथामता।।21।।

अर्थ: अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का पद है और प्रमाद मृत्यु का पद। अप्रमादी मरते नहीं और प्रमादी मनुष्य तो मरे -समान होते हैं।

अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें
सामावती और मागन्दिय की कथा

स्थान : घोषिताराम, कौसाम्बी

कौसाम्बी के पास भद्रवती नाम का एक गाँव था। भद्रवती में भद्रवतीय श्रेष्ठी नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। एक बार वह नगर गंभीर प्लेग की चपेट में आ गया। भद्रवतीय ने अपना नगर छोड़ा और अपनी पत्नी और पुत्री के साथ कौसाम्बी आ गया। उसकी बेटी का नाम श्यामा (सामा) था। वह बहुत ही बुद्धिमान थी।

कौसाम्बी में घोसित नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। वह गरीबों के लिए एक भंडारा चलाता था। कौसाम्बी पहुँचने के बाद भद्रवतीय की पुत्री वहाँ भोजन लेने गई। पहले दिन उसने तीन लोगों का भोजन लिया, दूसरे दिन दो लोगों का और तीसरे दिन सिर्फ एक आदमी का भोजन लिया। भंडारे के व्यवस्थापक ने यह देखकर उस लड़की के साथ व्यंग किया, "आज जाकर तुमको अपने पेट की भूख की सही-सही जानकारी हुई है।"

सामा उदास थी। उसने उत्तर दिया, "भाई ! ऐसी बात नहीं है। पहले दिन माता-पिता जीवित थे अतः तीन थाली भोजन लिया, कल सिर्फ माँ जीवित थी अतः सिर्फ दो थाली ली। आज मैं अकेली हूँ अतः मैंने सिर्फ एक भोजन लिया है।" व्यवस्थापक को सामा पर दया आ गई। अनाथ देखकर उसने सामा को अपने पास रख लिया।

सामा ने देखा कि भंडारे में भीड़ का नियंत्रण ठीक ढंग से नहीं हो पा रहा था। अतः उसने आने वालों की पंक्ति अलग बनवा दी और जाने वालों की पंक्ति अलग। इससे पूरी की पूरी अव्यवस्था समाप्त हो गई। उसी समय भंडारे का मालिक घोषित श्रेष्ठी आया। उसने व्यवस्था देखी तो सामा से बहुत प्रभावित हुआ। उसने सामा को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया। चूँकि सामा ने एक घेरा (वती) बनाया था अतः उसका नाम सामावती हो गया।

सामावती बहुत ही सुन्दर और गुणवान थी। एक दिन राजा उदयन सवारी पर निकले और रास्ते में उनकी नजर सामावती पर पड़ी। सामावती को देखते ही वे उस पर अनुरक्त हो गए। अपने अनुचरों को सामावती के पिता घोसित श्रेष्ठी के पास यह कहने के लिए भेजा कि सामावती को राजमहल में भेज दिया जाए। घोसित श्रेष्ठी ने इसे सुना और उसे लगा कि उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आने वाली है। अतः उसने सामावती को नहीं भेजा। राजा आग बबूला हो गया। उसने अपने सिपाहियों को श्रेष्ठी का सर्वस्व नाश करने के लिए भेज दिया। उन्होंने घर के बाहर ताला लगा दिया। तब सामावती ने अपने पिता से कहा कि वह राजमहल जायेगी। घोषित ने मना किया पर सामावती ने अपने पिता को आश्वासन दिया कि वह उसकी प्रतिष्ठा पर जरा भी आँच नहीं आने देगी। अतः वह उसे राजमहल जाने दे। घोषित मान गया। वह राजमहल में पटरानी बनकर पहुँच गई।

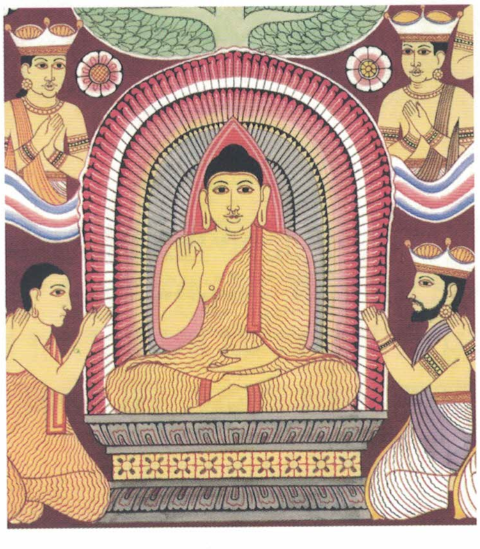

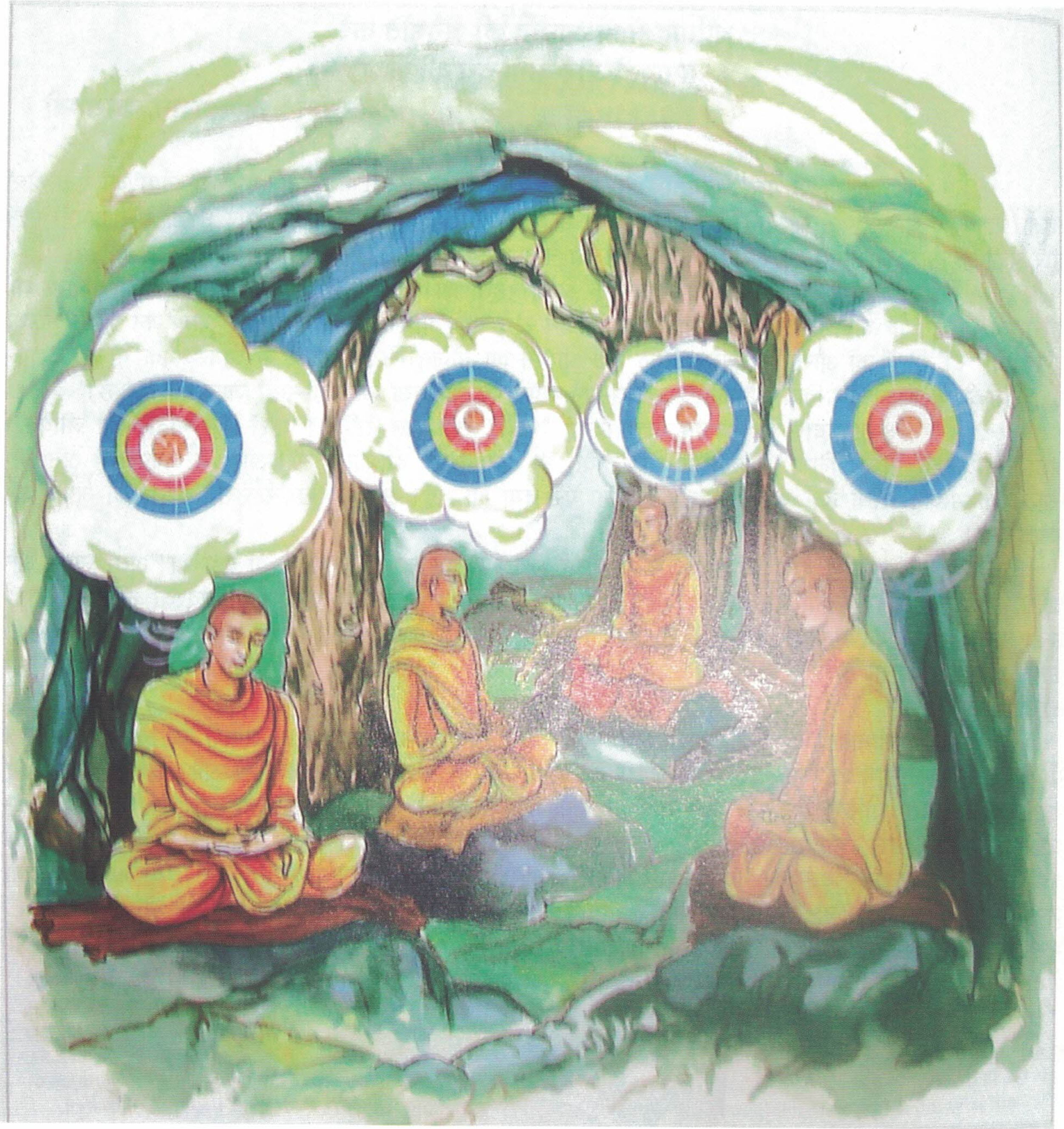

गाथा: एवं विसेसतो ञत्वा, अप्पमादम्हि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति, अरियानं गोचरे रता।।22।।

अर्थ: ज्ञानी पुरुष अप्रमाद की इस विशेषता को जान, आर्यों के आचरण में रत रहकर, ऐसे पंडित जन अप्रमाद में आनन्दित रहते हैं।

अप्रमाद में ही आनन्द की अनुभूति करें
सामावती और मागन्दिय की कथा

समय बीतता है। राजा एक अन्य स्त्री 'मागन्दिय' पर मोहित हो जाता है। वह एक ब्राह्मण की पुत्री है तथा बुद्ध से घृणा करती है। उसके पिता ने कुछ समय पहले शाक्य-मुनि के सम्मुख प्रस्ताव रखा था कि वे मागन्दिय के साथ विवाह कर लें। तब तथागत ने उसे समझाया था, "मार की तीनों पुत्रियाँ तन्हा, सूरति तथा राग मिलकर भी मुझे आकर्षित नहीं कर सकीं। उनके सामने तुम्हारी बेटी एक पात्र की तरह है जिसमें मल-मूत्र रख दिया गया है और उसे बाहर से रंग दिया है। अब मेरे मन में किसी प्रकार की काम इच्छा नहीं रह गई है।"

ऐसा सुनकर ब्राह्मण और उसकी पत्नी के अन्दर का प्रकाश जाग उठता है। दोनों प्रव्रज्या ग्रहण कर बुद्ध के शिष्य बन जाते हैं। अपनी पुत्री को उसके चाचा चूल्ल मागन्दिय को सौंपकर दोनों बुद्ध संघ में शामिल हो जाते हैं। बाद में चाचा मागन्दिय उसे राजा उदयन को सौंप देता है।

बुद्ध कौसाम्बी आते हैं। बहुत सारे लोग उनका प्रवचन सुनने आते हैं। उनमें सामावती की दासी खज्जुत्तरा भी होती है। वह स्रोतापन्न है। वह प्रतिदिन तथागत का प्रवचन सुनती है और फिर राजमहल में जाकर रानी को भी प्रवचन सुनाती है। अब वह धर्म प्रचारक की भूमिका निभाने लगी है। खज्जुत्तरा से धर्म प्रवचन सुनकर सामावती और उसकी दासियों की प्रबल इच्छा है कि वे बुद्ध को एक दिन राजमहल में आमंत्रित करें। बुद्ध वहाँ पधारें और उन्हें धर्म प्रवचन दें। सामावती राजा से इस हेतु आग्रह के लिए उचित अवसर की तलाश में है। इस बीच उसने महल में ही एक झरोखा बनवा लिया और उस झरोखे से वह और उसकी दासियाँ बुद्ध के दर्शन करने लगीं।

मागन्दिय ने राजा से इसकी शिकायत की। राजा बात की गहराई में गया और पाया कि मागन्दिय की शिकायत का कोई आधार नहीं था। अतः वह सामा से प्रसन्न हुआ और बुद्ध से आग्रह कर प्रतिदिन भन्ते आनन्द के आकर प्रवचन देने की व्यवस्था करा दी। वे रानी और उसकी दासियों को प्रतिदिन धर्म-प्रवचन देने लगे।

मागन्दिय अपने षड्यंत्र में विफल रही। अतः उसने एक और योजना बनाई। राजा को जब सामावती के महल में विश्राम के लिए जाना था तो वह भी साथ गई। राजा की बाँसुरी में एक साँप छिपा दिया और उसे फूल से बंद कर दिया। राजा जब गहरी नींद में था तो उसने फूल हटा दिया और चिल्ला उठी, "साँप ! साँप !" राजा चौंक कर उठ गया। उसे सामने साँप दिखा। अब उसे मागन्दिय के कथन पर विश्वास हो गया कि सामावती ने उसे मारने की योजना बनाई थी। उसने सामा और उसकी दासियों को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया और मारने के उद्देश्य से उन पर तीर चला दिया। यद्यपि राजा एक बहुत ही धुरंधर तीरंदाज था, पर इस बार उसके तीर का उन स्त्रियों पर कोई असर नहीं हुआ। उसका वार विफल हो गया।

गाथा: ते झायिनो साततिका, निच्चं दळहपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं, योगक्खेमं अनुत्तरं।।23।।

अर्थ: ऐसे सतत ध्यान करने वाले, सजग, सदैव दृढ़ पराक्रम में लगे धीर पुरुष उतकृष्ट योग-क्षेम वाले निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?
सामावती और मागन्दिय की कथा

मागन्दिय ने एक बार फिर षड्यंत्र रचा। उसने अपने चाचा चूल्ल मागन्दिय के साथ मिलकर उस महल में आग लगवा दी जिसमें सामा रहती थी। सामा और उसकी सभी दासियाँ आग में झुलसकर मर गईं। राजा को सामा के मरने का बहुत दु:ख हुआ। उसे लग गया था कि मागन्दिय ने ही उसे मरवाया था। लेकिन इसकी सत्यता जानने के लिए उसने मागन्दिय से कहा, "जब तक सामा जीवित थी मुझे भय बना रहता था कि कभी न कभी मुझे मरवा देगी। अच्छा ही हुआ कि वह मर गई। निश्चय ही कोई है जो मुझसे बहुत प्रेम करता है उसी ने यह करवाया होगा।" मागन्दिय राजा की बातों से बहुत खुश हुई। उसने राजा को बता दिया कि उसने ही सारी योजना कार्यान्वित की थी। राजा ने ऐसा दिखाया मानों वह बहुत खुश हुआ हो। उसने मागन्दिय के सारे रिश्तेदारों को आमंत्रित किया कि वह उनको पुरस्कार देना चाहता है। वे सभी आए। उनमें उसका चाचा भी था। उनके आने पर राजा ने सैनिकों को आदेश दिया, "सभी को गिरफ्तार कर लो और कमर तक जमीन में गाड़ दो।" सैनिकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया। रानी चीखती-चिल्लाती रही। उसे तथा उसकी सारी दासियों को जलाकर मार दिया गया।

भिक्षुओं ने रानी के अंत:पुर को जलते हुए देखा और बुद्ध को इस बारे में बताया। उन्होंने शास्ता से पूछा कि सामावती की क्या गति हुई। तब शाक्य मुनि ने उन्हें बताया, "जल जाने वाली उपासिकाओं में कुछ स्रोतापन्न थीं, कुछ सकृदागामी थीं तथा कुछ अनागामी थीं। उनकी मृत्यु बेकार नहीं गई है।" शास्ता ने शिष्यों को समझाया कि प्रमाद करना मरण का लक्षण है और अप्रमाद जीवन का।

फिर ये गाथाऐं कहीं।

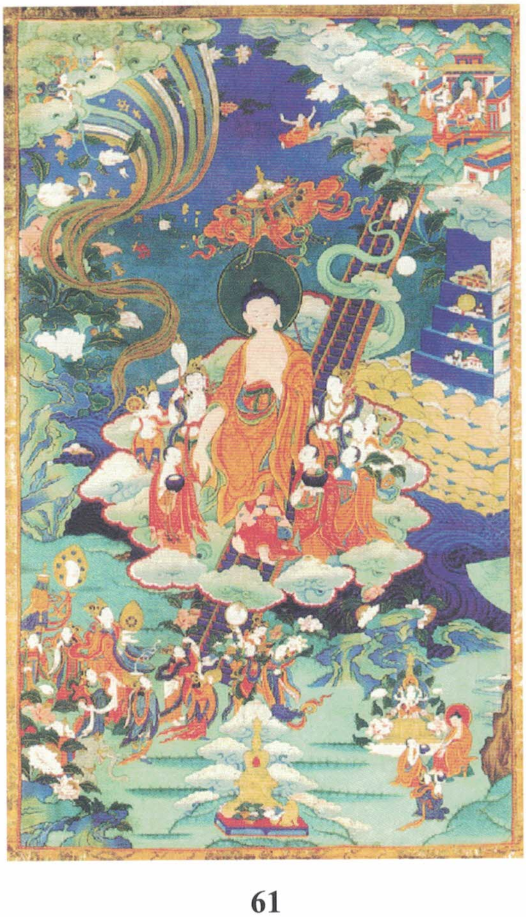

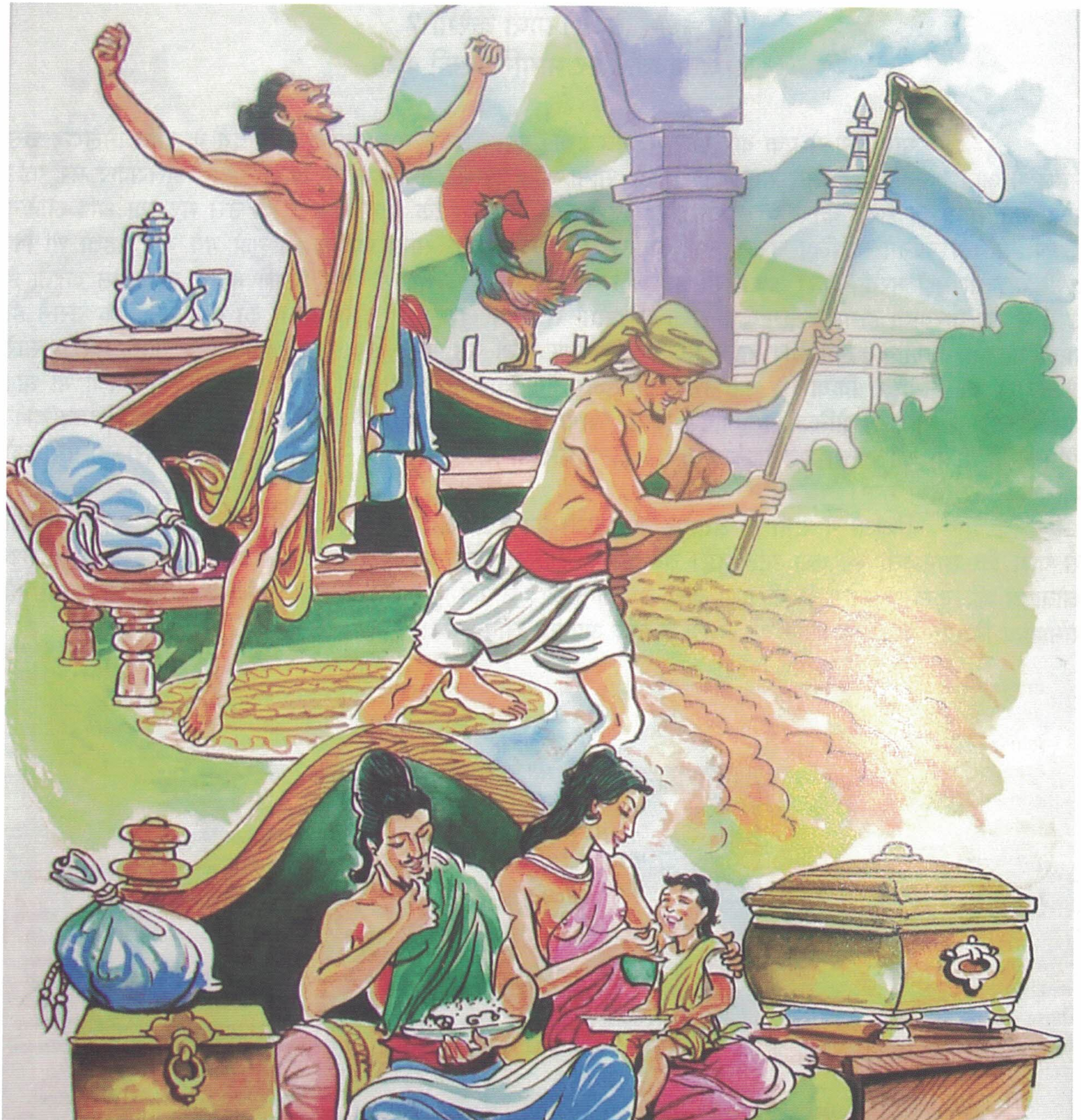

गाथा: उट्ठानवतो सतिमतो, सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
संयतस्स धम्मजीविनो, अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति।।24।।

अर्थ: उद्योगशील, जागरुक, पवित्र कर्म करने वाले, सोच-विचार कर काम करने वाले संयमी, धर्म के अनुसार जीविका चलाने वाले अप्रमादी व्यक्ति का यश खूंब बढ़ता है।

अप्रमादी का यश बढ़ेगा ही
कुम्भघोसक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में एक नगर-सेठ रहता था। एक बार वहाँ भीषण प्लेग फैल गया। सेठ-सेठानी भी उसकी चपेट में आ गए। मृत्यु आया देख उन्होंने अपने बेटे कुम्भघोसक को समझाया कि वह उनकी चिंता छोड़ दे तथा राजगृह छोड़कर चला जाए। "हमने जमीन में चालीस करोड़ कार्षापण फलाँ जगह में गाड़ रखा है। तुम अभी तुरंत वापस मत आना। जब काफी समय बीत जाए तथा सभी कुछ ठीक-ठाक हो जाए तभी आना।" कुम्भघोसक ने माता-पिता की बात मान ली और नगर से बाहर चला गया। उसके माता-पिता दुनियाँ से चल बसे।

बारह साल बीत गए। कुम्भघोसक ने राजगृह वापस आने की सोची। उसने विचार किया कि अभी तुरंत पहुँचकर अगर गड़े धन को निकाल उसका उपयोग करने लगूँगा तो राजा को संदेह हो जाएगा और संभव है वह धन जब्त कर ले या मेरी हत्या करा दे। यह सोचकर उसने गाँव में चौकीदार की नौकरी कर ली।

चौकीदार के रूप में वह आवाज लगाता था, "उठो ! खेती का समय हो गया है, दूकान खोलने का समय हो गया है" आदि, आदि। राजा ने जब उसकी आवाज सुनी तो अपने सिपाहियों से कहा कि वे जाकर उस उद्घोषक के विषय में पता लगाएँ, क्योंकि यह आवाज किसी करोड़पति की ही हो सकती है, किसी साधारण व्यक्ति की नहीं। सिपाही कुछ भी पता नहीं लगा पाये, पर राजा अड़ा रहा कि यह वाणी किसी बहुत ही धनी व्यक्ति की ही हो सकती है। अतः राजा की दासी ने सत्य का पता लगाने की जिम्मेदारी ली। वह कुम्भघोसक के यहाँ गई और एक रात रुकने के लिए आग्रह किया और कहा कि अगले दिन ही वह चली जायेगी। पर किसी न किसी बहाने वहाँ रुकी रही और अपना प्रस्थान टालती गई। इस बीच राजा ने घोषणा की कि वह एक उत्सव का आयोजन कर रहा है और उसमें सारी जनता को सहयोग करना है। कुम्भघोसक के पास पैसे नहीं थे। अतः उसने खजाने में से कुछ कार्षापण निकाले और अपना सहयोग दे दिया। दासी ने सब कुछ देखा। बात राजा तक पहुँची। राजा ने उसे गिरफ्तार कर बुलवा लिया तथा सच्चाई पूछी। कुम्भघोसक ने पूरी-पूरी सच्चाई बता दी। राजा बहुत खुश हुआ तथा अपनी बेटी का ब्याह कुम्भघोसक के साथ कर दिया।

कुछ दिनों बाद शास्ता राजगृह पधारे। राजा बिंबिसार कुम्भघोसक को लेकर उनके पास पहुँचा। उसने कुम्भघोसक के विषय में बताया तो शास्ता ने कहा, "अपनी उन्नति चाहने वाले ध्यानशील व्यक्ति का, जो पवित्र कर्म करता है तथा बड़े बुजुर्गों की बात मानकर काम करता है, ऐसे जितेन्द्रिय धार्मिक और उत्साही व्यक्ति का यश बढ़ता है। ऐसा उद्योगी, सचेत, शुचि कर्म तथा सोच समझकर काम करने वाला व्यक्ति संयमी होकर धर्म के अनुसार जीविका चलाता है।"

गाथा: उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओधो नाभिकीरति।।25।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति उद्योग, अप्रमाद, संयम और इन्द्रियों के दमन द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बना ले जिसे बाढ़ डुबा न सके।

अपना द्वीप बनें
चूल्लपन्थक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

मगध में एक धनी श्रेष्ठी था। उसके दो प्रपौत्र थे महापन्थक और चूल्लपन्थक। श्रेष्ठी जब कभी बाहर जाता तो महापन्थक को साथ ले जाता। इस प्रकार महापन्थक को बुद्ध से धर्म-श्रवण का भी अवसर मिलता। बड़ा होने पर उसने प्रव्रज्या ले ली। उसके साथ उसका छोटा भाई चूल्लपन्थक भी प्रव्रजित हो गया। महापन्थक परिश्रमी, मेधावी और बुद्धिमान था। दूसरी ओर उसका छोटा भाई आलसी, मन्दबुद्धि एवं कम स्मरण शक्ति वाला था। बौद्ध साहित्य में उल्लेख आता है कि एक बार कस्सप बुद्ध के काल में चूल्लपन्थक ने भिक्षुओं का मजाक उड़ाया था। इसीलिए वह मन्द बुद्धि वाला पैदा हुआ।

दोनों भिक्षु राजगृह के वेणुवन विहार में रहते थे। चूल्लपन्थक चार महीने में भी एक गाथा याद नहीं कर पाता था। अतः उसका बड़ा भाई बड़ा अप्रसन्न रहता था और बार-बार उसे गृहस्थ जीवन में वापस चले जाने के लिए कहता।

एक दिन की बात है। जीवक बुद्ध एवं भिक्षु संघ को अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित करता है। महापन्थक भिक्षुओं की सूचि बनाता है तो उसमें चूल्लपन्थक का नाम नहीं डालता है। इससे चूल्लपन्थक निराश हो जाता है। उसी समय तथागत का वहाँ आगमन होता है। चूल्लपन्थक अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन्हें प्रणाम करता है। शास्ता उसकी मनःस्थिति समझ जाते हैं। वे उसे एक श्वेत वस्त्र देते हैं तथा उस पर मनन करने के लिए कहते हैं।

तथागत भिक्षुओं के साथ प्रस्थान कर जाते हैं। चूल्लपन्थक विहार में ही रुककर शास्ता के निर्देशानुसार उस श्वेत वस्त्र पर मनन करता है। उसे रगड़ता है तो देखता है कि वह वस्त्र कड़ा और मैला हो गया। उसे भान होता है कि सभी चीजें क्षणभंगुर हैं। उसे यह भी अनुभूति होती है कि मन के तीन प्रकार के मैल होते हैं - राग, द्वेष, और मोह। उसने आर्य सत्य पर भी चिंतन किया और इस प्रकार वह अर्हत हो गया।

जीवक के घर भोजन दान के बाद धर्म का अनुमोदन होना है। शाक्य मुनि ने कहा, "विहार में एक भिक्षु चूल्लपन्थक छूट गया है। उसे जाकर बुला लाओ।" संदेशवाहक जाता है पर लौटकर सूचित करता है कि वहाँ तो एक जैसे हजार भिक्षु हैं। बुद्ध उसे निर्देश देते हैं कि वह जाकर नाम पूछे और जो 'चूल्लपन्थक' नाम पर उत्तर दे, उसे लेकर आये। इस बार एक हजार आवाजें आती हैं और वह वापस आ जाता है। तब शास्ता उसे समझाते हैं कि जो सबसे पहले उत्तर दे उसे ही लेकर आओ। संदेशवाहक उस भिक्षु को पकड़ लेता है जो सबसे पहले उत्तर देता है। बाकी सभी भिक्षु गायब हो जाते हैं। चूल्लपंथक ने अपने ऋद्धिबल से उनका सृजन किया था।

चूल्लपन्थक जीवक के घर जाता है। भोजन के बाद बुद्ध उसे पुण्यानुमोदन के लिए कहते हैं। चूल्लपन्थक बहुत ही सुन्दर ढंग से धर्म-अनुमोदन करता है।

भिक्षुओं में घोर आश्चर्य है। वे सभी स्तब्ध हैं। जो चूल्लपन्थक एक गाथा याद नहीं कर पा रहा था, वह अर्हत कैसे हो गया? शास्ता ने भिक्षुओं की जिज्ञासा शांत करते हुए समझाया, "इंसान को चाहिए कि वह उत्साहित होकर अप्रमाद, संयम और दम से अपने आप को ऊपर उठा ले जिसको किसी प्रकार की बाढ़ प्रभावित न कर सके। इस प्रकार मेधावी पुरुष को उद्योग, अप्रमाद, संयम एवं दम द्वारा एक ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ डुबो नहीं सके।

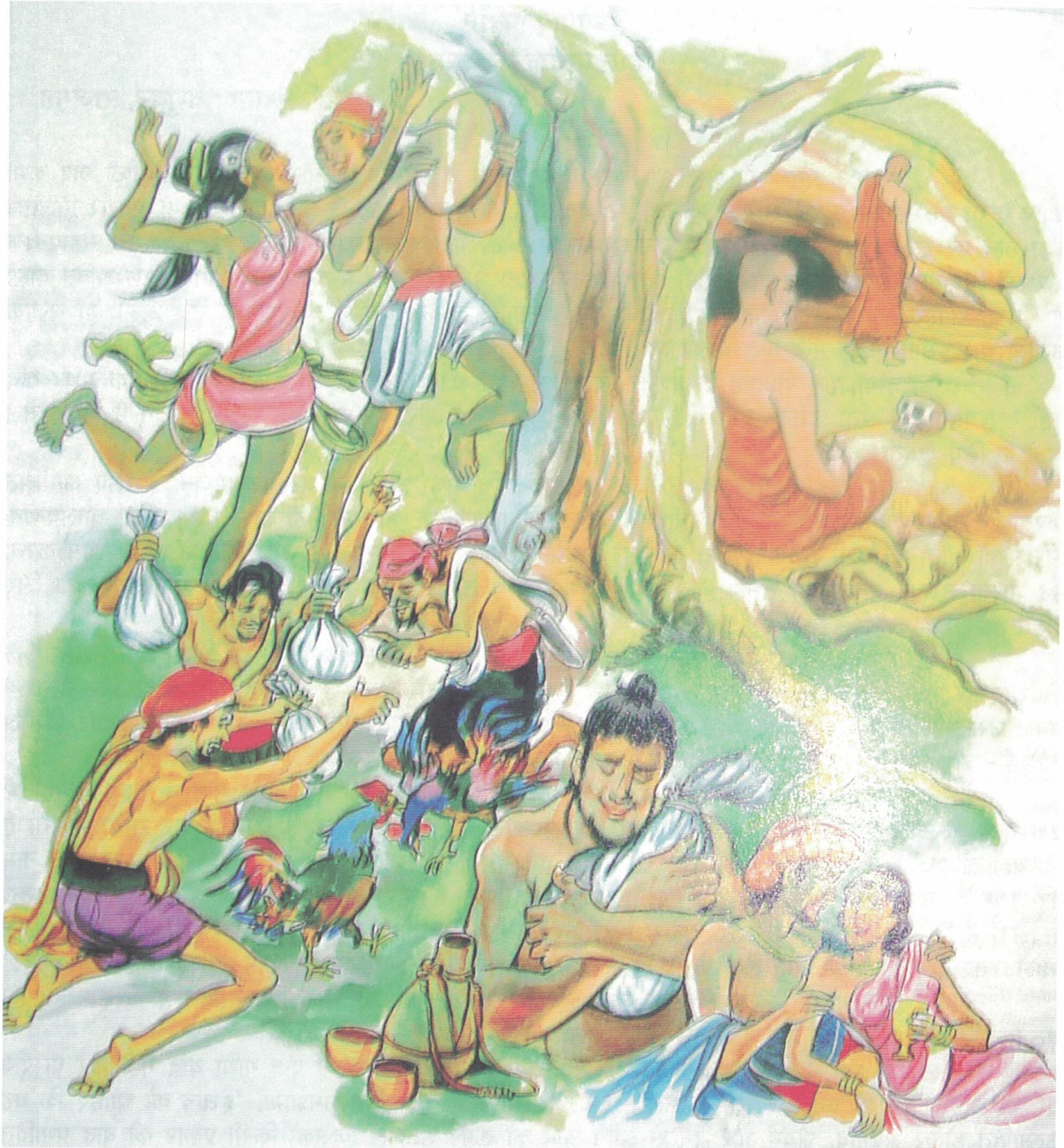

गाथा: पमादमनुयुज्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादं च मेधावी, धनं सेट्ठं व रक्खति।।26।।

अर्थ: मूर्ख एवं दुर्बुद्धि लोग प्रमाद में लगे रहेते हैं। उसके विपरीत बुद्धिमान व्यक्ति श्रेष्ठ धन की तरह अप्रमाद की रक्षा करता है।

मूर्ख प्रमाद तथा बुद्धिमान अप्रमाद में रत रहते हैं
मूर्खों के मेले की कहानी

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना तथागत ने जेतवन विहार में प्रवास के समय किसी मेले के संदर्भ में कही थी।

एक समय श्रावस्ती में मूर्खों का एक उत्सव आयोजित हुआ। इस उत्सव में मूर्ख और अविवेकी शरीक हुए थे। मेले में एक सप्ताह तक लोग एक दूसरे पर धूल, कीचड़ और गोबर फेंकते रहे। दूसरों के शरीर पर राख मलते रहे, गाली-गलौज करते रहे तथा अपशब्द बोलते रहे। उन्होंने सभी मान-मर्यादाओं का त्याग कर दिया। वे न तो किसी बड़े-बूढ़े के उम्र का ख्याल कर रहे थे और न अपने से किसी बड़े रिश्तेदार का सम्मान। उन्होंने किसी व्यक्ति को नहीं छोड़ा यहाँ तक कि संन्यासियों को भी । वे किसी के भी घर के सामने खड़े होकर गंदी-गंदी बातें बोलने लगते थे और इससे सज्जन लोग बहुत ही लज्जित महसूस करते थे। इन मूर्खों से छुटकारा पाने के लिए गृहस्थ सज्जन इन प्रमादियों को यथाशक्ति आधा, चौथा या एक कार्षापण दे देते थे और आगे बढ़ने का आग्रह करते थे। मूर्खों का समूह भी इन सज्जन गृहस्थों के घर से पैसे पाकर आगे बढ़ जाता था। उन दिनों शास्ता के बहुत सारे उपासक श्रावस्ती में रहते थे। उन्होंने बुद्ध को संदेश भेजा, "भन्ते ! आप कृपा करके एक सप्ताह की अवधि में विहार से न निकलें और विहार में ही विराजमान रहें।" उत्सव सात दिनों तक चला। खूब धूम-धड़ाका रहा। खूब राख फेंकी गई, खूब गोबर लगाया गया। उपासकों ने सातों दिन अपने घर में भोजन पका कर भिक्षु संघ के लिए विहार में भिजवाया। सातों दिन वे अपने-अपने घरों में बंद रहे।

गाथा: मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति विपुलं सुखं।।27।।

अर्थ: न तो प्रमाद करो और न काम भोगों में लिप्त होवो। प्रमाद-रहित हो ध्यान करने से अपूर्व सुख (निर्वाण) की प्राप्ति होती है।

अप्रमादी महान सुख पाता है
मूर्खों के मेले की कहानी

आठवें दिन उत्सव समाप्त हुआ। उपासकों ने शास्ता को भिक्षुसंघ के साथ भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजनदान के बाद उपासकों ने नम्रतापूर्वक शास्ता से कहा, "भन्ते ! पिछला सप्ताह बहुत ही कष्टमय बीता। मूर्खों के गाली-गलौज के शब्द सुनकर कान फट जाते थे।किसी को न तो कोई लज्जा थी और न था कोई संकोच। इसी कारण हमने आपसे और भिक्षुसंघ से आग्रह किया था कि विहार से बाहर न निकलें। हम लोग भी इन सात दिनों तक मजबूर होकर अपने घरों में कैदियों की तरह रहे। कभी भी, कहीं भी बाहर नहीं निकल पाये।"

शाक्य-मुनि ने उनकी चर्चा सुनकर कहा, "मूर्खों और प्रमादियों का काम ही ऐसा होता है। इसके विपरीत ज्ञानी पुरुष अप्रमाद की रक्षा गाढ़ी सम्पत्ति के समान करते हैं और ऐसा करके वे अमृतमय महानिर्वाण सम्पत्ति प्राप्त कर लेते हैं।"

ऐसा कहकर उन्होंने ये दोनों गाथायें कहीं।

गाथा: पमादमप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनं पजं।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति।।28।।

अर्थ: जब कोई बुद्धिमान जन अप्रमाद को प्रमाद से धकेल देता है, अर्थात् जीत लेता है, तो प्रज्ञा-रूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोकरहित वह धीर व्यक्ति शोक ग्रस्त मूर्ख जनों को करुण भाव से उसी तरह देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ आदमी धरती पर खड़े लोगों को देखता है।

प्रमाद को अप्रमाद से हटायें
स्थविर महाकाश्यप की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना शाक्य मुनि ने स्थविर महाकाश्यप के संदर्भ में कही थी।

महाकाश्यप तथागत के परम शिष्यों में से एक थे। एक समय वे राजगृह के पास पिप्पली गुहा में रह रहे थे। वहीं साधना किया करते थे। एक दिन उनके मन में आया कि क्यों न अपनी अलौकिक दृष्टि से अपने और दूसरे लोगों के पूर्व जन्मों को देखा जाए। इसलिए एक दिन उन्होंने भिक्षा चारिका समाप्त होने पर भोजन किया और भोजन कर्म से निवृत्त होने के बाद अपना ध्यान प्रकाश बढ़ाया। ध्यान प्रकाश बढ़ाकर अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा वे जल-थल तथा पर्वत आदि पर रहने वाले प्राणियों के जन्म-मरण का लेखा-जोखा प्राप्त करने की भावना से ध्यान में बैठ गए।

उस समय शाक्य मुनि जेतवन, श्रावस्ती में विराजमान थे। उन्होंने सोचा कि जरा देखूँ कि मेरा शिष्य महाकाश्यप इस समय क्या कर रहा है। तब उन्होंने अपने दिव्य-नेत्रों से देखा कि वह तो पिप्पली गुफा में बैठा प्राणियों के जन्म-मरण जानने की चेष्टा कर रहा है और इस प्रकार अपना समय गँवा रहा है। अतः बुद्ध अपने ऋद्धिप्रभाव से उसके ध्यान में प्रकट हुए मानों वे उसके सामने बैठे हुए हों और उसे संबोधित किया, "आयुष्मान् काश्यप ! प्राणियों के जन्म और मरण की श्रृंखला अनन्त है और अपनी बुद्धि से तुम उन्हें गिन नहीं पाओगे। अतः तुम्हारे लिए उचित नहीं है कि तुम उन्हें गिनने में लगे रहो। गणना करना तुम्हारा काम नहीं है। यह तुम्हारे ज्ञान से परे है। तुम्हारा ज्ञान तो बहुत ही सीमित है। प्राणियों के जगत में आने-जाने का हिसाब- किताब रखना मात्र बुद्धों का काम है, तुम्हारा नहीं।"

इसके बाद तथागत ने यह गाथा कही ।

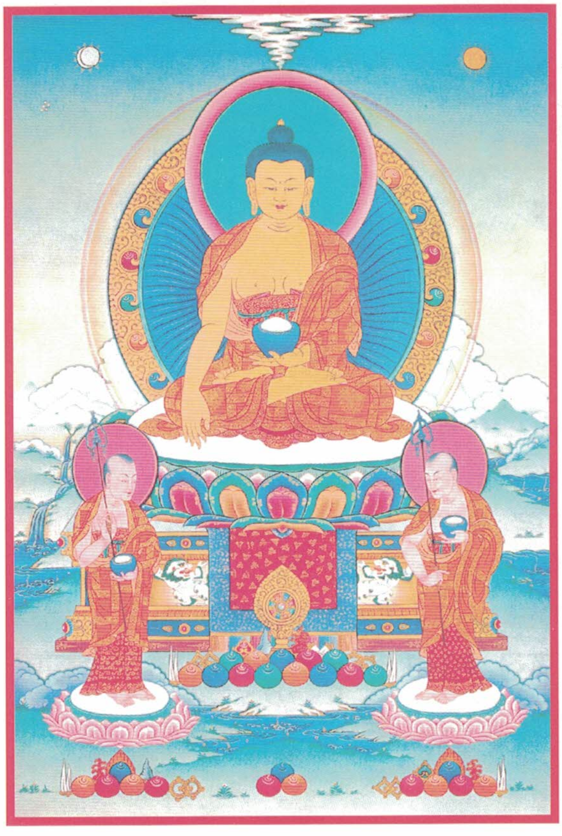

गाथा: अप्पमत्तो पमत्तेसु, सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं व सीधस्सो, हित्वा याति सुमेधसो।।29।।

अर्थ: प्रमाद करने वालें में अप्रमादी, अज्ञान की नींद में सोते रहने वाले लोगों को प्रज्ञावान, अतिसचेत, जागरुक बुद्धिमान व्यक्ति पीछे छोड़कर वैसे ही निकल जाता है जैसे शक्तिशाली तेज दौड़ने वाला घोड़ा दुर्बल घोड़े को पीछे छोड़कर निकल जाता है।

अप्रमादी आगे बढ़ जायेगा
दो मित्र भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना तथागत ने दो भिक्षु मित्रों के संदर्भ में कही थी।

एक बार दो भिक्षुओं ने प्रव्रज्या ली और जंगल में जाकर साथ रहने लगे। उनमें से एक आलसी था और दूसरा उद्यमी । दोनों अपने-अपने ढंग से ध्यान-साधना करने लगे।

आलसी साधक लकड़ियाँ इकट्ठी कर उन्हें जला लेता और युवक श्रामणेरों से गप्पें लड़ाते हुए अपना पहला प्रहर बिता देता था। सावधान भिक्षु अपनी साधना में लगा रहता और आलसी भिक्षु को सलाह देता कि वह ऐसा न करे क्योंकि असावधान व्यक्ति का धर्मपालन करना असंभव है। पर वह सावधान भिक्षु की बातों पर ध्यान नहीं देता था। अंत में उसने सोचा कि इसे नहीं समझाया जा सकता। अतः वह स्वयं अपनी साधना में लग गया।

आलसी साधक दुष्ट प्रकृति का भी था। जब सावधान साधक साधना की समाप्ति पर थोड़ा सोने के लिए उद्यत होता तो आलसी साधक उसके पास आकर कहता, "अरे ओ आलसी साधक ! साधना करने हेतु वन में आए हो या सोकर व्यर्थ समय गँवाने ? बुद्ध के कर्म स्थान पर आने के बाद सावधान होकर साधना करनी चाहिए।" सावधान साधक को तो वह इस प्रकार कहता था पर स्वयं दूसरी ओर जाकर सो जाता था। सावधान साधक थोड़ी देर विश्राम कर पुनः उठ जाता तथा तत्पर हो एक बार पुनः ध्यान-साधना में लग जाता था। इस प्रकार निरंतर अभ्यास करता हुआ सावधान साधक कुछ ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर गया। दूसरा साधक पूर्ववत प्रमाद में ही समय बिताता रहा।

वर्षावास समाप्त हुआ। दोनों साधक शास्ता के पास पहुँचे। उन्होंने उनका कुशल क्षेम पूछा और फिर पूछा कि उनकी साधना कैसी रही? आलसी भिक्षु ने तुरंत प्रत्युत्तर दिया, "इस प्रमादी भिक्षु की बात न करें। इसने तो अपना पूरा समय सुख से लेटकर सोते हुए बिता दिया।" "तुमने क्या किया ?", शास्ता ने पूछा। "मैं रात्रि के प्रथम प्रहर से ही आग जलाकर उसके पास बैठकर साधना करता रहा। मैंने पहले दिन से ही साधना प्रारंभ कर दी थी।" शास्ता समझ गए कि वह झूठ बोल रहा है। अतः उन्होंने कहा, "अरे ! तुमने तो जरा सी भी सावधानी नहीं बरती और असावधान होकर साधना की और उल्टे सावधान उपासक की निंदा कर रहे हो कि उसने अपना समय व्यर्थ, असावधानीपूर्वक बिता दिया। तुम प्रमाद की तुलना अप्रमाद से कर रहे हो।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

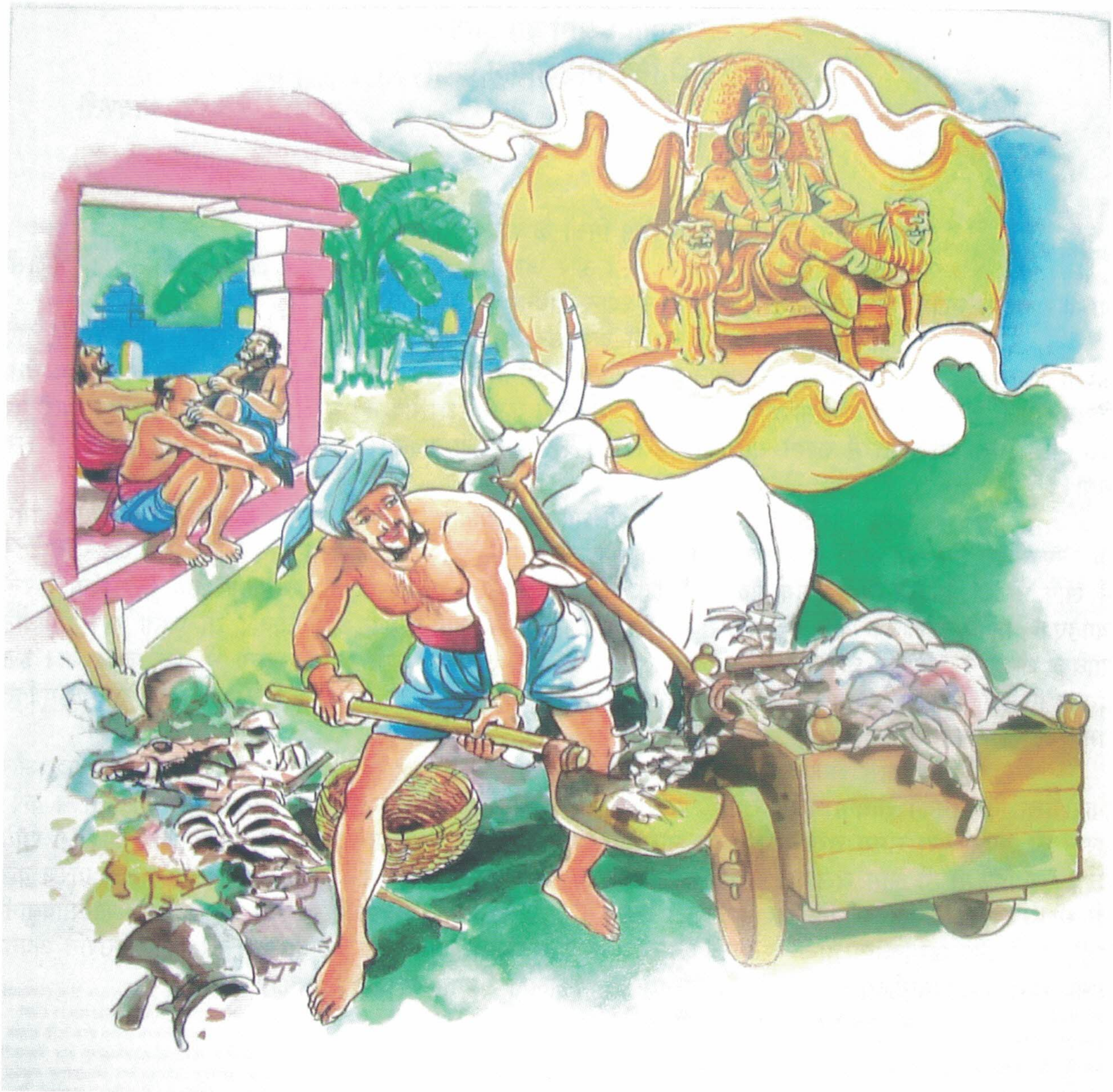

गाथा: अप्पमादेन मधवा, देवानां सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति, पमादो गरहितो सदा।। 30।।

अर्थ: अप्रमाद के कारण ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। पंडित जन सदैव अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदैव निंदा होती है।

अप्रमादी प्रशंसनीय है
महाली के प्रश्न की कथा

स्थान : कूटागार, वैशाली

एक बार लिच्छवी कुमार महाली शास्ता का प्रवचन सुनने गया। वे उस समय वैशाली के कूटागार विहार में उपदेश दे रहे थे। वे शक्र अर्थात् इन्द्र पर प्रवचन दे रहे थे। उन्होंने इन्द्र के गुणों का बहुत ही भव्य ढंग से वर्णन किया। महाली यह सब सुन रहा था। उसने विस्तृत वृत्तांत सुनकर सोचा कि निश्चय ही शास्ता इन्द्र को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और उससे उनकी भेंट हो चुकी है। अन्यथा वे इतने अच्छे ढंग से इन्द्र के विषय में जानकारी नहीं दे पाते। लेकिन वह इस बारे में सुनिश्चित नहीं था। अतः अपनी शंका समाधान के लिए उसने शास्ता से प्रश्न कर दिया।

तब महाली के प्रश्न के उत्तर में शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "मैं इन्द्र को खूब अच्छी तरह जानता हूँ। मैं यह भी खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि वह शक्र या इन्द्र कैसे बना और फिर देवताओं का राजा भी किस प्रकार बना।" उन्होंने इन्द्र के पूर्व जन्म की कहानी बताई कि इन्द्र अपने पूर्व जन्म में मचाला गाँव में मेघा नाम से जन्मा था। युवक मेघा अपने मित्रों के साथ भवन एवं सड़क निर्माण का काम करता था।

उसने प्रण लिया था कि वह जीवन पर्यन्त सात नियमों का निश्चय ही पालन करेगा:-

(i) माता-पिता की सेवा करेगा।
(ii) बड़ों की इज्जत करेगा, उन्हें सम्मान देगा।
(iii) मधुर वाणी बोलेगा।
(iv) चुगली नहीं करेगा।
(v) व्यवहार में कभी भी अशोभनीय आचरण नहीं करेगा।
(vi) सदा सच बोलेगा।
(vii) अपने क्रोध पर सदैव काबू रखेगा।

उसने इन सातों नियमों का पालन करने का प्रण ही नहीं लिया वरन् पूरे जन्म उनका पालन भी किया। अपने इन्हीं शुभ कर्मों के कारण अगले जन्म में वह देवताओं का राजा, इन्द्र बन पाया।

तब शास्ता ने यह गाथा सुनाई।

गाथा: अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा
संयोजनं अणुं थूलं, डहं अग्गी व गच्छति।। 31।।

अर्थ: जो साधक अप्रमाद में रत रहता है या प्रमाद में भय देखता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी कर्म-संस्कारों के बंधनों को आग की तरह जलाते हुए चलता है।

प्रमाद से भय खायें : पतन नहीं होगा
किसी भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक भिक्षु ने त्रिरत्न में दीक्षा ली। वह इनके प्रति पूर्णतः समर्पित था। प्रव्रज्या के बाद वह अपना मन ध्यान में लगाने लगा पर उसका मन ध्यान में नहीं लगता था। वह अपनी दैनिकचर्या देखता तो लगता कि जैसे उसे कुछ उपलब्ध हुआ ही न हो। इसलिए वह उदास रहने लगा। पर वह लगन में दृढ़ था। अतः उसने सोचा कि शास्ता से मिलेगा और उनसे विचार-विमर्श करेगा कि मार्ग के अवरोधों को कैसे दूर किया जाए। इस दृढ़ निश्चय के साथ वह बुद्ध से मिलने के लिए निकल पड़ा।

रास्ते में उसने एक पर्वत पर आग की तीव्र ज्वाला देखी। वह बहुत ही तीव्रता से जल रही थी तथा तेजी से बढ़ रही थी। वह आग का दृश्य देखने के लिए पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गया। आग चारों ओर बहुत तेजी से बढ़ रही थी। आग जिस तरफ भी जा रही थी सबकुछ जलाकर राख कर दे रही थी। उसके अन्तर्नेत्र खुल गए। उसने सोचा कि जिस प्रकार आग सबकुछ जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार अन्तर्दृष्टि से प्राप्त आग भी मानव के अन्दर विद्यमान सभी आस्रवों को, बुराइयों को जलाकर खत्म कर देती है, भले ही वे बड़े और विशाल ही क्यों न हों।

तथागत ने अपने अन्तर्नेत्र से भिक्षु को देखा। उन्होंने अपने आप को भिक्षु के सम्मुख प्रस्तुत किया और उसे प्रोत्साहित किया, "वत्स ! तुम्हारा मार्ग बिल्कुल सही है। तुम इस मार्ग पर दृढ़निश्चयी हो कर चलते रहो। हर व्यक्ति अपने प्रयत्न से आस्रवों को जला देता है।"

फिर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: अप्पमादरतो भिक्खु, पमादेभयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बाणस्सेव सन्तिके।। 32।।

अर्थ: जो भिक्षु अप्रमादी है, प्रमाद से भयभीत होता है उसका पतन नहीं होता है। वह तो निर्वाण के निकट पहुँचा हुआ होता है।

अप्रमादी का पतन असंभव है
तिस्स स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स नामक एक स्थविर का जन्म श्रावस्ती के पास एक छोटे नगर में हुआ था। जब वह बड़ा हुआ तब उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और भिक्षु का जीवन जीने लगा। वह भोजन के लिए पास के गाँवों में जाता, भिक्षाटन में जो कुछ भी रूखा-सूखा मिल जाता उसे खा लेता और पुनः साधना में लग जाता। वह बड़े-बड़े आयोजनों में भी नहीं जाता था।

अन्य भिक्षुगण इस भिक्षु के विषय में चर्चा किया करते थे कि इस भिक्षु ने घर-द्वार छोड़ दिया है पर उसका मोह अभी समाप्त नहीं हुआ है। वह हमेशा अपने सगे-सम्बन्धियों से ही दान लेता है। भिक्षुओं ने इस विषय में शास्ता से शिकायत की। तब शास्ता ने तिस्स को बुलाकर पूछा, "मुझे शिकायत मिली है कि तुम अपने सगे-सम्बन्धियों के यहाँ आते-जाते हो। क्या यह सही है ? " तिस्स ने शास्ता को प्रणाम किया और स्पष्ट किया, "भगवन ! यह सच है कि मैं बार-बार अपने गाँव जाता हूँ। लेकिन, मैं ऐसा सिर्फ इसलिए करता हूँ कि भिक्षा मिल जाए। जैसे ही पूरी भिक्षा मिल जाती है मैं वहीं से लौट आता हूँ। आगे एक कदम भी नहीं बढ़ाता। मैं, जो भी भोजन मिलता है उसे खा लेता हूँ। मैं यह नहीं देखता कि भोजन स्वादिष्ट है या नहीं। मैं उसी से संतुष्ट हो जाता हूँ। फिर गाँव वालों के साथ हिलमिल कर क्यों विचरूँगा ? "

शास्ता ने भिक्षुओं के सम्मुख तिस्स की प्रशंसा की और कहा कि भिक्षुओं को तिस्स के समान होना चाहिए। अपनी आवश्यकता के मुताबिक ही जीवन चलाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में शाक्य-मुनि ने पूर्व काल की एक कथा सुनाई। किसी समय एक गूलर के पेड़ पर पक्षीराज तोता रहता था। उसके साथ उस वृक्ष पर अनेक पक्षी भी रहते थे। धीरे-धीरे पक्षी गूलर के सारे फल खा गए। वृक्ष फलहीन होने लगा। सभी पक्षियों ने दूसरी जगह जाने का विचार बनाया। पक्षीराज ने कहा, "तुम लोगों को जाना है तो जाओ। मैं इस पेड़ को छोड़कर नहीं जाऊँगा। जो कुछ भी बचे-खुचे फल हैं उन्हें खाकर मैं अपना जीवन चला लूँगा। चाहे जो भी हो, मैं रहूँगा यहीं पर।"

सभी पक्षी चले गए पर वह तोता वहीं रुक गया। तब इन्द्र तथा उसकी पत्नी सुजाता ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। पेड़ को इस प्रकार हिलाया मानों वह गिर रहा हो। ऐसा तूफान भेजा जैसे बाज झपट्टा मार रहा हो। फिर भी वह तोता कहीं नहीं गया। तब इन्द्र तथा सुजाता ने उससे पूछा कि वह पेड़ छोड़कर क्यों नहीं गया ? उसने जवाब दिया कि उस पेड़ के साथ उसकी कृतज्ञता का भाव जुड़ा हुआ है। अतः वह उसे छोड़कर नहीं जा सकता। उस जन्म में वह तोता बुद्ध स्वयं थे और अनुरुद्ध शक्र था।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।

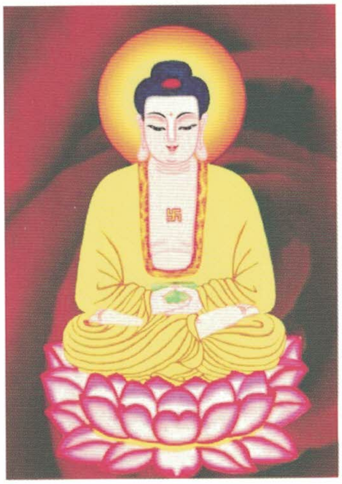

DHAMMAPADA

APPAMADA VAGGA

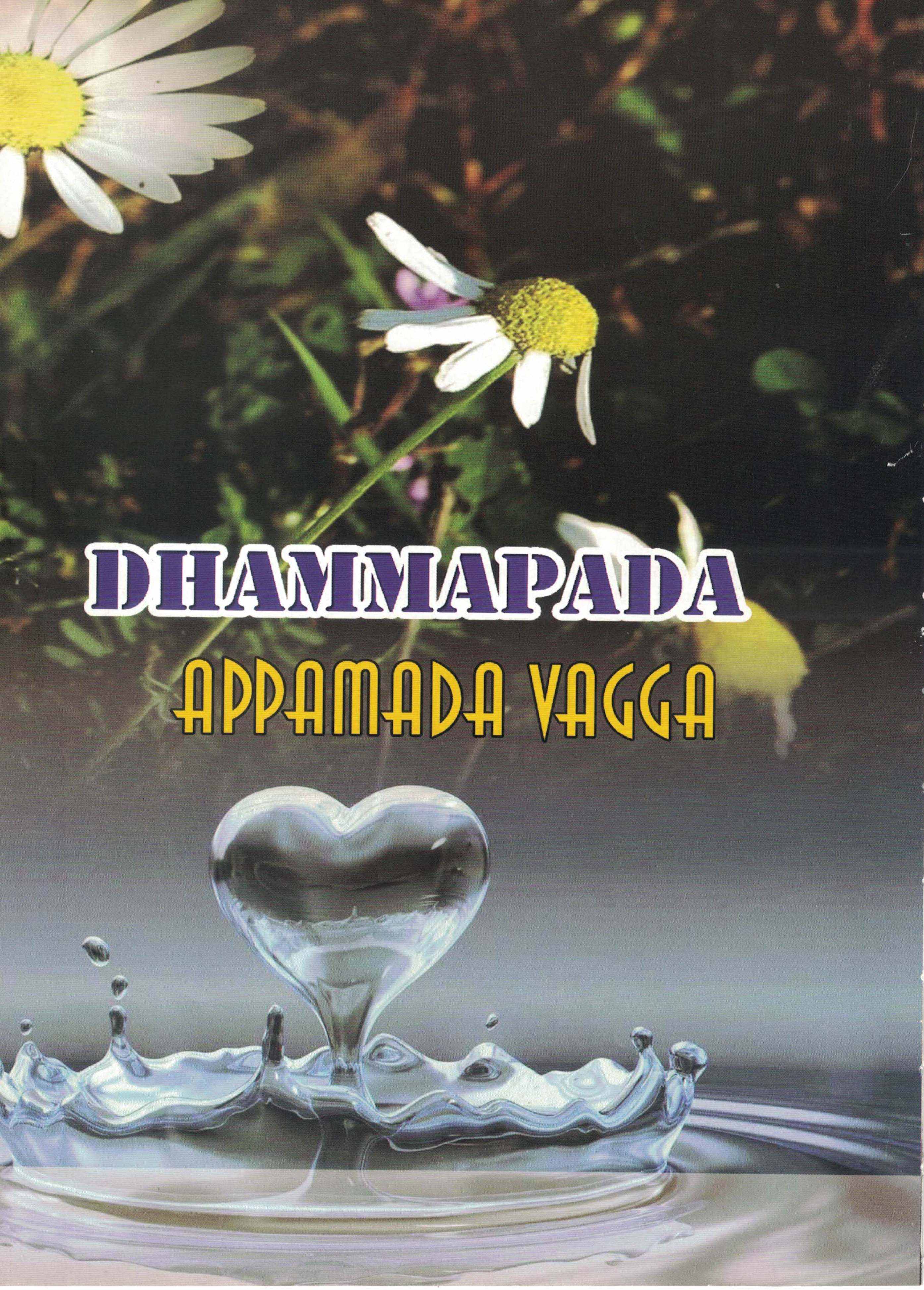

मन की माया
धम्मपद
चित्त वर्ग
गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

मन की माया

धम्मपद

चित्त वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक

हृषीकेश शरण

विषय सूची

चित्त वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	मेघिय स्थविर की कथा	33	चित्त को बाण की तरह सीधा करें	85
2.	मेघिय स्थविर की कथा	34	चित्त मुक्ति हेतु पानी से बाहर मछली की तरह तड़पता है	87
3.	अञ्ञतर भिक्षु की कथा	35	चित्त का दमन करें : सुख मिलेगा	89
4.	किसी उत्कण्ठित भिक्षु की कथा	36	बुद्धिमान पुरुष चित्त की रक्षा करें	91
5.	भागिनेय्य संघरक्खित की कथा	37	जो चित्त का निग्रह कर लेगा, वह मारबंधन से छूट जाएगा	93
6.	चित्तहत्थ स्थविर की कथा	38	प्रज्ञा कब परिपूर्ण कही जायेगी ?	95
7.	चित्तहत्थ स्थविर की कथा	39	जाग्रत साधक को कोई भय नहीं	97
8.	पाँच सौ विपश्यनाधारी भिक्षुओं की कथा	40	प्रज्ञा रूपी हथियार से मार को परास्त करें	99
9.	पुतिगत्ततिस्स स्थविर की कथा	41	देखो : इस निरर्थक, सूखे काठ के शरीर को!	101
10.	नन्द गोपाल की कथा	42	चित्त के प्रति सावधान रहें	103
11.	सोरेय्य स्थविर की कथा	43	चित्त से बढ़कर हितैषी मित्र नहीं	105

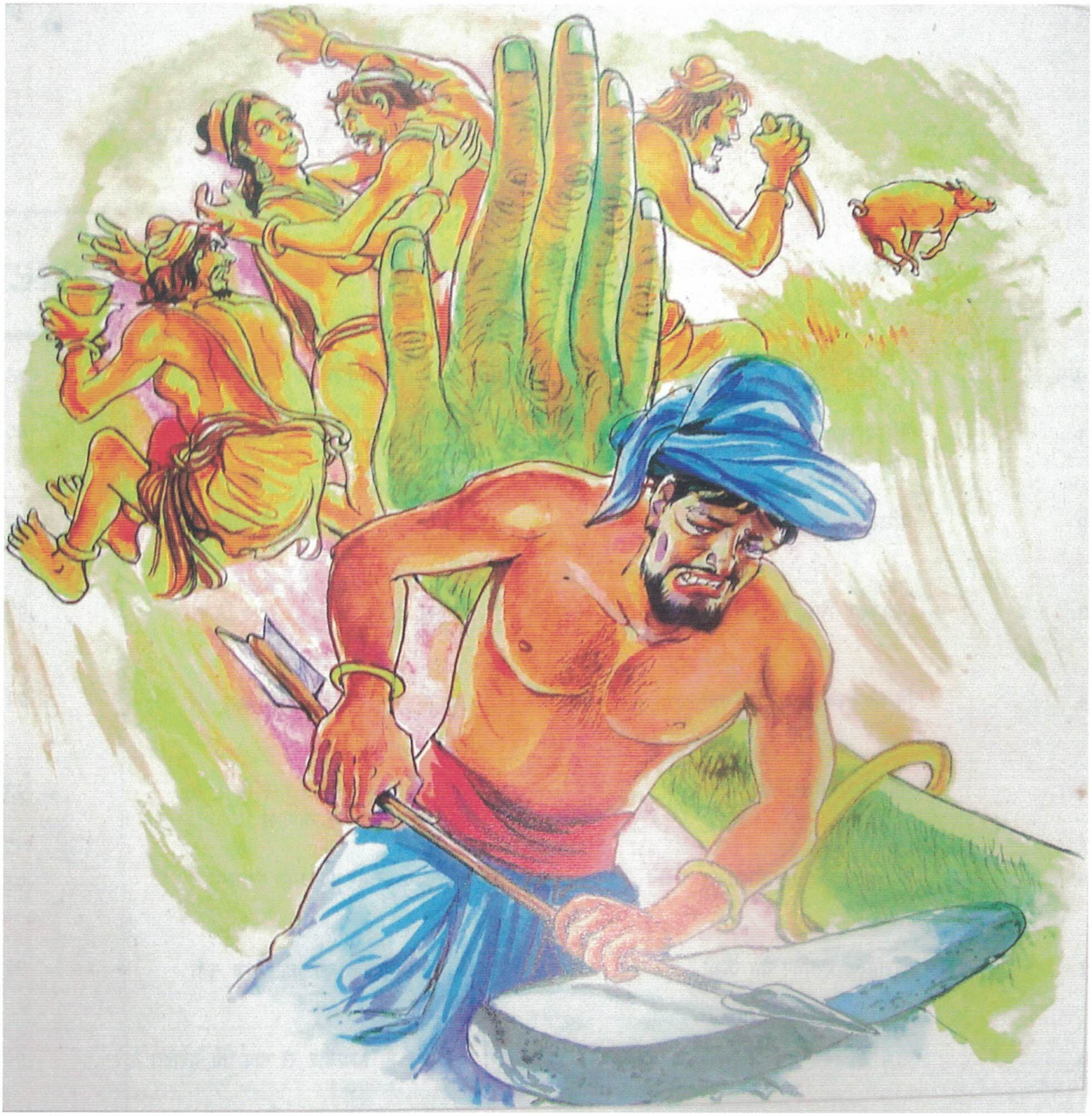

गाथा: फन्दनं चपलं चित्तं, दूरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी, उसुकारो व तेजनं।। 33।।

अर्थ: यह चित्त चंचल है, चपल है, कठिनाई से इसका संरक्षण और कठिनाई से इसका निवारण होता है। मेधावी पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

चित्त को बाण की तरह सीधा करें
मेघिय स्थविर की कथा

स्थान : चालिका पर्वत

एक समय शास्ता चालिय पर्वत पर वास कर रहे थे। उनके साथ उनके भिक्षु भी वहाँ वास कर रहे थे। एक दिन वे दिनचर्या के अनुसार भिक्षाटन के लिए गए। उनके साथ मेघिय नाम का एक भिक्षु भी था। भिक्षाटन के दौरान उसने एक बहुत ही मनोरम उद्यान देखा। उसने सोचा कि यह उद्यान बहुत ही शांत है, मनमोहक है, क्यों न मैं इसमें बैठकर ध्यान लगाऊँ। उसके मन में यह तीव्र विचार बार-बार आने लगा। भिक्षाटन के बाद उसकी इच्छा और अधिक प्रबल होने लगी। वह तथागत के पास गया और सादर प्रणाम कर आग्रह किया, "भन्ते ! वह उद्यान अत्यन्त ही सुन्दर और शांत है। वहाँ आसानी से ध्यान लग जाएगा। अत: वहाँ जाकर ध्यान-साधना करना चाहता हूँ। अगर आप अनुमति दें तो जाऊँ।"

शाक्य-मुनि उस समय अकेले थे। उनके पास और कोई भिक्षु नहीं था। अत: उन्होंने मेघिय को थोड़ी देर रुक जाने के लिए कहा, "कोई और दूसरा भिक्षु आ जाता है तब चले जाना।" पर मेघिय का मन नहीं माना। वह तो वहाँ जाने के लिए बेचैन हो रहा था। अपने आप को रोक नहीं पाया। उसने बुद्ध से पुन: प्रार्थना की कि उसे जाने दें। बुद्ध ने उसे फिर समझाया कि थोड़ी देर प्रतीक्षा कर ले। लेकिन उसका मन वहाँ जाने के लिए मचल रहा था। अत: उसने शास्ता से बार-बार निवेदन किया और अंतत: उन्होंने उसे वहाँ जाने की अनुमति दे दी।

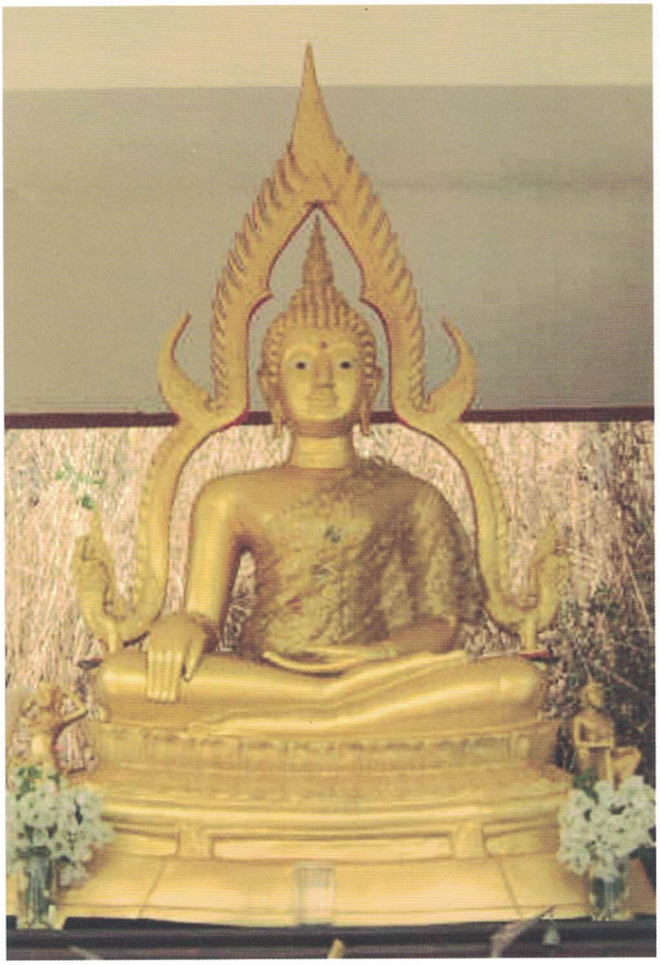

गाथा: वारिजो व थले खित्तो, ओकमोकत उब्भतो।
परिफन्दतिदं चित्तं, मारधेय्यं पहातवे।। 34।।

अर्थ: जैसे तालाब से निकालकर जमीन पर फेंकी गई मछली तड़फड़ाती है उसी प्रकार यह चित्त भी मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।

चित्त मुक्ति हेतु पानी से बाहर मछली की तरह तड़पता है
मेघिय स्थविर की कथा

मेघिय बहुत खुश हुआ, क्योंकि उसकी इच्छा पूरी हो गई। वह तुरंत विहार से निकला और जल्द ही उस आम्रवाटिका में पहुँच गया। एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर ध्यान-साधना में बैठ गया। पर उसका मन ध्यान-साधना में नहीं लगा, इधर-उधर भटकने लगा। वह उसे केन्द्रित करने में सफल नहीं हुआ। पूरा दिन इसी आन्तरिक द्वन्द्व में बीत गया पर मन शांत नहीं हुआ। शाम होने पर वह बौद्ध-विहार आया। विहार पहुँचकर वह शास्ता के सम्मुख प्रकट हुआ और उन्हें पूरे दिन की कहानी सुनायी। उसने बताया कि किस प्रकार उसने चित्त को एकाग्र करने की चेष्टा की पर वह पूर्णतः असफल रहा।

तब शाक्य-मुनि ने उसे समझाया, "मेघिय ! वहाँ जाकर तुमने बहुत ही गलत काम किया। मैं तुम्हें बताता रहा हूँ कि मैं अभी अकेला हूँ। जब तक कोई भिक्षु नहीं आ जाता है तब तक तुम मुझे अकेला मत छोड़ो, पर तुमने मेरी बात नहीं मानी। भिक्षु को इतना कमजोर नहीं होना चाहिए कि वह सदैव अपने चित्त के ही वश में रहे। चित्त को अपने वश में रखना चाहिए।"

ऐसा समझाकर शास्ता ने ये दो गाथाऐं कहीं।

गाथा: दुन्निग्गहस्स लहुनो, यत्थकामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं।। 35।।

अर्थ: कठिनाई से दमन किया जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।

चित्त का दमन करें : सुख मिलेगा
अञ्ञतर भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन विहार में वास कर रहे थे। उस समय साठ भिक्षुओं ने प्रव्रज्या ली और एक पहाड़ी के नीचे मातिका गाँव पहुँच गए। उस गाँव में एक सद्नारी रहती थी जिसका नाम मातिकामाता था। वह त्रिरत्नों के प्रति पूर्णत: समर्पित थी। उसने भिक्षुओं के भोजन आदि की व्यवस्था की और रहने के लिए आवास का भी प्रबंध किया। मातिकामाता ने उन भिक्षुओं से आग्रह किया कि वे उसे भी ध्यान साधना की शिक्षा दें।

भिक्षुओं ने उसे ज्ञान दिया। वह तुरंत पूरी लगन के साथ साधना में लग गई और शीघ्र ही स्रोतापन्न हो गई। फिर सकृदागामी हुई और अंतत: अनागामी हुई। उसने तीनों मार्ग और उसके फलों को प्राप्त कर लिया; ऋद्धियाँ प्राप्त कर लीं, चार प्रतिसंविदाएँ और पाँच अभिज्ञाएँ भी प्राप्त कर लिया। से वह भिक्षुओं के मन की दशा जानने लगी ।

अञ्ञतर भिक्षु अन्य भिक्षुओं के साथ वहाँ अधिक समय नहीं रुक पाया। वह शास्ता के पास वापस आ गया। शास्ता ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों नहीं रुका। तब भिक्षु ने उत्तर दिया, च्वहाँ रुकना संभव नहीं है। वह उपासिका तुरंत जान लेती है कि दूसरा आदमी क्या सोच रहा है। बुरे विचारों के साथ दूसरों के मन के अन्दर की बात जानना वैसा ही होता है जैसे कोई आदमी चोरी के सामान के साथ पकड़ लिया गया हो। मैं वहाँ नहीं रह सकता।छ तब शास्ता ने उसे समझाया कि वह अपने चित्त को कुशल रखने के लिए प्रयत्न करे। आसक्ति से बंधे चित्त को वश में करना चाहिए।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं।। 36।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि दुष्कर दिखाई देने वाले, अत्यन्त चतुर, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त की रक्षा करे। सुरक्षित चित्त बहुत ही सुखदायी होता है।

बुद्धिमान पुरुष चित्त की रक्षा करें
किसी उत्कण्ठित भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा उन दिनों की है जब शास्ता जेतवन में रह रहे थे। एक दिन एक भिक्षु किसी उपासक के यहाँ भोजन-दान के लिए गया, भोजनदान के बाद श्रेष्ठी ने आग्रह कर पूछा, "भन्ते ! जीवन के दु:खों से मुक्त होने का मार्ग बताइये।" तब भिक्षु ने समझाया, "अपनी सम्पत्ति के तीन भाग कर लो। एक भाग से व्यापार करो, दूसरे भाग से परिवार चलाओ और तीसरे भाग को धर्म-कर्म में लगाओ।"

श्रेष्ठी ने कथनानुसार धन का विभाजन कर दिया। पर उसका मन नहीं माना कि वह दु:खों से मुक्त हो पाएगा। अत: वह भिक्षु के पास पुन: गया और पूछा कि उसे और क्या करना चाहिए। भिक्षु ने उसे समझाया, "सर्वप्रथम उसे त्रिरत्न में दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए। उसके बाद उसे पंचशील का पालन करना चाहिए। ये पाँच शील हैं:- (i) चोरी नहीं करना (ii) झूठ नहीं बोलना (iii) हिंसा नहीं करना (iv) मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना और (v) पराई स्त्री के साथ कामाचार न करना। इसके बाद दस शिक्षापदों का अनुसरण करना चाहिए, फिर तीस शिक्षापदों का और इस प्रकार बुद्ध धर्म का अनुगमन करना चाहिए।"

श्रेष्ठी पुत्र भिक्षु बन गया। लेकिन उसे इन शीलों का जीवन में अनुपालन करना कठिन लग रहा था। अत: वह फिर से गृहस्थ धर्म अपना लेने के विषय में सोचने लगा। अपनी साधना के प्रति लापरवाह हो गया, शरीर से कमजोर हो गया।

शास्ता को इसकी जानकारी मिली, उन्होंने भिक्षु को सलाह दी कि वह संयम बरते। साथ ही यह गाथा कही।

गाथा: दूरंगमं एकचरं, असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं संयमेस्सन्ति, मोक्खन्ति मारबन्धना।। 37।।

अर्थ: जो व्यक्ति (पुरुष, स्त्री, गृहस्थ अथवा प्रव्रजित) दूर-दूर तक जाने वाले, निराकार, गुहा आश्रयी चित्त का संयम कर लेगा, वह मार के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

जो चित्त का निग्रह कर लेगा, वह मारबंधन से छूट जाएगा
भागिनेय्य संघरक्खित की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

संघरक्खित शास्ता के नजदीकी शिष्यों में एक थे। उनकी बहन को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। चूँकि वह संघरक्खित का भाँजा था अत: उसका नाम भागिनेय्य संघरक्खित रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तो वह भी संघ में शामिल हो गया।

एक बार वह सामनेर एक गाँव में रुककर वर्षाकाल बिता रहा था। वहाँ उसे दानस्वरूप दो चीवर प्राप्त हुए। उसने एक चीवर स्वयं ले लिया और दूसरा चीवर संभालकर अपने मामा के लिए रख दिया। वर्षाकाल के बाद उसने वह चीवर मामाजी को समर्पित करना चाहा, पर मामाजी ने उसे लेने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि उनके पास पर्याप्त चीवर थे। उन्हें और अधिक चीवर की आवश्यकता नहीं थी। सामनेर ने बहुत प्रार्थना की पर वे नहीं माने।

एक दिन सामनेर भागिनेय्य ताड़ के पंखे से भंते संघरक्खित को पंखा झल रहा था। उसका मन दुःखी था कि मामा ने उसकी बात नहीं मानी। उसके मन में उल्टे-सीधे विचार आने लगे। वह सोचने लगा कि क्यों न भिक्षु-संघ छोड़ दे, चीवर बेच दे। उस पैसे से एक बकरी खरीद ले। बकरी से बच्चे होंगे और उसे बहुत सारा धन मिलेगा। धन होने से उसका विवाह हो जाएगा और उसे एक पुत्र भी हो जाएगा। वे सभी गाड़ी में बैठकर मामाजी से मिलने विहार जायेंगे।

गाड़ी में आते समय वह अपनी पत्नी से कहेगा कि वह बच्चे को उसे दे दे। वह उसे गाड़ी चलाने पर ध्यान देने के लिए कहेगी। वह पत्नी से बच्चा छीनेगा और इस छीना-छपटी में बच्चा गाड़ी से गिर जाएगा। गाड़ी का पहिया बच्चे के ऊपर से निकल जाएगा। वह क्रुद्ध हो जाएगा और पत्नी को पंखे से मारेगा। ऐसा सोचते हुए उसने पंखे से मामा को दे मारा। मामा ने अपने भगीने से कहा, "शिष्य ! स्त्री को मारते हुए तुमने मुझे ही मारा है।" भगीना डर गया। वह भागने लगा। कुछ तरुण भिक्षु उसे पकड़कर ले आए तथा शास्ता के पास ले गए।

शास्ता ने भागिनेय्य संघरक्खित तथा शिष्यों को समझाते हुए कहा, "शिष्यों ! यह चित्त बहुत ही चंचल है। जो व्यक्ति दूर-दूर तक जाने वाले, अकेले ही विचरण करने वाले चित्त को संयमित कर लेगा वह मार के बंधन से मुक्त हो जाएगा।

तब उन्होंने यह गाथा सुनाई।

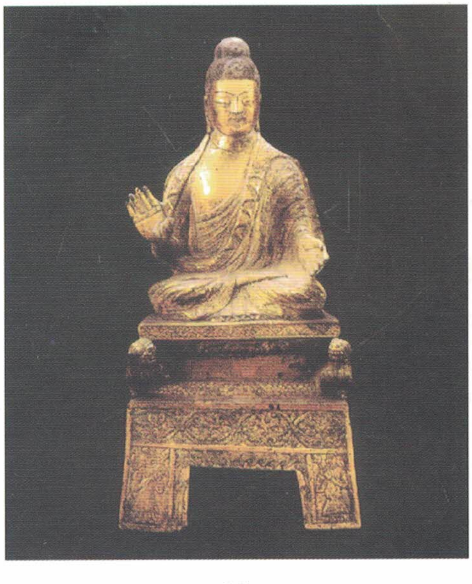

गाथा: अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति।। 38।।

अर्थ: जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा डोलती है उसकी प्रज्ञ ा (ज्ञान) परिपूर्ण नहीं कही जा सकती।

प्रज्ञा कब परिपूर्ण कही जायेगी ?
चित्तहत्थ स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन एक श्रावस्तीवासी अपनी खोई हुई गाय को खोजता हुआ जंगल में घूमता रहा, पर उसे गाय नहीं मिली। "भिक्षुओं से अवश्य ही खाने के लिए कुछ मिल जायेगा" ऐसा सोचकर वह विहार चला गया। वहाँ अभी भी कुछ भोजन बचा हुआ था। अतः उस कुलपुत्र को देखकर एक भिक्षु ने कहा, "इस पात्र में कुछ भोजन बचा हुआ है, उसे खा लो।" उसने भोजन खाया। भोजन स्वादिष्ट था। उसे अच्छा लगा। भिक्षुओं से प्रश्न करने पर उसे पता चला कि बौद्ध विहार में प्रतिदिन उपासकों की ओर से स्वादिष्ट भोजन आता था। वह प्रसन्न हुआ और सोचा, "इतनी परिश्रम की जिन्दगी से क्या लाभ ? क्यों न मैं भी प्रव्रज्या धारण कर लूँ ? बिना किसी परिश्रम के सुस्वादु भोजन तो मिलेगा।" ऐसा सोचकर उसने भिक्षुओं से प्रव्रज्या की प्रार्थना की। भिक्षुओं ने उसे स्वीकृति दे दी और वह प्रव्रजित हो गया।

अब उसे गृहस्थों से लाभ-सत्कार मिलने लगा। शारीरिक परिश्रम कोई विशेष था नहीं। अतः थोड़े ही दिनों में वह शरीर से मोटा होने लगा। उसने विचार किया, "घर-घर जाकर भिक्षाटन करना बेकार है। अतः क्यों न पुनः गृहस्थ बन जाऊँ ? " अतः वह एक बार फिर गृहस्थ बन गया। लेकिन गृहस्थ जीवन में शारीरिक श्रम करना पड़ता है। अतः वह जल्द ही दुबला होने लगा। अब उसे पुनः विहार की याद आई। वह भिक्षुओं से मिलकर, हाथ-पैर जोड़ने लगा कि उसे पुनः प्रव्रजित कर दें। भिक्षुओं ने उसे पुनः प्रव्रजित कर दिया। गृहस्थ से प्रव्रजित और पुनः प्रव्रजित से गृहस्थ बनने का यह सिलसिला जारी रहा। वह छह बार गृहस्थ से प्रव्रजित हुआ और प्रव्रजित से गृहस्थ हुआ। भिक्षुओं ने उसकी मनःस्थिति देखी तो सोचा, "यह चित्त के अधीन होकर इस प्रकार कर रहा है।" अतः भिक्षुओं ने उसका नाम 'चित्तहस्त' रख दिया।

चित्तहस्त के घर से विहार और विहार से घर आने-जाने के क्रम में उसकी पत्नी गर्भवती हो गई। सातवीं बार की बात है। जंगल से वापस आकर उसने खेती के औजार घर में रखे और सोचा कि प्रव्रजित हो जाऊँगा। ऐसा सोचते हुए अपने कमरे में प्रवेश किया जहाँ उसकी पत्नी सोई पड़ी थी। उसने क्या देखा ?

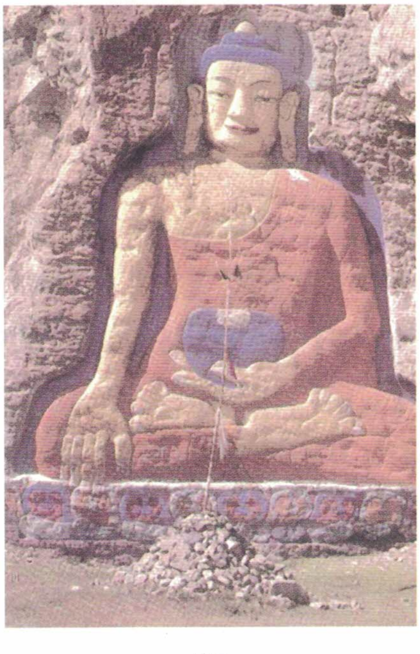

गाथा: अनवस्सुत चित्तस्स, अनन्वाहत चेतसो।
पुञ्ञपापपहीनस्स, नत्थि जागरतो भयं।। 39।।

अर्थ: जिसके चित्त में राग नहीं है, जिसका चित्त द्वेष रहित है, जो पाप-पुण्य से परे उठ गया है ऐसे सावधान, जाग्रत व्यक्ति को कोई भय नहीं है।

जाग्रत साधक को कोई भय नहीं
चित्तहत्थ स्थविर की कथा

उसने देखा कि उसकी पत्नी खाट पर सोई हुई थी। उसकी साड़ी इधर-उधर हो गई थी और वह करीब-करीब नग्नावस्था में थी। उसके मुँह से लार निकल रहा था। नाक से घर्र-घर्र का शब्द हो रहा था। मुँह से भी खर्राटे ले रही थी। दाँत किटकिटा रहे थे। विशाल शरीर फूला हुआ लग रहा था। उसके फूले हुए शरीर को देखकर ऐसा लग रहा था मानों यह एक लाश है। उस शरीर को देखकर उसे लगा, "अरे ! यह जीवन तो सचमुच दु:खमय है। मैं कई बार भिक्षु बना पर इस स्त्री के मोह के कारण भिक्षु नहीं रह पाया। इस स्त्री का शरीर भी अनित्य है, दु:खपूर्ण है।" ऐसा सोचकर उसने अपना चीवर लिया और सातवीं बार प्रव्रजित होने के लिए चल पड़ा।

चित्तहस्त पूरे मार्ग "यह सारा संसार दु:खमय है" इस पर चिंतन करता रहा। विहार पहुँचते-पहुँचते उसने स्त्रोतापन्न स्थिति प्राप्त कर ली। वहाँ पहुँचकर उसने भिक्षुओं से एक बार पुनः प्रव्रज्या के लिए आग्रह किया। भिक्षुओं ने इस बार उसे मना कर दिया और कहा, "तुम प्रव्रज्या का महत्व क्या जानो ? तुम्हारा चेहरा सड़क पर पड़े पत्थर की भाँति है जो बार-बार रगड़ खाता है पर उस पर कोई असर नहीं होता। तुम अब अभ्यस्त हो गए हो। हम तुम्हें प्रव्रजित नहीं करेंगे।" "भन्ते ! एक बार, अंतिम बार, कृपा कीजिए। मुझे प्रव्रज्या दिला दीजिए।" भिक्षुओं ने उसके पिछले उपकारों को याद कर उसे पुनः प्रव्रज्या दिला दी। कुछ ही दिनों में वह अर्हत हो गया।

उधर मजाक में कुछ भिक्षुओं ने चित्तहस्त से कहना शुरू कर दिया, "क्या बात है चित्तहस्त ? बहुत दिन हो गए। इस बार तो तुम गृहस्थ बनने में बहुत देर कर रहे हो।" तब चित्तहस्त ने उन्हें बताया, "संसार में आसक्ति रहने के कारण मैं अभी तक बार-बार घर जाता रहा। पर अब उस घर से मेरी आसक्ति नहीं रह गई है। अत: अब मैं नहीं जाता।" भिक्षुओं को लगा कि चित्तहस्त झूठ बोल रहा है। अत: वे उसे शास्ता के पास ले गए और पूरी बात बताई। तब शास्ता ने उन्हें बताया कि चित्तहस्त सच बोल रहा था। पहले उसका चित्त स्थिर नहीं था। अत: बार-बार आना-जाना करता था। पर अब अर्हत्व प्राप्त कर उसका चित्त स्थिर हो गया है। अत: अब उसे बार-बार आने-जाने की जरूरत नहीं रह गई है।

तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।

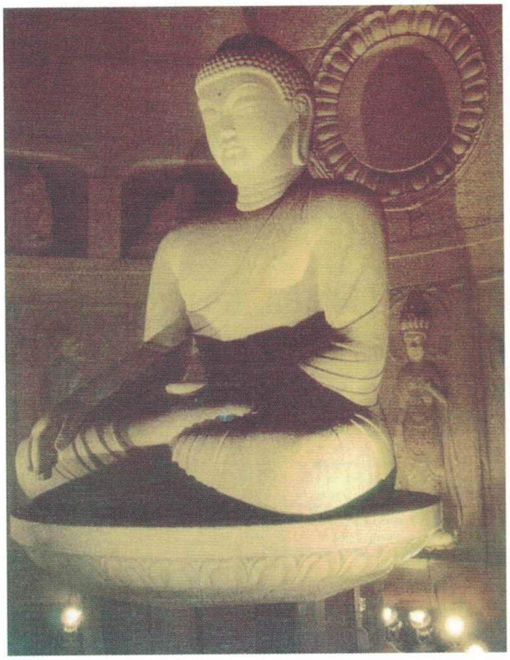

गाथा: कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन, जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया।। 40।।

अर्थ: इस शरीर को घड़े के समान नश्वर जान और चित्त को नगर के समान (मजबूत और दृढ़) बना प्रज्ञारूपी हथियार लेकर मार के साथ युद्ध करे। उसे जीत लेने पर भी चित्त की रक्षा करे और अनासक्त बना रहे।

प्रज्ञा रूपी हथियार से मार को परास्त करें
पाँच सौ विपश्यनाधारी भिक्षुओं की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार पाँच सौ विपश्यनाधारी भिक्षु श्रावस्ती से वन की ओर प्रस्थान कर गए। घने जंगल में उन्हें एक जगह अच्छी लगी और उन्होंने सोचा कि यहीं ध्यान-विपश्यना करेंगे। उन पेड़ों पर रहने वाले देवताओं ने सोचा कि ये भिक्षु यहाँ आये हैं, ये यहाँ ध्यान-विपश्यना करेंगे तो हम लोग ठीक से नहीं रह सकेंगे। अतः कुछ ऐसा किया जाये जिससे ये यहाँ नहीं रहें तथा यह जगह छोड़कर चले जायें।

सभी देवताओं ने मिलकर भयावह माहौल बना दिया। जब भी भिक्षु ध्यान में बैठते, उनके सामने नंग-धड़ंग, भयावह आकृतियाँ आकर नाचने, उछलने-कूदने लगतीं। इससे भिक्षु डर जाते और अपनी साधना पर ध्यान केन्द्रित नहीं रख पाते। जब परिस्थिति में सुधार नहीं हुआ तो भिक्षुओं ने शास्ता के पास जाकर पूरी बात बताई। बुद्ध ने उनकी पूरी बात सुनी और उनसे कहा, "भिक्षुओं ! तुम्हारा वहीं रहकर साधना करना ठीक है।" "नहीं भन्ते ! हमारा वहाँ रहना संभव नहीं है। वहाँ हमें विभिन्न प्रकार के भयंकर शब्द सुनाई देते हैं। वहाँ साधना में व्यवधान पड़ता है। हमें वह स्थान छोड़ना उचित लगता है।" "भिक्षुओं ! तुम लोग बिना अस्त्र-शस्त्र के निहत्थे होकर गए थे। अपने औजारों को तेज करो और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जाओ," बुद्ध ने सलाह दी।

भिक्षुगण शास्ता के निर्देशानुसार 'करणीयमंत्र सूत्र' का पाठ करते हुए वन में प्रविष्ट हुए। जब देवों ने उनकी तरफ से मैत्री की हवा बहते देखी तो वे बहुत खुश हुए। वे उन भिक्षुओं की सेवा करने लगे।

अब भिक्षुगण वहाँ बिना किसी कठिनाई के साधना कर सकते थे।

गाथा: अचिरं वतयं कायो, पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो, निरत्थं व कलिंगरं।। 41।।

अर्थ: अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाहीन हो निरर्थक काठ के टुकड़े की तरह धरती पर पड़ा रहेगा।

देखो : इस निरर्थक, सूखे काठ के शरीर को !
पुतिगत्ततिस्स स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय थेर तिस्स शास्ता से प्रव्रज्या लेकर ध्यान विपश्यना करने लगे। इस अभ्यास काल में उन्हें भयंकर बीमारी ने आ दबोचा। शरीर पर छोटे-छोटे दाने फफोले के रूप में निकल आये और उनमें पीब भरने लगा। बाद में पीब बाहर आने लगा। भीषण बदबू आने लगी। उनके कपड़े भी गंदे हो गए। उनका बदबूदार चीवर उनके शरीर से चिपक गया। शरीर से खून की दुर्गन्ध आने लगी। पूरा का पूरा शरीर दुर्गन्धमय हो गया। अतः भिक्षुगण उन्हे 'पुतिगत्ततिस्स' नाम से पुकारने लगे।

शास्ता ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि थेर तिस्स बहुत कष्ट में थे। उन्होंने पाया कि उसके सारे साथी उसकी हालत देखकर उससे अलग हो गए हैं। उन्होंने यह भी देखा कि उसके अन्दर अर्हत्व प्राप्त करने की संभावनाएं हैं। अतः पानी गर्म किया और गर्म पानी लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ तिस्स सो रहा था। जब अन्य भिक्षुओं ने उन्हें वहाँ आते देखा तो वे भी दौड़कर आ गए। तथागत ने तिस्स को आग के पास ले जाने का निर्देश दिया। फिर उसे नहलाया गया और उसके शरीर को साफ कपड़े से पोंछा गया। उसके चीवर को भी साफ किया गया और उसे धूप में सुखाया गया। स्नान से तिस्स स्वच्छ हो गया और अच्छा अनुभव करने लगा। उसका शरीर निर्मल हुआ और उसके साथ-साथ उसका चित्त भी निर्मल हो गया। उसका मन साधना में दृढ़ हो गया।

शास्ता जब तिस्स को स्नान करा रहे थे, उसका शरीर काठ की भाँति जमीन पर पड़ा हुआ था। उन्होंने समझाया, "भिक्षुओं ! देखो यह शरीर जमीन पर कैसे काठ की भाँति पड़ा रहता है और धरती का बोझ बढ़ाता रहता है। निरर्थक लकड़ी की भाँति फेंका गया यह शरीर जल्द ही धरती पर सदा के लिए सो जाएगा। नौ द्वारों से सुसज्जित यह शरीर एक दिन शून्य हीन हो जाएगा।"

फिर उन्होंने यह गाथा कही।

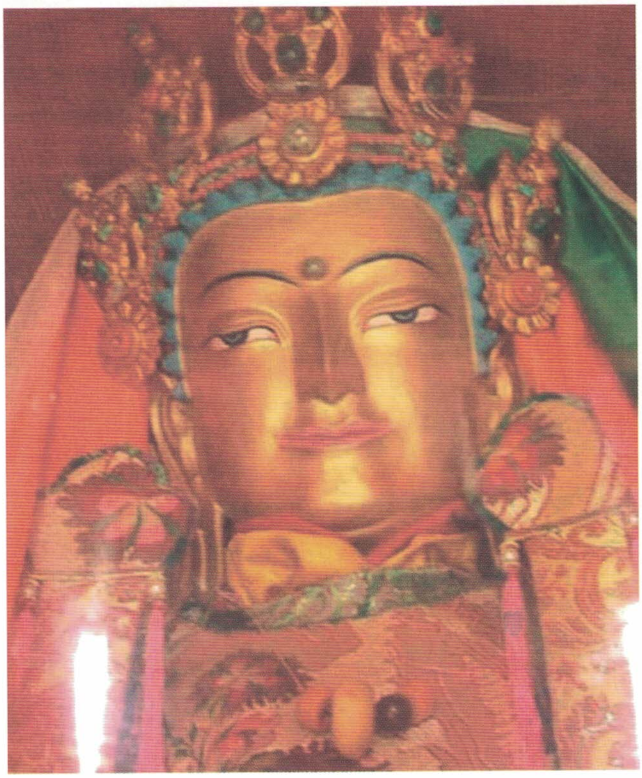

गाथा: दिसो दिसं यं तं कयिरा, वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं, पापियो नं ततो करे।। 42।।

अर्थ: जितनी हानि शत्रु-शत्रु की या वैरी-वैरी की कर सकता है, उससे कहीं अधिक हानि बुरे मार्ग पर लगा हुआ चित्त कर सकता है।

चित्त के प्रति सावधान रहें
नन्द गोपाल की कथा

स्थान : कोसल जनपद

नन्द नाम का एक चरवाहा अनाथपिंडिक की गायों की रखवाली करता था। लोग उसे नन्दगोपालक के नाम से पुकारते थे। वह यदा-कदा अनाथपिंडिक के घर पर शास्ता का धर्म उपदेश सुना करता था। वह भी शास्ता को अपने घर निमंत्रित करना चाहता था। अत: उसने बुद्ध से अपने यहाँ आने की प्रार्थना की । बुद्ध ने कहा, "मैं अवश्य चलूँगा, पर अभी नहीं, कुछ समय बाद।" बुद्ध ने अपनी अन्र्तदृष्टि से देखा कि उसके घर चलने का समय अभी परिपक्व नहीं है ।

कुछ दिनों बाद एक दिन शाक्य-मुनि भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन कर रहे थे। चलते-चलते उन्होने अपना रास्ता बदल दिया और नन्दगोपालक के घर जा पहुँचे।

नन्द ने शास्ता और भिक्षुसंघ की बड़े प्रेम से आवभगत की। सात दिनों तक वह ऐसा ही करता रहा। सातवें दिन बुद्ध का उपदेश सुनकर वह स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त कर गया। अंतिम दिन जब बुद्ध उसके घर से निकले तब वह भी शास्ता का भिक्षापात्र लेकर उन्हें विदा करने के लिए उनके साथ घर से निकला। थोड़ी दूरी के बाद शाक्य-मुनि ने उससे भिक्षापात्र ले लिया और उसे वापस चले जाने के लिए कहा। वह लौट रहा था कि किसी शिकारी के बाण से मारा गया।

शास्ता के पीछे-पीछे आ रहे भिक्षुओं ने सब कुछ देखा। जब वे बुद्ध से मिले तो उन्हें बताया कि किस प्रकार घर वापस लौटते समय रास्ते में ही नन्दगोपालक मारा गया। उन्होंने यह भी कहा, "संभव है कि आप अगर उसके घर नहीं जाते तो वह आपके पीछे-पीछे नहीं आता और न मारा जाता।"

शास्ता ने बताया, "मैं आता या नहीं आता, जब नन्दगोपालक की मृत्यु आती तो वह बेबस था। उसे यहाँ से जाना ही पड़ता। उसे मृत्यु से छुटकारा नहीं मिल सकता था।"

यह कहकर उन्होंने यह धर्मदेशना कही।

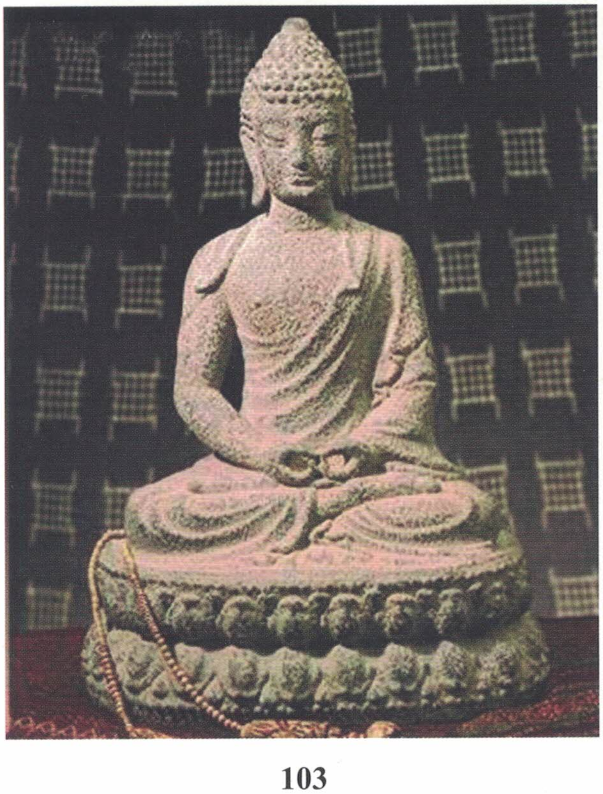

गाथा: न तं माता पिता कयिरा, अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं, सेय्यसो नं ततो करे।। 43।।

अर्थः जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु नहीं कर सकते, उससे कहीं अधिक भलाई सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

चित्त से बढ़कर हितैषी मित्र नहीं
सोरेय्य स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोसल राज्य में एक धनी व्यक्ति का सोरेय्य नाम का एक पुत्र था। एक दिन वह घोड़ा गाड़ी में बैठ कर अपने मित्रों के साथ स्नान करने हेतु निकला। रास्ते में भन्ते महाकच्चायन तालाब के किनारे स्नान कर वस्त्र बदल रहे थे। सोरेय्य ने उन्हें देखा। उनका गौर वर्ण देखकर वह मोहित हो गया और सोचने लगा, "काश ! मेरी स्त्री का रंग-रूप भी स्थविर की तरह होता ? " मन में ऐसे बुरे विचार आते ही उसके अन्दर लिंग परिवर्तन हो गया। अब वह पुरुष से स्त्री बन चुका था। उसे बहुत लज्जा महसूस हुई।

वह मौका निकालकर मित्रों की मंडली से खिसक गया तथा तक्षशिला जाने वाले रास्ते को पकड़ लिया। उसके नौकरों और घर वालों ने उसे बहुत खोजा पर वह नहीं मिल पाया। उधर सोरेय्य ने अपनी अंगूठी देकर एक गाड़ीवान से आग्रह किया कि वह उसे भी अपनी बैलगाड़ी में बिठा ले। गाड़ीवान ने उसे गाड़ी में बिठा लिया और इस प्रकार वह तक्षशिला जा पहुँचा।

तक्षशिला में एक धनवान व्यक्ति ने उसे देखा और उससे शादी कर ली। उस धनवान व्यक्ति से उसे दो पुत्र हुए।

कुछ समय बाद सोरेय्य के गाँव का एक व्यापारी अपने काफिले के साथ तक्षशिला में रुका। सोरेय्य को इसकी जानकारी हुई। उसने उस व्यापारी को पहचान लिया कि वह उसका पुराना मित्र ही है। उसने उस व्यापारी को बुला भेजा। व्यापारी को बहुत आश्चर्य हुआ कि एक महिला उसे बुला रही थी। जब वह व्यापारी सोरेय्य से मिला तो उसने अपने गाँव के सभी लोगों का हाल-चाल पूछा। व्यापारी ने बताया कि श्रेष्ठी अब बूढ़ा हो चला है। उसका एक जवान लड़का पता नहीं एकाएक कैसे गायब हो गया। तब सोरेय्य ने रोते हुए अपनी पूरी कहानी सुनाई और अपने मित्र से सलाह माँगी कि इस शाप और पाप से कैसे मुक्ति मिले।

मित्र ने उसे सलाह दी कि वह भन्ते महाकच्चायन को निमंत्रित करे और उनसे माफी माँगे। मित्र की सलाह पर उसने भन्ते को भोजन दान हेतु आमंत्रित किया और भोजनोपरान्त उनके पैरों पर गिरकर पूरे हृदय से माफी माँगी। जैसे ही भन्ते महाकच्चायन ने कहा 'मैं तुम्हें माफ करता हूँ', वह फिर पुरुष रूप में बदल गया।

सोरेय्य के पुरुष के रूप में दो पुत्र थे और स्त्री रूप में दो। लोग पूछते, "किन पुत्रों को अधिक प्यार करते हो ? " तो वह उत्तर देता, "जो मेरी कोख से पैदा हुए हैं।" लेकिन उसने एक दिन कहा, "मुझे कोई भी प्यारा नहीं है।"

अब उसका मोह भंग हो गया था। उसे संसार से विरक्ति हो चुकी थी। उसने गृहत्याग किया और भिक्षुसंघ में शामिल हो गया।

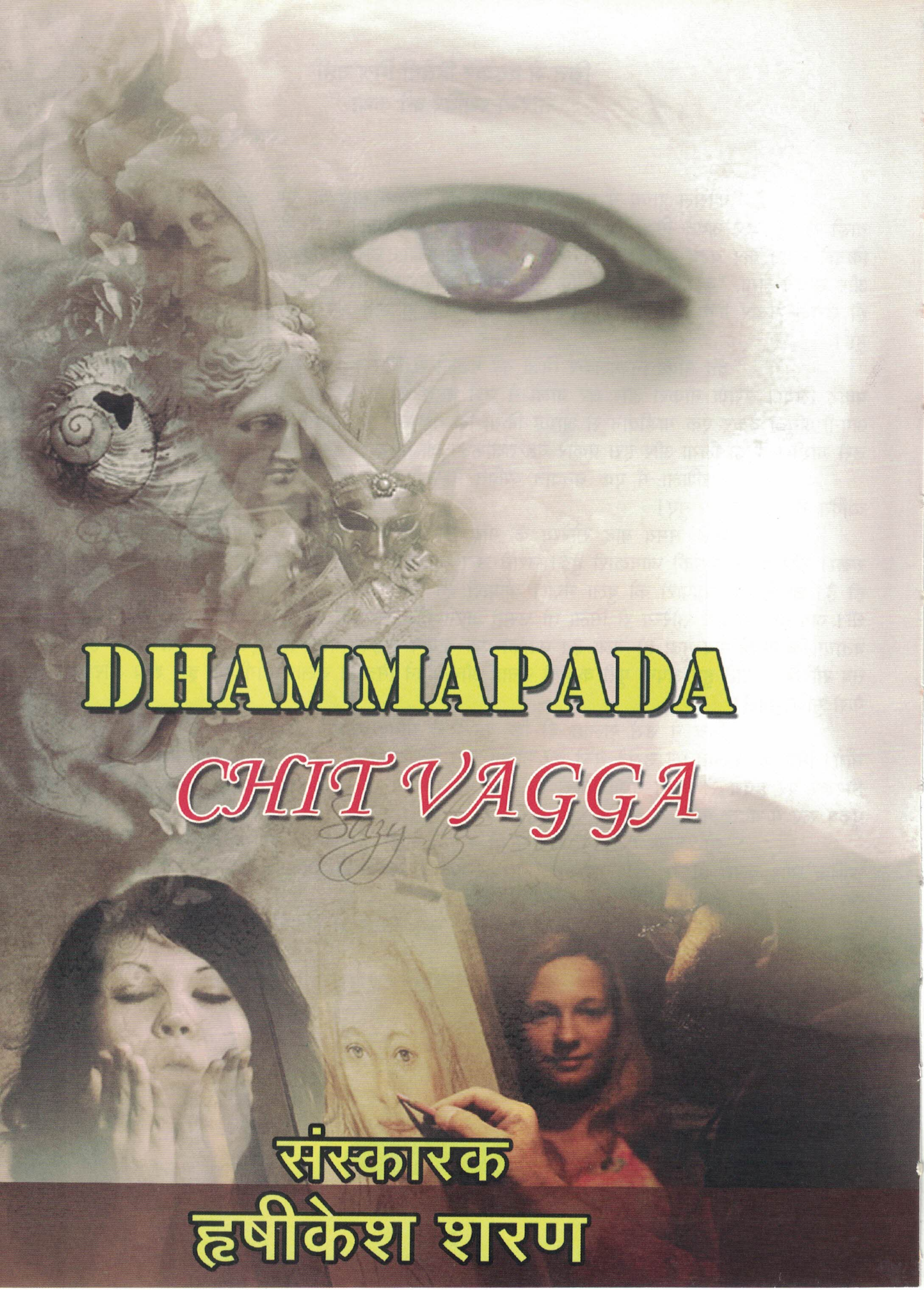

DHAMMAPADA

CHIT VAGGA

संस्कारक
हृषीकेश शरण

पुण्य पुष्प का बागीचा उगाएं

धम्मपद

पुष्प वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक : ह्षीकेश शरण

पुण्य पुष्प का बागीचा उगाएं

धम्मपद

पुष्प वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

पुष्प वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	माली की कथा	44	यमलोक कौन जीत सकेगा ?	111
2.	माली की कथा	45	निर्वाण की खोज में लगा हुआ यमलोक जीतेगा	113
3.	मरीचिकर्मस्थनिक की कथा	46	जीवनः पानी का एक बुलबुला	115
4.	विडूडभ की कथा	47	जीवन पर्यन्त कामभोग के फूल मत चुनिए	117
5.	पतिपूजिका की कथा	48	कामभोग रूपी पुष्प न चुनें, यमराज पकड़ लेगा	119
6.	कंजूस कोसिय की कथा	49	भिक्षु भिक्षाटन की कला भँवरे से सीखें	121
7.	पावेयक आजीवक की कथा	50	अपना ही कृत–अकृत देखें	123
8.	छत्रपाणि उपासक की कथा	51	कौन फूल उपयोगी है ?	125
9.	छत्रपाणि उपासक की कथा	52	सुभाषित वाणी गंधमय फूल की तरह होती है	127
10.	विशाखा की कथा	53	इंसान : शुभ कर्म करः जीवन छोटा है	129
11.	आनन्द थेर के प्रश्न की कथा	54	सद्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध फैलाता है	131
12.	आनन्द थेर के प्रश्न की कथा	55	सदाचार की सुगन्ध श्रेष्ठ होती है	133
13.	महाकस्सप थेर के पिंडपात की कथा	56	शीलवानों की सुगन्ध देवलोक तक जाती है	135
14.	गोधिक थेर के परिनिर्वाण की कथा	57	मार किसे नहीं जान सकता ?	137
15.	गर्हादत्त की कथा	58	बुद्ध श्रावक कैसे शोभता है ?	139
16.	गर्हादत्त की कथा	59	श्रावक प्रज्ञा से शोभता है	141

गाथा: को इमं पठविं विचेस्सति, यमलोकं च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ।।44।।

अर्थ: कौन है जो इस पृथ्वी और देवताओं सहित यम लोक को जीत सकेगा ? कौन चतुर व्यक्ति अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पद को फूल की भाँति चुन सकेगा ?

यमलोक कौन जीत सकेगा ?
माली की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में प्रवास के दौरान बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये दो गाथाएं कहीं।

एक बार कुछ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव गए और फिर वहाँ से जेतवन विहार लौट आए। संध्या बेला में सभी भिक्षु चर्चा कर रहे थे कि गाँव कैसा था, वहाँ की जमीन उपजाऊ थी या नहीं, अधिक बालू था या जमीन पथरीली थी - मिट्टी लाल थी या काली आदि-आदि। उसी समय बुद्ध वहाँ आए। उन्होंने जाना कि किस विषय पर चर्चा हो रही थी। तब शाक्य मुनि ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! तुम उस धरती की चर्चा कर रहे हो जो शरीर से बाहर है; अच्छा हो अगर तुम अपने शरीर का ध्यान करो, उसके बारे में जानो। उससे तुम्हें साधना में मदद मिलेगी। तुम्हें आध्यात्मिक धरती पर मनन करना चाहिए।"

उन्होंने एक माला बनाने वाले का उदाहरण देकर समझाया। एक मालाकार सही फूलों को चुनता है और फिर उन्हें तोड़कर एक अच्छी माला बनाता है। उसी प्रकार जीवन के सत्य को जानने के लिए कौन प्रयत्न करेगा ? संसार में जीवन के सही रहस्य को कौन खोज पायेगा ? स्वर्ग और पाताल की जानकारी किसे प्राप्त हो सकेगी ? जैसे एक मालाकार सुन्दर-सुन्दर फूलों को पहचान लेता है और फिर उससे एक सुन्दर माला बना देता है उसी प्रकार धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को एक मालाकार की तरह कौन समझ पायेगा ?

गाथा: सेखो पठविं विचेस्सति, यमलोकं च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।।45।।

अर्थ: शैक्ष्य (निर्वाण की खोज में लगा हुआ व्यक्ति) ही देवताओं सहित इस यमलोक और धरती को जितेगा। चतुर शैक्ष्य ही अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा।

निर्वाण की खोज में लगा हुआ यमलोक जीतेगा
माली की कथा

इन प्रश्नों को पूछने के बाद शाक्य मुनि इन प्रश्नों के उत्तर भी देते हैं। जो आत्मज्ञान का चयन करेगा, जानेगा, समझेगा, साक्षात्कार करेगा अर्थात् कुशल साधक ही धर्मपदों का भली भाँति चयन कर पायेगा। जैसे कोई माली बागीचे में जाकर अभी नहीं खिले हुए, कीड़ों द्वारा खाये हुए, सूखे तथा गाँठ बने फूलों को छोड़ देता है और उनकी जगह सुन्दर, सुगन्धित फूलों को चुन लेता है उसी प्रकार शैक्ष्य (साधक) बुद्ध द्वारा सुकथित, बोधिपक्षीय धर्म पदों का प्रज्ञा द्वारा चयन करेगा, समझेगा तथा साक्षात्कार करेगा। इस प्रकार एक सच्चा साधक ही यमलोक, स्वर्ग-लोक और धरती-लोक के विषय में ठीक-ठीक समझ सकेगा।

ऐसा कहकर शाक्य-मुनि ने ये दो गाथायें कहीं।

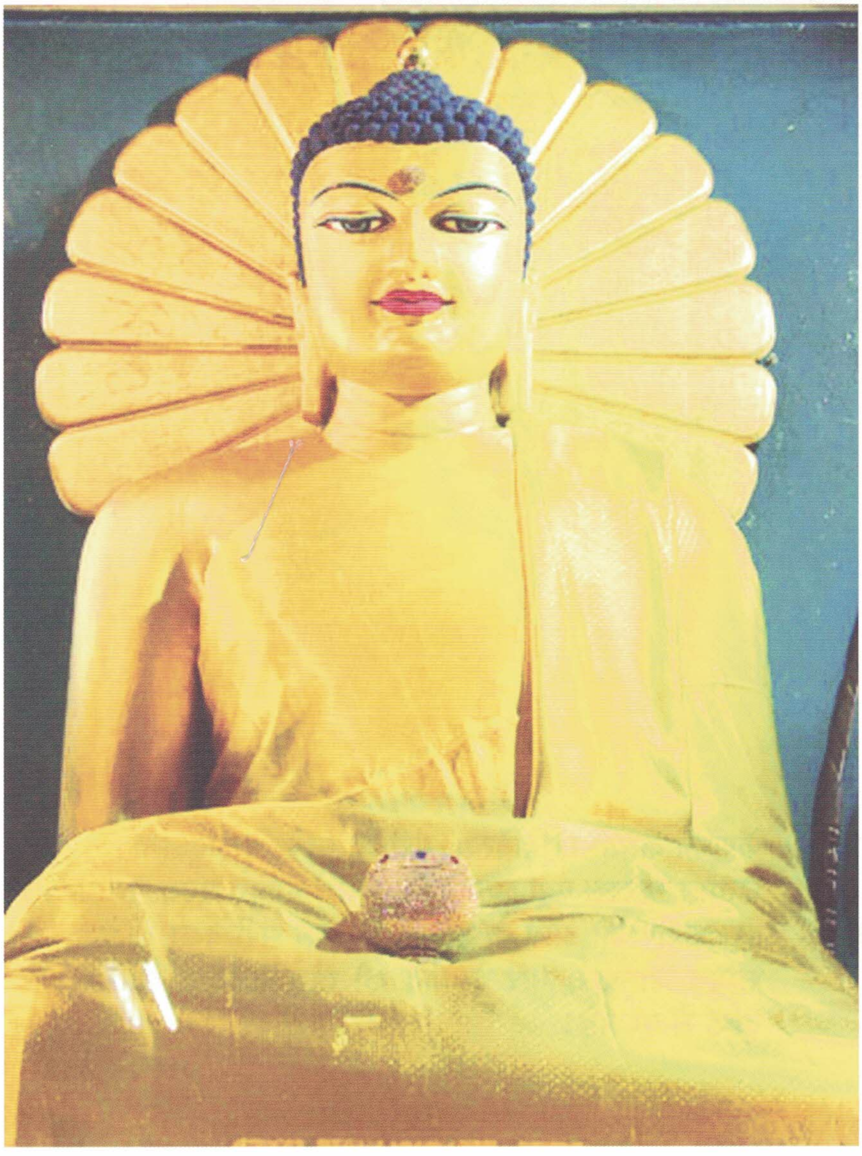

गाथा: फेणूपमं कायमिमं विदित्वा, मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि, अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे।।46।।

अर्थ: इस शरीर को झाग के समान या मरू मरीचिका के समान जानकर, मार के फंदे को तोड़ यमराज की दृष्टि से दूर रहे।

जीवनः पानी का एक बुलबुला
मरीचिकर्मस्थनिक की कथा

स्थानः जेतवन, श्रावस्ती

एक भिक्षु विपश्यना साधना करने हेतु वन में गया। उसने चित्त को वश में करने की पूरी कोशिश की पर वह सफल नहीं हो पाया। उसका ध्यान तुरंत भंग हो जाता था। असंतुष्ट होकर उसने सोचा कि शास्ता के पास चलता हूँ और उनसे ही शिक्षा लूँगा कि क्या करूँ। रास्ते में उसने मरीचिका देखी और उसके अन्तःनेत्र खुल गए।

उसने विचार किया, "कितने आश्चर्य की चीज है मरीचिका ! बालू से तप्त भूमि पर दूर से देखने से ऐसा आभास होता है कि वहाँ पानी है। जब आदमी वहाँ पहुँचता है तो उसे पानी नहीं दिखता है। पर कुछ दूर आगे पुनः तप्त बालू के ऊपर पानी का आभास होता है। मृग मरीचिका के पीछे दौड़ता है कि उसे पीने के लिए पानी प्राप्त हो जाए। पर उसे पानी नहीं मिलता और इस प्रकार पानी की तलाश में दौड़ता-दौड़ता अपने प्राण गँवा देता है।" उसने जीवन की तुलना मरीचिका से की और सोचा, "यह जीवन भी मरीचिका की तरह है। हम धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ते हैं। पर धन-दौलत, मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा- किसी से भी हमारी तृप्ति नहीं होती है। कोई एक चीज प्राप्त होती है तो फिर दूसरी चीज प्राप्त करने के लिए तृष्णा जाग जाती है। इस प्रकार तृष्णा के पीछे दौड़ते-दौड़ते मनुष्य अंततः मृत्यु तक पहुँच जाता है।"

चूँकि उस भिक्षु ने मरीचिका के माध्यम से अर्न्तज्ञान प्राप्त किया था अतः अन्य भिक्षुओं ने उसका नाम 'मरीचिकर्मस्थनिक' रख दिया।

वह भिक्षु चिंतन-मनन करता हुआ शास्ता के पास पहुँचा। शास्ता ने उसे समझाया "जो व्यक्ति यह समझ जाता है कि यह जीवन मरीचिका के समान है या यह शरीर झाग के बुलबुले के समान है वह जीवन के सत्य को समझ जाता है। वह मार के फूल के वाणों को तोड़ देता है। उसे मृत्यु के सम्राट का कभी दर्शन नहीं होता।"

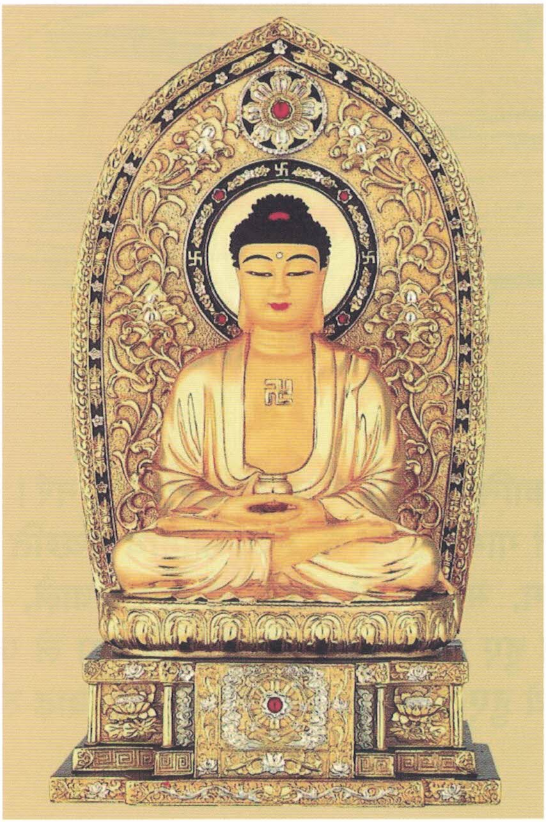

गाथा: पुप्फानि हेव पचिनन्तं, व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व, मच्चु आदाय गच्छति।।47।।

अर्थ: काम, भोग रूपी पुष्पों को चुनने वाले, आसक्ति में डूबे हुए मनुष्य को मृत्यु वैसे ही बहा ले जाती है जैसे सोये हुए गाँव को नदी की बढ़ी हुई बाढ़ ले जाती है।

जीवन पर्यन्त कामभोग के फूल मत चुनिए
विडूडभ की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

कोसलराज पसेनदि तथागत से सामीप्य बढ़ाने का इच्छुक था। वह सोचता था कि ऐसा करने से उसका कल्याण होगा। अतः उसने विचार किया कि शाक्य वंश से वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिया जाए। अपने दूतों के माध्यम से उसने शाक्य राज-दरबार में अपना प्रस्ताव भेजा।

शाक्यों की सभा हुई। उसमें विचार-विमर्श हुआ कि राजा पसेनदि का कुल उनके योग्य नहीं है। अतः किसी राजकुमारी का हाथ देना अनुचित था। महानाम ने एक रास्ता निकाला जिसे पूर्णतः गुप्त रखा गया। राजकुल के बाहर वाषभ क्षत्रिया की एक लड़की से उसका विवाह कर दिया गया। वाषभ सुन्दर थी, राजा पसेनदि उससे खुश था। बाद में उसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विडूडभ रखा गया। राजकुमार सात वर्ष का हुआ। उसने नाना के यहाँ जाने की जिद पकड़ ली। वह नाना के यहाँ गया; वहाँ उसकी अच्छी खातिरदारी की गयी।

कोसल वापसी के दिन सभी लोग राजमहल से निकले । पर एक सैनिक गलती से अपनी तलवार अंदर ही भूल आया। अतः वह अपनी तलवार लेने राजमहल में गया। वहाँ उसने देखा कि एक नौकरानी उस स्थान को धो रही थी जहाँ राजकुमार विडूडभ बैठा हुआ था तथा बड़बड़ा रही थी, "चले आते हैं दासी के लड़के जगह अपवित्र करने ! जगह साफ कर लूँ।" सैनिक ने उसे कुरेदा और पूरी सच्चाई जानकर राजकुमार को बता दी।

राजकुमार यह सुनते ही आग-बबूला हो गया। उसने शाक्य वंश को नाश करने का प्रण कर लिया। राजा पसेनदि भी सारी बात सुनकर क्रुद्ध हो गया। वह शास्ता से मिला। शास्ता ने उसे ठीक से समझा दिया। तब राजा पसेनदि का गुस्सा शान्त हो गया।

समय के अन्तराल से विडूडभ कोसल देश का राजा बन गया। उसने शाक्य राज पर चढ़ाई कर दी। महानाम शाक्य और कुछ अन्य शाक्यों को छोड़कर सभी को मार डाला। जो बचे वे 'तृण शाक्य' तथा 'नल शाक्य' के नाम से जाने गए। शाक्य वंश का नाश कर विडूडभ कोसल वापस जा रहा था। रास्ते में अचिरावती नदी पड़ती थी। नदी के किनारे वे सभी रुककर विश्राम करने लगे। अचानक नदी में भीषण बाढ़ आ गई। सभी उसमें डूबकर मर गए। इस प्रकार विडूडभ का भी अंत हो गया।

जब तथागत को इसकी जानकारी हुई तो उन्होंने कहा, "विडूडभ जैसे लोग पूरे जीवन कामभोग रूपी फूल चुनते रहते हैं। ऐसे लोगों के जीवन का अंत वैसे ही हो जाता है जैसे बाढ़ सोये हुए गाँव को बहा ले जाती है। तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: पुप्फानि हेव पचिनन्तं, व्यासत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु, अन्तको कुरुते वसं।।48।।

अर्थः काम भोग रूपी पुष्प चुनने वाले, आसक्ति में डूबे मनुष्य को, जो अभी तक कामनाओं से तृप्त नहीं हुआ है, यमराज अपने वश में कर लेता है।

कामभोग रूपी पुष्प न चुनें, यमराज पकड़ लेगा
पतिपूजिका की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक महिला रहती थी। सोलह वर्ष की आयु में ही उसका विवाह कर दिया गया। उसे चार पुत्र हुए। वह विहार जाकर वहाँ सफाई आदि और भिक्षुओं की सेवा करती थी। उसे पूर्व जन्म की बातें जानने की सिद्धि प्राप्त थी। अपने पूर्व जन्म में वह तावतिंस दिव्य लोक में मालभारी की पत्नी थी। धरती पर जन्म लेने पर भी उसके मन में सदा यह लालसा बनी रही कि उसका पुनर्जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हो और वह एक बार फिर मालभारी की पत्नी बने। वह इसी भावना से भिक्षुओं की सेवा करती थी। चूँकि वह अपने पति को बहुत चाहती थी, मानों उसकी पूजा ही किया करती थी, अतः लोगों ने उसका नाम 'पतिपूजिका' रख दिया था।

एक दिन वह किसी बीमारी के कारण चल बसी। मृत्यु के बाद तावतिंस दिव्य लोक में अपने पति के पास जा पहुँची। उस समय उसकी दूसरी सहेलियाँ उसके पति की सेवा कर रही थीं। मालभारी ने पूछा, "आज सुबह से कहाँ थीं ? अभी-अभी देख रहा हूँ।" "स्वामी ! मेरी मृत्यु हो गई थी।" "सच ! कहाँ जन्म हुआ था ? " "श्रावस्ती के एक उच्च कुल में।" "वहाँ कितना समय बिताया ? " "दस मास तो माँ की कोख में और उसके बाद सोलह वर्ष की आयु में विवाह हुआ, चार पुत्रों की माता बनी और धरती पर शरीर त्यागने के बाद एक बार पुनः तावतिंस दिव्य लोक में जन्म हुआ है और आपके सामने उपस्थित हूँ।" "मनुष्यों की उम्र सामान्यतः कितनी होती है ? " "अधिक से अधिक सौ वर्ष।" "बस इतनी कम उम्र होती है ? " "जी, हाँ श्रीमान्।" "इतनी कम उम्र पाकर भी लोग क्या प्रमाद में ही अपना समय बिता देते हैं या धर्म, पुण्य आदि सत्कर्म भी करते हैं ? " "प्रश्न मत कीजिए, स्वामी ! वहाँ तो मनुष्य अपने को अजर-अमर मानते हैं और उसी के अनुकूल प्रमत्त आचरण करते हैं।" यह सुनकर मालभारी को बहुत दुःख हुआ। उसने सोचा, "आश्चर्य है ! घोर आश्चर्य है ! सिर्फ सौ वर्ष की छोटी आयु प्राप्त करने पर भी धरती के लोग प्रमत्त होकर सोते हुए अपना सारा समय नष्ट कर देते हैं। पता नहीं धरती के ये लोग अपने दुःखों से कब मुक्त होंगे ? मनुष्यों की यह आयु त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के सिर्फ एक दिन के बराबर है। इतनी कम उम्र प्राप्त कर प्रमाद युक्त जीवन बिताना सचमुच ही एक भीषण प्रमाद की बात है।"

उधर भिक्षुओं ने देखा कि विहार साफ सुथरा नहीं है। पता किया तो पता चला पतिपूजिका का देहावसान हो गया है। वे शास्ता के पास गए और पूरी बात बताई। शाक्य-मुनि ने उन्हें समझाया, "हाँ भिक्षुओं ! मनुष्य जीवन की अवधि बहुत ही छोटी है। इसी कारण सांसारिक विषयों में लिप्त इंसान को जब मृत्यु पकड़कर ले जाती है तो वह रोता, कलपता रहता है।"

यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यथापि भमरो पुप्फं, वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय, एवं गामे मुनी चरे।।49।।

अर्थः जैसे भँवरा किसी भी पुष्प को बिना हानि पहुँचाये रस पीकर चल देता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी भिक्षाटन करनी चाहिए।

भिक्षु भिक्षाटन की कला भँवरे से सीखें
कंजूस कोसिय की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में कोसिय नाम का एक कंजूस सेठ रहता था। वह किसी को कोई चीज न तो देना चाहता था और न देता था। एक दिन पति-पत्नी को विचार आया कि मालपुए बनायें । पर उन्हें भय था कि अगर सभी के सामने मालपुए बनाए गए तो लोग आयेंगे और उन्हें भी मालपुए खिलाने होंगे। ऐसा सोचकर वे घर की ऊपरी मंजिल में चले गए और वहीं मालपुए बनाने लगे।

उन दिनों शास्ता श्रावस्ती में ही थे। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि पति-पत्नी जल्दी ही स्त्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में हैं। अत: उन्होंने भन्ते महामोग्गलान को भेजा कि वे पति-पत्नी को जेतवन विहार लेकर आएँ। मोग्गलान वहाँ पहुँचे और पति-पत्नी को दान देने का महत्त्व बताया। कोसिय सेठ उनकी बातों को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने मालपुए की पूरी टोकरी भन्ते मोग्गलान को दान स्वरूप दे दी। इसी के साथ एक आश्चर्यजनक बात हुई। उसकी अपनी क्षुधा गायब हो गई।

मोग्गलान सेठ पति-पत्नी को लेकर शास्ता के पास पहुँचे। पति-पत्नी ने मालपुओं की टोकरी से सभी भिक्षुओं और तथागत को मालपुए परोसे। इसके बाद कंजूस सेठ ने अपनी सारी सम्पत्ति बौद्ध त्रिरत्न : बुद्ध, धर्म एवं संघ को समर्पित कर दी और स्वयं भिक्षु बन गया।

कुछ दिनों बाद मालपुए के प्रश्न पर भिक्षुगण मोग्गलान की प्रशंसा कर रहे थे। शाक्य-मुनि ने उनके वार्त्तालाप को सुनकर कहा : भिक्षुओं ! भिक्षु को लोगों के अंदर श्रद्धा बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और भँवरे की तरह ग्राम वासियों से भिक्षाटन करना चाहिए जैसा मेरा शिष्य मोग्गलान करता है।"

भिक्षु को चाहिए कि वह जब भिक्षाटन करे तो बिना किसी भेद-भाव के भिक्षा ग्रहण करे और भिक्षा प्राप्त कर विहार वापस आ जाए।

गाथा: न परेसं विलोमानि, न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च।।50।।

अर्थ: मनुष्य को चाहिए कि वह न तो दूसरों के दोष देखे और न दूसरों के कृत-अकृत पर ध्यान दे। उसे चाहिए कि वह अपने ही कृत-अकृत को देखे।

अपना ही कृत-अकृत देखें
पावेयक आजीवक की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक महिला पावेयक नामक एक आजीवक नग्न साधु को पुत्र समान मानती थी। उसकी खातिरदारी में वह कोई कसर नहीं छोड़ती। उसके पड़ोसी अक्सर बुद्ध के प्रवचन सुनने जाया करते थे और लौटकर उसे बताते 'बुद्ध के धर्म प्रवचन की विधि अनूठी है'। वे बुद्ध-शिक्षा की खूब प्रशंसा करते थे। बार-बार सुनकर उस स्त्री के मन में भी बुद्ध-प्रवचन सुनने की प्रबल इच्छा उठ खड़ी हुई। उसने पावेयक से अपने मन की बात कही कि वह भी बौद्ध विहार जाकर धर्मदेशना सुनना चाहती है। पावेयक ने उसे सलाह दी कि वह वहाँ नहीं जाए। उसके बार-बार आग्रह करने पर भी वह साधु नहीं माना। अतः उस महिला ने सोचा कि क्यों न बुद्ध को अपने घर पर ही भोजन के लिए आमंत्रित कर लूँ। यह विचार कर संध्या बेला में उसने अपने पुत्र से कहा कि वह बौद्ध विहार जाए और कल के लिए तथागत को भोजन के लिए आमंत्रित करके आए।

उसका पुत्र जब शाक्य-मुनि को आमंत्रित करने जा रहा था तो उसे रास्ते में पावेयक मिल गया। पूछने पर लड़के ने बता दिया कि वह शास्ता को निमंत्रित करने जा रहा है। उस साधु ने उसे सलाह दी कि वह बुद्ध को निमंत्रित करने न जाए। लड़के ने कहा, "मुझे अपनी माँ से बहुत डर लगता है। अतः मुझे जाना ही होगा।" "ठीक है तुम अपने घर का रास्ता उसे मत बताना।" "जो आदेश श्रीमान् ! " यह कहकर वह लड़का बौद्ध विहार चला गया और बुद्ध को भोजन के लिए निमंत्रित कर दिया। रास्ते में वह नग्न साधु एक बार फिर मिला। पूछने पर उस लड़के ने स्पष्ट कर दिया कि उसने अपने घर का पता नहीं बताया है। इससे वह नग्न साधु बहुत प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन वह आजीवक उस महिला के यहाँ सुबह-सुबह ही आ पहुँचा। वह पीछे के कमरे में बैठ गया। उसने सोचा, "अच्छा हुआ बुद्ध को मार्ग नहीं बताया गया। अब तो वह नहीं आ पाएगा।" लेकिन उसे नहीं मालूम था कि जिसने बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर 'अमृत महानिर्वाण का मार्ग' खोज लिया था, उसके लिए भौतिक जगत का कोई मार्ग खोजना कठिन नहीं था। उसे गाँव के रास्ते बताने की जरूरत कहाँ ?

शाक्य मुनि नियत समय पर उस महिला के यहाँ पहुँचे। महिला ने शरीर के पंच अंगों से सादर प्रणाम किया और आसन पर बैठाकर भोजन कराया। भोजनोपरान्त शास्ता ने मधुर स्वर में अनुमोदन किया। वह महिला बार-बार 'साधु-साधु' कह रही थी। आजीवक यह सुनकर आग-बबूला होने लगा। वह भला-बुरा कहते हुए पीछे के कमरे से निकला और वहाँ से चला गया।

उपासिका उसके व्यवहार से शर्मिन्दगी महसूस कर रही थी। अतः उसका ध्यान धर्मकथा से विचलित हो रहा था। बुद्ध ने उससे पूछा, "धर्मकथा में मन क्यों नहीं लगा पा रही हो ? " "भन्ते ! इस घटना से मेरा मन विचलित हो गया है।" तब बुद्ध ने समझाया, "धर्म के विपरीत बातों में चित्त को रमने नहीं देना चाहिए। ऐसी बातों से मन हटाकर केवल अपने करने या न करने पर ध्यान देना चाहिए।"

गाथा: यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो।।51।।

अर्थ: जैसे फूल सुन्दर हो, पर वह गंध रहित हो उसी प्रकार कहे अनुसार कार्य न करने वाले की सुभाषित वाणी निष्फल होती है।

कौन फूल उपयोगी है ?
छत्रपाणि उपासक की कथा

स्थान: जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में छत्रपाणि नाम का एक उपासक रहता था। वह त्रिपिटक का ज्ञाता था तथा अनागामी भी था। किसी दिन वह शास्ता का धर्मप्रवचन सुनने पहुँचा। वह शास्ता के सामने गया, सादर प्रणाम किया और फिर एक तरफ बैठ गया।

थोड़ी देर बाद राजा प्रसेनजित भी तथागत की पूजा-आराधना और धर्म-प्रवचन के लिए आया। छत्रपाणि वहीं बैठा हुआ था। उसने सोचा, "इस समय बौद्ध विहार में राजा के आगमन पर उठकर उसका सत्कार करना उचित है या नहीं ? " फिर उसने सोचा, "इस समय संसार में जो सर्वश्रेष्ठ हैं मैं उनके सम्मुख बैठा हूँ। राजा का स्तर तो उससे नीचे होता है। अत: जो सर्वश्रेष्ठ बुद्ध हैं उनके सामने अगर राजा का सत्कार करने के लिए खड़ा होता हूँ तो निश्चय ही यह शास्ता का अपमान होगा। इसके विपरीत अगर राजा के सम्मान में खड़ा नहीं होता हूँ तो राजा नाराज होगा। राजा नाराज होता है तो होए, मैं शास्ता की तुलना में उसे अधिक सम्मान नहीं दूँगा। अत: मैं अपने आसन से नहीं उठूँगा।" ऐसा विचार कर वह अपने आसन से नहीं उठा।

बुद्धिमान और समझदार लोग, बड़े-बुजुर्गों एवं श्रेष्ठ लोगों के सामने सम्मानित नहीं किए जाने पर नाराज नहीं होते परन्तु राजा इस प्रकृति का नहीं था। छत्रपाणि से प्रणाम और उचित सम्मान न पाकर वह मन ही मन क्रोधित हो गया और शास्ता को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया।

शाक्य मुनि सर्वज्ञानी थे। उन्होंने राजा के हाव-भाव से उसका मनोभाव पकड़ लिया। अत: उसका गुस्सा शांत करने के लिए उन्होंने छत्रपाणि के गुणों का बखान किया। इससे राजा का क्रोध कुछ हद तक शांत हो गया।

कुछ दिनों बाद राजा ने एक दिन छत्रपाणि उपासक को अपने महल के सामने से, भोजन के बाद छाता ताने हुए तथा जूते पहने हुए जाते देखा। उसने अपने सिपाहियों को भेजकर उसे बुलाने के लिए कहा। छत्रपाणि ने राजा के निकट पहुँच कर छाता और जूता एक तरफ रख दिया और उन्हें प्रणाम कर खड़ा हो गया। राजा ने व्यंग्य करते हुए कहा, "क्यों जी, उपासक ? जूता और छाता अलग क्यों रख दिया ? " "राजा से मिलने आ रहा हूँ, अत: उनके सम्मान में।" "तो तुम्हें आज समझ में आ रहा है कि मैं राजा हूँ।" "नहीं राजन ! मैं तो सदैव ध्यान रखता हूँ कि आप राजा हैं।" "अगर ऐसी बात थी तो उस दिन शास्ता के सामने तुम बैठे क्यों रहे। उस दिन तुम मेरे सम्मान में खड़े क्यों नहीं हुए ? " "राजन ! उस दिन मैं संसार में सर्वश्रेष्ठ के आगे बैठा हुआ था। अगर प्रदेश के राजा के सम्मान पर मैं उठ खड़ा होता तो संसार के राजा का अपमान होता। यह सोचकर मैं अपने आसन से नहीं उठा।"

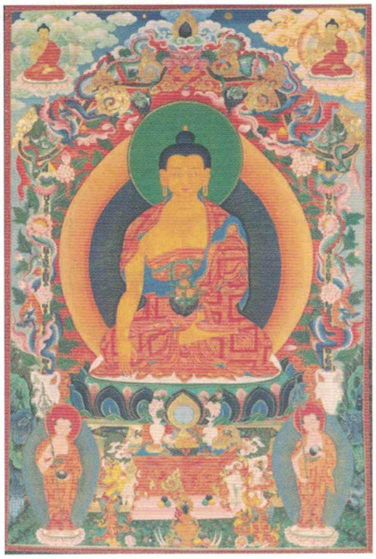

गाथा: यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो।।52।।

अर्थ: जैसे फूल सुन्दर हो और उसमें गंध भी हो, उसी प्रकार कहे अनुसार कार्य करने वाले की सुभाषित वाणी सफल होती है।

सुभाषित वाणी गंधमय फूल की तरह होती है
छत्रपाणि उपासक की कथा

तब राजा ने कहा, "चलो ठीक है ! मैंने तुम्हारी बात मान ली। सुना है तुम इस लोक और परलोक के विषय में, उचित-अनुचित के विषय में तथा त्रिपिटक के अच्छे विद्वान हो। कृपया अंत:पुर में आकर रानी को धर्मकथा सुनाया करो।" "नहीं राजन ! ऐसा नहीं हो सकेगा।" "क्यों श्रीमान् ?" "राजन ! राजा के महल में उचित-अनुचित सभी कुछ होता रहता है। अतः वह दोषपूर्ण होता है।" "क्या ऐसी बात तो नहीं कि उस दिन की सत्कार वाली घटना को याद किये हुए हो ? " "नहीं श्रीमान् ! ऐसी बात नहीं है। गृहस्थों का राजा के अंत:पुर में जाना उचित नहीं है। उनसे कोई अनुचित कार्य हो सकता है। अतः उचित यही होगा कि आप किसी भिक्षु को अंत:पुर में आने के लिए आमंत्रित कर लीजिए और उससे धर्मकथा सुनवा लीजिए।" "ठीक है, तुम जा सकते हो", राजा ने कहा। उसे विदा कर राजा शास्ता के पास गया और उनसे आग्रह किया, "भन्ते ! रानी मल्लिका देवी एवं उनकी पतोहू, वासभखत्तिया आपसे धर्म प्रवचन सुनना चाहती हैं। अतः अच्छा होता कि आप प्रतिदिन भिक्षु संघ के साथ मेरे राजमहल में आते और धर्म कथा सुनाते।" तब शाक्य-मुनि ने राजा को समझाया, "राजन ! बुद्ध कहीं भी बँधकर धर्म प्रवचन नहीं किया करते। इसलिए मेरे लिए संभव नहीं होगा कि प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ आकर धर्म-प्रवचन किया करूँ।" "अगर ऐसी बात है तो भन्ते किसी अन्य भिक्षु को भेज दें।" तब शास्ता ने आनन्द स्थविर को यह कार्य सौंपा। वे प्रतिदिन अंत:पुर में जाकर धर्मकथा सुनाने लगे। उन दोनों श्रोताओं में मल्लिका देवी बहुत ही श्रद्धा से कथा सुनती थीं। वह किसी भी कथा को सावधानी से सुन तुरंत ही हृदयंगम कर लेती थीं। पर वासभखत्तिया न तो सावधानी से सुनती थी और न मन लगाती थी। अतः वह कुछ भी हृदयंगम नहीं कर पाई। एक दिन तथागत ने आनन्द भन्ते से पूछा, "क्या उपासिकाएं रानी और उनकी पतोहू मन से धर्म ज्ञान प्राप्त कर रही हैं ? " तब आनन्द ने बताया, "रानी मल्लिका तो श्रद्धा से धर्म श्रवण कर रही है पर उसकी पतोहू कथा में मन नहीं लगाती है।"

यह सुन शास्ता ने ये गाथाऐं कहीं।

गाथा: यथापि पुप्फरासिम्हा, कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन, कत्तब्बं कुसलं बहुं।।53।।

अर्थ: जिस तरह कई फूलों के ढेर से फूल चुनकर मालायें गूँथ लेता है, उसी प्रकार संसार में उत्पन्न हुए प्राणी को चाहिए कि वह बहुत सारे शुभ कर्म करे।

इंसान: शुभ कर्म कर: जीवन छोटा है
विशाखा की कथा

स्थान: पुब्बाराम, श्रावस्ती

एक समय की बात है। शास्ता श्रावस्ती के पुब्बाराम विहार में रह रहे थे। उस समय पाँच सौ महिलाओं के एक समूह ने उनसे धर्म की दीक्षा ली। वे सभी सदाचारिणी महिलाएं थीं। तथागत ने आनन्द को बताया कि इससे पूर्व भी वे कस्सप बुद्ध के समय में सद्गुणों के प्रति पूर्णतः समर्पित थीं। इसी कारण बुद्ध के समय भी उनका पुनर्जन्म हुआ था। व्यक्ति को जीवन में सदैव कुशल कर्म करते रहना चाहिए। एक कुशलकर्मी अपने सद्कर्मों से अपना यह लोक और परलोक दोनों ही सुधार लेता है। अतः इंसान को सदा अच्छे कर्म करने पर जोर देना चाहिए। अगर फूलों का ढेर रखा हो परन्तु माली कुशल न हो तो वह अच्छी माला नहीं बना सकता। लेकिन अगर माली चतुर हो तो वह अच्छी माला बना लेगा।

मनुष्य के साथ भी यही होता है। अगर उसमें कुशल मूल है पर श्रद्धा कम है तो वह बहुत कुशल कर्मों को करने में सक्षम नहीं होता है। दूसरी ओर अगर कुशल मूल भी कम है और श्रद्धा भी कम है तो निश्चय ही वह कुशल कर्मों को करने में सक्षम नहीं होता। इसके विपरीत उसमें कुशल मूल भी अधिक मात्रा में हो तथा श्रद्धा भी अधिक मात्रा में हो तो निश्चय ही वह बहुत ही अधिक कुशल मूल के कर्म करेगा।

अच्छे कर्म करने में और एक सुन्दर माला बनाने में समानता है। अच्छे फूल चुनने का तात्पर्य अच्छे-अच्छे कर्म करना है। जैसे माली के सुन्दर माला की खुशबू दूर-दूर तक जाती है वैसे ही इंसान के कर्म ऐसे होने चाहिए कि उसके सद्कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक लोगों को पहुँचे।

गाथा: न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायति।।54।।

अर्थः फूलों, चन्दन, तगर या जूही किसी की भी गन्ध उल्टी हवा की दिशा में नहीं जाती किन्तु सज्जनों की सुगन्ध हवा की विपरीत दिशा में भी जाती है। सद्‌पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध फैलाता है।

सद्‌पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध फैलाता है
आनन्द थेर के प्रश्न की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

एक बार आनन्द थेर श्रावस्ती में सायंकाल ध्यान विपश्यना कर रहे थे । उनका ध्यान फूलों की ओर गया। और वे सुगन्ध के विषय में चिंतन करने लगे, "इन फूलों की सुगन्ध कितनी अच्छी है ? किन्तु ये उसी दिशा में जा रहे हैं जिस दिशा में हवा का रुख है। फूलों की सुगन्ध को तो चारों ओर फैलना चाहिए। ऐसा क्यों है कि उनकी सुगन्ध सभी दिशाओं में न फैलकर सिर्फ हवा की दिशा में ही फैल रही है। शास्ता ने तीन प्रकार के उत्तम गंध की चर्चा की है :- 1. मूलगंध 2. सारगंध एवं 3. पुष्पगंध। क्या कोई ऐसी सुगन्ध हो सकती है जो हवा के विपरीत दिशा में भी फैले ? " ऐसा सोचते हुए आनन्द शास्ता के पास गए, प्रणाम किया और उनसे अपने मन की बात कही "भन्ते ! क्या कोई ऐसी सुगन्ध भी है जो अनुकूल-प्रतिकूल दोनों दिशाओं में जाती हो।"

शाक्य-मुनि ने आनन्द को स्पष्ट करते हुए कहा, "आनन्द ! इन तीनों गन्धों से परे भी एक गन्ध है जिसे शीलगंध कहते हैं। जो व्यक्ति बुद्ध, धर्म एवं संघ के त्रिरत्न की शरण में जाता है और शिक्षा को जीवन में उतारता है, हिंसा (प्राणातिपात) से दूर रहता है, चोरी (अदत्तादान) नहीं करता, कामभोगों में गलत (व्यभिचार, मिथ्याचार) नहीं करता, असत्य भाषण (मृषावाद) नहीं बोलता, सुरा, मद्यपान एवं नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करता, शीलवान की तरह जीवन जीता है और जीवन में शुभ कर्म करने वाला (कल्याणधर्मकर्त्ता) है, दुर्गुण एवं निम्न विचारों से मुक्त चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करता है, मुक्तहस्त दान देता है, सभी इन्द्रियों पर संयम रखता है, त्याग को जीवन में उचित महत्त्व देता है, योग में निष्ठावान होकर उसमें स्थित रहता है, वह व्यक्ति एक अच्छा मनुष्य बन जाता है। निश्चय ही लोग ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं। ऐसे व्यक्ति की देवतागण भी सभी दिशाओं में प्रशंसा करते हैं। ऐसे व्यक्ति के गुणों की सुगंध चारों तरफ फैलती है, लोग उसका सम्मान करते हैं तथा सर्वत्र उसकी प्रशंसा करते हैं। निश्चय ही शीलगन्ध एक ऐसी गन्ध है जो हवा की दिशा में, हवा के विपरीत दिशा में और हवा की दिशा और विपरीत दोनों दिशाओं में चलती है। गुणों की सुगन्ध सभी दिशाओं में जाती है।

गाथा: चन्दनं तगरं वापि, उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं, सीलगन्धो अनुत्तरो।।55।।

अर्थ: चन्दन या तगर, कमल या जूही - इन सभी गन्धों की तुलना में शील (सदाचार) की सुगन्ध श्रेष्ठ होती है।

सदाचार की सुगन्ध श्रेष्ठ होती है
आनन्द थेर के प्रश्न की कथा

टिप्पणी : त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक में पारिजातक वृक्ष की लम्बाई-चौड़ाई सौ योजन मानी जाती है। उसके फूलों की सुन्दरता पचास योजन तक दीखती है और सुगन्ध सौ योजन तक। लेकिन वह हवा के अनुकूल ही जा सकती है, विपरीत दिशा में तो आठ अंगुल भी जाना संभव नहीं है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ फूल की गंध का भी हवा के प्रतिकूल जाना संभव नहीं है। वृक्षों में श्रेष्ठ चंदन की गन्ध, टगर की गन्ध तथा जूही (मल्लिका) के फूलों की गन्ध भी वायु के अनुकूल ही जा सकती है, प्रतिकूल नहीं।

परन्तु बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध एवं बुद्ध श्रावकों के गुणगानों की प्रशंसा की गन्ध हवा के प्रतिकूल जाने में भी सक्षम है। ऐसा कैसे ? क्योंकि अच्छा आदमी अपने शीलों की गंध सभी दिशाओं में फैलाता हुआ चलता है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'उसकी सुगन्ध हवा के विपरीत दिशा में नहीं जा सकती।'

इस प्रकार हम पाते हैं कि शीलवान व्यक्तियों की शीलगन्ध की कोई समानता नहीं कर सकता। यह अनूठी और अद्वितीय है। इसके समान कोई गंध है ही नहीं।

गाथा: अप्पमत्तो अयं गन्धो, य्वायं तगरचन्दनं।
यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो।।56।।

अर्थ: तगर और चन्दन की गन्ध तो थोड़ी-सी ही फैलती है। शीलवानों की सुगंध देवलोक तक फैल जाती है।

शीलवानों की सुगन्ध देवलोक तक जाती है
महाकस्सप थेर के पिंडपात की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महाकस्सप निरोध समाधि से उठे। उनके मन में आया कि आज किसी गरीब से भिक्षा ग्रहण करूँगा ताकि उसे इसका पुण्यफल मिल सके। उधर देवताओं के राजा इन्द्र को पता चल गया कि महाकस्सप भिक्षाटन करने जा रहे हैं। उसने भी महसूस किया कि बुद्ध काल में उसने अभी तक किसी भिक्षु को भिक्षादान नहीं किया है। अतः उसने सोचा कि वह स्थविर को भोजनदान देकर पुण्य कमाएगा। अतः शक्र और उसकी पत्नी सुजाता ने एक गरीब जुलाहे का रूप लिया और गरीबों के मुहल्ले में आकर रहने लगे।

महाकस्सप भिक्षाटन करते हुए शक्र की झोपड़ी के सामने पहुँचे। शक्र और सुजाता ने उन्हें सादर प्रणाम कर उनसे भिक्षापात्र ले लिया और चावल-कढ़ी आदि खाद्य सामग्री डालकर उन्हें दे दी। कढ़ी बहुत ही सुगंधित थी। खाद्य-पदार्थों की सुगंध पूरे राजगृह में फैल गई। महाकस्सप को लग गया कि यह दानकर्त्ता कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। फिर उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से जान लिया कि यह देवताओं का राजा इन्द्र है। शक्र ने इस बात को स्वीकार किया कि वह देवताओं का राजा शक्र है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि उसे आज तक सुअवसर नहीं मिला था कि वह बुद्ध-काल में किसी भिक्षु को भिक्षा दे सके। उसने कहा, "मैं दान करके पुण्य कमाना चाहता था, मेरी पुण्य कमाने की इच्छा थी। अतः मैंने ऐसा किया।" फिर महाकस्सप को अपनी पूरी श्रद्धा के साथ प्रणाम कर इन्द्र और सुजाता अन्तर्ध्यान हो गए।

तथागत विहार में विराजमान थे। उन्होंने यह सब देखा और भिक्षुओं को इस बारे में बताया। भिक्षुगण को आश्चर्य हुआ कि इन्द्र को किस प्रकार पता चल गया कि महाकस्सप अभी-अभी निरोध समाधि से उठे हैं, भिक्षाटन करने जा रहे हैं और यही अवसर उसके लिए सर्वश्रेष्ठ है जब वह भिक्षादान दे सकता है। तब शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं को संबोधित किया, "भिक्षुओं ! इन्द्र ने मेरे पुत्र महाकस्सप के शील की गंध से जानकर भोजन-दान दिया है। टगर और चंदन से आने वाली गंध थोड़ी होती है पर शीलवान पुरुषों के शील की गंध देवलोक में भी जाती है।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।

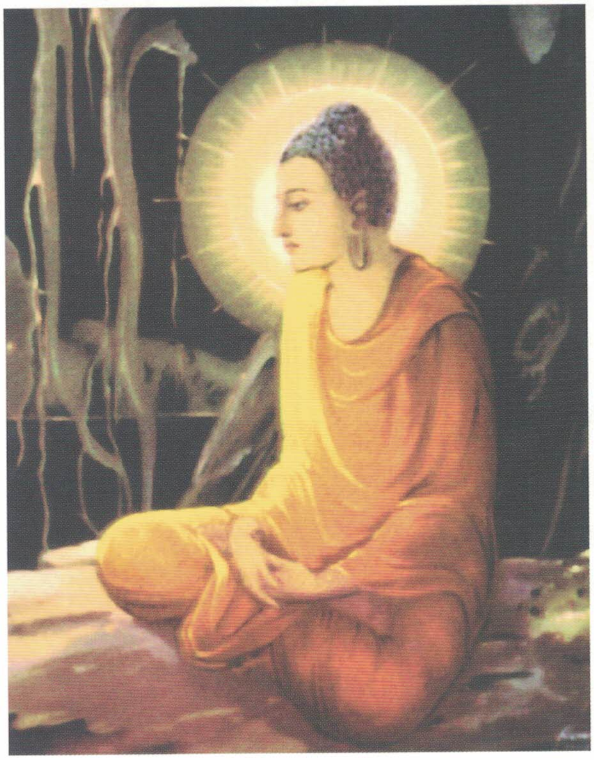

गाथा: तेसं संपन्नसीलानं, अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं, मारो मग्गं न विन्दति। ।57। ।

अर्थ: शीलवान, आलस से मुक्त, ज्ञान द्वारा मुक्त व्यक्तियों के मार्ग को 'मार' नहीं जान सकता।

मार किसे नहीं जान सकता ?
गोधिक थेर के परिनिर्वाण की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय की बात है। मगध के इसिगिल पर्वत पर थेर गोधिक विपश्यना साधना कर रहे थे। वे साधना की एक सीढ़ी चढ़े और बीमार पड़ गए। पर उन्होंने अपनी साधना नहीं छोड़ी। उन्होंने कठोर परिश्रम जारी रखा और फिर बीमार पड़ गए। यह सिलसिला चलता रहा। जब भी वे साधना की अगली सीढ़ी तक पहुँचते, कमजोर होकर बीमार पड़ जाते। एक बार तो वे छः महीनों तक बीमार रहे। लेकिन वे भी दृढ़ निश्चयी थे। उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। उन्होंने निर्णय लिया कि इस बार कुछ भी हो जाए वे अपनी साधना पूरी करके ही रहेंगे, अर्हत्व प्राप्त करके ही छोड़ेंगे, भले ही इसके लिए उन्हें मृत्यु का ही वरण क्यों न करना पड़े। इसलिए बिना किसी विश्राम के वे अपनी साधना में लगे रहे। इतना करने पर भी वे समाधि के निकट नहीं पहुँच सके। अतः उन्होंने निर्णय लिया कि अपनी गर्दन काट लेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया। लेकिन मृत्यु के समय उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। तथागत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह सारा दृश्य देखा और भिक्षुओं के साथ इसिगिल पर्वत पर पधारे।

'मार' को भी इस घटना की जानकारी हुई। वह भी वहाँ जा पहुँचा जहाँ बुद्ध भिक्षुगण के साथ विद्यमान थे। उसने बुद्ध से प्रश्न किया कि गोधिक थेर का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। तब शाक्य-मुनि ने कहा, "मार ! गोधिक ने कहाँ पुनर्जन्म ग्रहण किया है यह जानकर तुम्हारा कोई लाभ नहीं होगा। तुम जानकर क्या करोगे ? पूर्णतः आस्रवमुक्त गोधिक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। तुम अपनी पूरी शक्ति से भी पता नहीं लगा सकते कि ऐसे अर्हत मरणोपरांत कहाँ जाते हैं।"

वेणुवन में धर्म चर्चा करते समय बुद्ध ने बताया कि मार शीलवान, उद्यमी तथा उत्साही व्यक्तियों का पीछा नहीं कर सकता।

गाथा: यथा संकारधानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं।।58।।

अर्थ: जैसे कूड़ा-कर्कट फेंके गए राजमार्ग पर सुगन्धित तथा मनभावक कमल का फूल खिल उठे ....

बुद्ध श्रावक कैसे शोभता है ?
गर्हादत्त की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में श्रीगुप्त तथा गर्हादत्त नाम के दो मित्र रहते थे। श्रीगुप्त शास्ता का शिष्य था और गर्हादत्त निर्ग्रन्थों (जैनों) का। गर्हादत्त को निर्ग्रन्थ साधु सदा समझाते, "अपने मित्र श्रीगुप्त से क्यों नहीं पूछते कि वह श्रमण गौतम के पास क्यों जाता है ? वहाँ उसे कुछ नहीं मिलेगा। अगर वह हमारे यहाँ आकर धर्म श्रवण करे तो उसका बहुत कल्याण होगा।" गर्हादत्त जब भी अपने मित्र श्रीगुप्त से मिलता तो यही प्रश्न किया करता। श्रीगुप्त बहुत दिनों तक अपने मित्र की बात सुनता रहा और चुप रहा पर अन्त में उसने खिन्न होकर अपने मित्र से पूछा, "मित्र ! तुम सुबह-शाम यही प्रश्न करते हो कि मैं श्रमण गौतम के पास क्यों जाता हूँ और तुम्हारे गुरू का प्रवचन सुनने क्यों नहीं आता। लेकिन मुझे यह तो बताओ कि तुम्हारे गुरू क्या जानते हैं।" गर्हादत्त ने उत्तर दिया, "मित्र ! यह पूछो कि मेरे गुरू क्या नहीं जानते। मेरे गुरू के लिए अज्ञात नाम की कोई चीज नहीं है। वे भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य सभी कुछ जानते हैं। उन्हें यह भी मालूम है कि 'यह होगा' और 'यह नहीं होगा।" "अगर ऐसी बात है तो तुमने आजतक अपने गुरूओं के विषय में क्यों नहीं बताया ? अब मैंने उनका महत्व समझ लिया है। कल ही मेरी ओर से उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित करो।" गर्हादत्त अपने गुरूओं के पास गया और सादर प्रणाम कर उन्हें बताया कि श्रीगुप्त ने उन सभी को अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया है। गुरूओं ने पूछा, "क्या उसने स्वयं कहा है ? " "हाँ श्रीमान्।" "तब तो बहुत ही अच्छा हुआ। हम प्रसन्न और संतुष्ट हुए। हमारी चाह पूरी हो जाएगी। अगर वह हमारा शिष्य हो जाएगा तो फिर उसकी सारी सम्पत्ति हमारी हो जाएगी।"

श्रीगुप्त का भवन बहुत विशाल था। उसने एक लम्बा और चौड़ा नाला खुदवाया और उसे कूड़े-कचड़े से भर दिया। उसके ऊपर सावधानी से चादर बिछा आसन लगा दिया। बडे-बड़े बर्त्तनों को केले के पत्तों तथा चादर से ढँक दिया। देखने से लगता था कि इन बर्त्तनों में चावल और कढ़ी रखी हुई है और उसे केले के पत्तों तथा चादर से ढँक दिया गया था। निगंठ आए और जैसे ही वे सभी अपने-अपने आसन पर बैठने लगे, आसन खिसक गए और वे सभी उस खाई में गिर गए। श्रीगुप्त बोल उठा, "आप तो भूत, भविष्य और वर्त्तमान के ज्ञाता हो। आप तो दूसरों के विचारों को जानते, समझते हो। आपकी ऐसी दुर्गति कैसे हो गई ? " इस प्रकार निगंठों की पोल खुल गई।

गाथा: एवं संकारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासंबुद्धसावको।।59।।

अर्थ: ....वैसे ही कूड़ा कर्कट के समान अन्धे अज्ञानी लोगों में सम्यकसम्बुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से प्रकाशित होता है।

श्रावक प्रज्ञा से शोभता है
गर्हादत्त की कथा

गर्हादत्त इस घटना से बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने श्रीगुप्त से बदला लेने का निश्चय किया। उसने भी बुद्ध और भिक्षुसंघ को आमंत्रण दिया। श्रीगुप्त ने इस बीच बुद्ध को पूरी घटना सुना दी और यह भी बता दिया कि संभव है गर्हादत्त ने बदला लेने की भावना से निमंत्रण दिया हो। शास्ता ने अपने अन्तर्नेत्र से देखा कि ये दोनों मित्र स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त करने के लिए परिपक्व हैं। अतः उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

गर्हादत्त ने भी वही सब किया जिसे श्रीगुप्त ने किया था। उसने भी एक लम्बी और चौड़ी खाई खुदवाई और उसमें जलते अंगारे डलवा दिए तथा खाई पर चटाई बिछवा दी और उसके ऊपर आसन लगवा दिया। बड़े-बड़े खाली कड़ाहों को केले के पत्तों और कपड़ों से इस प्रकार ढँक दिया ताकि आभास होने लगे कि ये चावल और कढ़ी से भरे हुए हैं। निमंत्रण के दिन शाक्य-मुनि अपने शिष्यों के साथ गर्हादत्त के घर पहुँचे। बुद्ध ने जब चटाई पर पैर रखा तो वह अपनी जगह पर ज्यों का त्यों रहा, नीचे की ओर न तो खिसका और न गिरा। वे चटाई पर कदम रखकर आगे की ओर बढ़ते चले गए और जलते अंगारे सुन्दर फूलों में बदलने लगे। चारों तरफ मनमोहक और सुगन्धित फूल खिल उठे। उत्सव-स्थल का नजारा देखते ही बनता था। गर्हादत्त फटी-फटी आँखों के साथ देखता ही रह गया। उसने शास्ता को साष्टांग प्रणाम किया। भोजन में भी सभी चीजें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो गईं।

भोजन समाप्त हुआ। भोजनोपरान्त शास्ता ने धर्म प्रवचन किया। उन्होंने समझाया, "लोग अज्ञानी होने के कारण मेरे शिष्यों के गुणों और उनकी शक्ति को नहीं जानते हैं। ऐसे ही अज्ञानी लोगों को इस संसार में 'अंधा' कहा जाता है। इसके विपरीत प्रज्ञावान, ज्ञानी पुरुषों को दृष्टि वाला कहा जाता है।"

यह कहकर शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।

DHAMMAPADA

PUPPA VAGGA

संस्कारक : हृषीकेश शरण

सावधान ! दुर्जनों से बचें

धम्मपद

बाल वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

सावधान ! दुर्जनों से बचें ।

धम्मपद

बाल वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

बाल वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	दरिद्र दुग्गत की कथा	60	किसकी यात्रा लम्बी हो जाती है ?	147
2.	महाकस्सप थेर की कथा	61	मूर्ख का साथ छोड़ दें	149
3.	आनन्द श्रेष्ठी की कथा	62	किस बात की आसक्ति ?	151
4.	दो जेबकतरों की कथा	63	वस्तुतः मूर्ख कौन है ?	153
5.	थेर उदायी की कथा	64	सद्पुरुषों के साथ से लाभ उठाने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा	155
6.	भद्रवर्गीय भिक्षुओं की कथा	65	ज्ञानी धर्म का सार तुरंत समझ जाता है	157
7.	सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा	66	दुष्ट व्यक्ति अपना शत्रु स्वयं है	159
8.	किसान की कथा	67	वैसा कर्म न करें कि पीछे पछताना पड़े	161
9.	सुमन माली की कथा	68	शुभ कर्म : जिससे पछताना न पड़े	163
10.	उत्पल थेरी की कथा	69	पाप मधु समान मीठा हो ही नहीं सकता	165
11.	जम्बुक स्थविर की कथा	70	कौन धर्म के जानकारों की बराबरी नहीं कर सकता ?	167
12.	अहिप्रेत की कथा	71	पाप को भी पकने में समय लगेगा	169
13.	षष्टिकूट प्रेत की कथा	72	मूर्ख का ज्ञान भी अज्ञान ही है	171
14.	सुधम्म थेर की कथा	73	मूर्ख इच्छाओं का गुलाम होता है	173
15	सुधम्म थेर की कथा	74	मूर्ख अपना अभिमान बढ़ाता है	175
16	वनवासी तिस्स थेर की कथा	75	हमारे सामने खुले हैं दो रास्ते	177

गाथा: दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं ।।60।।

अर्थ: जागने वाले के लिए रात एक न कटने वाली रात हो जाती है। थके हुए आदमी के लिए एक योजन का मार्ग भी बहुत लम्बा हो जाता है। उसी प्रकार सद्‌धर्म न जानने वालों के लिए संसार का चक्र लम्बा हो जाता है।

किसकी यात्रा लम्बी हो जाती है ?
दरिद्र दुग्गत की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन राजा प्रसेनजित नगर भ्रमण कर रहे थे तब उनकी दृष्टि एक अति सुन्दर स्त्री पर पड़ी। उनके हृदय में काम-वासना का तूफान उठ खड़ा हुआ। उन्होंने पता लगाया तो पता चला कि वह एक गरीब व्यक्ति दुग्गत की पत्नी थी। राजा उस स्त्री को किसी भी प्रकार प्राप्त करने के लिए पागल हो रहा था।

अत: उसने दुग्गत को बुलाकर उसके नहीं चाहने पर भी उसे जबरदस्ती अपने यहाँ नौकरी पर रख लिया। पर वह दुग्गत के काम में कोई ऐसा दोष नहीं ढूँढ़ पाया जिसके आधार पर उसे मृत्यु दंड देकर उस स्त्री को हथिया सके।

एक दिन राजा ने सोचा कि इसे कोई ऐसा कार्य दिया जाए जो संपादित नहीं हो पाएगा। उसका अभिप्राय मात्र इतना था कि इस बहाने वह दुग्गत को प्राण दंड दे देगा और उसकी पत्नी को अपना लेगा। उसने संध्या बेला में स्नान से पूर्व ही कुमुद कमल के फूल और अरुणावती लाने का आदेश दिया। अगर वह शाम के स्नान से पूर्व ये फूल लेकर नहीं आयेगा तो फिर उसे मृत्यु-दंड मिलेगा।

दुग्गत राह में खाने के लिए थोड़ा-सा भोजन पोटली में बाँधकर कुमुद कमल के फूल और अरुणावती लाने के लिए चल पड़ा। रास्ते में उसने भोजन के थोड़े से अंश को एक राहगीर को खिलाया और बचे हुए चावल के कुछ दाने नदी में फेंक दिया। फिर वह जोर से बोल उठा, "हे नदी के रखवालों ! आप देखो कि किस प्रकार राजा प्रसेनजित मुझे असंभव कार्य सौंपकर मार डालना चाहता है। उसने मुझे ऐसे फूल लाने का आदेश दिया है जिसे शाम तक लाना असंभव है। मैंने भूखे राहगीर को भोजन कराया है तथा मछलियों और जीव-जंतुओं के खाने के लिए चावल के दाने दिए हैं। अत: आप कृपा करके मेरे लिए कुमुद कमल का फूल और अरुणावती मँगाने की व्यवस्था कर दीजिए।" यक्षों के राजा ने उसकी प्रार्थना सुनी तो उसे दुग्गत पर दया आ गई। उसने दुग्गत को कुमुद कमल का फूल और अरुणावती लाकर दे दिया।

उधर राजा प्रसेनजित अपना धैर्य खोता जा रहा था। उसने संध्या होने से पूर्व ही नगर-द्वार बंद करा दिया ताकि दुग्गत नगर में प्रवेश न कर पाए। दुग्गत जब लौटा तब द्वार बंद था। उसने द्वारपाल से द्वार खोलने का आग्रह किया पर उसे द्वारपाल ने बताया कि दरवाजे की चाबी राजा के पास है। अत: उसने अरुणावती को महल की दीवार पर रख दिया और कुमुद कमल के फूल को जमीन में गाड़ दिया और जोर से बोला, "हे नगर वासियों ! तुम मेरे साक्षी बनो। मैंने राजा द्वारा दिए गए असंभव कार्य को कर दिखाया है पर राजा मुझे जान से मार देना चाहता है।" ऐसा कहकर वह जेतवन विहार की ओर चला गया और संपूर्ण रात भिक्षुओं के पास भयभीत होकर सोता रहा।

उधर राजा प्रसेनजित की हालत बहुत खराब थी। उसे पूरी रात बुरे-बुरे सपने आते रहे, भयानक आवाजें आती रहीं। अगले दिन उसने अपने दुखद स्वप्नों का जिक्र रानी मल्लिका से किया और उसकी सलाह पर बुद्ध के पास गया। वहाँ पहुँच कर राजा ने शास्ता को प्रणाम किया और उन्हें बताया, "कल की रात इतनी लम्बी थी मानों समाप्त ही नहीं हो रही थी।" तभी दुग्गत ने स्वर मिलाते हुए कहा, "भन्ते ! मुझे भी कल एक योजन की यात्रा बहुत लम्बी लग रही थी।"

बुद्ध ने दोनों की मनोदशा देखी तथा उन्हें समझाते हुए कहा, "रात्रि के स्वप्न में वे भयानक आवाजें उन चार लोगों की थी जिन्होंने 'कस्सप बुद्ध' के समय पराई स्त्रियों के साथ संबंध रखा था। पराई स्त्रियों के साथ गमन करने के कारण वे अब तक नरक में लौह कुंड में सजा भुगत रहे हैं।" राजा सब कुछ समझ गया, उसे अपनी गलती का एहसास हो गया।

तब शास्ता ने धर्म प्रवचन करते हुए यह गाथा कही।

गाथा: चरं चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दळहं कयिरा, नत्थि बाले सहायता ।।61।।

अर्थ: अगर सन्मार्ग पर चलते समय मनुष्य को अपने समान या अपने से श्रेष्ठ सहयात्री न मिले तो उसे दृढ़ता के साथ अकेला ही चलना चाहिए। परन्तु किसी भी मूल्य पर उसे मूर्ख का साथ नहीं पकड़ना चाहिए, मूर्ख से मित्रता नहीं करनी चाहिए।

मूर्ख का साथ छोड़ दें
महाकस्सप थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय महाकस्सप थेर पिप्पलीगुहा में रह रहे थे। उनके दो शिष्य उनकी सेवा किया करते थे। महाकस्सप थेर बहुत ही पहुँचे हुए ज्ञानी भिक्षु थे।

उनके शिष्यों में एक गुरू की पूरी तन्मयता से सेवा करता था। दूसरा आलसी था, वह स्वयं सेवा क्या करे, आज्ञाकारी शिष्य द्वारा किए गए कार्य को ही अपना कार्य कह दिया करता था। जैसे, अगर पहला शिष्य थेर के मुँह धोने के लिए दतुअन, पानी आदि रख देता था तो दूसरा शिष्य स्थविर के पास जाकर कहता कि दतुअन आदि रख दिए गए हैं, चलकर दाँत साफ कर लीजिए। आज्ञाकारी शिष्य को जब यह पता चला तो उसे अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ ऐसा किया कि स्थविर को पता चल गया कि दूसरा शिष्य आलसी था। इससे आलसी भिक्षु नाराज हो गया। महाकस्सप ने उस कर्त्तव्यबोधहीन भिक्षु को भिक्षुओं के आचरण के विषय में समझाने की चेष्टा की तो वह जल भुन उठा। उसके अन्दर प्रतिशोध की ज्वाला धधकने लगी।

आलसी भिक्षु एक दिन भिक्षाटन हेतु गाँव में गया। उसने वहाँ उपासकों को बताया कि महाकस्सप बीमार हैं और ऐसा कहकर उसने उनसे स्वादिष्ट भोजन ले लिया और स्वयं ही मार्ग में खा गया। महाकस्सप ने उसको डाँटकर समझाने की कोशिश की पर वह पुनः नाराज हो गया।

दूसरे दिन महाकस्सप आज्ञाकारी शिष्य के साथ भिक्षाटन के लिए निकले। उधर दूसरा शिष्य क्रोध से पागल हो रहा था। उसने आव देखा, न ताव। विहार की वस्तुओं को इधर-उधर फेंक दिया और विहार में आग लगा दिया।

शास्ता को उक्त घटना की जानकारी मिली। उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि महाकस्सप को ऐसे मूर्ख का साथ छोड़ देना चाहिए। उन्होंने कपि जातक की कथा सुनाई कि यह दुष्ट भिक्षु पूर्व जन्म में भी इस प्रकार के कर्म किया करता था। एक पूर्व जन्म में यह दुष्ट भिक्षु एक बन्दर था तथा महाकस्सप एक पक्षी थे। उस समय भी चिड़िया से उपदेश सुनकर वानर रूप में वह क्रुद्ध हुआ था तथा उसने चिड़िया का घोंसला उजाड़ दिया था और भाग गया था। ऐसे दुष्ट व्यक्ति का संग त्याग देना चाहिए।

तब उन्होंने उक्त गाथा कही।

टिप्पणी: अगर गलती से मूर्ख से मित्रता हो भी जाए तो उस परिस्थिति में यथाशीघ्र, अति सावधानी से उसके संग से निकल आना चाहिए क्योंकि मूर्ख की मित्रता मंहगी और कष्टदायी होती है, उससे वैर भी मँहगा पड़ता है।

उदाहरण के लिए कुत्ते से न तो वैर अच्छा है और न प्रीति। कहा गया है "काटे, चाटे स्वान को, दोऊँ भाँति विपरीत।"

अर्थात् कुत्ते से मित्रता भली नहीं है, क्योंकि तब वह हमें चाटने लगेगा। उससे वैर भी उचित नहीं है क्योंकि तब वह हमें काट लेगा।

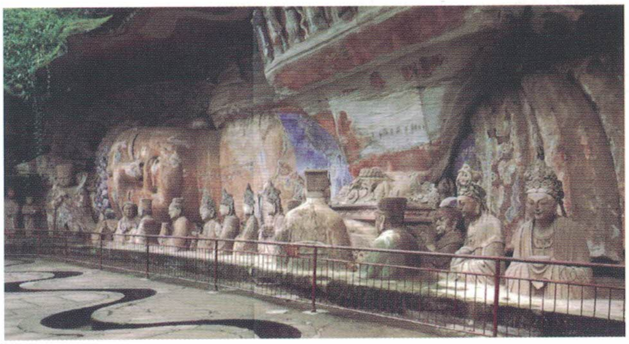

गाथा: पुत्ता मत्थि धनं मत्थि, इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं ।।62।।

अर्थ: 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है' - ऐसा सोचकर मूर्ख व्यक्ति का जीवन दुखमय हो जाता है। अरे ! जब मनुष्य स्वयं अपने आप का नहीं है तो कहाँ से उसका पुत्र और कहाँ से उसका धन होगा ?

किस बात की आसक्ति ?
आनन्द श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक करोड़पति सेठ रहता था। उसका नाम आनन्द श्रेष्ठी था। वह स्वयं तो बहुत बड़ा कंजूस था ही, अपने पुत्र मूलसिरि को भी शिक्षा दिया करता था कि दान-दक्षिणा कदापि नहीं देनी चाहिए। उससे धन नष्ट हो जाता है। वह पुत्र को सलाह देता, "धन का स्वाभाविक नाश हो जाता है। अतः इस पर ध्यान रखना चाहिए। खुशामदी लोग दीमक की तरह धन को खा जाते हैं। अतः उनसे बचकर रहना चाहिए। घर में शराबी लोगों के एकत्र होने पर सतर्क हो जाना चाहिए और इस प्रकार धन का संचय करते हुए घर चलाना चाहिए।" आनन्द श्रेष्ठी ने पाँच बड़े-बड़े घड़ों में चालीस करोड़ मूल्य की सोने की मुहरें छिपा रखी थीं जिसकी जानकारी उसके पुत्र को भी नहीं थी।

मृत्यु पर किसका वश चलता है ? बिना बुलाए, बिना बताए, अनचाहे मेहमान की तरह कभी भी आ धमकती है। आनन्द श्रेष्ठी के साथ भी यही हुआ। एक दिन मृत्यु आई और वह दुनियाँ से चल बसा। पर मरते समय भी उसकी अपने धन में आसक्ति बनी रही।

श्रेष्ठी जीवन पर्यन्त कंजूस था। उसने कभी भी भलाई का काम नहीं किया था। कर्म के देवता के लेखा-जोखा में कोई गलती नहीं होती । उसका जन्म श्रावस्ती के पास ही भिखारियों के एक गाँव में हुआ। जैसे ही वह अपनी माँ की कोख में प्रविष्ट हुआ, भिखारियों के जैसे बुरे दिन आ गए। उनकी आमदनी घट गई, लोगों ने भिक्षा देना कम कर दिया। अतः उन्होंने आपस में विचार-विमर्श कर पता कर लिया कि महिला के गर्भधारण के बाद से ही उनके बुरे दिन आ गए हैं। अतः उन्होंने उस स्त्री को गाँव से बाहर निकाल दिया।

पुत्र-जन्म हुआ। वह बहुत ही कुरूप और भयावह था। बड़ा हुआ। एक दिन वह जब मूलसिरि के घर के सामने से गुजर रहा था तो उसे देखकर घर के बच्चे जोर-जोर से रोने लगे। मूलसिरि ने अपने लोगों से भिखारी को पिटवा दिया।

बुद्ध आनन्द के साथ वहाँ से गुजर रहे थे। उन्होंने इस घटना को देखा और आनन्द से कहकर मूलसिरि को बुलवा लिया। उन्होंने उसे बताया कि वह भिखारी पूर्वजन्म में उसका पिता था। मूलसिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। तब उन्होंने जवान भिखारी को बुलाया और उससे पूछा, "बताओ कि पूर्व जन्म में जब तुम मूलसिरि के पिता थे तब तुमने धन कहाँ गाड़ रखा था ?" जवान भिखारी ने स्थान बता दिया। जमीन खोदने पर वह धन मिल गया।

इस घटना के बाद मूलसिरि बुद्ध का भक्त बन गया। बुद्ध ने शिष्यों को समझाया कि हम सदैव गलतफहमी में रहते हैं कि हम सदा के लिए जीवित रहेंगे। अतः हमारी सांसारिक चीजों में आसक्ति हो जाती है जबकि सच्चाई यह है कि जीवन तो पानी के बुलबुले की तरह है। वह जल्दी ही फूट जाएगा।

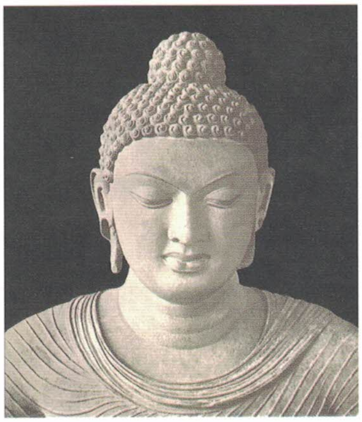

गाथा: योबालो मञ्ञति बाल्यं, पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो ति वुच्चति।।63।।

अर्थ: अगर मूर्ख, मूर्ख होते हुए यह मानता है कि
वह मूर्ख है तो वह पण्डित के ही समान है।
इसके विपरीत जो है तो मूर्ख पर समझता है
अपने को विद्वान, वह वास्तव में मूर्ख है।

वस्तुत: मूर्ख कौन है ?
दो जेबकतरों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मगाथा शास्ता ने जेतवन में दो गिरहकटों के संदर्भ में कही थी।

एक बार दो मित्र जेतवन में धर्मप्रवचन सुनने सामान्य नागरिकों के समूह में बैठ गए। उनमें से एक ने बहुत ही ध्यान से धर्म-श्रवण किया और स्रोतापन्न हो गया। दूसरा किसी को खोजने में ही व्यस्त रहा जिसकी जेब काट सके। उसने किसी के वस्त्र से पाँच मासा सोना काट लिया। उसे बेचकर उसने अपने घर में उस दिन अच्छे-अच्छे पकवान बनवाए। धर्मश्रोता के घर में पैसे की कमी थी। अत: उसके घर में साधारण भोजन भी नहीं बन पाया। चोर अपनी कमाई पर बहुत प्रसन्न था तथा उसने अपने धर्मश्रोता मित्र को, उसकी पत्नी के सम्मुख लज्जित करते हुए कहा, "तू तो अपने को बहुत बड़ा विद्वान समझता है। पर कहाँ गई तुम्हारी विद्वत्ता ? तुम तो अपने लिए भोजन का भी प्रबंध नहीं कर पाए।" दूसरे मित्र ने उसकी बातें ध्यान पूर्वक सुनीं तथा मन ही मन सोचा कि मेरा मित्र निश्चय ही मूर्खतावश इस प्रकार की बातें कर रहा है। उसने काम तो गलत किया है पर बातें ऐसी कर रहा है जैसे उसने कोई सद्‌कर्म किया हो।

धर्मश्रोता बाद में बौद्ध विहार गया और शास्ता को पूरी कहानी सुनाई।

बुद्ध ने शिष्यों को समझाया कि इंसान जैसा है उसे स्वयं को वैसा ही स्वीकार करना चाहिए यही सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है।

टिप्पणी: बाजार में तरह-तरह के दर्पण बिकते हैं। सामान्य सतह वाला दर्पण वह है जिसमें तस्वीर हू-ब-हू ज्यों कि त्यों दीखती है। दूसरे दर्पणों में आकृति विकृत दीखती है। मनुष्य जैसा है, वैसा देख नहीं पाता। जीवन के दर्पण में, हम जैसे हैं, अगर ठीक उसी प्रकार अपने को देखते हैं, तब तो ठीक है। लेकिन अगर हम जैसे नहीं हैं, अपने आप को वैसा मानकर चलते हैं तो फिर जीवन में समस्या उठ खड़ी होती है।

जैसे बेईमान व्यक्ति अगर स्वीकार कर ले कि वह बेईमान है तो फिर संभावना है कि वह बेईमानी से अपने को मुक्त कर ले पर अगर बेईमान होकर वह ईमानदार होने का स्वांग भरता है तो फिर भगवान ही उसका मालिक है।

गाथा: यावजीवं पि चे बालो, पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति, दब्बी सूपरसं यथा।।64।।

अर्थ: मूर्ख जीवन पर्यन्त भी अगर पंडित पुरुष के साथ रहे तो भी वह धर्म के विषय में कुछ भी नहीं जान पायेगा जैसे सूप के अंदर पड़ा हुआ चम्मच सूप के स्वाद को जरा भी नहीं जान पाता।

सद्पुरुषों के साथ से लाभ उठाने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा
थेर उदायी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा तथागत ने जेतवन प्रवास काल में थेर उदायी के संदर्भ में कही थी।

उदायी स्थविर धर्मसभा की समाप्ति पर, महास्थविरों के चले जाने के बाद धर्मसभा में जाकर धर्मासन पर बैठ जाता था। आगन्तुक भिक्षुओं ने उसे कई बार ऐसा करते देखा। उसे देखकर उन्होंने सोचा, "यह स्थविर यहाँ विहार में अनेक वर्षों से रहता है, विचरता है और शास्ता के संग समय बिताता है, यह निश्चय ही कोई बहुत बड़ा ज्ञानी होगा।" अतः उन्होंने अपनी शंका समाधान हेतु उससे स्कन्ध आदि से संबंधित कुछ प्रश्न पूछ दिए। उदायी को तो कुछ आता था नहीं, तो फिर वह बेचारा उत्तर क्या देता ? वह धर्म से सम्बन्धित विषय स्कन्ध और आयतन आदि पर कोई प्रकाश नहीं डाल पाया। आगन्तुक भिक्षुओं को बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसा कैसे हो सकता है कि एक ही विहार में तथागत के साथ अनेक वर्षों से साथ रहते हुए भी उदायी धर्म का क, ख, ग भी नहीं जान पाया। वे अपनी उत्सुकता रोक न सके। वे शास्ता के पास गए और पूरी बात बताई। तब शास्ता ने यह गाथा कही।

टिप्पणी: बुद्ध ने यहाँ सूप और चम्मच का उदाहरण दिया है जो बड़ा ही सटीक है।

दूसरा उदाहरण है चंदन के वृक्ष से लिपटे हुए साँप का। साँप सदैव चंदन के वृक्ष से लिपटा रहता है। चंदन में सुगंध होता है पर वर्षों तक लिपटे रहने के बाद भी साँप अपना विष संजोकर रखने का स्वभाव नहीं त्यागता है।

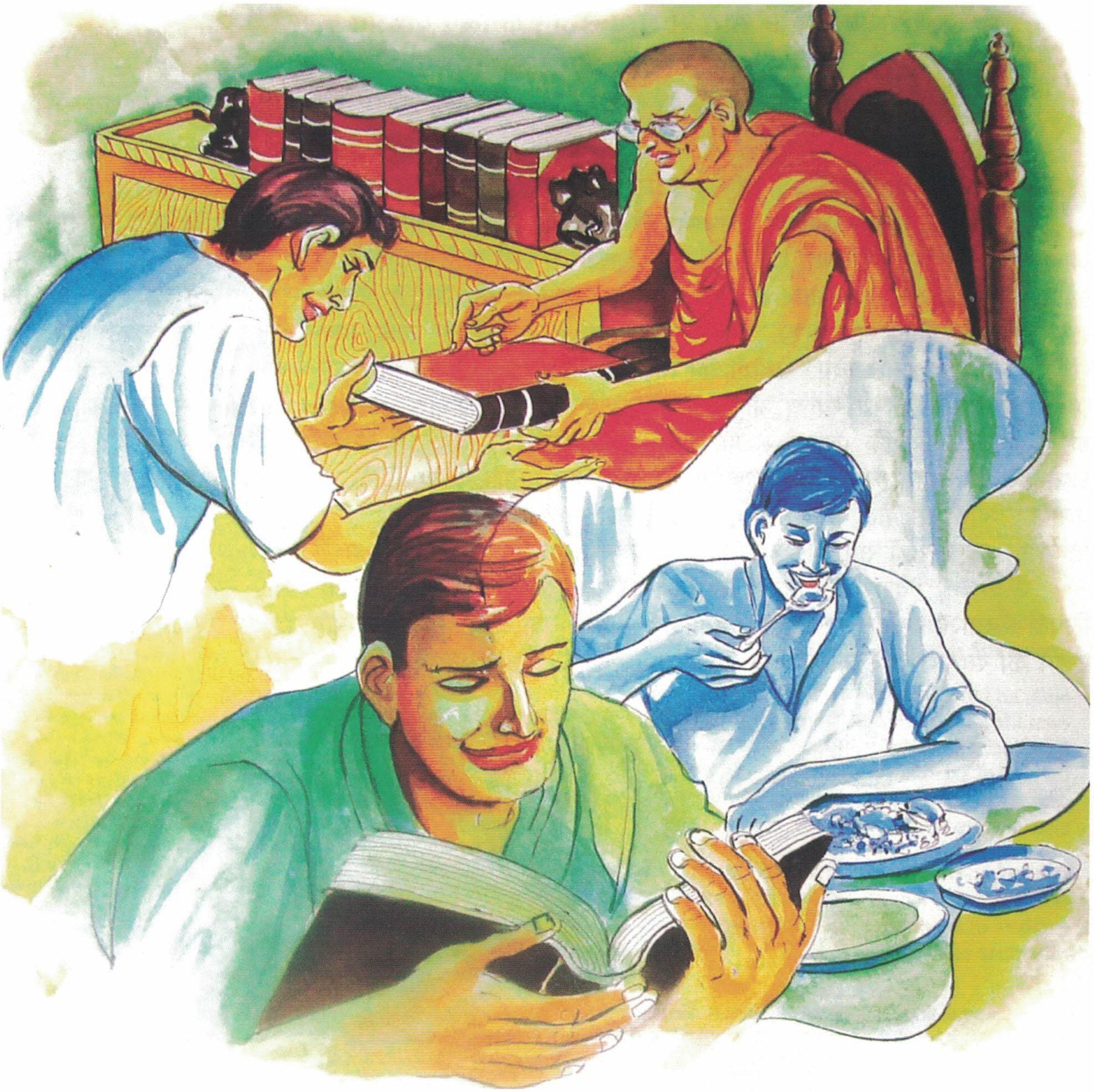

गाथा: मुहुत्तमपि चे विञ्ञू, पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति, जिह्वा सूपरसं यथा।।65।।

अर्थ: यदि समझदार व्यक्ति किसी पंडित के साथ क्षण भर भी रहे तो वह ज्ञान को तत्काल उसी प्रकार जान जाता है जैसे जिह्वा सूप के स्वाद को तुरंत जान जाती है।

ज्ञानी धर्म का सार तुरंत समझ जाता है
भद्रवर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा तथागत ने जेतवन प्रवास काल में तीस पावावासी भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

किसी समय पवेय्यका देश के कुछ नवयुवक जंगल में मौज-मस्ती के लिए निकले। उनके साथ एक वैश्या भी थी। जब वे मौज-मस्ती में खोये हुए थे तब वह वैश्या उनके बहुमूल्य आभूषण आदि कीमती चीजें लेकर भाग गई। जब वे नौजवान होश में आये तो हक्के-बक्के रह गए। वे वैश्या को इधर-उधर बेचैन होकर खोजने लगे। उन्हें वैश्या तो मिली नहीं पर मार्ग में उनका बुद्ध से साक्षात्कार हो गया। उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या आपने फलाँ-फलाँ औरत को देखा है जिसे हम लोग ढूँढ़ रहे हैं। वह उनके आभूषण लेकर भाग गई है।

तथागत ने उनसे उल्टा प्रश्न किया, "तुम किसे ढूँढ़ रहे हो ? क्या अधिक हितकर है - अपने आप को ढूँढ़ना या किसी पराई स्त्री को ढूँढ़ना ?" उन्होंने सोच-समझकर उत्तर दिया, "अच्छा तो यही होगा कि हम दूसरों को ढूँढ़ने की बजाय स्वयं अपने-आप को ढूँढ़ें।" शास्ता ने तब उन्हें पास बुलाकर धर्म की बात बताई। ध्यान पूर्वक धर्म की बात सुनकर उनकी आँखों के ऊपर पड़ा पर्दा उठ गया। उनके अर्न्तनेत्र खुल गए। वे सभी स्रोतापन्न हो गए।

आगे चलकर शास्ता कभी जेतवन विहार में जीवन के आवागमन की अनंत श्रृंखला पर प्रवचन दे रहे थे। अनात्मग्ग (अनादि) सूत्र की धर्मदेशना सुनकर वे सभी उपासक अर्हत्व प्राप्त कर गए।

मात्र एक धर्मदेशना श्रवण के प्रभाव से अर्हत्व प्राप्ति पर भिक्षुओं को घोर आश्चर्य हुआ। उन्होंने यह प्रश्न धर्म सभा में चर्चा के लिए उठाया, "अरे ! कितने आश्चर्य की बात है कि इन भिक्षुओं ने एक ही बैठक में तत्काल अर्हत्व प्राप्त कर लिया।" शास्ता ने इस प्रश्न को सुना और फिर गहराई में जाकर समझाया कि इन तीस परस्पर मित्र भिक्षुओं ने, तुण्डिलजातक के अनुसार महातुण्डिल से धर्मदेशना सुनकर तुरंत धर्मज्ञान से पंचशील अपना लिया था। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि आज जब अवसर मिला तो उन्होंने तत्काल ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

गाथा: चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं।।66।।

अर्थ: दुष्ट बुद्धि वाले व्यक्ति स्वयं ही अपने शत्रु हैं। वे अपने ही शत्रु बनकर घूमते रहते हैं और पापमय कर्म करते रहते हैं। उन पापमय कर्मों का कडुआ फल मिलना सुनिश्चित है।

दुष्ट व्यक्ति अपना शत्रु स्वयं है
सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में सुप्रबुद्ध नामक एक कोढ़ी रहता था। उदान ग्रंथ में उसकी कथा का विस्तृत ढंग से जिक्र आता है।

एक दिन सुप्रबुद्ध धर्म सभा में एक किनारे बैठा हुआ धर्म प्रवचन सुन स्रोतापन्न को प्राप्त हो गया। उसका मन पुलकित हो उठा और वह शास्ता को अपनी सफलता के विषय में बताने के लिए चल पड़ा। देवराज इन्द्र ने इसे देखा तो सोचा कि सुप्रबुद्ध की परीक्षा लेनी चाहिए। अत: वह सुप्रबुद्ध के सम्मुख प्रकट हुआ तथा उससे कहा, "सुप्रबुद्ध ! तुम बहुत ही गरीब हो। अत: दया के पात्र हो। तुम सिर्फ इतना कह दो कि तुम्हें तथागत के त्रिरत्न - बुद्ध, धर्म एवं संघ में कोई श्रद्धा नहीं है। मैं तुम्हें धन से मालामाल कर दूँगा।" सुप्रबुद्ध इस बात से खुश नहीं हुआ, वरन् नाराज होते हुए कहा, "अरे मूर्ख ! निर्लज्ज ! तुमने सोचा कैसे कि मैं दरिद्र, कृपण एवं दयापात्र हूँ ? मेरे पास जब त्रिरत्न का धन उपलब्ध है, तब मैं कृपण कैसे हुआ ? मैं तो बहुत ही सुखपूर्वक जीवन जी रहा हूँ। मेरे पास प्रचुर मात्रा में धन है क्योंकि जिसके पास श्रद्धा, शील, ह्री, पापभीरुता, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा का धन है वह दरिद्र कैसे हुआ ? उसका जीवन तो पूर्णत: सफल जीवन है। मेरे पास ये सातों आर्योचित धन हैं। जिनके पास ये सात धन उपलब्ध हों उन्हें बुद्ध या प्रत्येक बुद्ध भी दरिद्र नहीं कह सकते।"

यह उत्तर सुन देवराज वहाँ से चला गया तथा शास्ता के पास जाकर बताया कि किस प्रकार उसने सुप्रबुद्ध की परीक्षा ली थी और किस प्रकार सुप्रबुद्ध परीक्षा में खरा उतरा। तब तथागत ने इन्द्र को समझाया कि सुप्रबुद्ध जैसे उपासक की त्रिरत्न में श्रद्धा को डिगाना असंभव है। बाद में सुप्रबुद्ध भी शास्ता के पास पहुँचा और उसने अपनी सफलता की चर्चा की। वहाँ से जब वह लौट रहा था तो रास्ते में एक तरुण गौ ने उसे टक्कर मार दी और उसकी मृत्यु हो गई।

भिक्षुओं ने शास्ता से सुप्रबुद्ध के मृत्यु का कारण पूछा। बुद्ध ने बताया कि वह गौ वस्तुत: एक यक्षिणी थी जो अनेक जन्मों से चार पुरुषों को, जिनमें सुप्रबुद्ध भी एक था, टक्कर मारकर मृत्यु के घाट पहुँचा दिया करती थी। वास्तव में एक पूर्व जन्म में वह यक्षिणी एक वैश्या थी और एक बार ये चार युवक उसके साथ मौज-मस्ती करने जंगल गए। दिन भर उसके साथ मौज-मस्ती किया और फिर संध्या होने पर सोचा कि क्यों न इस वैश्या के सारे आभूषण छीन लिए जायें तथा उसकी हत्या कर दी जाय। वैश्या को जब वे मार रहे थे तब उसने भी प्रण लिया कि मैं भी अनेक जन्मों तक यक्षिणी का रूप लेकर इनके मृत्यु का कारण बनकर इनसे बदला लेती रहूँगी।

उसके अगले जन्म के विषय में पूछे जाने पर बुद्ध ने बताया कि उसका अगला जन्म तावतिंस दिव्य लोक में हुआ है। वह किस कर्म के कारण कोढ़ी हुआ, इसका स्पष्टीकरण करते हुए बुद्ध ने बताया कि एक पूर्व जन्म में तगरशिखी प्रत्येक बुद्ध को देखकर उन पर थूकते हुए उसने कहा था, "यह कौन कोढ़ी जा रहा है ?" अपने इसी कर्म के कारण वह नरक में पैदा हुआ और इस जन्म में कोढ़ी हुआ।

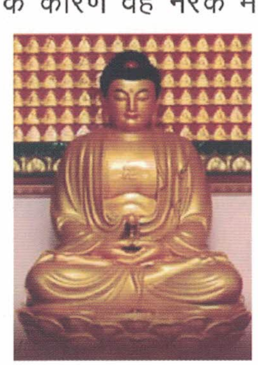

गाथा: न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति।।67।।

अर्थ: उस कर्म का करना ठीक नहीं है जिसे करके पछताना पड़े और जिसका फल रोते-रोते भोगना पड़े।

वैसा कर्म न करें कि पीछे पछताना पड़े
किसान की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा-कथा बुद्ध ने जेतवन विहार के प्रवास काल में एक कृषक के संदर्भ में कही थी।

एक दिन प्रात: काल शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि जेतवन का एक किसान स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। अत: वे प्रात: काल ही आनन्द के साथ भिक्षाटन करते हुए वहाँ गए जहाँ किसान खेती कर रहा था। कृषक ने शाक्य-मुनि को प्रणाम किया और पुन: अपने कृषि-कार्य में लग गया।

किसान जहाँ खेती कर रहा था वहीं पर चोरी किए गए धन की एक थैली पड़ी हुई थी। रात में चोर उसे किसी के घर से उठा लाए थे तथा बँटवारा करते समय उसे गलती से छोड़ गए थे। कृषक ने उसे देखा तो वह उधेड़-बुन में पड़ गया कि वह उसका क्या करे। वह निर्णय नहीं ले पा रहा था। अत: उसने उस थैली को मिट्टी से ढँक दिया ।

बुद्ध ने आनन्द को उस धन की थैली की ओर इशारा करते हुए बताया, "आनन्द, उस जहरीले साँप को देखो।" आनन्द ने भी उस थैली की ओर देखते हुए कहा, "हाँ भन्ते ! मैं उस जहरीले साँप को देख रहा हूँ।"

बुद्ध और आनन्द भिक्षाटन हेतु आगे चले गए। उधर धन का मालिक चोरों के पदचिन्हों का पीछा करते-करते उस खेत तक पहुँचा और धन की थैली पाकर राजा के सिपाहियों ने किसान को पकड़ लिया और पकड़कर राजा के पास ले गए। किसान अपनी रक्षा में कुछ भी नहीं कह सका और राजा ने उसे मृत्युदंड दे दिया।

राजा के सिपाही उसकी कमर में रस्सी लगा, दोनों हाथों को पीछे की ओर बाँध वधस्थल की ओर ले जा रहे थे। वह कृषक पूरे रास्ते बुदबुदाता रहा, "आनन्द ! उस जहरीले साँप को देखो।" "हां भन्ते ! मैं उस जहरीले साँप को देख रहा हूँ।" सिपाहियों ने जब यह बात लगातार सुनी तो उन्हें उत्सुकता हुई तथा उन्होंने किसान से पूछा कि वह क्या बड़बड़ा रहा था। किसान ने उन्हें कुछ नहीं बताया और कहा कि वह इसका स्पष्टीकरण राजा के सामने ही दे सकता है।

अत: सिपाहीगण उसे राजा के पास ले गए। राजा के पूछने पर किसान ने पूरी-पूरी बात बता दी। तब राजा उस किसान के साथ संध्या बेला में बौद्ध विहार गया और शास्ता को घटना की पूरी जानकारी दी। शास्ता ने राजा को बताया कि किसान सच बोल रहा था कि उसने चोरी नहीं की थी, उन्होंने सुबह की घटना सुनाई कि कैसे उन्होंने उस धन को 'जहरीला साँप' कहा था। इस प्रकार बुद्ध और आनन्द को साक्षी बनाकर वह किसान मृत्यु दंड से बच गया।

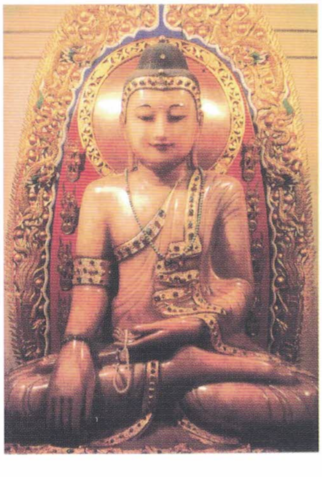

गाथा: तं च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति।।68।।

अर्थ: कर्म वही शुभ होता है जिसके करने के बाद पछताना नहीं पड़े बल्कि जिसका फल ऐसा हो कि हम उसे प्रसन्नचित्त होकर भोग सकें।

शुभ कर्म : जिससे पछताना न पड़े
सुमन माली की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजा बिंबिसार के यहाँ सुमन नाम का एक माली था। वह प्रतिदिन राजा को सुन्दर-सुन्दर फूल अर्पित किया करता था। एक दिन शास्ता अपने भिक्षुसंघ के साथ उधर से गुजरे। सुमन ने उनकी दिव्य आभा देखी और वह गद्गद् हो गया। उसके अन्दर प्रीति जाग पड़ी और वह उन पुष्पों को, जो राजा के लिए ले जा रहा था, शास्ता को समर्पित करने के लिए तड़प उठा। पर उसी समय उसके मन में द्वंद्व भी उठा। अगर उसने ये फूल बुद्ध को अर्पित कर दिए और वे फूल राजा को नहीं मिले तो क्या होगा ? संभवतः राजा उसे इस जन्म के लिए मृत्यु-दंड दे देगा पर अगर उसने इन फूलों को बुद्ध के ऊपर चढ़ा दिया तो क्या होगा ? उसका जन्म-जन्मान्तर सुधर जाएगा।

सुमन अपने द्वंद्व से ऊपर उठा। उसने निर्णय लिया और सही निर्णय लिया। शास्ता के ऊपर उन फूलों की बरसात कर दी। वे फूल आकाश में जाकर वहीं रुक गए। फूलों के समूह ने मिलकर एक चाँदनी बना दी। अब बुद्ध जब चलते, तो वह चाँदनी भी उनके साथ-साथ चलती। जब वे रुकते तो वह भी रुक जाती। बाँये मुड़ते तो वह बाँये मुड़ जाती, दायें मुड़ते तो वह दायें मुड़ जाती। सीधा चलते तो सीधी चलती जाती। तथागत के अद्भुत स्वरूप एवं आभा को देखने के लिए चारों तरफ से अपार भीड़ दौड़ पड़ी। राजा बिंबिसार पहले से ही स्रोतापन्न थे। जब उन्होंने यह बात सुनी तो वे भी अपने-आप को रोक नहीं पाये। शास्ता के दर्शन हेतु आए। उनकी पूजा-अर्चना की और भोजनदान दिया। सुमन माली को उचित पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

संध्या-बेला में जब धर्म-सभा बैठी तब आनन्द ने शास्ता से प्रश्न किया कि आज का सुन्दर कर्म करके सुमन माली ने किस प्रकार का पुण्य अर्जित किया है। तब तथागत ने बताया, "सुमन को अपने प्राण का भय हो सकता था और इस कारण वह फूल न चढ़ाने का निर्णय ले सकता था। पर बिना भय किए, अपनी जान की परवाह न करके सुमन ने बुद्ध को श्रद्धा सुमन अर्पित किए। इसलिए आने वाले जन्मों में कभी भी चार अपायों में जन्म नहीं लेगा। समय आने पर वह प्रत्येक बुद्ध बनेगा।"

गाथा: मधु वा मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चती पापं, अथ बालो दुःखं निगच्छति।।69।।

अर्थ: जब तक पाप का फल नही मिलता है तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा मानता है। किन्तु जब उसे पाप का फल मिलता है तब उसे कठोर दुःख का वहन करना पड़ता है।

पाप मधु समान मीठा हो ही नहीं सकता
उत्पल थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

उत्पल थेरी का जन्म श्रावस्ती के एक श्रेष्ठिकुल में हुआ था। वह बहुत ही सुन्दर थी और उसके विवाह हेतु अनेकानेक प्रस्ताव आए। कोई भी परिवार ऐसा न बचा जिसने विवाह का प्रस्ताव नहीं भेजा हो। तब उसके पिता ने सोचा कि मैं सबों का मन तो रख नहीं सकता। अतः पूर्व जन्मों के कर्मफल से उसने पुत्री से प्रव्रजित होने का प्रस्ताव रखा और उसकी पुत्री खुशी-खुशी प्रव्रजित हो गई। वह साधना में रत हो गई और अपनी कठिन तपस्या से उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

उन दिनों भिक्षुणियों के लिए वन में रहना वर्जित नहीं था। अतः अन्धवन में लोगों ने उसके लिए एक कुटिया बनवा दी, उसमें उसके रात्रि शयन के लिए चौकी की व्यवस्था कर दी तथा दरवाजे पर पर्दा भी लगवा दिया। वह अपनी कुटिया में रहकर साधना करने लगी।

एक दिन की बात है। वह भिक्षाटन हेतु श्रावस्ती गई हुई थी। उसके ममेरे भाई नन्द को पता चल गया था कि वह अन्धवन में रहती है। उत्पल के भिक्षुणी बनने के पूर्व से ही वह उस पर अनुरक्त था। थेरी के श्रावस्ती से लौटने के पूर्व ही वह कुटिया में प्रवेश कर चौकी के नीचे छिप गया। उत्पल ने अभी कमरे में प्रवेश किया ही था और चौकी पर बैठी ही थी कि वह चौकी के नीचे से निकल आया। उत्पल चूँकि बाहर प्रकाश से आई थी अतः उसे स्पष्ट देख नहीं पाई और उसके बार- बार निषेध करने पर भी नन्द नहीं माना और उसने जबरदस्ती थेरी के साथ बलात्कार कर ही दिया। नन्द का पाप इतना भयानक था कि इस कृत के तुरंत बाद धरती फट गई, नन्द उसमें गिर गया, मर कर नरक चला गया।

थेरी ने इस बात का जिक्र अन्य भिक्षुणियों से किया और उनके द्वारा यह बात शास्ता की जानकारी में आई। शास्ता ने सभी भिक्षु एवं भिक्षुणियों को एकत्र कर संदेश दिया, "भिक्षु-भिक्षुणियों, उपासक- उपासिकाओं में जो कोई ऐसा दुष्कर्म करता है वह वैसे ही आनन्द की अनुभूति करता है जैसे मधु की मात्र एक-दो बूँद चखने से मिलता है।"

टिप्पणी: इस घटना के बाद शास्ता ने राजा प्रसेनजित को बुलाकर इस घटना के विषय में बताया तथा यह भी बताया कि किस प्रकार भिक्षुणियों को वन में भय बना रहेगा। अतः भिक्षुणी संघ की स्थायी आवासीय व्यवस्था नगर में ही होनी चाहिए। राजा ने शास्ता की आज्ञा मानकर नगर के अन्दर ही भिक्षुणीसंघ के लिए एक निवास स्थल बनवा दिया। साथ ही आदेश दिया गया कि अब भिक्षुणियाँ जंगल में नहीं रहेंगी।

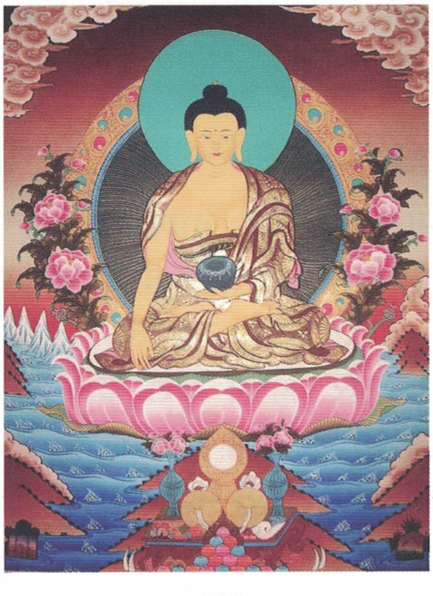

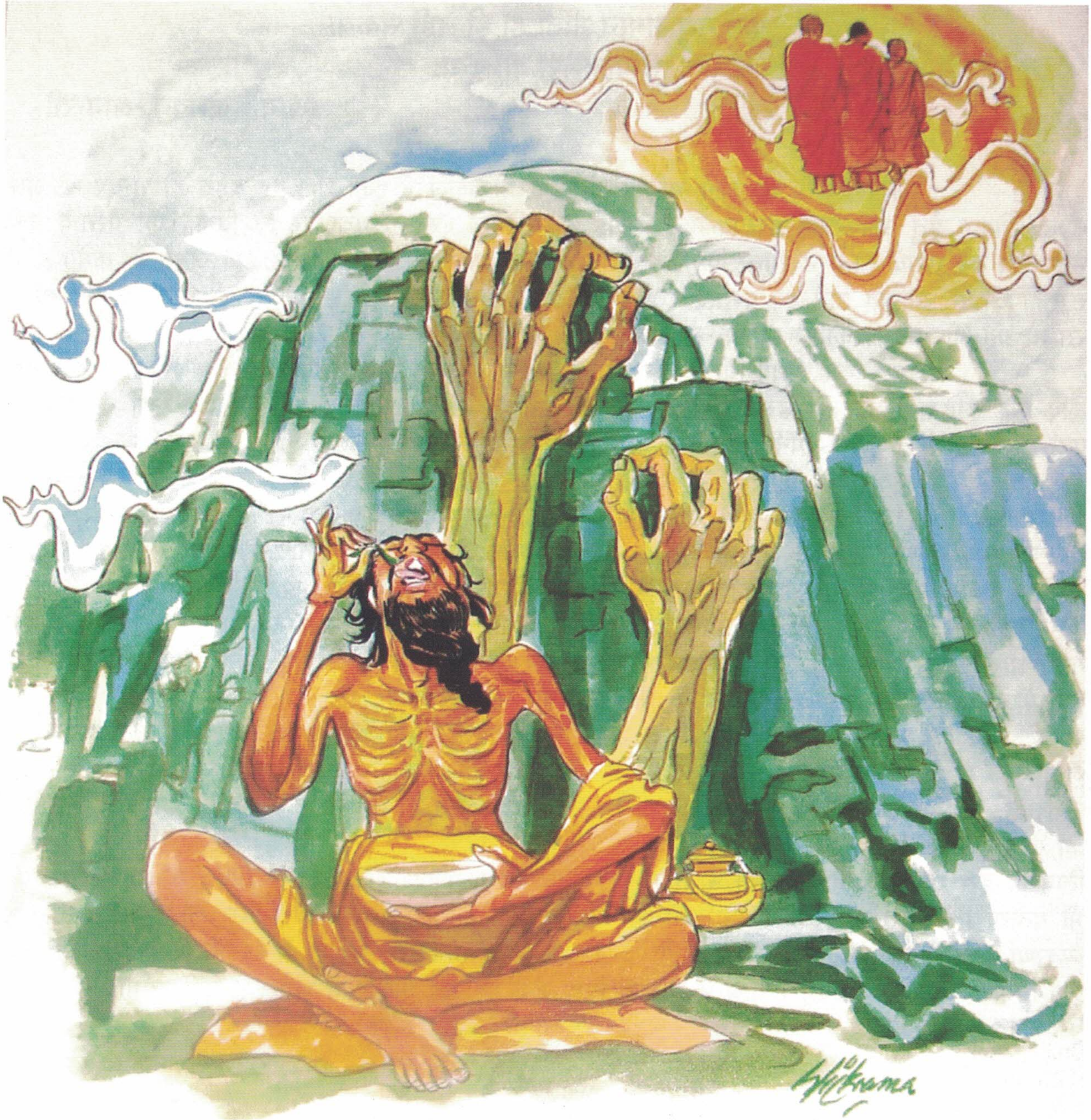

गाथा: मासे मासे कुसग्गेन, बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखातधम्मानं, कलं अग्घति सोळसिं।।70।।

अर्थ: अगर कोई मूर्ख व्यक्ति महीने-महीने के अन्तराल पर केवल कुश की नोंक से भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता।

कौन धर्म के जानकारों की बराबरी नहीं कर सकता ?
जम्बुक स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती नगर में एक श्रेष्ठी के घर एक पुत्र का जन्म हुआ। उसकी आदतें बड़ी विचित्र थीं। वह बिस्तर की बजाय जमीन पर सोता था तथा सामान्य खाद्य सामग्री खाने की बजाय मल खाता था। उसके माता पिता ने उसे नंगे रहने वाले एक साधु समाज में भेज दिया जिसका नाम आजीवक था। उसकी इन विचित्र आदतों के कारण उसका नाम जम्बुक पड़ गया। लोग उसे जम्बुक आजीवक के नाम से पुकारने लगे।

जम्बुक रात्रि में मल खाता था और दिन में मुँह खोलकर एक पैर पर खड़ा हो जाता था। लोगों के पूछने पर उन्हें बताता था कि दोनों पैरों को जमीन पर रखने से धरती का बोझ बढ़ जाता है। उसका कहना था कि वह मुँह खोलकर इसलिए खड़ा रहता था कि वह हवा ले सके क्योंकि वह हवा पर ही जिन्दा रहता था। लोग उसे खाने की कोई चीज देते तो वह उन्हें नहीं खाता था। अगर कोई बहुत जिद करता था तो वह कुशाग्र के बराबर खा लेता था और कहता था कि इससे तुम्हें बहुत पुण्य मिलेगा।

इस प्रकार जम्बुक पचपन वर्षों तक मल खाकर नंगा रहा। एक दिन महाकारूणिक ने अपनी अंर्तदृष्टि से देखा कि जम्बुक में अर्हत्व प्राप्त करने की संभावना है। अत: वे वहाँ पहुँचे जहाँ जम्बुक रहता था। शास्ता के वहाँ पहुँचने पर रात्रि के विभिन्न प्रहर में विभिन्न देवता उनकी स्तुति करने आए। उनके आने पर वन बिल्कुल आलोकित हो गया। जम्बुक ने उस आलोक को देखा तो वह उससे बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध की स्तुति करने लगा और बोला, "हे महापुरुष ! आप निश्चय ही महान हैं क्योंकि मैंने देवी-देवताओं को स्तुति करते हुए देखा है। मैं पचपन वर्षों से तपस्या में रत हूँ पर मेरे पास अभी तक कोई नहीं आया।"

तब शाक्य मुनि ने जम्बुक की भर्त्सना करते हुए कहा, "जम्बुक ! तुम साधारण लोगों को धोखा दे सकते हो पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। तुमने पिछले पचपन साल में क्या किया है वह सब मुझे मालूम है। तुमने पूर्व जन्म में कस्सप बुद्ध के समय एक भिक्षु को किसी उपासक के घर से भोजन लेने नहीं दिया था। उस भिक्षा को जमीन पर फेंक दिया था, इसी गलती के कारण आज तुम मल खा रहे हो।"

यह सब सुनते ही जम्बुक को अपनी गलती का एहसास हो गया और वह शाक्य मुनि के चरणों पर गिर पड़ा। वह एक भिक्षु बन गया।

गाथा: न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरं व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नो व पावको।।71।।

अर्थ: जैसे ताजा दूध तुरंत नहीं जम जाता है, उसी प्रकार कृत पाप कर्म शीघ्र अपना फल नहीं लाता है। राख से ढँकी आग की तरह जलाता हुआ वह मूर्ख का पीछा करता है।

पाप को भी पकने में समय लगेगा
अहिप्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महामोग्गलान लक्ष्मण थेर के साथ राजगृह में भिक्षाचर्या कर रहे थे। चलते-चलते मोग्गलान मुस्कुरा दिए। लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि विहार वापस पहुँचकर शास्ता के सामने बतायेंगे।

भिक्षाटन समाप्त कर दोनों बौद्ध विहार पहुँचे। तब मोग्गलान ने बताया कि उन्होंने एक ऐसा प्रेत देखा था जिसका सिर मनुष्यों की तरह था पर शरीर सर्प का था। तब शाक्य मुनि ने बताया, "मैंने भी इस प्रेत को सम्बोधि प्राप्ति के दिन देखा था। लेकिन मैंने इसका उल्लेख किसी से नहीं किया कि कहीं लोग मेरी कही बात पर विश्वास नहीं करेंगे तो उनका अहित हो जाएगा। मेरे नहीं कहने के पीछे लोगों के प्रति मेरी कृपा छिपी हुई थी।"

भिक्षुगण ने जानना चाहा कि उसकी ऐसी गति क्यों हुई तो बुद्ध ने वर्णन किया:

प्राचीन काल में वाराणसी में नदी के किनारे किसी प्रत्येकबुद्ध की कुटिया बनी हुई थी। वे वहीं रहते थे और वहीं से नगर में भिक्षाटन हेतु जाते थे। नागरिक भी वहाँ आते थे और प्रत्येक बुद्ध की सेवा करते थे। उस आने-जाने वाली पगडंडी पर जमीन के मालिक ने जुताई कर दी। आने-जाने वाले लोग उस जमीन को रौंद देते थे। किसान उनको आने-जाने के लिए मना करता था पर उन्हें रोक नहीं पाता था। अंत में उसने सोचा, "अगर यहाँ पर यह पर्णकुटी न होती तो मेरा खेत बरबाद न होता।" ऐसा सोचकर उसने एक दिन उस झोपड़ी को जला डाला। प्रत्येक बुद्ध उस स्थान को छोड़ कहीं और चले गए।

जब जनता को पता चला कि प्रत्येक बुद्ध वह स्थान छोड़कर कहीं और चले गए हैं तब किसान वहीं खड़ा था। उसने कहा, "यह पर्णशाला मैंने जला डाली ।" क्रुद्ध भीड़ ने कहा, "इस पापी के कारण अब हमें प्रत्येक बुद्ध के दर्शन नहीं हो पायेंगे।" ऐसा कहकर उमड़ी भीड़ ने उस किसान को पीट-पीटकर मार डाला। मरने के बाद वह नरक में गया और अपने प्रारब्ध के कारण गृद्धकूट पर्वत पर अहिप्रेत बनकर उत्पन्न हुआ।

गाथा: यावदेव अनत्थाय, ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं, मुद्धमस्स विपातयं।।72।।

अर्थ: मूर्ख का जितना भी ज्ञान होता है वह उसका अनिष्ट ही करता है। वह उसकी अच्छाई को समाप्त कर देता है तथा उसके कुशल कर्मों का नाश कर देता है।

षष्टिकूट प्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन थेर महामोग्गलान लक्ष्मण थेर के साथ राजगृह में भिक्षाचर्या कर रहे थे। चलते-चलते मोग्गलान मुस्कुरा दिए। लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि विहार पहुँचकर शास्ता के सामने बतायेंगे।

भिक्षाटन समाप्त कर दोनों बौद्ध विहार पहुँचे। तब मोग्गलान ने बताया कि उन्होंने एक ऐसा प्रेत देखा था जिसके मस्तक पर लगातार आग के गोले गिर रहे थे और उसको फोड़ रहे थे। यह क्रम निरन्तर चल रहा था। आज तक इतना कष्ट सहते हुए मैंने किसी को नहीं देखा।" तब शाक्य मुनि ने बताया, "मैंने भी इस प्रेत को सम्बोधि प्राप्ति के दिन देखा था। लेकिन मैंने इसका जिक्र नहीं किया कि कहीं लोग मेरी कही बात पर विश्वास नहीं करेंगे तो उनका अहित हो जाएगा। मेरे नहीं कहने के पीछे लोगों के प्रति मेरी कृपा छिपी हुई थी।"

भिक्षुओं ने जिज्ञासा जाहिर की, यह जानना चाहा कि किस कारण से उस प्रेत की यह दुर्गति हुई। तब शाक्य मुनि ने उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाई:

पूर्वकाल में सट्ठिकूट नाम का एक व्यक्ति था जिसने सधा हुआ निशाना लगाने की कला सीख ली थी। इस कला को सीखने के बाद उसने अपने गुरू से इस कला को प्रयोग में लाने के लिए आज्ञा माँगी। गुरू ने अपनी स्वीकृति दे तो दी पर उसके साथ यह शर्त भी लगा दी, "किसी भी गाय या मनुष्य पर पत्थर मत मारना। ऐसे वस्तु पर भी पत्थर मत फेंकना जिसका कोई मालिक हो या जिसका कोई सम्बन्धी हो। लक्ष्य उसी निशाने पर लगाना जिसका न कोई मालिक हो और न कोई सम्बन्धी ।" सट्ठिकूट ने उनकी बात मान ली।

उसी काल में एक प्रत्येक बुद्ध भी हुए थे। एक दिन वे अपनी दैनिक चर्या के अनुसार भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। सट्ठिकूट ने उन्हें देखा। उसने सोचा, "मेरे गुरू ने कहा है कि मैं किसी ऐसे लक्ष्य को बेध सकता हूँ जिसका कोई स्वामी नहीं हो। श्रमण का तो कोई स्वामी नहीं होता । अत: उस पर निशाना लगाने में कोई हर्ज नहीं है।" ऐसा सोचकर उसने पत्थर से प्रत्येक बुद्ध पर प्रहार कर डाला। प्रहार का वेग इतना तीव्र था कि वह पत्थर थेर के एक कान को छेदता हुआ दूसरे कान से निकल गया। चोट इतनी गहरी थी कि विहार आते-आते प्रत्येकबुद्ध के प्राण निकल गए।

श्रद्धालुओं को पता चला कि किस प्रकार सट्ठिकूट ने प्रत्येक बुद्ध की हत्या कर दी थी। अत: उन्होंने उसे खूब पीटा और पीटने से उसकी मृत्यु हो गई। वह नरक में जा गिरा। अपने प्रारब्ध कर्म के कारण वह गृद्धकूट पर्वत पर षष्टिकूट प्रेत बनकर प्रकट हुआ।

शाक्य मुनि ने इस पूर्व घटना का जिक्र करते हुए कहा, "मूर्खों का ज्ञान और कला उनके लिए अहितकर ही होता है।

तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: असतं भावनमिच्छेय्य, पुरेक्खारं च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं, पूजा परकुलेसु च।।73।।

अर्थ: मूर्ख व्यक्ति जो नहीं है उसकी चाह करता है, भिक्षुओं में बड़ा बनना चाहता है, मठों और संघों का स्वामी बनना चाहता है और दूसरे कुलों में आदर-सत्कार की कामना करता है।

मूर्ख इच्छाओं का गुलाम होता है
सुधम्म थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जिन पाँच भिक्षुओं ने सर्वप्रथम बुद्ध से ज्ञान हासिल किया था उनमें महानाम भी थे। वे अमृतोदन के पुत्र तथा अनुरुद्ध के बड़े भाई थे। वे प्रव्रजित हुए तथा संघ में शामिल हो गए। सतत साधना करते हुए वे थेर बन गए थे।

एक दिन वे विहार से भिक्षाटन के लिए निकले। रास्ते में चित्त नामक एक गृहस्थ ने उन्हें अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। स्थविर महानाम उसके घर गए, भोजन-दान स्वीकार किया और पुण्यानुमोदन किया। उनके प्रवचन से चित्त बहुत ही प्रभावित हुआ। उसका मन पवित्र हो गया और प्रवचन समाप्त होते-होते वह स्रोतापन्न हो गया। वह बुद्ध के त्रिरत्न में प्रतिष्ठित हो गया। उसमें इतनी अटूट श्रद्धा जग गई कि उसने अपनी ओर से एक विहार बनवाया और भिक्षु संघ को दान कर दिया ताकि भिक्षुगण उसमें रह सकें।

विहार बनकर तैयार हो गया, भिक्षुगण उसमें आकर रहने लगे। उनका चित्त ध्यान-साधना, विपश्यना में लगने लगा। यदा-कदा दूसरे विहारों से भी भिक्षुगण आ जाया करते थे। वे अपने-अपने अनुभव एक दूसरे से बाँटा करते थे। भिक्षुगण उपासकों को संदेश दिया करते थे। चित्त पूरी सावधानी से उन भिक्षुओं की सुख-सुविधा और आवश्यकताओं का ध्यान रखा करता था।

एक बार सारिपुत्त और महामोग्गलान उस विहार में पधारे। सारिपुत्त ने भिक्षुओं को धर्म-प्रवचन दिया। चित्त ने भी वह प्रवचन ध्यान-पूर्वक सुना। एक-एक बात उसके हृदय में उतरती गई और वह अनागामी फल प्राप्त कर गया। उसने दूसरे दिन सारिपुत्त तथा महामोग्गलान को अपने आवास पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। सुधम्म थेर भी वहीं उपस्थित था। उपासक ने उसे भी आमंत्रित किया, पर आमंत्रण पाकर सुधम्म थेर गुस्से से आग-बबूला हो गया। निमंत्रण स्वीकार करने की बजाय उसने गुस्से में कहा, "अरे ! तुमने पहले इन दोनों को न्यौता दिया है। मुझे बाद में निमंत्रण देकर अपमानित किया है।" उपासक ने नम्र भाव से उससे एक बार फिर प्रार्थना की पर वह टस से मस न हुआ। उपासक की सारी प्रार्थना बेकार गई। सुधम्म ने निमंत्रण ग्रहण नहीं किया।

गाथा: ममेव कत मञ्ञन्तु, गिही पब्बजिता उभो।
ममेव अतिवसा अस्सु, किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स संकप्पो, इच्छा मानो च वड्ढति।।74।।

अर्थ: 'गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों मेरा कहना मानें', 'कृत-अकृत्य में मुझपर ही निर्भर रहें' ऐसी उसकी चाह होती है। इस प्रकार का संकल्प करने से मूर्ख आदमी की इच्छाएं और उसका अभिमान बढ़ता है।

सुधम्म थेर की कथा

अगले दिन चित्त भिक्षुओं के लिए भोजन की व्यवस्था करने में लग गया। उसी समय सुधम्म उसके घर के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। चित्त ने उन्हें सादर प्रणाम कर घर में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित किया। पर सुधम्म ने अंदर आने का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया और कहा, "मैं तो भिक्षाटन के लिए निकला हूँ, मैं अंदर नहीं आ सकता और न बैठ सकता हूँ।"

थोड़ी देर बाद सारिपुत्त और महामोग्गलान आये। उन्होंने भोजन किया और भोजन के बाद धर्म प्रवचन दिया और फिर वे वापस चले गए। उनके साथ पधारे अन्य भिक्षुगण भी वापस चले गए। सुधम्म ने सारिपुत्त तथा मोग्गलान को दान में दी गई वस्तुओं को देखा। वह ईर्ष्या की आग में जल-भुनकर राख हो गया। गुस्से में वह उपासक को अपशब्द कहने लगा, "अब मैं तुम्हारे घर में एक पल भी टिक नहीं सकता।" यह कहकर वह वहाँ से चला गया।

सुधम्म वहाँ से सीधा शाक्य-मुनि के पास गया। उन्हें सादर प्रणाम कर सारी कहानी विस्तार से सुनाई। शास्ता पर उसकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा। उन्होंने वस्तुस्थिति का गहराई से विश्लेषण किया और आकलन कर समझाया, "किसी भी श्रमण को 'यह मेरा विहार है,' 'यह मेरा आवास है,' 'यह मेरा उपासक है,' 'यह मेरी उपासिका है' - ऐसा कहना और इस बात का ईर्ष्या करना उचित नहीं है।"

तब शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।

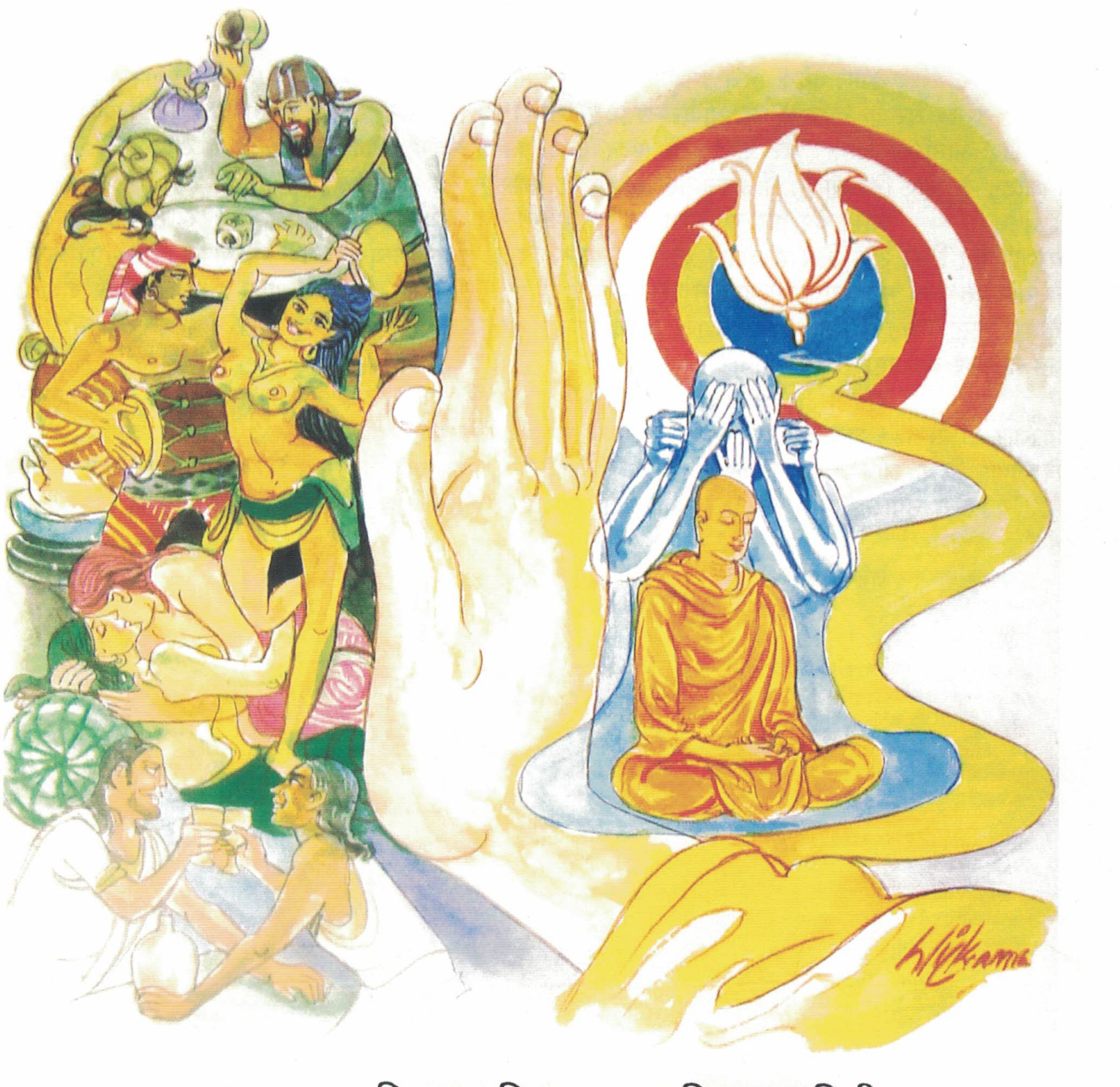

गाथा: अञ्ञा हि लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बाणगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य, विवेकमनुब्रूहये।।75।।

अर्थ: सांसारिक लाभ-सत्कार प्राप्त करने का मार्ग दूसरा है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा। इस प्रकार इसे भली-भाँति जानकर बुद्ध का अनुगामी शिष्य सांसारिक आदर-सत्कार की इच्छा न करें और त्रिविध विवेक अर्थात् काय विवेक, चित्त विवेक तथा विक्खम्भन विवेक को बढ़ावा दे।

हमारे सामने खुले हैं दो रास्ते
वनवासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी श्रेष्ठी का एक पुत्र था। नाम था उसका - तिस्स। उसने सात साल की उम्र में ही प्रव्रज्या हासिल कर ली और सामनेर बन गया। सारिपुत्त ने उसे प्रव्रज्या दिलाई थी। बुद्ध से उसने ध्यान की पद्धति सीखी और उसमें पूरी लगन से लग गया। विहार छोड़कर जंगल चला गया। लोग उसे वनवासिक तिस्स के नाम से जानने लगे।

गृहस्थ उसे भिक्षा देते तो सामनेर कहते, "सदा सुखी रहो, दु:खों से मुक्त होवो।" वे अपने शरीर के भरण पोषण मात्र ही भिक्षा लेते। उनके शरीर की आभा इतनी तेज थी कि जो कोई भी उन्हें भिक्षा देता, भिक्षा देने के बाद उन्हें देखता ही रह जाता, घर वापस नहीं जाता। जहाँ का तहाँ ही खड़ा रहता। वन में रहते हुए उन्होंने घोर साधना की और तीन महीनों में ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

तिस्स थेर के गुणों से अति प्रभावित होकर स्थविरगण सारिपुत्त, महामोग्गलान, महाकाश्यप, अनुरुद्ध, उपालि, पूर्ण आदि अपने भिक्षुओं के साथ तिस्स से मिलने पधारे। ग्रामवासी उन सभी को विहार में ले गए जहाँ तिस्स रहते थे। ग्रामवासियों ने सबों का भोजन-सत्कार आदि किया और फिर धर्मश्रमण की बारी आई। तब सारिपुत्त स्थविर ने कहा, "तिस्स ! धर्मकथा सुनाओ।" सभी उपासक बोलने लगे, "हमें इनसे नहीं सुनना। इन्हें सिर्फ दो वाक्य आते हैं- सदा सुखी रहो, दु:ख से मुक्त होवो। कोई और धर्मवाचक कथा सुनावें।" तब स्थविर सारिपुत्त ने कहा, "तिस्स ! यह तो बताओ कि दु:ख से कैसे मुक्त हुआ जाता है, कैसे सुखी हुआ जाता है।" तब सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त करने की विधि बताई और कहा, "भन्ते ! अर्हत्व प्राप्त को ही सुख होता है। बाकी लोग तो जन्म-मृत्यु और बुढ़ापा आदि दु:खों के चक्कर से मुक्त नहीं हो पाते हैं।" "साधु ! साधु !! " सारिपुत्त, मोग्गलान आदि स्थविर बोल उठे।

सूर्योदय होने को आया। उपासकों में विभाजन हो गया। कुछ इस बात से गुस्सा हो गए कि "इतने दिनों से, इतना ज्ञानी होने पर भी, इन्होंने हमें अभी तक कुछ क्यों नहीं बताया?" अन्य सामनेर के प्रवचन सुनकर बहुत संतुष्ट थे।

शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि अगर नकारात्मक विचारों वाले उपासकों को समझाकर सही रास्ते पर नहीं लाया जाएगा तो वे अपने लिए गलत कर्म का सृजन कर बैठेंगे। अत: शास्ता वहाँ आकर प्रकट हो गए। भोजनोपरान्त उपासकों ने अनुमोदन हेतु आग्रह किया। तब शास्ता ने समझाया, "सामनेर तिस्स के कारण ही तुम्हें सारिपुत्त, मोग्गलान आदि का और मेरा भी दर्शन हुआ है। अत: तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।" यह सुनकर सभी ग्रामवासी तिस्स के प्रति मैत्रीभाव से भर गए।

धर्म सभा में चर्चा चली कि तिस्स को सैकड़ों कंबल और चीवर दान में प्राप्त हुए पर उन्होंने सिर्फ जीवन चलाने मात्र चीजें लीं। उनका त्याग अनूठा था। तब शास्ता ने यह गाथा कही।

DHAMMAPADA

BALA VAGGA

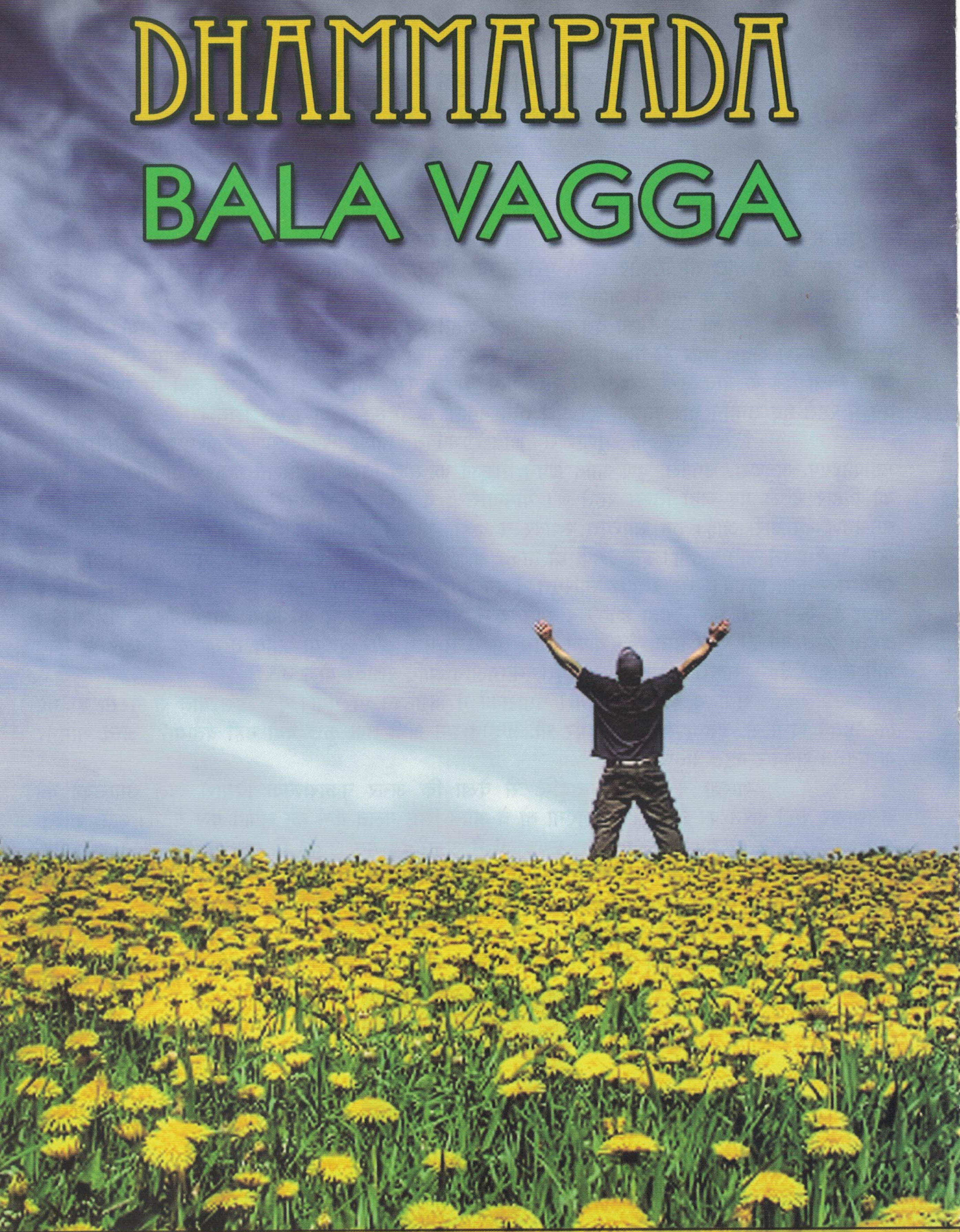

संस्कारक : हृषीकेश शरण

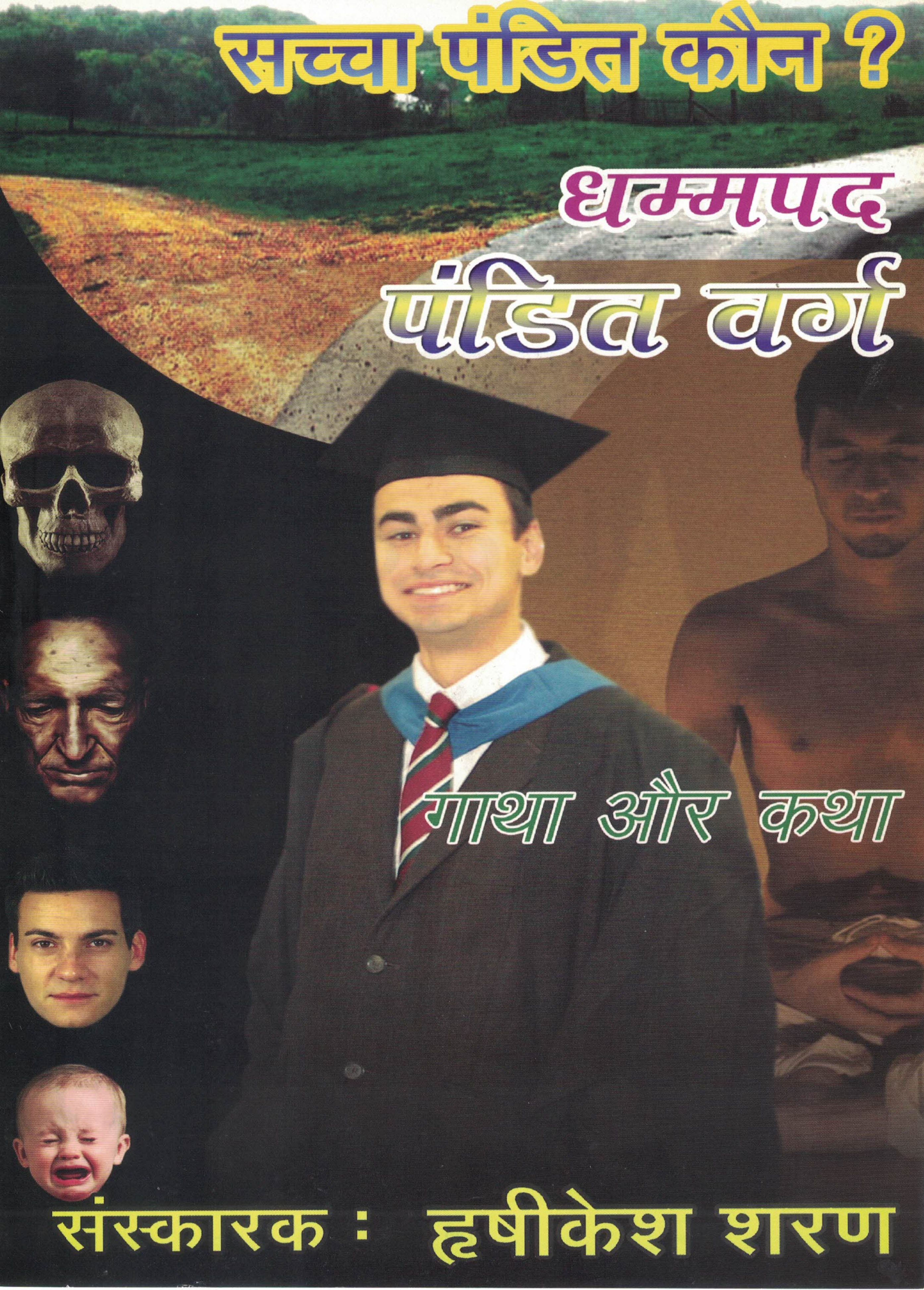
सच्चा पंडित कौन ?
धम्मपद
पंडित वर्ग
गाथा और कथा
संस्कारक : हृषीकेश शरण

सच्चा पंडित कौन ?

धम्मपद

पंडित वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

पंडित वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	ब्राह्मण राध की कथा	76	सज्जनों का संग कल्याणकारी होता है	183
2.	अस्सजी और पुनब्बसु की कथा	77	उपदेशक सज्जनों को प्रिय और दुर्जनों को अप्रिय	185
3.	थेर छन्न की कथा	78	उत्तम पुरुषों की संगति कल्याणकारी होती है	187
4.	महाकप्पिन थेर की कथा	79	सुखपूर्वक सोना चाहते हैं तो धर्म रस का पान करें	189
5.	पंडित सामनेर की कथा	80	आत्म संयमी पंडित अर्हत्व प्राप्त करते हैं	191
6.	लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा	81	बुद्धिमान पुरुष निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते	193
7.	काण माता की कथा	82	पंडित जन धर्म श्रवण कर प्रसन्नचित होते हैं	195
8.	पाँच सौ जूठा खाने वालों की कथा	83	सद्पुरुष सुख–दुःख में सर्वत्र सन्तुष्ट रहते हैं	197
9.	धम्मिक थेर की कथा	84	धर्माचरण वाले व्यक्ति ही शीलवान, प्रज्ञावान है	199
10.	धर्म की कथा	85	संसार पार जाने वाले थोड़े ही हैं	201
11.	धर्म की कथा	86	धर्म का अनुगमन करने वाले भवसागर पार कर जायेंगे	203
12.	आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	87	बुद्धिमान कृष्ण धर्म का त्याग कर शुक्ल धर्म का आचरण करें	205
13.	आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	88	कामनाओं को त्यागकर प्रव्रज्या धारण करें	207
14.	आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	89	चित्तविकारों से मुक्त निर्वाण प्राप्त करेंगे	209

गाथा: निधीनं व पवत्तारं, यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।।76।।

अर्थ: जो व्यक्ति अपना दोष दिखाने वाले को जमीन में गड़े धन दिखाने वाले की तरह समझे, जो संयम से रहने वाले मेधावी पंडित का साथ करे वैसे व्यक्ति का सदा भला (कल्याण) ही होता है, बुरा (अकल्याण) नहीं।

सज्जनों का संग कल्याणकारी होता है
ब्राह्मण राध की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के समय की बात है। राध नाम का गरीब बूढ़ा ब्राह्मण विहार में रहता था। वह विहार में सफाई का काम करता था तथा भिक्षुओं की सेवा करता था। उसके मन में भी प्रबल चाहत थी कि वह भी जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाये और भवसागर पार पहुँचे। वह भिक्षुओं के साथ सदा सत्संग में लगा रहता था तथा भिक्षु भी बनना चाहता था पर उसे कोई सही अवसर नहीं मिल पा रहा था। अतः वह विहार की सफाई में लगा रहता था और अपने आप से संतुष्ट रहता था। कभी-कभी कोई भिक्षु उसे किसी बात के लिए कुछ अच्छा कह देता था तो कभी बुरा। पर वह कभी भी किसी की बात का बुरा नहीं मानता था।

राध एक दिन शाक्य मुनि की अन्तर्दृष्टि में आ गया। उन्होंने देखा कि राध में अर्हत्व प्राप्त करने की तीव्र कामना है पर उसे उचित अवसर नहीं मिल पा रहा है। अतः वे राध के पास गए और उससे पूछा, "राध ! तुम अच्छे तो हो ? भिक्षुगण तुम्हारा ख्याल रखते हैं न ?" उसने जवाब दिया, "हाँ भन्ते ! भिक्षुगण मेरा ख्याल रखते हैं। मुझे भोजन तो देते हैं पर प्रव्रजित नहीं करते हैं।" तब शास्ता ने भिक्षुओं को बुलाया और उनसे पूछा, "क्या तुम बता सकते हो कि राध ने तुम्हारे लिए कोई भलाई का काम किया है या नहीं ?" "हाँ भन्ते, उसने हमारे लिए फलां-फलां काम किया है, "उन्होंने कहा। तथागत ने तब उन्हें समझाया, "जिस व्यक्ति ने तुम्हारा थोड़ा भी भला किया है और अगर वह भवसागर पार जाना चाहता है तो क्या उसे भवसागर पार करने में मदद नहीं करोगे ?"

सारिपुत्त ने स्वीकार किया कि राध को प्रव्रजित कर देना चाहिए। ऐसा कहकर उन्होंने राध को प्रव्रजित कर दिया। थोड़े ही दिनों में स्थविर सारिपुत्त की छत्रछाया में रहकर राध ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

बुद्ध उन दिनों जेतवन विहार में रह रहे थे। एक दिन धर्म प्रवचन में उन्होंने राध की बहुत बड़ाई की। उन्होंने भिक्षुओं को बताया कि अगर तुम्हें एक ऐसा आदमी मिल जाए जो तुम्हें बताए कि खजाना कहाँ है तथा यह भी बताए कि किन चीजों से बचना चाहिए, किन चीजों से सावधान रहना चाहिए तो ऐसे व्यक्ति को साथ रखना चाहिए। ऐसे व्यक्ति का साथ रखना शुभ है।

तब शास्ता ने यह गाथा कही।

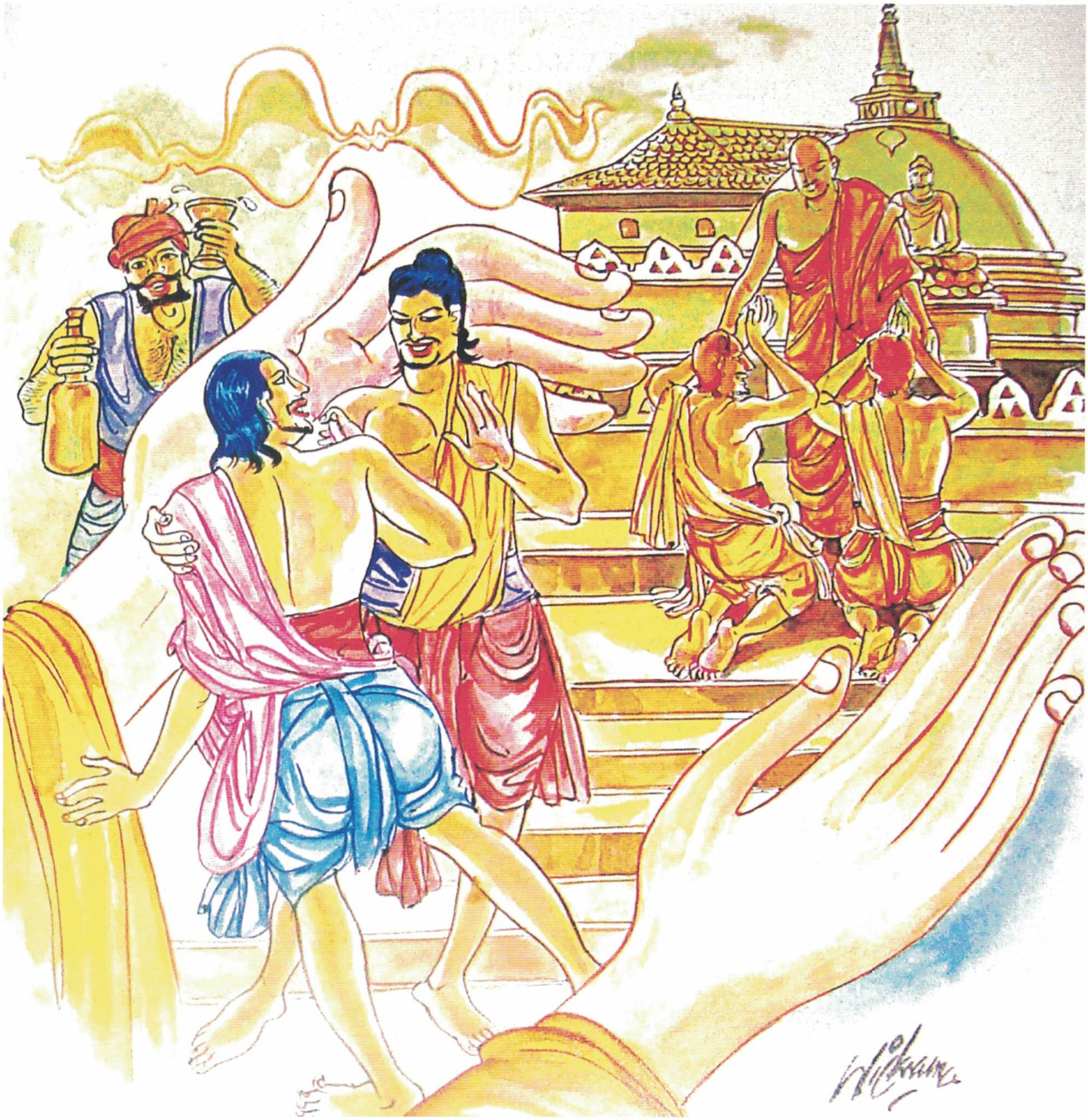

गाथा: ओवदेय्यानुसासेय्य, असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति, असतं होति अप्पियो।।77।।

अर्थ: जो उपदेश देता है, अनुशासित करता है और गलत कर्मों को करने से रोकता है वह सज्जनों को प्रिय होता है और दुर्जनों को अप्रिय।

उपदेशक सज्जनों को प्रिय और दुर्जनों को अप्रिय
अस्सजी और पुनब्बसु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार भिक्षु अस्सजी और पुनब्बसु अपने शिष्यों के साथ कीटागिरी गाँव में रुके हुए थे। वहाँ उन्होंने कुछ पेड़-पौधे तथा फल-फूल बोए ताकि उनसे कुछ पैसे निकाल सकें। ऐसा करना विनय के नियम के विपरीत था। वे इन पौधों से फूल निकलवाते थे और माला बनवाते थे। वे परिवार वाली कुमारियों, स्त्रियों, वधुओं, बालाओं के लिए अपने साथ माला ले जाते थे तथा दूसरों से उनके लिए माला भिजवाते भी थे। वे उनके साथ-साथ एक ही थाली में भोजन करते थे, एक ही चारपाई पर साथ बैठते थे, लेटते थे, ओढ़ते थे, बिछाते थे आदि। अर्थात् उनका इन स्त्रियों के साथ उठना, बैठना, घूमना, सोना होता था। वे माला, इत्र तथा उबटन भी लगाते थे। नाचते थे, गाते थे, बजाते थे, दौड़ते थे, दौड़ाते थे।

एक दिन एक भिक्षु किटागिरी आया। वह एक उपासक के घर गया और वहीं भोजन किया। भोजन के बाद उपासक ने भिक्षु से प्रश्न किया, "भन्ते ! आप यहाँ से कहाँ जाएँगे ?" "मैं श्रावस्ती जाऊँगा।" तब उपासक ने उस भिक्षु से प्रार्थना की, "वहाँ पहुँचकर जगदाराध्य तथागत से कहना कि यहाँ किटागिरी गाँव में रहना मुश्किल हो गया है। अस्सजी और पुनब्बसु नामक दो बेशर्म भिक्षु यहाँ अपने शिष्यों के साथ रह रहे हैं तथा वे भिक्षु-संघ की सारी मर्यादाओं को लांघ गए हैं। गाँव वाले जो पहले श्रद्धालु हुआ करते थे वे अब अश्रद्धालु हो गए हैं, अप्रसन्न रहते हैं और कोई दान-दक्षिणा नहीं देते हैं। तथागत किसी अच्छे, जिम्मेवार भिक्षु को भेजें ताकि यहाँ का वातावरण सुधारा जा सके।" भिक्षु ने कहा, "ठीक है, तुम्हारा संदेश पहुँचा दूँगा", यह कहकर वह भिक्षु श्रावस्ती की ओर चल दिया।

श्रावस्ती पहुँच वह बौद्ध विहार गया तथा तथागत को सादर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। शास्ता ने उसका कुशल-क्षेम पूछा। उसने अपनी बातें बताईं तथा ज्ञानी भिक्षु को भेजने के लिए कहा ताकि कीटागिरी का वातावरण ठीक किया जा सके। तथागत ने सारिपुत्त तथा मोग्गलान को वहाँ भेज दिया। उन्हें समझाया, "वहाँ जाकर उन भिक्षुओं से कहो कि उपासकों को गलत शिक्षा और उदाहरण न दें और अगर फिर भी न मानें तो उन्हें संघ से निकाल दो।"

उन्हें समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे।।78।।

अर्थ: न तो दुष्ट मित्रों की संगति करें और न अधम पुरुषों की। संगति करें अच्छे मित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

उत्तम पुरुषों की संगति कल्याणकारी होती है
थेर छन्न की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेर छन्न राजकुमार सिद्धार्थ से उनके बचपन से ही परिचित था। जब उन्होंने घर छोड़ा तो वह कंटक घोड़े पर उनके साथ अनामा नदी तक आया। इससे पूर्व भी जब-जब सिद्धार्थ नगर में भ्रमण के लिए निकले, छन्न उनके साथ था। राजकुमार ने बूढ़ा आदमी देखा तो छन्न से पूछा कि क्या सभी की यही नियति है। छन्न ने उन्हें बताया कि सभी के साथ यही होगा अगर व्यक्ति उतनी उम्र तक जीवित रह पायेगा। एक बीमार और मृत व्यक्ति को देखने के बाद भी सिद्धार्थ ने छन्न से ऐसे ही प्रश्न किए और उसने इसी प्रकार का उत्तर देकर उन्हें समझाया।

महाभिनिष्क्रमण के बाद छः वर्षों की सतत् तपस्या के पश्चात् फल्गु नदी के किनारे पीपल के बोधि वृक्ष के नीचे राजकुमार सिद्धार्थ से बुद्ध हो गए। उन्होंने सत्य-दर्शन और ज्ञान- प्राप्ति को अपने आप तक सीमित नहीं रखा वरन् सभी के साथ बाँटना प्रारंभ किया। पहले सारनाथ गए और वहाँ पंचभिक्षुओं को प्रव्रजित किया। उसके बाद लोगों में बुद्ध का उपदेश सुनने तथा उनके धर्म और संघ में प्रवेश करने की होड़ लग गई। बुद्ध के अनेक शिष्य हुए जो साधना की ऊँचाइयों को छू गए जैसे सारिपुत्त, महामोग्गलान, काश्यप, आनन्द आदि। अपनी साधना के कारण वे बुद्ध की कृपादृष्टि के पात्र हुए और उनके नजदीकी भी, लेकिन छन्न यह सब देखकर जलता था। वह कहता, "जब शास्ता ने महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया था उस समय मैं अकेला उनके साथ था और तब से मैं ही उनके साथ रहा हूँ। आज जो नए-नए भिक्षु आ गए हैं वे कहते हैं, 'मैं मोग्गलान हूँ', 'मैं सारिपुत्त हूँ' आदि।" ऐसा कहकर वह इन भिक्षुओं की निंदा किया करता था। तथागत को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने छन्न को बुलाकर ऐसा करने से मना किया। उस समय तो वह चुप हो गया पर बाद में फिर निंदा करनी शुरू कर दी। तब बुद्ध ने तीन बार छन्न को बुलाकर सलाह दी, "छन्न ! सारिपुत्त और मोग्गलान दोनों ही तुम्हारे हितैषी हैं। ये दोनों ही पूजनीय पुरुष हैं। तुम्हें इनकी निंदा नहीं करनी चाहिए। वरन् तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए।" छन्न ने इतना होने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ी। अन्त में शाक्य मुनि ने सभी भिक्षुओं को बुलाकर कहा, "भिक्षुओं ! मेरे जीवित रहने तक छन्न को कोई भी नहीं समझा पाएगा। मेरे परिनिर्वाण के बाद ही उसे समझ आयेगी।" परिनिर्वाण के समय आनन्द ने शास्ता से पूछा, "भन्ते ! छन्न को क्या दंड दिया जाना चाहिए ?" "ब्रह्मदंड", बुद्ध का उत्तर था।

शास्ता परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। स्थविर आनन्द ने छन्न को शास्ता का आदेश बता दिया कि उसे ब्रह्मदंड मिला था। यह सुनकर छन्न तीन बार मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा तथा भन्ते आनन्द के चरणों में गिर पड़ा, "भन्ते ! इतना कठोर दंड देकर मेरा अंत मत कीजिए।" उसके बाद वह स्थविरों के प्रति श्रद्धा और सम्मान से पेश आने लगा और कुछ ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर गया।

गाथा: धम्मपीति सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो।।79।।

अर्थ: धर्म रस ग्रहण करने वाला प्रसन्न चित्त होकर सुख से सोता है। पंडित (विद्वान) व्यक्ति बुद्ध की शिक्षा में सदा रमण करता है।

सुखपूर्वक सोना चाहते हैं तो धर्म रस का पान करें
महाकप्पिन थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

हिमालय की तराई में कुक्कुट नाम का एक नगर था। उस राज्य का नाम था कुक्कुटावती। महाकप्पिन उस राज्य का राजा था। उसकी पत्नी अनोजा बहुत ही सुन्दरी और गुणवती थी। वह राजा के हर पुण्य के काम में हाथ बँटाती थी।

एक बार श्रावस्ती से व्यापारियों का एक मंडल कुक्कुटावती आया। श्रावस्ती और कुक्कुटावती के बीच व्यापार होता था। राजा श्रावस्ती के विषय में, वहाँ के राजा, देश और धर्म के बारे में जानने के लिए आग्रह करता है। वह जानना चाहता है कि ये व्यापारीगण किसके अनुयायी हैं। व्यापारी उत्तर नहीं देते तथा समझाते हैं कि बिना मुँह हाथ धोये वे कुछ नहीं बता सकते। पानी लाया जाता है, वे मुँह-हाथ धोते हैं और तब बताते हैं, "हमारे यहाँ सम्यक-सम्बुद्ध प्रकट हुए हैं और उनके ज्ञान से दिगदिगंत प्रकाशित हो रहा है।" राजा का हृदय भी बुद्ध के विषय में जानने के लिए व्याकुल हो जाता है। वह व्यापारियों से बुद्ध के विषय में विस्तृत रूप से समझाने का आग्रह करता है। व्यापारीगण बुद्ध, धर्म और संघ के विषय में व्याख्यान देते हैं। राजा बहुत प्रभावित होता है, उन्हें एक लाख रूपये का पुरस्कार देता है तथा घोड़े पर सवार होकर उनके साथ श्रावस्ती के लिए चल देता है।

उधर शास्ता ने अपने दिव्य चक्षु से देखा कि महाकप्पिन उनके दर्शन के लिए आ रहा है। अत: वे भिक्षाटन से निवृत्त होकर, चिनाब नदी के तट पर, वट वृक्ष के नीचे बैठ गए। उनके शरीर से चारों ओर दिव्य रोशनी निकल रही है। महाकप्पिन उनकी दिव्य आभा देख मोहित हो गया। उसने वहाँ जाकर शास्ता को सादर प्रणाम किया। उसके अन्तर्नेत्र खुल गए। शंकाएं दूर हो गईं। उसने शास्ता से प्रव्रज्या दिलाने का आग्रह किया। शास्ता ने अनुमति दे दी। राजा प्रव्रजित हो गया और उसके साथ उसके अनुचर भी प्रव्रजित हो गए।

उधर रानी अनोजा ने सुना कि राजा अपने अनुचरों के साथ श्रावस्ती के लिए प्रस्थान कर गये हैं तो वह भी अपनी दासियों के साथ शास्ता के दर्शन के लिए चल पड़ी। वह भी चिनाब नदी के तट पर पहुँची, शास्ता को प्रणाम किया और उनका भव्य रूप देखकर तुरंत प्रव्रजित होने के लिए आग्रह करने लगी। तथागत ने उप्पलवण्णा से कहा कि वह उन्हें प्रवजित करे। सभी दासियों सहित रानी प्रव्रजित हो गई।

राजा को ध्यान साधना में रस आने लगा। वह हृदय से अति प्रसन्न था और अर्हत प्राप्ति के बाद अक्सर कह उठता था, "अहो सुख ! अहो सुख !! " सुनने वाले इसे सुनकर सोचते थे कि वह अपने पहले के कामभोग सुखों को याद कर ऐसा बोलता है। अत: यह बात शास्ता तक पहुँची। शास्ता ने महाकप्पिन को बुलाकर पूछा, "क्या तुम वास्तव में अपने पूर्व के राज सुखों को याद कर ऐसा कहते हो ? " "भन्ते ! आप तो मेरे हृदय की बात जानते हैं कि मैं ऐसा क्यों कहता हूँ," राजा ने कहा। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मेरा पुत्र अपने पुराने राजसुखों को याद करके ऐसा नहीं बोलता। वरन् उसे धर्म प्रीति से जो रस प्राप्त हुआ है उसके आधार पर बोलता है।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

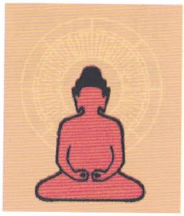

गाथा: उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता।।80।।

अर्थ: जैसे नहरों से किसान जल ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को तपाकर सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को काटकर विभिन्न स्वरूप देते हैं, उसी प्रकार पंडित जन भी अपना दमन करते हैं।

आत्म संयमी पंडित अर्हत्व प्राप्त करते हैं
पंडित सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी सेठ रहता था। पंडित नाम का उसका पुत्र सात वर्ष की उम्र में ही सामनेर बन गया। प्रव्रज्या के आठवें दिन वह स्थविर सारिपुत्त के साथ चल रहा था। रास्ते में उसने देखा कि किसान क्यारियाँ बनाकर जहाँ चाहें, वहीं पानी पहुँचा रहे हैं। वे वैसी जगह भी पानी पहुँचा रहे हैं जहाँ पानी अपनी स्वाभाविक गति से नहीं पहुँच सकता है। पंडित ने सारिपुत्त से प्रश्न किया, "इस अचेतन पानी को क्या कोई जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकता है ?" सारिपुत्त ने उसे समझाया, "हाँ सामनेर ! इस अचेतन को कोई भी अपनी इच्छा से जिधर ले जाना चाहता है, ले जा सकता है और जल को उधर जाना ही होता है।" पंडित सोच में डूब गया, "जब ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर जहाँ चाहे ले जाया जा सकता है और उसका उपयोग किया जा सकता है तो क्या मैं अपने चित्त को अपने वश में करके शान्त नहीं कर सकता ?"

दोनों आगे बढ़े। बढ़ई काठ को काटकर उससे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे रथ आदि बना रहे थे। उसने फिर सोचा, "अगर ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर, जैसा चाहे वैसा स्वरूप दिया जा सकता है और उसका उपयोग किया जा सकता है तो फिर अपने चित्त को वश में कर श्रमण धर्म का पालन क्यों नहीं किया जा सकता ?"

सारिपुत्त तथा पंडित और भी आगे बढ़े। पंडित चिंतन में खोया था। उसने इस बार धनुष बनाने वालों को देखा कि वे सरकंडा लेकर उसे आग में तपाते हैं और फिर आँख के किनारे से देखकर उसे सीधा करते हैं और फिर वाण बनाते हैं।" उसने पुनः सारिपुत्त से उसी प्रकार का प्रश्न किया कि क्या इस अचेतन वस्तु को, जैसा चाहे, वैसा स्वरूप दिया जा सकता है। स्थविर ने उत्तर दिया, "हाँ।" पंडित सोचने लगा, "अगर ऐसी अचेतन वस्तु को प्रयत्न कर जैसा चाहे वैसा स्वरूप दिया जा सकता है तो फिर अपने चित्त को जिधर चाहे उधर ले जाकर श्रमण धर्म का पालन क्यों नहीं किया जा सकता है ?"

सामनेर के अंर्तचक्षु खुल गए। उसने सारिपुत्त से आज्ञा ली और विहार में आकर ध्यान-साधना में लीन हो गया। ध्यान में लीन होकर सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

संध्या बेला में धमचर्या हुई। आज का विषय था- "सामनेर पंडित।" शाक्य मुनि ने बताया, "जब कोई व्यक्ति पूरी तन्मयता से ध्यान तथा धर्म का अनुपालन करता है तो इन्द्र और अन्य देवता भी उसकी रक्षा करते हैं। मैंने भी उसके कक्ष के बाहर खड़ा होकर उसकी मदद की ताकि उसकी साधना में कोई व्यवधान न आवे। किसान नहर से जल लेते हुए, धनुष बनाने वाले वाण को सीधा करते हुए तथा बढ़ई लकड़ी काटकर वस्तुएं बनाते हुए जो एकाग्रता प्राप्त करते हैं, उसी एकाग्रता को पाकर पंडित लोग आत्म संयम द्वारा अर्हत्व प्राप्त करते हैं।"

ऐसा कहते हुए उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिज्जन्ति पण्डिता।।81।।

अर्थ: जैसे पहाड़ हवा से विचलित नहीं होता उसी प्रकार पंडित लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

बुद्धिमान पुरुष निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते
लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में जेतवन विहार में लकुण्टक भद्दिय थेर भी निवास करता था। वह कद में ठिगना था। अत: लोग उसे 'लकुण्टक भद्दिय' कहते थे। यद्यपि वह कद में छोटा था, तथापि हृदय से बहुत ही बड़ा था। सरल, नम्र और पवित्र हृदय का था। चूँकि वह बहुत ही सीधा-साधा तथा साफ हृदय का था, भिक्षुगण उसकी आयु का भी सम्मान न करते हुए अक्सर उसका मजाक उड़ाया करते थे। अक्सर तरुण भिक्षु उसके सर पर चपत लगा देते थे, उसके कान या नाक पकड़ कर रगड़ देते और मजाक करते, "अरे चाचाजी ! धर्म में पूरा मन नहीं लगा रहे हो। भिक्षु जीवन से ऊब तो नहीं गए हो ? यहाँ खुश नहीं हो क्या ? " आदि-आदि। वह भला और स्वच्छ हृदय वाला थेर उनके इस गलत व्यवहार पर भी उन पर न तो गुस्सा करता था और न ही द्वेष। वह उन्हें न तो टोकता था और न उनसे कोई शिकायत ही करता था। प्रसन्नचित्त रहकर अपनी साधना में लीन रहा करता था।

शाक्य-मुनि को लकुण्टक भद्दिय थेर के विषय में जानकारी हुई। उधर एक दिन संध्या बेला में धर्म सभा में चर्चा चल पड़ी, "लकुण्टक भद्दिय थेर के साथ तरुण भिक्षु ऐसा दुर्व्यवहार करते हैं पर वे इतने अच्छे हैं कि किसी पर न तो क्रोध प्रकट करते हैं और न किसी के प्रति द्वेष ही रखते हैं।" उसी समय शास्ता वहाँ पधारे। उन्होंने चर्चा का विषय सुना तो कहा, "हाँ भिक्षुगण ! यह सच है कि क्षीणास्त्रव भिक्षु न तो किसी पर क्रोध करते हैं और न किसी से द्वेष ही रखते हैं। वे पत्थर की चट्टान की तरह प्रशंसा और निंदा दोनों में ही अडिग रहते हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यथापि रहदो गम्भीरो, विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान, विप्पसीदन्ति पण्डिता।।82।।

अर्थ: पंडित जन धर्म को सुनकर अथाह, गहरे, स्वच्छ, निर्मल स्थिर जलाशय (समुद्र) के समान अत्यन्त प्रसन्न चित्त होते हैं।

पंडित जन धर्म श्रवण कर प्रसन्नचित होते हैं
काण माता की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

काणमाता की बेटी काणा को ससुराल वापस जाना था। माँ ने सोचा : बेटी पति के घर खाली हाथ न जाये इसलिए पूए बनाए गए पर उसी समय भिक्षुगण वहाँ आ पधारे और पूए उन्हें दे दिए गए। पूए दोबारा बने, फिर भिक्षु आ गए, पूए उन्हें दे दिए गए। यह सिलसिला चलता रहा और काणा का ससुराल जाना स्थगित होता रहा। पति ने क्रुद्ध होकर दूसरी शादी कर ली, काणा का मन खट्टा हो गया। भिक्षुओं के प्रति अब उसे नफरत हो गई। वह कहती, "इन भिक्षुओं ने मेरा घर उजाड़ दिया।" वह कभी भी किसी भिक्षु को देखती, बुरे शब्द बोलने लगती। भिक्षुओं को बुरा लगता। उन्होंने काणा के घर की ओर भिक्षाटन करना बंद कर दिया।

शास्ता को इस बात की जानकारी हुई। वे एक दिन काणमाता के घर भिक्षाटन हेतु जा पहुँचे। काणमाता ने उन्हें सादर प्रणाम किया और भोजन कराया। शास्ता ने भोजन कर काणमाता से पूछा, "काणा कहाँ है ?" "भन्ते ! वह आपको देखकर चुपचाप घर के एक कोने में बैठकर रो रही है।" "वह क्यों रो रही है ?" "भन्ते ! वह आजकल किसी भी भिक्षु को देखकर उसे भला-बुरा कहने लगती है। अतः आज आपको देखकर चुपचाप अकेली बैठी रो रही है।" तब शाक्य मुनि ने काणा को बुलाया और उससे पूछा, "काणे ! तुम मुझे देखकर घर में एक कोने में बैठकर, अकेली क्यों रो रही हो ?" तब काणमाता ने तथागत को बताया कि काणा ने क्या-क्या किया था। यह सब सुनकर उन्होंने काणमाता से पूछा, "काणमाता ! मुझे एक बात बताओ, भिक्षुगण तुम्हारे दिये हुए पूए खाते थे या बिना दिए हुए पूए भी खा जाते थे ? " "भन्ते ! वे तो दिए हुए पूए ही खाते थे। बिना दिए हुए पूए कैसे खाते ?" "तो फिर अगर भिक्षुगण तुम्हारे द्वार पर आते थे और तुम उन्हें पूए दे देती थी और वे पूए खाते थे तो इसमें उनका क्या दोष है ? " काणमाता ने उत्तर दिया, "नहीं भन्ते ! इसमें उनका कोई दोष नहीं है, इसमें दोष तो सिर्फ काणा का है।" शाक्य मुनि ने यही प्रश्न काणा से भी दोहराया। काणा भी बोली, "नहीं भन्ते ! इसमें भिक्षुओं का कोई दोष नहीं है। दोष तो मेरा ही है।" ऐसा कहकर काणा ने शास्ता को सादर प्रणाम किया और अपनी गलती के लिए क्षमा माँगी। तथागत ने उसे धर्मोपदेश दिया और वह धर्म के मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हुई।

बुद्ध काणा के घर से प्रस्थान कर गए। मार्ग में राजा से भेंट हो गई। बुद्ध ने राजा को बताया कि काणा का आने वाले लोक के लिए कल्याण हो गया । राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "मैं उसका इसी लोक में कल्याण करूँगा।" यह कहकर उसने रथ भेजकर काणा को बुला लिया और उसे आभूषणों से अलंकृत कर अपनी बड़ी बेटी बना लिया। साथ ही घोषणा की, "जो मेरी बेटी को सम्मान पूर्वक रख सकता हो वह उसे अपने घर ले जाए।" एक धनी महामात्य ने उसे अपने घर ला, संपूर्ण धन-दौलत की स्वामिनी बना धर्म-कार्य करने की स्वतंत्रता दे दी।

धर्म प्रवचन के समय इस विषय पर चर्चा हुई। शास्ता ने बताया कि उन्होंने पूर्व जन्मों में भी काणा को आज्ञाकारी बनाया था।

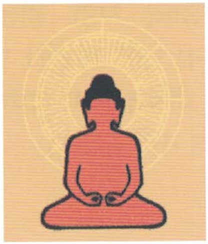

गाथा: सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति, न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन, न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति।।83।।

अर्थ: सत्पुरुष कहीं आसक्त नहीं होते हैं। वे कामभोगों की कामना नहीं करते। उन्हें चाहे सुख मिले या दु:ख, पंडित लोग अपने मन का चढ़ाव-उतार प्रदर्शित नहीं करते।

सद्पुरुष सुख-दु:ख में सर्वत्र सन्तुष्ट रहते हैं
पाँच सौ जूठा खाने वालों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय वेरञ्जा ग्राम के एक ब्राह्मण ने बुद्ध को वर्षाकाल में आमंत्रित किया। शास्ता अपने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वहाँ पहुँचे। गाँव में अकाल पड़ा था। अतः ब्राह्मण बुद्ध और भिक्षुसंघ का ठीक से ख्याल नहीं रख सका। भिक्षुगण गाँव में जाते, जो कुछ भी रूखा-सूखा मिलता उसे खाकर काम चला लेते। उनके साथ कुछ और लोग थे जो भिक्षुओं द्वारा छोड़े हुए भोजन को चटपट खाकर सो जाते थे। वर्षाकाल समाप्त हुआ। शास्ता भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती आ गए।

श्रावस्ती पहुँचने पर श्रावस्ती वालों ने तथागत तथा भिक्षुसंघ का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। जो लोग भिक्षुसंघ के साथ थे, वे खुशी के मारे झूमने-गाने लगे, मानों पागल हों। भिक्षु लोगों पर कोई असर नहीं हुआ। वे उसी प्रकार रहे जैसे वरेञ्जा में रहते थे। उन्होंने एक दिन धर्म सभा में इस विषय को उठाया, "ये छोड़े हुए भोजन खाने वाले लोग वेरञ्जा में तो इस प्रकार उछल-कूद नहीं मचाते थे। वहाँ तो वे शांत रहते थे। पर यहाँ आकर अच्छा एवं स्वादिष्ट उच्छिष्ट भोजन प्राप्त कर उछल-कूद मचा रहे हैं। इसके विपरीत भिक्षुगण जैसे वरेञ्जा में शांत रहकर ध्यान-साधना करते थे उसी प्रकार यहाँ भी धर्म साधना कर रहे हैं।"

शाक्य-मुनि को भी इसकी जानकारी दी गई। उन्होंने पूरी बात सुनकर स्पष्ट किया, "ये लोग पूर्व जन्म में गर्दभयोनि में जन्म लेकर इस प्रकार का उपद्रव कर चुके हैं। इसलिए उनका इस जन्म का आचरण भी उसी प्रकार का है। अच्छे लोग सुख और दु:ख, मान और अपमान सब में एक समान ही रहते हैं।" यह धर्मोपदेश देकर शाक्य-मुनि ने यह गाथा कही।

गाथा: न अत्तहेतु न परस्स हेतु, न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
नयिच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो, स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ।।84।।

अर्थ: जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन या राष्ट्र की इच्छा नहीं करता; जो अधर्म से अपनी उन्नति नहीं चाहता है वही सदाचारी है, प्रज्ञावान है, धार्मिक है।

धर्माचरण वाले व्यक्ति ही शीलवान, प्रज्ञावान हैं
धम्मिक थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में धम्मिक नाम का एक उपासक सदा धर्माचरण करता हुआ गृहस्थ आश्रम में रहता था। उसके मन में एक बार तीव्र विरक्ति हुई तथा उसने अपनी धर्मपत्नी से आनन्दपूर्वक बातचीत करते हुए कह डाला, "भाग्यवान ! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ।" पत्नी ने उसे समझाया, "मेरे पेट में तुम्हारा बालक पल रहा है। उसे जन्म ले लेने दो तब चले जाना।" वह मान गया। समय बीता। पुत्र हुआ। तब धम्मिक ने एक दिन फिर अपनी पत्नी से इस विषय पर चर्चा की। इस बार पत्नी ने कहा, "थोड़े दिन प्रतीक्षा कर लो। जब बालक बड़ा हो जाएगा तब चले जाना।" परन्तु इस बार उसने सोचा, "मेरी पत्नी बार-बार मेरी प्रव्रज्या को टाल देती है। उससे पूछने या न पूछने से मेरा कोई लाभ नहीं होगा।" ऐसा सोचकर वह प्रव्रजित हो गया।

उसने बुद्ध से दीक्षा ली और परिश्रमपूर्वक साधना करता हुआ शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गया। उसके बाद वह अपने परिवार से मिलने श्रावस्ती आया और अपने पुत्र को धर्मकथा सुनाई। उसकी धर्मकथा सुन पुत्र इतना प्रभावित हुआ कि उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और शीघ्र ही वह भी अर्हत्व प्राप्त कर गया। तब उसकी पत्नी ने विचार किया, "पति और पुत्र के लिए घर बसाया था। अब दोनों ही गृहस्थ नहीं रहे। अब मुझे भी गृहस्थ आश्रम में रहने से क्या लाभ ?" ऐसा सोचकर उसने भी प्रव्रज्या ले ली और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गई।

एक दिन धर्म-सभा में चर्चा चल पड़ी- "उपासक धम्मिक ने कठोर उपासना कर, अपने आपको धर्म मार्ग पर प्रतिष्ठित कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया। साथ ही साथ वह अपनी पत्नी और पुत्र के मुक्ति का भी आधार बना।" उसी समय शाक्य मुनि वहाँ पधारे और उन्होंने पूरी घटना का विश्लेषण किया, "भिक्षुओं ! समझदार व्यक्ति को न तो अपने लिए और न दूसरों के लिए लौकिक उन्नति की कामना करनी चाहिए; वरन् उसे धर्म को अपना शरणस्थल बना लेना चाहिए।"

यह समझाते हुए तथागत ने यह गाथा कही।

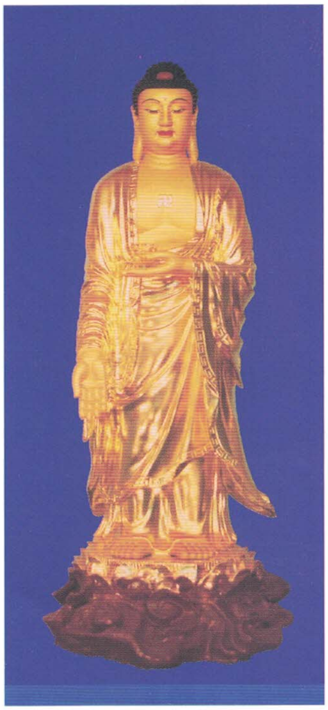

गाथा: अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति।।85।।

अर्थ: मनुष्यों में बहुत थोड़े होते हैं जो पार पहुँचते हैं। बाकी लोग तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं।

संसार पार जाने वाले थोड़े ही हैं
धर्म की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा तथागत ने श्रावस्ती के जेतवन विहार में धर्मश्रवण के विषय में कही थी।

एक बार श्रावस्ती वालों ने एक गली में रात्रि जागरण एवं धर्मपाठ आयोजित किया। इसमें पूरी रात भिक्षुगण उपदेश, प्रवचन आदि देते रहे। सारी रात धर्मकथा और धर्म श्रवण का सिलसिला जारी रहा परन्तु सारे इकट्ठे लोग पूरी रात धर्मकथा सुन नहीं पाए। किसी को धर्मश्रमण के काल में ही कामभोग ने आ दबोचा तो वह अपने निवास पर वापस लौट आया। किसी को मान ने आ दबोचा तो कोई आलस्य का शिकार हो गया। नतीजा यह कि कुछ लोग जल्दी उठकर चले गए, कुछ जल्दी ही जाकर सो गए, कुछ पूरी रात बैठ नहीं पाये और कुछ कभी बैठते तो कभी उठकर इधर-उधर घूमने-टहलने लगते। कुछ ऊँघते रहे और आधी-नींद में उठते-सोते प्रवचन सुनते रहे। बहुत थोड़े थे जो ध्यानपूर्वक, गम्भीरता से पूरी रात प्रवचन सुनते रहे।

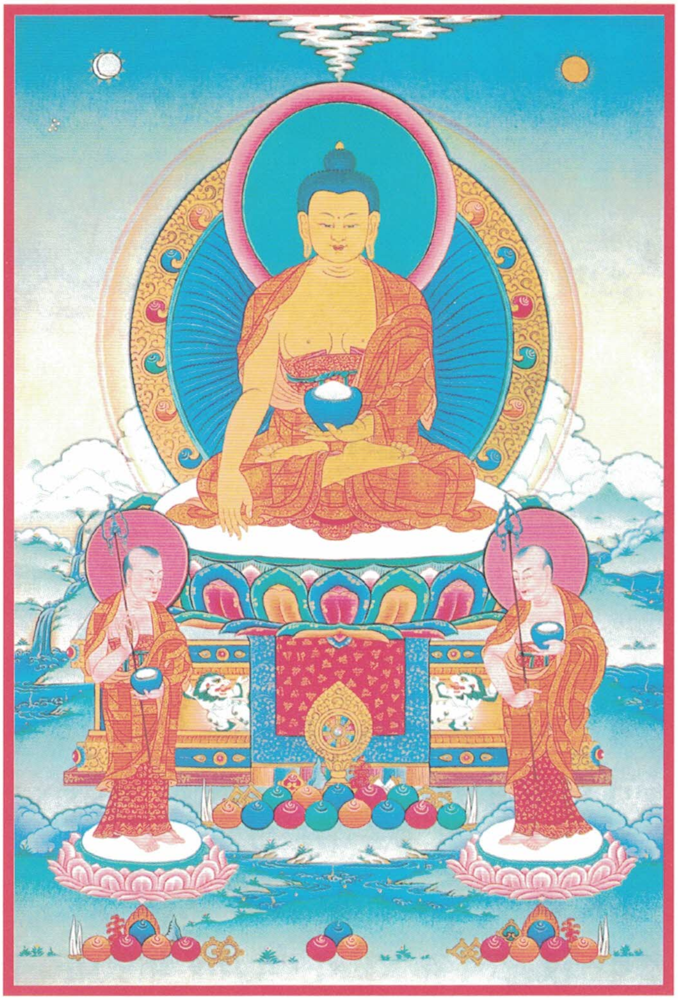

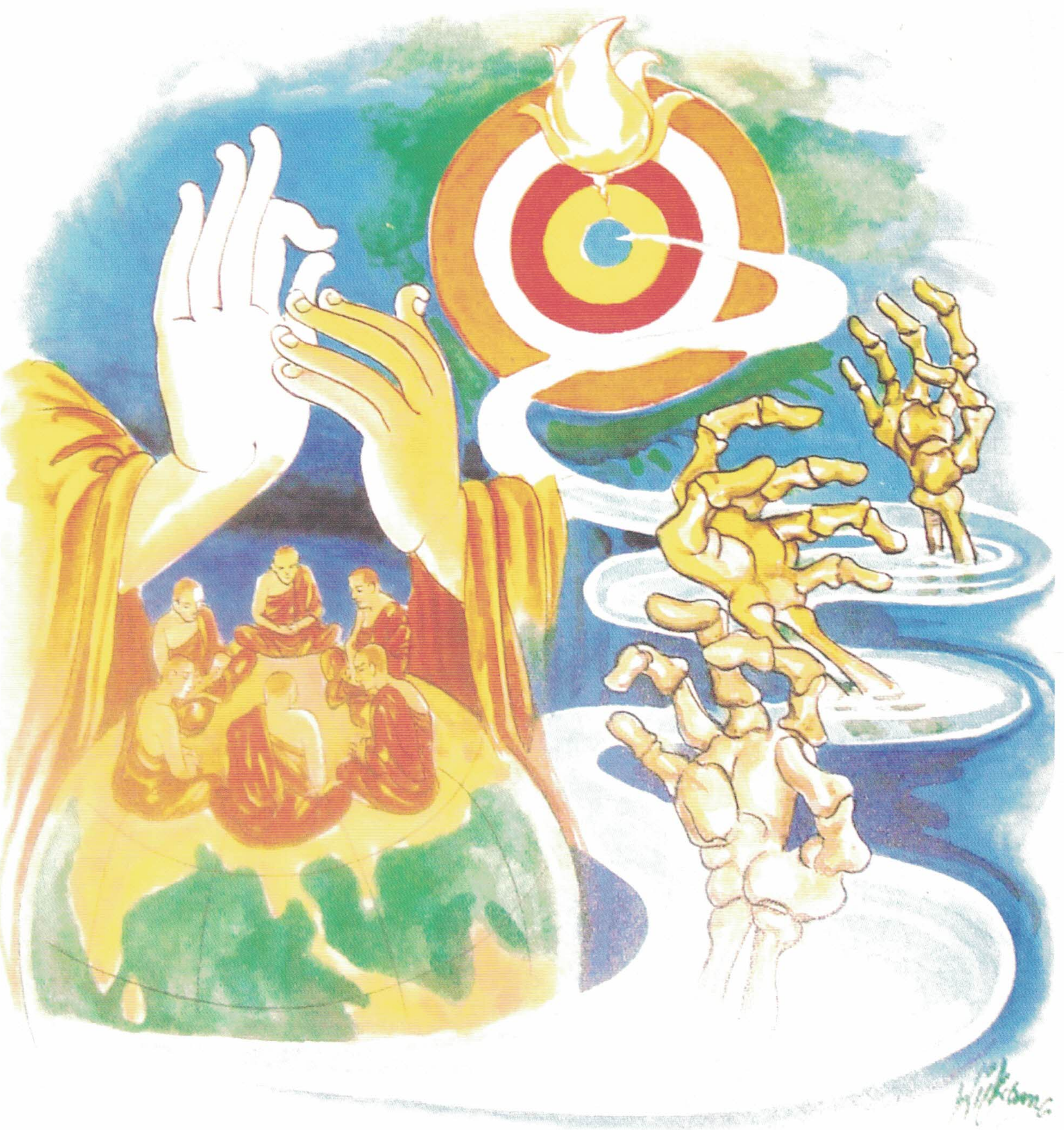

गाथा: ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।।86।।

अर्थ: जो लोग भी इस प्रकार स्पष्ट कर दिए गए धर्म के अनुसार आचरण करते हैं वे ही इस दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर पायेंगे।

धर्म का अनुगमन करने वाले भवसागर पार कर जायेंगे
धर्म की कथा

दूसरे दिन धर्म सभा में बुजुर्ग भिक्षुओं ने इस विषय को चर्चा के लिए उठाया। उन्होंने शास्ता को बताया कि संपूर्ण रात्रि धर्म प्रवचन की स्थिति कैसी रही । शास्ता ने पूरे प्रकरण को समझकर भिक्षुओं को स्पष्ट किया, "भिक्षुगण ! संसार में जन्मे अधिकांश प्राणी संसार में ही आसक्त रहते हैं तथा संसार में ही आसक्त रहना चाहते हैं। संसार रूपी भवसागर पार उतरने की इच्छा रखने वाले विरले ही होते हैं। जो मनुष्य धर्म के अनुसार आचरण करता है, वह इस मृत्यु रूपी भवसागर को पार कर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।" उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए समझाया, "भिक्षुओं ! सभी नदी के पार उतरना चाहते हैं। यह संसार भी एक नदी की तरह ही है। नदी की तरह इसके भी दो किनारे हैं- पहला किनारा है मृत्यु, काल और अस्तित्व का और दूसरा किनारा है : अमृतमय, आनंद और निर्वाण का। एक किनारा सांसारिक, लौकिक है तो दूसरा किनारा अलौकिक निर्वाण तक पहुँचाने वाला मार्ग है। अधिकांश लोग नदी के किनारे-किनारे ही दौड़ने वाले हैं। मनुष्यों में बहुत थोड़े हैं जो संसार सागर के पार उतरना चाहते हैं।"

ऐसा समझाकर बुद्ध ने ये गाथायें कहीं।

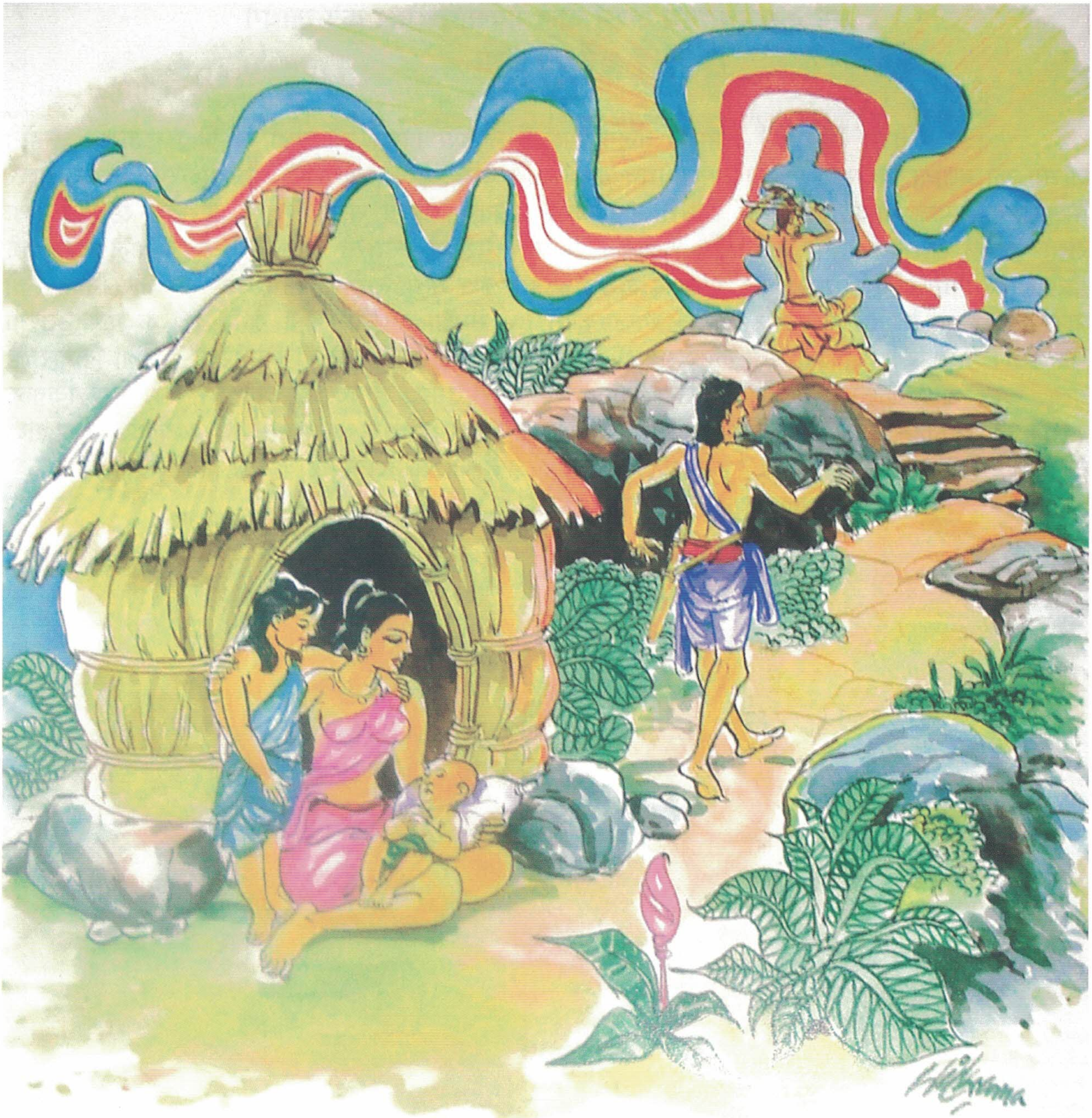

गाथा: कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म, विवेके यत्थ दूरमं।।87।।

अर्थ: बुद्धिमान पुरुष कृष्ण (पाप कर्म) धर्म का परित्याग कर शुक्ल धर्म (पुण्य कर्म) की कामना करे अर्थात् पाप कर्म को त्यागकर पुण्य कर्म करने के लिए प्रेरित हो। वह घर से बेघर होकर सामान्य व्यक्ति के लिए आकर्षणहीन एकांत का सेवन करे।

बुद्धिमान कृष्ण धर्म का त्याग कर शुक्ल धर्म का आचरण करें
आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

ये तीन गाथायें शाक्य-मुनि ने जेतवन वास काल में पाँच सौ आगन्तुक भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

एक बार पाँच सौ भिक्षु कोसलराज में वर्षावास बिताने के बाद "शास्ता के दर्शन करेंगे" इस उद्देश्य से जेतवन विहार पधारे। उन्होंने तथागत को सादर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। शास्ता ने उनका हाल-समाचार पूछा और फिर उनकी साधना के विषय में भी पूछा। उन्होंने अपने-अपने अनुभव बताये और उसे सुनने के बाद बुद्ध ने ये तीन गाथायें कहीं।

गाथा: तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिंचनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो।।88।।

अर्थ: काम भोगों को छोड़ कर अकिंचन बनकर वहीं उसी प्रव्रज्या की अवस्था में ही रहने की इच्छा करे। पंडित व्यक्ति पाँच चित्त-मलों से अपने आप को परिशुद्ध करे।

कामनाओं को त्यागकर प्रव्रज्या धारण करें
आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

टिप्पणी : बुद्ध ने ये तीन गाथायें पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी, पर गृहस्थ धर्म वालों के ऊपर भी यह लागू होता है। कैसे ? बुद्ध सीख देते हैं कि समझदार व्यक्ति को कृष्ण (पाप) धर्म का त्याग कर शुक्ल (पुण्य) धर्म का आचरण करना चाहिए। बुद्ध की सारी शिक्षा का सार है, "अकुशल कर्मों का त्याग और कुशल कर्मों का सृजन।" यह शाश्वत सत्य प्रकृति का एक ऐसा नियम है जो सभी के ऊपर लागू होता है। गृहस्थ सामान्यतः वह है जो सांसारिक चीजों में खोया हुआ है। इसके विपरीत प्रव्रजित वह है जो सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठ गया है। यह "चीजों में खोना" या "सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठना" बाह्य जगत की चीज नहीं है वरन् आन्तरिक प्रक्रिया है। अतः मन की कुशलता या अकुशलता के आधार पर गृहस्थ भी प्रव्रज्या की मनःस्थिति में रह सकता है। इसके विपरीत एक प्रव्रजित संन्यासी भी संसार में आसक्त रह सकता है।

गाथा: येसं संबोधिअड्गेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदानपटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता।।89।।

अर्थ: जिनका चित्त सम्बोधि-अंगों में भली भाँति अभ्यस्त हो चुका है, जो परिग्रह का त्याग कर अपरिग्रह में लीन हैं, जिनके चित्तविकार समाप्त हो चुके हैं, जो तेजस्वी बन चुके हैं ऐसे लोग ही संसार में निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

चित्तविकारों से मुक्त निर्वाण प्राप्त करेंगे
आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

अत: जो जहाँ है उसे वहीं पर मन को कुशल बनाने के लिए तुरंत प्रयत्नशील हो जाना चाहिए, क्योंकि अगर व्यक्ति मन से संसार में अनुरक्त है तो उसके लिए विवेक की साधना कठिन होती है। अत: सारा का सारा खेल मन का है। शास्ता ने इसे प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" के प्रथम श्लोक से ही स्पष्ट कर दिया है। जो व्यक्ति मन से कामनाओं को त्याग देगा वही अकिंचन बनकर प्रव्रज्या की मन:स्थिति में रह पायेगा और इस प्रकार मन के क्लेशों का नाश कर स्वयं को परिशुद्ध कर सकेगा।

जिनका चित्त सम्बोधि-अंगों (सति, धम्म-विचय, वीर्य, पीति पस्सद्धि, समाधि और उपेक्खा,) में रम गया है इस कारण सांसारिक लाभों के प्रति वैरागी हो गया है और चित्त विकारों का नाश कर ज्ञानी हो गया है, ऐसा व्यक्ति ही अंतत: निर्वाण को प्राप्त कर सकेगा।

DHAMMAPADA

PANDITA VAGGA

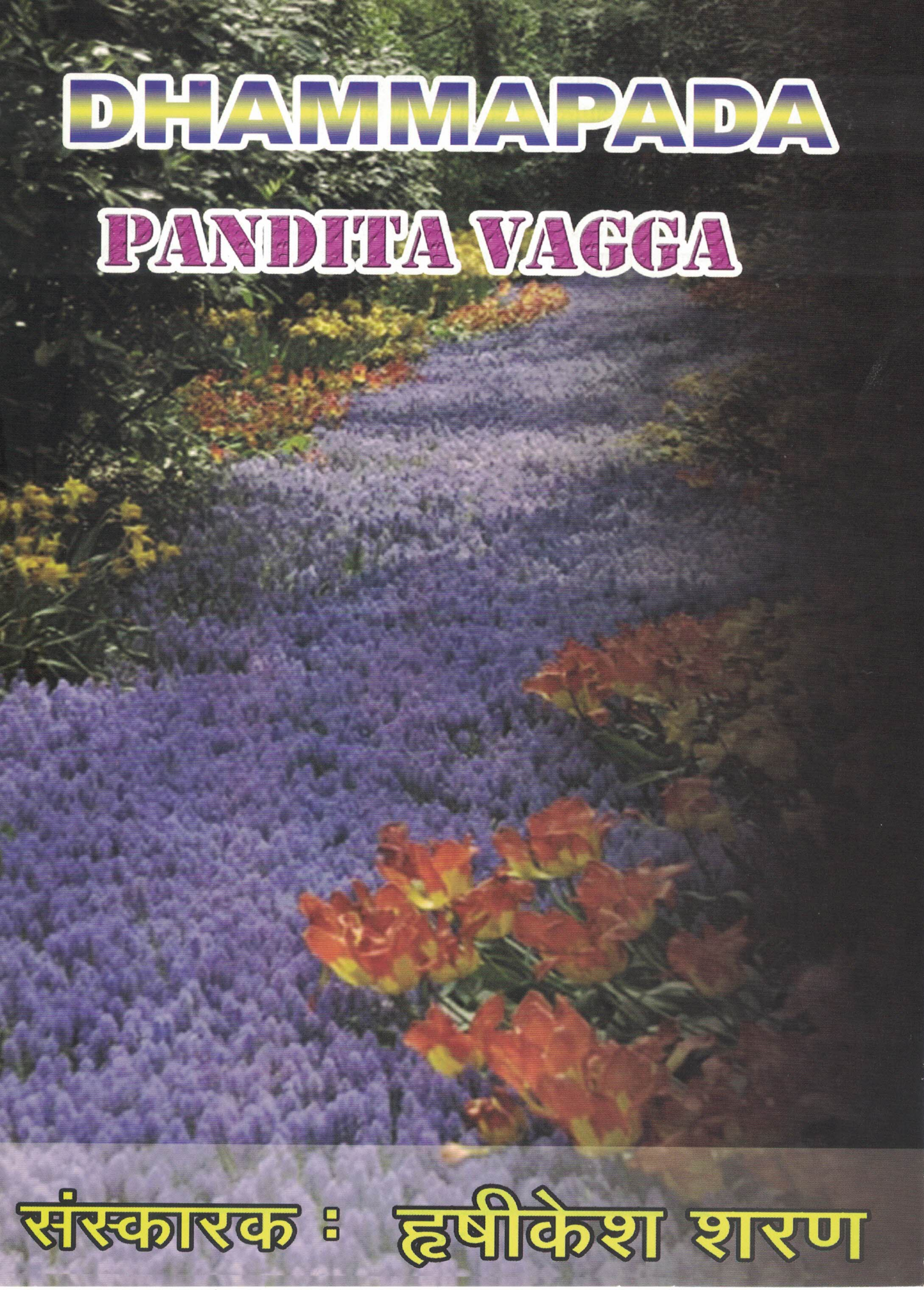

संस्कारक : हृषीकेश शरण

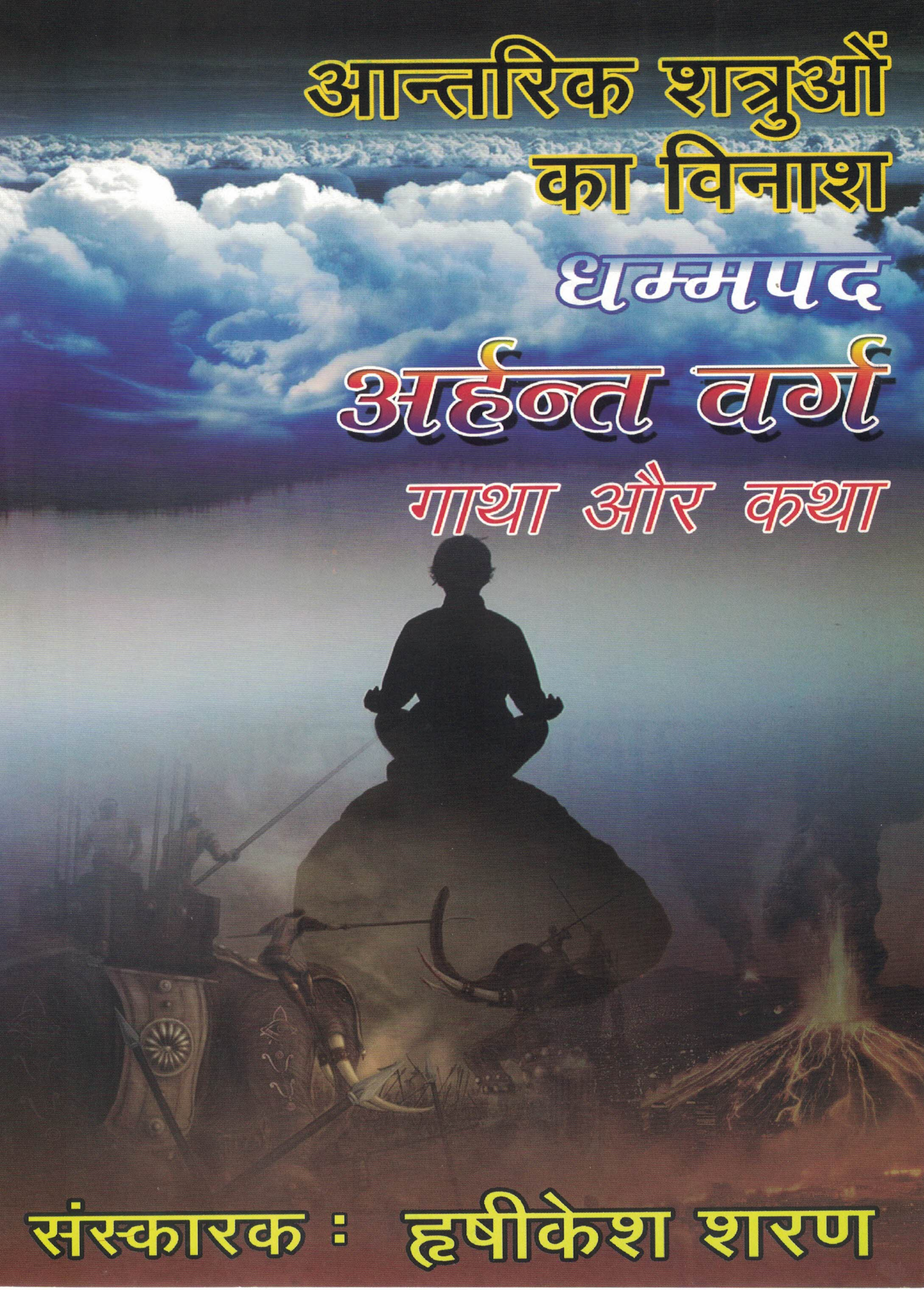

आन्तरिक शत्रुओं का विनाश

धम्मपद

अर्हन्त वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक : हृषीकेश शरण

आन्तरिक शत्रुओं का विनाश

धम्मपद

अर्हन्त वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

अर्हन्त वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	जीवक की कथा	90	जीवनमुक्तः बुद्धों को कष्ट कहाँ ?	215
2.	महाकस्सप थेर की कथा	91	आसक्ति का बंधन टूटा	217
3.	बेलट्ठिसीस स्थविर की कथा	92	भिक्षुओं का संचय अनुचित है	219
4.	अनुरूद्ध स्थविर की कथा	93	निर्वाण का गति अज्ञेय है	221
5.	महाकात्यायन थेर की कथा	94	इन्द्रिय संयमित भिक्षु सभी के प्रिय होते हैं	223
6.	सारिपुत्त थेर की कथा	95	साधक पुरूष सांसारिक बंधन रहित होते हैं	225
7.	कौसाम्बीवासी तिस्स थेर की कथा	96	यथार्थ ज्ञान प्राप्त पुरुष का मन, वाणी और कर्म शान्त होता है	227
8.	सारिपुत्त थेर के प्रश्नोत्तर की कथा	97	श्रेष्ठ कौन है ?	229
9.	खादियखानिय रेवत की कथा	98	किसका वासस्थान रमणीय ?	231
10.	किसी स्त्री की कथा	99	वीतरागी कहाँ रमण करेंगे ?	233

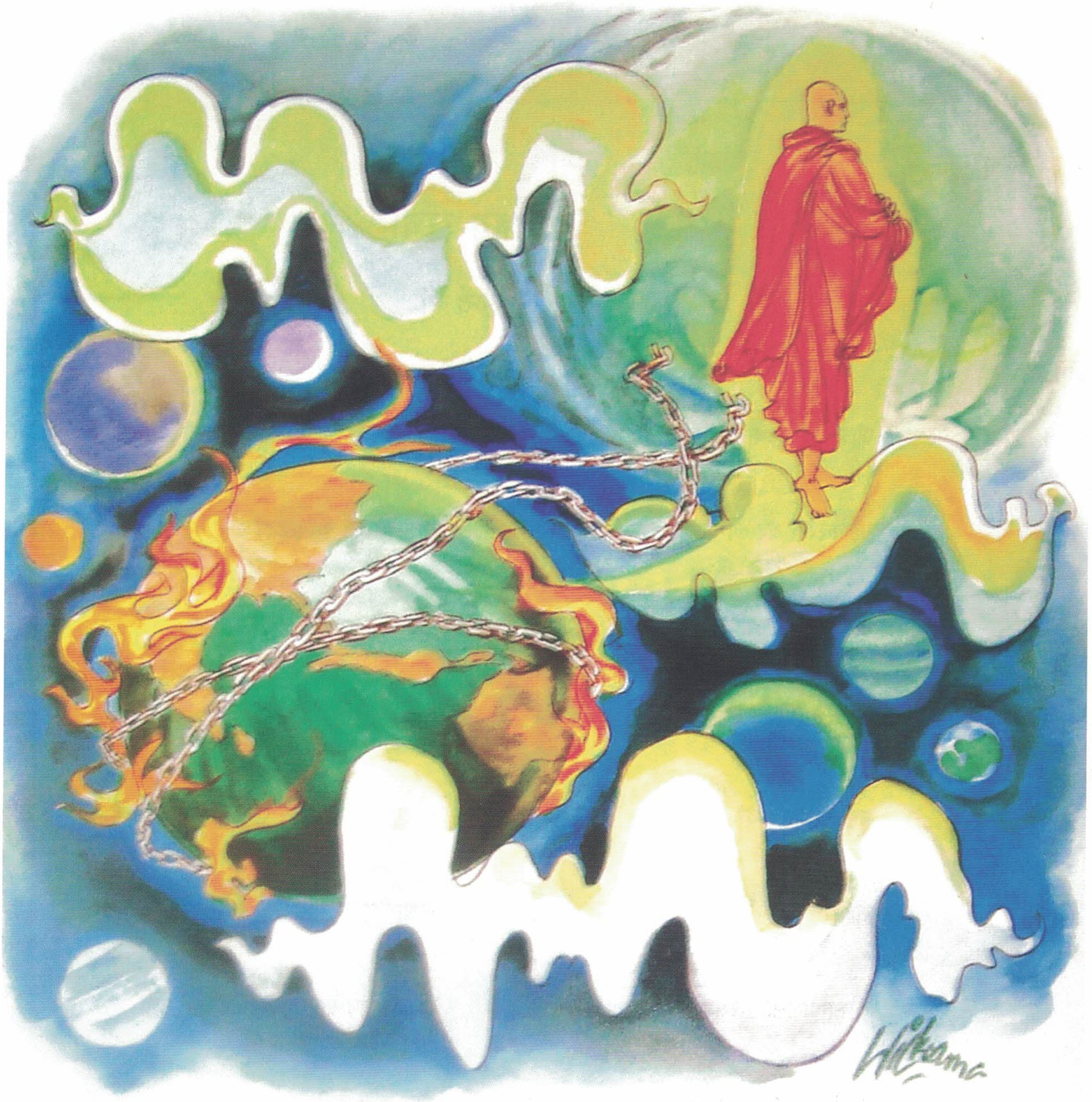

गाथा: गतद्धिनो विसोकस्स, विप्पमुत्तस्स सब्बधि।
सब्बगन्थप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति।।90।।

अर्थ: जिसने मार्ग पूरा कर लिया है अर्थात् जिसका संसार में आना-जाना समाप्त हो चुका है, जो सभी तरह से विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रंथियाँ खुल गई हैं ऐसे व्यक्ति के लिए कोई संताप (कष्ट) नहीं रह जाता।

जीवनमुक्त : बुद्धों को कष्ट कहाँ ?
जीवक की कथा

स्थान : जीवकाम्रवन, राजगृह

एक दिन देवदत्त ने यह प्रण कर कि 'तथागत की जान ले लूँगा' गृद्धकूट पर्वत से एक चट्टान खिसका दी। उसके पर्वत के शिखरों से टकराने से अनेक टुकड़े हो गए और एक टुकड़ा शाक्य मुनि के पैर के अंगूठे में आ लगा। खून बहने लगा। घाव हो गया। वह फरसे से लगे घाव की तरह दिख रहा था।

शास्ता ने जीवक के पास ले चलने की सलाह दी। भिक्षु उन्हें लेकर जीवक के आम्रवन पहुँचे। जीवक राजगृह का प्रसिद्ध वैद्य था और बुद्ध का भक्त भी था। उसने अंगूठे पर तीक्ष्ण मलहम-पट्टी लगाकर शाक्य-मुनि से यूँ कहा, "भन्ते ! मुझे राजगृह में अन्य मरीजों को देखना है। उन्हें देखकर आता हूँ। तब तक यह पट्टी बंधी रहने दें।" ऐसा कहकर वह चला गया, लेकिन मरीज देखते-देखते उसे देर हो गई। वह शास्ता के पास आना चाहता था पर नगर के सभी द्वार बंद कर दिए गए थे। वह नहीं जा पाया पर उसने विचार किया, "हे भगवान ! मैंने बहुत गलत कर दिया। शास्ता का पट्टी खोलने का समय हो गया है। अगर पट्टी नहीं खुली तो उन्हें रात भर बहुत दर्द होता रहेगा।" उधर शाक्य मुनि ने आनन्द स्थविर को बुलाया और कहा, "आनन्द ! जीवक ने कहा था कि वह इस समय तक आ जाएगा। पर लगता है नगर के द्वार बंद हो जाने के कारण वह नहीं आ पाया है। मेरे अंगूठे की पट्टी खोल दो।" आनन्द ने पट्टी खोल दी। घाव सूख चुका था। उधर जीवक सुबह-सुबह शाक्य-मुनि के पास आ पहुँचा। पहुँचकर पूछा, "भन्ते ! क्या शरीर में तकलीफ हो रही है ?" शाक्य मुनि ने उत्तर दिया, "जीवक ! जिस दिन से बोधिलाभ प्राप्त किया है उस दिन से मुझे न कोई दुःख है, न तकलीफ, न कोई कष्ट है और न कोई पीड़ा।"

तब अवसर के अनुकूल बुद्ध ने यह गाथा कही

गाथा: उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो, न निकेते रमन्ति ते।
हंसाव पल्लवं हित्वा, ओकमोकं जहन्ति ते।।91।।

अर्थ: जो साधकजन स्मृतिमान होकर अपनी साधना (ध्यान, विपश्यना आदि उद्योग) में लगे रहते हैं वे गृहस्थ (घर) में कोई आसक्ति नहीं रखते। जैसे स्वच्छ जलाशय में तैरने वाले राजहंस गाँव के गंदे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही ऐसे साधक साधारण गृहस्थी में कोई आसक्ति नहीं रखते।

आसक्ति का बंधन टूटा
महाकस्सप थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य-मुनि राजगृह में भिक्षुगण के साथ वर्षाकाल बिता रहे थे। वर्षाकाल समाप्त होने से दो सप्ताह पूर्व उन्होंने भिक्षुओं को बता दिया कि सभी भिक्षु वर्षाकाल की समाप्ति पर राजगृह से कूच कर जायेंगे। सभी भिक्षु जाने की तैयारी करने लगे। महाकस्सप भी अपने चीवर आदि धोने लगे, जाने की तैयारी में जुट गए।

भिक्षुओं ने उन्हें भी तैयारी करते हुए देखा तो चर्चा करने लगे, "राजगृह के आसपास के उपासकों की महाकस्सप में अटूट श्रद्धा है। वे उनकी ह्रदय से सेवा करते हैं और उनमें प्रेम रखते हैं। हमें नहीं लगता कि वे उन्हें छोड़कर वर्षाकाल के बाद शास्ता के साथ प्रस्थान करेंगे।"

दो सप्ताह बीत गए। जाने का दिन आ गया। शास्ता को ध्यान आया, "राजगृह में बहुत सारे उपासक रहते हैं, उपासक भिक्षुओं को भोजन दान देते हैं, नए-नए उपासक संघ में शामिल होते है और इसी प्रकार के अन्य अवसर भी आते हैं। अतः विहार को खाली छोड़ना उचित नहीं होगा। कुछ भिक्षुओं को यहाँ रुक जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर उन्होंने महाकस्सप और कुछ भिक्षुओं को वहीं रुक जाने का निर्देश दिया। तथागत की आज्ञा का पालन करते हुए वे रुक गए।

उन्हें रुकते हुए देख भिक्षुगण आपस में चर्चा करने लगे, "देखा ! हम तो पहले से ही कह रहे थे कि महाकस्सप चीवर धोकर चलने की तैयारी क्यों कर रहे हैं ? इन्हें तो यहीं रहना था। हमने जो कहा था वही हुआ।" तथागत ने इन भिक्षुओं की चर्चा सुनी और कहा, "भिक्षुओं ! तुम महाकस्सप के विषय में यह मत कहो कि यह इस जगह से आसक्त है। इसे तो मैंने ही विहार के कार्य के लिए रुक जाने के लिए कहा है और 'मैं आपके आदेश का पालन करूँगा' यह कहकर वह रुका है। इसने पूर्व जन्म में भी इसी प्रार्थना के साथ साधना प्रारंभ की थी कि 'मैं चन्द्रमा की तरह सभी परिवारों में जाऊँ।' इसकी किसी चीज में आसक्ति नहीं है।"

फिर विस्तृत वृतांत पूछने पर शास्ता ने महाकस्सप के पूर्व जन्म की कथा सुनाई और समझाया, "जो राजहंस स्वच्छ सरोवर में तैर चुका है, उसे किसी गंदे तालाब में तैरने की क्या इच्छा होगी ? " उन्होंने यह फिर संदेश दिया।

गाथा: यस सान्निचया नात्थि, य पारञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो येसं गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, गति तेसं दुरन्नया।।92।।

अर्थ: जो वस्तुओं, कर्मों और प्रत्ययों का संचय नहीं करते, जिन्हें अपने आहार की मात्रा का पूरा ज्ञान है, शून्यता स्वरूप और निमित्तरहित निर्वाण (विभोक्ष) जिनका विचरण स्थान (गोचर) है, उनकी गति उसी प्रकार अज्ञेय है जैसे आकाश में पक्षियों की गति।

भिक्षुओं को संचय अनुचित है
बेलट्ठिसीस थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन थेर बेलट्ठिसीस भिक्षाटन के लिए निकले। भिक्षा ग्रहण की और वापस आने के लिए मुड़े पर उन्होंने सोचा, "प्रतिदिन भोजन की खोज में जाना एक कष्टदायक कार्य है और इसमें समय भी बर्बाद होता है। अतः उस समय का सदुपयोग ध्यान-साधना में करना अधिक अच्छा होगा" ऐसा सोचकर वे वहीं रुक गए और एक बार फिर भिक्षाटन के लिए चले गए। जब पर्याप्त भिक्षा प्राप्त हो गई तो वे विहार में वापस आ गए। उस भात को उन्होंने सुखाकर रख दिया और ध्यान विपश्यना में लग गए। अब उन्होंने भिक्षाटन के लिए गाँव में जाना बंद कर दिया। जब कभी भूख लगती तो भात के कुछ दानों को पानी में भिगो देते और फिर उसे खाकर अपनी भूख मिटा लेते। उसके बाद पुनः एक बार ध्यान साधना में लग जाते।

दूसरे भिक्षुगण ने यह देखा। उन्हें लगा कि बेलट्ठिसीस ने संग्रह करने की बुरी आदत पकड़ ली है। भिक्षुओं को संग्रह करने की मनाही है। परिग्रह करना विनय के नियमों के विपरीत है। अतः वे उद्विग्न होकर बुद्ध के पास गए और उन्हें पूरी बात बताई। शास्ता ने उन्हें समझाया कि थेर ने लालच वश परिग्रह नहीं किया था। सिर्फ अपना समय बचाने के लिए किया था। अतः इसमें उसका कोई दोष नहीं था। फिर उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: यस्सासवा परिक्खीणा, आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, पदं तस्स दुरन्नयं।।93।।

अर्थः जिनके चित्त विकार (आस्त्रव) पूरी तरह क्षीण हो चुके हैं, जो आहार के प्रति सर्वथा अनासक्त है, शून्यता स्वरूप और निमित्तरहित निर्वाण जिनका लक्ष्य (गोचर) है, उनकी गति उसी प्रकार कठिनाई से जानने योग्य है जैसे आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति।

निर्वाण की गति अज्ञेय है
अनुरुद्ध स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन अनुरुद्ध स्थविर कूड़े के ढेर पर जीर्ण चीवर ढूँढ़ रहे थे ताकि पांशुकूल (चिथड़ा कपड़ा) इकट्ठा कर अपना चीवर बना सकें। अनिरुद्ध को 'बुद्ध का हृदय' कहा जाता है। उनके तीन जन्मों पूर्व की भार्या उस समय जालिनी नाम से देवपुत्री के रूप में त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के भवन में रह रही थी। उसने स्थविर को चीवर खोजते हुए देखकर सोचा, " अगर मैं दिव्य दुशाला को नववस्त्र के ऊपर रख दूँगी तो स्थविर उसे नहीं लेंगे।" इसलिए उसने उस वस्त्र को कूड़े के अंदर इस प्रकार दबा दिया कि उसका एक किनारा मात्र ही बाहर दिख रहा था। स्थविर उधर से गुजरे। उन्होंने कपड़े का किनारा देखा, उसे कूड़े से बाहर निकाला तथा यह सोचकर कि 'ये अच्छे किस्म के वस्त्र हैं' विहार में लेकर चले आए।

विहार में भिक्षु चीवर सीने लगे। शास्ता भी वहीं थे। अनुरुद्ध भी चीवर सीने लगा। जालिनी ने इन्हें चीवर बनाते हुए देखा तो नगर में आई और घोषणा की, "आज भिक्षुगण भोजन दान के लिए नगर में प्रवेश नहीं करेंगे। उनका भोजन बनाकर विहार में भेजने की व्यवस्था की जाए।"

दोपहर में खाने की इतनी सामग्री विहार में भेज दी गई कि बहुत कुछ बच गया। भिक्षु इसे देखकर सोचे, "इतनी भोजन राशि भेजने की जरूरत क्या थी ? ऐसा लगता है कि स्थविर अनुरुद्ध यह दिखाना चाहते हैं कि उनके उपासक उनमें कितना अधिक प्रेम और श्रद्धा रखते हैं।" भिक्षुओं की बात सुनकर शास्ता ने उनसे प्रश्न किया, "क्या तुम सोचते हो कि अनुरुद्ध ने यह सब कुछ दिखाने के लिए किया है ? " "हाँ भन्ते ! " "नहीं शिष्यों ! मेरा शिष्य अनुरुद्ध ऐसा नहीं है। वह ऐसा नहीं कर सकता। उसने ऐसा नहीं किया है। यह सारा भोजन देवता के प्रभाव से प्राप्त हुआ है।"

प्रकरण से अनुसन्धि मिलाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।

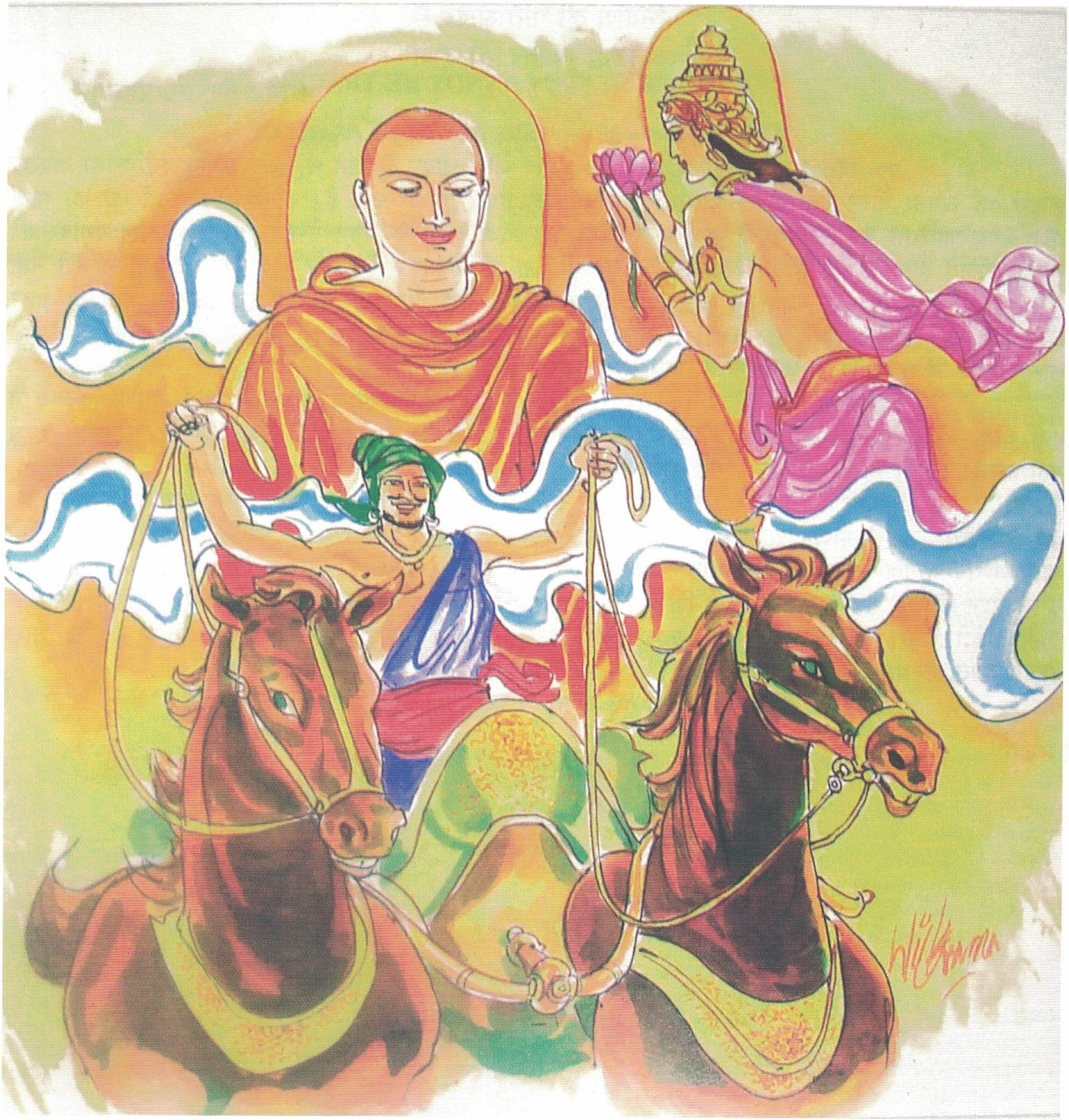

गाथा: यस्सिन्द्रियानि समथंगतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो।।94।।

अर्थ: सारथि द्वारा सुशिक्षित (सुदांत) घोड़ों के समान जिसकी इंद्रियाँ शांत हो गई हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो, जो आश्रवरहित है, ऐसे पुरुष के दर्शन की देवतागण भी स्पृहा (चाह) करते हैं।

इन्द्रिय संयमित भिक्षु सभी के प्रिय होते हैं
महाकात्यायन थेर की कथा

स्थान : पुब्बाराम, श्रावस्ती

अवन्ति देश के उज्जैन नगर में पुरोहितों का एक कुटुंब रहता था। उसी कुटुंब में महाकात्यायन ने जन्म लिया । अपने पिता की मृत्यु के बाद वे वहाँ के राजा चण्डप्रद्योत के पुरोहित बने। राजा को मालूम हो चुका था कि बुद्ध का धरती पर पदार्पण हो चुका है। वह उन्हें अवन्ति देश बुलाना चाहता था। अतः उसने महाकात्यायन से कहा, "आप बुद्ध के पास जायें तथा मेरी तरफ से प्रार्थना कर उन्हें सादर पूर्वक यहाँ ले आएँ।" महाकात्यायन ने उत्तर दिया, "राजन ! मैं जाने को तो चला जाऊँगा, पर कहीं प्रव्रजित हो गया तो।" "वह मुझे मंजूर है, जैसी तुम्हारी इच्छा। पर तुम्हें बुद्ध को लाना होगा।"

महाकात्यायन मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हुए शास्ता के पास पहुँच गये। उन्हें सादर प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। वह वहीं तुरंत प्रव्रजित हो गये और फिर उज्जैन वापस आ गये। शास्ता उज्जैन नहीं आये। महाकात्यायन विपश्यना-साधना में लगे रहे, धर्म प्रवचन करते और इस प्रकार साधना के पथ पर आगे बढ़ते गए।

पूर्णिमा के दिन तथागत पूर्वाराम विहार में भिक्षुओं के साथ बैठे थे। भिक्षुसंघ भी बैठा था। एक आसन खाली था। यह आसन महाकात्यायन के लिए सुरक्षित था जो उस समय अवन्ति प्रदेश में थे। वर्षाकाल की समाप्ति पर उन्हें तथागत के पास आना था। इस बीच इन्द्र की भी इच्छा हुई कि शाक्य मुनि के दर्शन किये जाएं और श्रद्धा सुमन अर्पित किए जाएं। ऐसा सोचकर वह विहार पहुँचा और तथागत को सादर प्रणाम कर खाली आसन के विषय में पूछा। उसे बताया गया कि वह खाली स्थान महाकात्यायन के लिए था। यह जानकर शक्र ने भी महाकात्यायन के प्रति अपनी श्रद्धा और उद्‌गार व्यक्त किए। इसी बीच महाकात्यायन भी वहाँ आ पधारे। इन्द्र ने उन्हें भी सादर प्रणाम किया, उनकी स्तुति की। महाकात्यायन से मिलकर उसे भी अपार प्रसन्नता हुई।

भिक्षुओं में चर्चा होने लगी, "देवराज इन्द्र मुँह देखकर सम्मान प्रकट करते हैं।" शास्ता ने यह चर्चा सुनी तो कहा, "मेरे शिष्य महाकात्यायन ने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और ऐसा व्यक्ति मनुष्यों को ही नहीं बल्कि देवताओं को भी प्रिय होता है।"

तब शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: पठवीसमो नो विरुज्झति, इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो।
रहदोव अपेतकद्दमो, संसारा न भवन्ति तादिनो।।95।।

अर्थ: जो धरती के समान क्षुब्ध नहीं होता, जो इन्द्रशील के समान तटस्थ व्रत रखता है, जो सरोवर के समान बिना कीचड़ (कर्दम) का है; वैसे साधक पुरुष के लिए संसार के बंधन कृत्य नहीं रह जाते।

साधक पुरुष सांसारिक बंधन रहित होते हैं
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

वर्षाकाल समाप्त हो चुका था। सभी भिक्षु चारिका पर जाने की तैयारी में लगे थे। सारिपुत्त भी अपने शिष्यों के साथ विहार से प्रस्थान करने वाले थे। उसी समय एक घटना हो गई। स्थविर के चलते समय उनके संघाटि का एक किनारा उड़कर किसी भिक्षु को छू गया। उसने इसे अपना अपमान मान लिया। इससे पूर्व भी सारिपुत्त ने उसे नामगोत्र से नहीं पुकारा था (क्योंकि वे उसका नाम गोत्र नहीं जानते थे)। उसने इस बात का भी रोष बाँध लिया था। उसकी स्थविर के प्रति घृणा बढ़ गई और उसने शास्ता से मिलकर शिकायत की, "भन्ते ! स्थविर सारिपुत्त को आपका अग्रश्रावक होने का अभिमान हो गया है। उन्होंने मुझ पर प्रहार किया और अब क्षमा माँगे बगैर ही चारिका पर जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

शाक्य मुनि ने सारिपुत्त को बुलाया और उनसे वस्तुस्थिति की जानकारी ली। शास्ता के प्रश्न के उत्तर में यह न कहकर कि "मैंने इस भिक्षु पर कोई प्रहार नहीं किया है", स्थविर ने कहा, "भन्ते ! मैं तो उस धरती के समान हूँ जिस पर फूल गिरते हैं तो उसे खुशी नहीं होती है और गंदगी तथा कीचड़ गिरता है तो उससे भी उसे रंजिश नहीं होती । मैं तो पाँव के पोंछा की तरह हूँ, भिखारी की तरह हूँ, बिना सींग के बैल की तरह हूँ।"

जब स्थविर अपने को निर्दोष साबित कर रहे थे तब यह सुनकर उस भिक्षु को अंदर से ग्लानि होने लगी। वह तथागत के चरणों पर गिर गया और अपना दोष स्वीकारते हुए उनसे क्षमा-याचना करने लगा। बुद्ध ने सारिपुत्त को आदेश दिया, "सारिपुत्त ! इस भिक्षु को क्षमा कर दें अन्यथा कर्म के बोझ से इसकी बड़ी बुरी दुर्गति होगी।" सारिपुत्त उकड़ूँ बैठ गए और उस भिक्षु से कहा, " आयुष्मान् ! तुम्हारे अपराध के लिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। यदि मैंने भी कोई अपराध किया है तो मुझे क्षमा कर दो।" यह सुनकर सभी भिक्षु कहने लगे, "स्थविर सारिपुत्त की महानता तो देखो। ऐसे झूठे व्यक्ति पर क्रोध न करके स्वयं उससे भी क्षमा याचना कर रहे हैं।"

भिक्षुओं के कथन को सुन शाक्य-मुनि ने सारिपुत्त के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही।

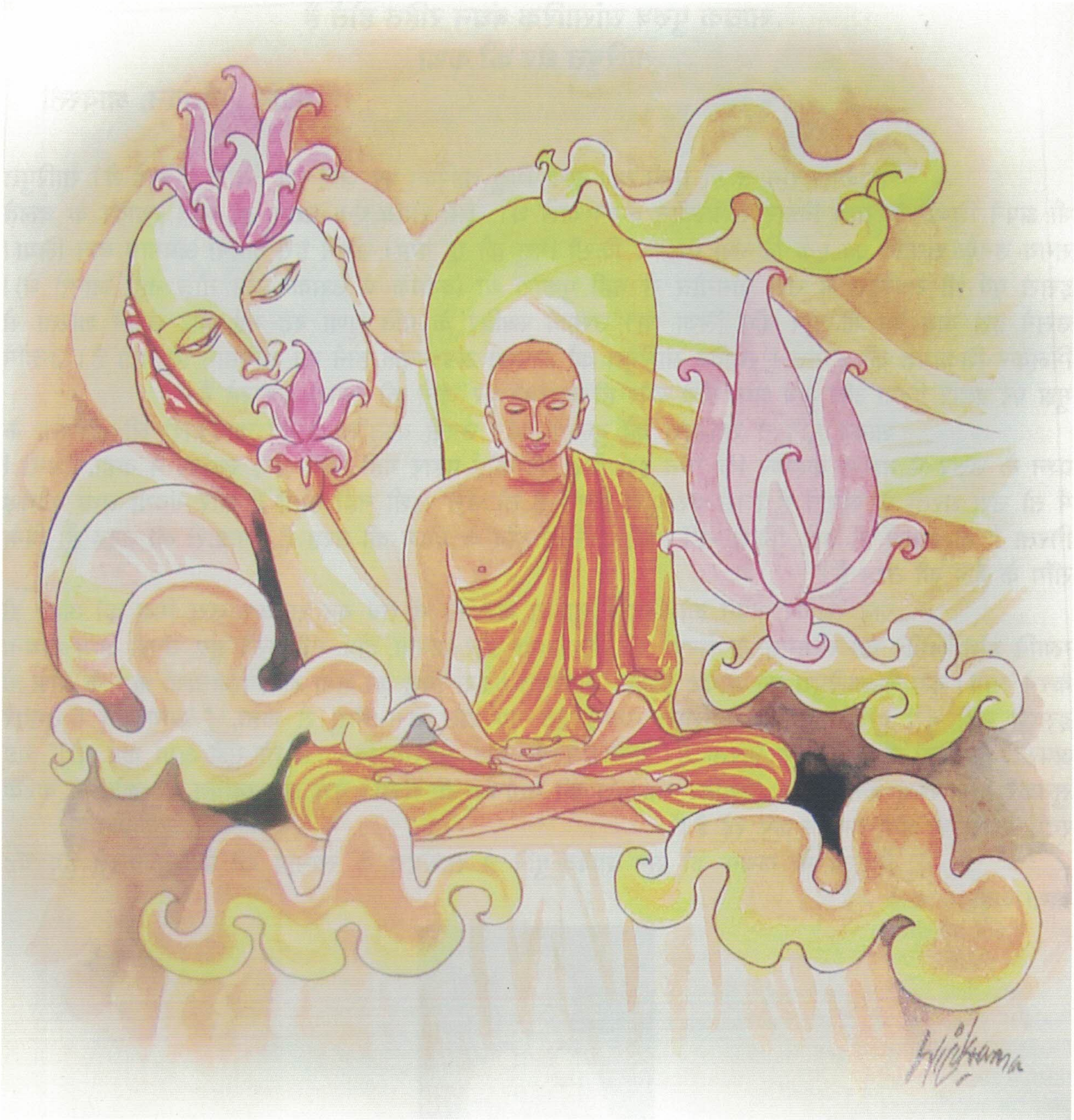

गाथा: सन्तं तस्स मनं होति, सन्ता वाचा च कम्म च।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो। ।96। ।

अर्थ: जो साधक सच्चा ज्ञान प्राप्त कर विमुक्त एवं उपशान्त हो गया है उसका मन शान्त रहता है, वाणी शांत रहती है तथा उसके कर्म भी शांत होते हैं।

यथार्थ ज्ञान प्राप्त पुरुष का मन, वाणी और कर्म शान्त होता है
कौसाम्बीवासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक कौसाम्बीवासी तथागत से प्रव्रज्या प्राप्त कर 'कौसाम्बीवासी तिस्स' स्थविर के नाम से जाना जाने लगा। कौसाम्बी में वर्षावास के बाद एक दिन किसी उपासक ने तीन चीवर और घी आदि दान स्वरूप देना चाहा तो स्थविर ने पूछा, "यह क्या है ? " "भन्ते ! आपने मेरे यहाँ वर्षावास करने की कृपा की है। नियमानुसार मैं आपको यह भेंट समर्पित कर रहा हूँ।" "तुम्हारे यहाँ का नियम होगा उपासक ! मुझे इन चीजों की जरूरत नहीं है।" "क्यों नहीं, भन्ते ? " "मैं इन चीजों को लेकर क्या करूँगा ? मेरे पास तो मेरी आवश्यकताएं पूरी करने वाला श्रामणेर भी नहीं है।" "अगर ऐसी बात है तो मेरे पुत्र को श्रामणेर बनाने की कृपा कीजिए।" "ऐसा ही हो।" तब उपासक के सात वर्षीय पुत्र को प्रव्रज्या दी गई। जितने समय उसके मुंडन के बाल उतारे जा रहे थे, वह पूरी तरह ध्यान-मग्न था और बाल उतरते-उतरते वह अर्हत्व प्राप्त कर गया।

स्थविर वहाँ पन्द्रह दिन रहकर श्रामणेर के साथ शास्ता के दर्शन के लिए चल दिए। रात्रि में दोनों ने एक विहार में विश्राम किया। स्थविर तो साधारण आदमी की तरह तुरंत सो गया पर श्रामणेर स्थविर की सेवा करने के उद्देश्य से 'मैं बैठकर ही रात्रि बिताऊँगा' यह सोचकर रात भर बगल में बैठा रहा।

सुबह होने पर स्थविर ने पंखा उठाकर उसके डंडे से श्रामणेर को कोंचते हुए 'उठो' कहते हुए उसके ऊपर डंडा लगाया तो डंडा श्रामणेर की आँख में जा लगा और उसकी एक आँख फूट गई। श्रामणेर से कहा, "चलो, तैयार होओ।" यह सुनकर भी श्रामणेर ने 'भन्ते ! मेरी आँख फूट गई है' यह न कहकर एक हाथ से दुखते हुए आँख को दबाता हुआ ही मुँह धोने के लिए जल, दतुअन आदि ले आया। उसने उपाध्याय को एक हाथ से ही दतुअन दिया। तब उपाध्याय ने उससे कहा, "तुम तो बहुत ही अशिक्षित प्रतीत होते हो। जानते नहीं कि उपाध्याय को दोनों हाथों से दतुअन दिया जाता है।" "जानता हूँ भन्ते ! पर मेरा एक हाथ खाली नहीं है।" "क्यों, क्या हुआ ? " तब सामनेर ने सुबह की पूरी घटना सुना दी। यह सुनकर स्थविर को लग गया कि उससे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। वे कहने लगे, "तुम मुझे माफ कर दो। मुझे यह सब मालूम नहीं था।" ऐसा कह उसके पैरों के पास उकडूँ बैठ गए। श्रामणेर ने बताया, "भन्ते ! इसीलिए तो मैंने आपको बताया नहीं था। जब आपने पूछा तो आपका मन रखने के लिए मुझे बताना ही पड़ा। इसमें न तो आपका दोष है और न मेरा। यह मेरे पूर्वकाल का दोष है। आप मन को मलिन न करें। आपको दुख होगा, यह जानकर ही मैं आपको यह सब कुछ नहीं बता रहा था।"

दोनों शास्ता के पास पहुँचे। स्थविर ने शास्ता को पूरी बात बताई, "इसने मुझ पर न कोई क्रोध किया और न द्वेष। भन्ते ! आज तक मैंने इसके समान श्रेष्ठ, गुणवान, आर्य प्रवर श्रामनेर नहीं देखा है।" प्रत्युत्तर में शास्ता ने बताया, "भिक्षु ! क्षीणास्रव किसी पर न क्रोध करते हैं और न द्वेष। वे शांत होकर शांति पूर्वक विचरण करते हैं।"

धर्मोपदेश दे उन्होंने यह गाथा कही।

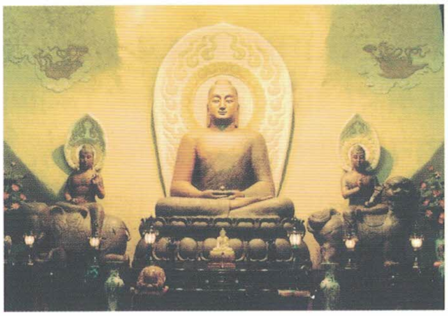

गाथा: असद्धो अकतञ्ञू च, सन्धिच्छेदो च यो नरो।
हतावकासो वन्तासो, स वे उत्तमपोरिसो।।97।।

अर्थ: जो अंध श्रद्धा रहित है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने बन्धन को काट लिया है, जिसके पुनर्जन्म की संभावना नहीं, जिसने विषय-भोग की आशा को त्याग दिया है वही उत्तम पुरुष है।

श्रेष्ठ कौन है ?
सारिपुत्त थेर के प्रश्नोत्तर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तथागत जेतवन में थे। उस समय उनसे मिलने तीस भिक्षु आए। शास्ता ने देख लिया कि उनमें अर्हत बनने का आधार बन चुका है और यह उचित समय भी है कि अब उन्हें शिक्षा दी जा सकती है। अतः उन्होंने सारिपुत्त को बुलाया और उनकी उपस्थिति में उनसे पूछा, "आयुष्मान, सारिपुत्त ! क्या इन्द्रियों पर ध्यान एकाग्र करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ? इस विषय की सच्चाई पर प्रकाश डालो।" सारिपुत्त ने निवेदन किया, "भन्ते ! केवल इन्द्रियों पर ध्यान एकाग्र करके निर्वाण प्राप्त करने की बात मुझे स्वीकार नहीं है क्योंकि मेरी आपमें अटूट श्रद्धा है। यह उन लोगों के लिए है, जिन्हें इसकी अनुभूति नहीं है।"

यह सुनने पर भिक्षुओं में चर्चा चल पड़ी, "लगता है सारिपुत्त अभी तक दूसरे तीर्थकों से प्राप्त मिथ्या दृष्टि से मुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि वे आज तथागत की उक्ति से सहमत नहीं हैं।" शास्ता ने उन्हें समझाया, " हे भिक्षुओं ! तुम यह क्या कह रहे हो ? मेरा तो सारिपुत्त से प्रश्न था कि पाँचों इन्द्रियों की भावना किए बिना, विपश्यना में आगे बढ़े बिना क्या कोई साधक मार्ग फलों का साक्षात्कार कर सकता है ? इस बात में तुम्हारी श्रद्धा है क्या ? इसी का उत्तर देते हुए सारिपुत्त ने कहा है कि ऐसा नहीं हो सकता। उसने कब कहा है कि दान का, किए गए कर्म का फल नहीं मिलता या दूसरी ओर उसने कब कहा है कि बुद्ध और उनके गुणों में उसकी श्रद्धा नहीं है ? अतः तुम उस पर आरोप नहीं लगा सकते कि उसकी बुद्ध में श्रद्धा नहीं है।" यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

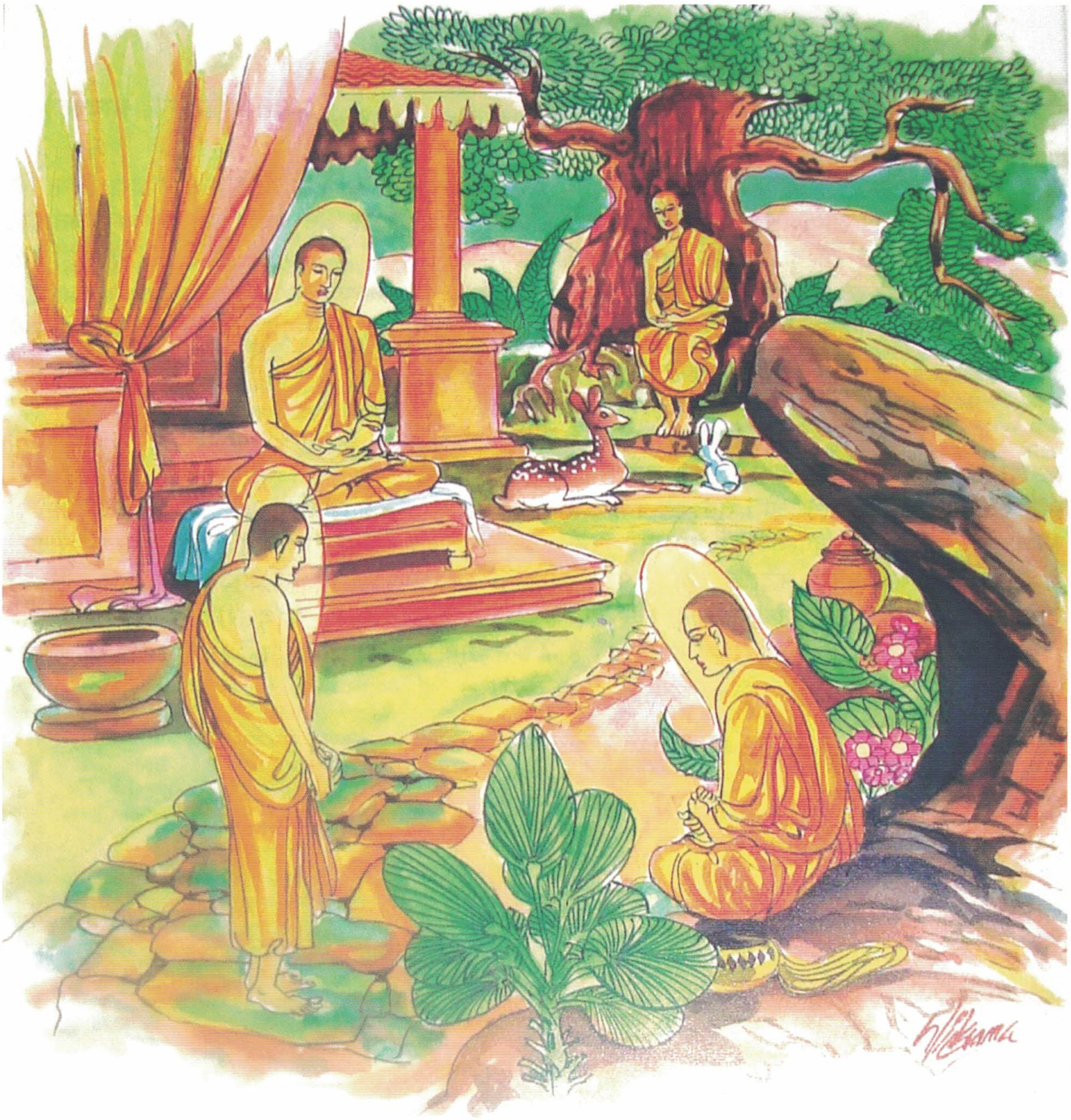

गाथा: गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं।।98।।

अर्थ: गाँव हो या जंगल, भूमि ऊँची हो या नीची, जहाँ कहीं अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।

किसका वासस्थान रमणीय ?
खादियखानिय रेवत की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

आयुष्मान सारिपुत्त ने अपार धन त्यागकर, प्रव्रजित होकर अपनी तीनों बहनों- चाला, उपचाला और सीसुपचाला तथा दो भाइयों चुन्द और उपसेन को प्रव्रजित किया। घर में केवल एक भाई रेवत कुमार बच गया जो प्रव्रजित नहीं हुआ। ऐसा देख उसकी माता ने विचार किया, "मेरा पुत्र उपतिष्य अपार धन छोड़कर प्रव्रजित हो गया। अपने साथ तीन बहनों और दो भाई भी ले गया। अब केवल रेवत बचा है। अगर इसे भी प्रव्रजित कर देगा तो हमारा वंश ही समाप्त हो जाएगा। अत: कुछ ऐसा करना चाहिए कि यह प्रव्रजित नहीं हो। अच्छा हो अगर हम इसका कम उम्र में ही विवाह कर दें।" सारिपुत्त को इस विषय में आशंका थी। अत: उन्होंने पहले से ही भिक्षुओं को कह रखा था, "आयुष्मानों ! अगर मेरा छोटा भाई रेवत प्रव्रज्या लेना चाहे तो उसे प्रव्रजित कर देना। मेरे माता-पिता दूर की नहीं सोचते हैं। उनसे पूछने से कोई लाभ नहीं है। यही समझो कि मैं ही उसका माता-पिता हूँ।"

रेवत सात वर्ष का था। उसी उम्र में उसके विवाह का आयोजन कर दिया गया। वह विवाहोत्सव में लड़की की दादी से मिला। लोग लड़की को 'दादी की तरह जीओ' का आशीर्वाद दे रहे थे। दादी बहुत ही बूढ़ी थी। शरीर से झुक चुकी थी, दाँत टूट गए थे, आँखों से नहीं दिखता था, बुद्धि काम नहीं करती थी। उसने सोचा, "मेरी पत्नी भी इसी तरह हो जाएगी।" उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह विवाह-मंडप से भाग खड़ा हुआ। विहार में प्रस्तुत हुआ और वहाँ उसे प्रव्रजित कर दिया गया।

सामनेर रेवत जंगल में चला गया। घोर साधना की और अर्हत्व प्राप्त कर गया। सारिपुत्र ने शास्ता से अनुमति माँगी, "भाई से मिलने की आज्ञा दें।" शाक्य मुनि ने कहा, "मैं भी चलूँगा।" सारिपुत्त, सिवली और अन्य भिक्षुओं के साथ तथागत जंगल की ओर प्रस्थान किए। सामनेर रेवत ने अपनी अन्तर्दृष्टि से उन्हें आते हुए देखा और अपने ऋद्धि-प्रताप से उनके लिए रहने का खूब सुन्दर प्रबंध कर दिया। तथागत वहाँ रुके। भिक्षुसंघ भी उनके साथ रुका। वापसी में विशाखा का घर पड़ता था। अत: शाक्य मुनि भिक्षु संघ के साथ वहाँ भी गए। विशाखा ने सबों की स्तुति की और प्रेम से स्वागत किया। जिज्ञासावश उसने शास्ता से प्रश्न पूछ डाला, "भन्ते ! रेवत के आवास की जगह अच्छी है न ?"

शाक्य मुनि ने इस प्रश्न के उत्तर में धर्म चर्चा की, "जहाँ अर्हत रहते हैं वह भूमि निश्चय ही अच्छी होती है, भले ही वह ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ या जंगल ही क्यों न हो।"

गाथा: रमणीयानि अरञ्ञानि, यत्थ न रमती जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति, न ते कामगवेसिनो।।99।।

अर्थ: रमणीय वन जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते (रहने में रुचि नहीं रखते) वहाँ काम वासनाओं के पीछे न भटकने वाले वीतरागी जन प्रसन्नतापूर्वक साधना में लगे रहते हैं।

वीतरागी कहाँ रमण करेंगे ?
किसी स्त्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध काल में एक पिंडपातिक भिक्षु शाक्य मुनि से धर्म साधना की विधि सीखकर एक पुराने बागीचे में जाकर ध्यान साधना करने लगा। एक नगरवधू (वैश्या) ने किसी पुरुष के साथ तय किया कि "मैं उस पुराने उद्यान में जा रही हूँ, तुम भी वहीं आ जाना" और निश्चित समय पर उस उद्यान में जा पहुँची। लेकिन उसका सौदागर पुरुष किसी कारणवश वहाँ नहीं आ सका। उस वैश्या ने बहुत समय तक उसका इंतजार किया और जब वह नहीं आया तो उत्सुकतावश वह इधर-उधर घूमने लगी। वह उद्यान के उस भाग में पहुँची जहाँ स्थविर पद्मासन लगाए साधना में बैठे थे। उनके आस-पास किसी और को न देखकर उसने सोचा, "मेरा ग्राहक तो आया नहीं। अब मैं अपनी भूख किस पर शांत करूँ ? यह भी तो आदमी है। क्यों न इसी पर अपनी तृष्णा की भूख मिटाऊँ ? " ऐसा सोचकर उसे आकर्षित करने के उद्देश्य से वह उसके सामने थोड़ी दूर पर खड़ी होकर कभी अपनी पहनी हुई साड़ी खोल डालती थी तो कभी उस खुली हुई साड़ी को बाँधने लगती। कभी केशों की जुड़ा खोल देती तो कभी उसे पुनः बाँधने लगती। कभी ताली बजाकर जोर-जोर से हँसने लगती। इस प्रकार अपनी भाव-भंगिमा से वह उस स्थविर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रयत्न करने लगी। यह सब देखकर स्थविर अपने को रोक नही सका। उसके अन्दर काम वेदना होने लगी। उसका शरीर रोमांचित हो गया। वह कांप गया और डरने लगा। उसने विचार किया, "यह है क्या ? "

उधर शाक्य मुनि ने गंध कुटी में बैठे-बैठे अपनी अन्तर्दृष्टि से सारा का सारा दृश्य देख लिया। उन्होंने पाया कि वह स्त्री कामाचार पर उतारू है और स्थविर को भयभीत कर रही है। अतः गंधकुटी में बैठे ही बैठे विचारों की श्रृंखला से उस स्थविर की रक्षा की। उनका संदेश था, "भिक्षु ! कामभोगियों के लिए जो अरुचिकर स्थान होते हैं, साधना करने वालों के लिए वे ही स्थान रमणीय होते हैं।"

DHAMMAPADA

ARAHATTA VAGGA

संस्कारक : हृषीकेश शरण

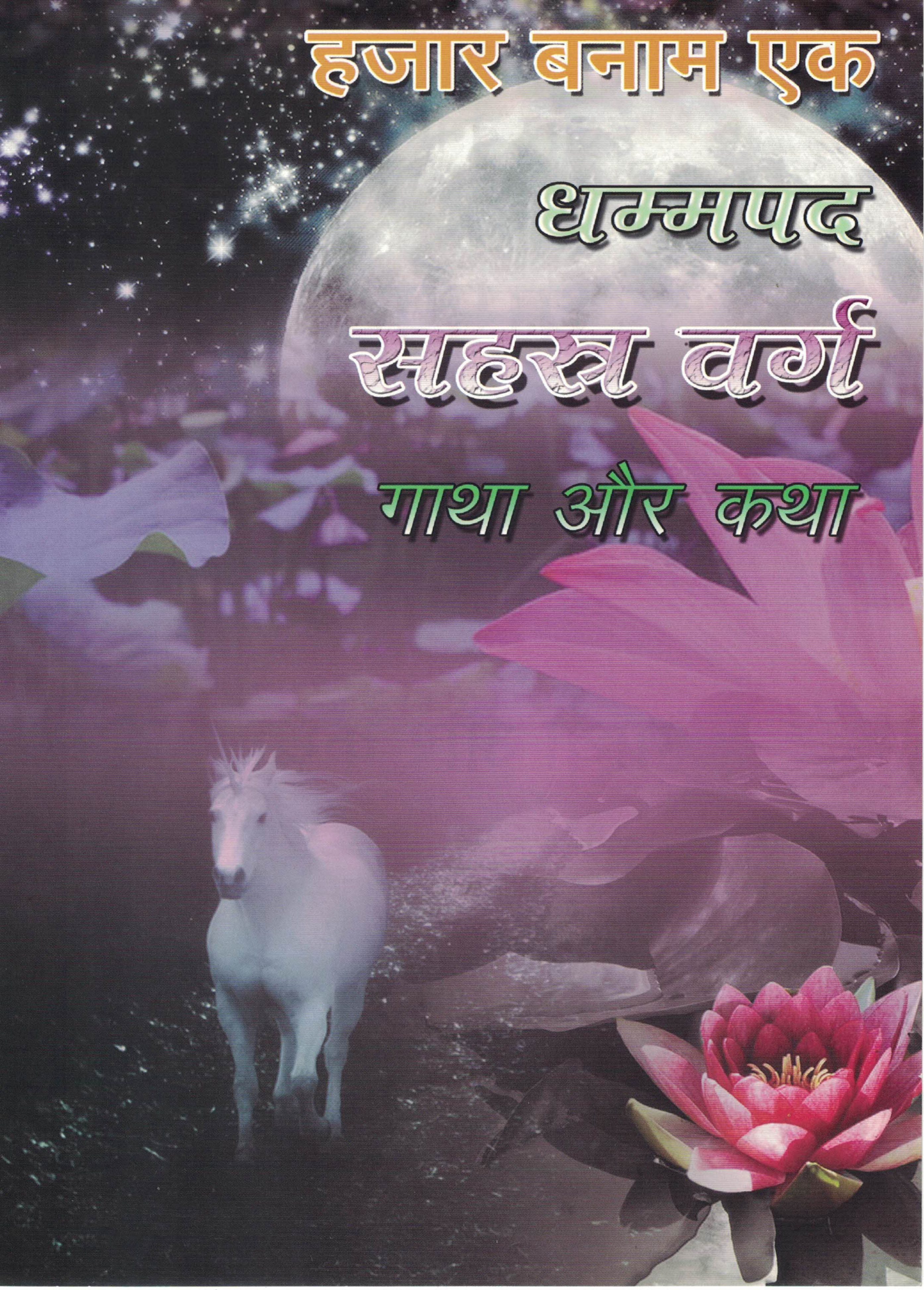
हजार बनाम एक
धम्मपद
सहस्र वर्ग
गाथा और कथा

हजार बनाम एक

धम्मपद

सहस्त्र वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

सहस्त्र वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	तंबदाठिक चोर घातक की कथा	100	सार्थक पदों की महत्ता	13
2.	दारूचीरिय थेर की कथा	101	कौन सी गाथा श्रेयस्कर है ?	15
3.	कुण्डलकेशी थेरी की कथा	102.	धर्मसंयुक्त एक पद ही शान्तिदायक होता है	17
4.	कुण्डलकेशी थेरी की कथा	103	एक ही सार्थक पद श्रेयस्कर	19
5.	अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा	104	सबसे बड़ी जीत क्या है ?	21
6.	अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा	105	संयमी को कोई हरा नहीं सकता	23
7.	सारिपुत्त स्थविर के मामा की कथा	106	कौन सा पूजन श्रेष्ठ है ?	25
8.	सारिपुत्त थेर के भाँजे की कथा	107	क्या अग्निहोत्र से श्रेष्ठ कुछ है ?	27
9.	सारिपुत्त स्थविर के मित्र की कथा	108	सरलचित्त पुरुष की पूजा श्रेयस्कर	29
10.	आयुवर्द्धन कुमार की कथा	109	उम्र, सुख, बल बढ़ाने का रहस्य	31
11.	संकिच्च सामनेर की कथा	110	किसका जीवन श्रेष्ठ है ?	33
12.	स्थाणु कौण्डिन्य स्थविर की कथा	111	सत्कर्म की जिन्दगी ज्यादा शुभ	35
13.	सर्पदास स्थविर की कथा	112	उद्यमी पुरुष का जीवन श्रेष्ठ	37
14	पटाचारा थेरी की कथा	113	उत्पाद-व्यय समझने वाले का जीवन अधिक श्रेयस्कर	39
15.	किसा गोतमी की कथा	114	किस धर्म का साक्षात्कार श्रेष्ठ ?	41
16.	बहुपुत्रिका थेरी की कथा	115	किस धर्म का अनुसंधान श्रेयस्कर ?	43

गाथा: सहस्समपि चे वाचा, अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।100।।

अर्थ: निरर्थक पदों से युक्त हजारों वचनों को सुनने की अपेक्षा एक सार्थक पद ही श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर स्थायी शांति प्राप्त होती है।

सार्थक पदों की महत्ता
तंबदाठिक चोर घातक की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

तंबदाठिक नाम के एक व्यक्ति ने पचपन वर्षों तक राजा के यहाँ चोर घातक (जल्लाद) के रूप में नौकरी की। समय बीता। वह बूढ़ा हो गया। अब उसके शरीर की शक्ति जाती रही। दो-तीन प्रयास के बाद ही वह अब किसी की हत्या कर पाता था। अत: उसे इस कार्य से सेवा निवृत्ति दे दी गई और उसकी जगह किसी और को रख लिया गया। सेवा निवृत्ति के बाद एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहकर मन पसंद स्वादिष्ट भोजन बनवाया और नदी में स्नान कर, नूतन वस्त्र धारण कर, माला पहन कर तथा शरीर में इत्र एवं सुगन्धि लगाकर घर में आसनी पर बैठ भोजन की प्रतीक्षा करने लगा।

उधर सारिपुत्त ने अपनी ध्यान साधना से उठने के बाद सोचा, "मुझे आज भिक्षाटन के लिए कहाँ जाना चाहिए ?" उनकी दिव्यदृष्टि उस वधिक पर पड़ी। उन्हें लगा कि यह वधिक मेरा स्वागत करेगा और इससे उसका आध्यात्मिक कल्याण भी होगा। अत: यह सोचकर स्थविर उसके घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए।

स्थविर को अपने घर के दरवाजे पर खड़ा देख वधिक ने सोचा, "मैंने जीवन पर्यन्त लोगों की हत्या ही की है। कोई भी भलाई का काम नहीं किया है। आज पहली बार कोई स्थविर मेरे घर के सामने खड़े हुए हैं और मेरे घर में खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन भी बना है। क्यों न मैं स्थविर को यह भोजन कराकर पहली बार पुण्य कमा लूँ ? " ऐसा सोचकर वह अपने आसन से उठा तथा स्थविर को सादर प्रणाम कर उन्हें आदरपूर्वक अंदर लाया और उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त पुण्यानुमोदन प्रारंभ हुआ। वधिक का मन धर्म कथा में नहीं लग रहा था। उसे उसके पुराने कर्म याद आने लगे। वह उद्विग्न होने लगा। तब सारिपुत्त ने पूछा, "उपासक ! तुम्हारा मन धर्म कथा में क्यों नहीं लग रहा है ? " उसने उत्तर दिया, "मैंने पूरे जन्म लोगों का वध किया है और उसी की स्मृति से मेरा मन धर्म कथा में नहीं लग रहा है।" कुछ सोचकर स्थविर ने उससे पूछा, "तुम राजा की आज्ञा से वध करते थे अथवा अपनी इच्छा से ? " "राजा की आज्ञा से।" "तब वध का दोष तुम पर किस प्रकार लगेगा ?" वधिक समझ गया कि वह उस पाप का कारण नहीं था। अब उसका मन धर्म-प्रवचन में लगने लगा। उसका चित्त शांत हो गया और वह स्रोतापत्ति से पूर्व की स्थिति में जा पहुँचा।

धर्म सभा में भिक्षुओं ने आश्चर्य व्यक्त किया कि वधिक का जन्म तुषित लोक में कैसे हुआ ? समझाते हुए शास्ता ने बताया, "भिक्षुओं ! सारिपुत्त के रूप में उसे एक बहुत बड़ा हितैषी मिल गया था। धर्मदेशना सुनकर उसका कल्याण हो गया।

गाथा: सहस्समपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।101।।

अर्थ: निरर्थक पदों से युक्त हजारों गाथाओं की तुलना में एक सार्थक गाथा पद अधिक श्रेयस्कर है जिसे सुनकर स्थायी शांति प्राप्त होती है।

कौन सी गाथा श्रेयस्कर है ?
दारूचीरिय थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय कुछ लोग नाव से यात्रा कर रहे थे। नाव बीच में ही टूट गई और एक आदमी को छोड़कर बाकी सब डूब गए या मछलियों और मगरमच्छों के भोजन बन गए। वह आदमी टूटी नाव के एक तख्ते के सहारे शूर्पारक बन्दरगाह के किनारे आ लगा। लोग उसे देखकर उस पर दया करने लगे, भोजन के रूप में चावल आदि देने लगे। तब किसी ने यह सोचकर कि 'यह कोई सिद्ध पुरुष होगा' उसे शरीर ढँकने के लिए वस्त्र भी दे दिया, लेकिन उस व्यक्ति ने सोचा, "यदि मैं वस्त्र पहनूँगा या शरीर पर कपड़े ओढ़ूँगा तो लोगों की दृष्टि में मेरा मान-सम्मान कम हो जाएगा।" अतः वस्त्रों को धारण न कर वह पेड़ों की छाल से ही तन ढँकता रहा। उसे अब यह गलत-फहमी भी होने लगी कि वह एक 'अर्हत' है। उसका नाम बहुदारूचीरिय पड़ गया।

एक दिन महाब्रह्मा उधर से गुजर रहे थे। उन्होंने उसे देखा तो वे उसके सम्मुख प्रकट हुए और कहा, "मित्र ! तुम तो अर्हत नहीं हो, फिर अर्हत होने का स्वांग क्यों कर रहे हो ? तुम्हारे अन्दर अर्हत होने की संभावनाएं भी नहीं दिख रही हैं। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो बुद्ध की शरण में जाओ। वहीं तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा जिससे तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा।"

दारूचीरिय को अपनी गलती समझ में आ गयी। वह श्रावस्ती जा पहुँचा। शास्ता उस समय भिक्षाटन के लिए निकले थे। वह उनके पीछे लग गया। वह उनसे धर्मदेशना के लिए आग्रह करता रहा। शास्ता ने उसे समझाया कि यह धर्मदेशना का समय नहीं है। पर वह कहने लगा, "मैं अपने जीवन पर विश्वास नहीं करता कि वह कब समाप्त हो जाए; अतः आप कृपया इसी समय धर्मदेशना दीजिए।"

उसकी बलवान धर्मप्रीति देखकर शाक्य-मुनि ने मार्ग में ही धर्मोपदेश दिया, जिससे उसके चित्त के विकार समाप्त हो गए और वह अर्हत हो गया। वह प्रव्रज्या ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था पर पूर्व कर्मों के कारण उसे कठिनाई हो रही थी। उसी समय एक यक्षिणी ने गौ रूप धारण कर उसे टक्कर मारी और वह मर गया।

भिक्षुओं में चर्चा चली कि उसने तो बुद्ध का एक ही वाक्य भिक्षाटन के समय सुना था और उसी से अर्हत हो गया। शाक्य मुनि ने कहा, "हजारों निरर्थक गाथाओं से एक सार्थक गाथा अधिक श्रेयस्कर है जिसे सुनकर शांति मिलती है।"

तब यह गाथा कही।

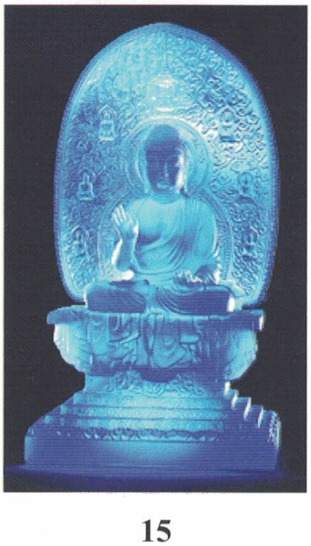

गाथा: योच गाथासतं भासे, अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।102।।

अर्थ: कोई अनर्थकारी पदों से युक्त सौ गाथायें कहे। उनसे धर्म का एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

धर्मसंयुक्त एक पद ही शान्तिदायक होता है
कुण्डलकेशी थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में एक धनी श्रेष्ठी रहता था। उसकी एक सोलह वर्ष की पुत्री थी। वह देखने में बहुत सुन्दर थी। इस उम्र में लड़कियाँ पुरुषों की नजरों में चढ़ जाती हैं। अतः माता पिता ने सतर्कता बरती। उस लड़की को घर के ऊपरी मंजिल पर एक दासी के साथ रहने की व्यवस्था कर दी।

एक दिन सड़क पर काफी कोलाहल हो रहा था। राजपुरुष एक व्यक्ति को चोरी के अपराध में बाँधकर, कोड़ों से पीटते हुए उसे फाँसी देने ले जा रहे थे। लड़की ने शोर सुनकर जिज्ञासा जाहिर की "क्या हो रहा है ? " दासी और लड़की दोनों छत पर गए और चोर को वध स्थल ले जाते देखा। लड़की ने उस चोर को देखा और तुरंत उस पर मोहित हो गई। खाना-पीना छोड़ दिया और माता-पिता से कहा, "उस चोर से शादी नहीं कराओगे तो आत्महत्या कर लूँगी।" माता-पिता ने बहुत समझाया पर वह नहीं मानी। अन्त में श्रेष्ठी ने राजपुरुषों को हजार कार्षापण की रिश्वत दी और उस चोर को छुड़वा लिया। उस चोर की जगह किसी और का वध कर दिया गया। उस लड़की का विवाह उस चोर के साथ कर दिया गया।

युवक का नाम सत्थुक था। यद्यपि उसका विवाह उस लड़की के साथ हो गया था फिर भी उसके मन का चोर जाग रहा था। उसका मन उस लड़की के आभूषण हथिया लेने का था। अतः उसने पत्नी की हत्या का षड़यंत्र रचा। उसने खाना-पीना छोड़ दिया और खाट पकड़ ली। पत्नी ने पूछा, "क्या बात है ?" "जब राजपुरुष मुझे मारने ले जा रहे थे तब मैंने देवी से प्रार्थना की थी कि अगर प्राण बच गए तो पूजा करने आऊँगा। उनके ही प्रताप से तुम भी प्राप्त हुई हो। मुझे जाने में विलंब हो गया है।" पत्नी ने कहा "आप चिंता न करें, हम दोनों चलेंगे।" सत्थुक मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पत्नी से कहा कि वह सारे आभूषण धारण कर ले। जब उसने सारे आभूषण धारण कर लिए तो दोनों पर्वत की तलहटी पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर पति ने कहा, "पर्वत पर हम दोनों ही चलेंगे। शेष लोगों को घर भेज दो।" पत्नी ने वैसा ही किया। पत्नी कभी पर्वत पर चढ़ी नहीं थी पर पति का अनुसरण करती हुई वह चोटी तक पहुँच गई।

यह वही स्थल था जहाँ से चोरों को धक्का देकर नीचे फेंक दिया जाता था और वे मर जाते थे। स्त्री को थोड़ा भय होने लगा और वह घबराने लगी। सत्थुक बोला, "तुम अपने सारे आभूषण उतार दो।" पत्नी कुछ समझ नहीं पाई। तब सत्थुक ने स्पष्ट किया, "मूर्ख स्त्री ! तू समझती है कि मैं यहाँ पूजा करने आया हूँ। मैं तुम्हारे सारे आभूषण ले लूँगा और तुम्हारा वध कर दूँगा।" स्त्री ने समझाने की कोशिश की, "यह सब कुछ तुम्हारा ही तो है। तब तुम मुझे मारने पर क्यों तुले हो ? " पर सत्थुक नहीं माना। उस स्त्री ने सोचा, "यह मुझे मारने पर उद्यत है। मुझे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।" ऐसा सोचकर प्रेम का प्रदर्शन करते हुए उसने चोर से कहा, "प्रिय ! एक बार तो गले मिल लेने दो। फिर तो सब कुछ तुम्हारा।" वह हँसता हुआ बोला, "ठीक है।" वह उससे गले मिलने के बहाने आगे बढ़ी और जोर से धक्का दे डाला। वह चोर पहाड़ की चोटी से गिरकर मर गया।

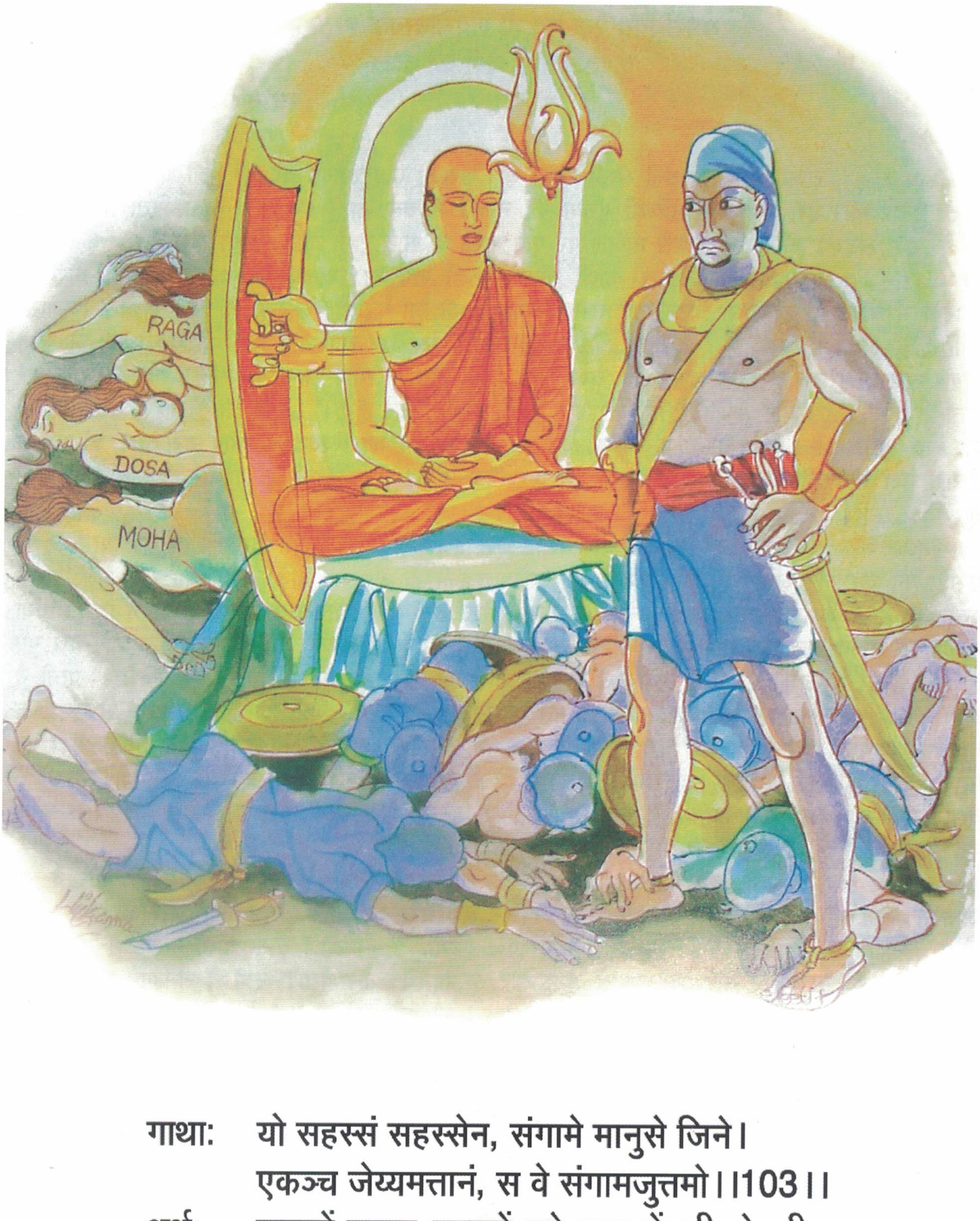

गाथा: यो सहस्सं सहस्सेन, संगामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे संगामजुत्तमो।।103।।

अर्थ: हजारों-हजार मनुष्यों को युद्ध में जीतने की बजाय अपने आप को जीतना बड़ी विजय है।

एक ही सार्थक पद श्रेयस्कर
कुण्डलकेशी थेरी की कथा

अब उसने सोचा, "घर जाने से कोई लाभ नहीं। लोग समझेंगे कि मैंने ही अपने स्वामी को मार दिया। कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करेगा। अतः मुझे प्रव्रज्या ले लेनी चाहिए। ऐसा सोचकर, अपने सारे आभूषण वहीं छोड़कर परिव्राजकों के आश्रम में गई और उनसे आग्रह कर परिव्रजित हो गई। उन्होंने उसे एक हजार प्रश्न याद करा दिए और कहा कि अब तुम पूरे आर्यावर्त्त में घूमकर लोगों के साथ शास्त्रार्थ करो।

उसने अपना नाम 'जम्बू परिव्राजिका' रख लिया। लोग उससे वाद-विवाद करने में सक्षम न थे, अतः कतराते थे। वह भी किसी गाँव में भिक्षाटन के लिए प्रवेश करने से पूर्व बालू के ऊपर जम्बू की एक शाखा गाड़ देती थी तथा घोषणा कर देती थी, "जो मेरे साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हो वह उसे उखाड़े।"

इस प्रकार घूमती-घूमती एक बार वह श्रावस्ती के ग्राम द्वार पर पहुँची। वहाँ पर उसने बालू के ऊपर जम्बू की शाखा गाड़ दी और गाँव में भिक्षाटन के लिए प्रवेश कर गई। गाँव के बालक उस जम्बूशाखा के पास खड़े हो उसे देख रहे थे। उसी समय सारिपुत्त भी उधर से भिक्षाटन के लिए निकले। उन्होंने बच्चों से पूछा, "यह क्या है ? " बच्चों ने पूरी बात बता दी। तब उन्होंने उनसे कहा, "यह शाखा उखाड़ दो।" "नहीं ! हमें डर लगता है।" "नहीं ! तुम उखाड़ दो। उसके प्रश्नों का जवाब मैं दूँगा।" बच्चे उत्साहित हुए तथा उस शाखा को उखाड़ फेंका। थोड़ी देर बाद परिव्राजिका लौटी तो उसने पूछा कि शाखा किसने उखाड़ी है ? तब बच्चों ने बता दिया, "हमने आर्य के कहने पर उखाड़ा है।"

परिव्राजिका और स्थविर सारिपुत्त का आमना-सामना हुआ। वाद-विवाद शुरू हुआ। परिव्राजिका प्रश्न पूछती गई और स्थविर उत्तर देते गए। अंत में स्थविर ने उससे पूछा, "तुम्हारे सभी प्रश्न समाप्त हो गए या कुछ और बाकी हैं ? " "भन्ते ! सभी समाप्त हो गए।" "तब मैं एक प्रश्न तुमसे पूछूँ ? " "पूछिए भन्ते ! " "स्थविर ने पूछा, "एक नाम क्या है ? " परिव्राजिका को इसका उत्तर ज्ञात न था। उसने अपनी हार मान ली तथा स्थविर से आग्रह किया कि वे उस प्रश्न का उत्तर बतावें। स्थविर ने उसे कहा, "तुम मेरे जैसा धर्म परायण बन जाओ।" "तो मुझे प्रव्रजित करा दीजिए।" सारिपुत्त ने उसे प्रव्रज्या दिला दी। उसका नाम 'कुण्डलकेशी थेरी' पड़ा। कुछ ही समय बाद उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

एक दिन धर्मसभा में चर्चा चली कि कुण्डलकेशी का धर्म श्रमण बहुत नहीं हुआ था। तब वह अर्हत कैसे बन गई। शास्ता ने समझाया, "निरर्थक सौ पदों की तुलना में एक सार्थक पद अधिक श्रेयस्कर होता है।" तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।

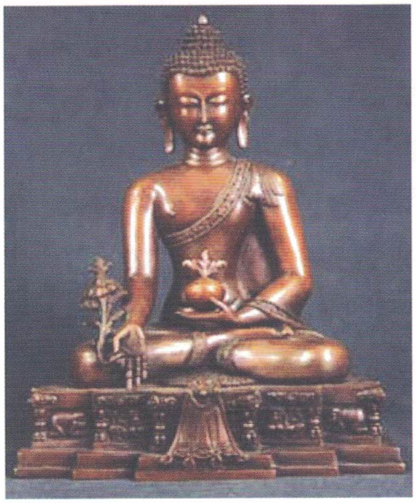

गाथा: अत्ता हवे जितं सेय्यो, या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स, निच्चं सञ्ञतचारिनो।।104।।

अर्थ: अन्य लोगों को जुआ, धन हरण, युद्ध या बल से जीतने की तुलना में अपने आप को जीतना श्रेयस्कर है। जिस आदमी ने अपने आप को जीत लिया है, जो अपने आप को हमेशा संयत में रखता है ....

सबसे बड़ी जीत क्या है ?
अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि ने जेतवन में साधना करते समय ये गाथायें अनर्थपृच्छक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही थी। जैसा नाम से स्पष्ट है इस ब्राह्मण ने 'अनर्थ' से सम्बन्धित प्रश्न पूछे थे तथा शास्ता ने उत्तर देकर उसे संतुष्ट किया था।

एक बार यह ब्राह्मण शास्ता के पास यह जानने के उद्देश्य से आया, "क्या सम्यकसम्बुद्ध प्राणियों का, किस प्रकार हित हो सकता है सिर्फ इसे ही जानते हैं या क्या करने से उनका अहित भी हो सकता है, इसे भी जानते हैं ? क्यों न उनसे यह प्रश्न पूछूँ ? "

वह शाक्य मुनि के सम्मुख प्रकट हुआ और सादर प्रणाम कर उसने अपने मन की शंका रख दी, "भन्ते ! आप अर्थ के विषय में ही सब कुछ जानते हैं या अनर्थ के विषय में भी आपको जानकारी है ? " तथागत ने उत्तर दिया, "बुद्ध लाभ और हानि दोनों को जानते हैं, लोगों का किस बात से हित और अहित, मंगल और अमंगल हो सकता है इसे भी स्पष्ट रूप से जानते हैं।" " भन्ते ! मेरी जिज्ञासा अनर्थ के विषय में कुछ जानने की है। कृपया इस विषय में कुछ बताइए।" शास्ता ने उसे समझाया कि क्या करने पर निश्चय ही मनुष्य का बुरा होगा - "(1) सूर्योदय के बाद तक सोये रहना (2) अक्सर, आदतन आलस्य में बैठा रहना (3) क्रूरता करना (4) सीमित मात्रा से अधिक मद्यपान करना जिससे नशा आ जाता है तथा गलतियाँ होती हैं (5) अकेले रात्रि में गलियों में घूमना या अकेले ही लम्बी यात्रा पर जाना तथा (6) पराई स्त्री की अभिलाषा करना। तुम इन कार्यों को करो, निश्चय ही तुम्हारा अहित (अनर्थ) हो जाएगा।" यह सुनकर ब्राह्मण अति प्रसन्न हुआ और बोल उठा, "साधु ! साधु !! गणाचार्य ! गणदेवता !! आप निश्चय ही लोगों के कल्याण की बात भी जानते हैं और उनके अहित की बात भी जानते हैं।" शास्ता ने कहा, "हाँ ब्राह्मण ! तुम सच कहते हो। मेरे समान अर्थ और अनर्थ दोनों को जानने वाला इस जगत में और कोई दूसरा नहीं है।"

गाथा: नेव देवो न गन्धब्बो, न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा, तथारूपस्स जन्तुनो।।105।।

अर्थ: ....ऐसे व्यक्ति की जीत को न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा, न मार ही, हार में बदल सकते हैं।

संयमी को कोई हरा नहीं सकता
अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा

फिर शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से जान लिया कि ब्राह्मण के प्रश्न पूछने का अभिप्राय क्या था। अत: उसके मन की बात जानकर उससे प्रश्न किया, "ब्राह्मण ! तुम्हारी जीविका का साधन क्या है ? " "हे गौतम ! मैं जुआ खेलकर अपनी जीविका चलाता हूँ।" "उसमें तुम्हारी सिर्फ जीत ही होती है या हार भी ? " "क्या कह रहे हैं शास्ता ? कभी मैं जीतता हूँ तो कभी मेरा प्रतिद्वन्द्वी जीतता है।" ऐसा कहे जाने पर शास्ता ने कहा, "ब्राह्मण ! दूसरों को जीतना एक बहुत ही छोटी चीज है। यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। महत्त्व की बात है अपने आप को जीतना। क्लेशों पर विजय प्राप्त करना, आश्रवों को जीत लेना ही सबसे बड़ी जीत है। ऐसी जीत जीतने वाले की जीवन में कभी भी हार नहीं होती है। जो अपने पर नियंत्रण रख सकता है, संयमी है, उसे न तो कोई देवता और न कोई गन्धर्व, न ब्रह्मा और न मार ही हरा सकता है। यही जीत सर्वश्रेष्ठ जीत है। अत: दूसरों को जीतने के बजाय इंसान को चाहिए कि वह अपने आप को जीतने के लिए प्रयत्नशील रहे।"

यह कहते हुए तथा घटनाक्रम से सम्बन्ध बनाते हुए शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।

गाथा: मासे मासे सहस्सेन, यो यजेथ सतं समं।
एकं च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं।।106।।

अर्थ: एक तरफ यदि कोई व्यक्ति हर महीने हजार मुद्राओं की दक्षिणा देते हुए सौ वर्षों तक लगातार यज्ञ करे और दूसरी ओर कोई दूसरा व्यक्ति परिशुद्ध चित्त वाले एक ही पुरुष का क्षणमात्र भी पूजन करे तो उस सौ वर्ष तक लगातार किए गए यज्ञ से एक क्षण का पूजन श्रेष्ठ है।

कौन सा पूजन श्रेष्ठ है ?
सारिपुत्त स्थविर के मामा की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने मामा के घर गए। मामा और भाँजे के बीच भले और अच्छे के विषय में चर्चा होती है। सारिपुत्त अपने ब्राह्मण मामा से पूछते हैं, " मामा, क्या आप भलाई का कोई काम करते हैं ?" "करता हूँ सारिपुत्त।" "क्या करते हैं ?" "प्रत्येक महीना एक हजार कार्षापण जमा कर दूसरों को दान देता हूँ।" "किसे देते हैं ?" "निगण्ठ साधुओं को।" "किस इच्छा से देते हैं ? " "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "आपको ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" " ब्रह्मलोक का मार्ग न तो आप जानते हैं और न आपके आचार्य !" ऐसा कहकर सारिपुत्त ब्राह्मण मामा को शास्ता के पास ले गये। सारिपुत्त ने शाक्य-मुनि से कहा, "यह ब्राह्मण इस प्रकार कहता है" ऐसा कहकर सारिपुत्त ने शाक्य मुनि को ब्राह्मण के साथ हुए संवाद को सुना दिया। स्थविर ने शास्ता से कहा, "अच्छा हो, भन्ते ! अगर आप ही इसे ब्रह्मलोक का मार्ग बता दें।" तथागत ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है, ब्राह्मण ? अगर तुम सैकड़ों वर्ष तक भी इस प्रकार दान देते रहोगे तो भी कोई विशेष फल नहीं मिलेगा। लेकिन जो आत्मज्ञानी है, अपने स्वरूप को जान गया है उसे थोड़ी भी दक्षिणा दोगे तो वह बहुत ही फलवती होगी।" ऐसा कह उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: यो च वस्ससतं जन्तु, अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं।।107।।

अर्थः यदि कोई मनुष्य सौ वर्षों तक वन में रहकर लगातार अग्निहोत्र करता है, तथा दूसरी ओर कोई साधक परिशुद्ध चित्त वाले भिक्षु का एक क्षण भी पूजा, सम्मान सत्कार करता है तो वह एक क्षण की पूजा कर्म सौ वर्षों के यज्ञ कर्म से श्रेष्ठ है।

क्या अग्निहोत्र से श्रेष्ठ कुछ है ?
सारिपुत्त थेर के भाँजे की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने भगिनीपुत्र के पास गए। उन्होंने अपने भाँजे से पूछा, "क्या तुम कोई भलाई का काम भी करते हो ? " "करता हूँ, भन्ते !" "क्या करते हो ?" "प्रत्येक महीना एक पशु का वध करके अग्निहोत्र करता हूँ।" "ऐसा किस इच्छा से करते हो ?" "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "तुम्हें ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" "ब्रह्मलोक का मार्ग न तो तुम जानते हो और न ही तुम्हारे आचार्य। चलो, शास्ता के पास चलकर मार्ग की जानकारी लें।" ऐसा कहकर सारिपुत्त उस भगिनीपुत्र को तथागत के पास ले गए और संवाद सुनाकर उनसे निवेदन किया, "भन्ते ! आप इसे ब्रह्मलोक के मार्ग के विषय में बताइए।" शास्ता ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है ब्राह्मण !" "हाँ, भो गौतम।" तब शाक्य मुनि ने ब्राह्मण को समझाया, "हे ब्राह्मण ! अगर तुम सौ वर्षों तक अग्नियज्ञ करोगे तो भी उसकी तुलना में परिशुद्ध मन वाले एक व्यक्ति का एक ही क्षण का पूजन अधिक श्रेष्ठ होगा।" ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथाः यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं व लोके, संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति, अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो।।108।।

अर्थः पुण्य की चाह करता हुआ मनुष्य संसार में पूरे वर्ष में कितने भी यज्ञ करे, हवन करे तो भी वह सरल चित्त पुरुष की की गई पूजा, वंदना, सत्कार के चौथाई भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता।

सरलचित्त पुरुष की पूजा श्रेयस्कर
सारिपुत्त स्थविर के मित्र की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार सारिपुत्त अपने एक मित्र के घर गए। उसके पास जाकर उन्होंने मित्र से पूछा "मित्र ! क्या तुम कोई भलाई का काम भी करते हो ? " "करता हूँ, भन्ते !" "क्या करते हो ?" "प्रत्येक माह इष्टापूर्त यज्ञ करता हूँ।" उस काल में बहुत सारे लोग पैसे खर्च कर यह यज्ञ किया करते थे। "ऐसा किस इच्छा से करते हो ?" "भन्ते ! ब्रह्मलोक जाने की इच्छा लेकर।" "क्या ऐसा करके ब्रह्मलोक जाया जा सकता है ?" "हाँ भन्ते !" "तुम्हें ऐसा किसने बताया ?" "मेरे आचार्यों ने मुझे बताया।" " ब्रह्मलोक का मार्ग न तो तुम जानते हो और न ही तुम्हारे आचार्य ! चलो, शास्ता के पास चलकर ब्रह्मलोक जाने के मार्ग के विषय में जाना जाये।" दोनों शास्ता के पास गए; सारिपुत्त ने संवाद के विषय में बताया और शाक्य-मुनि से आग्रह किया, "भन्ते ! आप इसे ब्रह्मलोक के मार्ग के विषय में बताइये।" शाक्य-मुनि ने ब्राह्मण से पूछा, "क्या ऐसी बात है, ब्राह्मण !" "हाँ, भो गौतम !" तब तथागत ने ब्राह्मण को समझाया, "पुण्य की चाह करता हुआ आदमी संसार में साल भर में जो कुछ यज्ञ या हवन करता है, वह सरल चित्त वाले पुरुष की पूजा-वंदना का चौथाई भाग भी नहीं होता है।"

ऐसा कहकर उन्होंने यह गाथा सुनाई।

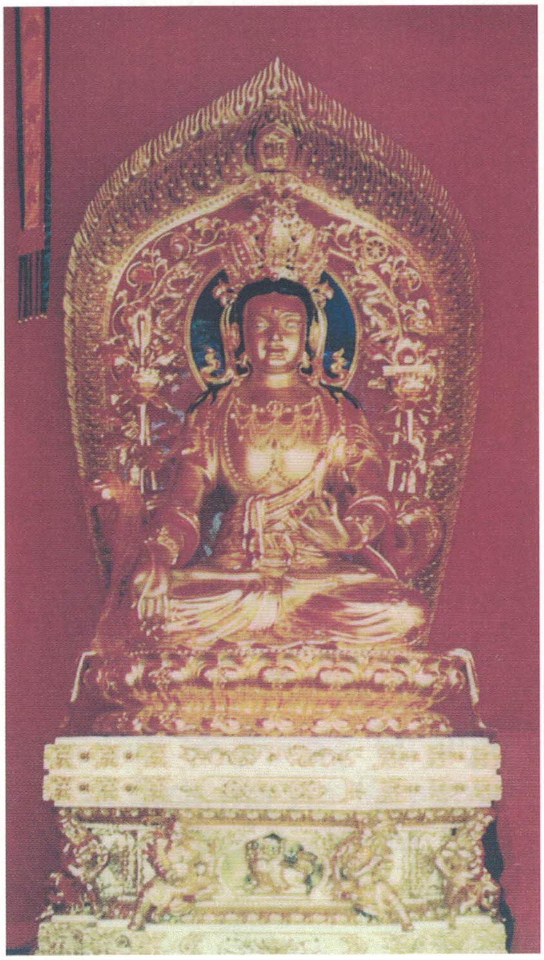

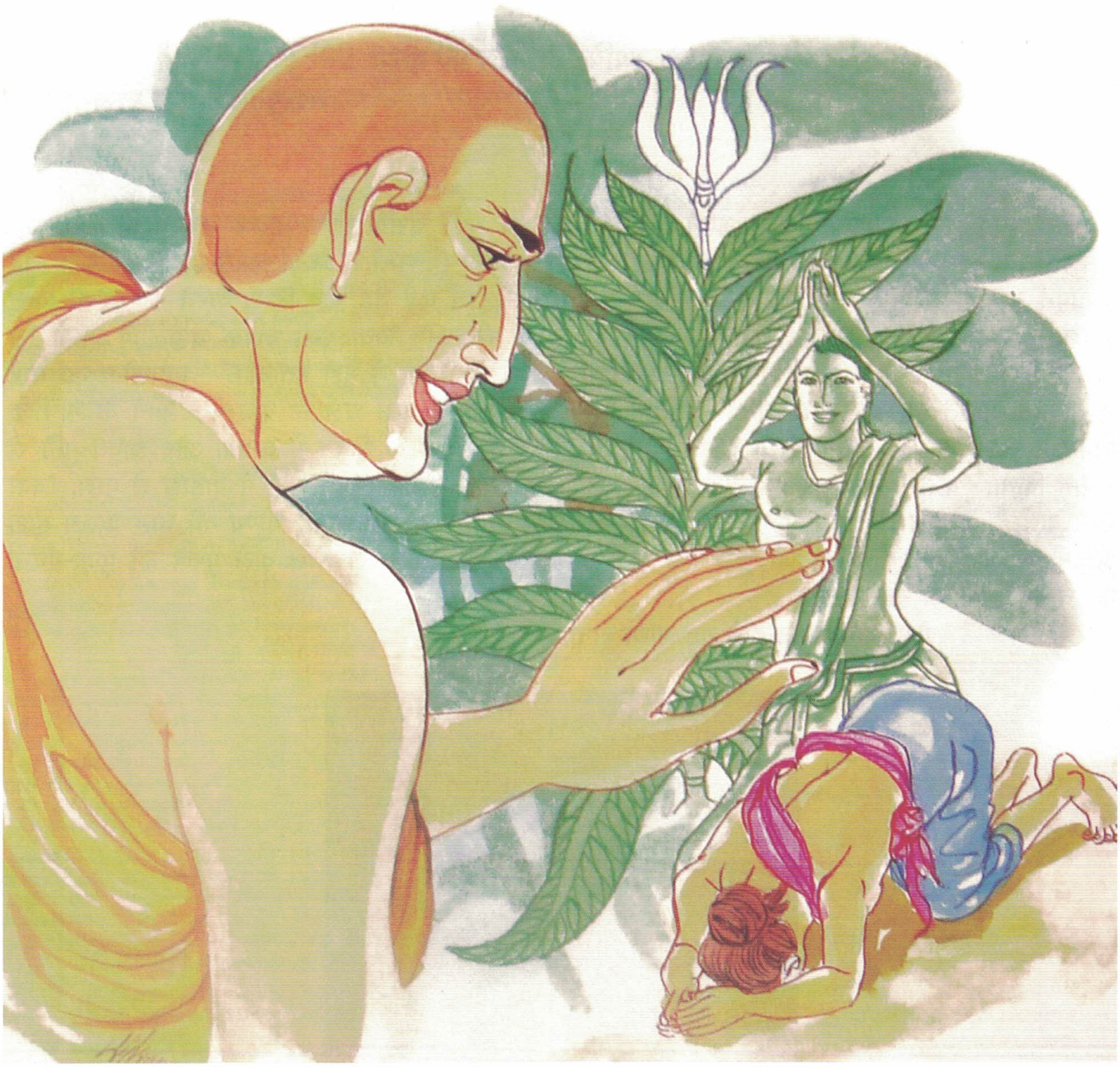

गाथा: अभिवादनसीलिस्स, निच्चं वुड्ढापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति, आयु वण्णो सुखं बलं।।109।।

अर्थ: जो गुणीजनों का अभिवादन करता है और बड़े-बुजुर्गों एवं वृद्धजनों की सेवा करता है, उस सत्पुरुष की चार बातें बढ़ती हैं- 1. आयु, 2. वर्ण 3. सुख और 4. बल।

उम्र, सुख, बल बढ़ाने का रहस्य
आयुवर्द्धन कुमार की कथा

स्थान : अरञ्ञकुटिका

दीर्घलङ्घिक नगर में रहने वाले दो ब्राह्मण तीर्थिकसम्मत प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए। दोनों ने अड़तालिस वर्ष तपस्या की। उसके बाद उनमें से एक ने सोचा, "अगर मैं प्रव्रजित रह गया तो मेरा कुल-वंश नष्ट हो जाएगा। ऐसा सोचकर वह गृहस्थ आश्रम में वापस आ गया और उसने विवाह कर लिया। उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। पति-पत्नी ने सोचा कि दूसरे साथी भिक्षु से चलकर आशीर्वाद माँगा जाए। इस प्रकार वे दोनों बच्चे को लेकर भिक्षु के पास पहुँचे और सादर प्रणाम किया। भिक्षु ने पति-पत्नी दोनों को तो दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया पर पुत्र के प्रणाम करने पर कुछ नहीं बोला। माता-पिता ने इसका कारण पूछा तो भिक्षु ने कहा कि उस बालक की आयु मात्र सात दिन बची है। "इसका कोई उपाय है कि उसकी आयु बढ़ जाये ?" "मुझे तो नहीं मालूम, हाँ श्रमण गौतम जानते हैं। अगर उनसे मिलो तो शायद कोई समाधान निकल आए।"

वह शास्ता के पास पहुँचा। उन्हें सादर प्रणाम किया और उनसे आग्रह कर पूछा कि पुत्र की जीवन रक्षा का क्या कोई उपाय है ? "हाँ ब्राह्मण, है ! तुम अपने घर के द्वार पर मंडप लगाकर वहाँ बालक को बिठा दो। चारों तरफ से भिक्षुओं को बिठाकर सप्ताह पर्यन्त "परित्राण पाठ" कराओ तो उसका विघ्न दूर हो जाएगा।" ऐसा ही किया गया। सातवें दिन सायंकाल शाक्य-मुनि भी वहाँ स्वयं पधारे। एक प्रेत वहाँ पर बालक के प्राण हरने के लिए घात लगा कर बैठा था। पर सभी सद्पुरुषों की उपस्थिति के कारण उसे प्राण हरने का मौका नहीं मिल सका और उसे वापस जाना पड़ा। दूसरे दिन बच्चे के माता-पिता उसे लेकर तथागत के पास गए और सादर प्रणाम किया। आज शास्ता ने उसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। लोगों ने जिज्ञासा की कि वह कितने वर्ष जियेगा। शास्ता के मुँह से निकल पड़ा "एक सौ बीस वर्ष।" इतनी लम्बी आयु के कारण उसका नाम 'दीर्घायु कुमार' पड़ गया।

लड़का बड़ा हुआ। एक बार जेतवन आया। भिक्षुओं ने उसे पहचान लिया और शास्ता से पूछा, "क्या कोई उपाय है जिससे लम्बी उम्र पाई जा सके ?" शाक्य-मुनि ने समझाते हुए कहा, "हाँ भिक्षुओं ! बड़े-बुजुर्गों, विद्वान और गुणी लोगों की सेवा और सम्मान करना न केवल व्यक्ति की उम्र बढ़ाता है, बल्कि सुन्दरता, सुख और बल भी बढ़ाता है।" तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, सीलवन्तस्स झायिनो।।110।।

अर्थ: किसी व्यक्ति का दुराचारी और असंयमी होकर सौ वर्ष तक जीवित रहना भी निरर्थक है। उसके विपरीत सदाचारी और संयमी होकर एक दिन भी जीवित रहे तो वह जीवन श्रेयस्कर है।

किसका जीवन श्रेष्ठ है ?
संकिच्च सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार तीस भिक्षु शास्ता से ध्यान-विपश्यना की साधना लेकर श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर एक गाँव में रहने लगे। उस गाँव के पास ही एक घना जंगल था। उसमें कुछ लुटेरे ठहरे हुए थे। वे देवताओं को खुश करने के लिए एक नर-बलि देना चाहते थे। अत: वे विहार में गए और भिक्षुओं से कहा कि कोई एक भिक्षु नर-बलि के लिए चले। अधिकांश भिक्षु डरे हुए थे पर एक ने हिम्मत जुटाकर जाने की इच्छा व्यक्त की। वह सात वर्ष का ही था पर उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उसने अन्य भिक्षुओं से कहा कि उसके गुरू स्थविर सारिपुत्त को इस प्रकार की घटना का अंदेशा था। उन्होंने संकिच से कहा था कि अगर ऐसी बात है तो वह डाकुओं के साथ चला जाए। अत: वह उन लुटेरों के साथ चला गया। उसके जाने से भिक्षु बहुत दु:खी हुए।

उधर जंगल में लुटेरों ने बलि की तैयारी शुरू कर दी। जब सारी तैयारी हो गई तो लुटेरों के नेता ने मारने के प्रयोजन से तलवार उठाई। उस समय सामनेर ध्यान-विपश्यना में लीन था। उसने तलवार से वार किया, तलवार मुड़ गई और सामनेर का कुछ भी नहीं बिगड़ा। मुखिया ने तलवार की धार तेज की और इस बार फिर वार किया पर इस बार भी तलवार मुड़ गई। लुटेरे आश्चर्यचकित और भयभीत थे। वे सभी सामनेर के पैरों पर गिर पड़े और प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। उन्हें प्रव्रज्या दे दी गई। सामनेर उनके साथ तीस भिक्षुओं के पास वापस आ गया। वे उसे देख बहुत खुश हुए। तब वे सभी शास्ता और सारिपुत्त के पास जेतवन पहुँचे।

तथागत को सारी बात की जानकारी दी गई। तब उन्होंने समझाया, "जो दुराचारी और असंयमी है उसका सौ वर्ष जीना भी बेकार है पर सदाचारी और संयमित होकर एक दिन भी जीना श्रेयस्कर है।"

यह कहकर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, दुप्पञ्ञो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पञ्ञवन्तस्स झायिनो।।111।।

अर्थ: दुर्बुद्धि और असंयमित होकर सौ वर्ष जीने की तुलना में प्रज्ञावान और ध्यान भाव में रत रहकर एक दिन का जीवन जीना अधिक श्रेयस्कर है।

सत्कर्म की जिन्दगी ज्यादा शुभ
स्थाणु कौण्डिन्य स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय थेर कौण्डिन्य ने शास्ता से ध्यान-विपश्यना की शिक्षा ली और वन में साधना कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया। वे जंगल से निकले और गाँव की ओर जा रहे थे। रास्ते में उनके मन में आया कि पथ से हटकर थोड़ा ध्यान कर लेना चाहिए। अतः वहीं एक जंगल की झाड़ी में प्रवेश कर विपश्यना साधना में तल्लीन हो गए।

उसी समय डाकुओं का एक समूह डाके का सामान लिए आ रहा था। जंगल में प्रवेश कर उन्होंने थोड़ा आराम करना चाहा। थेर कौण्डिन्य को एक पेड़ समझकर उनके आसपास गठरियाँ रखकर सो गए। सुबह हुई, उन्होंने थेर को देखा तो वे डर गए। उन्होंने सोचा कि यह कोई भूत-प्रेत है। अतः वे भागने लगे। स्थविर ने उन्हें पुकारकर बताया कि वे भूत नहीं थे, वरन् एक भिक्षु थे। यह देखकर डाकुओं को बड़ी शर्मिन्दगी हुई और वे थेर के चरणों में गिर गए तथा प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। थेर ने सबों को प्रव्रज्या दिला दी।

प्रव्रज्या प्राप्त कर सभी जेतवन विहार पहुँचे। शास्ता उन दिनों वहीं साधना कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर सभी ने शाक्य-मुनि को सादर प्रणाम किया। तब कौण्डिन्य ने पूरी कथा विस्तार से सुनाई। शास्ता ने उनकी बात सुनकर नए भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं ! कुबुद्धि के साथ सौ वर्ष तक जीवन-यापन करने की तुलना में प्रज्ञा प्राप्त कर सत्कर्म करते हुए एक दिन की जिन्दगी ज्यादा शुभ है।" तब घटना से मेल खाती हुई उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, वीरियमारभतो दळहं।।112।।

अर्थ: आलसी और उद्योग रहित आदमी के सौ वर्षों के जीवन की तुलना में दृढ़ उद्योग करने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन अधिक श्रेयस्कर होता है।

उद्यमी पुरुष का जीवन श्रेष्ठ
सर्पदास स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

श्रावस्ती में किसी कुलपुत्र ने शास्ता का धर्मोंपदेश सुना और उससे प्रभावित होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। आगे चलकर उसे जीवन के प्रति अनुत्सुकता प्रकट होने लगी पर उसे गृहस्थ बनना अच्छा नहीं लग रहा था। अतः उसने आत्महत्या करने की सोची।

एक दिन कुछ भिक्षुगण एक डब्बा में एक विषधर साँप को बंद कर वन में छोड़ने जा रहे थे। उसने उनसे वह डब्बा ले लिया और उसमें हाथ डालकर साँप से कटवाने की कोशिश करता रहा पर साँप ने उसे नहीं काटा। बाद में उसने यह बात भिक्षुगण को बताई तो भिक्षुगण को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ कि साँप उसे नहीं काटेगा।

कुछ समय बाद एक नाई अपने उस्तुरा के साथ विहार आया। भिक्षु ने उस्तुरा उठाया और उसे एक किनारे ले जा, पेड़ पर अपनी गर्दन रख उस पर छुरा चलाने जा रहा था। उसी समय उसे अपना सदाचार तथा शील याद आ गया और वह अर्हत्व प्राप्त कर गया। वह उस्तुरा वापस लेकर विहार चला आया।

भिक्षुओं ने पूछा, "कहाँ गए थे ? " "उस्तुरा से अपनी हत्या करने गया था।" "हत्या क्यों नहीं की ? " "गला काटने की जगह क्लेश-बंधन काट आया।"

भिक्षुगण ने सोचा "यह झूठ-मूठ का अपनी शेखी बघार रहा है।" अतः वे शाक्य-मुनि के पास गए तथा सारी बात बताई। शाक्य-मुनि ने समझाया, "भिक्षुगण ! क्षीणास्त्रव भिक्षु अपने शरीर पर शस्त्र नहीं चलाते हैं।" भिक्षुओं ने फिर प्रश्न किया कि साँप ने उसे क्यों नहीं काटा। उत्तर में शास्ता ने बताया कि तीन जन्मों पूर्व वह साँप उस भिक्षु का दास था। अतः वह अपने स्वामी की हत्या नहीं करना चाहता था। इस घटना के बाद वह भिक्षु सर्पदास के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

भिक्षुगण ने एक और प्रश्न किया, "भन्ते ! यह भिक्षु उस्तुरा से अपना गला काटने की चेष्टा में ही अर्हत कैसे हो गया ? क्या एक क्षण में कोई अर्हत्व प्राप्त कर सकता है ? " "हाँ भिक्षुओं ! सर्पदास ने उद्यम किया। ऐसा भिक्षु जमीन से पैर उठाने के बाद पुनः रखने के बीच में ही अर्हत्व प्राप्त कर सकता है।"

समय और परिस्थिति के अनुसार शाक्य मुनि ने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयव्ययं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयव्ययं।।113।।

अर्थ: पंच स्कन्ध के उत्पाद-व्यय को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से उस व्यक्ति का जीवन श्रेष्ठ होता है जो एक दिन भी उत्पाद-व्यय देख पाता है।

उत्पाद-व्यय समझने वाले का जीवन अधिक श्रेयस्कर
पटाचारा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

पटाचारा श्रावस्ती के एक धनी सेठ की इकलौती बेटी थी। वह बहुत सुन्दर थी और गुणवान भी थी, पर वह अपने नौकर को दिल दे बैठी और फिर चुपचाप उसके साथ घर छोड़कर निकल गई।

वे श्रावस्ती से बहुत दूर चले गए और वहाँ उन्होंने गृहस्थी बसा ली। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई। पति के यहाँ उसे सुख-सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। उसे मायका याद आने लगा। पुत्र-जनन हेतु उसने मायके जाने का प्रस्ताव रखा पर उसका पति टाल-मटोल करता रहा। अतः अपने पड़ोसी को यह बताकर कि 'वह मायके जा रही है, आप पति को बता देना', वह मायके के लिए निकल पड़ी। पति लौटकर आया, उसे पता चला कि उसकी पत्नी मायके के लिए प्रस्थान कर गई है। वह उसके पीछे चल पड़ा। रास्ते में ही उससे भेंट हो गई। पटाचारा को प्रसव पीड़ा हुई। पुत्र ने जन्म लिया। आगे जाना टल गया। दोनों घर वापस आ गए।

अगले वर्ष वह फिर गर्भवती हुई। इस बार पति-पत्नी अपने बेटे को साथ लेकर चले। रास्ते में भीषण तूफान आया और वर्षा होने लगी। उधर पटाचारा को प्रसव पीड़ा शुरू हो गई। उसका पति कुल्हाड़ी से झाड़ी काटकर आश्रय बनाने लगा पर उसे साँप ने काट लिया। उसकी मृत्यु हो गई। उधर किसी तरह पटाचारा ने पुत्र को जन्म दिया।

सुबह हुई, मृत पति को छोड़कर अपने पुत्रों को गोद में लेकर वह श्रावस्ती की ओर चल पड़ी। रास्ते में नदी आई। रात की बरसात के कारण नदी में बाढ़ आ गई थी और पानी गर्दन से थोड़ा नीचे तक बह रहा था। बड़े बेटे को तट पर बिठा छोटे बच्चे को उस पार रखने जा रही थी कि एक बाज ने झपट्टा मारा और बच्चे को लेकर उड़ गया। माँ शोर करने लगी। बड़े बच्चे को लगा कि उसे माँ बुला रही है। वह पानी में उतरा और डूबकर मर गया।

वह रोती हुई किसी प्रकार नदी पार कर श्रावस्ती की ओर चल पड़ी। उधर से कुछ लोग आ रहे थे। उनसे अपने माँ-बाप और भाई-बहनों के विषय में पूछा। पथिक ने बताया, "रात की तूफानी बरसात में उनका मकान गिर गया, उसमें दबकर परिवार के सभी सदस्य मर गए। सामने दिख रहा बहुत सारा धुँआ उनकी चिता से ही उठ रहा है।"

वह रोती हुई श्मशान गई। माँ-बाप, भाई-बहन की चिताएं देखीं। वह अपना होश-हवास खो बैठी। पागलों जैसी नंगी घूमने लगी और कहती, "मेरे दोनों पुत्र मर गए, पति को साँप ने डँस लिया, एक ही चिता पर माँ-पिता, भाई-बहन जल गए।" लड़के उसके ऊपर धूल, मिट्टी, पत्थर फेंका करते।

एक दिन घूमती हुई जेतवन में प्रवेश करने लगी। लोगों ने इस पगली को रोकना चाहा, पर तथागत की दृष्टि उस पर पड़ गई। उसे अंदर आने दिया गया। तथागत को देखते ही उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। उसे अपनी नग्नता का भान हुआ और वह उकड़ूँ होकर बैठ गई। किसी ने उसके शरीर पर चीवर डाल दिया।

शास्ता प्रवचन दे रहे थे। पटाचारा अन्दर से परिशुद्ध होने लगी। वह स्रोतापन्न हो गई। उसने बुद्ध को अपना दुखड़ा कह सुनाया। तथागत ने उसे समझाया कि उसे अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ना होगा। उसने प्रव्रज्या लेने की इच्छा व्यक्त की। उसे प्रव्रजित कर दिया गया। वह पटाचारा नाम से प्रसिद्ध हो गई।

एक दिन वह पैर पर जल डाल रही थी। वह थोड़ी दूर जाकर सूख गया। दोबारा डाला, यह और थोड़ी दूर गया। तीसरी बार डाला तो यह काफी दूर तक जाकर सूख गया। उसने लोगों को भी इसी प्रकार तीन ढंग से मरते हुए देखा। तब बुद्ध ने अपने प्रकाश से उसे समझाया कि पंचस्कन्धों के उत्पाद-व्यय को न देखने वाले अज्ञानी के सौ वर्षों की तुलना में उत्पाद-व्यय समझने वाले एक ज्ञानी का एक दिन का जीवन अधिक श्रेयस्कर है।

गाथा: योच वस्ससतं जीवे, अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो अमतं पदं।।114।।

अर्थ: अमृत पद, उत्तम धर्म-निर्वाण का साक्षात्कार न करते हुए प्राणी का सौ वर्षों तक जीना भी व्यर्थ है। इसके विपरीत यदि कोई इस उत्तम धर्म निर्वाण का साक्षात्कार करने के बाद एक दिन भी जीवित रहता है तो वही श्रेष्ठ है।

किस धर्म का साक्षात्कार श्रेष्ठ ?
किसा गोतमी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसा गोतमी बहुत ही दुबली-पतली थी। इसीलिए लोग उसे 'किसा' कहते थे।

किसा गोतमी बुद्ध के सम्मुख खड़ी थी। उसने कहा, "आपने ही कल मुझ पर दया की थी और मुझे दुत्कार कर नहीं भगाया था।" बुद्ध मुस्कुराये और बोले, "हाँ बहन ! मुझे याद है। तुम वह दवा खोज लाई ? "

गोतमी ने आपबीती पुनः सुना दी, "मेरा नवजात शिशु साँप के साथ खेल रहा था और साँप ने उसके शरीर पर एक दंत चिन्ह अंकित कर दिया और उसके बाद से उसका शरीर ठंडा पड़ गया। दूध पीना बंद कर दिया, न तो बोलता था और न उसके शरीर में कोई गति थी। मैं अपने पुत्र को गँवाना नहीं चाहती थी। किसी ने आपके विषय में बताया कि पहाड़ी पर एक महात्मा रहते हैं। संभवतः उनके पास इसका इलाज हो। मैं आपके पास आई तो आपने औषधि के रूप में थोड़ा सरसों लाने के लिए कहा। सिर्फ यह ध्यान रखना था कि किसी ऐसे घर से नहीं लाना था जहाँ कोई मरा हो।" "तो तुम वैसा सरसों खोज लाई ?" नहीं भन्ते ! मैं अपने पुत्र को लेकर एक घर से दूसरे घर गई। सरसों माँगा और सबों ने सरसों दिया क्योंकि दुखियारों पर दया की रीति प्राचीन काल से ही चली आ रही है। लेकिन जब पूछा 'तुम्हारे घर में कोई मरा तो नहीं है, बहन ?' तो लोग कहते, 'क्या कह रही हो बहन, जीवित कम हैं मृत अधिक।' मैं सरसों वापस कर, धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाती। अगले दरवाजे पर फिर खटखटाती। उत्तर मिलता, 'जिसने सरसों बोया था, काटने से पहले ही चल बसा।' इस प्रकार मुझे कोई ऐसा घर नहीं मिल पाया जहाँ कोई मरा न हो। भन्ते ! दया कर बतावें कि वह सरसों कहाँ मिलेगी ? " दयामय बुद्ध ने समझाया, "सरसों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुमने वह सरसों पा लिया है। कल तक तुम समझती थी कि तुम्हारा दुःख सिर्फ तुम्हारा है पर आज जानती हो कि तुम्हारे दुःख में सभी शामिल हैं । जो दुःख सबों के साथ बाँटा जाता है, कम हो जाता है। तुम्हारा पुत्र कल ही मर गया था। उसका अंतिम संस्कार कर दो।"

बुद्ध की बात सुन उसके ज्ञान-चक्षु खुल गए। वह भिक्षुणी बन गई और समय के अन्तराल से अर्हत्व भी प्राप्त कर लिया।

तब बुद्ध ने यह गाथा कही।

गाथा: यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो धम्ममुत्तमं।।115।।

अर्थ: उत्तम धर्म की ओर ध्यान न देते हुए सौ वर्ष जीने से उत्तम धर्म की ओर ध्यान देते हुए एक दिन जीना श्रेष्ठ है।

किस धर्म का अनुसंधान श्रेयस्कर ?
बहुपुत्रिका थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ रहता था। उन्हें सात पुत्रों एवं सात पुत्रियों का सुख प्राप्त था। इतने अधिक बच्चों की माँ होने के कारण लोग उस स्त्री को 'बहुपुत्रिका' कहते थे। समय की बात है पति दुनिया से चल बसा। बहुपुत्रिका अपने बाल-बच्चों के साथ रह गई।

बाल-बच्चे बड़े हुए। लड़कों की शादियाँ हो गईं। लड़कियाँ ससुराल चली गईं। पति के मरने के बाद माता परिवार और सम्पत्ति का विभाजन नहीं चाहती थी। पर उसके बेटों ने उसे समझाया, "माँ ! पिताजी के देहान्त के बाद आप परिवार का बोझ अपने ऊपर क्यों उठाये हुई हैं ? क्या हम लोग आपकी सेवा नहीं करेंगे ? " शुरू-शुरू में तो उसने पुत्रों की इस बात की अनसुनी कर दी पर जब उसे बार-बार कहा गया तो फिर उसने सोचा, "बच्चे शायद ठीक ही कह रहे हैं। वे मेरी देखभाल कर लेंगे। मुझे इस प्रपंच में फँसे रहने से क्या फायदा ? " ऐसा सोचकर उसने अपनी पूरी सम्पत्ति का बँटवारा कर दिया और अपने पास कुछ नहीं रखा।

अब वह एक संतान के यहाँ कुछ दिन रहने के बाद दूसरे के यहाँ जाकर रहने लगी। पहले तो कुछ दिनों तक सभी कुछ ठीक-ठाक चला पर कुछ समय बाद घर की स्त्रियाँ ताना देने लगीं। किसी परिवार वाले उसका स्वागत नहीं करते थे। ऐसा देख उसका मन खट्टा हो गया। उसने परिवार त्याग दिया और प्रव्रज्या धारण कर लिया। वह 'बहुपुत्रिका थेरी' के नाम से विख्यात हो गई।

वह बुढ़ापे में भिक्षुणी बनी थी। उसे मालूम था कि उसकी जीवन अवधि सीमित है। अतः वह पूरी श्रद्धा के साथ साधना में जुट गई। एक दिन शास्ता ने उसे यह उपदेश दिया।

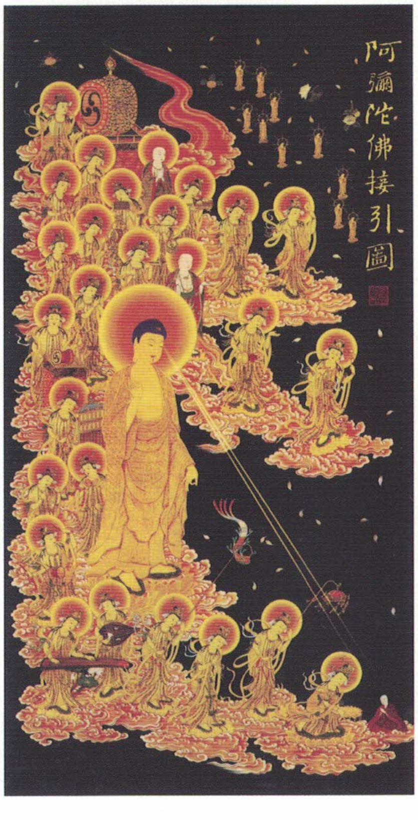

DHAMMAPADA

SAHASSA VAGGA

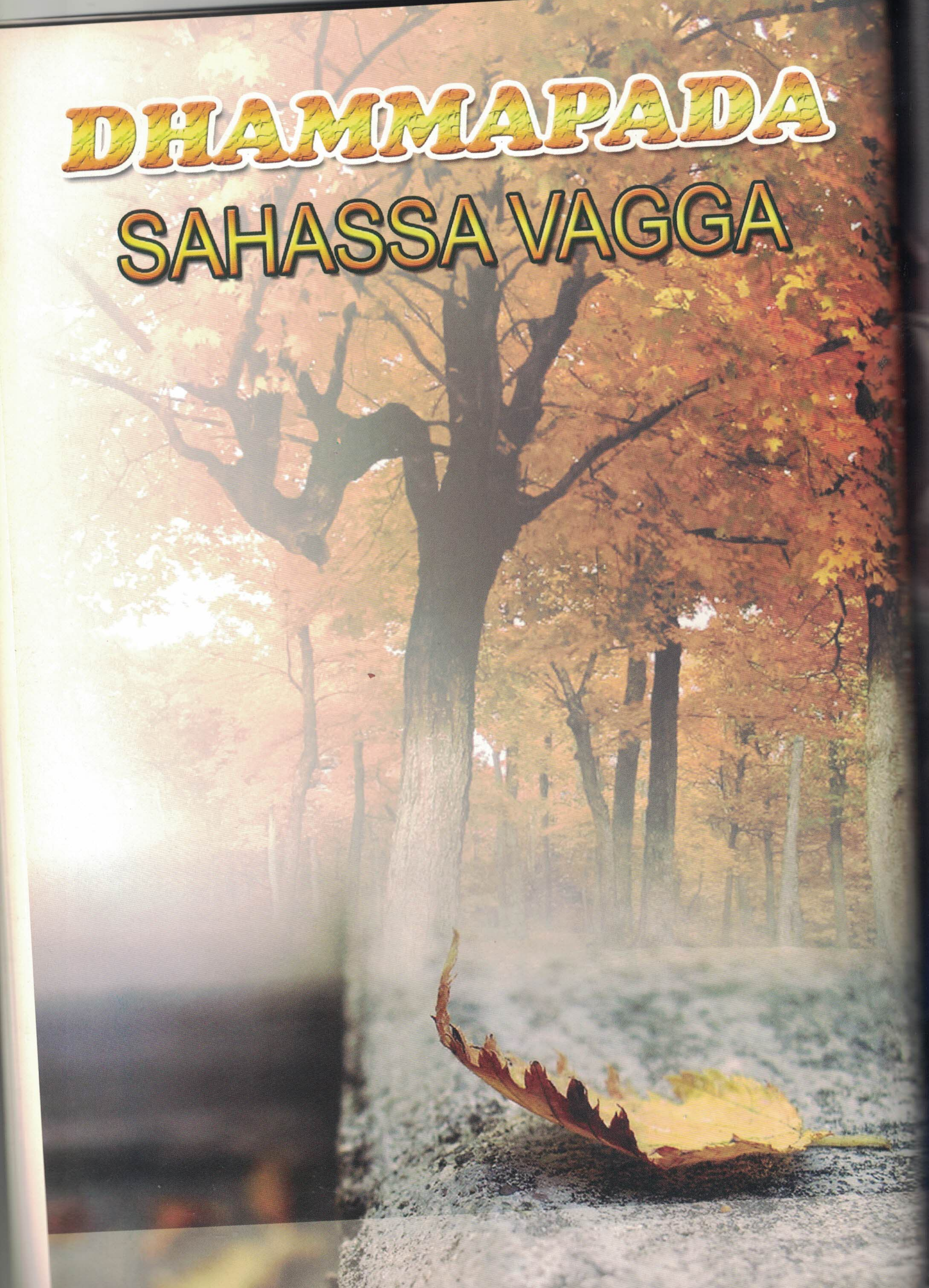

पाप से कैसे बचें ?

धम्मपद

पाप वर्ग

गाथा और कथा

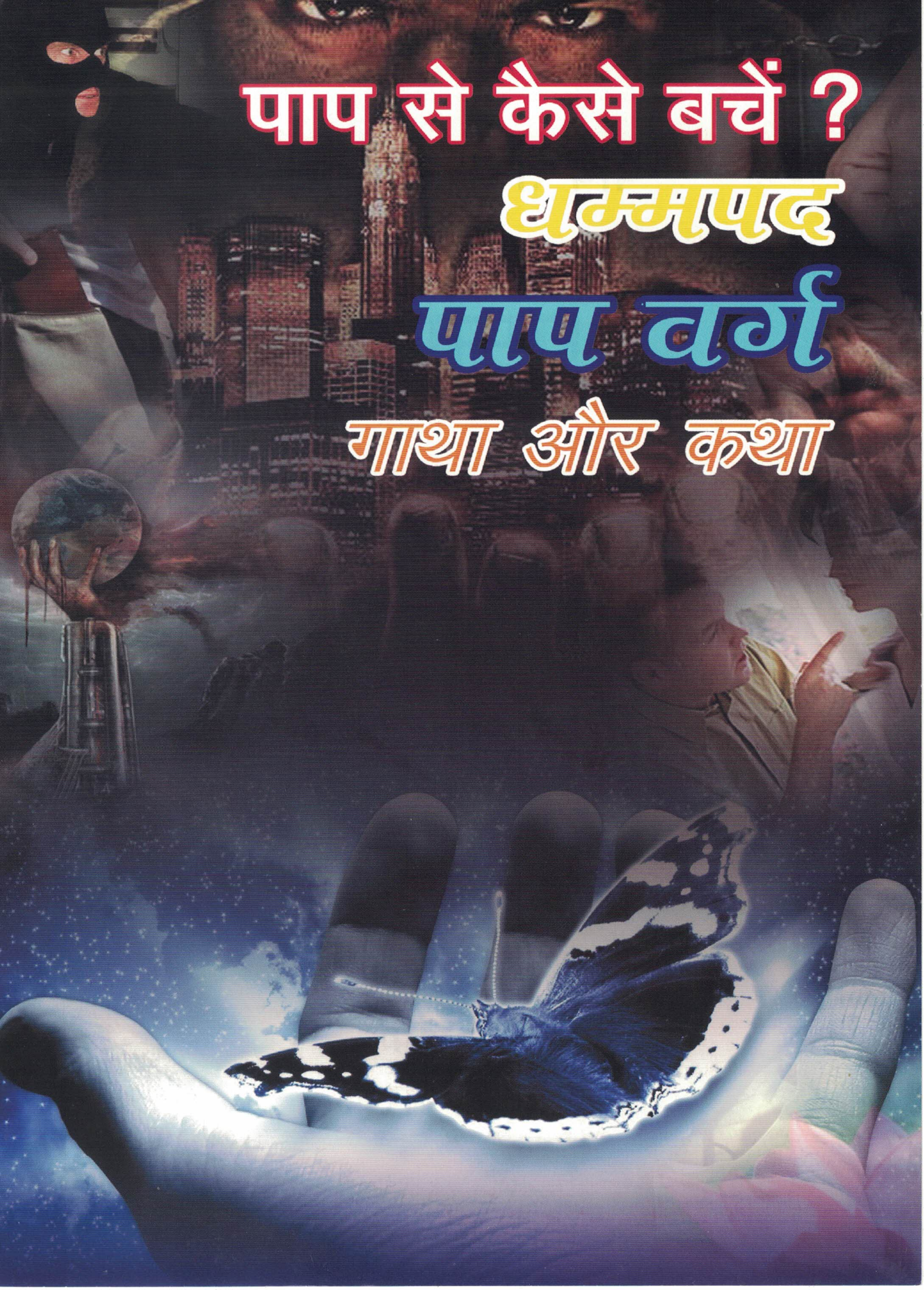

पाप से कैसे बचें ?

धम्मपद

पाप वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

पाप वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	दीन एकशाटक की कथा	116	शुभ कर्म करने में कदापि विलंब न करें	49
2.	सेय्यसक थेर की कथा	117	पाप का संचय दुखकर होता है	51
3.	लाजदेव पुत्री की कथा	118	पुण्य का संचय हितकारी होता है	53
4.	अनाथपिंडिक की कथा	119	पाप पक जाने पर दुःख देने लगता है	55
5.	अनाथपिंडिक की कथा	120	पुण्य पक जाने पर सुख देने लगता है	57
6.	असंयत भिक्षु की कथा	121	पाप जमा होते–होते विशाल पुंज हो जाता है	59
7.	विडालपादक श्रेष्ठी की कथा	122	पुण्य करने में कृपणता न करें	61
8.	महाधनिक की कथा	123	पापों को विष समान जान, त्याग दें	63
9.	कुक्कुटमित्र निषाद की कथा	124	कुशल चित्त को पापकर्म प्रभावित नहीं करते	65
10.	कोक लुब्धक एवं भिक्षु की कथा	125	पाप न करें, यह आपका ही नुकसान करेगा	67
11.	मणिकार की कथा	126	सभी सर्वत्र अपना ही कर्मफल पाते हैं	69
12.	तीन भिक्षु समूहों की कथा	127	पाप कर्म कर फल से नहीं बच पावोगे	71
13.	सुप्रबुद्ध की कथा	128	मृत्यु के प्रहार से कहीं भी नहीं बचोगे	73

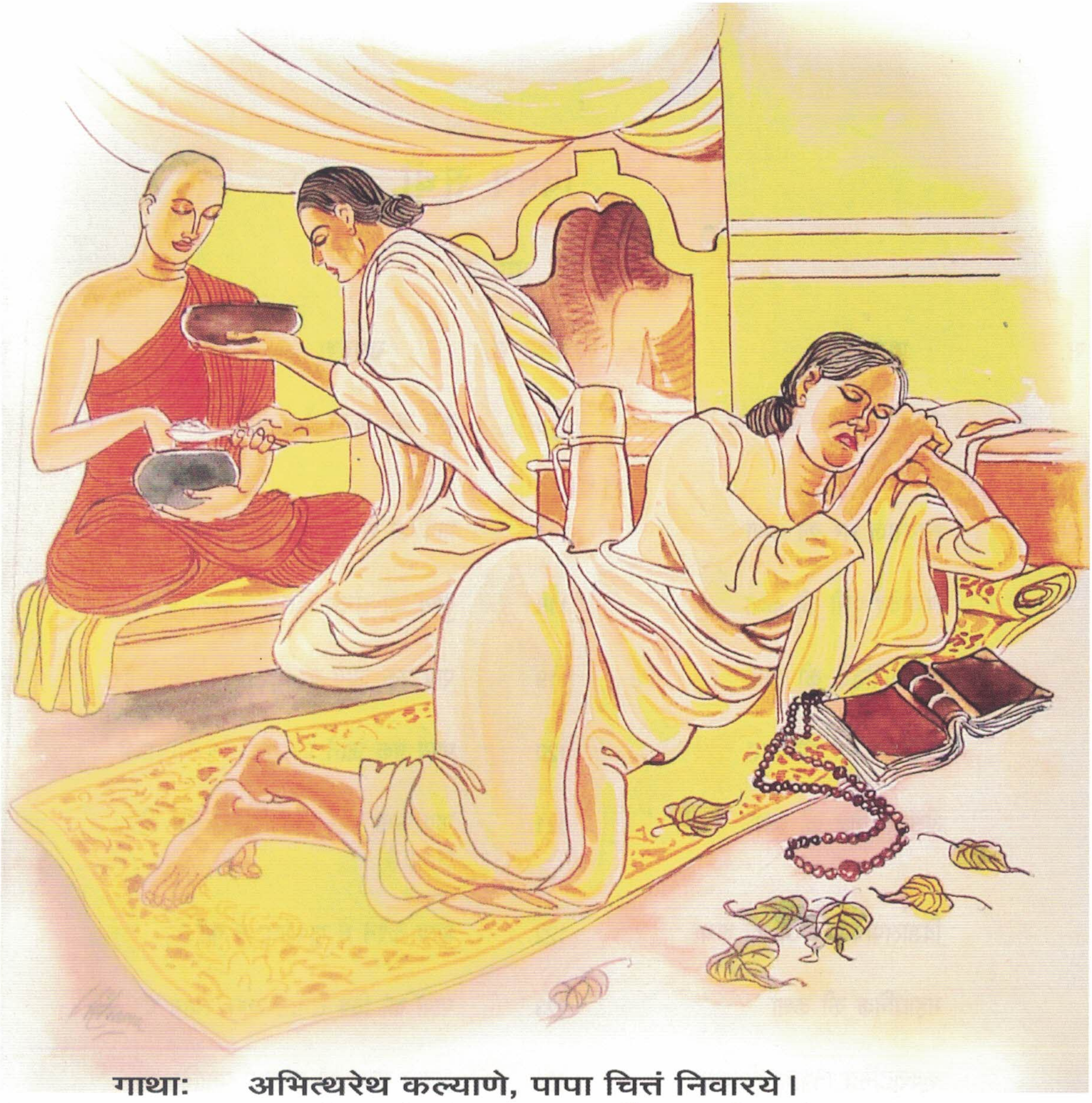

गाथा: अभित्थरेथ कल्याणे, पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोन्तो पुञ्ञं, पापस्मिं रमती मनो ।। 116।।

अर्थ: शुभ कर्म करने में विलंब नहीं करना चाहिए और पाप से चित्त को सदा दूर हटाना चाहिए । अगर मनुष्य सत्कर्म करने में मंदी दिखाता है तो सम्भव है उसका मन सत्कर्म से हटकर पापकर्म की ओर प्रेरित हो जाए । अर्थात् सत्कर्म करने में दृढ़ता दिखानी चाहिए। मुझे यह करना चाहिए या नहीं करना चाहिए, दान देना चाहिए या नहीं देना चाहिए- जो इस दुविधारूपी कीचड़ में फँस जाता है; उसकी कमजोरी देखकर लोभरूपी शत्रु उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। उसका मन परास्त होकर लोभ की ओर रम जाता है तथा वह पाप करने को प्रेरित हो जाता है।

शुभ कर्म करने में कदापि विलंब न करें
दीन एकशाटक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में एक दरिद्र ब्राह्मण युगल रहता था जिसके पास पहनने के लिए मात्र एक वस्त्र था। अतः उसे एकशाटक कहते थे। किसी दिन पत्नी उस वस्त्र को धारण कर विहार गई और रात्रि में वह ब्राह्मण उस वस्त्र को धारण कर धर्म श्रवण हेतु विहार में प्रविष्ट हुआ। धर्म श्रवण करते-करते उसका अंग-अंग पुलकित हो उठा। उस प्रीति की स्थिति में उसके मन में आया कि वह उस वस्त्र को शास्ता को दान स्वरूप चढ़ा दे। पर उसका मन यह सोचकर डाँवाँडोल होता रहा कि अगर वह इसे बुद्ध को दे देगा तो उसकी पत्नी के लिए कुछ नहीं बचेगा। इस प्रकार द्वन्द्व में रात्रि के दो प्रहर बीत गए। तीसरे प्रहर में उसने सोचा कि अगर मैं इसी प्रकार द्वन्द्व में पड़ा रहा तो बुद्ध को दान देकर पुण्य कमाने का एक सुनहरा अवसर गँवा दूँगा। अतः उसने उस वस्त्र को तथागत को समर्पित कर दिया और खुशी के मारे तीन बार जोर से बोल उठा, "मैं जीत गया, मैं जीत गया।" उस समय राजा प्रसेनजीत भी धर्म सभा में विद्यमान थे। ब्राह्मण की उक्ति सुनकर उन्होंने अपने सिपाहियों से पता लगाने के लिए कहा कि ब्राह्मण क्या जीत गया? सिपाहियों के बताने पर और ब्राह्मण की त्याग- भावना जानकर राजा ने सोचा कि सचमुच ही यह ब्राह्मण महान दानी है तथा इसने एक बहुत ही कठिन कार्य किया है। अतः वह उपहार का पात्र है। राजा ने आदेश दिया कि उस ब्राह्मण को एक वस्त्र भेंट में दिया जाये। बाह्मण ने वस्त्र मिलने पर उस वस्त्र को बुद्ध को भेंट चढ़ा दिया। उसके बाद उस ब्राह्मण को राजा की ओर से दो वस्त्र दिए गए। उसने उन्हें भी शास्ता को समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् एक-एक कर उसे चार, आठ और सोलह वस्त्र दिए गए और उसने उन्हें भी एक-एक कर तथागत को चढ़ा दिया। जब राजा ने 32 वस्त्र दिए तो उसने 30 वस्त्र बुद्ध को दान करके एक वस्त्र अपने लिए और एक अपनी पत्नी के लिए रख लिया ।

राजा प्रसन्न हुआ और उसे लगा कि ब्राह्मण ने सचमुच ही महान त्याग किया है। अतः उसने मखमल की दो बेशकीमती चादरें उसे उपहार स्वरूप दीं । ब्राह्मण ने एक चादर शास्ता की कुटी में मच्छरदानी की तरह छत में तान दी। दूसरी चादर को अपने घर के बाहर बरामदे में तान दी जहाँ भिक्षुगण भिक्षाटन के लिए आकर खड़े होते थे। संध्या बेला में पुनरागमन पर जब राजा ने ब्राह्मण के कीमती चादर को तना देखा तो वह ब्राह्मण के दान से अति प्रसन्न हुआ। उसने ब्राह्मण को "सर्वचतुष्क " दान दे दिया; अर्थात् 7 वस्तुएं 4-4 की मात्रा में - चार हाथी, चार घोड़े, चार पुरुष, चार स्त्रियाँ, चार दासियाँ, चार हजार कार्षापण तथा चार ग्राम।

बाद में भिक्षुओं के धर्म सभा में चर्चा चली कि एकशाटक ब्राह्मण ने छोटा सा दान दिया पर उसके पुण्य से उसे 4-4 वस्तुएँ प्राप्त हो गईं। भिक्षुओं को इसका रहस्य समझाते हुए बुद्ध ने बताया कि मन में जब कभी अच्छे कर्म करने का संकल्प आ जाए तो उसे तुरंत कर देना चाहिए क्योंकि अच्छे संकल्प विरले ही आते हैं। ब्राह्मण ने अगर प्रथम प्रहर में दान दिया होता तो उसे "सर्वषोडशक" पुरस्कार - अर्थात हर चीज 16 की मात्रा में मिलती। अगर उसने द्वितीय प्रहर में दान दिया होता तो उसे प्रत्येक वस्तु 8 की मात्रा में मिलती। चूँकि उसने दान देने में विलंब किया। अतः उसे सिर्फ 4-4 की मात्रा में ही दान मिला। मनुष्य के चित्त में जब भी सत्कर्म करने की इच्छा उठे, उसे तर्क-वितर्क के दाँव-पेंच में नहीं पड़ना चाहिए। तर्क - वितर्क से वह दान हृदय से दिया गया दान नहीं रह जाता। इस कारण वह अल्प फल देता है। इसलिए चंचल चित्त से भ्रमित नहीं होना चाहिए। अगर मन तर्क-वितर्क में लगा रहा तो संभव है मन गलत निर्णय ले ले और इस कारण वह पाप प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाए। अभिप्राय यह है कि जैसे ही सत्कर्म करने की चाह हो, इससे पूर्व कि कोई दूसरा व्यक्ति वह सत्कर्म करे, हमें ही वह सत्कर्म कर देना चाहिए। विलंब की जगह तत्परता दिखानी चाहिए।

सत्कर्म करने में दृढ़ता भी दिखानी चाहिए। मुझे यह करना चाहिए या नहीं, दान देना चाहिए या नहीं जो इस दुविधारूपी कीचड़ में फँस जाता है, उसकी कमजोरी देखकर लोभ रूपी शत्रु उसे चारों ओर से घेर लेता है। उसका मन परास्त होकर लोभ में रम जाता है तथा वह पाप करने को प्रेरित हो जाता है।

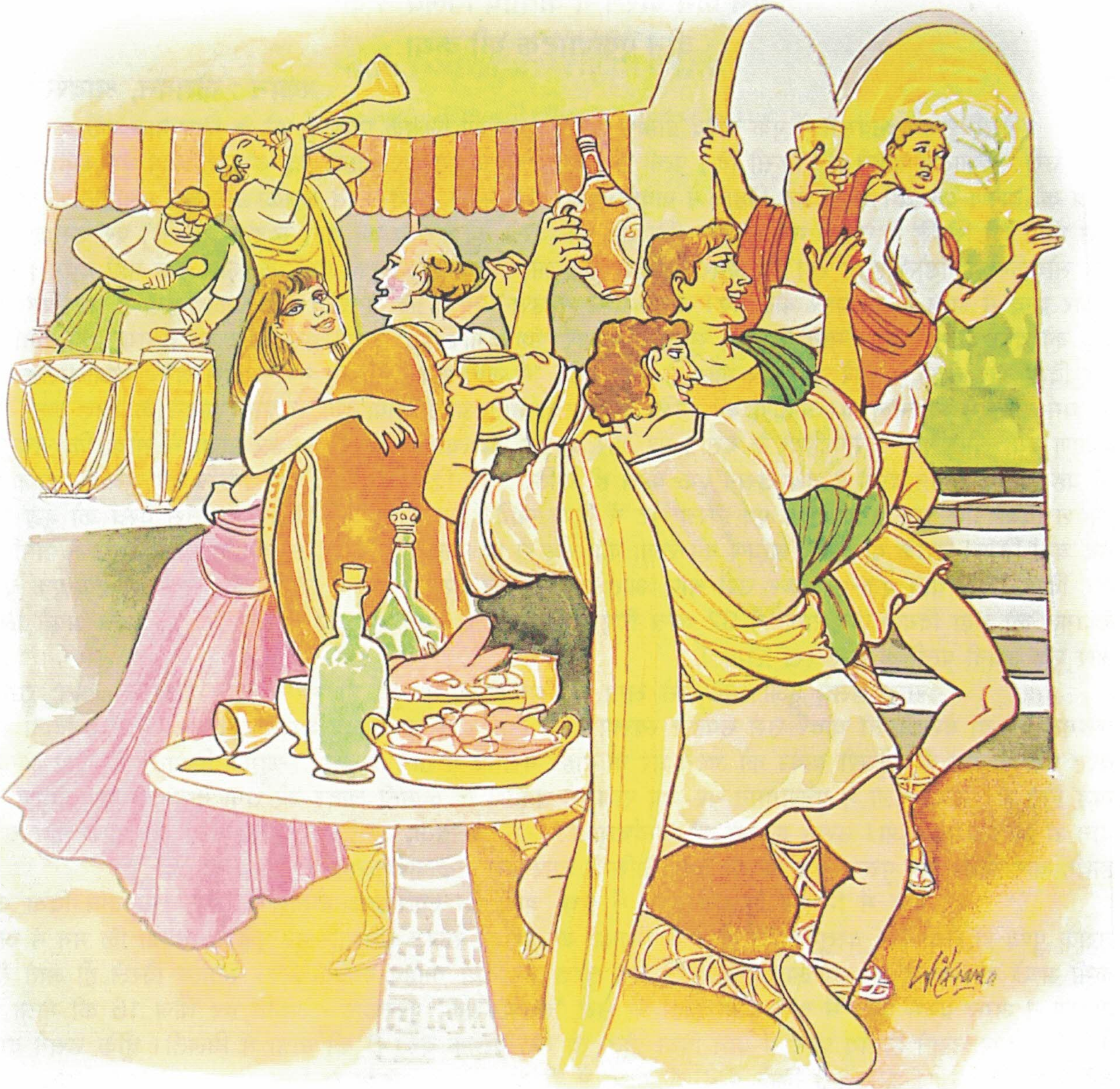

गाथा: पापञ्चे पुरिसो कयिरा, न नं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ, दुक्खो पापस्स उच्चयो ।। 117 ।।

अर्थ: किसी व्यक्ति से कोई गलत काम हो जा सकता है। पर उसे वह गलत काम बार-बार, लगातार, नहीं करना चाहिए । उसे उन गलतियों से आनन्द की अनुभूति नहीं होनी चाहिए। गलतियों का संचयन दु:खदायी होता है ।

पाप का संचय दुखकर होता है
सेय्यसक थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सेय्यसक थेर लालउदायी थेर के समभिक्षु थे। ब्रह्मचर्य के अनुशासन से च्युत होकर उन्होंने कुछ बुरी आदतें पकड़ लीं जो भिक्षु के लिए वर्जित थीं। वे अपने आप को अनैतिक ढंग से उत्तेजित कर लिया करते थे। तथागत को इसकी जानकारी हुई और उन्होंने सेय्यसक को बुलाकर पूछा कि जो कुछ उन्होंने सुना है, क्या वह सच है ? सेय्यसक ने सच्चाई स्वीकार कर ली। तब बुद्ध ने उसे समझाया कि वह मूर्खतापूर्ण काम कर रहा है। किसी भी भिक्षु को ऐसा अनैतिक कार्य नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने उसे ब्रह्मचर्य और विहार के अन्य नियमों के विषय में बताया तथा समझाया कि इस प्रकार के कर्म इस जगत में तथा आने वाले जगत - दोनों में ही दुःख देते हैं ।

शास्ता ने भिक्षुसंघ को यह भी सीख दी कि नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। उसमें ढिलाई नहीं बल्कि सतर्कता बरतनी चाहिए। संभव है सदैव सतर्कता के बाद भी भिक्षु से कभी नियम का उल्लंघन हो जाए। ऐसी परिस्थिति में भी इस बात की सतर्कता बरतनी चाहिए कि गलती से कहीं दोबारा नियम का उल्लंघन न हो जाए।

टिप्पणी: भिक्षु लालउदायी शास्ता के बचपन के मित्र थे। तथागत के परिवार के सदस्यों को त्रिरत्न में प्रविष्ट कराने का श्रेय उन्हें ही जाता है। गृहत्याग के बाद बुद्ध को अपने परिवार के पास प्रथम बार कपिलवस्तु लाने का श्रेय भी उन्हें ही जाता है। सिद्धार्थ के गृहत्याग के बाद राजा ने उन्हें ढूँढने के लिए विभिन्न दिशाओं में अनेक दूत भेजे पर कोई भी सिद्धार्थ के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं ला पाया। इस प्रकार 6 वर्ष बीत गए। तब दो दासियाँ यशोधरा को शुभ समाचार देती हैं कि व्यापारीगण राजकुमार के विषय में सूचना लाए हैं। अंततः भल्लूक और त्रिपुष नाम के दो व्यापरियों ने यशोधरा को सूचना दी कि उन्होंने राजकुमार को राजगृह में देखा है। उन्होंने उन्हें देखा ही नहीं है, उनका चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद भी प्राप्त किया है। "जिसे हम सबों ने एक राजकुमार के रूप में खोया था, उसे लाखों, करोड़ों गुणा अधिक शक्तिशाली महात्मा के रूप में प्राप्त किया है।" यशोधरा के हृदय में उमंगें उसी प्रकार उछलने लगती हैं, जैसे गंगा पहाड़ों से पहली बार धरती पर आकर उछलने लगती है। राजा ने तब राजकुमार के पास अनेक दूतों द्वारा संदेश भेजा पर वे सभी दूत बुद्ध के तेज के सामने सभी संदेश भूल गए तथा प्रवचन सुन संघ में शामिल हो गए। अन्त में राजा ने शास्ता के बचपन के सबसे घनिष्ठ मित्र लालउदायी को यह संदेश देकर भेजा कि जाकर मेरे पुत्र से कह दो कि उनके पिता अपने पुत्र की याद में जीवन की अंतिम सीढ़ी पर खड़े हैं और उनकी आँखें पुत्र की एक झलक पाने को तरस रही हैं। साथ ही यशोधरा ने भी संदेश भेजा कि उनसे कहना कि उनकी पत्नी यशोधरा उनके जाने के बाद एक विधवा की तरह जीवन जी रही है। और अगर उन्हें कुछ प्राप्त हुआ है तो उसे अपने उत्तराधिकारी पुत्र और पत्नी से आकर बाँटें।

लालउदायी भी बौद्ध-विहार में जाकर, वहाँ मुंड मुड़ाकर बौद्ध संघ में शामिल हो गया। पर एक दिन अवसर पाकर उसने शास्ता से कहा कि भिक्षु को सदैव एक ही स्थान पर नहीं रहना चाहिए। अतः सभी को अवसर निकालकर कपिलवस्तु चलना चाहिए। तथागत इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए और लालउदायी से कहा कि उनकी इच्छा भी थी और उनका कर्त्तव्य भी था कि वे कपिलवस्तु चलें। वर्षाकाल की समाप्ति के तत्काल बाद कपिलवस्तु चला जाए। उन्होंने यह भी कहा कि ज्ञान प्राप्ति के बाद किसी को यह अधिकार नहीं बनता कि वह दूसरों पर अपने ज्ञान के गर्व का प्रदर्शन करे। हर व्यक्ति को अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञता का भाव ज्ञापन करना चाहिए क्योंकि माता-पिता के सौजन्य से ही वह शरीर प्राप्त हुआ है, जिससे ज्ञान की प्राप्ति हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्ध का ज्ञान सामान्य जन के लिए भी मार्गदर्शन करता है। वे सैद्धान्तिक बातों के पचड़े में नहीं पड़ते हैं बल्कि व्यावहारिकता के आधार पर ही बातें करते हैं।

गाथा: पुञ्ञंचे पुरिसो कयिरा, कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ, सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ।। 118।।

अर्थ: यदि मनुष्य पुण्य करता है तो उसे पुण्य को बार - बार करना चाहिए । उसे पुण्यकर्म में संलग्न रहना चाहिए क्योंकि पुण्यकर्म का संचय सुखदायी होता है ।

पुण्य का संचय हितकारी होता है
लाजदेव पुत्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजगृह के पिप्पलीगुहा में सात दिनों की साधना के बाद उठने पर महाकाश्यप ने दिव्य चक्षु द्वारा एक स्त्री को खेत में चिउड़ा (लाजा)बनाते हुए देखा। उसके अन्दर विद्यमान श्रद्धा को देख वे भिक्षाटन हेतु उसके पास गए । उस स्त्री ने भिक्षु को भोजनदान देते समय , हृदय से गद्‌गद होकर , प्रार्थना की कि आपके धर्म में मैं भी भागी होऊँ । स्थविर ने उसकी मनोकामना पूर्ति का आशीर्वाद दिया। प्रसन्नचित्त, ध्यानमग्न हो जब वह वापस जा रही थी तो मार्ग में एक सर्प ने उसे डंस लिया। वह मर गई और उसने त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक में जन्म लिया। वहाँ उसे अत्यधिक ऐश्वर्य प्राप्त हुआ जिसे पाकर उसने सोचा कि यह महाकाश्यप के आशीर्वाद से ही प्राप्त हुआ है । अत: मुझे स्थविर की सेवा करनी चाहिए ताकि इस पुण्यप्रताप को चिरस्थायी बना लूँ । ऐसा सोचकर उसने प्रात: काल ही झाड़ू लेकर महास्थविर के निवास स्थान की सफाई कर दी; साथ ही हाथ धोने के लिए जल तथा पीने के जल की भी व्यवस्था कर दी । जब स्थविर ने इसे देखा तो सोचा कि किसी सामनेर ने यह कार्य किया होगा । दूसरे दिन भी आवास की सफाई हुई और उन्होंने फिर वही अनुमान लगाया।तीसरे दिन स्थविर ने झाड़ू लगाने की आवाज सुनी तो आवाज देते हुए पूछा कि कौन झाड़ू लगा रहा है । लाजदेवधीता ने उत्तर दिया,"मैं आपकी शिष्या लाजदेवधीता हूँ।" "पर मेरी तो इस नाम की कोई शिष्या नहीं है", स्थविर ने कहा । तब लाजो ने अपने विषय में बताया कि किस प्रकार उसने स्थविर को दान दिया था , सर्प दंशन से उसकी मृत्यु हुई तथा स्वर्गलोक में उसने जन्म लिया। इसे सुन, स्थविर ने लाजो को चले जाने के लिए कहा । लाजो बहुत दु:खी हुई और आग्रह करती रही पर स्थविर न माने । उन्होंने उसे समझाया कि एक देवपुत्री के लिए महाकाश्यप के यहाँ आकर उनकी निजी सेवा करना उचित नहीं है । लोगों को पता चलेगा और इस पर तरह-तरह की चर्चा होगी । वह रोती हुई बहुत समय तक खड़ी रही ।

बुद्ध गंधकुटीर में विद्यमान थे। लाजो को सांत्वना देने हेतु उसके सम्मुख प्रकट हुए तथा समझाया कि महाकाश्यप का उद्देश्य तुम्हें चोट पहुँचाना नहीं है । उसका उद्देश्य इन्द्रियसंयम है । वह किसी को कुछ भी बोलने का अवसर नहीं देना चाहता । दूसरी ओर तुम्हारा उद्देश्य पुण्य प्राप्त करना है क्योंकि तुम जानती हो कि पुण्य कर्म लोक और परलोक दोनों में ही लाभदायी होता है ।

टिप्पणी: किसी कार्य को बार-बार करने से उसकी आदत पड़ जाती है और वह हमारे व्यक्तित्व का अंग बन जाता है । गाथा 117 में बुद्ध ने सीख दी है कि अगर अन्जाने में कहीं कोई पाप हो जाए तो इंसान को उससे सबक लेनी चाहिए, सावधान हो जाना चाहिए तथा उसकी पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए। प्रथम अध्याय "युग्मवर्ग"की गाथा की तरह बुद्ध यहाँ समझाते हैं कि अगर पुण्य करने का अवसर मिले तो उसकी बार-बार पुनरावृत्ति करनी चाहिए। इस लोक तथा परलोक दोनों में ज्ञानीजन पुण्य की महिमा जानते हैं। अत: पुण्य करने का कोई भी अवसर गँवाना नहीं चाहते, जैसे लाजो स्थविर की सेवा का अवसर गँवाना नहीं चाहती थी ।

अगर हम निरंतर सद्‌कार्य करने की आदत डालें तो निश्यच ही हमारा समाज सुधर जाएगा । कहावत भी है- " करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान, रस्सी आवत जात से, सिल पर पड़त निशान" अर्थात् अभ्यास से ही सब कुछ होता है। अगर हम अच्छी आदतों के बीज बोयेंगे, अच्छे संस्कारों का सृजन करेंगे तो निश्चयत: एक न एक दिन अच्छे और मधुर फल प्राप्त करेंगे। दूसरी ओर अगर बुरी आदतों का बीज बोयेंगे, बुरे संस्कारों का सृजन करेंगे तो निश्चयत: एक न एक दिन बुरे और कड़वे फल प्राप्त करेंगे।

फल कैसा प्राप्त करना है - मीठा या कड़वा; यह पूर्णत: हमारे ऊपर निर्भर करता है। अगर हमने अच्छे या बुरे बीज बोये और उससे तुरंत अच्छे या बुरे फल प्राप्त नहीं हुए तो यह नहीं समझना चाहिए कि हमें अच्छे या बुरे फल प्राप्त नहीं होंगे। अच्छे या बुरे फल, प्राप्त होंगे जरूर, आज हो, कल हो, या हो परसों।

चीन में एक बाँस का पेड़ होता है। जब उसका बीज धरती में बोया जाता है तो पाँच वर्षों तक कोई भी अंकुर बाहर नहीं निकलता मगर पाँचवें वर्ष एकाएक वह बाँस-वृक्ष 10-15 फीट की ऊँचाई तक बढ़ जाता है।

इससे हम किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ? क्या वह बीज 5 वर्षों तक मरा हुआ था ? नहीं, वह पूर्णत: जीवित था। इसी प्रकार यदि हमारे कर्म तत्काल फल नहीं लाते तो यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वे कभी भी फल नहीं लाएंगे। अपना बोया हुआ हम स्वयं काटेंगे - आज, कल या परसों और काटना हमें ही पड़ेगा। कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अत: यह पूर्णत: हमारे हाथ में है कि हम किस प्रकार के भविष्य का सृजन करें।

गाथा: पापोपि पस्सति भद्रं, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथो पापो पापानि पस्सति।। 119।।

अर्थ: पाप कर्म करने वाले को पाप कर्मों में तबतक बुराई नहीं दिखती जबतक उसे उसका परिणाम नहीं मिलने लगता है । जैसे ही पाप का परिणाम मिलने लगता है पाप के फल को भोगने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है ।

पाप पक जाने पर दुःख देने लगता है
अनाथपिंडिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के अनन्य भक्त अनाथपिंडिक ने 54 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से जेतवन विहार का निर्माण कर बुद्ध को समर्पित कर दिया था । वह दिन भर में तीन बार बौद्ध विहार जाया करता था । वह जब भी विहार जाता अपने साथ भिक्षुओं के लिए कुछ न कुछ सामान अवश्य ले जाता ।

समय का क्रम चलता रहता है । सभी समय एक जैसा नहीं रहता । अनाथपिंडिक के साथ भी यही हुआ। अब उसके पास उतना धन नहीं रहा। एक बार बुद्ध ने उससे पूछा कि तुम्हारा दान कैसा चल रहा है । इस पर अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया कि आर्थिक तंगी के कारण अब वह साधारण किस्म की खाद्य सामग्री का ही दान कर पा रहा है । बुद्ध ने उसे हतोत्साहित होने से रोका तथा समझाया कि अगर हृदय में श्रद्धा और पवित्रता हो तो बुद्ध को दिया जाने वाला भोजन-दान कभी साधारण नहीं हो सकता।

एक बार जब बुद्ध और उनके शिष्य अनाथपिंडिक के निवास पर प्रविष्ट हुए तो गृह-देवी ने उन्हें रोकने की कोशिश की, पर वह सफल नहीं हुई। अतः रात्रि बेला में वह श्रेष्ठी के सम्मुख उपस्थित हुई, अपना परिचय दिया और उसे समझाने लगी कि बुद्ध और उनके शिष्यों के ऊपर व्यर्थ में पैसे बरबाद करने से कोई लाभ नहीं है। इससे तो अच्छा है कि आप अपनी बुद्धि व्यापार में लगायें जिससे आपका और आपके परिवार का भी भला हो। अनाथपिंडिक तथागत का अनन्य भक्त था। अतः उसने उस गृह-देवी को स्पष्ट किया कि तुम्हारे जैसे हजारों देवी-देवता मिलकर भी मुझे बुद्ध के मार्ग से च्युत नहीं कर सकते। उस देवी ने चूँकि श्रेष्ठी को ठेस पहुँचाई थी अतः उसने उसे घर से निकाल दिया। उस देवी को अपने बच्चों के साथ घर छोड़ना पड़ा और अब वह घर से बेघर हो गई ।

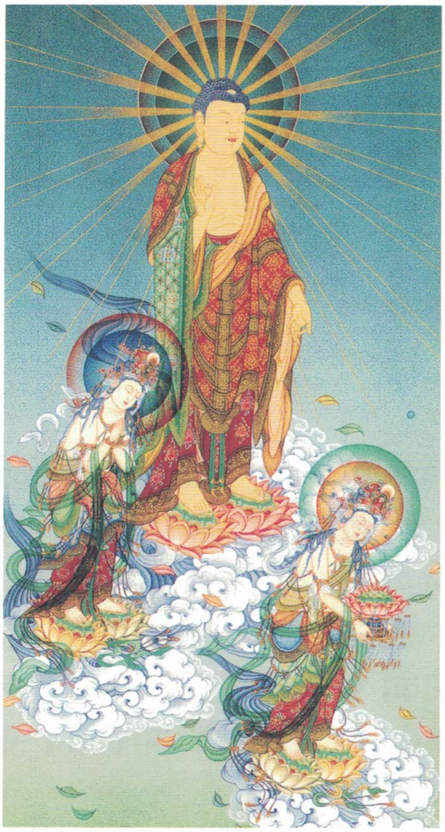

गाथा: भद्रोपि पस्सति पापं, याव भद्रं न पच्चति
यदा च पच्चति भद्रं, अथ भद्रानि पस्सति।।120।।

अर्थ: शुभकर्म करने वाले को वे कर्म तब तक शुभ नहीं लगते जब तक उसे उनका फल नहीं दिखता। जब वह उनका फल देखता है तब उसे लगता है कि वह शुभ कर्म कर रहा था और तब उसे आनन्द की अनुभूति होती है ।

पुण्य पक जाने पर सुख देने लगता है
अनाथपिंडिक की कथा

वह नगर देवता के पास गई पर उसने मदद करने से मना कर दिया। घूमते-घूमते इन्द्र के पास गई और अपना दु:खड़ा रोया। शक्र ने भी बताया कि उसने भयंकर अपराध किया था । किसी में साहस नहीं था कि वह श्रेष्ठी के पास जाकर क्षमा याचना करे। पर शक्र ने एक विधि बताई जिससे वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त कर सकती थी। "तुम श्रेष्ठी के नौकर का रूप धारण करो और अपनी शक्तियों का उपयोग करो । महाजन के कर्जदारों ने 18 करोड़ रूपये ले रखे हैं । उन्हें उनसे वापस लेकर श्रेष्ठी के कोष में रख दो।" देवी ने वैसा ही किया । "18 करोड़ रूपये नदी में बह गए हैं और कहीं पड़े हुए हैं । साथ ही अन्य 18 करोड़ रूपये फलाँ जगह धरती में गड़े हुए हैं। उन्हें भी लाकर श्रेष्ठी के कोष में रख दो।" देवी ने वैसा ही किया और फिर श्रेष्ठी के सम्मुख प्रकट हो अपनी गलती के लिए क्षमा प्रार्थना की। साथ ही यह भी बताया कि श्रेष्ठी के कोष में 54 करोड़ रुपए की मुद्रा रख दी थी । अनाथपिंडिक ने सोचा कि इस देवी ने अपनी गलती पर प्रायश्चित किया है तथा 54 करोड़ रूपये भी कोष में रख दिये हैं । इसके विषय में शास्ता से राय लेनी चाहिए। यह सोचकर वह उस देवी को साथ लेकर बुद्ध के सम्मुख उपस्थित हुआ। वहाँ पहुँचकर देवी से सभी कुछ स्पष्ट करने के लिए कहा। देवी शास्ता के चरणों पर गिर पड़ी और उनके विषय में अपशब्द कहने के लिए उनसे तथा श्रेष्ठी से क्षमा-प्रार्थना करने लगी।

तब तथागत ने दोनों को समझाते हुए बताया कि किस प्रकार भले-बुरे कर्मों का फल मिलता है । कभी-कभी बुरे कर्म का फल तुरंत नहीं मिलता । इसलिए बुरा कर्म करने वाला यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता कि वह बुरे कर्म कर रहा है । लेकिन जैसे ही वह बुरा कर्म परिपक्व हो जाता है तथा फल देने लगता है, उस मनुष्य को महसूस होता है कि बुरे कर्म का फल बुरा होता है । इसी प्रकार अच्छे कर्मों का फल भी तुरंत दृष्टिगत नहीं होता। इस कारण कर्त्ता को अच्छे और बुरे कर्मों में भेद पता नहीं चलता और वह अच्छे कर्म करने के प्रति प्रोत्साहित नहीं होता। लेकिन जैसे ही अच्छे कर्मों का फल मिलने लगता है , उसे प्रसन्नता की अनुभूति होने लगती है।

टिप्पणी: अनाथपिंडिक एक महान दानी था। वह "अनाथों को भोजन कराने वाला" के रूप जाना जाता था । अत: उसका नाम "अनाथपिंडिक" पड़ गया था ।

गाथा: माप्पमञ्ञेथ पापस्स, न मं तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भो पि पूरति ।
बालो पूरति पापस्स, थोकं थोकम्मि आचिनं ।।121।।

अर्थ: यह पाप छोटा है इससे क्या नुकसान होगा। यह सोचकर समझदार आदमी को छोटे पाप की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जैसे जल की एक-एक बूंदे गिरने से घड़ा भर जाता है उसी प्रकार छोटा-छोटा पाप भी मिलकर एक दिन विशाल पाप समूह बन जाता है

पाप जमा होते-होते विशाल पुंज हो जाता है
असंयत भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बौद्ध विहार में एक भिक्षु छोटी-छोटी गलतियों पर ध्यान नहीं देता था। उदाहरण के लिए वह लकड़ी के बने मंचपीठ या अन्य सामग्री का इस्तेमाल करता था और उसे फिर सही स्थान पर नहीं रखता था। इस कारण वे वस्तुएं धूप तथा वर्षा में बाहर ही पड़ी रहती थीं तथा उन्हें दीमक खा जाते थे। अन्य भिक्षुओं ने उसकी लापरवाही देखकर उसे समझाने की कोशिश की पर वह समझने को तैयार नहीं था। अंततः बात शास्ता तक गई। शास्ता ने उस नवयुवक भिक्षु से पूछा की वह ऐसा क्यों कर रहा था। प्रत्युत्तर में युवक ने बताया कि उसका उद्देश्य सामान को बरबाद करना नहीं था। अगर मंचपीठ खुले में छोड़ दिया जाता था तो आखिर उसी दिन, उसी समय तो वह खराब नहीं हो जाता था और यह एक साधारण सी बात थी।

बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि जीवन में छोटी-छोटी चीजों पर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। छोटी-छोटी चीजें ही मिलकर बड़ी हो जाती हैं। समझदार व्यक्ति को छोटी-छोटी गलतियों की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए अगर हम एक घड़े को बारिश में बाहर रख दें तो वह तुरंत पानी की बूँदों नहीं से भर जाता। पर वही घड़ा अगर बाहर छोड़ दिया जाए तो कुछ समय बाद वह वर्षा की बूँदों से पूरी तरह भरकर लबालब हो जाता है।

मूर्ख व्यक्ति प्रमाद करते समय समझता है कि उसने जल के एक बूँद के समान प्रमाद किया है। वह प्रमाद एक बूँद के समान हो सकता है,पर लगातार किया गया प्रमाद अंततः बूँद भरे घड़े के समान हो जाता है। वह मूर्ख अपने लिए पापसमूह एकत्र कर लेता है। पाप के रूप में किया गया एक छोटा सा कार्य अंततः एक विशाल राशि में परिणत हो जाता है।

टिप्पणी : कोई भी बड़ा अपराधी एक दिन में पैदा नहीं होता। एक चोर को किसी कचहरी में चोरी की सजा सुनाई जा रही थी तब उसने जज से कहा कि उसके साथ-साथ उसके माता-पिता को भी सजा मिलनी चाहिए। जज द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि बचपन में जब उसने पहली बार पेंसिल चोरी की थी तो उसके माता-पिता ने उसे नहीं रोका था और इस प्रकार वह एक के बाद एक बड़ा अपराध करता गया।

पर्वत क्या है ? एक-एक राई के असंख्य कणों के समूह के अतिरिक्त क्या है ? अगर वे एक-एक कण न होते तो पर्वत कैसे होता ? उसी प्रकार बड़े पाप का समूह कैसे बन पाएगा अगर दिन-प्रतिदिन पाप नहीं किया जाएगा ?

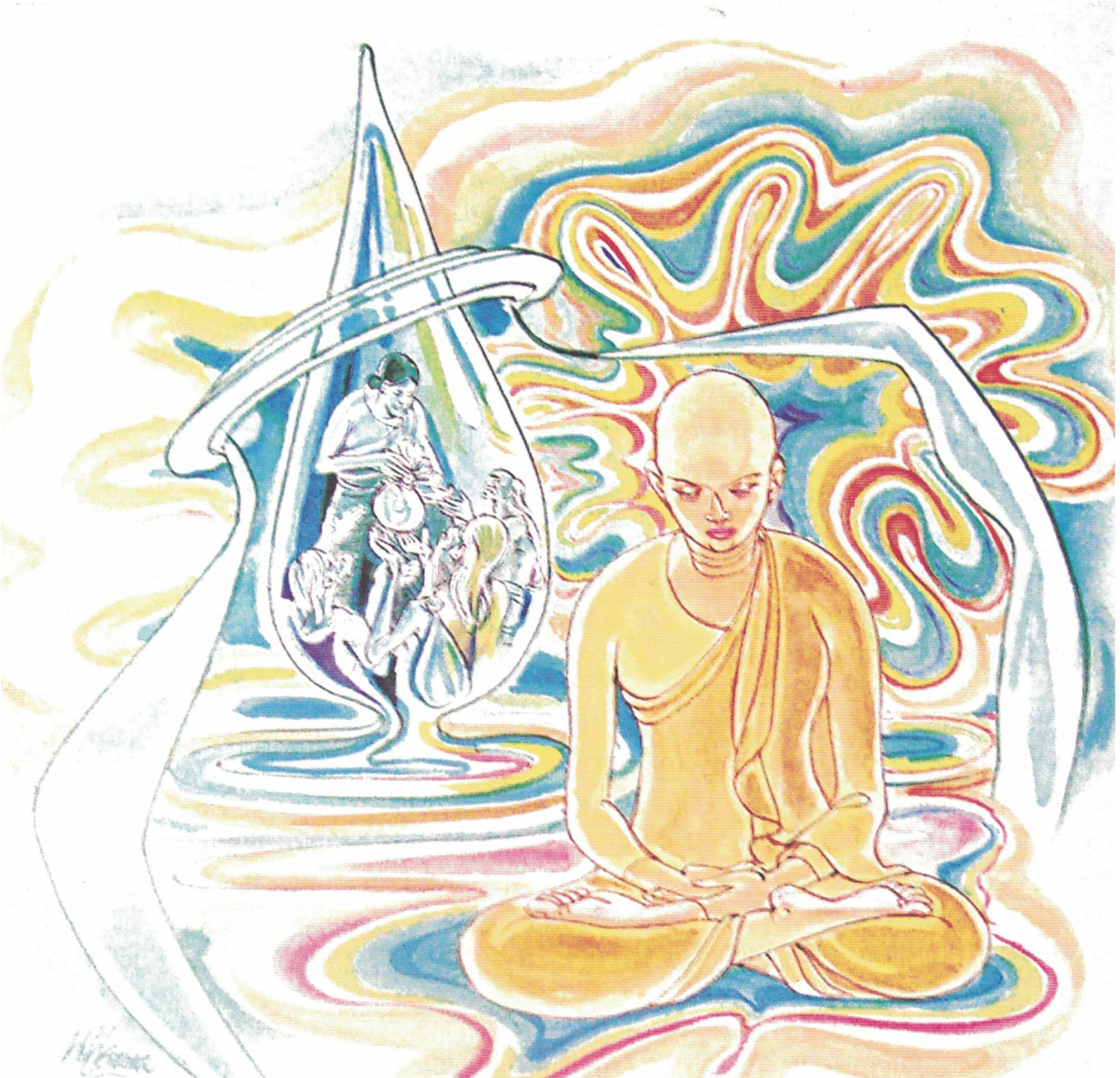

गाथा: मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स, न मं तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरित ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं ।।122।।

अर्थ: बुद्धिमान व्यक्ति को अपने अल्प पुण्य को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए कि इससे क्या फल मिलेगा ? जैसे बूँद-बूँद से ही घड़ा भर जाता है वैसे ही समझदार व्यक्ति अल्प-अल्प पुण्य करके अपार पुण्यराशि का संचय कर लेता हे ।

पुण्य करने में कृपणता न करें
विडालपादक श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी दिन जेतवन विहार में बुद्ध ने भिक्षुसंघ को प्रवचन दिया कि मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं भी दान दे तथा परिवार वालों को भी दान देने के लिए प्रेरित करे। ऐसा करके वह आने वाले जन्मों में स्वयं पुण्यफल प्राप्त करेगा और उसके परिवार वाले भी पुण्यफल प्राप्त करेंगे।

प्रवचन से प्रेरित होकर एक सद्पुरुष ने शास्ता को भिक्षुसंघ के साथ भोजन के लिए आमंत्रित किया । व्यवस्था हेतु गाँव में जा घोषणा की कि उसने सम्पूर्ण भिक्षुसंघ को भोजन हेतु निमंत्रित किया है। अतः हर व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दे ।

दान लेने की प्रक्रिया में वह व्यक्ति एक दुकानदार के पास भी गया । उस दुकानदार ने सिर्फ तीन अंगुलियों से चावल, मूँग तथा उड़द उठाकर दान में दिए । घी और मधु भी अलग से दो-दो बूँद दे दिया । साथ ही यह भी कहा कि मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भिक्षुओं को भिक्षादान दिया है । उपासक ने भी दी गई दान की वस्तुओं को अलग रख दिया । इससे दुकानदार को संदेह हुआ कि निश्चय ही यह आयोजक मेरी निंदा करना चाहता है । अतः दान दी गई वस्तु को उसने अलग रख दिया है । वस्तुस्थिति जानने के लिए उसने अपने नौकर को उस आयोजक के पीछे लगा दिया ।

नौकर ने आयोजक के घर जाकर देखा कि उसने दान में प्राप्त सभी वस्तुओं को एक में मिला दिया और भावना व्यक्त की कि श्रेष्ठी को भी इसका फल मिले । दाता को इससे संतोष न हुआ और उसने अपने वस्त्र में एक चाकू छुपा लिया और दर्शकों की श्रेणी में जा बैठा कि अगर उसने मेरी थोड़ी सी भी निंदा की तो मैं उसे छूरी मार दूँगा ।

शास्ता और भिक्षुसंघ को भोजन परोसने के बाद उपासक ने तथागत से निवेदन किया, "इस नगर के सभी निवासियों ने अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार दान दिया है । उन सभी नागरिकों को उनके दान का पुण्य प्रताप मिले।" ऐसा सुनकर उस कृपण श्रेष्ठी ने सोचा कि उपासक मेरे विषय में निंदा की कोई बात नहीं कर रहा है । वरन् यह मेरे लिए भी पुण्य की याचना कर रहा है । इसके विपरीत मेरे हृदय में इसके प्रति प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही है । अतः मैं अगर उससे क्षमा याचना नहीं करूँगा तो मुझे नरक में जाना पड़ेगा । ऐसा सोचकर वह उपासक के चरणों पर गिरकर माफी माँगने लगा ।

इस घटना को देखकर बुद्ध ने दानदाता से जानकारी प्राप्त की और फिर उन दोनों एवं भिक्षुसंघ को सम्बोधित करते हुए कहा, "पुण्य करने में मनुष्य को कृपणता नहीं करनी चाहिए। यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि यह तो छोटा पुण्य है । इसे करने से क्या लाभ ? छोटे-छोटे पुण्य ही विशाल पुण्यपुंज में परिणत हो जाते हैं। जैसे वर्षा के एक बूँद का महत्व नहीं दिखता है पर वर्षा की बूँदें जब लगातार घड़े में पड़ती हैं तो घड़ा भर जाता है । अतः किसी भी पुण्य को "थोड़ा " या "अधिक" से मापना उचित नहीं है । थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, मनुष्य को लगातार पुण्य-लाभ करते रहना चाहिए ।

टिप्पणी : संसार में क्या हमने कभी किसी को एक बार में ही करोड़पति या अरबपति बनते हुए देखा सुना है ? जो व्यक्ति आज करोड़पति है उसने कभी न कभी भूतकाल में एक रूपये से बचत की प्रक्रिया प्रारंभ की होगी । एक-एक रूपया मिलकर करोड़ बनता है । अतः पुण्य, दूसरों की भलाई, का काम अगर छोटे-से-छोटा भी हो तो उससे चित्त नहीं हटाना चाहिए और उसे तत्काल सम्पादित कर देना चाहिए ।

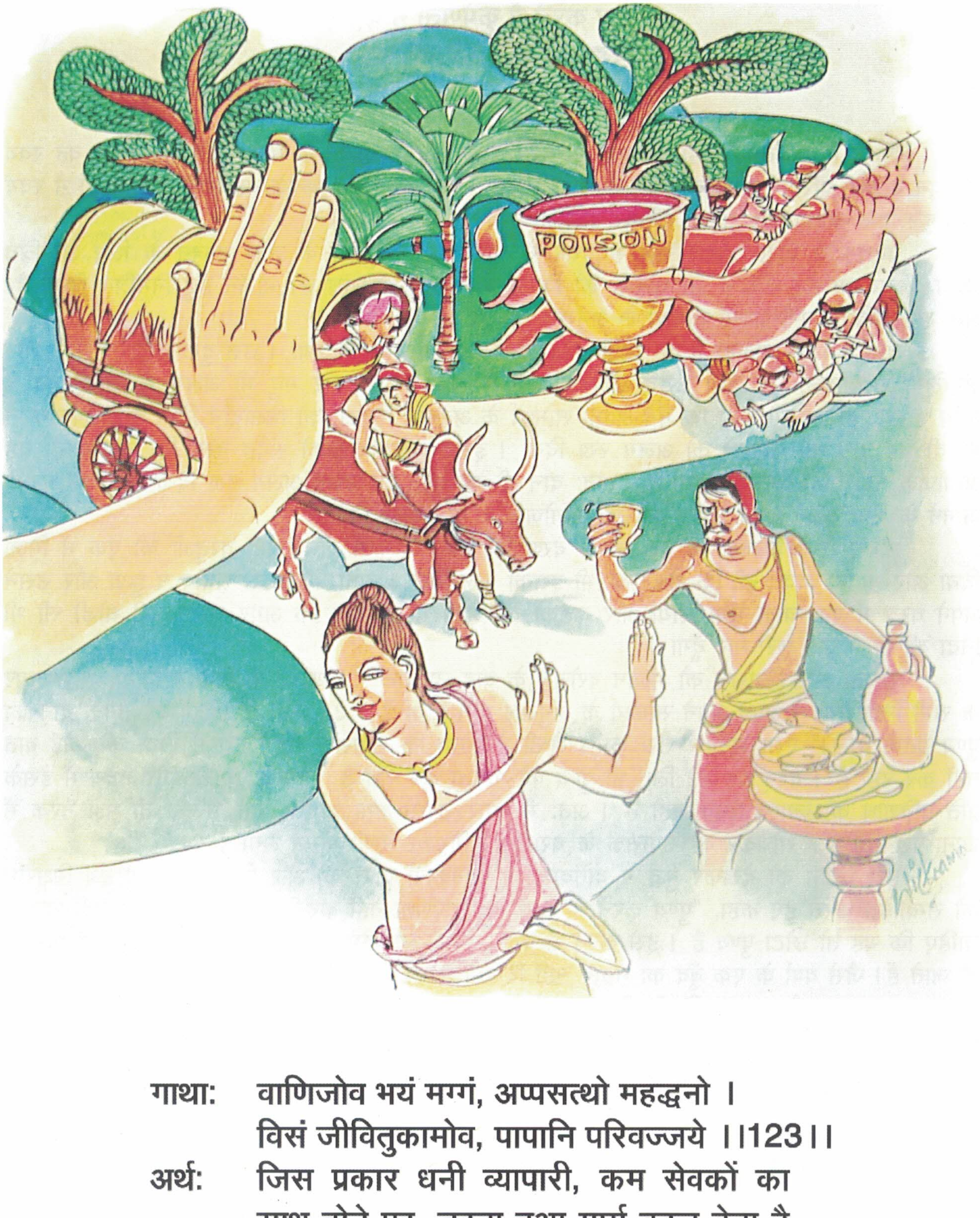

गाथा: वाणिजोव भयं मग्गं, अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामोव, पापानि परिवज्जये ।।123।।

अर्थ: जिस प्रकार धनी व्यापारी, कम सेवकों का साथ होने पर, डरता हुआ मार्ग बदल देता है उसी प्रकार समझदार व्यक्ति पापों को विष के समान समझकर त्याग देता है ।

पापों को विष समान जान, त्याग दें
महाधनिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक महाधनिक व्यापार करने हेतु 500 गाड़ियों के काफिले के साथ यात्रा पर जाने वाला था । उसने भिक्षुओं से भी आग्रह किया कि वे साथ चलें । रास्ते में वह भोजनादि की व्यवस्था कर देगा जिससे उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । अत: पाँच सौ भिक्षु भी उसके साथ हो लिए । रास्ते में एक जंगल पड़ता था । जंगल में प्रवेश के पहले वह व्यापारी बैलों को विश्राम देने हेतु 2-3 दिन रूक गया । भिक्षुओं को वह भोजनादि देता रहा । उधर 500 चोरों का एक समूह भी वन में छिपकर व्यापारी की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह आवे और वे उसे लूट लें । जब विलंब होने लगा तब चोरों ने अपने एक सहायक को गाँव में पता लगाने के लिए भेजा कि विलंब क्यों हो रहा है और व्यापारी आगे की यात्रा कब प्रारंभ करेगा ? उस दूत ने गाँव में जाकर व्यापारी के सहायक से पूछना प्रारंभ कर दिया कि आगे की यात्रा कब होगी ? सहायक ने उसे बता दिया कि आगे की यात्रा 2-3 दिनों बाद होगी । उसके प्रश्न करने पर कि वह ऐसा क्यों पूछ रहा था, चोर ने उस सहायक को सच्ची बात बता दी कि चोरों का एक समूह व्यापारी को लूटने के लिए वन में इंतजार कर रहा था । तब उस सहायक ने चोर से कहा कि चोरों को जाकर बता दो कि व्यापारी शीघ्र ही यात्रा पर निकलेगा । इधर व्यापारी का सहायक दुविधा में पड़ सोचने लगा कि मैं चोरों का साथ दूँ या व्यापारी का। अंत में उसने निर्णय लिया कि व्यापारी तो भिक्षुओं को भोजन दान भी दे रहा है और इस प्रकार सत्कर्म में संलग्न है । अत: उसने अपने स्वामी का साथ दिया और सच-सच बात बता दी । सच्चाई जानकार व्यापारी ने सोचा कि अब मुझे आगे जाने से क्या लाभ ? अब मैं घर ही लौट जाता हूँ । चोरों को पता चल गया कि अब वह घर लौटने वाला है। अत: उस मार्ग पर लूटने की तैयारी करने लगे । इधर व्यापारी को पुन: उनकी योजना का पता चल गया । अत: व्यापारी ने भी वापस जाने का इरादा छोड़ दिया तथा भिक्षुसंघ से आग्रह किया कि वे अगर रूकना चाहें तो रूक जाएं; अन्यथा जाना चाहें तो चले जाएं।भिक्षुगण वहाँ से प्रस्थान कर गए। श्रावस्ती आकर शास्ता को प्रणाम कर वहाँ बैठ गए । उन्होंने तथागत को संपूर्ण कथा सुना दी ।

बुद्ध ने उन्हें बताया कि जैसे महाधनी व्यापारी चोरों के भय से अपना मार्ग बदल देता है, जीवन जीने की चाह वाला व्यक्ति हलाहल विष त्याग देता है उसी प्रकार भिक्षु को भी पापकर्म का त्याग कर देना चाहिए।

टिप्पणी: महाधनी व्यापारी जब चोरों का सामना करने की स्थिति में नहीं रहता है तब वह खतरनाक रास्तों पर नहीं जाता क्योंकि उनमें उसे लूट लिए जाने का डर रहता है। जैसे जीवित रहने की चाह वाला व्यक्ति हलाहल विष से दूर रहता है, उसी प्रकार जीवन में कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को संकटमय मार्ग तथा हलाहल विष की तरह पापों का भी त्याग कर देना चाहिए । अगली गाथा का संदेश भी हलाहल विष के माध्यम से ही दिया गया है ।

गाथा: पाणिम्हि चे वणो नास्स, हरेय्य पाणिना विसं
नाब्वणं विसमन्वेति, नत्थि पापं अकुब्बतो ।।124।।

अर्थ: यदि हाथ में घाव नहीं हो तो उस हाथ में विष लेने पर भी कोई असर नहीं पहुँचता; वह विष कोई असर नहीं डालता । इसी प्रकार पाप न करने की वृतिवाले जन को पाप नहीं लगता ।

कुशल चित्त को पाप कर्म प्रभावित नहीं करते
कुक्कुटमित्र निषाद की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में एक युवती अपने माता-पिता के साथ रहती थी । एक दिन उसे एक शिकारी दिख गया और वह उसे वह अपना हृदय दे बैठी । वह चुपके से अपने घर से निकल गई, उस निषाद का अनुसरण किया, दोनों ने विवाह कर लिया और साथ-साथ रहने लगे । बाद में उन्हें सात पुत्र हुए । समय के अन्तराल से उन्होंने उन पुत्रों का विवाह भी कर दिया ।

एक दिन शास्ता ने अपने ज्ञान चक्षु से देखा कि वह व्याध अपने परिवार के साथ आध्यात्मिक कल्याण की मन:स्थिति प्राप्त करने के निकट है। अत: बुद्ध प्रात:काल ही विहार से निकल गए और जंगल में वहाँ पहुँच गए जहाँ शिकारी ने जाल बिछा रखा था । वे जाल के पास ही एक झाड़ी में ध्यानमुद्रा में बैठ गये । थोड़ी देर के बाद शिकारी आया । अपने जाल में किसी शिकार को फँसा हुआ नहीं देखा । पास ही उसने कुछ पदचिन्ह देखा और उनका अनुसरण करता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ बुद्ध ध्यानस्थ थे। उन्हें देखकर उसने सोचा कि इन्होंने ही संभवत: जाल में फंसे मृग को स्वच्छन्द कर दिया है या उसे फँसने नहीं दिया है । ऐसा सोच वह क्रोध से बुद्ध के ऊपर तीर चलाने के लिए आतुर हुआ । पर जैसे ही वह धनुष से वाण खींचकर उसे छोड़ने जा रहा था, वह मूर्तिवत हो गया । उधर घर आने में विलंब होता देख माता ने पुत्र को पिता को ढूँढ़ने के लिए भेजा । पिता को मूर्तिवत्त एवं शास्ता को वहीं ध्यानस्थ देखकर निषाद पुत्र ने भी क्रोध किया और सोचा कि तथागत के कारण ही उसके पिता की यह गति हुई होगी। ऐसा सोचकर उसने भी उन्हें दंड देने हेतु वाण ताना । पर वह भी पिता की तरह स्थिर हो गया । फिर एक-एक करके सभी पुत्र पिता को देखने आए और स्थितप्रज्ञ हो गए । अंत में माता ने सोचा कि उसे जाकर देखना चाहिए । जैसे ही उसने अपने पति और पुत्रों को मूर्तिवत और वहीं पर शास्ता को ध्यानस्थ देखा, वह जोर से चिल्ला उठी, "रूको ! रूको ! मेरे पिता को मत मारो।" ऐसा सुनकर पति ने सोचा कि अरे ये तो मेरे श्वसुर हैं : इसी तरह पुत्रों ने भी सोचा कि ये तो मेरे नानाजी हैं; ऐसा होते ही उनके हदय में करूणा और मैत्री की धारा प्रवाहित होने लगी । बुद्ध ने सोचा कि यही अवसर है जब उन्हें उपदेश ग्राह्य होगा । निषाद सपरिवार तथागत के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा उनसे क्षमा माँगी । बुद्ध ने उन्हें धर्मोपदेश दिया और वे सभी स्त्रोतापन्न हो गए । निषाद की पत्नी पहले से ही स्त्रोतापन्न थी ।

उधर भिक्षाटन कर बुद्ध जब विहार में पधारे तो उन्होंने आनन्द को प्रात:काल की घटना से अवगत कराया । फिर धर्मसभा में चर्चा चली कि शिकारी की पत्नी प्रतिदिन उसे शिकार के काम में सहयोग करती थी । धनुष, वाण, भाला, जाल आदि लाकर अपने पति को देती थी और इस प्रकार उसके हिंसक कार्यों में सहायिका थी । प्रश्न उठा कि क्या स्त्रोतापन्न भी हिंसा करते हैं ? इस प्रश्न का समाधान देते हुए बुद्ध ने समझाया कि स्त्रोतापन्न हिंसा नहीं करते हैं । वह मात्र अपने पति की आज्ञा का पालन करती थी । उसका चित्त अकुशल नहीं था कि वह जंगल में जाकर पशु -वध करे । शिकार के साधनों को देते समय उसके हदय में उन पशु-पक्षियों के प्रति कोई हिंसा की भावना नहीं होती थी । उसके मन में यह भी नहीं होता था कि उसका पति इन साधनों की मदद से जंगल जाकर पशु-पक्षियों का वध करे ।

जैसे हाथ में घाव न हो तो आदमी उस हाथ से अगर जहर उठा भी ले तो वह जहर कोई असर नहीं करता, उसी प्रकार कुशल चित्त को पाप कर्म प्रभावित नहीं करते । चूँकि उस महिला का चित्त कुशल था, उसमें अकुशल बातें नहीं उठती थीं, अत: धनुष-वाण एवं अन्य अस्त्र-शस्त्र देकर भी उस महिला ने अपने लिए बुरे कर्मों का सृजन नहीं किया ।

टिप्पणी : बुद्ध ने मन की स्थिति पर सबसे अधिक जोर दिया है । मन की स्थिति कुशल है या अकुशल-इसी से निर्धारण होता है कि वह सद्कर्म का सृजन करेगा या बुरे कर्म का।

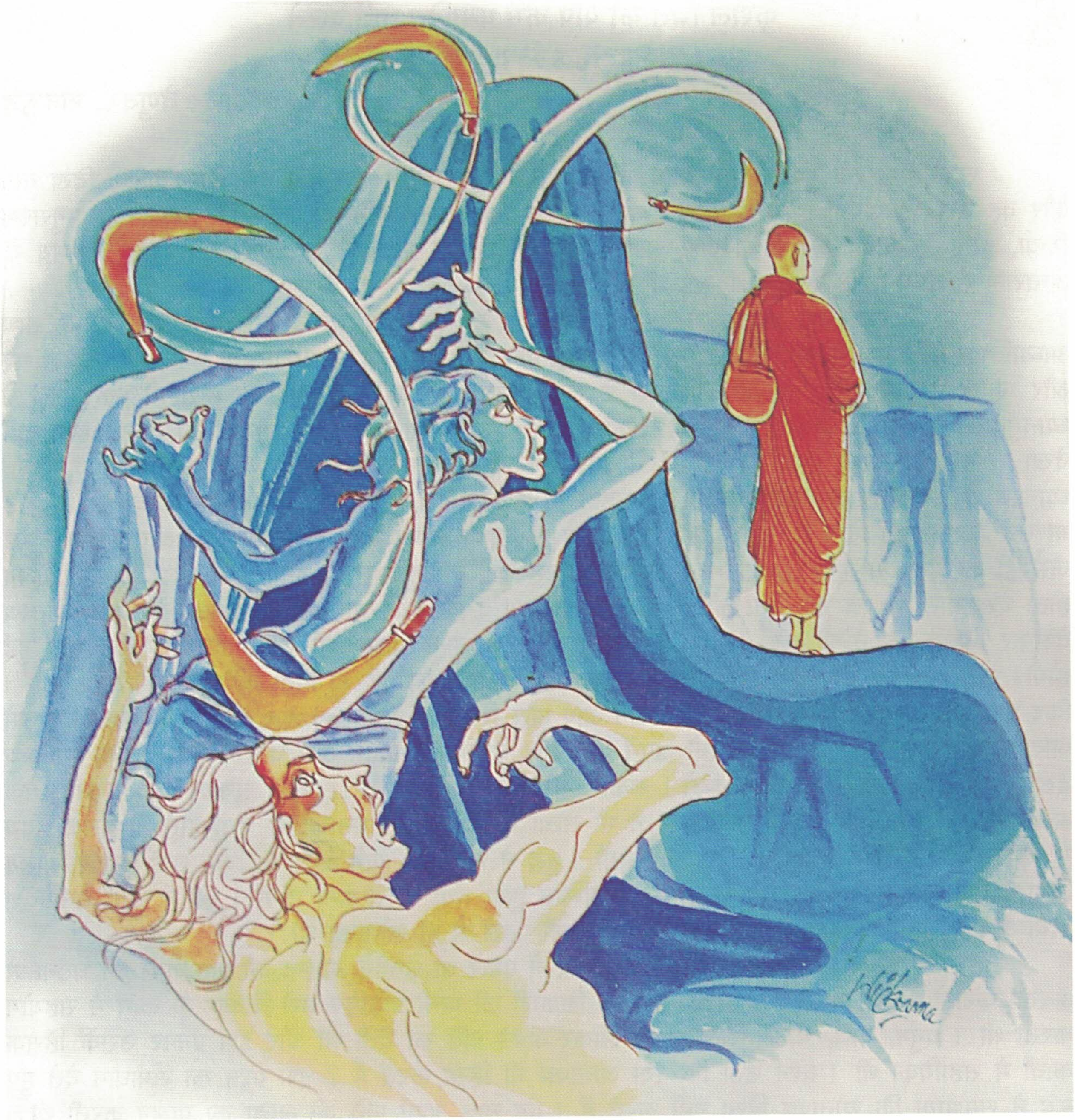

गाथा: यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातंव खितो ।।125।।

अर्थ: जो मूर्ख निर्दोष एवं पवित्र व्यक्ति पर दोष लगाता है,
वह दोष उसी मूर्ख व्यक्ति को आकर नुकसान पहुँचा
देती है जैसे हवा के विपरीत दिशा में धूल फेंकने पर
वह धूल फेंकने वाले के ऊपर ही आकर गिर जाती है।

पाप न करें, यह आपका ही नुकसान करेगा
कोक लुब्धक एवं भिक्षु की कथा

स्थान :जेतवन, श्रावस्ती

कोक लुब्धक नामक एक शिकारी अपने कुत्तों की मदद से शिकार किया करता था। एक दिन जब वह शिकार के लिए निकला तो रास्ते में उसे एक भिक्षु दिख गया। भिक्षु को देखते ही उसके मन में क्रोध पूर्ण विचार आया कि आज इस भिक्षु को देखा है, आज शिकार में कुछ नहीं मिलेगा। संयोग की बात हुई कि उस दिन सचमुच शिकारी को शिकार में कुछ नहीं मिला। संध्या बेला जब वह शिकार से वापस आ रहा था तो संयोगवश उसे पुनः वह भिक्षु दिख गया। अब तो उसके क्रोध का पारावार ही नहीं रहा। उसने सोचा कि सुबह-सुबह इस भिक्षु के दर्शन के कारण ही मुझे आज शिकार में कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा सोचकर उसने भिक्षु को मारने के लिए उसके पीछे अपने कुत्तों को छोड़ दिया। भय से त्रस्त होकर भिक्षु पास के एक वृक्ष पर चढ़ने लगा, किन्तु शिकारी ने उसे नहीं छोड़ा। वह उसके पैर में तीर चुभोने लगा। भिक्षु को असीम पीड़ा होने लगी और अपने को बचाने के लिए वह इधर-उधर हिलने लगा। इस प्रक्रिया में उसका चीवर गिर गया और शिकारी उससे ढँक गया। कुत्तों ने समझा कि भिक्षु नीचे आ गिरा है। अतः वे उसपर टूट पड़े। भिक्षु को समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। अतः उसने पेड़ की एक सूखी डाल को तोड़कर नीचे की ओर फेंक दिया। तब कुत्तों को समझ में आया कि उन्होंने अपने मालिक पर ही आक्रमण कर दिया था। भौंकते हुए वे जंगल की ओर भाग गए।

भिक्षु नीचे उतरा तो उसने देखा कि लुब्धक के प्राण-पखेरू उड़ गए थे। उसे बहुत दुःख हुआ कि उसके चीवर से ढँक जाने के कारण ही शिकारी की मृत्यु हुई थी। अपने को दोषी मानता हुआ वह बुद्ध के सम्मुख प्रस्तुत हुआ तथा घटना क्रम बताया।

बुद्ध ने उसकी शंका का समाधान करते हुए बताया कि वह निर्दोष है। उसका शील भी भंग नहीं हुआ है। गलती शिकारी की थी। उसे वैसा नहीं करना चाहिए था। अपने दुष्कर्म के कारण ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। बुद्ध ने यह भी स्पष्ट किया कि पूर्व जन्म में भी कोक ने निरपराधी को दुःख पहुँचाने की प्रक्रिया में स्वयं को आघात पहुँचाया था।

टिप्पणी : अगर हम आकाश की ओर थूकेंगे तो थूक आकाश का कुछ नहीं बिगाड़ेगा। हाँ, वह थूक उस आदमी पर ही वापस आकर गिरेगा। अगर हम कीचड़ में पत्थर फेकेंगे तो कीचड़ हमारे ही वस्त्रों में लग जाएगा और उसे मलीन कर देगा।

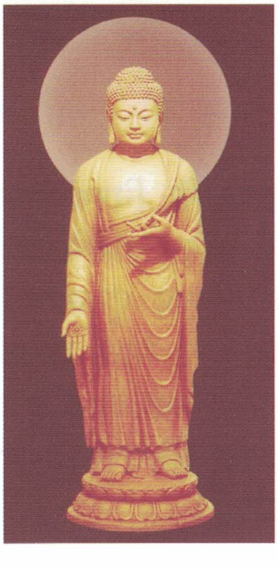

गाथा: गब्भमेके उप्पज्जन्ति, निरयं पापकम्मिनो ।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा ।।126।।

अर्थ: कर्मों के आधार पर पुनर्जन्म होता है। संसार के साधारण प्राणी पुन: माता के कोख में जन्म लेते हैं। पाप करने वाले नरक जाते हैं तथा पुण्य करने वाले स्वर्ग। धर्मसाधक क्षीणास्रव स्थिति प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

सभी सर्वत्र अपना ही कर्मफल पाते हैं
मणिकार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक स्थविर एक मणिकार के यहाँ से अनेक वर्षों से भिक्षाटन कर रहा था। एक दिन मणिकार घर में माँस काट रहा था। उसके हाथ में खून लगा हुआ था । तभी राजा प्रसेनजीत के सिपाही एक मणि लेकर आए और तत्काल उसे पालिश करने के लिए कहा। मणिकार ने उसे हाथ में लिया तो मणि में खून लग गया। उसने मणि को मेज पर रखा और स्वयं हाथ धोने चला गया। इस बीच उसका एक पालतू क्रौंच पक्षी आया और उसने रक्तयुक्त मणि को देखकर समझा कि वह माँस है। अतः उसे निगल गया। जब मणिकार बाहर आया और उसने मणि नहीं देखी तो उसने अपनी पत्नी और बेटे आदि से पूछा; सबों ने कहा कि उन्होंने मणि नहीं लिया है। भन्ते से भी पूछा तो उन्होंने भी उत्तर दिया कि उन्होंने मणि नहीं उठाई थी। लेकिन इससे मणिकार संतुष्ट नहीं हुआ। उसने सोचा कि मेरे परिवार वालों ने मणि नहीं उठाया है और यहाँ अन्य कोई नहीं आया है। अतः उसने निष्कर्ष निकाला कि भिक्षु ने ही मणि लिया है। उसने इस विषय पर पत्नी से मंत्रणा की। पत्नी ने कहा कि भिक्षु हमारे घर वर्षों से आते रहे हैं और उन्होंने सदा हमारा कुशल चाहा है। अतः राजदंड स्वीकार है पर भन्ते पर संदेह करना अनुचित होगा। पर मणिकार नहीं माना और उसने भिक्षु को रस्सी से बांध दिया और खूब पिटाई की जिससे उसके शरीर से खून निकलने लगा। खून को पीने वह पालतू क्रौंच पक्षी फिर आ गया। मणिकार क्रोध में था, उसने ऐसी लात मारी कि पक्षी वहीं मर गया। भिक्षु यह सब देख रहा था। उसने मणिकार से प्रश्न किया कि क्या पक्षी मर गया। मणिकार क्रुद्ध तो था ही, उसने गुस्से में जोर से डाँटते हुए कहा, "हाँ मर गया है और तुम्हारी गति भी इसी प्रकार होगी।" जब भिक्षु को लगा कि पक्षी मर गया है तब उसने मणिकार को बताया कि इसी पक्षी ने मणि निगल लिया था। मणिकार ने उस पक्षी का पेट फाड़ा तो उसे मणि मिल गई। अब तो वह डर से काँपने लगा। वह भिक्षु के चरणों पर गिर गया और क्षमायाचना करने लगा। भिक्षु ने उसे बताया कि उसने उसे माफ कर दिया । इसमें उसका कोई दोष नहीं था, वह तो पूर्व जन्मों का फल था। मणिकार ने भिक्षु से कहा कि अगर भिक्षु ने उसे माफ कर दिया हो तो वह पहले की तरह ही भोजन दान हेतु आया करे। भिक्षु ने मणिकार को समझाया कि ऐसा नहीं हो सकता । भिक्षु को किसी भी गृहस्थ के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उसके घर में प्रवेश का ही नतीजा था कि उसकी यह दुर्गति हुई । ऐसा कहते हुए भिक्षु के प्राण निकल गए।

बुद्ध के यहाँ जब धर्मचर्या हुई तब चर्चा हुई कि किसने कहाँ जन्म लिया। मणिकार नरक में गया, अर्हत भिक्षु परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ, पत्नी देव लोक गई तथा पक्षी का मणिकार के पुत्र के रूप में जन्म हुआ।

टिप्पणी: भिक्षु ने पक्षी के मरने के बाद ही मणि का रहस्य क्यों बताया ? अगर भिक्षु ने मणि का रहस्य पहले ही खोल दिया होता तो मणि को प्राप्त करने के लिए मणिकार उस पक्षी का पेट फाड़ देता और उसकी मृत्यु हो जाती। भिक्षु अर्हत् था। वह अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठ चुका था। उसने मणि का राज नहीं खोला तो क्या हुआ? मणिकार ने उसकी पिटाई की और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

साधारण व्यक्ति और अर्हत में क्या अन्तर है ? साधारण व्यक्ति मात्र अपने लिए जीता है जैसा भिक्षु और मणिकार की कहानी से स्पष्ट है। अर्हत् "स्व" से ऊपर उठ गया होता है।

गाथा: न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थाट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ।।127।।

अर्थ: समुद्र, आकाश, पर्वत, गुफा - इस लोक में कोई ऐसा
स्थल नहीं है जहाँ छिपकर बैठने से अपने कर्मफल से
बचा जा सके।

पाप कर्म कर फल से नहीं बच पावोगे
तीन भिक्षु समूहों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक भिक्षु समूह भिक्षाटन कर विहार वापस लौट रहा था। रास्ते में एक जगह प्रचंड आग लगी हुई थी। भिक्षुओं के देखते-देखते एक कौआ उड़ता हुआ आया और उस ज्वाला में गिरकर मर गया। भिक्षुगण समझ नहीं पाए कि ऐसी दर्दनाक घटना क्यों हुई। उन्होंने शास्ता से इसका उत्तर पूछना चाहा।

भिक्षुओं का दूसरा समूह नाव से यात्रा कर रहा था। नाव चलती-चलती समुद्र में कहीं अटक गई। अथक प्रयास करने के बाद भी जब वह न चली तो यात्रियों ने सोचा कि निश्चय ही उनमें कोई अभागा था जिसके कारण नाव का चलना बंद हो गया था। लॉटरी निकाली गई । हर बार नाविक की पत्नी का नाम निकला। तब नाविक ने कहा कि इस स्त्री के गले में बालू का बोरा बाँधकर इसे समुद्र में फेंक दो। ऐसा ही किया गया और नाव चल दी। भिक्षुगण समझ नहीं पाए कि उस औरत की मौत इस तरह क्यों हुई? उन्होंने बुद्ध से इसका उत्तर जानना चाहा।

भिक्षुओं का तीसरा समूह कहीं जा रहा था। रात्रि में उसे कहीं पर विश्राम करना पड़ा। वे सभी एक गुफा में जा सो गए। सुबह में देखा कि गुफा के द्वार पर एक विशाल चट्टान पड़ी हुई थी। उससे बाहर निकलने का मार्ग अवरूद्ध हो गया था। उन्हें उस गुफा में सात दिनों तक रहना पड़ा और तब वे उस गुफा से बाहर निकल पाए। उन्हें समझ में नहीं आया कि भूतकाल के किस कर्म के कारण उन्हें उस गुफा में सात दिनों तक नजरबन्द रहना पड़ा। उन्होंने तथागत से शंका-समाधान चाहा।

बुद्ध ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर समझाया कि भूतकाल में एक किसान के पास एक आलसी बैल था। वह मन से काम नहीं करता था। एक दिन किसान को उस पर बहुत क्रोध आया और उसने पुआल में आग लगाकर उस बैल को जिंदा जला दिया। इस कारण उसे कौआ बनकर जन्म लेना पड़ा और इस जन्म में आग में गिरकर मरना पड़ा।

नाविक की पत्नी अपने पूर्व जन्म में एक महिला थी। वह जब भी अपने घर से निकलती, मुहल्ले का एक कुत्ता उसके साथ लग जाता था। लड़के उसको देखकर हंसते थे और उस महिला का मजाक उड़ाते थे। महिला उस कुत्ते से पिंड छुड़ाना चाहती थी पर वह किसी पूर्व जन्म में उसका पति था। अत: उस मोह के कारण उसका साथ नहीं छोड़ पा रहा था। उस महिला ने उस कुत्ते की हत्या करने की सोची। उसने उसे प्यार से पुचकारकर बुलाया, उसके गले में एक भारी पत्थर बाँधकर उसे पानी में फेंक दिया। कुत्ता डूबकर मर गया।

भिक्षुओं के तीसरे समूह ने एक बार ग्वाल बालों के रूप में खेल-खेल में एक छिपकली को एक बिल में बंद कर दिया। गलती से उसका दरवाजा खोलना भूल गए। सात दिनों के बाद जब याद आया तब उस बिल का दरवाजा खोला। छिपकली मृतप्राय हो गई थी। अपनी इस गलती के कारण इस जन्म में उन्हें भिक्षुओं के रूप में गुफा में कैद रहना पड़ा।

इन तीनों स्पष्टीकरण के बाद शिष्यों ने बुद्ध से पूछा कि पाप कर्म करके मनुष्य उसके फल से बच सकता है या नहीं ? मनुष्य अगर गुफा में छुप जाए, धरती से भागकर समुद्र में या पर्वत पर चला जाए या आकाश में पक्षियों की तरह उड़ जाए तो क्या वह अपने को अपने पाप के फल से बचा लेगा ? शास्ता ने भिक्षुओं को समझाया कि सृष्टि में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां छिपकर अपने पाप के फल से बचा जा सके।

टिप्पणी : हिंदू धर्म के अवतारों में एक नरसिंह अवतार का भी जिक्र आता है। भक्त प्रहलाद के पिता दैत्यराज ने घोर तपस्या की कि उसे कोई मार न सके - न अस्त्र से, न शस्त्र से; न नर, न पशु, न घर में, न बाहर; न धरती पर, न आकाश में; न दिन में, न रात में; आदि। उसे यह वरदान मिल भी गया। मृत्यु किसकी नहीं आएगी? जब दैत्यराज की मृत्यु आई तो नरसिंह अवतार के रूप में उसे मारा गया - आधा रूप पुरूष का था, आधा सिंह का; घर और बाहर में मारने के बजाय चौखट पर मारा गया; किसी अस्त्र या शस्त्र से न मारकर, बढ़े हुए शेर के नाखूनों से मारा गया। न तो धरती और न आकाश में मारा गया; वरन् नरसिंह की गोद में मारा गया । न तो दिन में और न रात में मारा गया, वरन् गोधूलि बेला में मारा गया। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि मृत्यु से कहीं भी बचा नहीं जा सकता। जैसे मृत्यु से कहीं भी बचा नहीं जा सकता, उसी प्रकार अपने पाप कर्मो के परिणाम से भी कहीं बचा नहीं जा सकता।

जैसे हमारी छाया हमारा साथ नहीं छोड़ती, उसी प्रकार हमारे कर्म भी हमारा साथ नहीं छोड़ते।

गाथा: न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितं नप्पसहेय्त मच्चु ।।128।।

अर्थ: इस लोक में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ छिपने से मनुष्य मृत्यु से बच सके। आकाश में या पाताल में, पर्वत में और कंदराओं में - वह कहीं से भी समय आने पर आदमी को ढूँढ निकालेगी।

मृत्यु के प्रहार से कहीं भी नहीं बचोगे
सुप्रबुद्ध की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सुप्रबुद्ध, शास्ता की पत्नी, यशोधरा के पिता थे। वे मुख्यत: दो कारणों से तथागत से घृणा करते थे- एक कि उनकी बेटी यशोधरा को छोड़कर उन्होंने संन्यास ले लिया था और दूसरे उनका पुत्र देवदत्त, जो संन्यासी बन गया था, उसकी बुद्ध से नहीं बनती थी।

एक दिन बुद्ध भिक्षाटन पर जाने वाले थे। सुप्रबुद्ध को पता चल गया । अत: उसने उनका रास्ता रोकने की ठानी। उसने शराब पी ली और रास्ते को छेंककर खड़ा हो गया कि आज बुद्ध को नहीं जाने दूँगा। लोगों ने उसे बहुत समझाया पर उल्टा उसने उत्तर दिया, "जाकर कह दो कि वह पीछे चला जाए। वह मुझसे बड़ा नहीं है। इस प्रकार तथागत उस मार्ग से भिक्षाटन के लिए नहीं जा सके। बाद में सुप्रबुद्ध ने अपने जासूस भेजे कि जाकर देखें कि बुद्ध की क्या प्रतिक्रिया है।

उधर भिक्षाटन से लौटने पर बुद्ध ने आनन्द को सारी बातें बताई। उन्होंने आनन्द को यह भी बताया कि चूँकि सुप्रबुद्ध ने निर्वाण प्राप्त बुद्ध के मार्ग को अवरूद्ध किया था, अत: सात दिनों में उसकी मृत्यु हो जाएगी। सुप्रबुद्ध के दूतों ने यह बात उसे जाकर बता दी। उसने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया। उल्टे तथागत के प्रति उल्टी-सीधी बातें कही कि उसे मद हो गया है कि वह जो कुछ कहता है वह सही हो जाता है। "मैं ऐसा प्रबंध करूँगा कि उसकी बात असत्य साबित होकर रहेगी", सुप्रबुद्ध ने कहा। उसने उस सीढ़ी को तुड़वा दिया जिससे उतरकर उसे मृत्यु-स्थल को जाना पड़ता। अपने सेवकों को सख्त आदेश दिए कि अगर गलती से वह उधर जाने लगे तो वे उसे पूरी शक्ति से पकड़ लें। ऐसा कहकर वह ऊपर के कमरे में जाकर रहने लगा।

शास्ता को सुप्रबुद्ध के उपर्युक्त प्रबंध के विषय में बताया गया। उन्होंने यह सुनकर कहा, "बुद्धों का कथन असत्य नहीं हो सकता। सुप्रबुद्ध कुछ भी करे, वह महल में कहीं भी छिप जाए, आकाश में उड़ जाए, नाव पर बैठकर समुद्र विहार के लिए चला जाए, पर्वत की गुफाओं को अपना निवास-स्थल बना ले, उसे जो करना है कर ले; उसकी मृत्यु उसी तिथि पर और उसी स्थान पर सुनिश्चित है।" और हुआ भी वही। सातवें दिन शास्ता भिक्षाटन को निकले; उधर सुप्रबुद्ध का अश्व चंचल हो दीवार पर पैरों से जोर-जोर से प्रहार करने लगा। सुप्रबुद्ध ने यह आवाज सुनी। पहले भी वह घोड़ा अपने मालिक को देखकर शांत हो जाता था। सुप्रबुद्ध को कुछ याद नहीं रहा और वह अपने घोड़े की ओर भागा। प्रहरी भी सुध-बुध खो बैठे। उन्होंने राजा को नहीं रोका, राजा दौड़ता हुआ सीधा उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ सीढ़ियाँ बनी थीं और वहीं धरती पर जा गिरा। उसी स्थल पर उसकी प्राण-लीला समाप्त हो गई जिसका बुद्ध ने जिक्र किया था। धरती फटी और वह नरक में जा गिरा।

टिप्पणी: कोई व्यक्ति लाख चतुराई कर ले, किए गए कर्म का लेख मिट नहीं सकता। मृत्यु के आगे किसी का जोर नहीं चलता। मृत्यु की तिथि, स्थान को न हम बदल सकते हैं और न आप। कौन, कब, कहाँ, कैसे उठ जाएगा कोई नहीं जानता। अगर हम ऐसे असमर्थ हैं तब फिर अभिमान किस बात का ? "रस्सी की अकड़ किस बात की ?" रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ नहीं जाती है वैसे ही हमारी ऐंठ खतम क्यों नहीं होती ?

सामान्य जन के लिए मृत्यु एक भयावह चीज होती है। उसके भय को समाप्त करने का एक ही रास्ता है। उस स्त्रोत को बंद कर दिया जाए जहाँ से बुरे कर्मों का सृजन होता है। अर्थात् बुरे कर्मों के सृजन से बचकर ही हम मृत्यु के असर को कम कर सकते हैं और अंतत: निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

DHAMMAPADA

PAAP VAGGA

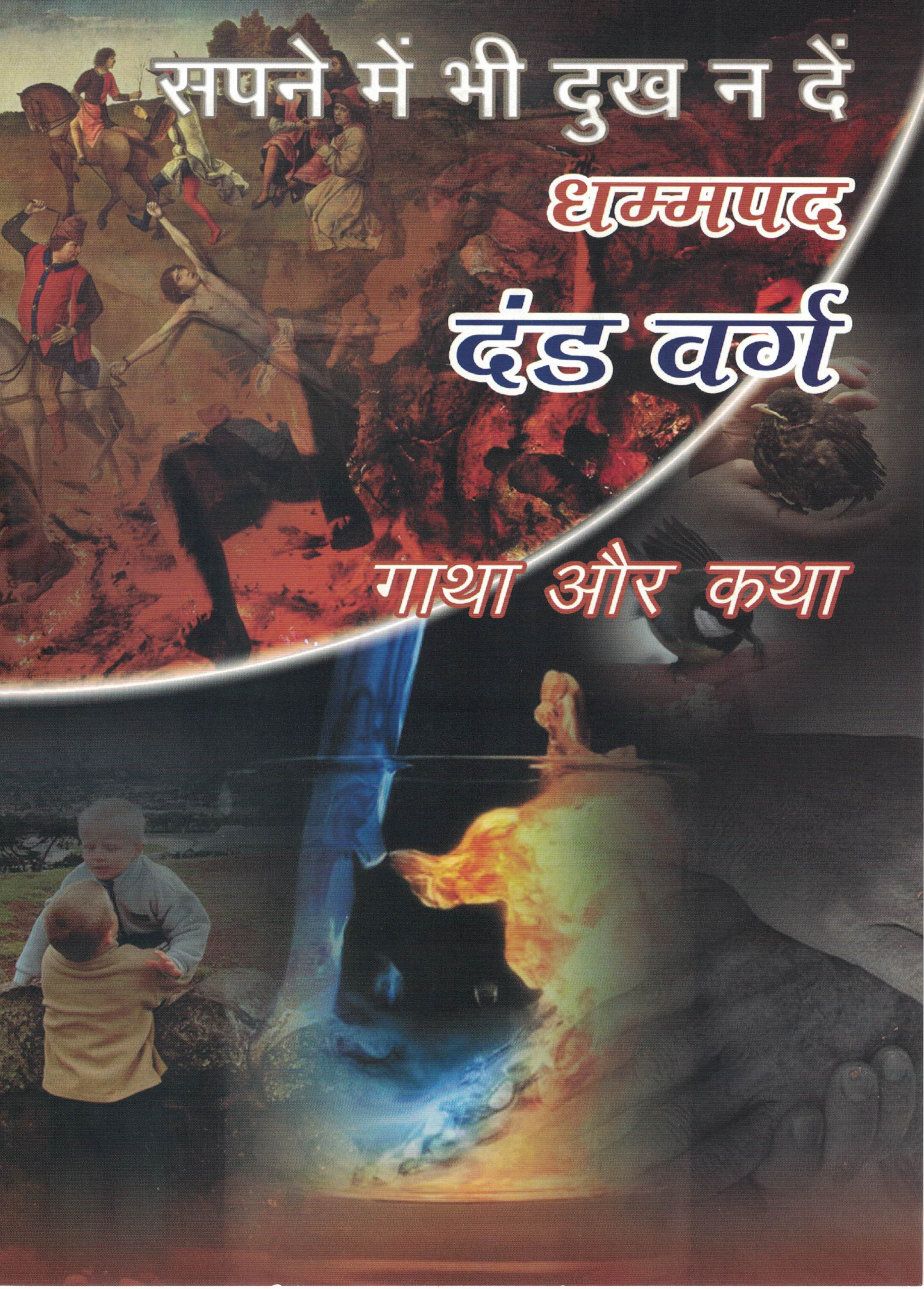
सपने में भी दुख न दें
धम्मपद
दंड वर्ग
गाथा और कथा

सपने में भी दुख न दें

धम्मपद

दंड वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

दण्ड वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा	129	सपने में भी दुख न दें	79
2.	षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा	130	जीवन सभी को प्रिय है	81
3.	बहुत से कुमारों की कथा	131	अगर सुख चाहते हों तो दूसरों को दु:ख न दें	83
4.	बहुत से कुमारों की कथा	132	दंड न दोगे तो सुख पावोगे	85
5.	कोण्डधानस्थविर की कथा	133	कठोर वचन : दु:ख का कारण	87
6.	कोण्डधानस्थविर की कथा	134	कठोर वचन का घंटा तोड़ दें	89
7.	उपासिकाओं की कथा	135	अपना गोपाल कौन है ?	91
8.	अजगर प्रेत की कथा	136	पापी : कर्म का फल कब समझोगे ?	93
9.	थेर महामोग्गलान की कथा	137	किसी को दंड न दें	95
10.	थेर महामोग्गलान की कथा	138	पाप सदैव पीड़ा देता है	97
11.	थेर महामोग्गलान की कथा	139	कर्मों के अनुरुप जीवन की प्राप्ति	99
12.	थेर महामोग्गलान की कथा	140	दस दंडों के भागी बनेंगे	101
13.	स्थविर बहुभण्डिक की कथा	141	अर्थरहित साधना से क्या लाभ ?	103
14.	सन्तति महामात्य की कथा	142	संत तो संत ही है	105
15.	पिलोतिक स्थविर की कथा	143	सही मार्ग पर चलें	107
16.	पिलोतिक स्थविर की कथा	144	बिना परिश्रम के भवसागर कैसे पार करेंगे ?	109
17.	सुख सामनेर की कथा	145	ज्ञानी पुरुष स्वावलंबी होते हैं	111

गाथा: सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।। 129।।

अर्थ: हर व्यक्ति दण्ड से डरता है। हर व्यक्ति मृत्यु से भी भयभीत होता है। अतः सबों को अपने समान मानकर न तो किसी को मारना-पीटना चाहिए और न किसी की हत्या करनी चाहिए।

सपने में भी दुख न दें

षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय सत्रह भिक्षुओं का एक समूह अपने शयन के लिए जेतवन विहार में शयन लगा रहा था। उसी समय छः भिक्षुओं का एक दूसरा दल भी वहाँ आ पहुँचा। उसने पहले समूह से कहा कि वह अपने आवास के लिए अन्यत्र व्यवस्था कर ले। इस पर सत्रह भिक्षुओं के समूह ने आपत्ति की। तब षड्भिक्षुओं के दल ने उनसे कहा कि वे उनसे उम्र में बड़े हैं। अतः उन्हें शयन स्थल खाली कर देना होगा। सत्रह भिक्षु इसके लिए तैयार नहीं थे और वे अड़ गये। इधर छः भिक्षुओं का दल भी अपनी माँग पर अड़ा रहा। षड्भिक्षु शरीर से अधिक शक्तिशाली थे। जब बात बनती नजर नहीं आई तो षड्भिक्षुओं ने सत्रह भिक्षुओं की पिटाई शुरू कर दी। इस कारण वे जोर-जोर से रोने, चिल्लाने लगे।

शास्ता के कानों में आवाज पड़ी। उन्होंने पता किया कि क्या हो रहा है ? जब उन्हें सारी बात की जानकारी मिली तो उन्होंने षड्वर्गीय भिक्षुओं को बुलाकर बताया कि उन्होंने गलत किया है। अपने आचरण से उन्होंने अपने लिए दोषपूर्ण कर्म का सृजन किया है । उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि हर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि जैसा मैं हूँ वैसे ही अन्य भी हैं। अगर मुझे कष्ट होता है तो वही कष्ट दूसरों को भी होगा। अतः किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए, मारना-पीटना नहीं चाहिए।

टिप्पणी: इस घटना के बाद बुद्ध ने विनय का नियम बनाया कि कोई भिक्षु किसी भिक्षु के ऊपर हाथ नहीं उठाएगा। एक कहावत है: 'जाके पाँव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई !' अर्थात् जिसके ऊपर स्वयं न बीती हो, वह दूसरों का दुःख कैसे समझ पायेगा ? अतः जीवन में जब कभी परीक्षा की घड़ी आए तो इंसान को समझना चाहिए कि दूसरे की जगह अगर वह स्वयं होता तो कैसा लगता? अगर यह उसकी समझ में आ जाएगा तो वह बहुत सारे गलत काम करने से बच जाएगा।

गाथा: सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये।। 130।।

अर्थ: सभी प्राणी को दंड (प्रहार) भयभीत कर देता है क्योंकि सबों को उनका जीवन प्रिय है। ऐसा समझकर किसी को भी दूसरे पर प्रहार नहीं करना चाहिए और न किसी को प्रहार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

जीवन सभी को प्रिय है
षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

गाथा 130, पूर्व वर्णित गाथा 129 के विषयवस्तु से मिलती-जुलती है।

बुद्ध के समझाने पर षड्वर्गीय भिक्षुओं और सत्रह भिक्षु समूह के बीच शान्ति सुलह हो गई पर यह शांति और सुलहनामा कुछ ही दिनों तक चल पाया।

एक बार फिर दोनों समूहों के बीच शयनस्थान को लेकर झगड़ा हो गया। पिछली घटना के बाद शास्ता ने विनय का नियम दिया था कि कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु पर हाथ नहीं उठायेगा। अतः इस बार जब झगड़ा हुआ तो षड्वर्गीय भिक्षुओं ने हाथ नहीं उठाया, पर इस बार उन्होंने अपने हाव- भाव से धमकाया। उन्हें इस प्रकार भयभीत किया कि वह समूह डर के मारे चिल्लाने लगा।

बुद्ध ने आवाज सुनी तो दोनों समूहों को बुलाया और विनय का नियम बनाया कि कोई भिक्षु किसी दूसरे भिक्षु को अपने हाव-भाव से नहीं डराएगा।

टिप्पणी: अगर हम एक छोटी सी चींटी को भी मारने के उद्देश्य से छेड़ते हैं तो वह तुरंत दूसरी तरफ भागती है। सिर्फ मनुष्य को ही नहीं, सभी प्राणियों को उनका जीवन प्रिय है। अगर कोई मेरा प्राण हरने आए तो मुझे कैसा लगेगा? अगर मुझे पीड़ा होती है तो मैं उस पीड़ा की अनुभूति क्यों नहीं कर पाता जो दूसरों को होगी, अगर उनका जीवन छीनने का यत्न किया जाए ?

दूसरी ओर हम प्राणियों की जान ले तो सकते हैं; चींटी, कीड़े-मकोड़ों को मार देना कितना सरल है पर सृष्टि के सभी वैज्ञानिक मिलकर भी आज तक एक जीवित कोशिका का सृजन नहीं कर पाए । अतः राजगृह में पशु-बलि को रुकवाकर बुद्ध राजा बिंबिसार को समझाते हैं कि जीवन ले लेना सरल है, पर जीवन का सृजन असंभव; अतः जीव हत्या पाप है।

बुद्ध के उपदेश का इतना गहरा असर हुआ कि उसी दिन राजा ने डौंडी पिटवाकर घोषणा करवाई, "अब तक भोजन के लिए तथा देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु-बलि होती रही है पर आज से पशु-वध वर्जित किया जाता है।" समस्त राज्य में, गंगा के तट पर भी, शिलालेखों पर राजा की उक्त घोषणा अंकित कराई गई।

गाथाः सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो न लभते सुखं।।131।।

अर्थः जो व्यक्ति अपने सुख प्राप्ति के लिए अन्य
सुख चाहने वाले प्राणियों को मार देता है,
उसे मृत्यु के बाद सुख प्राप्त नहीं होता।

अगर सुख चाहते हों तो दूसरों को दुःख न दें
बहुत से कुमारों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक बार बुद्ध भिक्षाटन हेतु निकले। मार्ग में उन्होंने कुछ लड़कों को डंडे से एक साँप को मारते हुए देखा। यह देखकर बुद्ध ने उन लड़कों से पूछा कि वे क्या कर रहे हैं। यह प्रश्न सुनकर लड़कों ने उत्तर दिया कि कहीं यह साँप हमें डँस न ले, इसी भय से उसे मार रहे हैं।

तब शास्ता ने उन्हें समझाया, "अपना वर्तमान काल सुखी बनाने के लिए तुम इस निरीह प्राणी को कष्ट दे रहे हो, ऐसा मत करो। ऐसा करके तुम अपने लिए भविष्य में दुःखों का सृजन कर रहे हो। दुःखों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान में बुरे कर्मों से बचा जाए। दूसरी ओर अगर वर्तमान में बुरे कर्म नहीं करते हो तो तुम्हें इस जीवन में भी सुख मिलेगा और आने वाले जीवन में भी सुख मिलेगा।" अतः अपने सुख की इच्छा करने वाले को निश्चय ही दूसरों को दुःख पहुँचाने की इच्छा से बचना चाहिए।

टिप्पणीः कहावत है कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा आप अपने लिए चाहते हैं। यह उक्ति शत-प्रतिशत सही है।

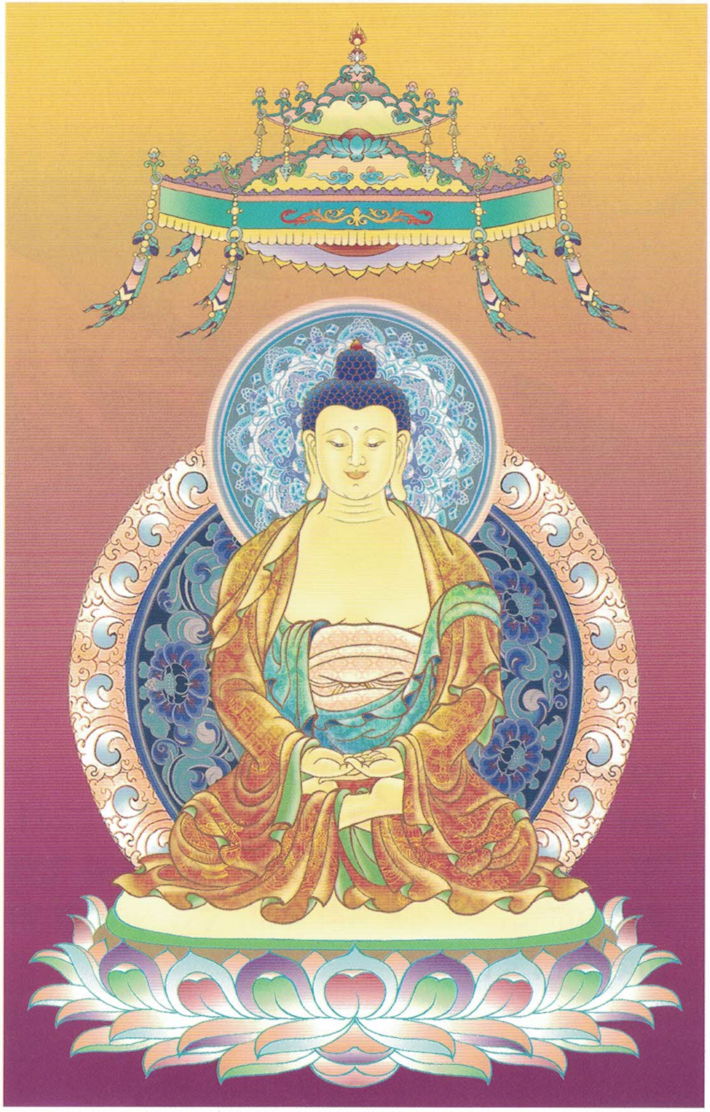

गाथा: सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो लभते सुखं।।132।।

अर्थ: जो व्यक्ति अपने सुख प्राप्ति के लिए अन्य सुख चाहने वाले प्राणियों को दंड नहीं देता, उसे मृत्यु के बाद सुख प्राप्त होता है।

दंड न दोगे तो सुख पावोगे
बहुत से कुमारों की कथा

जीवन एक घाटी की तरह है। घाटी में जो कुछ भी बोला जाता है, वही प्रतिध्वनित होकर वापस आता है। अगर हम कोई अच्छी बात बोलते हैं तो उस अच्छी बात की ही प्रतिध्वनि हमारे पास आती है। दूसरी ओर अगर हम कोई बुरी बात बोलेंगे तो बुरी बात ही हम तक लौटकर आएगी।

जीवन हमें वही देता है, जो हम जीवन को देते हैं। जीवन एक समुद्र की तरह है। किनारे से इसमें जो फेंकोगे, समुद्र उसे अपने पास नहीं रखेगा, वापस भेज देगा। अत: दैनिक जीवन में हम जो कुछ भी कर रहे हैं, उसका अति गहरा महत्व है।

एक गाँव की कहानी है। एक बूढ़ा आदमी चारपाई पर बैठा धूप सेंक रहा था। उधर से एक नवयुवक गुजरा। उसने बूढ़े बाबा से पूछा, "बाबा, इस गाँव के लोग कैसे हैं ?" "क्यों जानना चाहते हो ?", बूढ़े ने पूछा। "बसने के लिए एक गाँव की तलाश कर रहा हूँ।" "तुम्हारे पुराने गाँव के लोग कैसे थे?" "वहाँ के लोग अच्छे नहीं थे, मुझसे अच्छा व्यवहार नहीं करते थे।" वृद्ध ने उत्तर दिया, "इस गाँव के लोग भी अच्छे नहीं हैं।" युवक चला गया। कुछ समय बाद एक दूसरा युवक भी उधर से गुजरा। उसने भी बाबा से वही प्रश्न किया और प्रत्युत्तर में बाबा ने अपना प्रश्न दुहराया। तब उस युवक ने कहा, "वहाँ के लोग बहुत अच्छे थे, मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे।" "इस गाँव के लोग भी उस गाँव के लोगों की तरह अच्छे हैं," उसका उत्तर था।

जीवन हमें हमारे ही सिक्कों को लौटाता है।

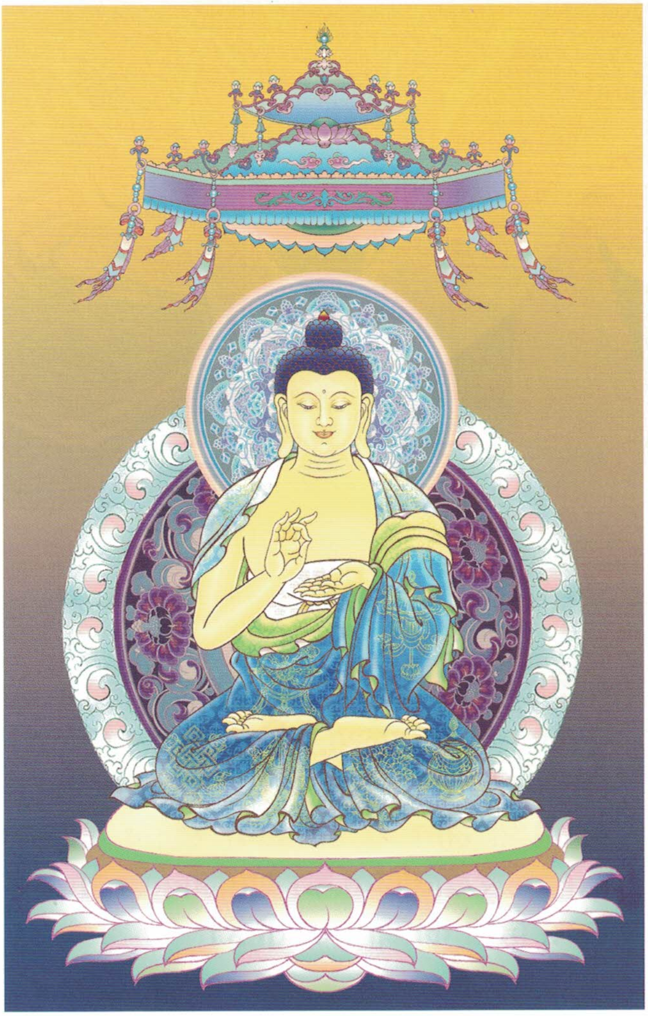

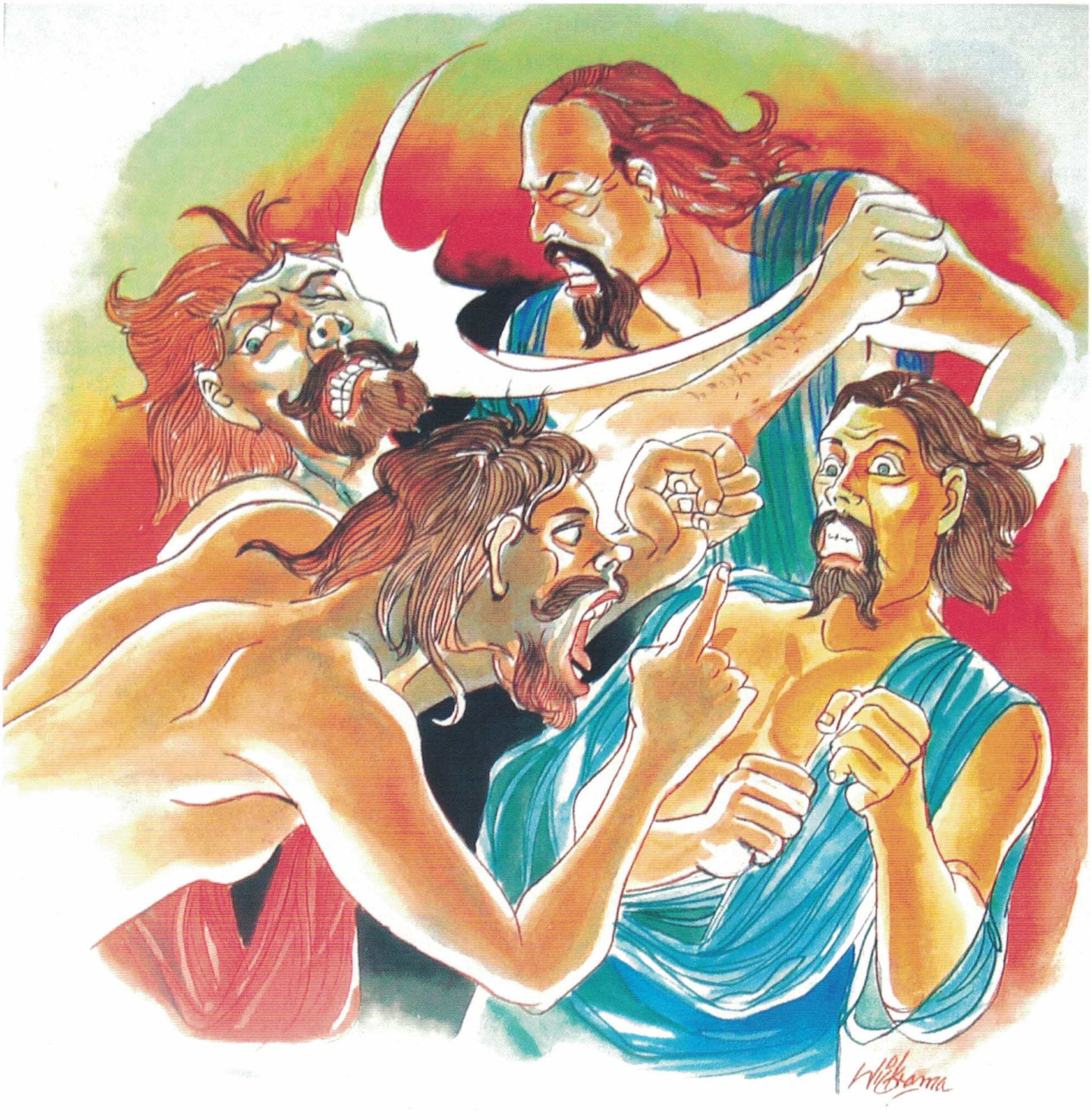

गाथा: मावोच फरुसं कञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा, पटिदण्डा फुससेय्यु तं।।133।।

अर्थः किसी को कटु वचन नहीं बोलना चाहिए। कटु वचन बोलने से लोग भी प्रतिक्रिया स्वरूप कटु वचन बोलेंगे। इस प्रकार प्रतिक्रिया का वार्तालाप दुखदायी होता है और इससे हिंसा की आग उठती है।

कठोर वचन : दुःख का कारण
कोण्डधानस्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोण्डधान स्थविर जब से प्रव्रजित हुए थे, लोग उनके साथ एक महिला को चलते हुए देखते थे लेकिन उन्हें यह महिला नहीं दिखती थी। लोग उन्हें भिक्षा देते समय कहते," भन्ते ! यह भिक्षा आपके लिए है और यह आपकी संगिनी के लिए है।"

यह सब पूर्वकाल के कर्मों के कारण हुआ था। कस्सप बुद्ध के समय में दो भिक्षु बड़े मित्रवत् थे, आपस में इतने निकट थे मानों वे एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हों। उनकी आत्मीयता देख स्वर्ग की एक देवी उनसे जलने लगी। उसने उन दोनों में फूट डालने की योजना बनाई, अतः एक दिन जब उन दोनों में से एक भिक्षु एक झाड़ी के पीछे लघुशंका के लिए गया तो उस देवी ने एक स्त्री का रूप धारण कर लिया। जब वह भिक्षु झाड़ी से निकला तो वह स्त्री भी उसके पीछे-पीछे हो ली। भिक्षु ने उस स्त्री को नहीं देखा। वह एक हाथ से अपने बाल सँवार रही थी और दूसरे हाथ से अपनी साड़ी ठीक कर रही थी। जब प्रतीक्षारत भिक्षु ने उस महिला को देख लिया तब वह अर्न्तध्यान हो गई। प्रतीक्षारत भिक्षु ने अपने मित्र भिक्षु से कहा, "बंधु ! आपसे यह उम्मीद नहीं थी । आपने अपना शील भंग कर दिया।" " मैंने कुछ भी नहीं किया, " उस भन्ते ने कहा। तब दूसरे भिक्षु ने स्पष्ट किया कि उसने अपनी आँखों से झाड़ी से एक महिला को साथ-साथ निकलते हुए देखा है। लाख स्पष्ट करने पर भी प्रतीक्षारत भिक्षु अपनी बात पर अड़ा रहा और उसने अपने मित्र से सारे संबंध तोड़ लिए। अब वह अकेला ही बैठकर साधना करता। जब उस देवी ने देखा कि दोनों के संबन्ध टूट गए हैं तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह उनके समक्ष प्रकट हुई और सब कुछ स्पष्ट किया, पर शक्की भिक्षु इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। फटे हुए दूध की तरह उनके सम्बन्ध फिर से जुड़ नहीं सके।

मृत्यु के बाद दोनों स्थविरों का जन्म देवलोक में हुआ। वह देवी नरक में जन्मी तथा समय के अन्तराल पर श्रावस्ती में जन्म लिया। प्रव्रजित होने के बाद, पूर्व जन्म के कर्मफल के कारण, उस काल्पनिक स्त्री का रूप सदैव उसके साथ-साथ चलता।

भिक्षुओं ने उस स्त्री के प्रसंग को अनाथपिंडिक और विशाखा - दोनों को बताया कि उस भिक्षु के ऊपर कार्रवाई की जाए, पर दोनों ने यही उत्तर दिया कि शास्ता विहार में विद्यमान हैं। अगर शिकायत करनी है तो उनसे जाकर करो।

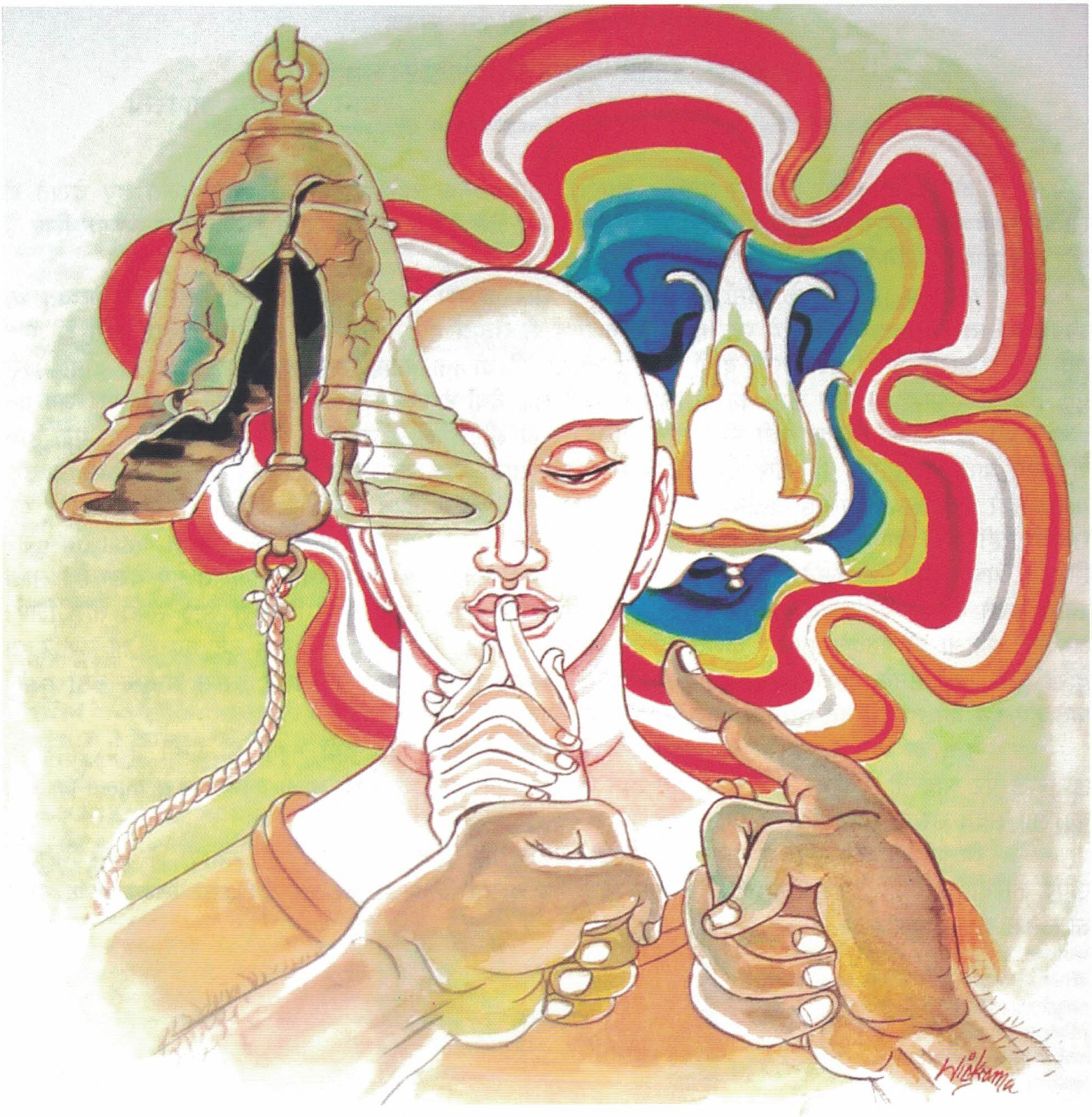

गाथा: सचे नेरेसि अत्तानं, कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बानं, सारम्भो ते न विज्जति।।134।।

अर्थ: अगर तुम अपने आप को टूटे हुए काँसे के बर्तन के समान कर लोगे तो नि:शब्द हो जाओगे और निश्चय ही निर्वाण को प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे अन्दर प्रतिहिंसा की भावना नहीं रह जाएगी।

कठोर वचन का घंटा तोड़ दें
कोण्डधानस्थविर की कथा

तब भिक्षुओं ने राजा प्रसेनजित से उस भिक्षु की शिकायत की कि वह अपने साथ एक स्त्री को लेकर घूमता है जो सर्वथा अनुचित है। राजा ने स्वयं इसकी जाँच करने का आश्वासन दिया और संध्या बेला में स्थविर के वासस्थान पर गया। राजा का आगमन सुन स्थविर अपने कमरे से बाहर निकला तो राजा को उसके साथ वह स्त्री दिखी। राजा ने उसको प्रणाम नहीं किया और थोड़ी देर बाद वह स्थविर अपने कमरे में चला गया। राजा उसके पीछे हो लिया तो कमरे में कोई स्त्री नहीं दिखी। राजा ने सोचा कि कहीं छिप गई होगी। अतः कमरे के अन्दर चारों ओर, बिस्तर के नीचे - सभी जगह खोजा, पर स्त्री नहीं दिखी। राजा ने तब उस स्थविर से पूछा कि वह स्त्री कहाँ है। उस स्थविर ने राजा को उत्तर दिया कि उसने किसी स्त्री को नहीं देखा है। राजा ने कुछ सोचकर भिक्षु को पुनः कुटिया से बाहर निकलने के लिए कहा। भिक्षु बाहर निकल आया तो राजा को वह स्त्री पुनः दिख गई। राजा ने पुनः उस घर में प्रवेश किया और स्थविर भी उसके पीछे प्रविष्ट हुआ। घर के अन्दर वह पुनः गायब हो गई। राजा को लगा कि किसी देवी ने काल्पनिक स्त्री का रूप धारण कर लिया है और वही इस भिक्षु के साथ घूमती है। राजा ने भिक्षु से कहा कि वह उसके राजमहल से भिक्षा ग्रहण किया करे, क्योंकि सभी लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उधर भिक्षुओं ने देखा कि राजा ने कोण्डधान स्थविर को सजा देने की बजाए, उल्टा उसे अपने राजमहल में बुलाकर सम्मानित किया तो उन्होंने उस भिक्षु को ही डाँटना शुरू कर दिया कि तुम कुण्ड हो, स्त्री को साथ लेकर चलते हो। प्रत्युत्तर में उस भिक्षु ने भी स्थविरों को कहना शुरू कर दिया कि कुण्ड तुम हो, स्त्रियों को साथ लेकर तुम चलते हो। आपस के इस वाद-विवाद की बात शास्ता तक पहुँची।

शास्ता ने सभी भिक्षुओं को बुलाया और उस भिक्षु से पूछा कि वह उन भिक्षुओं पर क्यों लांछन लगा रहा था ? उसने उत्तर दिया कि वे भी उसके ऊपर लांछन लगा रहे थे। तब बुद्ध ने उसे समझाया कि वे तुम्हारे ऊपर लांछन इसलिए लगा रहे थे कि उन्होंने तुम्हारे साथ स्त्री को देखा था। पर तुमने तो उनके साथ किसी स्त्री को नहीं देखा था; फिर तुम्हें उन पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए था। पूर्व जन्म में तुमने गलत कर्म किया था और उसी का फल आज भोग रहे हो। अब पुनः गलत काम करके अपने लिए क्यों पाप अर्जित करना चाहते हो, अपना भविष्य क्यों बिगाड़ना चाहते हो ? तुम्हें इन भिक्षुओं को कुछ नहीं कहना चाहिए, भले ही वे तुम्हें कुछ भी कहें। तुम्हारा मुँह फूटे हुए काँस के थाल की तरह होना चाहिए। जैसे फूटा हुआ काँस का थाल पीटने पर भी कोई आवाज नहीं करता, वैसे ही तुम्हें भी शान्त रहना चाहिए।

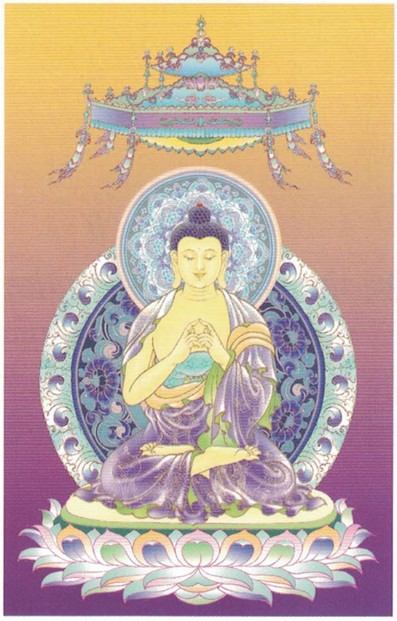

गाथा: यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं।।135।।

अर्थ: बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों को उसी प्रकार ले जाते हैं जैसे कोई ग्वाला लाठी से अपनी गायों को चारागाह में ले जाता है।

अपना गोपाल कौन है ?
उपासिकाओं की कथा

स्थान : पुब्बाराम, श्रावस्ती

एक बार महाउपोसथ के दिन पाँच सौ उपासिकाएं पुब्बाराम विहार में आईं; वे विभिन्न उम्र की थीं। विशाखा ने उनसे अलग-अलग पूछा कि वे उपोसथ उत्सव के लिए क्यों आई थीं ?

बूढ़ी स्त्रियों का उत्तर था कि वे मृत्यु के बाद स्वर्ग जाने की चाह से आई थीं। प्रौढ़ स्त्रियों ने उत्तर दिया कि वे अपने सौतन से मुक्त होना चाहती थीं। युवतियों का कहना था कि वे प्रथम संतान के रूप में पुत्र प्राप्त करना चाहती थीं। तरुणियों से जब पूछा गया तो उन्होंने बताया कि वे अच्छे पति की कामना से आई थीं।

विशाखा ने यह बात बुद्ध को बताई। तब बुद्ध ने विशाखा को समझाया कि हर प्राणी जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से बंधा हुआ है। इन तीनों का चक्र निरंतर चलता रहता है। जैसे एक चरवाहा अपनी लाठी से गायों को चारागाह की ओर ले जाता है उसी प्रकार आयु मनुष्य को जरा और मृत्यु की ओर ले जाती है।

टिप्पणी: हर व्यक्ति के जीवन का दृष्टिकोण भिन्न होता है। कोई धन की तलाश में दौड़ता है, तो कोई पद-प्रतिष्ठा के लिए। कोई सम्मान चाहता है, तो कोई ऐश्वर्य। बिरले ही कोई इस संसार के आवागमन से मुक्ति चाहता है। मुक्ति चाहने वाला भी संभवतः पूर्ण मुक्ति नहीं चाहता। सिद्धार्थ ने जब घर छोड़ा तब वे एक के बाद एक धर्मगुरुओं के पास गए और शीघ्र ही जितना कुछ वे सीख सकते थे, सीख लिया। "आगे क्या करना है ?" जब यह प्रश्न किया तो उन गुरुओं ने कहा कि मन की इसी स्थिति में रहकर आनन्दित होवो और जीवन का आनन्द लो। पर सिद्धार्थ इससे संतुष्ट नहीं हुए। वे पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे। अतः बोधिवृक्ष के नीचे जब सत्य का अन्वेषण कर लिया तभी वहाँ से उठे। ज्ञान प्राप्ति के बाद कुछ समय तक उसी मनः स्थिति में थे कि क्या किया जाए क्योंकि "पिंजड़े का द्वार खुला है पर पक्षी बाहर आना नहीं चाहता।" अंततः धरती ने कराह कर कहा, "सिद्धार्थ ! उठो ! तुम बुद्धत्व प्राप्त कर चुके हो। समस्त सृष्टि आग से झुलस रही है; तुम ही उस आग को बुझा सकते हो। अतः उस आग को बुझाने के लिए उठो।" इसके बाद बुद्ध ने सारनाथ जाकर पुराने पंचवर्गीय मित्रों को शिक्षा दी।

गाथा: अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो, अग्गिदड्ढोव तप्पति ।।136।।

अर्थ: पाप करने वाला मनुष्य उन कर्मों को समझ नहीं पाता। दुर्बुद्धि वाला मनुष्य अपने पापों की अग्नि में उसी प्रकार जलता रहता है जैसे जंगल दावाग्नि से जलता रहता है ।

पापी : कर्म का फल कब समझोगे ?
अजगर प्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन राजगृह में महामोग्गलान थेर लक्ष्मण स्थविर के साथ गृध्रकूट पर्वत से उतर रहे थे। रास्ते में उनके चेहरे पर मृदु मुस्कान देख लक्ष्मण थेर ने उनसे इसका कारण पूछा। महामोग्गलान ने उन्हें बताया कि शास्ता के सम्मुख पहुँच कर यह प्रश्न करे।

अतः लक्ष्मण स्थविर ने विहार पहुँच कर शास्ता के सम्मुख यह प्रश्न किया। तब थेर महामोग्गलान ने समझाया कि उन्होंने एक अजगर प्रेत को देखा था जिसके शरीर से आग की ज्वाला निकल रही थी। उन्होंने आज तक इस प्रकार का कोई प्रेत नहीं देखा था। तब शास्ता ने बताया कि उन्होंने भी निर्वाण के समय इस प्रेत को देखा था पर इसकी चर्चा नहीं की थी, क्योंकि उन्हें लगा कि अगर इसकी चर्चा कर दी और किसी ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया तो उसका अनर्थ हो जाएगा।

उस प्रेत के उत्पति की कथा सुनाते हुए तथागत ने बताया कि कस्सप बुद्ध के समय एक बड़ा ही निर्दयी चोर था । एक धनवान श्रेष्ठी ने उसके विषय में कुछ कह दिया। इससे वह इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने उसके खेत में आग लगा दी । यह जानकर कि उस श्रेष्ठी को गन्धकुटी प्रिय थी, उस चोर ने गन्धकुटी में भी आग लगा दी और इस प्रकार अपने लिए अपार पाप का संचय कर लिया । उस पाप के फल के कारण - नरक में जाकर, आज उसने अजगर प्रेत के रूप में जन्म धारण किया था।

कर्मों के फल के विषय में बताते हुए शास्ता ने कहा कि पाप करते समय पापियों को समझ में नहीं आता कि वे पाप कर रहे हैं। बाद में वे उस पाप के फल से दावाग्नि की तरह जलते रहते हैं।

टिप्पणी: मूर्ख व्यक्ति क्रोधवश पापकर्म करता है, पर करते समय समझ नहीं पाता कि वह क्या कर रहा है। पाप करते समय वह इतना तो समझ जाता है कि वह पापकर्म कर रहा है पर वह यह नहीं समझ पाता कि उस पापकर्म का परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

इसलिए समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह सदैव अपने कर्मों को करने में सावधानी बरते।

प्रगति प्रकृति का नियम है । काँटा और फूल दोनों के बीज बोये जाते हैं और दोनों ही बीज से कली और फूल बनते हैं और फिर परिपक्व हो जाते हैं ।

फूल का बीज पुष्पित, पल्लवित होकर फूल ही रहेगा । दूसरी ओर काँटे का बीज बड़ा होते-होते एक विशाल काँटे के रूप में परिणत हो जाएगा, एक ऐसे काँटे में जिसके अन्दर सभी तरफ से चुभने की क्षमता होगी और यह त्रिशूल की तरह घात करेगा । हमने अगर फूल का बीज बोया तो हमारा कोई नुकसान नहीं हुआ पर जिसने काँटों के बीज बोये, उसका नुकसान ही नुकसान हो गया ।

कुदरत ने हमें स्वतंत्रता दे रखी है कि हम फूलों का बीज बोयें या काँटों का।

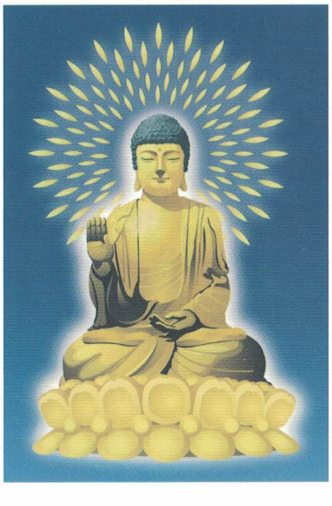

गाथाः यो दण्डेन अदण्डेसु, अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं, खिप्पमेव निगच्छति।।137।।

अर्थः जो निर्दोष व्यक्तियों के साथ द्वेष रखता है और उन्हें अकारण ही दुख पहुँचाता है वह स्वयं दस में से किसी एक दंड का शिकार हो जाता है ।

किसी को दंड न दें
थेर महामोग्गलान की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

थेर महामोग्गलान तथागत के श्रेष्ठतम शिष्यों में माने जाते हैं। अगर थेर सारिपुत्र को उनका दायाँ हाथ कहा जाए तो महामोग्गलान को उनका बायाँ हाथ कह सकते हैं । दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही साथ आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कदम रखा । पूर्व जन्मों में भी दोनों साथ-साथ रहे। उनकी मैत्री संसार की सबसे पुरानी लिखित मैत्री के रूप में जानी जाती है । ऐसे महान साधक, महामोग्गलान का अंत अति दु:खद हुआ, यह किस बात का द्योतक है? अति कष्टप्रद अंत यह दर्शाता है कि कोई भी व्यक्ति इस संसार में कर्म फल से ऊपर नहीं है।

बुद्ध के जीवन की कहानी है । एक बार कोई व्यक्ति वहाँ आया जहाँ शास्ता प्रवचन दे रहे थे और आकर उन्हें भला-बुरा कहने लगा । शिष्यगण नाराज होते दिखे तथा प्रतिक्रिया में कुछ करने को उतावले हो उठे पर तथागत पूर्णतः शांत चित्त बैठे रहे। जब उस व्यक्ति ने अपशब्द कहना बन्द कर दिया तब बुद्ध ने उससे पूछा, "अगर तुम मेरे लिए कोई उपहार लेकर आओ और वह उपहार मुझे देना चाहो, पर मैं उस उपहार को स्वीकार न करूँ तो वह उपहार किसके पास रह जाएगा ?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "वह उपहार मेरे पास ही रह जाएगा।" "उसी प्रकार समझो कि तुम मेरे लिए गालियों का उपहार ले आए, लेकिन उस उपहार को मैंने स्वीकार नहीं किया तो वे अपशब्द किसके पास रहे ?", बुद्ध ने पूछा। "वे मेरे ही पास रहे", उस व्यक्ति का उत्तर था। बुद्ध ने प्रतिक्रिया व्यक्त न की क्योंकि वे बुद्ध थे। सामान्यजन से बहुत-बहुत ऊपर थे। बाद में उन्होंने अपने शिष्यों को बताया कि एक पूर्व जन्म में उन्होंने इस व्यक्ति को भला-बुरा कहा था। उसकी प्रतिक्रिया के रूप में उसने इस जन्म में बदला लिया था। अतः बुद्ध को कोई अधिकार नहीं था कि वे एक बार पुनः उस व्यक्ति के विरुद्ध दो शब्द कहें।

शास्ता के धर्म प्रचार में महामोग्गलान का बहुत बड़ा हाथ था। वे देवलोक जाते, लोगों को देखते जो मरणोपरांत देवलोक में पैदा हुए थे, उनके द्वारा किए गए कर्मों का पता लगाते और धरती पर आकर लोगों को बताते कि किन कर्मफलों से व्यक्ति देवलोक जाता है । उसी प्रकार निरय (नरक) लोक जाते, उन लोगों को देखते जो मरणोपरांत नरक में पैदा हुए थे। उनके किए गए कर्मों का पता लगाते और धरती पर आकर लोगों को समझाते कि किन कर्मफलों से व्यक्ति नरक जाता है ।

गाथा: वेदनं फरुसं जानिं, सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं, चित्तक्खेपं व पापुणे।।138।।

अर्थ: उसे (1) तीव्र कष्ट (2) नुकसान (3) अंग-भंग (4) भयंकर बीमारी या (5) पागलपन का शिकार होना होता है। वह इनमें से किसी विपत्ति से घिर जाता है ।

पाप सदैव पीड़ा देता है
थेर महामोग्गलान की कथा

इस प्रकार लोगों को पता चलता कि किन कारणों से वे सुख प्राप्त कर सकते थे और किन कारणों से दु:ख । इस बात को जानकर लोग उन्हें अति श्रद्धापूर्वक दान-दक्षिणा देते और उनकी प्रतिष्ठा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी ।

एक अन्य सम्प्रदाय के भिक्षुओं को लगा कि लोगों ने उनके पास आना बंद कर दिया है और इसका मुख्य कारण महामोग्गलान हैं। अत: उन्होंने आपस में बैठकर चर्चा की कि अगर किसी विधि से महामोग्गलान की हत्या कर दी जाए तो फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। अतः उन्होंने कुछ हत्यारों को इस काम पर लगाया और उन्हें हजार कार्षापण दे महामोग्गलान की हत्या की सुपारी दे दी। उन हत्यारों ने अपने काम को अंजाम देने के लिए महामोग्गलान के वास स्थान को चारों तरफ से घेर लिया पर महामोग्गलान अपनी दिव्य शक्ति से ताले के छेद से बाहर निकल गए। दूसरी बार फिर उन्होंने इसी प्रकार कोशिश की पर इस बार फिर वे छत में छेद कर निकल गये। जब तीसरी बार यही घटना हुई तो स्थविर ने सोचा कि कर्म के प्रारब्ध के कारण उनकी मृत्यु हत्यारों के हाथों ही लिखी है। अत: उन्होंने इस बार बचने की कोई युक्ति नहीं की। वे बहुत ही आसानी से उन हत्यारों द्वारा पकड़े गये। उन्होंने उनकी हड्डी-पसली एक कर दी और उनका चूरा बना दिया जैसे वे चावल के कण हों। उन्हें जंगल में फेंककर भाग गए।

महामोग्गलान तथागत के सर्वप्रिय शिष्यों में थे, शरीर त्याग कर इस जगत से विदा हो रहे थे, अपने गुरू की कृपा और दर्शनलाभ किए बिना वे शरीर कैसे त्याग सकते थे ? अत: उन्होंने अपने सूक्ष्म शरीर को गठित किया और शास्ता के सम्मुख प्रकट हुए। शास्ता के चरण स्पर्श कर अपनी इच्छा प्रकट की कि परिनिर्वृत्त होऊँगा। तब बुद्ध ने भन्ते को धर्म कथा सुनाने का आग्रह किया क्योंकि, "अब तुम्हारे जैसा शिष्य मुझे देखने को नहीं मिलेगा।" शास्ता का आदेश स्वीकार कर स्थविर ने तरह-तरह की ऋद्धि-सिद्धियां प्रदर्शित कर, धर्म कथा सुनाकर, तथागत को पुन: प्रणाम किया और परिनिर्वृत्त हो गये।

उधर महामोग्गलान की हत्या का समाचार पूरे राज्य में आग की तरह फैल गया। राजा अजातशत्रु ने हत्यारों की खोज करने के लिए गुप्तचर लगा दिए। प्रयत्न कर उन्होंने हत्यारों का पता लगा लिया। हत्यारों ने उन षड्यंत्रकारियों के विषय में बता दिया, जिन्होंने हत्या की सुपारी दी थी। राजा ने सभी को मृत्युदंड दे दिया ।

गाथा: राजतो वा उपस्सग्गं, अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं, भोगानं व पभंगुरं।।139।।

अर्थ: अन्यथा (6) उसे राजा या प्रशासन से दंड मिलता है (7) संसार में तीव्र निंदा होती है (8) उसके सम्बन्धियों का नाश हो जाता है या (9) उसके भोग-विलास की वस्तुओं का क्षय हो जाता है।

कर्मों के अनुरूप जीवन की प्राप्ति
थेर महामोग्गलान की कथा

मरणोपरांत संध्या काल में धर्मसभा बैठी । शिष्यों ने टिप्पणी की कि महामोग्गलान जैसे धर्मात्मा का इस प्रकार का दु:खद अंत नहीं होना चाहिए था । शिष्यों को स्वयं इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल रहा था । अत: उन्होंने बुद्ध से अपना शंका-समाधान चाहा ।

शास्ता ने उस दर्दनाक अंत का स्पष्टीकरण देते हुए समझाया, "निश्चय ही अगर हम स्थविर का अंतिम जीवन देखें तो उनका ऐसा अंत नहीं होता। पर कर्म सिर्फ एक जन्म से बँधा हुआ नहीं होता। वह तो प्रारब्ध से, पूर्व जन्मों में किए गए कर्मों से भी जुड़ा होता है।" ऐसा समझाते हुए बुद्ध ने स्थविर के पूर्व जन्म की एक कथा सुनाई जिसमें उन्होंने अपने निर्दोष तथा नेत्रहीन माता-पिता की बेरहमी से पीट-पीटकर हत्या कर दी थी।

पूर्व काल में महामोग्गलान का वाराणसी निवासी एक व्यक्ति के आज्ञाकारी पुत्र के रूप में जन्म हुआ था । उसके माता-पिता अंधे थे । पुत्र पूर्णत: समर्पित हो घर के कार्य करता था। माता-पिता ने उसके ऊपर काम का इतना बोझ देखकर सोचा कि इसके कामों में हाथ बँटाने वाली एक जीवनसंगिनी मिल जाए तो उचित होगा । अत: पुत्र के मना करने पर भी उन्होंने उसकी शादी कर दी, लेकिन पत्नी कर्कशा निकली । पहले तो उसने कुछ दिनों तक उनकी सेवा की पर बाद में अपने अन्दर उनके प्रति धधकती द्वेष की ज्वाला को रोक नहीं सकी । माता-पिता अंधे थे । वह अक्सर घर को गंदा कर देती और जब पति घर वापस आकर पूछता तो कहती कि इन अंधों ने घर को गन्दा कर दिया है । इस प्रकार उसने अपने पति के मन में विष का बीज बो दिया और सदैव उसमें खाद-पानी डालती गई । पुत्र सतर्क दृष्टि वाला नहीं था। स्त्री-सुख ने आँखों पर पर्दा डाल रखा था । विष-वृक्ष तो बड़ा होना ही था । वह हुआ, उसमें फल लगे और पके भी ।

पुत्र ने सोचा कि अच्छा हो कि माता-पिता से मुक्ति ही मिल जाए। अत: एक अवसर पर उसने अपने माता-पिता से कहा कि रिश्तेदारों से मिलने चला जाए। माता-पिता ने स्वीकृति भर दी। वह उन्हें बैलगाड़ी में बैठाकर ले जा रहा था। रास्ते में उसने स्वांग किया कि चोर आ गए। माता-पिता ने निश्छल हृदय से पुत्र को सलाह दी कि बेटे तुम अपनी रक्षा करो, हम तो बूढ़े हैं, हमारा कुछ नुकसान हो भी गया तो कोई परवाह नहीं है । कहा भी गया है :

माता न कुमाता हो सकती, पुत्र-कुपुत्र हो भले कठोर ।
सब देव-देवियाँ एक ओर, हे माँ मेरी तू एक ओर ।।
ले माँ का कलेजा भी काट निकाल तो,
उस कटे कलेजे से निकलेगा यही स्वर, "खुश रहो लाल।"

गाथा: अथ वस्स अगारानि, अग्गी डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जतिं।।140।।

अर्थ: अथवा अपने कृत पाप के प्रभाव से (10) उसका निवास जल जाता है और वह अल्पबुद्धि पुरुष मृत्यु के बाद नरक में जा गिरता है ।

दस दंडों के भागी बनेंगे
थेर महामोग्गलान की कथा

पुत्र ने अपनी आवाज बदल कर अपने माता-पिता को बेरहमी से पीटा, मानों चोर ही पीट रहे हों और उनकी हत्या कर दी । इस प्रकार एक सुशील, आज्ञाकारी पुत्र ने अपने सिर दुष्कर्म का विशाल बोझ ले लिया, जिसे अंतिम जीवन में जाकर ही संपूर्णतः उतार पाया।

सही कहा गया है "सतर्कता हटी, दुर्घटना घटी।"

सतर्क नहीं रहने के कारण, प्रमाद में लिप्त होने के कारण, नारी के जादू से वशीभूत हो जाने के कारण पुत्र की दुर्गति हुई। इस प्रकार की दुर्गति आज भी समाज में हो रही है जब हमारे सामने अन्धे, स्वार्थी, दोषपूर्ण पत्नी-भक्ति का पलड़ा पितृभक्ति से भारी पड़ रहा है और इस कारण समाज में विकृति बढ़ती जा रही है।

शास्ता ने शिष्यों को समझाते हुए बताया कि अपनी इस गलती के कारण महामोग्गलान अनेक जन्मों में दुःखद मृत्यु के शिकार हुए । उन चोरों और नग्नश्रमणकों ने भी अपने किए का फल पाया और नरक में गए । उन्होंने यह भी समझाया कि जो निर्दोष व्यक्ति को कष्ट पहुँचाता है वह शीघ्र ही एक या एक से अधिक दोष का शिकार हो जाता है :- (1) तीव्र पीड़ा (2) धन-हानि या असमय का बुढ़ापा (3) अंग-भंग (4) भीषण बीमारी (5) पागलपन (6) राजा का दंड (7) महान निन्दा (8) परिवार-कुटुम्बों का नाश (9) योगों का क्षय (10) घर का जल जाना।

शास्ता ने शिष्यों को समझाते हुए उक्त चार गाथाएं सुनाईं ।

टिप्पणी : हमने अक्सर कई लोगों को देखा है कि वे भलाई का जीवन जी रहे थे पर एकाएक उनके जीवन में अंधेरा छा गया । कठोर वेदना से पीड़ित हो गए, धन की हानि हो गई, अंग भंग हो गया, कुष्ठ रोग, पक्षाघात, यक्ष्मा, कैंसर आदि बीमारियाँ हो गईं। इन सबों का कारण उनके वर्तमान जीवन से नहीं निकाला जा सकता है। पर हम उनके द्वारा कृत भूतकाल के कर्मों को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे इस जन्म में घोर विपत्ति से क्यों घिर गए ।

गाथा: न नग्गचरिया न जटा न पंका, नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकंखं।।141।।

अर्थ: जिस मनुष्य के अन्दर की वासनाएं तृप्त नहीं हुई हैं वह कोई भी वाह्य कर्म करे - जैसे नग्न रहे, जटा बढ़ाए, शरीर पर कीचड़ लपेटे, उपवास करे, सख्त जमीन पर सोए, भस्म लगाए, उकडू बैठे- वह परिष्कृत, शुद्ध नहीं हो सकता ।

अर्थरहित साधना से क्या लाभ ?
स्थविर बहुभण्डिक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उसने प्रव्रज्या ले ली। पर उसने अपने पुराने रहन-सहन के तौर-तरीके को नहीं बदला। अपने लिए एक विहार का निर्माण कराया जिसमें रसोई घर, भंडार घर आदि थे। उसने अपने साथ नौकर-चाकर भी रखे; उन्हीं से अपनी पसंद का भोजन बनवाता और आराम से खाता। अनेक वस्त्र बदल-बदल कर पहनता तथा नौकरों से तरह-तरह की सेवायें करवाता । इस प्रकार वह ऐशो- आराम का जीवन जी रहा था। चूँकि उसने बहुत सारी वस्तुऐं (भांड) एकत्र कर रखी थीं अत: लोग उसे बहुभन्डिक कहते थे। एक दिन भिक्षुगण उसे बुद्ध के पास ले गए और उन्हें बताया कि कैसे उसने बहुत सारी सामग्री एकत्र कर रखी थी। बुद्ध के पूछने पर उसने अपनी आदतों को स्वीकार कर लिया। तब बुद्ध ने उससे पूछा कि शास्ता तो सदैव सादा जीवन जीने पर जोर देते थे फिर उसने इतनी सांसारिक चीजें क्यों एकत्र कर रखी थीं। इस पर अपनी गलती मानने की बजाय बहुभण्डिक गुस्से से आग-बबूला हो गया और बुद्ध से कहा, "अब मैं वही करूँगा जो आप कहेंगे" और ऐसा कहते हुए उसने अपना चीवर जमीन पर फेंक दिया।

इसे देखकर बुद्ध ने उसे समझाते हुए कहा, "अपने पूर्व जन्म में तुम एक दुष्टात्मा थे पर उस दुष्टात्मा के रूप में भी तुम्हारे अन्दर थोड़ी बहुत लाज-हया बची थी, लेकिन अब भिक्षु बन जाने के बाद तुमने वह बची-खुची लज्जा भी क्यों गँवा दी; तुम्हारे अन्दर से लोक मर्यादा का भय भी कैसे गायब हो गया ?" जब उसने यह बात सुनी तो उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। वह लज्जित हो गया और लोक-मर्यादा के भय से बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा।

तथागत ने उसे समझाते हुए कहा, "भिक्षु का चीवर के बिना रहना उचित नहीं है; चीवर फेंकना सही नहीं है भिक्षु को अपने अन्दर से शंका-संदेह मिटाना चाहिए।"

टिप्पणी: अगर कोई सोचे कि वह वाह्यकर्मों को कर चित्तशुद्धि प्राप्त कर लेगा तो यह उसकी गलतफहमी है। केवल वाह्यकर्मों को करने से मन परिष्कृत नहीं हो पाएगा और उचित परिणाम नहीं मिलने से मन और दु:खी ही होगा । कहा भी गया है- "मन न रँगाय, रँगाय जोगी कपड़ा।" अर्थात् अगर मात्र वस्त्र को रंग दिया पर ह्रदय और मन का रूपान्तरण नहीं किया तो उससे क्या लाभ ? मन का मैल धुले बिना कुछ भी किया जाए, वह सब व्यर्थ है।

गाथा: अलंकतो चेपि समं चरेय्य, सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू।।142।।

अर्थ: मनुष्य आभूषणों से अलंकृत भी हो फिर भी यदि वह शांतिपूर्वक विचरण करता है, शांत, जितेन्द्रयी, संयमी और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला है: लोगों के प्रति दंड देने का भाव नहीं रखता: अपितु समस्त प्राणियों के प्रति दया-भाव रखता है तो उसे "श्रमण" भी कह सकते हैं, "ब्राह्मण" भी। उसे "भिक्षु" भी कहा जा सकता है।

संत तो संत ही है
सन्तति महामात्य की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सन्तति राजा प्रसेनजित का मंत्री था। एक बार राजा ने उसे सीमा पर विद्रोह शांत करने के लिए भेजा और उसने इस काम को बहुत ही कुशलता से किया। इससे राजा ने बहुत प्रसन्न होकर उसे अनेक भोग-विलास की वस्तुएं दीं तथा सात दिनों तक आनंद करने के लिए एक नर्तकी भी दे दी। वह सुरा और सुन्दरी का सात दिनों तक आनन्द भोग करता हुआ सातवें दिन आभूषण मण्डित, हाथी पर चढ़ा हुआ, स्नानघाट की ओर जा रहा था। उसी समय शास्ता भिक्षाटन हेतु जा रहे थे। मदमस्त सन्तति ने हाथी पर बैठे-बैठे, थोड़ा झुककर उन्हें प्रणाम किया। उसे ऐसा करते देख शास्ता ने मृदु मुस्कान से उत्तर दिया। उन्हें मुस्कुराते देख आनन्द ने शास्ता से इसका कारण पूछा। तथागत ने अपनी मृदु मुस्कान का कारण बताते हुए कहा, "आनन्द ! इस महामात्य सन्तति को देखो। यह आज ही समस्त आभूषणों से अलंकृत हुआ मेरे आश्रय में आएगा और अर्हत्व को प्राप्त होगा।" सामान्य लोगों को यह बात असंभव सी लगी तथा भिक्षुगण भी बहुत ही उत्सुकता से इस घटना की प्रतीक्षा करने लगे।

शास्ता को प्रणाम करने के बाद सन्तति घाट पर गया, वहाँ स्नान किया। भोजन और मदिरा में पुनः खो गया। नर्तकी उसके सम्मुख नृत्य प्रदर्शन में व्यस्त हो गई। वह लगन के साथ नृत्य कर रही थी। पर सात दिनों से लगातार नृत्य करने के कारण वह बहुत ही कमजोर हो गई थी। उसके पेट में अति तीव्र पीड़ा उठी और देखते ही देखते वह काल-कवलित हो गई।

सन्तति का नशा एक मिनट में उड़ गया। वह गहरे विषाद में डूब गया। उसे उससे बाहर निकलने का साधन नहीं दीख रहा था। उसे लगा कि शास्ता ही उसकी मदद कर सकते हैं। अतः उनके सम्मुख प्रकट हो, उन्हें साष्टांग प्रणाम कर आग्रह किया, "भन्ते ! मुझे इस पीड़ा से उबारिए। मुझे कोई मार्ग नहीं दिख रहा है।" तब बुद्ध ने समझाया, "सन्तति ! तुम सही जगह आ गए हो। अब तुम्हारे लिए चिंता का कोई विषय नहीं है क्योंकि यहाँ तुम्हें तुम्हारे दुख से मुक्ति मिल जाएगी। स्त्री के मरने पर तुम्हारी आँखों से निकला आँसू महासमुद्र के जल से भी अधिक होगा। पहले जो कुछ भी किये हो उसे सुखा डालो ताकि पीछे करने के लिए कुछ बच न जाए। इस प्रकार अगर ग्रहण न करोगे तो संसार में शांतचित्त विचरण करोगे।"

शास्ता का उपदेश सुनकर सन्तति ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। फिर उसने शास्ता से परिनिर्वाण की आज्ञा माँगी। बुद्ध ने उसे अपना पूर्वकर्म सुनाने को कहा। तब उसने अपनी पूर्वकथा सुनाई। उसके बाद उसने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।

धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं को यह बात आश्चर्यजनक लगी कि किस प्रकार आभूषणों से विभूषित होकर, संसार में लिप्त हुआ सन्तति भी निर्वाण प्राप्त कर गया।

बुद्ध ने इसे स्पष्ट किया कि वाह्य वस्त्र या आभूषण बहुत महत्व नहीं रखते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि आदमी ने रागाग्नि को शांत किया है या नहीं। अगर उसने रागाग्नि को शांत कर लिया है और किसी को कष्ट देने की इच्छा नहीं रखता है तो निश्चय ही ऐसा व्यक्ति श्रमण, ब्राह्मण और भिक्षु कुछ भी हो सकता है।

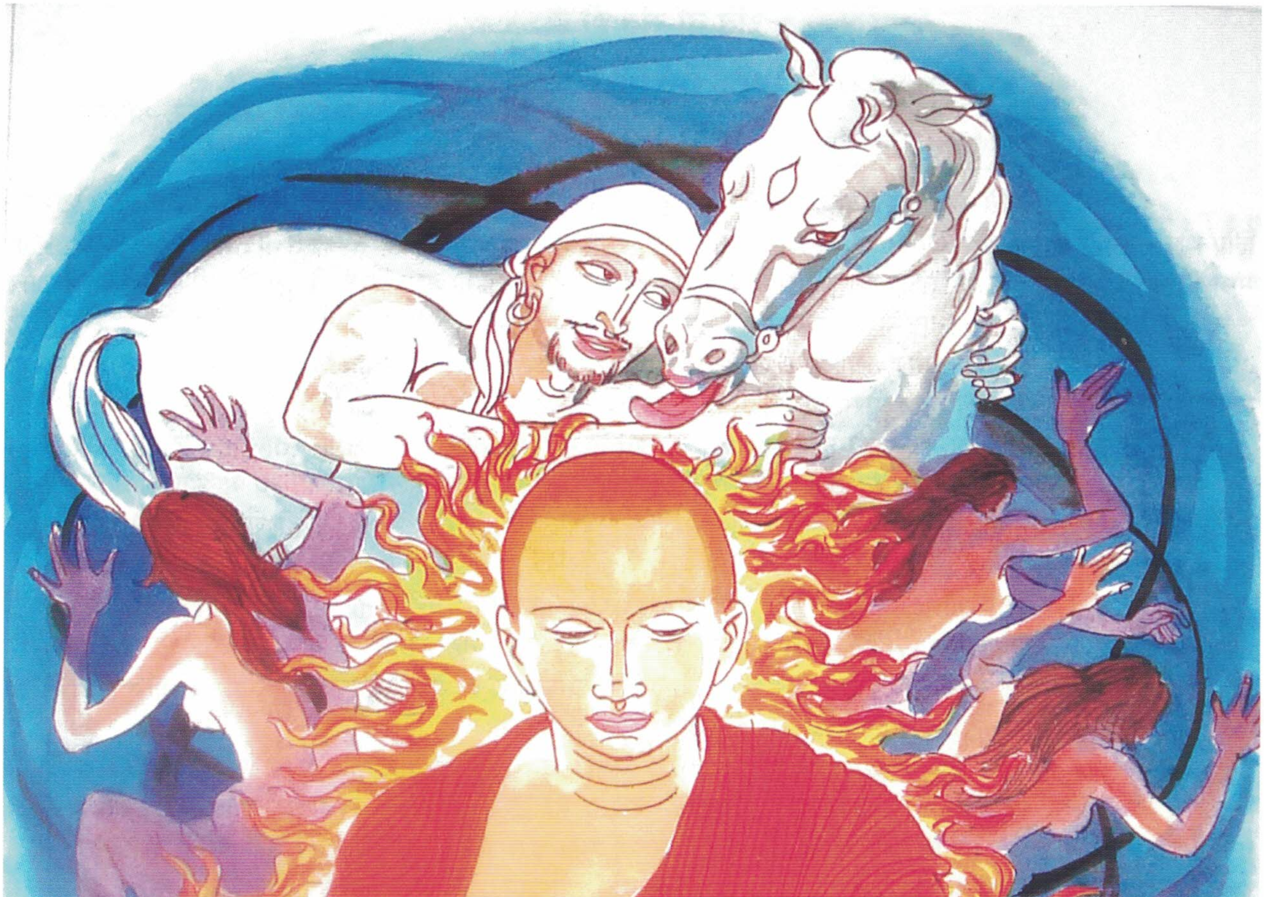

गाथा : हिरीनिसेधो पुरिसो, कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
सो निन्दं अपबोधेति, अस्सो भद्रो कसामिव।।143।।

अर्थ: संसार में लज्जायुक्त पुरूष अपनी निंदा को उसी तरह बर्दाश्त नहीं कर सकता जैसे अच्छी जाति का घोड़ा चाबुक की मार को नहीं सह सकता।

सही मार्ग पर चलें
पिलोतिक स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन आनन्द स्थविर ने एक छोटे लड़के को फटे कपड़ों में भीख माँगते हुए देखा। उसे देखकर उन्हें दया आ गई और उससे पूछा कि क्या भीख माँगने से प्रव्रज्या का जीवन अधिक अच्छा नहीं है। उस बालक ने कहा कि प्रव्रज्या का जीवन निश्चय ही अधिक अच्छा है पर उसे प्रव्रजित करेगा कौन ? तब भिक्षु आनंद ने प्रव्रज्या की औपचारिकताएं पूरी कर उसे प्रव्रज्या दिला दी। उसका पुराना वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता था। अतः सामनेर ने अपने पुराने वस्त्र तथा भीख माँगने के कटोरे को पेड़ की एक डाल पर टाँग दिया और विहार में रहने लगा। विहार में उसे भोजन की कोई परेशानी नहीं थी। अतः वह शरीर से मोटा होने लगा। उसका नाम पिलोतिक पड़ गया।

कुछ समय बाद उसके मन में आया कि विहार का जीवन बंधन का जीवन है। उसका पुराना जीवन ही अधिक अच्छा था। अतः वह उस पेड़ के पास जाकर अपने पुराने वस्त्र उठाने लगा। तब उसे अन्दर से ग्लानि हुई तथा उसके मन ने उसे धिक्कारा, "तू कितना निर्लज्ज है। यहाँ के इतने सुन्दर जीवन को छोड़कर तू फिर संसार के मायाजाल में फँस रहा है।" उस पुराने वस्त्र से प्रेरणा लेकर वह पुनः विहार में आ गया। उसका चित्त पुनः शान्त हो गया और वह साधना में लग गया।

कुछ दिनों बाद पुनः उसके मन में धर्म के प्रति अरुचि होने लगी और एक बार वह पुनः उस वृक्ष के पास पहुँच गया। फिर उसके मन ने धिक्कारा और वह पुनः विहार में वापस आ गया। इस प्रकार की प्रक्रिया चलती रही। उसके भिक्षु मित्र उससे पूछा करते थे कि वह कहाँ जाता था तो उसका उत्तर होता था, "अपने आचार्य के पास जा रहा हूँ।" समय के अन्तराल में साधना ने रंग दिखाया और पिलोतिक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। उसके बाद उसने उस पेड़ की ओर जाना बंद कर दिया। उसके मित्रों ने उससे फिर पूछा कि अब उसने उस वृक्ष की ओर जाना क्यों बंद कर दिया तो सामनेर ने अपनी प्रगति के विषय में बताया और यह भी बताया कि अब उसे किसी वाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं रह गई थी। भिक्षुओं ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और उसे बुद्ध के पास ले गए और बताया कि पिलोतिक कहता है कि उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। शास्ता ने उन शिष्यों को समझाया, "मेरा पुत्र पिलोतिक सच बोलता है कि उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। पहले उसे आलंबन की जरूरत थी तो वह उस वृक्ष की शाखा की ओर जाया करता था पर अर्हत्व प्राप्त करने के बाद उसे उधर जाने की आवश्यकता नहीं रह गई है।"

गाथा: अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो, आतापिनो संवेगिनो भवाथ।
सद्धाय सीलेन च विरियेन च, समाधिना धम्मविनिच्छयेन च।।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता, जहिस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं।।144।।

अर्थ: चाबुक की मार पड़ते ही अनियंत्रित घोड़ा नियंत्रित हो जाता है। उसी प्रकार प्रमादित व्यक्ति को पाश्चाताप तथा वैराग्य के द्वारा अपने को नियंत्रण में लाना चाहिए। "श्रद्धावान, शीलवान बनकर अपने आप को धर्मनिष्ठ बनाओ तथा विद्वान बनो, ज्ञान को आचरण में उतारो और सदैव स्मृतिमान रहो। ऐसा करके तुम दुख रूपी भवसागर को पार कर सकोगे।"

बिना परिश्रम के भवसागर कैसे पार करेंगे ?
पिलोतिक स्थविर की कथा

टिप्पणी : अच्छे नस्ल का घोड़ा चाबुक पड़ने पर तुरंत उसका अर्थ समझता है और तुरंत अपनी गति में बदलाव लाता है और ऐसा अवसर नहीं देता कि उसके ऊपर फिर चाबुक पड़े। इसी प्रकार, सद्पुरुष अपने व्यवहार से ऐसा अवसर नहीं देता है कि लोग उसकी निंदा करें। पर इस प्रकार के व्यक्ति संसार में दुर्लभ हैं।

संसार में चार प्रकार के घोड़े होते हैं- कुछ घोड़े ऐसे हैं जिन्हें हम कितना भी चाबुक मारें, वे अनुशासनपूर्वक नहीं चलते हैं। दूसरे घोड़े चाबुक न मारे जाने पर थोड़ा इधर-उधर करते हैं, ज्यादा नहीं। तीसरे प्रकार के घोड़ों को चाबुक की जरूरत ही नहीं पड़ती। चाबुक की आवाज मात्र से ही वे सावधान हो जाते हैं। चौथे घोड़े चाबुक की छाया मात्र से ही संयमित हो जाते हैं।

मनुष्यों की स्थिति भी ऐसी ही है। किसी के अन्दर हया नाम की कोई चीज होती ही नहीं है। किसी के अन्दर थोड़ी बहुत हया होती है। दूसरे ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो सब कुछ गँवाने को तैयार रहेंगे पर अपनी आत्म-प्रतिष्ठा गँवाना नहीं चाहेंगे।

गाथा: उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारूं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ।।145।।

अर्थ: जैसे नहरों को बनाने वाले इच्छानुसार जल ले जाते हैं, बढ़ई कुशलतापूर्वक लकड़ी छीलकर रथ आदि का निर्माण करते हैं तथा बाण बनाने वाले सावधानी से बाण बनाते हैं, उसी प्रकार अनुशासित लोग अपने आत्मदमन में लगे रहते हैं।

ज्ञानी पुरुष स्वावलंबी होते हैं
सुख सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में सारिपुत्र के एक उपासक के घर में पुत्र पैदा हुआ। उसके गर्भ में आने के समय से ही परिवार में सुख छा गया। अतः उसका नाम "सुखकुमार" रखा गया।

सात वर्ष की आयु होने पर सुखकुमार ने अपनी माता से प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा जाहिर की। उसी दिन उसे अलंकृत कर, विहार में ले जाकर उसे प्रव्रज्या दिलाई गई। प्रव्रज्या दिलाने से पूर्व सारिपुत्र ने प्रव्रज्या से होने वाली कठिनाइयों से परिचित करा दिया पर सुखकुमार दृढ़निश्चयी था। उसने गुरू के प्रत्येक आदेश के पालन का आश्वासन दिया। उसके माता-पिता भी सात दिनों तक विहार में रहने के बाद अपने घर चले गए।

आठवें दिन सुख सामनेर सारिपुत्र स्थविर के साथ भिक्षाटन हेतु निकला। रास्ते में उसने देखा कि किसान खेतों में क्यारी बना रहे हैं और उन क्यारियों से जिधर भी जल ले जाना चाहते हैं, ले जा रहे हैं। वाण बनाने वाले भी बेंत को अपनी इच्छानुसार मोड़ रहे हैं और वाण बना रहे हैं। इसी प्रकार बढ़ई कठोर से कठोर लकड़ी को तराश कर रथ, चक्र आदि का निर्माण कर रहे हैं। इन सभी को देखकर सामनेर ने एक पंडित सामनेर की तरह प्रश्न किया, "क्या कोई भी व्यक्ति इन निर्जीव वस्तुओं को जैसा भी रूप देना चाहे, दे सकता है ?" सारिपुत्र ने समझाया, "अवश्य ! अपने प्रयत्न से मनुष्य सभी कुछ कर सकता है।"

सुख सामनेर की अन्तर्दृष्टि खुल गई। उसने सारिपुत्र भन्ते से आग्रह किया कि वे उसे विहार वापस जाने की अनुमति दें। सारिपुत्र ने उसे अनुमति दे दी। वह बौद्ध विहार आकर समाधि में बैठ गया। बुद्ध ने और शक्र आदि देवताओं ने देखा कि सुख सामनेर के अर्न्तनेत्र खुलने का समय आ गया है। अतः उन्होंने विहार के बाहर खड़े रहकर सामनेर की रक्षा की कि कोई उसके ध्यान में बाधा नहीं पहुँचाए। इस प्रकार ध्यानस्थ हो सामनेर को अन्तर्दृष्टि मिल गई। वह अर्हत हो गया।

संध्या बेला में धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं को शास्ता ने सामनेर के अर्हत प्राप्ति के विषय में बताया तो सभी भिक्षु बहुत आश्चर्यचकित हुए। शाक्य मुनि ने उन्हें समझाया कि आश्चर्यचकित होने की कोई बात नहीं है। पुण्यवान व्यक्ति जब श्रमणधर्म में लीन हो जाते हैं तब देवता और मनुष्य सभी उनकी सहायता करते हैं। "आज इन्द्र ने ही नहीं, मैंने भी स्वयं सामनेर की कुटिया के बाहर खड़े होकर उसकी रक्षा की ताकि उसको किसी प्रकार का व्यवधान न हो। सारिपुत्र को भी निर्देश दिया कि उनसे भी सामनेर को किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे।" शास्ता ने यह भी स्पष्ट किया, "आज सामनेर किसानों को क्यारी बनाते हुए, बाण बनाने वालों को बेंत से बाण बनाते हुए तथा बढ़इयों को लकड़ी से रथ आदि बनाते हुए देखकर चिंतन में डूब गया। उसने अनुभूति की कि यदि इन निर्जीव चीजों को अपनी इच्छा से रूप दिया जा सकता है तो निश्चय ही दृढ़निश्चयी पुरुष अपने आप को संयमित कर, अपना दमन कर आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।" इन आलम्बनों के सहारे आज सुख सामनेर ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

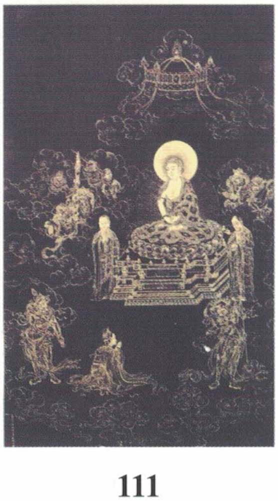

DHAMMAPADA

DANDA VAGGA

बुढ़ापा आने से पहले क्या करें ?

धम्मपद

जरा वर्ग

गाथा और कथा

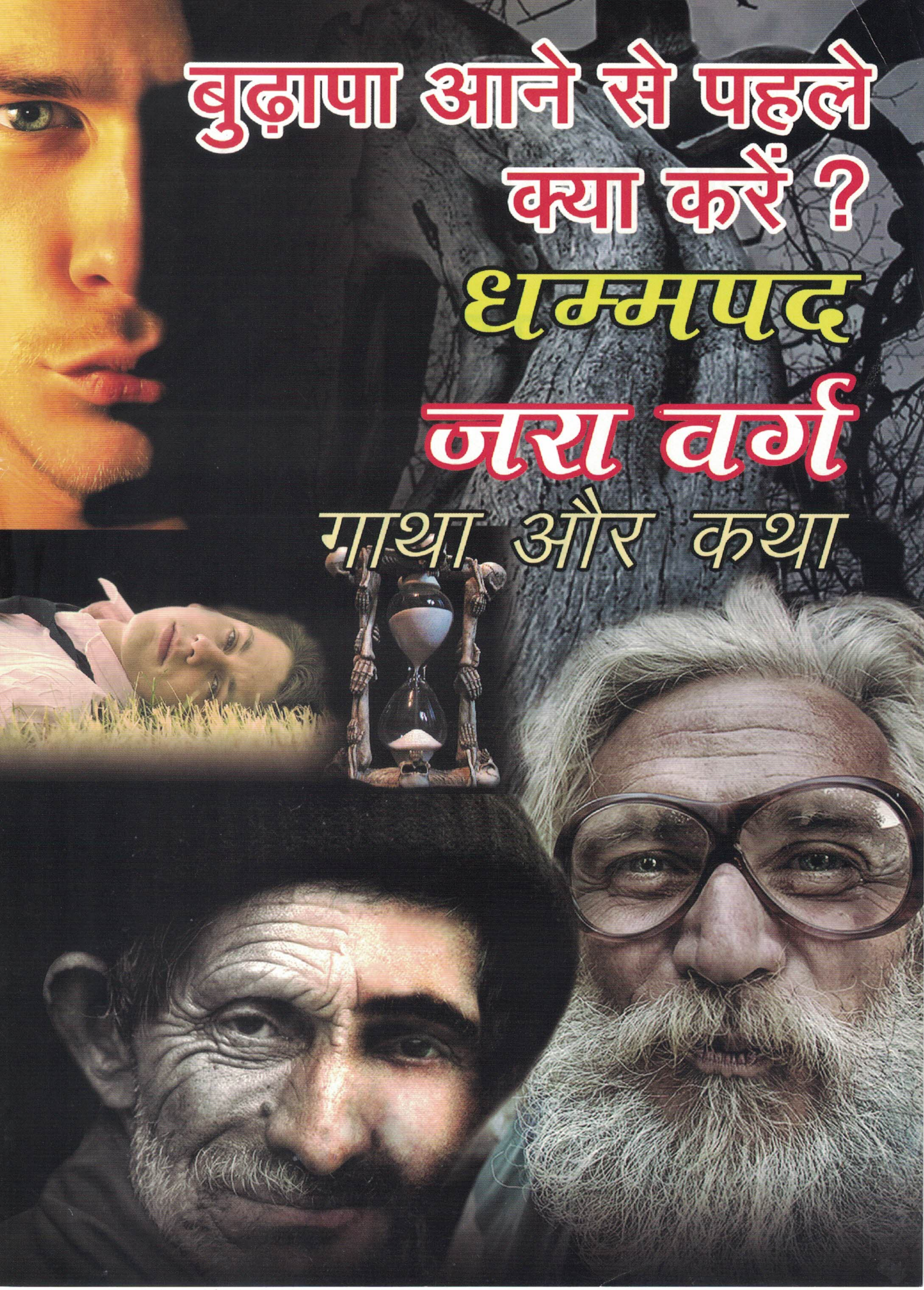

बुढ़ापा आने से पहले क्या करें ?

धम्मपद

जरा वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

जरा वर्ग

कम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	विशाखा की सहेलियों की कथा	146	अँधेरे में क्यों हो ?	117
2.	सिरिमा की कथा	147	शरीर के रहस्य को देखो	119
3.	उत्तरा थेरी की कथा	148	शरीर : रोग–नीड़	121
4.	अभिमानी भिक्षुओं की कथा	149	राग अंत तक साथ नहीं छोड़ेगा	123
5.	रुपनंदा जनपदकल्याणी की कथा	150	अस्थियों के नगर में मक्खियाँ भी हैं	125
6.	मल्लिकादेवी की कथा	151	बुद्ध उपदेश : सनातन सत्य	127
7.	काल उदयि स्थविर की कथा	152	मन बनाम शरीर	129
8.	आनन्द को उपदेश	153	सृष्टि की महानतम खोज	131
9.	आनन्द को उपदेश	154	निर्माण सामग्री नष्ट कर दी गई	133
10.	महाधनी श्रेष्ठी की कथा	155	अब पछताये होत क्या ?	135
11.	महाधनी श्रेष्ठी की कथा	156	जब चिड़िया चुग गई खेत	137

गाथा: को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथा ।। 146 ।।

अर्थः यह सम्पूर्ण संसार रागाग्नि से अनंत काल से जल रहा है । ऐसी स्थिति में तुम्हारा यह आनन्द करना, हँसना किस बात के लिए है ? अविद्या के अंधकार में तुमलोग अपने आत्मज्ञान के लिए दीपक की खोज क्यों नहीं करते ?

अँधेरे में क्यों हो ?
विशाखा की सहेलियों की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के कुछ पुरूषों ने अपनी पत्नियों को विशाखा की तरह दयालु एवं धर्मपरायण बनाने हेतु, विशाखा को अभिभावक बना, उनके पास भेज दिया। एक दिन नगर में एक उत्सव का आयोजन हुआ और पुरूषों ने मद्यपान किया। बाद में बची शराब का उन स्त्रियों ने भी सेवन कर लिया और होश-हवास खो बैठीं । उनके पति को पता चला तो उनकी पिटाई की ।

दूसरे अवसर पर उन्होंने बुद्ध-प्रवचन सुनने की इच्छा प्रकट की और विशाखा को बुद्ध के पास ले चलने के लिए आग्रह किया । लेकिन जाते समय अपने वस्त्रों में शराब की छोटी बोतलें छुपाकर ले गईं। वहाँ उन्होंने चुपके से उनका सेवन किया । उधर विशाखा ने बुद्ध से धर्म-प्रवचन का आग्रह किया । स्त्रियाँ मदहोश हो असभ्य ढंग से नाचने-गाने लगीं । मार को अच्छा अवसर मिल गया । उसने आग में घी डालने का काम किया । वे शीघ्र ही शर्म, हया छोड़, मर्यादा की लक्ष्मण रेखा लाँघने लगीं । बुद्ध ने महसूस किया कि मार को अपना कुकर्म करने का अवसर नहीं देना चाहिए । अतः सर्वत्र अंधेरा हो गया । अब स्त्रियाँ डरने लगीं और उनका चित्त शांत होने लगा। शास्ता ने हजारों सूरज के प्रकाश से धरती को प्रकाशित कर दिया और उन स्त्रियों को समझाते हुए कहा,"तुम्हें इस प्रमादित चित्त के साथ विहार में नहीं आना चाहिए था । तुम सतर्क नहीं थीं; अतः मार को अपना खेल दिखाने का अवसर मिल गया। तुमने अपने अन्दर विद्यमान रागाग्नि को प्रज्जवलित कर दिया और नंग-धड़ंग होकर नाचने-गाने लगीं । लेकिन यह आनंद कैसा, यह खुशी कैसी ? जब सारा संसार राग की ज्वाला से धधक रहा है तो उसे बुझाने का यत्न करना चाहिए, न कि उसमें और हवा देने का । तुम्हें उस रागाग्नि को बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए । अतः इस आग की ज्वाला से बाहर निकलो, क्योंकि जब सब कुछ ही जल रहा है तो फिर प्रमाद कैसा ? आनंद का कारण ही कहाँ है? चारों ओर जब अंधेरा है तो उस अंधेरे से निकलने के लिए दीपक ढूँढ़ने का प्रयास क्यों नहीं करते ? दीपक ढूँढ़ना ही एक मात्र कार्य होना चाहिए।"

टिप्पणीः कुत्ता हड्डी को काटता है, उस प्रक्रिया में अपनी जीभ काट लेता है; खून का नमकीन स्वाद अच्छा लगता है और उसे लगता है कि हड्डी से उसे आनंद मिल रहा है । दाद-दिनाय होने पर खुजलाना अच्छा लगता है पर वही खुजलाना उस जगह पर खून निकाल देता है । शराबी का मन शराब से नहीं भरता और न समुद्र-जल से प्यास बुझती है । उसी तरह संसार में अच्छी लगने वाली चीजें वस्तुतः आनंददायक नहीं होतीं । वे अंततः पीड़ा का ही कारण बनती हैं । रागाग्नि में हम क्या उसी तरह नहीं झुलस रहे, जैसे पतंगा अग्नि में गिरकर प्राण गँवा बैठता है ?

गाथा: पस्स चित्त कतं बिम्बं, अरूकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति ।। 147 ।।

अर्थ: इस व्रणों से युक्त फूले हुए, रोगों से पीड़ित चित्रित शरीर को देखो जो संकल्प - विकल्पों से भरा हुआ है जो कभी भी स्थायी (अविनाशी) नहीं है ।

शरीर के रहस्य को देखो
सिरिमा की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में सिरिमा नाम की एक अति सुंदर गणिका रहती थी । वह मुक्तहस्त से भिक्षा - दान किया करती थी । एक बार भिक्षुगण उसकी सुन्दरता एवं उससे प्राप्त होने वाले स्वादिष्ट भोजन की चर्चा कर रहे थे कि एक तरूण भिक्षु , उसे देखे बिना ही, उस पर आसक्त हो गया । दूसरे ही दिन वह अन्य भिक्षुओं के साथ सिरिमा के घर भिक्षाटन हेतु गया । उस दिन वह बीमार थी, फिर भी भिक्षा देने घर से बाहर आई । भिक्षु उसकी सुंदरता देखकर मोहित हो गया ।

संयोगवश उसी रात सिरिमा की मृत्यु हो गई । राजा बिंबिसार ने इसकी सूचना बुद्ध को दी । शास्ता ने राजा को सलाह दी कि तीन दिनों तक उसके शरीर का दाह-संस्कार नहीं किया जाए पर शव की पशु-पक्षियों से रक्षा की जाए । चौथे दिन शास्ता की सलाह पर नगरवासियों एवं भिक्षुओं को सिरिमा को देखने के लिए श्मशान चलने का निर्देश दिया गया । वह आसक्त तरूण भिक्षु भी श्मशान गया ।

सिरिमा को मरे चार दिन हो गए । शरीर की सुन्दरता जाती रही । शरीर बैलून की तरह फूल गया है तथा नवों द्वारों से द्रव्य बह रहा है । विकृत शरीर से दुर्गन्ध फैल रही है, जिससे वहाँ खड़ा रह-ना मुश्किल हो रहा है ।

बुद्ध के निर्देशानुसार राजा बिंबिसार ने डौंड़ी पिटवायी कि यह राजगृह की सबसे सुन्दर गणिका सिरिमा है । जो चाहे इसे एक हजार कार्षापण देकर ले जाए । इस घोषणा पर कोई हिलता-डुलता नहीं है । फिर इस राशि को घटाकर पाँच सौ, ढ़ाई सौ, दो सौ और अंत में एक कौड़ी की जाती है । फिर भी सिरिमा का कोई ग्राहक खड़ा नहीं होता है । मुफ्त ले जाने के प्रस्ताव पर भी कोई टस से मस नहीं होता ।

उपयुक्त वातावरण बन जाने के बाद बुद्ध ने सबों को समझाया, "शरीर का धर्म देखो, जबतक सिरिमा का शरीर चलायमान था, अनेक एक दिन के लिए हजार कार्षापण देने के लिए सहर्ष तैयार रहते थे पर आज मुफ्त दिए जाने पर भी कोई व्यक्ति उस शरीर के पास जाने के लिए भी तैयार नहीं है । ऐसा है यह क्षणभंगुर, नाशवान शरीर । ऐसे शरीर में कैसी आसक्ति, ऐसे शरीर से कैसा लगाव ? और यह भी अंदर में गंदगी और व्याधियों से भरा पड़ा है: सिर्फ बाहर से एक सुन्दर आवरण से ढँका हुआ है ।"

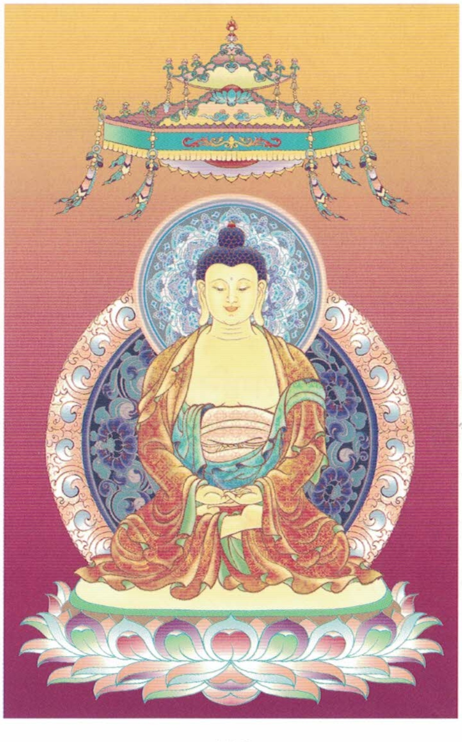

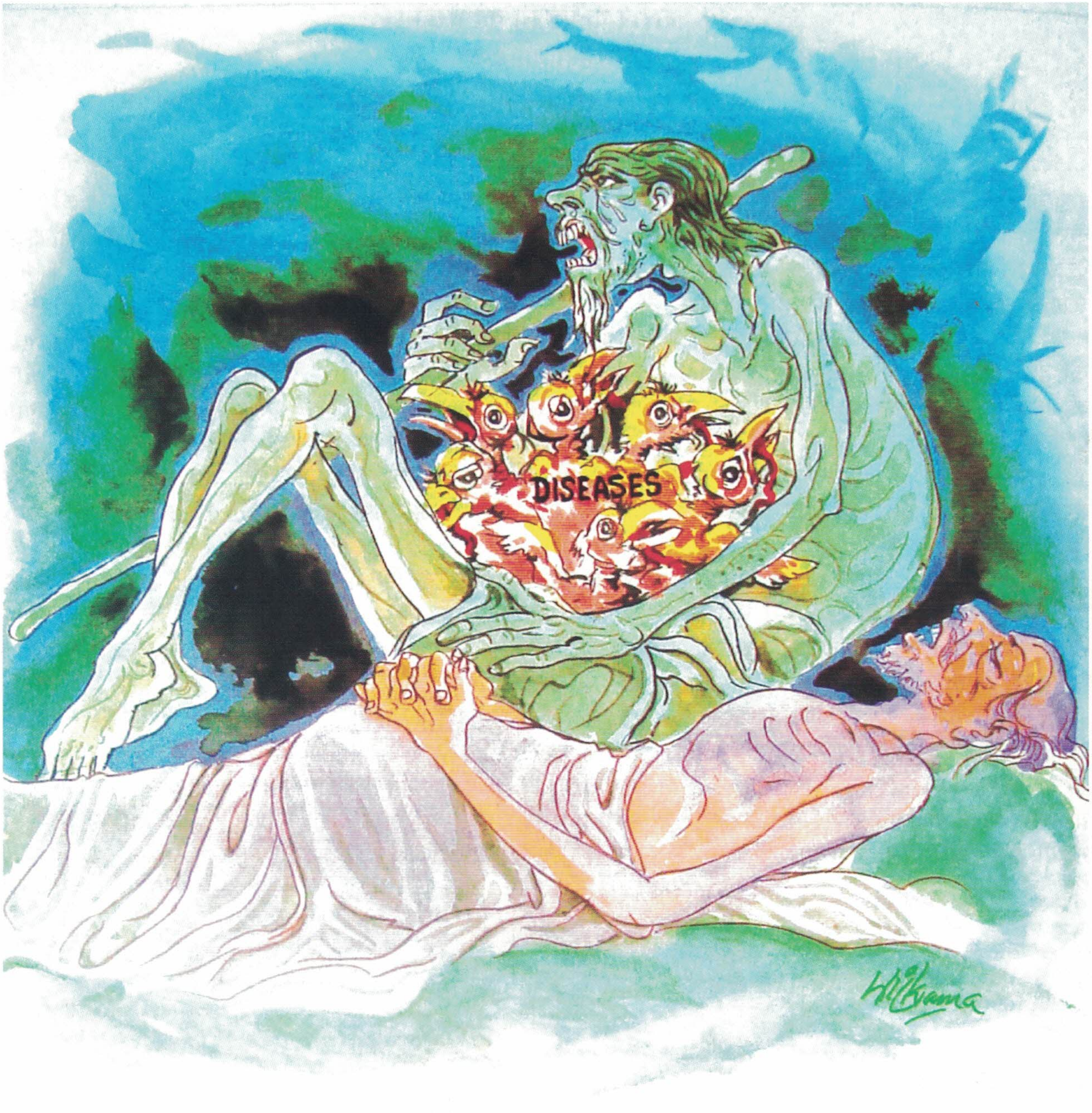

गाथा: परिजिण्णमिदं रूपं, रोगनिड्ढं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पूतिसन्देहो, मरणतं हि जीवितं ।।148।।

अर्थ: तुम्हारा यह शरीर जीर्ण है , रोगों का घर है तथा क्षणभंगुर है, दुर्गन्ध का समूह है तथा टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट होने वाला है । इसकी सत्यता मृत्यु तक ही है।

शरीर: रोग-नीड़
उत्तरा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

बौद्ध साहित्य के अनुसार उत्तरा थेरी एक सौ बीस वर्ष की उम्र में भी भिक्षाटन करती रही तथा विनय के नियमों का पालन करती रही ।

एक दिन वह भिक्षाटन से वापस आ रही थी, शास्ता भी उस मार्ग पर चल रहे थे । भीड़ बहुत थी, अत: बुद्ध को रास्ता देने के लिए उसने पीछे कदम हटाए । बूढ़ी थी, कदम डगमगा गए, शरीर को संभाल - नहीं सकी । अपने चीवर में उलझकर पीछे गिर गई ।

बुद्ध ने उत्तरा को गिरते हुए देख लिया और उसके पास आकर उसे सांत्वना दी । उसे बताया कि अब उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका है, अब इसके बिखरने का समय आ गया है । अब इसका शीघ्र ही नाश हो जाएगा । यह शरीर रोगों का घर है और क्षणभंगुर भी है। शीघ्र ही इसका नाश हो जाएगा । सभी रोगों का नि-वास होने के कारण ही यह रोग-नीड़ कहलाता है। भीतर से यह पूर्णत: दुर्गन्ध भरा है और मृत्यु के समय शरीर खण्ड-खण्ड हो जाता है । जिसने शरीर धारण किया है वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होगा ।

टिप्पणी : नश्वरता ही जीवन का सत्य है । जैसे हर यात्रा कभी न कभी समाप्त होगी, हर वाक्य में कहीं न कहीं पूर्ण विराम अवश्य आएगा, वैसे ही हर जीवन की पूर्णता मृत्यु के रूप में अवश्य ही होगी । अत: जीवन की - नश्वरता देख लेने से सत्य के यथार्थ दर्शन हो जाते हैं। पर सामान्यत: हम नश्वरता को बुद्धि के स्तर पर देखते हैं और इससे हमें सत्य प्राप्त नहीं होता । इसी कारण जीवन में द्वंद्व होता रहता है । जितनी शीघ्रता से "नश्वरता का सत्य" हमारे अस्तित्व का अंश हो जाएगा, उतनी ही शीघ्रता से हमें सत्यावलोकन हो सकेगा ।

गाथा: यानिमानि अपत्थानि, अलाबूनेव सारदे।
कापोतकानि अट्ठीनि, तानि दिस्वान का रति ।।149।।

अर्थ: शरद ऋतु में पैदा हुई लौकी की तरह, कबूतर
की सी सफेद हो गई इन हड्डियों वाले शरीर में, तुम्हारा
यह अनुराग कैसा, यह आसक्ति कैसी ?

राग अंत तक साथ नहीं छोड़ेगा
अभिमानी भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार कुछ भिक्षुओं ने वन में जाकर साधना की और उन्हें गर्व हो गया कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है । उन्होंने अपनी उपलब्धि शास्ता को बताने हेतु बुद्ध विहार की ओर प्रस्थान किया पर बौद्ध विहार में प्रवेश से पूर्व ही भन्ते आनंद ने उन्हें बुद्ध का आदेश सुना दिया कि वे पहले श्मशान जायें और वहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देखकर और फिर चिंतन-मनन करके शास्ता से मिलने आयें ।

वे सभी श्मशान चले गए । वहाँ उन्होंने वीभत्स दृश्य देखा, एक-दो दिन से मृत पड़े शरीरों को देखा जिनसे पीब निकल रहा था और दुर्गन्ध आ रही थी। उन्हें घृणा होने लगी । उन पुराने शवों को देख कर उन्हें अनुभूति हुई कि ये मात्र कंकाल थे, अस्थि-पंजर थे । पर उन्होंने कुछ शवों को ऐसा भी देखा जो पुराने नहीं हुए थे । उनमें पूर्ण विकृति नहीं थी । इन मृत शरीरों को अच्छा समझ कर वे उनमें राग पैदा कर बैठे । पर उन्हें यह अनुभव हो गया कि उनका मन रागमय हो गया है । उधर तथागत ने देख लिया कि यह अनुचित था।

अत: गंधकुटी से दिव्य प्रकाश भेजकर बुद्ध ने उन शिष्यों को समझाया- "यह शरीर अस्थिसमूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन अस्थि समूहों को देखकर क्या तुम्हें रागमय होना उचित है ? यह शरीर तो शरदकाल में वायु तथा धूप से कुम्हलायी हुई, जहाँ-तहाँ बिखरी लौकी की तरह है । कबूतर के रंग वाले ऐसे हड्डियों को देखकर तुम्हारे चित्त में यह रति कैसी है ? निश्चय ही ऐसे नश्वर शरीर में अल्प मात्र भी राग पैदा करना अनुचित है ।

गाथा: अट्ठीनं नगरं कतं, मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च, मानो मक्खो च ओहितो।।150।।

अर्थ: यह शरीर अस्थियों से बना हुआ नगर है जिसे बाहर से माँस तथा रक्त द्वारा लीप दिया गया है। इस नगर में वृद्धावस्था, मृत्यु, अभिमान और ईर्ष्या आदि दुर्गुण वास करते हैं।

अस्थियों के नगर में मक्खियाँ भी हैं
रूपनंदा जनपदकल्याणी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

रूपनंदा शास्ता की छोटी बहन थी। एक दिन उसने सोचा कि उसके अग्रज श्रेष्ठबुद्ध बन गए, उनका पुत्र राहुल, उसकी माता गौतमी तथा पति नंद भी प्रव्रजित हो गए; फिर मैं भी क्यों न प्रव्रजित हो जाऊँ? अत: वह भी प्रव्रजित हो गई पर बुद्ध के त्रिरत्न में उसकी कोई श्रद्धा नहीं थी।

उसने सुन रखा था कि तथागत सदैव रूप को अनित्य कहा करते हैं। अत: काफी समय तक वह कभी धर्मसभा में नहीं गई पर एक दिन वह बहुत साहस जुटा कर धर्मोपदेश सुनने गई। उसने अपने आपको शास्ता की दृष्टि से छिपाकर रखा। इधर बुद्ध ने अपनी अंतर्दृष्टि से देख कर सोचा कि रूपनन्दा को किस प्रकार शिक्षा दी जाए। काँटा निकालने के लिए काँटे का ही व्यवहार किया जाता है- यह सोचकर उन्होंने एक अति सुंदर षोडसी लड़की को अपने पीछे प्रकट किया जो उनको पंखा झल रही थी। उस तरूणी को या तो रूपनन्दा देख सकती थी या बुद्ध। उसकी अपूर्व सुन्दरता को देख रूपनंदा को लगा कि उसके सामने वह वैसी ही थी जैसे एक राजहंसिनी के सम्मुख एक मादा कौआ खड़ी हो। उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर वह उसमें अनुरक्त हो गई।

बुद्ध ने उसकी आसक्ति देख उस तरूणी का रूप बदलना प्रारंभ कर दिया। पहले उसका षोडशी रूप बदलकर उसको बीस वर्ष की युवती के रूप में दिखाया। बाद में उसका सौन्दर्य क्रमश: कम करते हुए उसे प्रौढ़ और एक बुढ़िया के रूप में दिखा दिया। बूढ़ी औरत के रूप में वह एक लाठी के सहारे बहुत कठिनाई से अपने काँपते हुए शरीर को संभाल रही थी। बाद में वह रोगग्रस्त होकर गिर गई, अपने ही मलमूत्र में लोटती रही और दर्द से पीड़ित रही। अंतत: मृत्यु को प्राप्त हुई। शरीर पूरी तरह फूल गया, बदबू आने लगी और शरीर के नौ छिद्रों से दुर्गन्धयुक्त द्रव्य बाहर आने लगे; आँख, कान, मुँह सभी से कीड़े बाहर आने लगे। कौआ, चील उस शरीर को खाने के लिए टूट पड़े।

इन दृश्यों को देख रूपनन्दा की उस युवती में आसक्ति खंडित हो गई और उसमें पूर्ण वैराग्य जाग उठा। उसकी मन:स्थिति देखकर, तथागत ने समय को अनुकूल पाकर, रूपनन्दा को समझाया कि अपने रूप पर किस बात का अभिमान ? इस तरूणी की जो गति हुई है, वह तुम्हारी भी होगी और सबों की भी होगी।

यह शरीर रोगों का घर है। अन्दर में गन्दा, अपवित्र, दुर्गन्धमय नाला बह रहा है। पाखाना-पेशाब, थूक-खखार, नाक-आँख-कान की गंदगी, पीब आदि अनेक गंदगियों को ढँककर, ऊपर से उसे सुन्दर बना दिया गया है। ऐसा अपवित्र शरीर शाश्वत भी नहीं है, वह अनित्य है। गन्दगी से भरा हुआ घड़ा, जिसे बाहर से बहुत सुंदर ढंग से रंग दिया गया हो, एक दिन टूट जाएगा। ऐसे शरीर से कोई मूर्ख व्यक्ति ही आसक्ति करेगा। ऐसे शरीर की प्रशंसा तो कोई महामूर्ख ही करेगा। सत्य का जो अन्वेषी इस सत्य को पहचान लेगा, वह इस शरीर के धोखे से बाहर आ जाएगा। जो इस शरीर के धोखे से बाहर आ जाएगा, वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाएगा।

बुद्ध ने यह भी समझाया कि यह शरीर तीन सौ अस्थियों का घर मात्र है। जैसे शाक-सब्जी के वृक्ष को खड़ा रखने के लिए उसे लकड़ी से बाँध दिया जाता है, जैसे खर को बल्लियों एवं रस्सी से बाँधकर उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर, झोपड़ी का निर्माण किया जाता है, वैसे ही तीन सौ हड्डियों को एकत्र कर उन्हें पेशियों से बाँध दिया जाता है, और उसके अन्दर रक्त की नलिका बनाकर माँस द्वारा स्थायी रूप देकर, चर्म द्वारा ढँक दिया जाता है। इस शरीर के अंदर बुढ़ापा, बीमारी व मृत्यु के साथ-साथ अभिमान आदि को छुपाकर रख दिया जाता है जो समय-समय पर अपना असर दिखाते हैं। ऐसे शरीर से अगर कुछ प्राप्त हो सकता है तो वह है शारीरिक तथा मानसिक कष्ट; उससे आनंद कहाँ ?

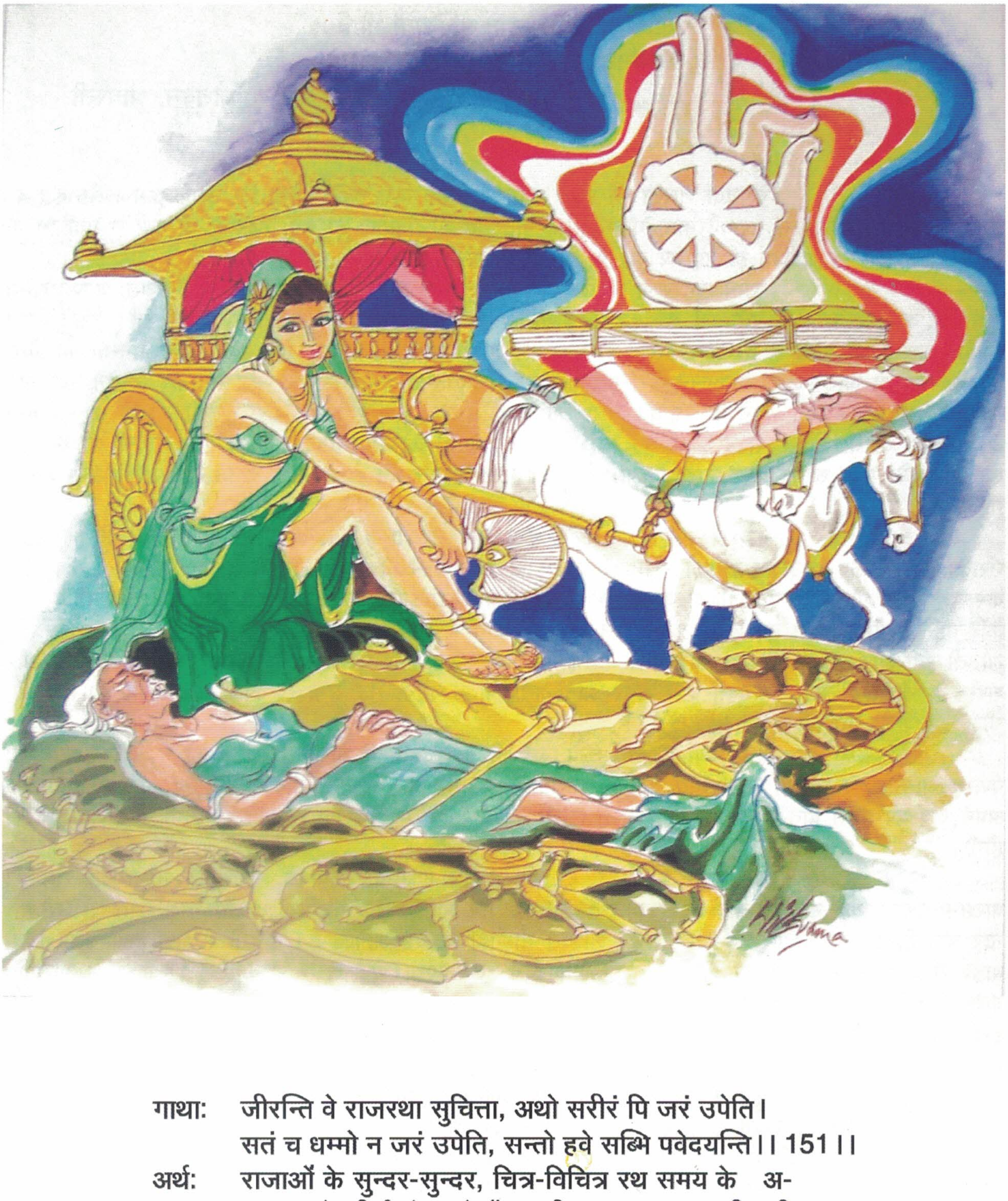

गाथा: जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति।। 151।।

अर्थ: राजाओं के सुन्दर-सुन्दर, चित्र-विचित्र रथ समय के अन्तराल से जीर्ण हो जाते हैं। उसी प्रकार मानव शरीर भी जीर्ण हो ही जाता है। हाँ-सज्जनों द्वारा अनुमोदित धर्म कभी जीर्ण नहीं होगा-सज्जनों की ऐसी युक्ति है।

बुद्ध उपदेश : सनातन सत्य
मल्लिकादेवी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन राजा प्रसेनजित की पत्नी मल्लिका देवी अपने घर के स्नान गृह में प्रविष्ट हुई। उसके साथ ही उसका पालतू कुत्ता भी स्नान गृह में प्रविष्ट हो गया। हाथ-मुँह धोकर जाँघों को धोने के लिए जब वह झुकी तब उसका कुत्ता उसके साथ मैथुन करने लगा। रानी ने उस स्पर्श सुख को जारी रहने दिया। राजा ने अपने झरोखे से रानी को उस स्थिति में देख लिया और जब वह वापस आई तो पूछा कि वह कुत्ते के साथ मैथुन क्यों कर रही थी ? रानी ने इसे नकार दिया और साथ ही राजा को समझा दिया कि वह स्नानागार अजीब प्रकार का है। बाहर से देखने वाले को उसमें प्रविष्ट हुआ व्यक्ति दो व्यक्तियों के रूप में दिखता है। विश्वास दिलाने के लिए राजा को स्नानागार में जाने के लिए कहा। राजा के स्नानागार में प्रविष्ट होते ही रानी ने झरोखे से चिल्लाकर कहा कि उस बकरी के साथ क्यों संबंध बनाए हुए हो ? इस प्रकार बाल स्वभाव के राजा ने रानी की बात मानकर उस घटना को भुला दिया पर रानी को उसकी गलती कचोटती रही। उसने महसूस किया कि यद्यपि राजा ने उसकी बात मान ली थी फिर भी निषिद्ध कर्म करके उसने पाप किया था। अब उसका मन दान-पुण्य में - नहीं लगता था। वह दुखी मन के साथ मर गई और नरक में चली गई।

उधर राजा यह जानने को बहुत उत्सुक था कि रानी का पुनर्जन्म कहाँ हुआ। शास्ता ने उसकी मति ऐसी रखी कि वह आठवें दिन ही यह प्रश्न पूछ पाया। सात दिनों बाद रानी का जन्म तुषित भवन में हो गया था।

आठवें दिन बुद्ध राजा के यहाँ भिक्षाटन के लिए पधारे। शास्ता ने, बाहर में, जहाँ चित्रित रथ खड़े थे, बैठने का संकेत दिया। राजा ने शास्ता को वहीं भोजन दान दिया। उसके ही पूछने पर तथागत ने बताया कि रानी का पुनर्जन्म तुषित भवन में हुआ था। राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ पर उसने बुद्ध को बताया कि रानी की मृत्यु के बाद उसका शरीर उसका साथ नहीं दे रहा था। उसे अकेलापन लग रहा था।

तब बुद्ध ने राजा को समझाया कि इस शरीर का आना-जाना तो लगा ही रहता है,। अतः इसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। शास्ता ने राजा से यह भी प्रश्न पूछा कि यह रथ किसका है। राजा ने उत्तर दिया, "यह पितामह का है और उसके बगल का रथ मेरे पिताजी का।" "और यह रथ ?", शास्ता ने पूछा। "यह रथ मेरा है।" तब बुद्ध ने राजा को समझाते हुए कहा, "तुम्हारे पितामह का रथ, आकार में समान होने पर भी तुम्हारे पिताजी के रथ के सामने फीका लगता है, जैसे तुम्हारे पिता का रथ तुम्हारे रथ के सामने फीका लगता है। जब निर्जीव काष्ठ में भी जीर्णता आ जाती है तब इस शरीर में जीर्णता कैसे नहीं आएगी ? केवल धर्म और प्रवचन जैसे सद्‌गुण की कभी हानि नहीं होती अर्थात् वह कभी समाप्त नहीं होता।"

गाथा: अप्पस्सुतायं पुरिसो, बलिवद्दो व जीरति ।
मंसानि तस्स बड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति ।।152।।

अर्थ: अल्प ज्ञान वाला पुरूष बैल के समान बढ़ता है। उसके शरीर का माँस तो बढ़ जाता है, पर उसकी बुद्धि नहीं बढ़ती। उसी प्रकार अल्पश्रुत व्यक्ति विशालकाय होने पर भी किसी का कोई भला नहीं कर पाता।

मन बनाम शरीर
काल उदयि स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

काल उदयि स्थविर को इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि कहाँ क्या कहना चाहिए। जब गृहस्थ आनन्दोत्सव मनाते रहते थे तो वह वहाँ श्मशान के उपयुक्त गाथाएं गाता। इसी प्रकार अगर किसी परिवार के लोग किसी की मृत्यु के कारण शोक मना रहे होते थे तो वह वहाँ खुशी के दोहे सुनाता। इस प्रकार वह जहाँ कहीं जाता, कहना कुछ चाहता था और कह कुछ और ही देता था। अन्य भिक्षुओं ने काल उदयि के इस व्यवहार को देखकर बुद्ध से कहा कि काल उदयि को आनन्दोत्सव एवं शोक में भेजने से क्या लाभ क्योंकि वह तो सदैव उल्टी-सीधी बातें ही किया करता है। तब शास्ता ने बताया कि काल उदयि इस जन्म में ही नहीं, पूर्व जन्म में भी इस प्रकार का व्यवहार करता था। उन्होंने निम्न कथा सुनाई।

प्राचीन काल में वाराणसी में अग्निदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसका पुत्र सोमदत्त राजा का बहुत करीबी था। एक दिन उसके दो बैलों में से एक बैल मर गया। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा कि तुम राजा के पास जाकर एक बैल के लिए याचना करो। पुत्र को लगा कि अगर वह राजा से आग्रह करेगा तो राजा को लगेगा कि वह अपने सम्बन्ध का दुरूपयोग कर रहा है। अतः पुत्र ने पिता से आग्रह किया कि वही राजा के पास जाकर बैल की याचना करे।

पिता के तैयार हो जाने पर सोमदत्त ने पिता को निम्न वाक्य कहने के लिए याद कराया, "आदरणीय महाराज ! मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं खेती किया करता था। उनमें से एक मर गया। श्रीमान् ! उसकी जगह कृपया एक दे दीजिए, " परन्तु जब वह राजा के सम्मुख प्रकट हुआ तो कुछ यूँ कहा, "आदरणीय महाराज ! मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं खेती किया करता था। उनमें से एक मर गया। श्रीमान् ! उसकी जगह कृपया एक ले लीजिए। " उस जन्म में निम्न बुद्धि वाला वह ब्राह्मण काल उदयि ही था।

काल उदयि जैसा व्यक्ति एक साँड़ की तरह है। साँड़ किसी काम का नहीं होता है । अतः उसे जंगल में अकेला छोड़ दिया जाता है। वह खूब खाता है और शरीर से मांसल हो जाता है पर उसकी बुद्धि ज्यों-की -त्यों बनी रहती है। वह समाज के ऊपर बोझ ही होता है।

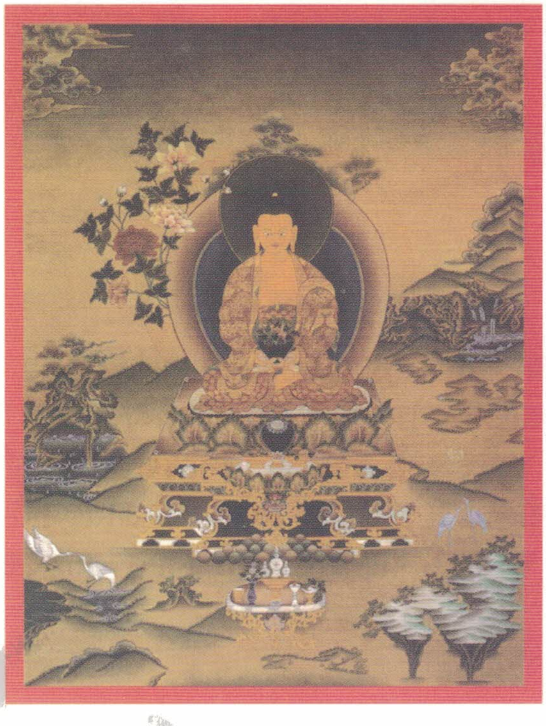

गाथा: अनेकजातिसंसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं ।।153।।

अर्थः इस शरीर रूपी भवन के निर्माणकर्त्ता की खोज में विभिन्न जन्मों में इस संसार में बिना रुके आते-जाते दौड़ता रहा। इस संसार में बार-बार जन्म लेना वस्तुतः दुखदायी है।

सृष्टि की महानतम खोज
आनन्द को उपदेश

स्थान : बोधिवृक्षमूल, बोधगया

यह गाथा बुद्ध ने बोधगया में पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति के बाद उच्चरित की थी । बाद में आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में भी इसकी पुनरावृत्ति की थी।

उरविला के जंगलों में, निरंजना नदी के तट पर सिद्धार्थ ने 2553 वर्षों पूर्व वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन दृढ़ संकल्प लिया कि आज सत्य के दर्शन करके ही ध्यान से उठूँगा। सूर्यास्त से पूर्व ही वे उस पवित्र पीपल के वृक्ष, जिसे आज बोधि वृक्ष कहा जाता है, के नीचे आकर ध्यानस्थ हो गए। इधर मार ने यह सोचकर कि यह"करो या मरो" का दिन है, अपनी पूरी शक्ति लगा दी। तरह-तरह के प्रलोभन दिए। एक से एक सुन्दरियों का समूह भेजा। राक्षस-दैत्यों, नाग-पशुओं का झुंड भेजा पर कोई उन्हें टस से मस नहीं कर पाया। उसकी पुत्रियाँ आरति, तन्हा आदि के असफल रहने पर, उनमें से एक ने यशोधरा का रूप धरा और "यशोधरा" बुद्ध के सामने आकर उनसे प्रार्थना करने लगी कि वे व्यर्थ की खोज कर रहे हैं। पर बुद्ध बिल्कुल भी न डिगे। साक्षी पीपल का वृक्ष भी अडिग रहा। सूर्यास्त होने से पूर्व ही मार की सेना हारकर भाग गई। रात्रि के प्रथम भाग में उन्होंने अपने पूर्व जन्मों का एक-एक कर अवलोकन किया। मध्य भाग में पूरी सृष्टि पर दृष्टि फेरी कि यह अस्तित्व कहाँ से प्रारंभ होकर कहाँ समाप्त होता है। अन्तिम प्रहर में समस्त सृष्टि के प्रति दया और करूणा की लहरों से ओतप्रोत होकर प्रेममय भाव भेजा और सूर्योदय के समय उन्होंने सम्पूर्ण सत्य का अवलोकन किया। उसके बाद उनके मुखारविंद से ये गाथाएं स्वतः ही निकल पड़ीं जो युग-युगान्तरों के लिए अमर हो गईं।

टिप्पणी : बुद्ध की गाथा का आशय है : जिन-जिन सामग्रियों से तुम यह कारागार बनाते हो वे सारी सामग्रियाँ नष्ट कर दी गई हैं। जिन-जिन यंत्रों से तुम इस कारागार का निर्माण करते हो वे सभी तोड़ दी गई हैं। सारी संरचना को ध्वस्त कर दिया गया है। मेरा मन अब पूर्णतः शान्त हो गया है । जो तृष्णा थी वह पूर्णतः समाप्त हो गई है।

मेरी यात्रा का सिलसिला, आवागमन का चक्र अनन्य जन्मों के रूप में चल रहा था। मैं उन जन्मों के रचयिता की खोज कर रहा था पर सदैव असफल रहा था। इस शरीर रूपी कारागार के निर्माणकर्ता ! आज मैंने तुम्हें पकड़ लिया है। आवागमन का यह चक्र बहुत ही दुखदायी था। तुम्हें अंततः खोज ही लिया। तुम्हारी हर जन्म में मेरे लिए चुपचाप कारागार बनाने की आदत पकड़ी गई। अब तुम मेरे लिए "स्व" का कारागार फिर कभी नहीं बना सकोगे।

गाथा: गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खितं ।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा ।।154।।

अर्थ: हे गृहकारक ! (तृष्णा !) मैंने अंततः तुम्हें देख ही लिया है। अब तुम पुनः कारागार नहीं बना सकोगे। सभी कड़ियाँ टूट गई हैं। शिखर भी ध्वस्त हो गया है। मेरा चित्त संस्काररहित हो चुका है। तृष्णा क्षय (अर्हत्व) प्राप्त हो चुका है।

निर्माण सामग्री नष्ट कर दी गई
आनन्द को उपदेश

जिस प्रकार कारागार के निर्माण के लिए मजदूरों, मिस्त्रियों एवं कारीगरों की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इस शरीर रूपी कारागार के निर्माण के लिए सांसारिक इच्छा की आवश्यकता पड़ती है : राग, द्वेष एवं तृष्णा की जरूरत पड़ती है। बुद्ध के पूर्व जन्मों में ये किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते थे पर आज बोधि वृक्ष के नीचे उन्होंने इन्हें पहचान लिया जो अपने छल-बल द्वारा, माया का सहारा लेकर सदा से उन्हें गुमराह किए हुए थे। ज्ञान की अग्नि में आज उन्होंने इन सबों को भस्म कर दिया।

भवन के निर्माण के लिए एक मजबूत शहतीर की आवश्यकता होती है जो छत का वजन संभालती है। बुद्ध ने उस शहतीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अब वह शहतीर छत का वजन कैसे उठा पायेगी ? गृह निर्माण सामग्री छरी, सीमेंट, चूना सभी को इधर-उधर मिट्टी-पानी में मिला बरबाद कर दिया, अर्थात् उन इन्द्रियों की सामग्री को बरबाद कर दिया जिनसे इस शरीर रूपी कारागार का निर्माण होता था।

टिप्पणी: गाथा 153-154 एक जन्म जन्मान्तर के थके पथिक की यात्रा समाप्ति पर प्रसन्नता का द्योतक है।

वस्तुतः बुद्ध इन दोनों गाथाओं के माध्यम से मार को एवं कर्म के सृजनकर्ता को चुनौती देते हैं कि किस प्रकार उन्हें पूर्व जन्मों में इन्द्रियों की मदद से छल द्वारा, तृष्णा का मद्यपान करा-कराकर, राग-रंग, रूप-अरूप का दृश्य दिखाकर गुमराह कर दिया जाता था जिससे उन्हें हर बार धोखा हो जाता था। उन्हें हर जन्म में पकड़कर एक बार पुनः शरीर रूपी कारागार में डाल दिया जाता था। अब वे मार को चुनौती देते हैं कि तुममें अगर हिम्मत है तो एक बार फिर मेरे लिए नूतन कारागार बनाकर दिखाओ।

बुद्ध की ये दोनों गाथाएं मानव जाति के लिए आशा की किरण के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। इनसे सामान्य जन को भी यह ढाढ़स बँधता है कि उसके लिए भी एक भविष्य है। वह समझ पाता है कि यद्यपि वह बेड़ियों में जकड़ा हुआ है पर उन बेड़ियों को तोड़कर उनसे निकल सकता है। बुद्ध अगर उस जंजाल से निकल सकते हैं तो प्रयत्न करने से वह भी उस जाल से मुक्त हो सकता है ।

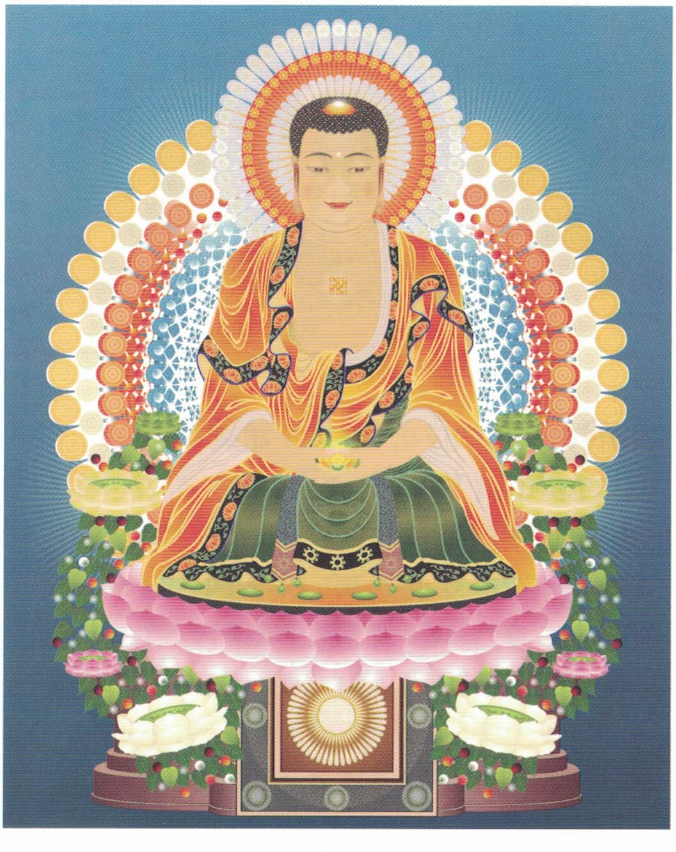

गाथा: अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलब्धा योब्बने धनं ।
जिण्णक्रोंचा व झायन्ति, खीणमच्छे व पल्लले ।।155।।

अर्थ: जो लोग जीवन के प्रथम काल में धर्माभ्यास नहीं करते तथा युवास्था में धन का अपव्यय करते हैं वे समय के अन्तराल पर उसी प्रकार चिंतातुर, दु:खी रहते हैं जैसे एक टूटे पंख वाला बूढ़ा क्रौंच पक्षी मतस्यविहीन तालाब के किनारे बैठा-बैठा दु:खी रहता है। (अफसोस करने के अतिरिक्त वह अन्य कुछ कर ही नहीं पाता)

अब पछताये होत क्या ?
महाधनी श्रेष्ठी की कथा

स्थान : ऋषिपत्तन, सारनाथ

वाराणसी में अस्सी करोड़ मुद्रा वाले एक धनी श्रेष्ठी के घर में एक पुत्र का जन्म हुआ। माता-पिता ने सोचा कि धन का बाहुल्य है। अतः पुत्र को मात्र नृत्य-संगीत कलायें सिखाईं। उसी नगर में अस्सी करोड़ मुद्रा वाला एक अन्य परिवार भी था जिसकी एक पुत्री थी। उनकी भी सोच वैसी ही थी तथा उन्होंने भी अपनी पुत्री को मात्र नृत्य-संगीत में दीक्षित किया। बाद में दोनों का विवाह हो गया। कुछ समय बाद दोनों के माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। वह श्रेष्ठीपुत्र प्रतिदिन तीन बार राज दरबार जाता था।

नगर के कुछ धूर्तों ने, उसके पैसे का लालच कर, थोड़ी-थोड़ी शराब पिलाकर, उसे नशे की आदत ऐसी लगा दी कि कुछ समय में ही उसका और उसकी पत्नी का सारा धन बरबाद हो गया। तत्पश्चात् शराब ने उसके घर की सारी सामग्री बिकवा दी। अब वह बेघर, निर्धन होकर भीख माँगकर अपनी पत्नी के साथ सड़कों पर रहता था।

एक दिन वह विहार के सम्मुख उच्छिष्ट भोजन ग्रहण कर रहा था। तभी बुद्ध और आनन्द उधर से गुजरे। श्रेष्ठी पुत्र को देखकर तथागत मुस्कुरा दिए। आनन्द ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने इस महान धनीश्रेष्ठी के विषय में बताया। उन्होंने कहा कि अगर युवावस्था में ही इस युवक ने अपने धन का सदुपयोग किया होता तो आज वह नगर का सबसे धनी व्यक्ति होता। इसके विपरीत यदि उसने अध्यात्म का मार्ग चुना होता तो आज वह अर्हत्व प्राप्त कर चुका होता और उसकी पत्नी अनागामी होती। अगर उसने अपनी प्रौढ़ अवस्था में भी धन का उपयोग किया होता तो आज वह नगर का द्वितीय सबसे धनी सेठ होता। अगर प्रव्रज्या ग्रहण किया होता तो आज वह अनागामी होता और उसकी पत्नी सकृदागामी होती। इसी तरह पूरा जीवन बीतने पर भी जीवन के अपराह्न बेला अर्थात् तीसरे प्रहर में भी धन का सदुपयोग किया होता तो आज वह नगर का तीसरा सबसे धनी श्रेष्ठी होता, इसके विपरीत यदि वह अध्यात्म के पथ पर गया होता तो वह सकृदागामी होता और उसकी पत्नी स्रोतापन्न होती। पर जीवन के तीनों प्रहरों को उसने यूँ ही व्यर्थ गँवा दिया। रात्रि सोकर, दिवस खाकर, यह जो हीरा तुल्य जन्म था, उसे यूँ ही व्यर्थ गँवा दिया।

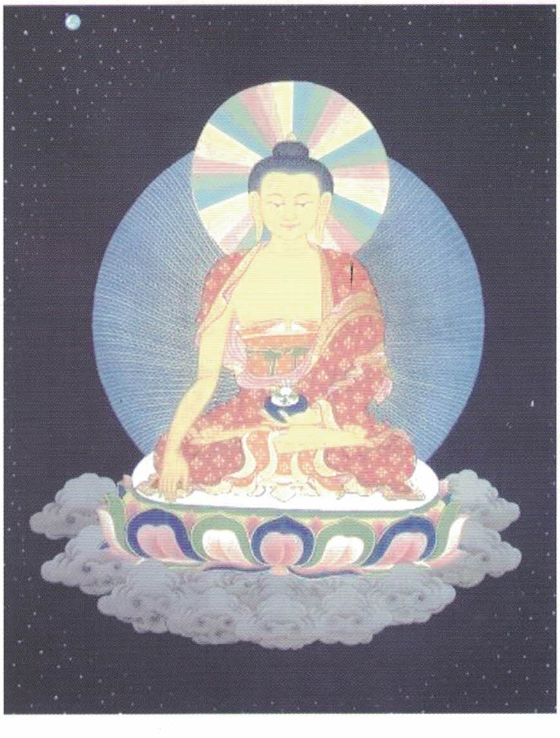

गाथा: अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलब्धा योब्बने धनं ।
सेन्ति चापातिखीणाव, पुराणानि अनुत्थुनं ।।156।।

अर्थ: इसी प्रकार जिन लोगों ने जीवन के प्रथम काल में धर्माभ्यास नहीं किया, युवास्था में धन नहीं कमाया। वे लोग धनुष से छूटे हुए वाण की तरह अपनी बीती बातों की प्रशंसा करते हुए चिन्तित होकर पड़े रहते हैं।

जब चिड़िया चुग गई खेत
महाधनी श्रेष्ठी की कथा

जलाशय का दृष्टान्त बहुत ही सुन्दर है। जल का अभाव धन का अभाव इंगित करता है। मछलियों की समाप्ति, धन-ऐश्वर्य की समाप्ति का द्योतक है। पंख टूट जाने के कारण जैसे बूढ़ा क्रौंच पक्षी उड़कर दूसरे जलाशय पर नहीं जा पाता है, वैसे ही वृद्धावस्था आने पर बूढ़ा आदमी अपने व्यर्थ गँवाए समय पर रोने के सिवाय और कुछ नहीं कर पाता।

बुद्ध ने दूसरा उदाहरण धनुष का दिया है। जैसे धनुष से वाण निकलकर कुछ दूर चलकर धरती पर गिर जाता है, अगर वहाँ से कोई उसे नहीं उठावे तो वहीं पड़ा रहता है तथा समय के अन्तराल से दीमक आदि खाकर उसे नष्ट कर देते हैं, वैसे ही मूर्ख जन अपनी आयु के तीनों भाग का अतिक्रमण कर अंत में आत्मोद्धार न कर, दुःखी मन से समय बिताते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अतः बुद्धिमानी इसी बात में है कि समय रहते ही चेता जाए।

टिप्पणी: मनुष्य को समझना चाहिए कि इस धरती पर उसके जीवन की अवधि सीमित है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ शरीर का क्षय होता है और बूढ़े क्रौंच पक्षी की तरह एक समय ऐसा भी आता है कि शरीर जवाब दे जाता है। वह कुछ भी करने में, हमें सहयोग देने में असमर्थ होता है क्योंकि मशीन की तरह इसने अपना काम पूरा कर दिया है, उसका जीवन काल समाप्त हो गया है। अगर उस देह धारक ने इन वर्षों में अपने शरीर का सदुपयोग नहीं किया तो इसमें शरीर का क्या दोष ?

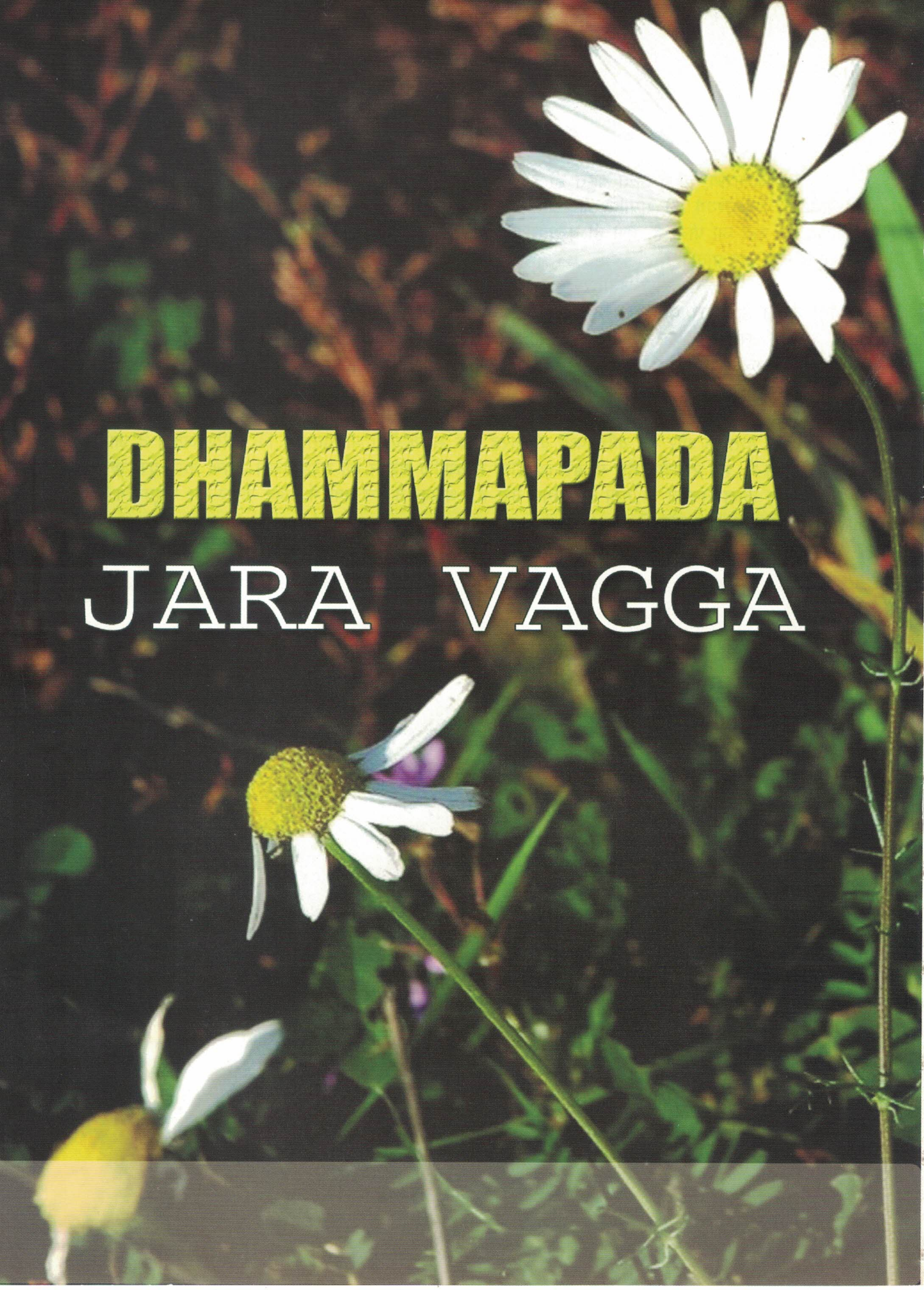
DHAMMAPADA
JARA VAGGA

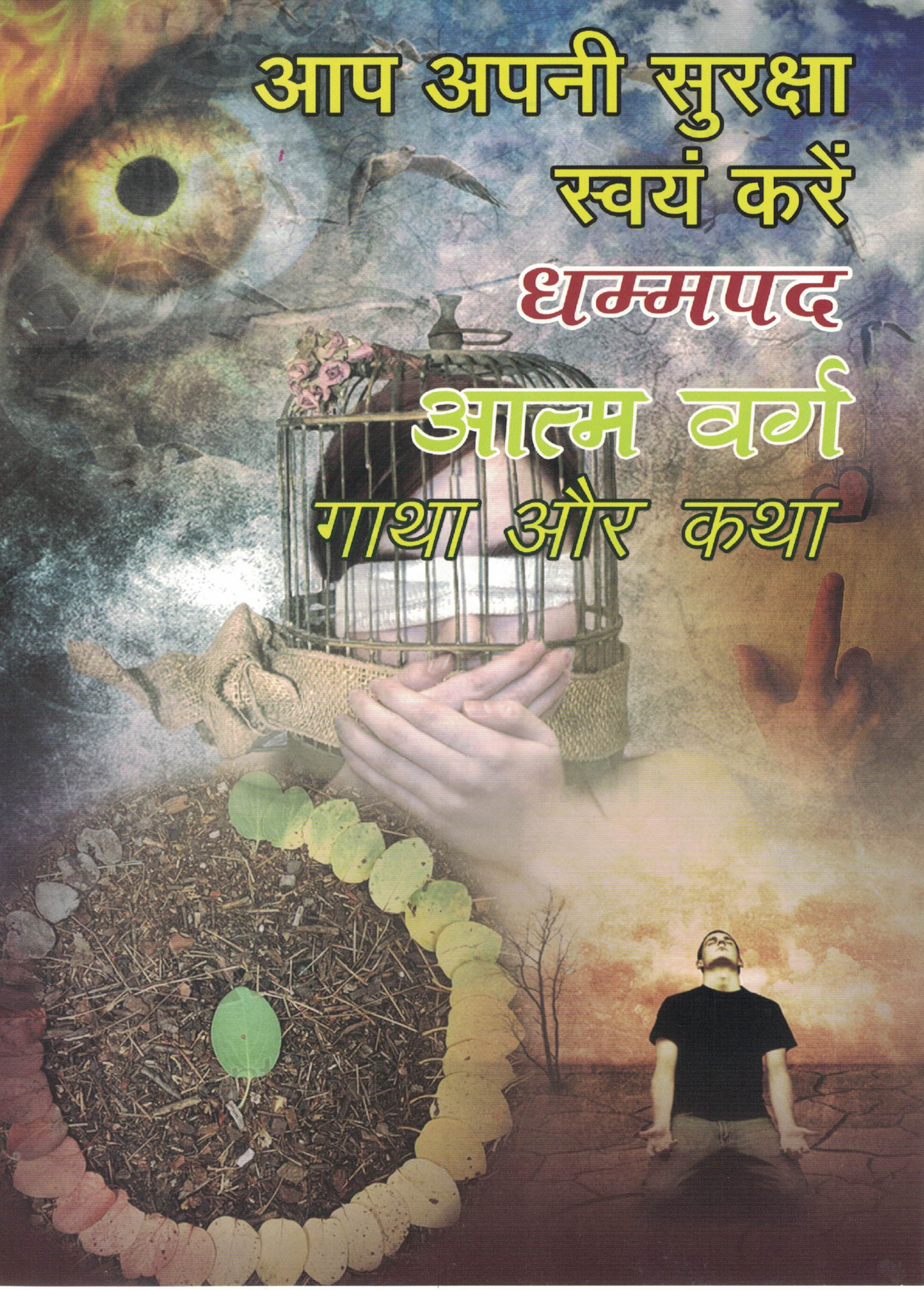
आप अपनी सुरक्षा
स्वयं करें
धम्मपद
आत्म वर्ग
गाथा और कथा

आप अपनी सुरक्षा स्वयं करें

धम्मपद

आत्म वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

आत्म वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	बोधिराजकुमार की कथा	157	अपनी रक्षा स्वयं करें	143
2.	स्थविर उपनन्द की कथा	158	दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने आप को संभालें	145
3.	प्राधानिक स्थविर की कथा	159	पर उपदेश कुशल बहुतेरे	147
4.	कुमार कस्सप थेर के माता की कथा	160	अपनी यात्रा आप स्वयं न करेंगे तो कौन करेगा ?	149
5.	महाकाल उपासक की कथा	161	अपने किए पाप का फल आप ही भोगेंगे	151
6.	देवदत्त की कथा	162	बुरे कर्म करने वाला, उसी के बोझ से दब जाता है	153
7.	देवदत्त द्वारा संघ में फूट डालने की कथा	163	अच्छे कर्म करना दुष्कर है, बुरे कर्म आसान	155
8.	काल स्थविर की कथा	164	अपनी बरबादी अपने ही हाथ	157
9.	चूलकाल थेर की कथा	165	शुभ, अशुभ का निर्माता मनुष्य स्वयं	159
10.	अत्तदत्थ थेर की कथा	166	अपना लाभ सर्वोपरि है	161

गाथा: अत्तानं चे पियं जञ्ञा, रक्खेय्य नं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं, पटिजग्गेय्य पण्डितो ।।157।।

अर्थ: अगर हम अपना भला चाहते हैं तो हमें अपनी रक्षा करनी चाहिए। पंडित को चाहिए कि वह तीनों प्रहर में कम से कम एक प्रहर अवश्य जागरूक रहे।

अपनी रक्षा स्वयं करें
बोधिराजकुमार की कथा

स्थान : भेसकलावन

किसी समय राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक अति भव्य महल का निर्माण किया। जब महल का निर्माण कार्य पूरा हो गया तब उसने बुद्ध को भोजन-दान हेतु आमंत्रित किया। इस विशेष आयोजन के लिए उसने उस महल को खूब सुन्दर ढंग से सजाया तथा चार प्रकार के सुगन्धों से सुगन्धित किया। उसने जमीन पर दरवाजे से लेकर अंदर तक एक लम्बी चादर बिछवा दी। राजकुमार को कोई संतान नहीं थी । अतः उसने संकल्प लिया कि अगर बुद्ध के चरण उस चादर पर पड़ गये, तो उसे संतान की प्राप्ति होगी। जब बुद्ध आ गए तब राजकुमार बोधिराज ने उन्हें तीन बार सम्मानपूर्वक अंदर प्रवेश करने का आग्रह किया। लेकिन बुद्ध ने, अंदर जाने की अपेक्षा, मात्र आनन्द की ओर देखा। आनंद बुद्ध का संदेश समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से बिछी हुई चादर हटा देने के लिए कहा। उसके बाद ही बुद्ध राजमहल में प्रविष्ट हुए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादपूर्ण भोजनदान दिया। भोजनोपरान्त राजकुमार ने उनसे पूछा कि उन्होंने उस चादर पर अपने चरण क्यों नहीं रखे। प्रत्युत्तर में बुद्ध ने राजकुमार से पूछा कि क्या उसने चादर इस मंशा से बिछाई थी कि अगर उस पर बुद्ध के चरण-स्पर्श होंगे तो उसे संतान की प्राप्ति होगी। राजकुमार ने स्वीकृतिपूर्ण उत्तर दिया। तब बुद्ध ने उसे बताया कि राजकुमार और उसकी पत्नी को पूर्व काल में किए गए बुरे कर्मों के कारण संतान की प्राप्ति नहीं होगी। इसके बाद बुद्ध ने उनके भूतकाल की कथा सुनाई :

अपने एक पूर्व जन्म में राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज दुर्घटना के मात्र बचे हुए यात्री थे। वे एक अनजान द्वीप पर छूट गए और वहाँ जीवित रहने के लिए चिड़ियों के अंडे खाते गए। जब अंडे खतम हो गए तब वे चिड़ियों को मारकर खाने लगे और इस प्रकार अपने को जीवित रखा। ऐसा करते समय उनके हृदय में जरा भी दुःख नहीं था, जरा भी दया नहीं थी। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान की प्राप्ति नहीं होगी। अगर अपने कृत का उन्हें जीवन के किसी काल में जरा भी अफसोस होता तो इस जन्म में उन्हें एक या दो संतानों की प्राप्ति होती। तब राजकुमार को इंगित करते हुए बुद्ध ने समझाया, "जो अपने आप से प्रेम करता है उसे जीवन के प्रत्येक काल में अपनी रक्षा करनी चाहिए और नहीं तो कम से कम एक काल में तो अवश्य रक्षा करनी चाहिए।"

टिप्पणी : अगर हम समझते हैं कि हम अपना भला चाहते हैं तो फिर हमें अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। हमें अपने आप को जीवन के तीन कालों में से कम से कम एक काल में अवश्य सुरक्षित रखना होगा। वे काल हैं - बाल्यकाल, युवावस्था एवं बुढ़ापा।

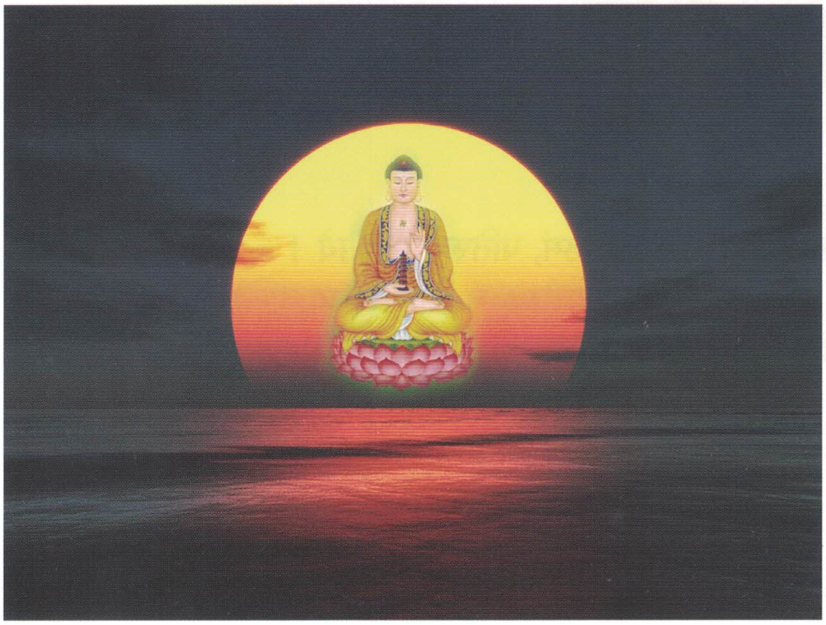

गाथा: अत्तानमेव पठमं, पतिरूपे निवेसये ।
अथञ्ञमनुसासेय्य, न किलिस्सेय्य पण्डितो ।।158।।

अर्थ: बुद्धिमान पुरूष को चाहिए कि पहले वह स्वयं को उचित कार्य में लगावे और तब दूसरों को उपदेश दे। ऐसा करने से वह व्यक्ति दुख को प्राप्त नहीं होता।

दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने आप को संभालें
स्थविर उपनन्द की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

उपनन्द, शाक्य वंश का एक भिक्षु था और बहुत ही निपुण वक्ता था। वह दूसरों को लालची न होने की शिक्षा दिया करता था और यह भी शिक्षा दिया करता था कि इंसान की आवश्यकताएं सीमित होनी चाहिए, उसे संतोष करना चाहिए। वह संतोष एवं मितव्ययिता के ऊपर व्याख्यान देकर सभी को प्रभावित कर दिया करता था लेकिन वह जो शिक्षा देता था उसे स्वयं अपने जीवन में नहीं उतारता था। दूसरे भिक्षुओं को जो चीवर आदि प्राप्त होते थे वह उन्हें भी ले लेता था।

एक बार उपनन्द गाँव के एक विहार में वर्षाकाल के ठीक पहले गया। कुछ युवक भिक्षुओं ने उसकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर उससे वर्षाकाल में उसी विहार में रूक जाने का आग्रह किया। उसने उनसे प्रश्न किया कि सामान्यत: वर्षाकाल के लिए दान के रूप में प्रत्येक भिक्षु को कितने चीवर मिलते हैं। उन्होंने बताया कि प्रत्येक भिक्षु को सामान्यत: एक चीवर मिलता है। इसलिए वह वहाँ नहीं रूका, लेकिन अपने जूते उस विहार में छोड़ गया। अगले विहार में उसे जानकारी मिली कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षावास में दान के रूप में दो चीवर प्राप्त होते हैं। अत: उसने वहाँ अपनी छड़ी छोड़ दी। अगले विहार में भिक्षुगण को वर्षावास के दान के रूप में तीन चीवर प्राप्त होते थे। अत: उसने वहाँ अपना जलपात्र छोड़ दिया। अंतत: उसने उस विहार में, जहाँ भिक्षुगण को चार चीवर प्राप्त होते थे, अपना वर्षावास बिताया।

वर्षावास के उपरांत उसने अन्य विहारों से, जहाँ उसने अपनी निजी सामग्री छोड़ रखी थी, अपने हिस्से के चीवर की माँग कर उन्हें एक गाड़ी पर लादा और अपने पुराने विहार में आ गया। रास्ते में दो युवा भिक्षुओं से उसकी भेंट हुई जो दान में प्राप्त दो चीवरों एवं मखमल के एक कीमती कंबल का आपस में बँटवारा नहीं कर पा रहे थे। चूँकि बँटवारे पर उनमें आपस में सहमति नहीं बन पा रही थी, उन्होंने उपनन्द से बँटवारा कर देने का आग्रह किया।

उपनन्द ने दोनों को एक-एक चीवर दे दिया और कीमती कंबल अपने पारिश्रमिक के रूप में रख लिया।

दोनों ही भिक्षु उसके निर्णय से संतुष्ट नहीं हुए लेकिन वे इस बारे में कुछ नहीं कर सकते थे। असन्तुष्ट एवं निराश होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें पूरी जानकारी दी। बुद्ध ने उन्हें समझाया, "जो दूसरों को शिक्षा देता है उसे पहले स्वयं को शिक्षा देनी चाहिए और उस शिक्षा को पहले स्वयं अमल में लाना चाहिए।"

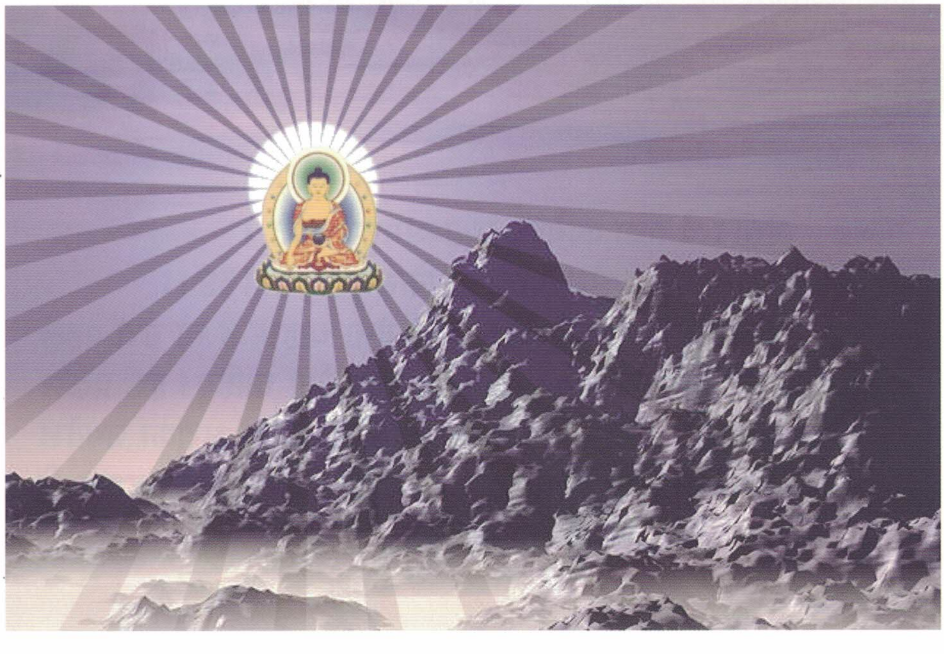

गाथा: अत्तानं चे तथा कयिरा, यथाञ्ञमनुशासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ, अत्ता हि किर दुद्दमो ।।159।।

अर्थ: अगर मनुष्य दूसरों को उपदेश देना चाहता है तो उसे पहले अपने आप को उसके अनुरूप बना लेना चाहिए। इस प्रकार स्वयं जब इन्द्रियों का दमन कर लेता है तब उसका उपदेश सफल होता है; स्वयं का दमन करना, अनुशासित करना ही सबसे बड़ी चुनौती है।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे
प्राधानिक स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

भिक्षु प्राधानिक, बुद्ध से ध्यान पद्धति सीखकर, अनेक भिक्षुओं के साथ वन के लिए कूच कर गया। वहाँ उसने भिक्षुओं को सतत् अप्रमत्त रहकर ध्यान साधना करने की सीख दी। दूसरों को ऐसी शिक्षा देकर वह स्वयं लेट जाता और फिर सो जाता। युवक भिक्षु उसकी आज्ञा का अनुपालन करते। वे रात्रि के प्रथम प्रहर में ध्यान-साधना करते और जब रात्रि-शयन को जाने को होते तो प्राधानिक जग जाता था और उन्हें अपने अभ्यास के लिए वापस जाने के लिए कहता। जब वे ध्यान-साधना के बाद द्वितीय या तृतीय प्रहर में वापस आते तो फिर वह उसी बात की पुनरावृत्ति करता।

चूँकि वह सदैव इसी ढंग से शिक्षा देता रहा, युवक भिक्षुगण को कभी भी मन की शांति प्राप्त नहीं हुई, इसलिए ध्यान-साधना पर वे ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाए और न गाथाओं को ही हृदयंगम कर पाए। जब उन्होंने पता लगा लिया कि उनका गुरू प्राधानिक केवल दूसरों को शिक्षा देता है पर अधिकांश समय वह स्वयं सोया करता है तो उन्होंने टिप्पणी की, "हम तो बरबाद हो गए, हमारा शिक्षक केवल हमें डाँटना जानता है, लेकिन वह स्वयं कुछ नहीं करते हुए अपना समय बरबाद कर रहा है।"

इस समय तक चूँकि भिक्षुओं को पर्याप्त विश्राम नहीं मिल रहा था, वे थक गए थे और बेचैन रहने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी भिक्षु अपनी ध्यान-साधना में जरा भी विकास नहीं कर पाया।

वन के प्रवास से लौटने पर भिक्षुगण बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उनका कुशल-क्षेम पूछने के बाद उनसे प्रश्न किया, "भिक्षुओं ! क्या तुम अप्रमत्त स्थिति का अनुपालन कर पाये ? क्या तुम ईमानदारी के साथ ध्यान-साधना कर पाए ?" तब भिक्षुओं ने उन्हें पूरी कहानी सुनाई । बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं ! अगर मनुष्य दूसरों को शिक्षा देना चाहता है तो उसे पहले अपने ऊपर लागू कर लेना चाहिए क्योंकि इन परिस्थितियों में वह अगर अपने आप को संयमित कर दूसरों को संयमित होने के लिए कहता है तो दूसरे भी संयमित हो जाएंगे।"

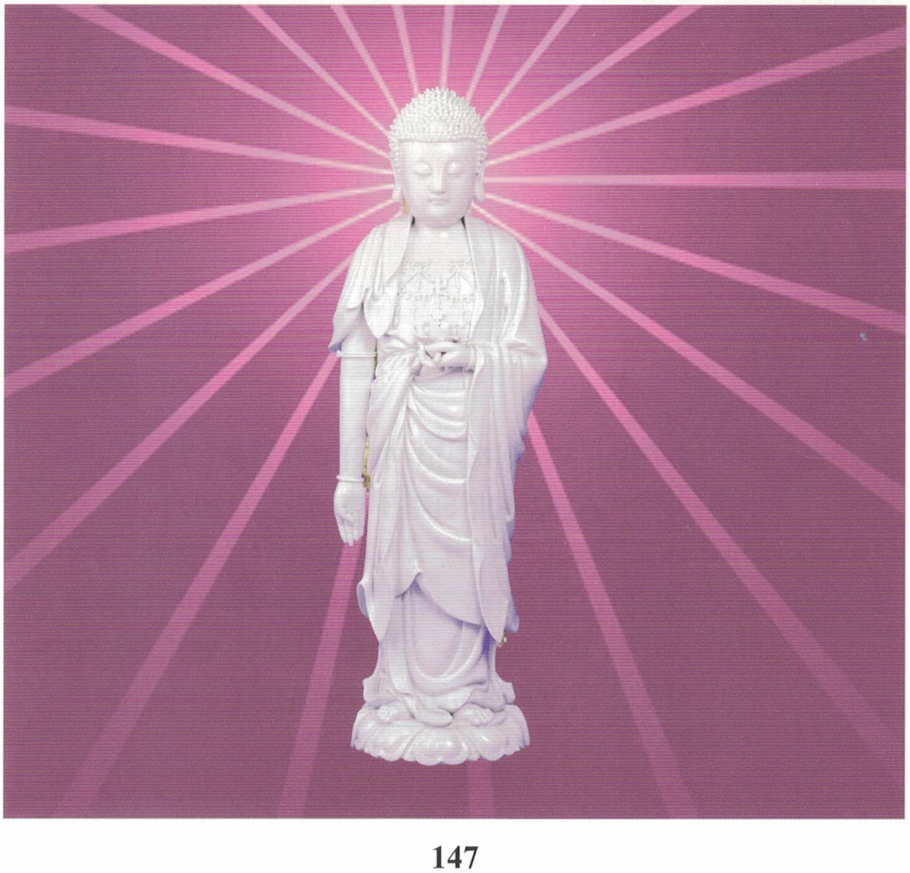

गाथा: अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं ।।160।।

अर्थ: मनुष्य अपना रक्षक स्वयं है। कोई दूसरा रक्षक कैसे हो सकता है ? स्वयं अपना रक्षक होना - यह एक विचित्र एवं कठिन प्रकार का रक्षा का विषय है। इस रक्षा को आत्म-अनुशासन से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी यात्रा आप स्वयं न करेंगे तो कौन करेगा ?
कुमार कस्सप थेर के माता की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक नवविवाहिता युवती ने अपने पति से प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। उसने उसे अनुमति दे दी। अज्ञानवश वह देवदत्त के विहार में भिक्षुणियों के पास जा वहाँ प्रव्रजित हो गई। यह भिक्षुणी प्रव्रज्या ग्रहण करने के पूर्व से ही गर्भवती थी, लेकिन वह इस बात को नहीं जानती थी। समय के अन्तराल से गर्भ दिखने लगा। तब दूसरी भिक्षुणियाँ उसे अपने गुरू देवदत्त के समक्ष ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ आश्रम में वापस जाने का आदेश दे दिया। इस पर उसने दूसरी भिक्षुणियों से कहा, "मैं तुम्हारे शिक्षक देवदत्त की शिष्या नहीं बनना चाहती थी; मैं तो यहाँ गलती से आ गई हूँ। कृपया मुझे जेतवन विहार ले चलो, मुझे बुद्ध के पास ले चलो।" इस प्रकार वह बुद्ध के सम्मुख पहुँची। बुद्ध जानते थे कि उसने प्रव्रज्या से पूर्व ही गर्भधारण किया था, अत: वह निर्दोष थी। उन्होंने कोसल राजा पसेनदि, एवं अनाथपिंडिक और पूर्वाराम विहार की दाता विशाखा को बुला भेजा। तब उन्होंने उपालि को निर्देश दिया कि इस विषय की पूरी जाँच की जाये।

विशाखा उस नवयुवती को एक पर्दे के पीछे ले गई, उसने जाँच की और भन्ते उपालि को सूचित किया कि प्रव्रज्या ग्रहण करते समय वह गर्भिणी थी। स्थविर उपालि ने तब घोषणा की कि वह स्त्री पूर्णतया निर्दोष है, उसने शीलभंग नहीं किया है। समय आने पर उसे एक पुत्र पैदा हुआ। राजा पसेनदि ने उसे गोद ले लिया और उसका नाम कुमार कस्सप रखा गया। जब वह बालक सात वर्ष का हुआ तब उसे पता चला कि उसकी माता एक भिक्षुणी थी। वह भी बुद्ध से आर्शीवाद ग्रहण कर सामनेर बन गया। जब वह बड़ा हुआ तब वह संघ में शामिल कर लिया गया। भिक्षु के रूप में उसने बुद्ध से ध्यान साधना का आलंबन लिया और तपस्या करने वन में चला गया। वहाँ उसने पूरी तन्मयता, लगन और परिश्रम से ध्यान-साधना की और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर गया। लेकिन वह आगे भी बारह वर्षों तक वन में निवास करता रहा। इस प्रकार उसकी माँ ने उसे बारह वर्षों तक नहीं देखा और वह अपने पुत्र को देखने के लिए तड़प रही थी। एक दिन उसे देखकर, भिक्षुणी माँ अपने पुत्र के पीछे रोती हुई, उसका नाम पुकारती हुई दौड़ पड़ी। अपनी माँ को देखकर, कुमार कस्सप ने सोचा कि अगर वह अपनी माँ से अच्छा व्यवहार करेगा तो उसकी माँ की उसमें आसक्ति बनी रह जाएगी और उसका भविष्य बरबाद हो जाएगा। अत: उसके भविष्य का ध्यान रखते हुए ताकि उसका निर्वाण बाधित न हो जाए, उसने जान-बूझकर कड़े शब्दों में कहा, "तुम कैसी भिक्षुणी हो ? संघ की सदस्या हो पर एक पुत्र के प्रति अपनी आसक्ति के बंधन को भी तोड़ नहीं सकी ?"

माँ ने सोचा कि उसका पुत्र उसके प्रति अति कठोर था। उसने अपने पुत्र से पूछा कि उसके कहने का अभिप्राय क्या था। कुमार कस्सप ने जो कुछ पहले कहा था उसकी पुनरावृति कर दी। उसके उत्तर को सुनकर कुमार कस्सप की माँ ने चिंतन किया, "निश्चय ही पिछले बारह वर्षों से मैंने इस पुत्र के लिए आँसू बहाये हैं; फिर भी इसने मुझे कठोर वचन बोले हैं और निष्ठुरता से व्यवहार किया है। मेरे इस स्नेह का क्या लाभ ?" उसी समय पुत्र के प्रति आसक्ति की निरर्थकता का उसे भान हो गया। उसने तुरंत पुत्र के प्रति आसक्ति तोड़ देने का निर्णय लिया। अपनी आसक्ति को पूर्णत: तोड़कर, कुमार कस्सप की माता ने उसी दिन अर्हत्व प्राप्त कर लिया। तब बुद्ध ने संदेश दिया, "भिक्षुओं ! देवलोक की प्राप्ति के लिए या अर्हत्व की प्राप्ति के लिए आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते। आपको स्वयं सतत् कठिन प्रयत्न करना पड़ेगा।"

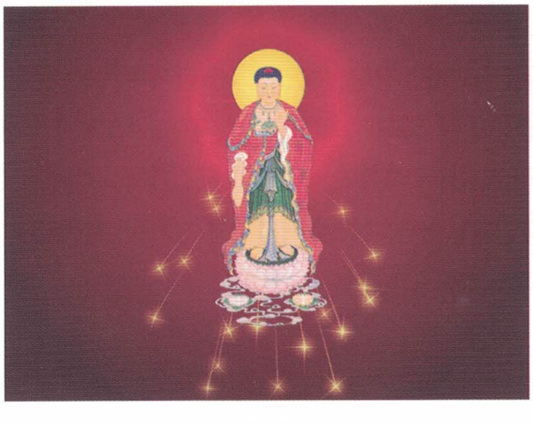

गाथा: अत्तना हि कतं पापं, अत्तजं अत्तसम्भवं ।
अभिमत्थति दुम्मेधं, वजिरं वस्ममयं मणिं ।।161।।

अर्थ: जैसे वज्रमणि (हीरा) पत्थर को छेद डालती है उसी प्रकार स्वयं द्वारा कृत, उत्पादित एवं पोषित पापकर्म उस पापकर्मी को मथ डालती है।

अपने किए पाप का फल आप ही भोगेंगे
महाकाल उपासक की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी उपोसथ के दिन, महाकाल नाम का एक उपासक जेतवन विहार गया। उसने उपोसथ व्रत रखा तथा रात्रि-पर्यन्त धर्म-श्रवण करता रहा। संयोगवश उसी रात कुछ चोर किसी गृहस्थ के घर में चोरी के लिए घुसे। उसी समय गृहस्वामी जाग गया। चोर चोरी का धन लेकर भागे और उनके पीछे गृहस्वामी। चोर सभी दिशाओं में भागने लगे। कुछ विहार की दिशा में दौड़े। पौ फट रहा था और महाकाल विहार के निकट स्थित तालाब में मुँह-हाथ धो रहा था। चोरों ने चोरी का धन महाकाल के सामने फेंक दिया और भाग गए। जब गृहस्वामी आया तो उसने महाकाल को चोरी के सामान के साथ देखा। उसे चोर समझकर वे उसपर चिल्लाने लगे, उसे धमकाया और खूब पीटा। महाकाल की उसी स्थल पर मृत्यु हो गई। प्रात:काल जब कुछ युवा भिक्षु और सामनेर विहार से जल लेने आए तो महाकाल का मृत शरीर देखा और उसे पहचान लिया।

विहार लौटने पर उन्होंने बुद्ध को, जो कुछ देखा था, उसकी सूचना दी और उनसे कहा, "आदरणीय भन्ते ! वह उपासक जो संपूर्ण रात्रि-पर्यन्त धर्म-श्रवण कर रहा था, उसकी मृत्यु हो गई है। ऐसा उपासक ऐसी दर्दनाक मृत्यु का पात्र नहीं था।" बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! यदि तुम उसके द्वारा इस जन्म में किए गए कर्मों की दृष्टि से देखते हो, तो निश्चय ही उसकी ऐसी दु:खद मृत्यु नहीं होनी चाहिए थी। पर सच्चाई तो यह है कि उसने अपने एक पूर्व जन्म में किए गए बुरे कर्म का भुगतान मात्र किया है। अपने एक पूर्व जन्म में जब वह राजा का सेवक था, तब उसका दिल किसी अन्य की पत्नी पर आ गया और उसने उसके पति को पीट-पीट कर जान से मार दिया था। इस कारण इस जन्म में उसकी यह दुर्गति हुई है। निश्चय ही बुरे कर्म, न केवल हमारे लिए कष्ट लाते हैं, वरन् वे हमें नरक में भी ले जाते हैं। हीरा पत्थर का ही एक रूप है, पत्थर से ही उत्पन्न होता है, लेकिन वही हीरा उस पत्थर को काट देता है। बुरे कर्म का सृजन उस बुरे कर्म करने वाले को ही समाप्त कर देता है।

गाथा: यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं, मालुवा सालमिवोततं ।
करोति सो तथत्तानं, यथा नं इच्छति दिसो ।।162।।

अर्थ: शील हीन व्यक्ति के अत्यधिक दुराचार का कर्म फल मालुआ लता की तरह होता है। वह लता वृक्ष पर बढ़ती है और फिर वृक्ष का ही नाश कर देती है। बुरे कर्म करने वाले का कर्म भी उसका उसी प्रकार नाश कर देता है।

बुरे कर्म करने वाला, उसी के बोझ से दब जाता है
देवदत्त की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। तभी बुद्ध उधर से गुजरे, उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे किस विषय पर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे और आगे कुछ यूँ कहा, "भन्ते ! देवदत्त सचमुच न केवल बिना शील वाला व्यक्ति है, वह अति दुष्ट भी है। उसने राजा अजातशत्रु का विश्वास जीतकर और उनसे मैत्री बढ़ाकर अनुचित ढंग से प्रतिष्ठा प्राप्त करने की चेष्टा की है तथा धन भी कमाया है। उसने अजातशत्रु को यह समझाने की भी कोशिश की है कि अपने पिता से मुक्त होकर वह (अजातशत्रु) तुरंत ही एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। इस प्रकार देवदत्त से गुमराह होकर, अजातशत्रु ने अपने पिता, एक न्यायप्रिय राजा, की हत्या कर दी। इतना ही नहीं, देवदत्त ने तीन बार आपकी, हमारे परम श्रद्धेय गुरू की हत्या करने का भी प्रयत्न किया है। देवदत्त सचमुच ही एक अति दुष्ट व्यक्ति है तथा वह नहीं सुधरेगा।"

भिक्षुओं को सुनने के बाद बुद्ध ने कहा कि देवदत्त ने इसी जन्म में उन्हें मारने की चेष्टा नहीं की थी; वरन् पूर्व जन्मों में भी प्रयत्न किया था। तब उन्होंने एक हिरण-शिकारी की कथा सुनाई।

एक समय की बात है। बनारस में जब राजा ब्रह्मदत्त राज करते थे तब बुद्ध का जन्म एक हिरण के रूप में हुआ था और देवदत्त उस जन्म में एक हिरण-शिकारी था। एक दिन शिकारी ने एक वृक्ष के नीचे एक हिरण के पद-चिन्ह देखे। अतः उसने उस पेड़ पर बाँस का एक मचान बनाया और हाथ में भाला लेकर हिरण के आने की प्रतीक्षा करता रहा। मृग आया, पर अति सावधानी पूर्वक। शिकारी ने उसे बहुत सँभल-सँभल कर आते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए वृक्ष के कुछ फल तोड़ उसकी ओर फेंक दिए। लेकिन उससे मृग और अधिक सतर्क हो गया। उसने बहुत सावधानी से देखा और पाया कि शिकारी पेड़ पर छिपा हुआ है। उसने इस प्रकार दिखाया मानो उसकी दृष्टि शिकारी पर नहीं पड़ी हो और धीरे-धीरे वापस मुड़ चला। कुछ दूर जाने पर उसने वृक्ष को इस प्रकार संबोधित किया, "हे वृक्ष ! तुम सदैव अपने फल उर्ध्व दिशा से नीचे धरती की ओर भेजते हो, परन्तु आज तुमने प्रकृति के नियम का उल्लंघन किया है और तुम्हारे फल तिरछी दिशा में धरती पर गिरे हैं। चूँकि तुमने वृक्षों के प्राकृतिक धर्म का उल्लंघन किया है अतः मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ।"

हिरण को मुड़कर जाते हुए देखकर शिकारी ने अपना भाला धरती पर फेंक दिया और कहा, "हाँ, आज तुम बचकर जा सकते हो क्योंकि मैंने आज गणना करने में, अनुमान लगाने में, गलती कर दी।" भविष्य के बुद्ध और उस जन्म के मृग ने कहा, "हे शिकारी ! तुमने आज निश्चय ही अपनी गणना में गलती की लेकिन तुम्हारे द्वारा किए गए बुरे कर्म, गणना की गलती नहीं करेंगे; वे निश्चय ही तुम्हारा अनुसरण करेंगे।" इस प्रकार देवदत्त ने सिर्फ इसी जन्म में मेरी हत्या की कोशिश नहीं की थी वरन् पूर्व जन्म में भी की थी, यद्यपि वह कभी भी सफल नहीं हुआ। बुद्ध ने आगे सम्बोधित किया, "भिक्षुगण ! जैसे मालुआ लता जिस वृक्ष से लिपट जाती है, वह उसी वृक्ष की प्राण-लीला समाप्त कर देती है, उसी प्रकार शील विहीन पुरूष भी दुराचार से उत्पन्न तृष्णा के वश में अंततः नरक में जा गिरता है।"

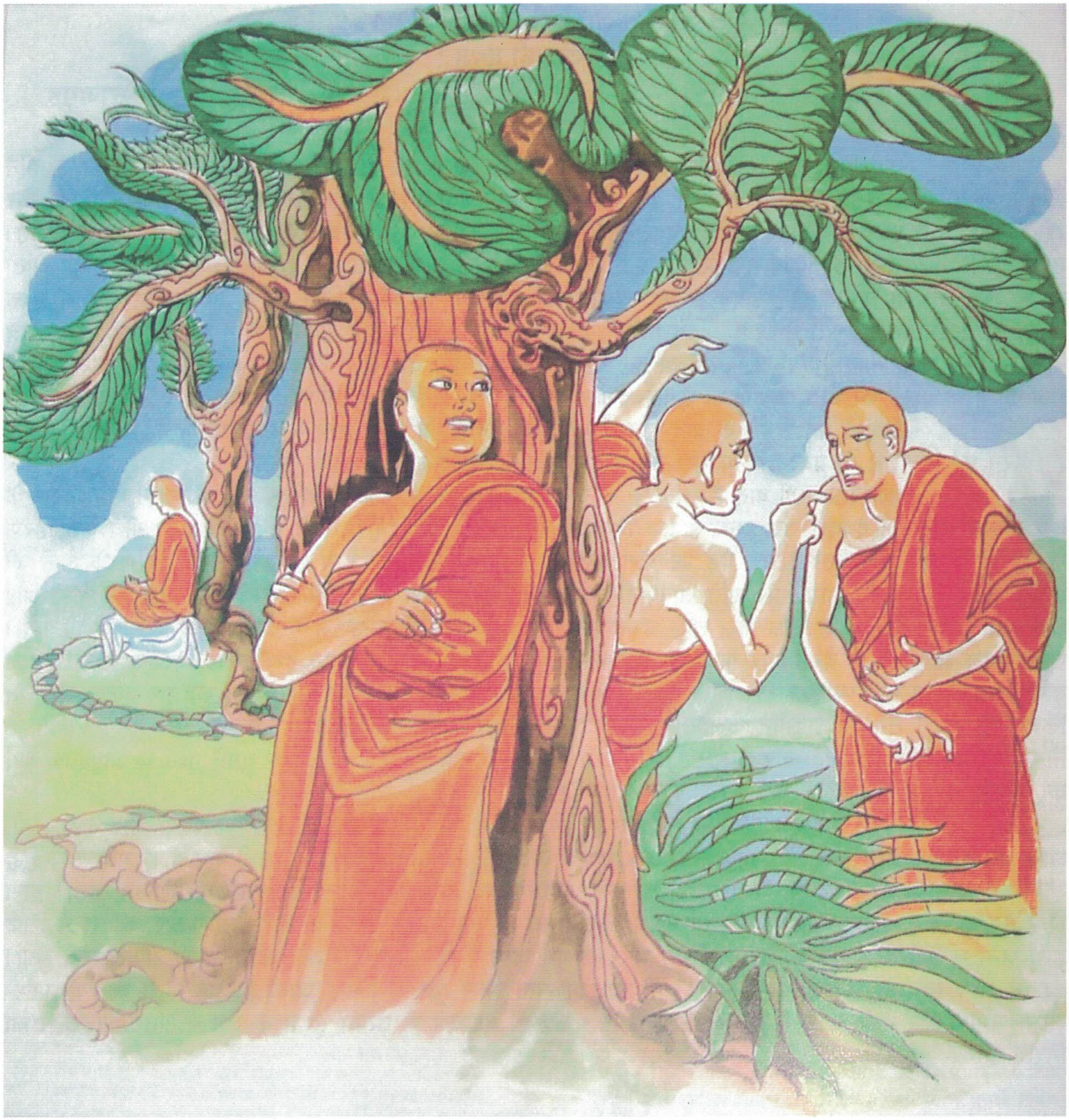

गाथा: सुकरानि असाधूनि, अत्तनो अहितानि च ।
यं वे हितं च साधुं च, तं वे परमदुक्करं ।।163।।

अर्थ: बुरी बातों का करना आसान है यद्यपि उनसे अपनी ही हानि होती है। पर उसे करना अति कठिन है जिससे अपना भला होता हो।

अच्छे कर्म करना दुष्कर है, बुरे कर्म आसान
देवदत्त द्वारा संघ में फूट डालने की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक समय जब बुद्ध वेणुवन में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और उन्हें सलाह दी कि बुद्ध अब बूढ़े हो चले हैं, संघ का दायित्व उसे (देवदत्त) सौंप दिया जाए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा, "मैं सारिपुत्त तथा मोग्गलान को भिक्षुसंघ नहीं दे सकता तो फिर तुम्हें कैसे दे दूँगा ?" उसे डाँटा भी। उसे 'थूक घोंटने वाला' कहकर भी सम्बोधित किया। उस समय से देवदत्त बुद्ध से घृणा करने लगा।

एक बार देवदत्त ने भिक्षुओं के लिए पाँच नियम बनाने का प्रस्ताव रखा - (1) भिक्षु जीवन पर्यन्त वन में वास करें। (2) भिक्षु को जीवन पर्यन्त भिक्षाटन द्वारा जीना होगा। (3) भिक्षु आजीवन पाँसूकूल (कफन से बना चीवर) धारण करेगा। (4) भिक्षु वृक्ष के नीचे ही वास करें (5) भिक्षु आजीवन माँस-मछली का सेवन न करें। बुद्ध इन नियमों के विरुद्ध नहीं थे पर कई कारणों से वे इन्हें विनय के नियमों के रूप में थोपना नहीं चाहते थे।

देवदत्त ने प्रचार करना शुरू कर दिया कि उसके प्रस्तावित नियम बुद्ध के द्वारा बनाए गए संघ के नियमों से अधिक उपयोगी थे। कई नए भिक्षु उसकी बातों के झाँसे में आ गए। इस कारण संघ में फूट पड़ने लगी। बुद्ध को इसकी जानकारी मिली तो उसे बुलाया और समझाया कि वह बहुत ही गलत काम कर रहा है तथा उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। पर देवदत्त के ऊपर उनकी सलाह का कोई असर नहीं हुआ। वह दुराचरण और दुष्कर्म में लिप्त था। अतः भली सीख भी उसे ठीक नहीं लगी।

एक दिन आनन्द थेर भिक्षाटन हेतु राजगृह में निकले। रास्ते में देवदत्त मिल गया। उसने बताया कि आज से वह अपना संघ अलग चलाएगा। आनन्द ने पूछा,"क्या तुमने सचमुच निर्णय ले लिया है कि संघ का विभाजन कर अलग संघ चलाओगे ?" गर्व से उसने "हाँ" कहा। आनन्द विहार में आए और उन्होंने बुद्ध को पूरी बात बतलाई।

बुद्ध ने आनन्द को बताया कि देवदत्त बहुत ही गलत काम कर रहा है। "इन बुरे कर्मों के लिए वह नरक में गिरेगा।" उन्होंने यह भी समझाया,"सज्जनों के साथ भलाई अच्छी लगती है और दुर्जनों के साथ भलाई बुरी। इसी प्रकार दुर्जनों के साथ बुराई अच्छी लगती है और सज्जनों को बुराई बुरी लगती है।" बुद्ध ने संघ बुलाकर घोषणा की कि देवदत्त के द्वारा किए जा रहे दुष्कर्मों के प्रति संघ जिम्मेवार नहीं है। देवदत्त ने बुद्ध को तीन बार मारने का प्रयत्न किया पर तीनों ही बार असफल रहा।

टिप्पणीः देवदत्त, संघ में फूट डालकर, नए भिक्षुओं को लेकर चला गया पर बाद में सारिपुत्त और मोग्गलान के प्रवचनों को सुन वे पुनः बुद्ध संघ में वापस आ गए।

देवदत्त को कर्म के देवता ने एक बहुत ही सुनहरा अवसर दिया था जिसे उसने गँवा दिया। वह बुद्ध का नजदीकी रिश्तेदार था और अगर उसने ईमानदारी से सत्कर्म किए होते तो अनेक भिक्षुओं की तरह वह भी उस जन्म में अर्हत्व प्राप्त कर सकता था। पर ऐसे सत्कर्म करने के बदले वह बचपन से ही बुद्ध से जलता था। उसकी प्रतिस्पर्द्धा तथा दुष्टता का पहला उदाहरण बचपन में ही दिख गया था जब उसने एक निर्दोष, उड़ते हुए हंस को वाण से मार गिराया था और वह हंस तड़पता हुआ सिद्धार्थ की गोद में आ गिरा, जो उस समय बागीचे में टहल रहे थे। देवदत्त हंस माँगता रहा पर सिद्धार्थ ने देवदत्त को हंस नहीं दिया। बात राजदरबार तक जा पहुँची। वहाँ विद्वानों ने मंत्रणा की। किसी ने देवदत्त के पक्ष में कहा; किसी ने सिद्धार्थ के पक्ष में पर अंत में सर्वसम्मति से निर्णय दिया गया, "जीवन लेना आसान है पर जीवन की रक्षा करना कठिन। अगर हंस मर जाता तो वह देवदत्त का हो जाता पर हंस जीवित था। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। अतः हंस सिद्धार्थ को दे दिया जाए।"

अपने बुरे कर्मों के कारण ही देवदत्त की मृत्यु बड़ी ही दयनीय हुई और मृत्यु के बाद वह नरक में गया।

गाथा: यो सासनं अरहतं, अरियानं धम्मजीविनं ।
पटिक्कोसति दुम्मेधो, दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।
फलानि कट्ठकस्सेव, अत्तघञ्ञाय फल्लति ।।164।।

अर्थ: जो धर्मज्ञ, श्रेष्ठ अर्हतों के शिक्षा की पापमयी, बुरी धारणा के कारण निन्दा करता है वह अपना ही नाश आमंत्रित करता है जैसे बाँस के फूल का आगमन बाँस के वृक्ष के नाश का कारण होता है।

अपनी बरबादी अपने ही हाथ
काल स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय श्रावस्ती में एक बुजुर्ग महिला काल स्थविर का अपने पुत्र की तरह ध्यान रखती थी। एक दिन उसने अपने पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों की प्रशंसा सुनी और उसकी तीव्र इच्छा होने लगी कि वह जेतवन विहार जाए और धर्म-श्रवण करे। इसलिए काल स्थविर के सम्मुख उसने अपनी इच्छा प्रकट की; लेकिन उस संन्यासी ने उसे प्रोत्साहित करने के बजाय, उसे सलाह दी कि उसे वहाँ नहीं जाना चाहिए। उसने काल से तीन बार प्रार्थना की पर तीनों ही बार उसने उसे वहाँ न जाने की सलाह दी। लेकिन एक दिन काल थेर के निर्देश के बावजूद उस स्त्री ने जेतवन जाने की ठानी। उसने अपनी बेटी को काल थेर की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की सलाह दी और स्वयं जेतवन विहार जा पहुँची। उधर काल थेर अपने दैनिक भिक्षाटन के लिए उस महिला के घर पहुँचा। उसे पता चला कि वह महिला जेतवन विहार गई हुई है। उसने सोचा, "संभव है कि इस गृहस्वामिनी महिला का मेरे ऊपर से विश्वास उठ रहा है।" इसलिए वह जल्दी-जल्दी चलकर जेतवन विहार पहुँच गया। वहाँ उसने उसे बुद्ध का प्रवचन सुनते हुए पाया। वह सम्मानपूर्वक बुद्ध के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे कहा, "भन्ते ! यह स्त्री अति मंद बुद्धि वाली है। वह धर्म के गूढ़ तत्वों को नहीं समझ सकेगी। कृपया उसे सिर्फ दान एवं शील की शिक्षा दें।"

बुद्ध बहुत अच्छी तरह जानते थे कि काल स्थविर ऐसी बात ईर्ष्यावश अपने निजी स्वार्थ से कह रहा था। इसलिए उन्होंने काल स्थविर से कहा, "संन्यासी ! तुम मूर्खतावश तथा गलत धारणाओं के कारण बुद्ध की शिक्षा की निंदा कर रहे हो। ऐसा कर तुम स्वयं अपने नाश का कारण बन रहे हो।"

कुछ ऐसे अज्ञानी जन भी होते हैं जो कुछ गलत धारणा के कारण सच्चे संतों की शिक्षा के प्रसार में बाधक होते हैं। वे अपनी बरबादी स्वयं आमंत्रित करते हैं। फूल देने पर जैसे बाँस का पेड़ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ये लोग भी नष्ट हो जाते हैं।

गाथा: अत्तना व कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति ।
सुद्धी असुद्धी पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये ।।165।।

अर्थ: मनुष्य स्वयं द्वारा किए गए दुष्कर्म द्वारा अपने को मलिन (अपवित्र) करता है और स्वयं द्वारा किए गए सत्कर्म द्वारा अपने को पवित्र रखता है। अपने को पवित्र या अपवित्र रखना - दोनों ही स्वयं पर निर्भर करता है। कोई दूसरा मनुष्य दूसरे को पवित्र या अपवित्र नहीं कर सकता।

शुभ, अशुभ का निर्माता मनुष्य स्वयं
चूलकाल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन चूलकाल उपासक ने उपोसथ उपवास व्रत रखा और सारी रात जेतवन विहार में धर्म-श्रवण करता रहा। पौ फटने पर वह निकट के एक तालाब में अपना हाथ-मुँह धो रहा था। उसी समय कुछ चोर चोरी का सामान लिए उधर से गुजरे और गृहस्वामी द्वारा पकड़े जाने के भय से सामान तालाब के किनारे फेंक कर भाग गये। गृहस्वामी उन चोरों के पीछे दौड़ता-दौड़ता उस तालाब तक पहुँचा और चूलकाल के पास ही चोरी का सामान पड़ा देखकर निष्कर्ष निकाला कि चूलकाल ने ही चोरी की है। अतः गृहस्वामी अपने साथियों के साथ चूलकाल को भला-बुरा कहने लगा और पीटने लगा। भाग्यवश उसी समय गाँव की कुछ दासियाँ वहाँ पानी भरने आईं और यह दृश्य देखा। उन्होंने गृहस्वामी को बताया कि चूलकाल ने संपूर्ण रात्रि धर्म-श्रवण किया था और उसने चोरी नहीं की थी। तब गृहस्वामी और उसके सेवकों ने उसे छोड़ दिया।

मुक्त होकर चूलकाल विहार पहुँचा और उसने बुद्ध को सारी घटना सुनाई। बुद्ध ने उसे समझाया, "तुम इसलिए नहीं बच गए क्योंकि उन पनिहारिनों ने तुम्हें बचा लिया, बल्कि तुम इसलिए बच गए क्योंकि तुमने चोरी नहीं की थी। मनुष्य का कर्म ही उसकी रक्षा करता है और उसका कर्म ही उसे दंड दिलाता है। बुरे कर्म कर लोग पाप का सृजन करते हैं, नरक जाते हैं, और कष्ट पाते हैं। इसके विपरीत सत्कर्म कर लोग पुण्य का सृजन करते हैं और निर्वाण तक जाते हैं।"

टिप्पणी : चूलकाल और महाकाल की कथा का जिक्र धम्मपद में अन्यत्र भी आता है। इसी अध्याय "अत्त वर्ग" के पाँचवीं गाथा में महाकाल की कथा है।

महाकाल भी प्रातः काल तालाब के किनारे रात्रि पर्यन्त धर्म-श्रवण कर मुँह, हाथ धो रहा था जब चोर सामान फेंक कर भाग गए। गृहस्वामी एवं उसके दासों ने पीट-पीटकर उसे मार दिया जबकि चूलकाल की जान बच गई। महाकाल को मृत्यु का वरण करना पड़ा क्योंकि एक पूर्व जन्म में राज सेवक के रूप में उसने एक पराई स्त्री पर नजर लगाई थी और उसे प्राप्त करने के लिए उसके निर्दोष पति को मार दिया था।

हमारे कर्म हमारी छाया की तरह सदैव हमारे साथ चलेंगे; हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे।

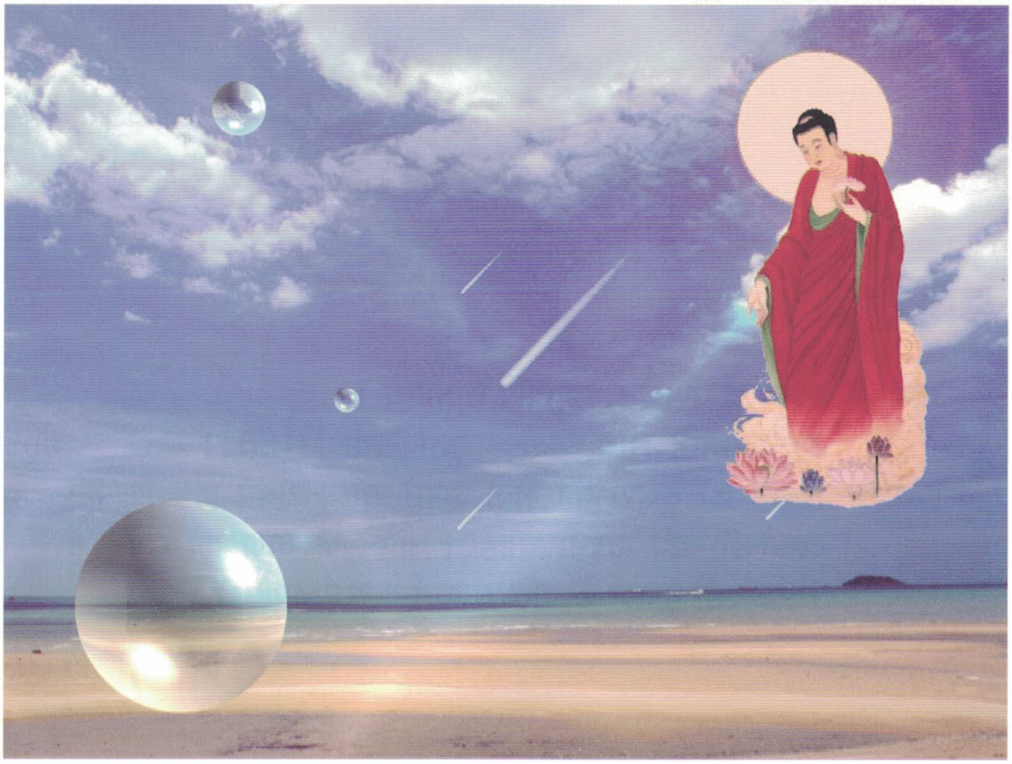

गाथा: अत्तदत्थं परत्थेन, बहुनापि न हापये ।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय, सदत्थपसुतो सिया ।।166।।

अर्थ: मनुष्य को दूसरों की सेवा करते समय अपने कल्याण की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। अपने कल्याण को ध्यान में रखकर ही दूसरों के प्रति सत्कर्म करना चाहिए।

अपना लाभ सर्वोपरि है
अत्तदत्थ थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जब बुद्ध ने चार मास पर्यन्त महापरिनिर्वाण की घोषणा की तब अनेक भिक्षु चिन्तित हो गए कि उसके बाद क्या होगा। अतः बुद्ध का सानिध्य प्राप्त करने के लिए उनमें होड़ लग गई। विहार में अत्तदत्थ नामक एक भिक्षु भी रहता था। उसने भी बुद्ध के महापरिनिर्वाण के विषय में सुना। अन्य भिक्षुओं की तरह उसे भी दुख हुआ पर अन्य मित्रों के विपरीत उसने निर्णय लिया कि वह अपने आप को संपूर्ण समर्पण के साथ ध्यान-साधना में लगा देगा और परिनिर्वाण से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लेगा। अतः ध्यान कुटी में बैठकर वह पूरी तन्मयता से ध्यान-साधना करने लगा। उसके मित्र भिक्षुओं को उसका यह एकान्तपन ठीक नहीं लगा। वे उसे बुद्ध के पास ले गए और उनसे कहा, "भन्ते ! यह भिक्षु हम लोगों की तरह आपसे प्रेम और श्रद्धा रखता हुआ प्रतीत नहीं होता है; वह अपने आप में ही खोया रहता है।" तब बुद्ध ने स्पष्ट किया "यह भिक्षु साधुवाद का पात्र है; इसने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण से पूर्व ही वह 'अर्हत्व' प्राप्त करेगा; इसी कारण वह इसके लिए पूर्ण समर्पण के साथ कार्यरत है।"

बुद्ध ने शिष्यों को बताया, "अत्तदत्थ जैसा भिक्षु मुझे बहुत प्रिय है। जो मुझमें प्रेम और श्रद्धा रखते हैं उन्हें अत्तदत्थ की तरह होना चाहिए। पुष्प, अगरबत्ती और दीप अर्पित करके मेरे प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित नहीं करते हो और न मेरे निकट बैठकर मुझमें अपनी श्रद्धा को दृढ़ कर सकते हो। त्रिरत्न का अनुशरण कर, धर्म का अनुपालन कर ही तुम अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हो।"

टिप्पणी: 'स्वधर्म' निम्नकोटि का भी हो तो भी वह दूसरों द्वारा कृत धर्म की तुलना में अच्छा है। मनुष्य को किसी भी कीमत पर स्वधर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।

हवाई जहाज में यात्रा करते समय निर्देश दिया जाता है कि केबिन में हवा का दबाव कम होने की स्थिति में जब ऑक्सीजन मॉस्क नीचे गिर जाए तो पहले उसे अपने मुँह पर लगाना चाहिए और तब सहयात्रियों की मदद करनी चाहिए। ऐसा निर्देश क्यों दिया जाता है ? अगर ऑक्सीजन की कमी से मनुष्य स्वयं मर जाएगा तब वह दूसरों की सेवा क्या करेगा ? अतः अपना सर्वोत्तम कल्याण अर्थात् 'निर्वाण प्राप्ति' जीवन का सर्वोच्च्य उद्देश्य होना चाहिए और बाकी सारे कर्त्तव्य उसके बाद आने चाहिए।

सिद्धार्थ ने घर छोड़ा, जंगल गए, साधना की और निर्वाण को प्राप्त किया। उनका यह कृत क्या 'स्वार्थ' का परिचायक है ? कदापि नहीं।

उपर्युक्त गाथा का अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि बुद्ध शिक्षा स्वार्थी होने के लिए प्रेरित करती है। कदापि नहीं। बौद्ध साहित्य में निःस्वार्थ सेवा पर पूरा जोर दिया गया है। 'निर्वाण' की प्राप्ति अपने लिए नहीं होती है। निर्वाण प्राप्ति पर 'स्व' का ही कल्याण नहीं होता ; समस्त मानव जाति का कल्याण होता है। बूँद जब सागर से मिल जाती है तो मात्र बूँद को विशालता की अनुभूति नहीं होती है, महानता का भान नहीं होता है; सागर भी समझ ता है कि वह भी पहले की तुलना में धनी हो गया है।

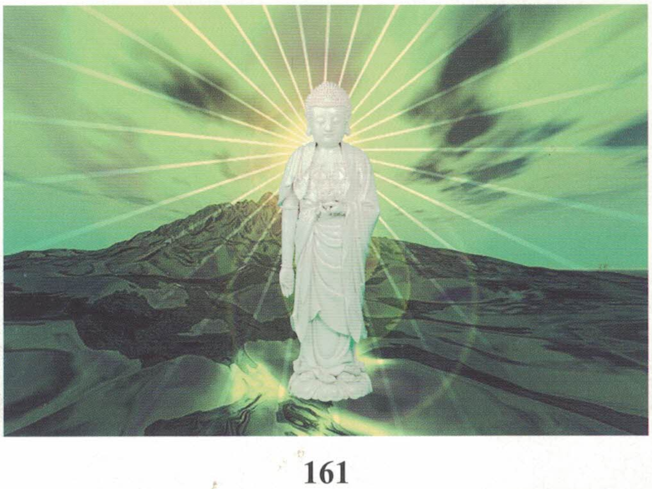

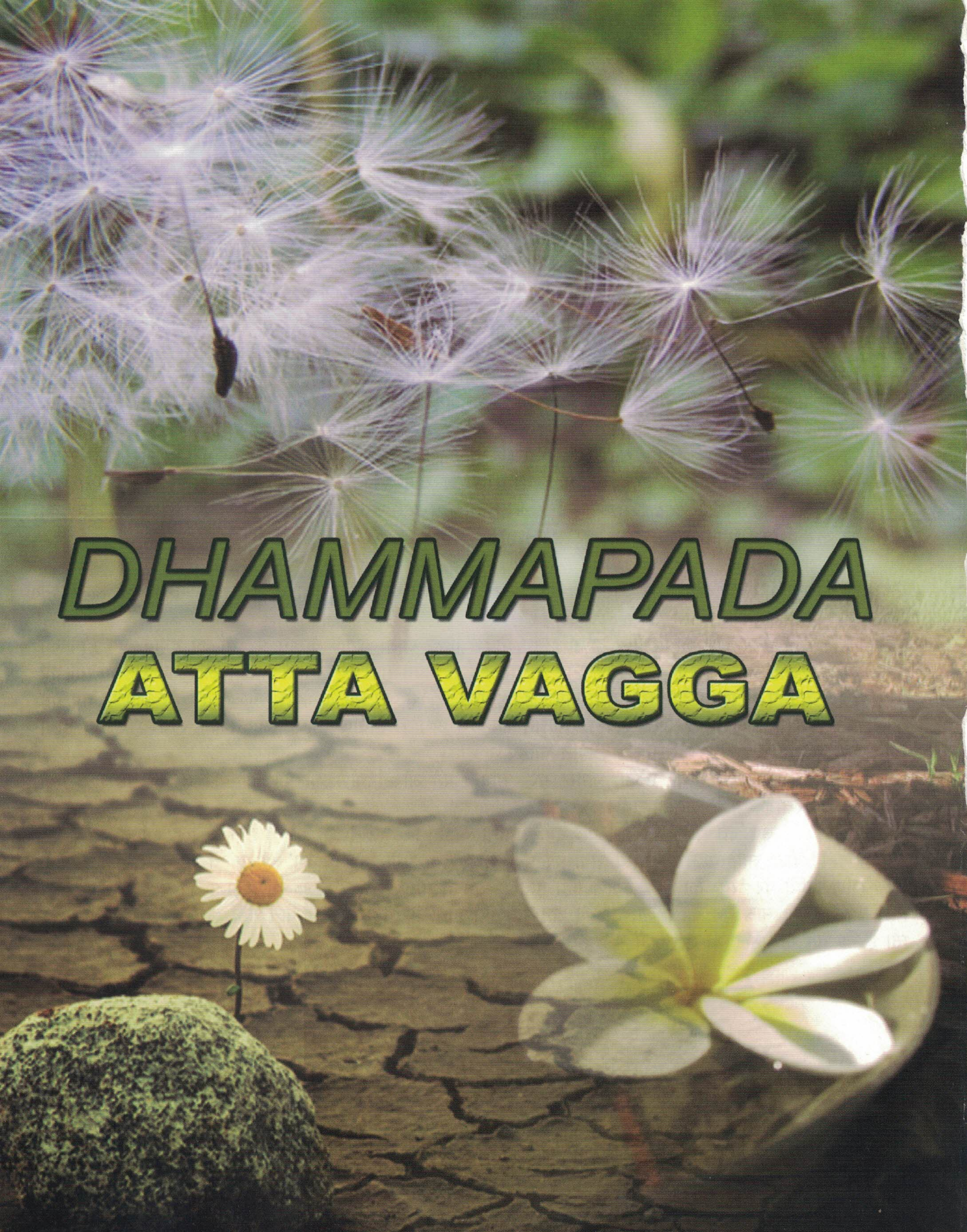
DHAMMAPADA
ATTA VAGGA

संसार को समझने की कला

धम्मपद

लोक वर्ग

गाथा और कथा

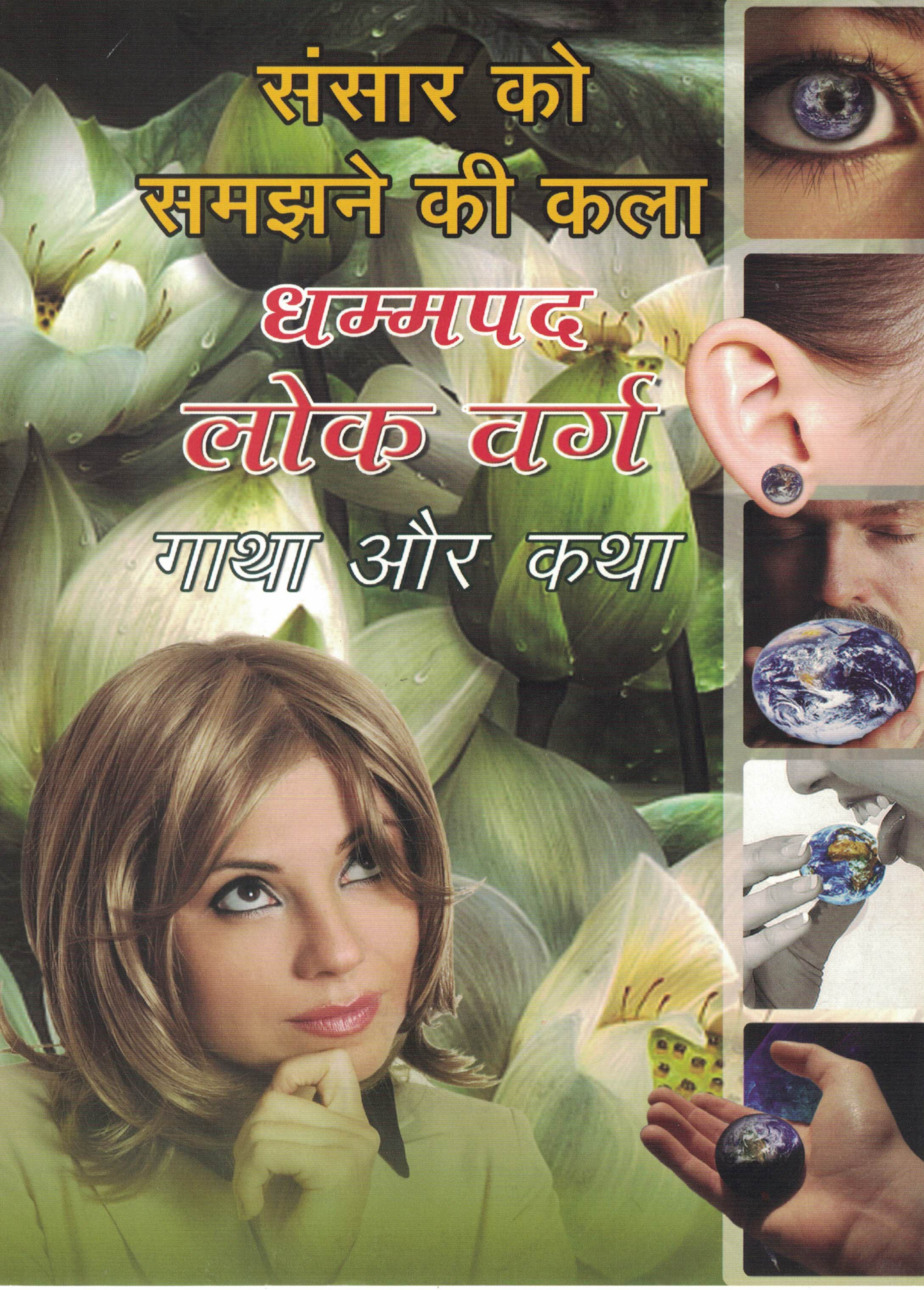

संसार को समझने की कला

धम्मपद

लोक वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

लोक वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	युवा भिक्षु की कथा	167	सांसारिक चीजों में आसक्ति न रखें	167
2.	राजा शुद्धोदन की कथा	168	धर्मी यहाँ भी सुखी रहता है और वहाँ भी	169
3.	राजा शुद्धोदन की कथा	169	सुचरित धर्म में चरें	171
4.	अनेक भिक्षुओं की कथा	170	जीवन की सच्चाई देखें	173
5.	राजकुमार अभय की कथा	171	ज्ञानी शरीर में आसक्ति नहीं रखता	175
6.	थेर सम्मुञ्जनि की कथा	172	प्रमाद को भूलिए, धर्म पर चलिए	177
7.	थेर अंगुलिमाल की कथा	173	बुराई को भलाई से जीता जाता है	179
8.	पेशकार कन्या की कथा	174	दुःख के पिंजड़े से निकलोगे ?	181
9.	तीस भिक्षुओं की कथा	175	इरादा हो तो निर्वाण में देरी क्यों ?	183
10.	चिंचा माणविका की कथा	176	दुष्ट व्यक्ति के पाप की सीमा नहीं	185
11.	असदृश दान की कथा	177	सद्कर्म कर आनन्द की प्राप्ति	187
12.	अनाथपिंडिक पुत्र, काल की कथा	178	धर्म पथ पर आगमन : सबसे महान कार्य	189

गाथा: हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य, न सिया लोकवड़्ढनो ।।167।।

अर्थ: अधम समझा जाने वाला आचरण नहीं करना चाहिए जिनसे प्रमाद की उत्पत्ति होती है। मिथ्याचरण करने वालों का संग नहीं रखना चाहिए।

सांसारिक चीजों में आसक्ति न रखें
युवा भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन एक युवा भिक्षु एक स्थविर के साथ विशाखा के निवास पर पहुँच गया। यागुपान कर, स्थविर किसी विशेष कार्य से कहीं चला गया और युवा भिक्षु को विशाखा के घर पर ही छोड़ दिया। विशाखा की पौत्री उस तरूण भिक्षु के लिए जल छान रही थी और जब उसने पानी में अपनी परछाईं देखी तो वह मुस्कुराई। उसे मुस्कुराता देख, तरूण भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और वह भी मुस्कुरा दिया। जब उसने युवा भिक्षु को अपनी तरफ मुस्कुराते हुए देखा तब उसने अपना आपा खो दिया और तमतमायी हुई बोली, "अरे ओ सिरमुण्डे ! मुझे देखकर क्यों हँस रहा है ?" युवा भिक्षु ने प्रत्युत्तर दिया, "सिरमुण्डी है तू और तेरे माता-पिता भी सिरमुण्डे हैं !" इस प्रकार वे दोनों लड़ पड़े और वह लड़की रोती हुई अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा ने आकर भिक्षु को समझाया, "मेरी पोती से नाराज मत होवो। संन्यासी के बाल मुड़े हुए होते हैं, उसके हाथ और पैरों की अँगुलियों के नाखून कटे होते हैं और वह पुराने चिथड़े कपड़ों से बने चीवर धारण करता है तथा वह भिक्षा-पात्र लेकर भोजन की भिक्षा प्राप्त करता है। इस नवयुवती ने जो कहा वह अक्षरशः सत्य था।" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "आप जो कह रही हैं वह सत्य है पर क्या उसे मुझे सिरमुण्डे कहकर सम्बोधित करना चाहिए था ?" उसी समय बुजुर्ग भिक्षु भी वापस आ गया; लेकिन विशाखा एवं बुजुर्ग भिक्षु दोनों ही उस युवा भिक्षु और तरूणी को समझाने में विफल रहे जो आपस में लड़ रहे थे।

इसके थोड़ी ही देर बाद, बुद्ध का पदार्पण हुआ और उन्हें उस झगड़े की जानकारी दी गई। बुद्ध को मालूम था कि समय परिपक्व था जब तरूण भिक्षु स्रोतापत्ति फल प्राप्त कर सकता था। उन्हें लगा कि उन्हें उस तरूण युवक के पक्ष में बोलना चाहिए। अतः उन्होंने विशाखा से कहा, "विशाखा ! तुम्हारी पौत्री को क्या अधिकार था कि वह मेरे पुत्र को सिरमुंडा कहकर सम्बोधित करे; क्या मात्र इसलिए कि उसने सिर मुँड़ा रखा है ? आखिर अगर उसने सिर मुँड़वाया है तो इसलिए कि वह बुद्ध के संघ में प्रविष्ट हो सके। क्यों, यह सच नहीं है ?" इसे सुनकर, तरूण भिक्षु अपने घुटनों के बल झुककर बुद्ध को साष्टांग प्रणाम किया और बोला, "भन्ते ! सिर्फ आप ही मेरा दृष्टिकोण समझ रहे हैं; मेरे शिक्षक और इस महान विहार को बनाने वाली विशाखा जी भी मुझे समझ नहीं पा रही हैं।" बुद्ध ने जान लिया कि यह तरूण भिक्षु स्रोतापन्न में प्रविष्ठ होने की स्थिति में पहुँच चुका है। अतः उसे समझाया, "काम-वासना के अधीन होकर हँसना उचित नहीं है; बुरे विचारों का सृजन करना अनुचित है।" तरूण युवक इस पर चिंतन कर स्रोतापन्न फल में प्रविष्ट कर गया।

टिप्पणी : समाज में जो कर्म तुच्छ तथा निकृष्ट समझे जाते हैं उन्हें नहीं करना चाहिए। इस तरह मिथ्या धारणा से बचनी चाहिए। मिथ्याचरण द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करने की चाह त्याग देनी चाहिए।

पाँच प्रकार के इन्द्रिय सुखों (कामगुण) का सेवन करने वाला अंततः पशुओं की श्रेणी में आ जाता है। सिर्फ इन्द्रिय सुखों में लिप्त रहने वाला प्राणी अंततः निम्न लोक की ओर ही जाता है।

संसार में पहले से ही बहुत दुःख है। अतः समझदार व्यक्ति वह है जो उन दुःखों को और अधिक नहीं बढ़ाता है।

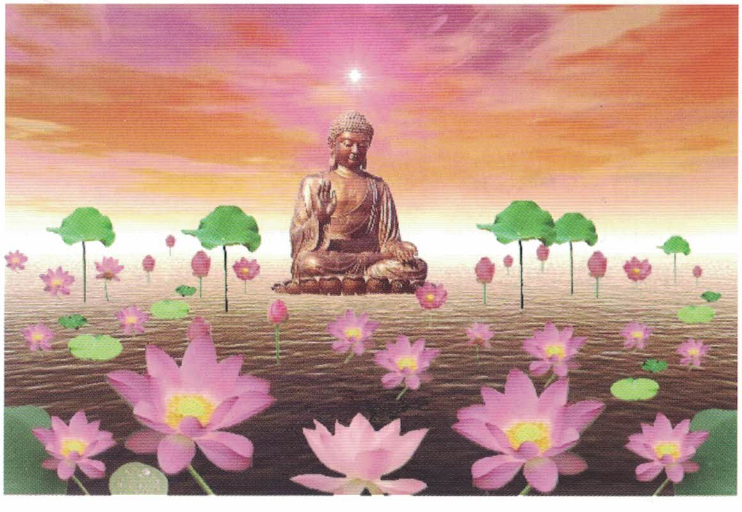

गाथा: उत्तिट्ठे नप्पभ्मज्जेय्य, धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च ।।168।।

अर्थ: सत्य की ओर जाग्रत होवो; अंधकार में न रहो। सत्य के साथ धर्म का आचरण करो। धर्मचारी पुरुष दोनों ही जगह सुखपूर्वक सोयेगा।

धर्मी यहाँ भी सुखी रहता है और वहाँ भी
राजा शुद्धोदन की कथा
स्थान : निग्गोधाराम, कपिलवस्तु

सिद्धार्थ ने गृह त्याग के समय प्रण किया था कि जब तक सत्य के दर्शन न होंगे वे अपने पुराने राज्य कपिलवस्तु में वापस नहीं जायेंगे।

बोध गया के पीपल के वृक्ष के नीचे उन्हें सत्य के दर्शन हो चुके थे। अब वे सिद्धार्थ नहीं रह गए थे; सिद्धार्थ से बुद्ध बन चुके थे, अत: पिता और पत्नी के आग्रह पर उन्होंने कपिलवस्तु आने का कार्यक्रम बनाया। जब वे कपिलवस्तु पहुँचे तो उनके सगे-सम्बन्धी उनसे मिलने और उनके प्रति सम्मान प्रकट करने हेतु उनके सम्मुख प्रस्तुत हुए। इस अवसर पर अपने सगे सम्बन्धियों का मान-मर्दन करने हेतु अपनी सिद्धियों द्वारा विशिष्ट रत्नचंक्रमण का निर्माण किया और वहीं से उन्हें उपदेश दिया। उनके सम्बन्धियों का हृदय तुरंत ही श्रद्धा से भर गया और राजा शुद्धोदन से लेकर सभी सम्बन्धी बुद्ध के प्रति श्रद्धा प्रकट करने लगे। उसके बाद वर्षा शुरू हो गई और ऐसी वर्षा हुई जैसी पहले कभी देखी नहीं गई थी। कोई भी कुआँ और तालाब खाली नहीं रहा। लोग चर्चा करने लगे कि ऐसी वर्षा कभी नहीं हुई।

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं ! ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि मेरे सगे-सम्बन्धियों के ऊपर ऐसी वृहद् वृष्टि हुई है; पूर्व जन्म में भी ऐसा हो चुका है।" ऐसा कहकर उन्होंने वेस्सन्तरजातक की कथा सुनाई। धर्मश्रवण कर सभी सगे-संबंधी प्रस्थान कर गए पर किसी ने भी अगले दिन के लिए भोजन-दान का आमंत्रण नहीं दिया। राजा ने भी 'मेरा पुत्र मेरे यहाँ नहीं आएगा तो फिर कहाँ जाएगा ?' -- ऐसा सोचकर उन्हें औपचारिक रूप से आमंत्रित नहीं किया और राजमहल चले गए। लेकिन राजमहल पहुँचने के बाद उन्होंने भिक्षुओं के लिए भोजन एवं आसन का प्रबंध करने का आदेश दे दिया।

दूसरे दिन जब बुद्ध ने भिक्षाटन हेतु कपिलवस्तु में प्रवेश किया तब सोचा, "भूतकाल में बुद्धगण इस प्रकार अपने पिता के नगर में प्रवेश करते समय सीधा अपने सगे-सम्बन्धियों के घर जाते थे या द्वार-द्वार जाकर भिक्षाटन करते थे ?" यह जानकर कि वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे, बुद्ध ने प्रथम गृह से भिक्षाटन प्रारंभ किया और द्वार-द्वार जाने लगे तथा भिक्षा ग्रहण करने लगे। राजकुमार के भिक्षाटन की बात पूरे नगर में आग की तरह फैल गई। लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा हो सकता है। आज उन्हें लग रहा था कि राजकुमार एक राजकुमार न होकर उनकी ही तरह एक सामान्य व्यक्ति थे। अत: उनका कौतूहल और आश्चर्य आकाश को छू रहा था। सारा का सारा नगर उस ओर दौड़ गया जिधर बुद्ध भिक्षाटन कर रहे थे। सभी अपनी सुध-बुध खो अपने प्रिय राजकुमार का दर्शन पाने हेतु, जो जैसा था, वैसा ही चल दिया।

चोटी गूंथने वाली, आधी चोटी ही गूंथकर चल पड़ी, कोई आँखों में काजल लगा रही थी वह एक आँख में काजल लगाये बिना ही घर से निकल पड़ी, जूड़ा बाँधने वाली अधखुले जूड़े के साथ ही भागी, किसी ने सिर्फ एक ही कंगन पहना। इस प्रकार नगर का सारा का सारा सैलाब वहाँ जा पहुँचा जहाँ बुद्ध और भिक्षुगण भिक्षाटन कर रहे थे। इधर यशोधरा को भी राजकुमार के भिक्षाटन की सूचना मिली, वह भी दौड़ी और दौड़कर बुद्ध के चरणों पर गिर गई। बुद्ध ने उसे सहारा देकर उठाया। उसके नेत्रों से अश्रु की बरसात रूक नहीं रही थी।

राजा को भी यह समाचार मिला। वे क्रोध से आग बबूला हो गए। अपनी मूँछों को रगड़ते हुए आगे-पीछे तेजी से कदम बढ़ाने लगे। जमीन पर कई बार मुड़कर थूका। अपने अश्व को बुलवाया और चल पड़े अपने पुत्र को समझाने के लिए। उनके पीछे मंत्री परिषद भी चल पड़ा। राज महल से निकल आगे मुड़ते ही

गाथा: धम्मं चरे सुचरितं, न नं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च ।।169।।

अर्थ: धर्म का पूर्णता से आचरण करें। प्रमाद के साथ इसका आचरण न करें। जो अप्रमाद के साथ पूर्ण ढंग से इसका आचरण करेगा वह इस जन्म में भी और इस जन्म के बाद भी सुखपूर्वक सोयेगा।

सुचरित धर्म में चरें
राजा शुद्धोदन की कथा

अपार भीड़ से उनका सामना हुआ तथा दूर से ही उन्होंने राजकुमार को देख लिया। बुद्ध का शांत एवं तेजमय स्वरूप देखकर राजा का क्रोध जाता रहा। फिर भी घोड़े से उतर, पैदल चलकर बुद्ध के सम्मुख पहुँच, बहुत हिम्मत जुटाकर पूछा, "क्या पुत्र का इसी प्रकार स्वागत करना था ? राजकुमार को अपने ही राज्य में अपने ही लोगों से भिक्षाटन करना था ? पूरे राज्य के नागरिकों के सामने मुझे लज्जित करना चाहते हो ?" राजा के पुत्र-प्रेम ने उनके अंदर तूफान खड़ा कर रखा था और वह पुत्र-प्रेम एक बार पुन: अपने पुत्र को अपनी मुट्ठियों में बाँध लेना चाहता था। पर हवा, बादल को क्या कोई अपनी मुट्ठी में बाँध सकेगा ? बाँधने की चेष्टा करेगा पर वह मुट्ठी से निकल जाएगा। बुद्ध निर्विकार थे। उन्होंने राजा को समझाया, "हमारे वंश की यही परंपरा है।" नृप ने सुनकर कहा, "हमारे परिवार में सौ महासामंतों की बात मुझे याद है पर हमारे कुल में आज तक किसी ने ऐसा कार्य नहीं किया है।" तब बुद्ध ने समझाया, "कुल परंपरा मर्त्यों की नहीं हुआ करती पर बुद्ध के अवतारों की परंपरा युग-युग तक चलती है। पहले भी बुद्ध हुए हैं और आगे भी बुद्ध होंगे और पिताश्री ! मैं उनमें से ही एक हूँ। जो कुछ अभी हो रहा है वही पहले भी घटित हो चुका है।" बुद्ध ने तब, लौकिक प्रेम अपनाकर, पितृ ऋण वश जो निधि पाई थी उसका प्रथम पुष्प पिता को अर्पित किया। कौन सी निधि ? मोक्ष के आठ सोपान तथा चतुष्टांग आर्य सत्य जिनका अनुपालन कर संसार के सभी नर-नारी,मूर्ख, पंडित, छोटे-बड़े, युवा-वृद्ध इस भवचक्र से छूटकर अमृतमय निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। पीयूष से प्रिय वचन सुनकर राजा पुलकित थे, उन्होंने बुद्ध का भिक्षा-पात्र स्वयं अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार उस दिन महाराजा ने शांति और कल्याण-मार्ग पर चलने हेतु मंगलमय मार्ग पर प्रवेश किया।

कुछ समय बाद यशोधरा भी भिक्षुणी के रूप में दीक्षित हो गई, राहुल भी सामनेर बन गया। तब एक दिन एक शिष्य ने धर्म-चर्या के समय यह शंका रख दी कि सब रागों से रहित, संपूर्ण वासना से मुक्त तथा कुसुम सा कोमल, कामिनी-स्पर्श त्यागने वाले तथागत ने यशोधरा को आलिंगन क्यों करने दिया ? यह सुन बुद्ध प्रसन्न मन से ये वचन बोले, "महाप्रेम ने लघु प्रेम को सहज भाव से सहारा देकर उच्च किनारे पर लगने दिया। ध्यान रहे कि अगर कोई व्यक्ति भव बंधन से छूट जाता है तो उसे मुक्ति का गर्व कर किसी जीव का दिल न दुखाना चाहिए। यह मुक्ति, जिसको भी मिली एक बार में नहीं मिली।"

उसके बाद बुद्ध ने अपने पूर्वजन्म की एक कथा सुनाई। लाखों वर्ष पूर्व बुद्ध उस जन्म में 'राम' नामक वैश्य के रूप में सागर तट पर रहते थे। यशोधरा भी उस जन्म में उनकी संगिनी थी। उसका नाम 'लक्ष्मी' था।" घर अति दरिद्र था, अत: भारी धन पाने हेतु मैं परदेश चला गया। लक्ष्मी तब आँखों में आँसू भरकर जल- थल- पथ की विकट आपदा सर पर न लेने के लिए कहती। पर मैंने साहस सहित सागर पथ पर, पथ के अंधड़ झेल, अति दुष्कर कर्म कर भीषण जल से एक अति निर्मल मोती प्राप्त किया। वह इतना कीमती था कि कोई भी भूप अपना राजकोष रिक्त कर ही खरीद सकता था। प्रसन्न मन से ग्राम लौटकर देखा कि पूरे देश पर घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। अपने द्वार पर जाकर देखा कि जिसके हेतु मैंने इतना सब श्रम उठाया था वह द्वार पर अचेत पड़ी थी। मुश्किल से आँखें खोली पर मुख से कुछ बोल न सकी। तब मैंने गाँव में घूमकर घोषणा की, "एक जीव के लिए राज्य के मूल्य के बराबर वस्तु रखता हूँ। लक्ष्मी के मुख के लिए जो भी तनिक सा भी अन्न दे जाए वह यह बहुमूल्य रत्न ले जाए।" तब किसी ने तीन सेर बाजरा दिया और वह रत्न ले गया। जब तन में प्राण आए, तब साँस लेकर लक्ष्मी बोली, "तुम्हारा प्रेम सच्चा है, तुम्हारा त्याग मुझे अब दिखा है।" "इस प्रकार मैंने जो उस जन्म में मोती पाया था उसे तुरंत भले काम में लगाया था। इस जन्म में जो कुछ भी ज्ञान मैंने प्राप्त किया है वह उस जन्म के तिल के बराबर त्याग की तुलना में मेरू पर्वत समान है या उस जन्म के एक बूँद की तुलना में महासागर के समान है। आज का मेरा प्रेम उस मेरू पर्वत या सागर की तरह विशाल है। मनुष्य को सदा उन जीवों को सहारा देना चाहिए जो निर्बल हैं और इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए।"

गाथा: यथा पुब्बुलकं पस्से, यथा पस्से मरीचिकं ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति ।।170।।

अर्थ: बुलबुला को देखो, कितना अनित्य है ? मृगमरीचिका को देखो। भ्रांति होती है ! अगर तुम संसार को इस प्रकार देखोगे, तो फिर मृत्यु-राजा तुम्हें नहीं देख सकेंगे।

जीवन की सच्चाई देखें
अनेक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय भिक्षुओं के एक समूह ने बुद्ध से ध्यान-साधना का विषय सीखा और वन में जाकर ध्यान का अभ्यास करने लगे। लेकिन वे अधिक प्रगति नहीं कर पाए। अतः वे वन से लौट आए और बुद्ध के पास और अधिक उपयुक्त ध्यान का विषय समझने के लिए गये। रास्ते में उन्होंने मृग मरीचिका देखी और उस पर चिंतन किया। जैसे ही वे विहार के अन्दर प्रविष्ट हुए, बड़े जोरों से वर्षा होने लगी। वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदों से बुलबुले बनने लगे जो तुरंत समाप्त हो जाते थे। इन बुलबुलों को देख भिक्षुओं ने सोचा, "हमारा यह शरीर भी इन पानी के बुलबुलों की तरह नाशवान है।" इस प्रकार चिंतन करते हुए उन्हें शरीर की अनित्यता का भान हो गया। प्रवचन के अन्त में भिक्षुगण स्रोतापन्न प्राप्त कर गए।

बुद्ध ने उन्हें अपने कुटीर से देखा, उनके सम्मुख प्रकट हुए और यह गाथा कही।

गाथा: एथ पस्सथिमं लोकं, चित्तं राजरथूपमं ।
यत्थ बाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं ।।171।।

अर्थ: आध्यात्मिक अज्ञानी जन इन संसार के चकाचौंध (जिसकी तुलना चित्रित राजरथ से की जाती है) में पूरी तरह डूबे रहते हैं। जिन्हें सत्य की जानकारी है वे इन सांसारिक चीजों से आसक्त नहीं होते। वे संसार को वैसा ही देखते हैं जैसा वह वास्तविक रूप में है।

ज्ञानी शरीर में आसक्ति नहीं रखता
राजकुमार अभय की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार राजकुमार अभय ने सीमान्त प्रदेश जाकर वहाँ एक विद्रोह शांत किया। इससे उसके पिता, बिंबिसार इतने प्रसन्न हुए कि उसके लौटने पर उसे सात दिनों के लिए राज्य तथा एक नर्तकी दे दी। इस प्रकार राजकुमार सात दिनों तक अपने महल से बाहर नहीं निकला और राजमहल के अन्दर ही विभिन्न प्रकार के भोग-विलासों का आनंद लेता रहा। आठवें दिन वह नदी तट पर गया और वहाँ स्नान किया। स्नान करने के बाद वह पुनः मनोरंजन हेतु उद्यान में प्रविष्ट हुआ। वहाँ आसन पर विराजमान होकर उस नर्तकी का नृत्य देखने लगा। लेकिन जैसे ही वह नाचने और गाने लगी, उसके पेट में भीषण पीड़ा उठी और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गई।

राजकुमार अभय इस महिला की मृत्यु से तड़प उठा। उसे तुरंत विचार आया, "बुद्ध को छोड़कर कोई और नहीं है जो मेरे दुःख को समाप्त कर सके।" इसलिए वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, "भन्ते, कृपया मेरे दुःख की ज्वाला को शांत कीजिए।" बुद्ध ने उसे शांत करते हुए समझाया, "कुमार, भूतकाल के असंख्य जन्मों में अनगिनत बार यह स्त्री तुम्हारे जीवन में इस प्रकार मरी है, और जितने आँसू तुमने उस पर बहाया है उसे नापा नहीं जा सकता।" यह सुनकर राजकुमार शांतचित्त हो गया। तब बुद्ध ने उसे और समझाया, "राजकुमार, दुःख मत करो। केवल अज्ञानी जन ही अपने आप को दुःख के समुद्र में गिरने देते हैं।"

टिप्पणी : इस गाथा की कथा तथा सन्तति महामात्य की कथा में समानता है। दोनों ही कथाओं में सन्तति तथा अभय ने सीमान्त प्रदेशों में विद्रोह शांत किया था और पुरस्कार के रूप में उन्हें एक नर्तकी भी दी गई थी। दोनों ने भोग-विलास का आनन्द लिया और दोनों को ही अपार दुःख हुआ जब नर्तकी की मृत्यु हो गई। जीवन से वैराग्य हो गया और बुद्ध की शिक्षा से उन्हें शान्ति मिली। लेकिन महामात्य सन्तति ने जहाँ निर्वाण प्राप्त किया, राजकुमार अभय स्रोतापन्न में ही प्रतिष्ठित हो पाया। इन उदाहरणों से हम पाते हैं कि आगे हमारा विकास कितना होगा यह अंततः हमारे प्रयत्न पर निर्भर करता है।

इस गाथा में संसार को एक चित्रित राजकीय रथ के समान बताया गया है। राजकीय रथ साधारण रथ की तुलना में अति सुन्दर होता है। हम इस पर चढ़कर सवारी करते हैं और आनन्दित होते हैं। इसी प्रकार अज्ञानी पुरूष भी संसार में लिप्त होकर आनन्दित होता है।

जिस प्रकार समझदार व्यक्ति रथ पर सवार होकर सो नहीं जाता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष संसार में लिप्त नहीं होता। ज्ञानी पुरूष अगर रथ पर सवार होता है तो फिर उसमें जाकर सो नहीं जाता; वरन् जैसे ही रथ की यात्रा समाप्त हो जाती है वह रथ से उतर जाता है अर्थात् ज्ञानी पुरूष को रथ (संसार) का व्यवहार यात्रा (निर्वाण की प्राप्ति) सम्पन्न करने के लिए करना चाहिए न कि उस रथ (संसार) में रम जाने के लिए।

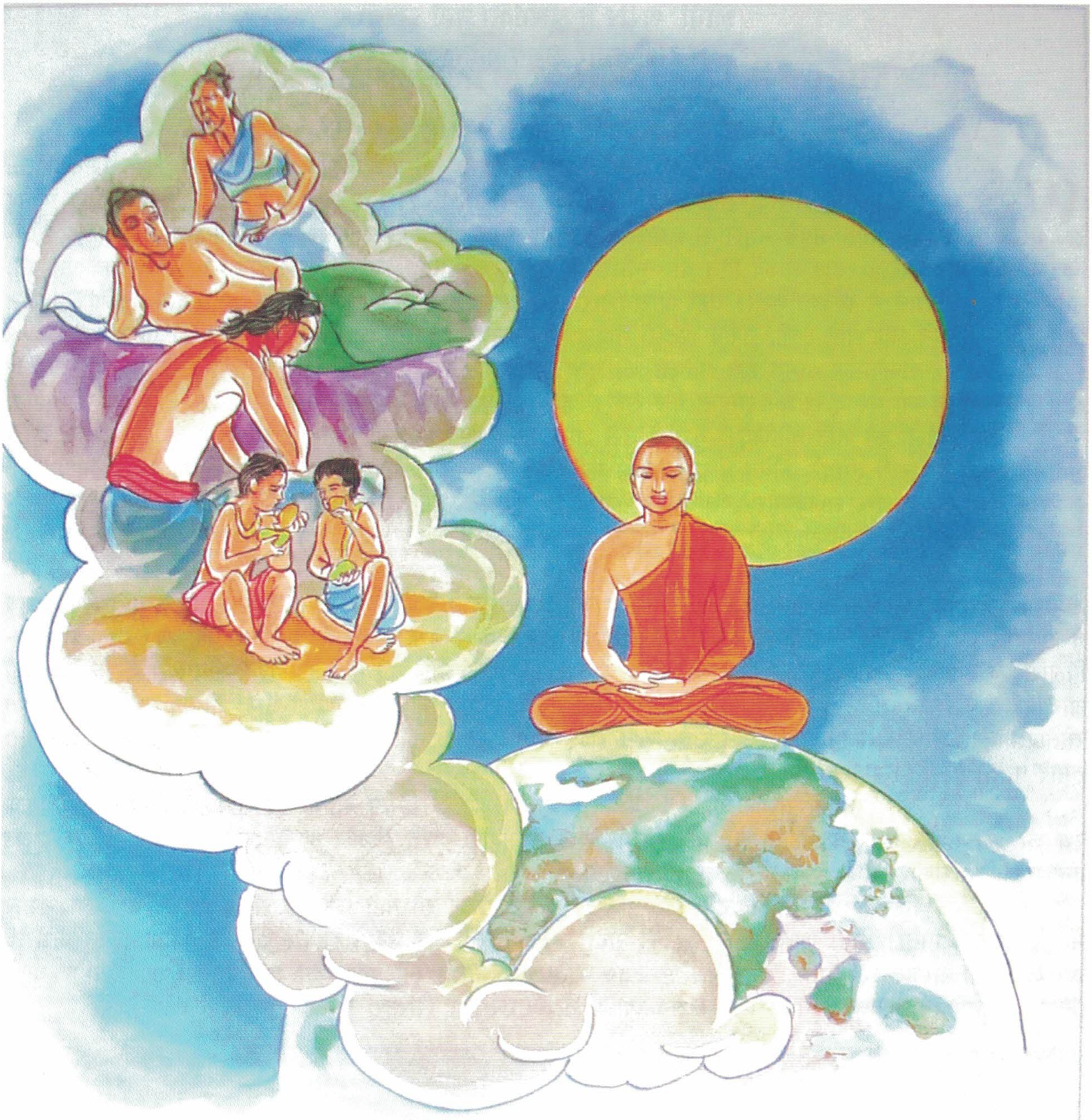

गाथा: यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सो इमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।172।।

अर्थ: अगर जीवन के प्रथम काल में (गलती से) प्रमाद में लिप्त होकर भी अपने को सुधारकर जीवन के उत्तर काल में प्रमाद में लिप्त नहीं होता वह मेघों से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह संसार में अपना प्रकाश फैलाता है।

प्रमाद को भूलिए, धर्म पर चलिए
थेर सम्मुञ्जनि की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेर सम्मुञ्जनि अपना अधिकांश समय विहार की सफाई में लगाया करते थे। उन दिनों भन्ते रेवत भी उस विहार में रह रहे थे। सम्मुञ्जनि के विपरीत थेर रेवत अपना अधिकांश समय ध्यान, मनन और चिंतन में लगाया करते थे। थेर रेवत के व्यवहार को देखकर सम्मुञ्जनि ने सोचा कि दूसरा भिक्षु अपना समय बरबाद कर रहा है। अतः एक दिन सम्मुञ्जनि थेर रेवत के पास गया और उनसे कहा, "तुम बहुत आलसी हो, दूसरों के विश्वास और श्रद्धा के आधार पर मिलने वाले भोजन पर जीते हो, तुम्हें नहीं लगता कि तुम्हें यदा-कदा कमरों की, अहाते की या बरामदों की सफाई करनी चाहिए ?" थेर रेवत ने उसे उत्तर दिया, "मित्र, एक भिक्षु को अपना सारा समय सफाई में ही नहीं लगाना चाहिए। उसे सुबह में सफाई करनी चाहिए। उसके बाद भिक्षाटन के लिए जाना चाहिए। भोजनोपरान्त, उसे अपने शरीर पर चिंतन करते हुए उसकी नश्वरता की अनुभूति करनी चाहिए या उसे सायंकाल तक बौद्ध-शिक्षा को कंठस्थ करना चाहिए। उसके बाद अगर इच्छा हो तो वह पुनः सफाई कर सकता है।" थेर सम्मुञ्जनि ने थेर रेवत की सलाह को हृदयंगम कर लिया और उस पर अमल करता हुआ शीघ्र ही अर्हत बन गया।

दूसरे भिक्षुओं ने विहार में गंदगी जमा होते हुए देखा तो उन्होंने सम्मुञ्जनि से पूछा कि अब वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं करता है। सम्मुञ्जनि ने उत्तर दिया, "मित्रों ! जब मैं प्रमाद में था तब मैं हर समय सफाई ही किया करता था लेकिन अब मैं कभी प्रमाद में लिप्त नहीं होता।" जब उन भिक्षुओं ने उसका उत्तर सुना तो उन्हें संदेह हुआ; अतः वे बुद्ध के पास गए तथा बोले, "भन्ते ! थेर सम्मुञ्जनि कहते हैं कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है; वे अपनी शेखी बघार रहे हैं" बुद्ध ने उन्हें समझाते हुए कहा, "सम्मुञ्जनि सचमुच अर्हत हो गया है; वह सच बोल रहा है। अगर हम अपनी गलतियाँ सुधार लेते हैं तो हम उसी प्रकार चमक उठते हैं जैसे बादलों से बाहर निकलकर चन्द्रमा चमक उठता है।"

टिप्पणी : जीवन में गलतियाँ किसने नहीं कीं ? महामोग्गलान जैसे शिष्य ने भी की और अंतिम जीवन में भयावह मृत्यु को प्राप्त हुए। गलतियाँ करना स्वाभाविक है। अतः महत्वपूर्ण बात यह है कि गलतियाँ की जाती हैं तो गलतियों के बाद उनसे ऊपर उठने की चेष्टा की जाती है या नहीं ? सूर्य या चंद्रमा बादल में छिपेंगे ही, स्वाभाविक ही है, पर महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अंततः उस बादल से बाहर निकलकर फिर चमकते हैं या नहीं ?

एक कहावत है, "कोई महात्मा नहीं हुआ जिसका भूतकाल न हो और कोई पापी नहीं हुआ जिसका भविष्य न हो।"

अतः जीवन से निराश न होकर, प्रमाद से ऊपर उठकर, सतत् आगे बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए।

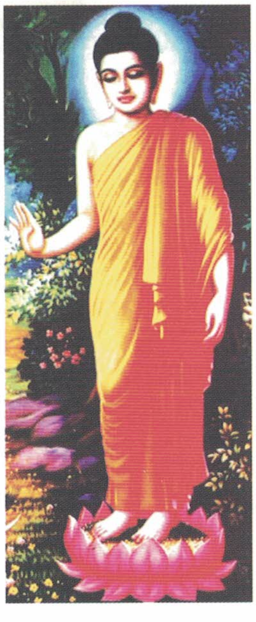

गाथा: यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति ।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।173।।

अर्थ: अगर व्यक्ति अपने द्वारा किए गए बुरे कर्मों को (भविष्य में) सदकर्मों द्वारा बदल देता है तो वह उसी प्रकार चमकने लगता है जैसा बादलों से निकला हुआ चाँद।

बुराई को भलाई से जीता जाता है

थेर अंगुलिमाल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अंगुलिमाल राजा पसेनदि के मुख्य पुरोहित का पुत्र था। उसका प्रारंभिक नाम अहिंसक था। जब वह बड़ा हुआ तो उसे अध्ययन हेतु तक्षशिला भेजा गया। अहिंसक कुशाग्र बुद्धि का था और आज्ञाकारी भी था। इसलिए गुरू और उसकी पत्नी उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। इस कारण दूसरे शिष्य उससे जलने लगे। इसलिए वे गुरू के पास गए और उन्होंने गलत शिकायत की कि अहिंसक का गुरू पत्नी के साथ अवैध सम्बन्ध है। पहले तो शिक्षक ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया पर जब बार-बार इसकी पुनरावृति की गई तो उसे विश्वास हो गया; इसलिए उसने बालक से बदला लेने की सोची। लेकिन अगर वह उसकी जान लेता तो उसकी निंदा होती। अतः उसने एक योजना बनाई जो जान लेने से भी अधिक बुरी थी। उसने अहिंसक को एक हजार नर-नारी की हत्या करने को कहा और जिसके एवज में वह उसे मूल्यवान ज्ञान देगा। वह बालक इस ज्ञान को तो प्राप्त करना चाहता था पर लोगों की हत्या नहीं करना चाहता था। लेकिन अंत में गुरू की आज्ञा को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उसने लोगों को मारना शुरू कर दिया और मारे गए लोगों की गिनती रखने के लिए हर व्यक्ति को मारने के बाद उसकी एक अंगुली को काटकर अपने गले में लगी माला में डाल लेता था। इस प्रकार उसका नाम 'अंगुलिमाल' पड़ गया। वह राज्य का सबसे खतरनाक डाकू जाना जाने लगा। राजा ने स्वयं उसके कारनामों को सुना और उसको पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाल की माता मंतनी ने राजा की योजना के विषय में सुना तो प्रेमवश अपने पुत्र की जान बचाने के उद्देश्य से वन में प्रवेश कर गई। उस समय तक अंगुलिमाल के गले की माला में नौ सौ निन्यानबे अंगुलियाँ हो गई थीं। सिर्फ एक और अँगुली डालने से यह संख्या एक हजार हो जाती।

उस दिन प्रातःकाल अपने अवलोकन में बुद्ध ने अंगुलिमाल को देखा और महसूस किया कि अगर उन्होंने उचित कार्रवाई न की तो एक अंतिम व्यक्ति की शीघ्र ही हत्या करने की इच्छा से वह अपनी माँ की ही हत्या कर देगा और इस प्रकार नरक में जा गिरेगा। अतः दया भाव से अभिभूत होकर बुद्ध जंगल में वहाँ पहुँचे जहाँ अंगुलिमाल विद्यमान था। अनेक रातों की निद्रा के अभाव में अंगुलिमाल पूरी तरह थक चुका था। दूसरी तरफ उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह अंतिम व्यक्ति की यथा शीघ्र हत्या कर ले और इस प्रकार एक हजार लोगों का कार्य पूर्ण कर ले। उसने अपना मन बना लिया कि जो भी पहला व्यक्ति मिलेगा, वह उसे मार देगा। अचानक जैसे ही उसने अपनी दृष्टि घुमाई, उसे बुद्ध दिख गए और वह अपनी तलवार उठाये उनकी ओर दौड़ा। लेकिन वह दौड़ता रहा, दौड़ता रहा और दौड़ते-दौड़ते थक गया पर बुद्ध तक नहीं पहुँच पाया। तब बुद्ध की ओर देखते हुए वह दूर से ही चिल्लाया, "हे संन्यासी, रुको ! रुको !" बुद्ध ने जबाब दिया, "मैं तो रुक गया हूँ, केवल तुम नहीं रुके हो।" अंगुलिमाल को बुद्ध की बात समझ में नहीं आई। अतः उसने पूछा, "भिक्षु ! तुम क्यों कहते हो कि तुम रुक गए हो और मैं नहीं रुका हूँ ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, "मैं कहता हूँ कि मैं रुक गया हूँ क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना बंद कर दिया है, मैंने सभी प्राणियों के प्रति दुर्भावना समाप्त कर दी है, और मैंने अपने आप को अंतर्ज्ञान द्वारा सभी के प्रति प्रेम, धीरज, दया और करुणा में प्रतिष्ठित कर दिया है। लेकिन तुमने लोगों की हत्या और उनके प्रति दुर्व्यवहार को समाप्त नहीं किया है।" बुद्ध के मुखारविंद से ये वाक्य सुनकर, अंगुलिमाल ने चिंतन किया, "यह एक ज्ञानी के शब्द हैं। यह भिक्षु अपार ज्ञानी है और अपार साहसी भी। वह निश्चय ही स्वयं बुद्ध होगा। वह निश्चय ही यहाँ आया होगा कि मुझे प्रकाश के दर्शन करा सके।" ऐसा सोचकर उसने अपनी तलवार फेंक दी और बुद्ध से प्रार्थना की कि उसे भी अपने संघ में शामिल कर लें। बुद्ध ने तुरंत उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे प्रव्रजित कर दिया।

गाथा: अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति ।
सकुणो जालमुत्तोव, अप्पो सग्गाय गच्छति ।।174।।

अर्थ: यह संसार अंधे के समान है। यहाँ देखने वाले थोड़े ही हैं। थोड़े ही हैं जो जाल से मुक्त पक्षी की तरह स्वर्ग को जाते हैं। बहुत कम ही हैं जो सुगति को प्राप्त कर पाते हैं।

दुख के पिंजड़े से निकलोगे ?
पेशकार कन्या की कथा

स्थान : आलवी

एक बार आलवी में भोजन-दान समारोह के बाद बुद्ध ने शरीर की नश्वरता पर धर्म-प्रवचन दिया। जो बातें बताईं वे मुख्यत: इस प्रकार थीं, "जीवन अस्थायी है और मृत्यु स्थायी और अवश्यम्भावी। मौत तो आनी ही है, जीवन का अंत मृत्यु में होना ही है। जीवन शाश्वत नहीं है; मृत्यु है एक सम्पूर्ण सच्चाई।" बुद्ध ने श्रोतागण को सदैव जाग्रत रहने का भी संदेश दिया और जीवन की वास्तविक सत्यता को देखने की सलाह दी। उन्होंने यह भी कहा, "जैसे किसी के पास लाठी या भाला हो तो वह किसी भी शत्रु (जैसे एक जहरीला साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो सदैव मृत्यु के प्रति सजग रहता है, वह सहजता से मृत्यु का सामना कर लेता है। संसार छोड़ने पर उसकी सुगति होती है।" अनेक श्रोताओं ने उनके इस प्रवचन को गम्भीरता से नहीं लिया, लेकिन एक सोलह साल की पेशकार कन्या संदेश को समझ गई। वह पूरी लगन से तीन वर्षों तक मृत्यु पर चिंतन-मनन करती रही। धर्म प्रवचय के बाद बुद्ध जेतवन-विहार लौट आए। तीन वर्षों के बाद एक दिन बुद्ध ने अपने दिव्य चक्षु से संसार का अवलोकन किया और वह पेशकार कन्या उनकी दृष्टि में आई। उन्हें लगा कि यह कन्या स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। अत: धर्म-प्रवचय के लिए बुद्ध दूसरी बार आलवी पधारे। जब उस लड़की ने सुना कि बुद्ध अपने शिष्यों के साथ आये हैं तो वह बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए अधीर हो उठी। लेकिन उसके पिता ने उसे शीघ्र ही सूत से बना तसर लाने को कहा। इसलिए उसने जल्दी ही सूत से तसर बना लिया और उसे साथ ले, पिता को देने के लिए चल पड़ी। मार्ग में वह कुछ क्षणों के लिए वहाँ रुक गई जहाँ लोग बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हुए थे।

बुद्ध को ज्ञात था कि यह युवती उनके प्रवचन को सुनने आयेगी। वे यह भी जानते थे कि जब वह अपने पिता को सूत का तसर देगी तो उसी समय उसकी मृत्यु हो जाएगी। अत: यह जरूरी था कि पिता से मिलने से पहले ही उसे धर्म-प्रवचय दिया जाये; लौटने की प्रतीक्षा न की जाये। इसलिए जब वह श्रोताओं में आकर बैठ गई तो बुद्ध ने ग्रीवा ऊँची कर उसकी ओर देखा। उस कुमारी को लग गया कि बुद्ध उससे ही कुछ कहने जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, "कुमारी ! कहाँ से आ रही हो ? " "नहीं जानती भन्ते।" "नहीं जानती ? " उत्तर था, "जानती हूँ भन्ते ! " "जानती हो ? " "नहीं जानती हूँ भन्ते ! " लोगों को उसका इस प्रकार का उत्तर अटपटा लगा और कुछ को लगा कि वह बुद्ध के प्रति अपनी अश्रद्धा प्रकट कर रही है। अत: वे कुछ कहने को उठे पर बुद्ध ने उन्हें संकेत से बैठा दिया। तब बुद्ध ने पूछा कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उसने वैसा क्यों दिया था।

लड़की ने उत्तर दिया, "भन्ते ! आप तो जानते ही थे कि मैं जुलाहे के घर से तसर की टोकरी लेकर आ रही थी और पिताजी के पास जा रही थी। अत: मुझे लग गया कि आपके प्रश्न का भाव गंभीर है। मुझे लगा कि आप शायद पूछना चाहते हैं कि मैं किस लोक (योनि) से पैदा हुई हूँ तथा किस लोक (योनि) में जाऊँगी। अत: मैंने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानती।"

बुद्ध ने उसका उत्तर सुनकर उसे साधुवाद दिया और अन्य दो प्रश्नों के उत्तर का स्पष्टीकरण माँगा। कुमारी ने उत्तर दिया, "मुझे मालूम है कि मेरी मृत्यु होगी अत: मैंने कहा, 'जानती हूँ भन्ते !' लेकिन इतना नहीं जानती कि मृत्यु कब होगी। अत: कहा, 'नहीं जानती, भन्ते "

तब शास्ता ने उसे बताया, "तुमने सभी प्रश्नों के सही उत्तर दिये हैं और तुमको पुन: साधुवाद है।" उन्होंने अन्य श्रोताविंद को सम्बोधित करते हुए कहा, "तुम लोगों ने इन प्रश्नों की गूढ़ता के विषय में नहीं सोचा था अत: उस कुमारी पर नाराज हो रहे थे। जो मनुष्य अपने ज्ञान चक्षु से नहीं देखते, उनमें और अंधों में कोई अंतर नहीं है।"

लड़की पिता के पास पहुँची, गलती से पिता ने बुनने वाला शटल खींच दिया। शटल की लाठी लड़की की छाती पर पड़ी और वह प्रारब्धानुसार मृत्यु को प्राप्त हो गई। उसका पिता बहुत दुखी हुआ और अश्रुपूर्ण नेत्रों सहित बुद्ध के पास पहुँचा और संघ में प्रवेश की प्रार्थना की। इस प्रकार वह भिक्षु हो गया और समय के अन्तराल में अर्हत हो गया।

गाथा: हंसादिच्चपथे यन्ति, आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा, जेत्वा मारं सवाहिनिं ।।175।।

अर्थ : हंस स्वच्छन्दता से आकाश में विचरण करते हैं उसी प्रकार ऋद्धि से योगीजन भी आकाश की ओर गमन कर जाते हैं। धैर्यवान पंडितजन मार की सेना को पराजित कर इस संसार के आवागमन चक्र को पार कर निर्वाण की ओर निकल जाते हैं।

इरादा हो तो निर्वाण में देरी क्यों ?

तीस भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी दिन तीस भिक्षु इधर-उधर से घूमते हुए बुद्ध के पास पहुँचे। भन्ते आनन्द ने उन्हें आते हुए देखा। उस समय आनन्द बुद्ध की सेवा करने जा रहे थे। उन भिक्षुओं को देखकर आनन्द ने सोचा, "पहले इन भिक्षुओं की शास्ता से भेंट करा देता हूँ। जब वे चले जायेंगे तब तथागत की सेवा कर दूँगा। इस बीच वे बुद्ध से अपना वार्तालाप कर लेंगे।" ऐसा सोचकर आनन्द ने उन्हें कुटी में प्रवेश करा दिया जहाँ शास्ता विराज़मान थे और स्वयं बाहर बैठकर उन तीस भिक्षुओं के बाहर आने का इन्तजार करने लगे।

उधर भिक्षुगण अंदर पहुँचे। शास्ता ने उनका कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद उनके अनुकूल बहुत ही प्रेमपूर्वक धर्म-प्रविचय किया। शास्ता के उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे सभी भिक्षु तुरंत अर्हत्व प्राप्त कर गए। अर्हत्व प्राप्त करने के बाद जरूरी नहीं था कि वे उसी दरवाजे से बाहर आते जिधर से वे अंदर प्रवेश किए थे। वे आकाश मार्ग होकर आकाश की ओर चले गए।

उधर आनन्द बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे कि भिक्षुगण बाहर आ जायें तो वे अंदर जाकर शास्ता की सेवा करें। पर ऐसा नहीं हुआ। अंत में इंतजार करते-करते थककर, आनन्द कुटी में बुद्ध के पास प्रविष्ठ हुए। उन्होंने वहाँ न तो किसी भिक्षु को देखा और न कोई कोलाहल सुना। इससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। अंत में जब उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया तो उन्होंने शास्ता से पूछ ही लिया, "भन्ते ! तीस भिक्षु आपके दर्शन हेतु आए थे। वे कहाँ हैं ?" "आनन्द वे तो चले गए।" "पर वे किस मार्ग से चले गए ? मैंने तो उन्हें देखा ही नहीं।" "आकाश मार्ग से चले गए।" "भन्ते ! क्या वे सभी क्षीणास्त्रव थे ?" "हाँ आनन्द ! वे सभी क्षीणास्त्रव थे। अतः उन्होंने मुझ से धर्मश्रवण कर अर्हत्व प्राप्त कर लिया।"

जिस समय शास्ता आनन्द से चर्चा कर रहे थे, उसी समय आकाश में कुछ हंस विचरण कर रहे थे। बुद्ध ने आनन्द को उन हंसों को दिखाया और बताया, "आनन्द ! जिस साधक ने चारों ऋद्धिपादों की साधना कर ली है, वे निर्विघ्न आकाशमार्ग से गमन कर सकते हैं, जैसे ये हंस आकाश में उड़ रहे हैं।"

गाथा: एकं धम्मं अतीतस्स, मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स, नत्थि पापं अकारियं ।।176।।

अर्थ: सत्य का अतिक्रमण करने वाला तथा असत्य का आश्रय लेने वाला प्राणी जिसे परलोक की कोई चिंता नहीं है, हर प्रकार का पाप करने में सक्षम है।

दुष्ट व्यक्ति के पाप की सीमा नहीं
चिंचा माणविका की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध धर्म प्रविचय कर रहे थे। उनकी शिक्षा से हजारों की संख्या में लोग उनके संघ में शामिल होने लगे। उनकी कीर्ति दोपहर के सूर्य के समान चमकने लगी। दूसरी ओर उनके प्रतिद्वन्दी सम्प्रदायों की वही स्थिति हो गई जो सूर्य के सामने जुगनुओं की हो जाया करती है। जनता में उनकी पूछ नहीं रही और उनसे मिलने वाला आर्थिक लाभ भी बंद हो गया। उनके पेट पर लात पड़ी और इससे उबरने के लिए उन्होंने एक षड़यंत्र सोचा। उन्होंने एकान्त में बैठकर विचार-विमर्श किया कि बुद्ध का चरित्र हनन किया जाए, इस प्रकार उनकी अपकीर्ति फैलेगी और वे अपना उल्लू साध सकेंगे।

ऐसा सोचकर उन्होंने अपने सम्प्रदाय की एक साधिका, चिंचा माणविका को तैयार किया। वह देखने में अति खूबसूरत थी तथा मायावी गुणों से भी सम्पन्न थी। उस दिन से शाम में उसने सज-धजकर फूलों का गुच्छा लेकर जेतवन विहार जाने का सिलसिला प्रारंभ कर दिया। जब रास्ते में लोगों ने पूछा कि वह कहाँ जा रही है तो उसने उत्तर दिया, "तुम्हें जानकर क्या लाभ कि मैं कहाँ जा रही हूँ ?" उसके बाद वह जेतवन विहार के पास अपने सम्प्रदाय के विहार में चली जाती और रात में वहीं रुकती। सुबह में फिर वह इस प्रकार वापस आती कि बुद्ध को प्रातः काल दर्शन करने वाले लोग उसे देखते तो उन्हें लगता कि वह जेतवन से आ रही है। लोग जब पूछते तो वह कहती, "मैं श्रमण गौतम के साथ गन्धकुटी में रात्रि बिताकर आ रही हूँ।" तीन चार महीनों बाद उसने अपने पेट पर कुछ कपड़े बाँध लिए जिससे लगने लगा कि वह गर्भवती है। आठ महीनों बाद उसने अपने पेट पर लकड़ियों का गट्ठर बाँध दिया और फिर उसके ऊपर कपड़ा इस प्रकार लपेट लिया जिससे लगने लगा कि उसके पेट में आठ मास का गर्भ है। उसने अपने पैर और हथेलियों को लकड़ी से पीटकर उसे फुला दिया और अपने आप को थकी हुई दिखाने लगी जिससे लोगों को उस पर विश्वास हो जाए कि वह आठ महीने की गर्भवती है। इस प्रकार नाटक के एक कलाकार की तरह तैयार होकर वह संध्या वेला में जेतवन विहार पहुँची जहाँ बुद्ध प्रवचन दे रहे थे।

वह बुद्ध के पास जाकर खड़ी हो गई और जोर-जोर से लड़ने के अंदाज में कहने लगी, "हे महाश्रमण ! तुम सिर्फ दूसरों को उपदेश देते हो। मैंने तुम्हारा गर्भ धारण किया है और तुम्हें मेरी चिंता तक नहीं है। तुम सिर्फ आनन्द भोग करना जानते हो।" बुद्ध ने प्रवचन देना बंद कर दिया और सिंहनाद करते हुए कहा, "बहन, केवल तुम और मैं जानता हूँ कि तुम सत्य बोल रही हो या नहीं।" चिंचा माणविका ने जोर से बोलते हुए कहा, "अवश्य, तुम सही कह रहे हो, जो मेरे और तुम्हारे बीच हुआ है उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं ?"

इस संवाद से इंद्र का सिंहासन हिल उठा। उन्हें पता चल गया कि बुद्ध के ऊपर घोर असत्य लांछन लग रहा है। अतः उनके आदेश पर देवपुत्रों ने चार छोटे चूहों का रूप धारण किया और उस स्त्री के शरीर पर चढ़कर सारी रस्सियाँ काट दीं जिनसे लकड़ियाँ बँधी थीं। भरभरा कर सभी लकड़ियाँ नीचे गिरीं और उसके पैर कट गए; बंधे वस्त्र बिखर गए; पेट चिपक गया। इस प्रकार उसका षड़यंत्र पकड़ा गया। भीड़ में से लोग क्रुद्ध होकर बोलने लगे, "तू दुष्ट स्त्री ! कलंकिनी ! झूठी और गद्दार ! तुझे धिक्कार है।" ऐसा कहते हुए लोग जूते-चप्पल, लाठी, पत्थर आदि लेकर उसे मारने दौड़े। लोग उस पर थूकने लगे और वह डर कर वहाँ से जितनी शक्ति हो सकती थी, उससे भागी। थोड़ी दूर दौड़ी ही थी कि धरती फट गई और वह उसमें समा गई।

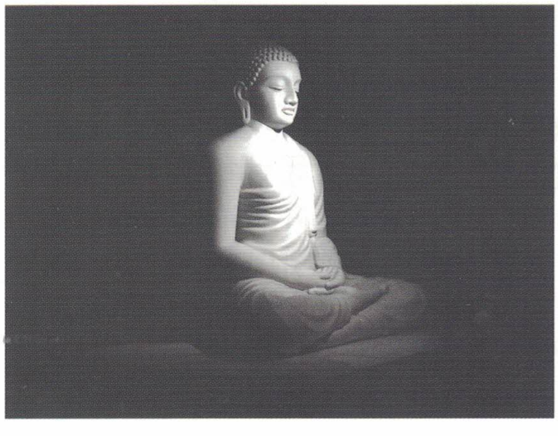

गाथा: न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति, बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो, तेनेव सो होति सुखी परत्थ ।।177।।

अर्थ: कंजूस लोग देवलोक नहीं जा सकते क्योंकि ऐसे मूर्ख दान जैसे शुभ कर्मों (से दाने से जलते हैं और उनकी) की प्रशंसा नहीं करते। इसके विपरीत सद्पुरुष दान का अनुमोदन कर शुभ कर्म का अर्जन करते हैं और देवलोक जाकर सुख की अनुभूति करते हैं।

सद्कर्म कर आनन्द की प्राप्ति
असदृश दान की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा पसेनदि ने एक भव्य आयोजन कर बुद्ध और उनके भिक्षु संघ को भोजन दान दिया। प्रतिस्पर्द्धा में नागरिकों ने उससे भी बढ़कर भोजन-दान का प्रबंध किया। इस प्रकार राजा और प्रजा प्रतिस्पर्द्धा में आकर एक दूसरे से बढ़कर कार्यक्रम का आयोजन करने लगे। अंततः राजा की जीत सुनिश्चित करने के लिए महारानी मल्लिका ने एक योजना बनाई। उसने एक बहुत ही सुन्दर विशाल मंडप बनवाया, पाँच सौ श्वेत छत्र एवं पाँच सौ प्रशिक्षित हाथी मँगाये । ये पाँच सौ हाथी इन पाँच सौ श्वेत छत्रों को पकड़कर पाँच सौ भिक्षुओं के पीछे खड़े थे। मंडप के बीच में दस नौकाएं रखी गईं जिनमें गंधलेप एवं इत्र रखा गया। बालायें उनमें से गंध लेप एवं इत्र भिक्षुओं के ऊपर छींटती रहीं। दो-दो भिक्षुओं के बीच एक राजकुमारी खड़ी होकर भिक्षुओं को पंखा झलने लगीं। बाद में नागरिकों ने जब भोजन-दान का आयोजन किया तो उनके पास न तो श्वेत छत्र थे, न प्रशिक्षित हाथी और न राजकुमारियाँ। उन्होंने मन ही मन अपनी हार मान ली। इस तरह भव्य भोजन-दान समारोह का आयोजन किया गया। राजा ने इस आयोजन पर कुल चौदह करोड़ मुद्रा खर्च किये।

इस समारोह के आयोजन के समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। दोनों के मन में इस आयोजन के प्रति विभिन्न प्रकार के विचार उठे। जुण्ह अमात्य राजा का दान देखकर अति प्रसन्न हुआ और बुद्ध और भिक्षु संघ को दिए गए भोजन-दान की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा, उसने यह भी सोचा कि ऐसा महादान तो एक राजा ही कर सकता है। उसे इस बात की भी अति प्रसन्नता थी कि राजा द्वारा अर्जित पुण्य का अंश भी सबों को कुछ न कुछ अवश्य ही मिलेगा। इसके विपरीत दूसरा अमात्य, काल, सोचने लगा कि राजा ने एक ही दिन में चौदह करोड़ मुद्राएं उड़ा दीं; भिक्षुगण भोजनोपरान्त विहार को चले जायेंगे और सो जायेंगे। इस प्रकार उस दान-कर्म की आवश्यकता नहीं थी। भोजनोपरान्त बुद्ध ने अंतर्दृष्टि से देखा कि अमात्य काल की सोच क्या थी। उन्हें धर्म-अनुमोदन करना था। अतः उन्होंने सोचा कि अगर वे ज्यादा देर तक धर्म-प्रविचय करेंगे तो काल के अन्दर का असंतोष और उद्विग्नता और बढ़ेगी जिससे उसका नुकसान होगा। अगले जन्म में उसे और अधिक कष्ट उठाना होगा। अतः शास्ता ने संक्षेप में ही राजा के दान का अनुमोदन किया और विहार चले गए।

उधर राजा पसेनदि दुखी हो गए कि क्या उनसे कोई त्रुटि हो गई कि बुद्ध ने संक्षेप में ही धर्म-गाथा कही। अतः विहार जाकर उसने बुद्ध से यह प्रश्न कर डाला। तथागत ने उसे समझाया, "राजन ! तुम्हारा दान अति श्रेष्ठ था। ऐसा दान बुद्धों को जीवन में एक ही बार मिला करता है।" "तब आपने संक्षेप में भक्तों को अनुमोदन क्यों किया ?"

तब शास्ता ने महामात्य काल के मन की स्थिति के विषय में बताया कि किस प्रकार उसके मन में विचार उठा था कि राजा ने धन का अपव्यय किया था, अतः वह दुखी था। " अगर मैंने लंबा अनुमोदन किया होता तो उसका असंतोष और भी बढ़ता और इस कारण इस जन्म में और अगले जन्म में भी उसे अधिक कष्ट उठाना पड़ता। अतः उस पर अनुकंपा कर मैंने संक्षिप्त व्याख्यान देना ही उचित समझा।" उन्होंने यह भी कहा, " राजन ! मूर्ख लोग दूसरों के द्वारा दिये गए दान में भी आनन्द की अनुभूति नहीं करते; वे स्वयं तो दान नहीं देते हैं, दानी से जलते हैं, ईर्ष्या करते हैं और इस प्रकार निम्न लोकों को जाते हैं। समझदार लोग दूसरों द्वारा दिये गये दान में भी आनन्द प्राप्त करते हैं और उस दान की प्रशंसा कर अपने लिए शुभ कर्म अर्जित करते हैं और उच्च देव लोकों को जाते हैं।"

राजा ने काल अमात्य को बुलाकर कहा, "मैंने जो कुछ दान किया वह स्वयं एवं बाल-बच्चों के साथ मिलकर अर्जित किया था। इससे तुम्हें क्या कष्ट हो रहा था जो तुम इस प्रकार की बात सोचने लगे ? मेरे राज्य से निकल जाओ।" दूसरी ओर राजा ने अमात्य जुण्ह को बुलाकर उसे सात दिनों तक राज्य सौंपकर उसी प्रकार सात दिनों तक मुक्तहस्त दान करने का निर्देश दिया।

गाथा: पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं ।।178।।

अर्थ: समस्त पृथ्वी के राज्य, स्वर्ग के दिव्य सम्पत्ति और सभी लोगों के स्वामित्व से भी बढ़कर है- स्त्रोत आपत्ति का फल।

धर्म पथ पर आगमन : सबसे महान कार्य
अनाथपिंडिक पुत्र, काल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाउपासक अनाथपिंडिक को काल नाम का एक पुत्र था। वह इतने महान श्रद्धावान पिता का पुत्र होकर भी कभी धर्म-श्रवण के लिए नहीं जाता था। बुद्ध भी जब अपने शिष्यों के साथ पधारते तो उनके सम्मुख प्रकट नहीं होता। ऐसा देखकर अनाथपिंडिक ने चिंतित होकर सोचा कि अगर यही सिलसिला रहा तो वह अगले जन्म में निम्न लोकों को प्राप्त होगा। अतः अपने पुत्र को धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए एक तरकीब सोची। पुत्र से कहा, "आज अगर तुम उपोसथ व्रत रख, विहार जाकर धर्म श्रवण कर आओ तो मैं तुम्हें सौ कार्षापण दूँगा।" धन के लालच में उपोसथ-व्रत रख वह विहार गया पर वहाँ उसने धर्म श्रवण नहीं किया। वहाँ जाकर वह सो गया और प्रातः होने पर उठकर घर वापस आ गया। घर लौटने पर उसे जलपान दिया गया पर पहले उसने सौ कार्षापण ले लिए तभी भोजन किया।

दूसरे दिन पिता ने पुत्र से कहा, "अगर तुम विहार जाकर बुद्ध की एक गाथा कंठस्थ कर आओ तो मैं तुम्हें हजार कार्षापण दूँगा।" कार्षापण के लालच में पुत्र पुनः विहार गया और इस बार बुद्ध से आग्रह किया कि वह कुछ सीखना चाहता था। अतः बुद्ध ने उसे एक छोटा सा पद दे दिया तथा उसे कंठस्थ कर लेने के लिए कहा पर उसकी मनः स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह उसे याद कर पाता। अतः वह उस गाथा का बार-बार उच्चारण करने लगा पर याद नहीं कर पाया। लेकिन गाथा का बार- बार उच्चारण करने से उसे उसका अर्थ स्पष्ट होने लगा और उसके ज्ञान चक्षु खुलने लगे। पूरी तरह अर्थ समझकर वह स्रोतापन्न हो गया।

दूसरे दिन बुद्ध और भिक्षुगण अनाथपिंडिक के घर गए। उनके साथ काल भी गया, लेकिन आज वह मन ही मन चाह रहा था, "अगर मेरे पिता बुद्ध के सामने एक हजार कार्षापण न दें तो बड़ा अच्छा हो। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने उपोसथ व्रत पैसे के लिए रखा था।" वहाँ पहुँचने पर उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को भोजन-दान दिया। काल को भी भोजन मिला। उसने भी भोजन किया। उसके बाद उसके पिता एक हजार कार्षापण ले आए और काल को देने की चेष्टा की पर उसने पैसे लेने से मना कर दिया। उसके पिता ने उसे दोबारा पैसे लेने के लिए कहा पर उसने फिर अस्वीकृति दे दी।

तब अनाथपिंडिक ने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! मैं अपने पुत्र के व्यवहार को देखकर प्रसन्न हूँ।" "ऐसा कैसे ?" "परसों मैंने उसे विहार भेजा था कि अगर उपोसथ व्रत रखोगे तो मैं तुम्हें एक सौ कार्षापण दूँगा। कल वह भोजन करने को तैयार नहीं था क्योंकि मैंने उसे पैसे नहीं दिए थे लेकिन आज जब मैं उसे पैसे लेने के लिए जिद कर रहा हूँ तो वह अपनी अस्वीकृति दे रहा है।" तब बुद्ध ने समझाया, "अनाथपिंडिक ! सच यह है कि आज तुम्हारे पुत्र ने स्रोतापन्न प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे पुत्र ने जो प्राप्त कर लिया है वह महाचक्रवर्ती के साम्राज्य तथा देवलोक और ब्रह्मलोक की सम्पत्तियों से भी बढ़कर है।"

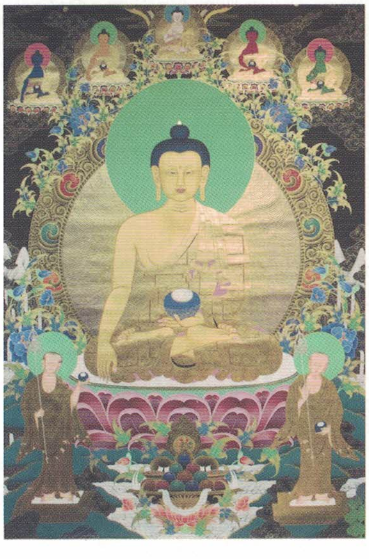

DHAMMAPADA

LOKA VAGGA

बुद्ध कौन?
धम्मपद
बुद्ध वर्ग
गाथा और कथा

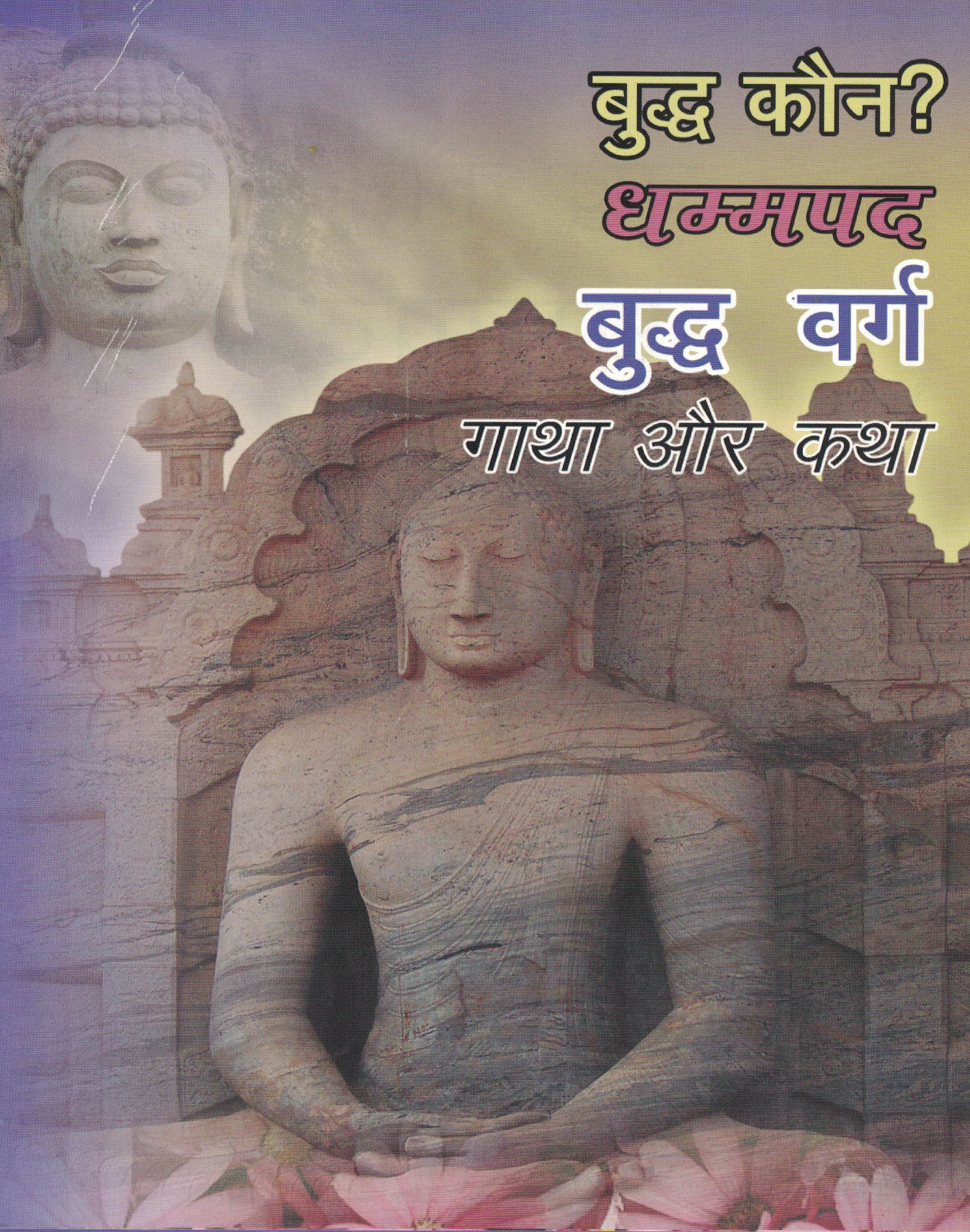

बुद्ध कौन?
धम्मपद
बुद्ध वर्ग
गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

बुद्ध वर्ग

क्र. सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	मार कन्याओं की कथा	179	मारः गया तू बुद्ध से हार	195
2.	मार कन्याओं की कथा	180	बुद्ध को कोई हरा नहीं सकता	197
3.	बुद्ध के तावतिंस दिव्य लोक से लौटने की कथा	181	बुद्ध देवतागण को भी प्रिय हैं	199
4.	नागराज एरकपत्त की कथा	182	धर्मपथ पर चल मनुष्य जन्म का लाभ उठायें	201
5.	स्थविर आनन्द का प्रश्न	183	क्या बुद्धों की शिक्षा एक है?	203
6.	स्थविर आनन्द का प्रश्न	184	संत कैसे रहते हैं?	205
7.	स्थविर आनन्द का प्रश्न	185	मार्ग पर कैसे चलें?	207
8.	असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा	186	तृष्णा से खारे जल की तरह प्यास कभी नहीं बुझती	209
9.	असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा	187	निर्वाणः सर्वोच्च सुख	211
10.	अग्निदत्त की कथा	188	भय से मुक्ति का सही उपाय	213
11.	अग्निदत्त की कथा	189	अंधविश्वास से कुछ नहीं मिलेगा	215
12.	अग्निदत्त की कथा	190	बुद्ध की शरण से सत्य देखना	217
13.	अग्निदत्त की कथा	191	आर्य सत्य क्या है?	219
14.	अग्निदत्त की कथा	192	सर्वोत्तम शरण में कैसे आयें?	221
15.	स्थविर आनन्द के प्रश्न की कथा	193	बुद्ध का आगमन परम दुर्लभ है	223
16.	अनेक भिक्षुओं की कथा	194	सुखदायक क्या है?	225
17.	कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा	195	पूजनीय की पूजा कीजिए	227
18.	कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा	196	असीम फल देने वाले पुण्य का रहस्य	229

गाथा: यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ।।179।।

अर्थ: जिसका एक बार जीता हुआ रागादि क्लेश पुनः लौट नहीं सकता, संसार में वह जिस स्तर का विजयी है वहाँ और कोई पहुँच ही नहीं सकता, तो फिर उस अंत तथा आधार रहित बुद्ध को किस प्रकार डिगा सकोगी ?

मारः गया तू बुद्ध से हार

मार कन्याओं की कथा

स्थान : बोधिमण्डल

कुरू देश में मागन्दिय नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी एक पुत्री थी, उसका नाम भी मागन्दिय था। वह अति सुन्दर थी। बहुत दूर-दूर से उसके विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आए पर हर प्रस्ताव पर ब्राह्मण यही कहता कि वह वर कन्या के योग्य नहीं है।

एक दिन प्रातः काल जब बुद्ध ने अन्तर्दृष्टि से जगत का सर्वेक्षण किया तो मागन्दिय को अपने क्षेत्र में पाया। ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातः नगर से बाहर अग्नि को आहुति दिया करता था। अतः बुद्ध सुबह-सुबह अपना भिक्षा-पात्र लेकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ किया करता था। ब्राह्मण ने बुद्ध के भव्य रूप को देखा तो सोचा, "इस युवक के समान संसार में कोई दूसरा प्रतीत नहीं होता है; मैं अपनी बेटी का हाथ इसे ही दूँगा।" अतः उसने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! मेरी एक पुत्री है, अभी तक उसके योग्य वर ढूँढ़ने में असफल रहा हूँ। मैंने उसका हाथ अभी तक किसी को नहीं सौपा है। पर तुम उसके योग्य हो। मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ; मैं अपनी बेटी को लेकर आता हूँ, तुम यहीं प्रतीक्षा करो। " शास्ता ने उसकी बातें सुनीं लेकिन उन्होंने न तो अपनी स्वीकृति दी और न ही अस्वीकृति।

ब्राह्मण घर गया और अपनी पुत्री को सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित कर, अपनी पत्नी के साथ वहाँ वापस आ गया जहाँ उसकी भेंट बुद्ध से हुई थी। बुद्ध उसी स्थान पर रुके रहने के बजाय, आगे जाकर एक जगह रुक गए थे। जहाँ वे ब्राह्मण से मिले थे, वहाँ धरती पर अपने पदचिन्ह छोड़ गए थे।

ब्राह्मण की पत्नी ने पूछा, "युवक कहाँ है ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैंने उससे कहा था, तुम यहीं रुको।" इधर-उधर देखते हुए ब्राह्मण ने शास्ता के चरण-चिन्ह देखे और पत्नी को दिखाया, "यह देखो, उसके पद-चिन्ह।" ब्राह्मण की पत्नी चरण-चिन्हों को पहचानने की कला जानती थी। उसने पति से कहा, "अरे ! यह किसी काम भोगी का पद-चिन्ह नहीं है।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "तुम्हें सदा 'मटकी में मगर' दिखाई देता है। जब मैंने उस भिक्षु से कहा, 'मैं अपनी बेटी का हाथ तुम्हें दूँगा,' तो उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ब्राह्मणी ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम्हें जो कहना है वह कहो पर मैं इतना ही कह सकती हूँ कि ये पद-चिन्ह किसी जीवन-मुक्त के हैं।" ब्राह्मण ने पत्नी से कहा, "इस विषय पर वाद-विवाद मत करो; चुपचाप मेरे पीछे चली आओ।" थोड़ी दूर जाने पर उसने तथागत को देखा और उनकी ओर इशारा करते हुए पत्नी को बताया, " वह रहा आदमी !" बुद्ध के समीप जाते हुए ब्राह्मण ने कहा, " भन्ते ! मैं अपनी बेटी आपको पत्नी के रूप में देना चाहता हूँ।" बुद्ध ने यह कहने के बजाय कि, 'मुझे तुम्हारी पुत्री की आवश्यकता नहीं' कहा, "ब्राह्मण ! मुझे तुमसे कुछ कहना है, ध्यान से सुनो।" ब्राह्मण ने कहा, " सुनाओ, मैं सुनूँगा।" तब बुद्ध ने ब्राह्मण को अपने पहले के जीवन की कथा सुनाई।

The main Image of Lord Buddha in Bodhgaya Temple

गाथा: यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ।।180।।

अर्थ: जिसे भवजाल में फँसाने वाली तृष्णा जरा भी प्रभावित नहीं कर पाती है, उस अंत तथा आधार रहित बुद्ध को किस प्रकार डिगा सकोगी ?

बुद्ध को कोई हरा नहीं सकता
मार कन्याओं की कथा

महाभिनिष्क्रमण से प्रारम्भ किया। बुद्ध अपना पूर्ण राज-पाट त्याग कर अश्व कंथक पर बैठ, सारथी चन्ना के साथ राजमहल से निकल पड़े। मार नगर द्वार के पास खड़ा था। जैसे ही वे नगर-द्वार पहुँचे, मार ने उनसे कहा,"सिद्धार्थ ! तुम अपने राजमहल में लौट जाओ; सात दिनों के अंदर ही तुम सारे संसार के महाराजाधिराज हो जाओगे।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "मार, मुझे भी मालूम है, लेकिन मुझे कुछ नहीं चाहिए।" "तब तुम किस उद्देश्य से यह महान त्याग कर रहे हो ?" "ताकि मैं सत्य का अन्वेषण कर सकूँ।" " ठीक है, अगर आज से तुमने रागमय या गलत सोचा तो मैं तुम्हें ठीक सबक सिखाऊँगा।"

उसी समय से मार उनके पीछे छः वर्षों तक लगा रहा कि उसे कोई तो अवसर प्राप्त हो जाए कि बुद्ध की कमजोरी खोज सके। बुद्ध ने छः वर्षों तक साधना की और फिर अपने सतत प्रयत्न से बोधि वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त किया। उस समय मार वहीं पास में दुखपूर्वक सोच रहा था, "इतने दिनों से मैं इनके पीछे अवसर की तलाश में पड़ा रहा पर इनके अंदर की कोई कमजोरी नहीं निकाल सका और अब ये मेरी पहुँच से परे जा चुके हैं।"

उसे उदास देखकर मार की तीनों पुत्रियों रति, तन्हा तथा राग ने उसकी उदासी का कारण पूछा। मार ने अपनी उदासी का कारण बताया। तब उन्होंने अपने पिता से कहा, "पिताश्री ! आप दुखी न हों, हम लोग उसको अपने वश में कर लेंगे और तुरंत उसे लेकर आते हैं" बुद्ध के निकट पहुँचकर उन्होंने कहा, "हम आपकी नम्र दासी बनी रहेंगी।" बुद्ध ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, उन्होंने तो अपनी आँख खोलकर भी उनको नहीं देखा। तब मार की पुत्रियों ने पुनः सोचा, "लोगों की पसंद भिन्न होती है। किसी को नवयुवती, किसी को औरत, किसी को प्रौढ़ औरत और किसी को थोड़ी अधिक उम्र की औरत पसंद होती हैं। हम उसे विभिन्न रूपों से आकर्षित करेंगी।" अतः उन्होंने एक के बाद एक विभिन्न उम्र और रूप की स्त्री का स्वरूप लिया और बुद्ध को रिझाते हुए कहा, "हम सभी आपकी नम्र दासी बनी रहेंगी।"

बुद्ध ने कहा, "दूर हो जाओ, तुम यहाँ क्या देख रही हो जो इतनी अधिक प्रयत्नशील हो ? तुम्हें अपना प्रभाव उनके ऊपर दिखाना चाहिए जिन्होंने अपने आप को राग और अन्य द्वेषों से मुक्त नहीं किया है। मैंने अपने आप को राग एवं अन्य दुर्गुणों से मुक्त कर लिया है। तुम मुझे अपने नियंत्रण में लाने के लिए क्यों चेष्टा कर रही हो ?" जब बुद्ध ने अपने विषय में मागन्दिय को बता कर कहा, "मागन्दिय, जब मैंने बहुत पहले मार की इन तीन पुत्रियों को देखा, जिनका शरीर स्वर्णिम था और जो अति सुन्दर थीं, तब भी मेरे अन्दर कोई रागाग्नि पैदा नहीं हुई थी। उनकी तुलना में तुम्हारी पुत्री का शरीर, एक मैला के पात्र जैसा है जिसे बाहर से रंग दिया गया हो।"

तब बुद्ध ने ये दो गाथाएं कहीं

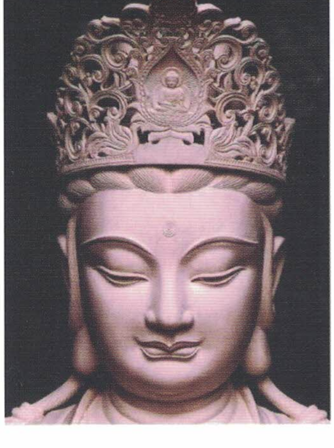

गाथा: ये झानपसुता धीरा नेक्कम्मूपसमे रता ।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ।।181।।

अर्थ: जो धैर्यपूर्वक ध्यान में लगा है, निर्वाण प्राप्ति के लिए रत है, उन स्मृतिवान बुद्धों की प्रशंसा देवतागण भी करते हैं।

बुद्ध देवतागण को भी प्रिय हैं
बुद्ध के तावतिंस दिव्य लोक से लौटने की कथा

स्थान: संकस्सनगर, राजगृह

एक बार अन्य मतों के गुरुओं की चुनौती के कारण बुद्ध ने श्रावस्ती में कुछ चमत्कार दिखाए। इसके बाद बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक चले गए। उनकी माता, जिन्होंने तुसित लोक में संतुसित देव के रूप में जन्म लिया था, वे भी तावतिंस दिव्य लोक पधारीं। बुद्ध ने वर्षावास के पूरे तीन मास की अवधि में देवताओं को धर्म-प्रवचन दिया जिससे संतुसित देव (पूर्व जन्म की माता) ने स्रोतापन्न फल प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक चले गए तो लोगों ने मोग्लान से पूछा, "बुद्ध कहाँ गये हैं?" यद्यपि मोग्लान खूब अच्छी तरह जानते थे कि बुद्ध कहाँ गए हैं फिर भी उन्होंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया। बाद में भन्ते अनिरुद्ध ने लोगों को बताया कि वे अपनी माता को धर्म देशना देने गए थे।

जब बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक में वर्षावास कर रहे थे तब भन्ते सारिपुत्त संकिस नगर में वास कर रहे थे और तीन महीनों तक धर्म-प्रवचन किया। वर्षावास काल की समाप्ति होने वाली थी, मोग्लान शास्ता से मिलने तावतिंस दिव्य लोक गए। वहां बुद्ध ने उन्हें बताया कि वर्षाकाल समाप्त होने पर वे आषाढ़-पूर्णिमा के दिन धरती पर पधारेंगे। उक्त तिथि पर तथागत ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के साथ संकिसा नगरी में उतरे। उस समय देवताओं और मनुष्यों का अपार समूह उनके स्वागत के लिए टूट पड़ा। शाक्यमुनि की छवि अवर्णनीय थी। सारिपुत्त यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गए और शास्ता की वंदना करते हुए कहा, "वास्तव में आप पूजनीय हैं। मैंने कभी भी ऐसी शोभा न देखी थी और न सुनी थी। सभी देवता और मनुष्य आपको हृदय से चाहते हैं।"

शास्ता ने समझाया, "गुणवान बुद्ध, देवता तथा मनुष्य-दोनों को प्रिय होते हैं। जो ध्यानी हैं, धैर्यवान हैं, निर्वाण कार्य में रत हैं, उन सम्बुद्धों की चाह देवताओं को भी रहती है।"

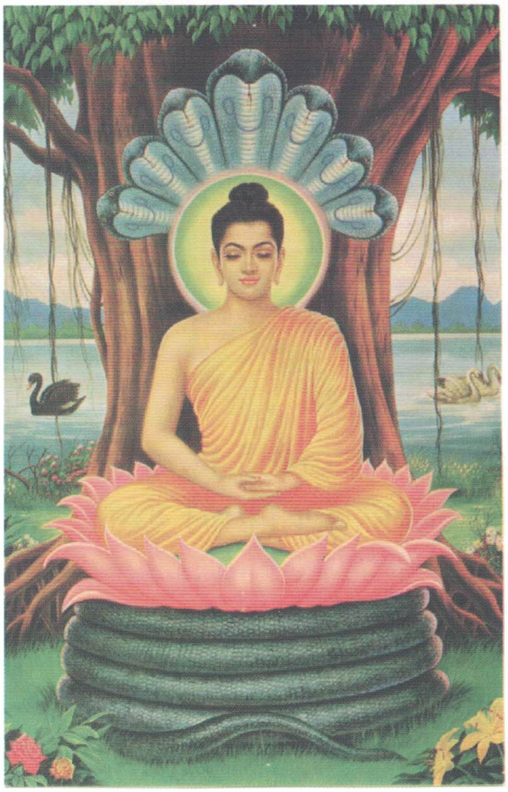

गाथाः किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं ।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ।।182।।

अर्थः मानव जन्म पाना कठिन है, मानव जीवन जीना कठिन है, सद्धर्म श्रवण का अवसर मिलना कठिन है और बुद्धों की उत्पत्ति कठिन है।

धर्म पथ पर चल मनुष्य जन्म का लाभ उठायें
नागराज एरकपत्त की कथा

स्थान:वाराणसी

एरकपत्त नाम का एक नागराज था। उसकी एक सुन्दर कन्या थी जिसके विवाह के लिए वह उपयुक्त वर ढूँढ़ना चाहता था। अतः उसने शर्त रखी कि जो कोई स्वयंवर में उसके पूछे प्रश्नों का उत्तर दे देगा, वह अपनी बेटी का ब्याह उससे कर देगा। इस विधि द्वारा वह बुद्ध को भी ढूँढ़ निकालना चाहता था। नागराज पूर्व जन्म में एक भिक्षु था पर उसने कुछ गलती कर दी थी,अतः उसे भवचक्र में बार-बार निम्न योनि में जन्म लेना पड़ा।

एक दिन शास्ता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि उत्तर माणवक नाम का एक युवक स्वयंवर में भाग लेने जा रहा है और उसमें स्रोतापन्न होने की संभावना है। अतः शास्ता उसके मार्ग में खड़े हो गये और उसे समझाया कि युवती के प्रश्नों का उत्तर कैसे देना चाहिए। साथ ही धर्म-प्रवचय भी हुआ। अब वह स्रोतापन्न हो गया। अतः उसे उस युवती को पाने की चाह नहीं रही। फिर भी सबों के कल्याण हेतु वह उधर चल पड़ा।

स्वयंवर में युवती ने प्रश्न किये: (1) राजा कौन है ? (2) क्या जो क्लेशों से मुक्त हो गया है उसे राजा कह सकते हैं ? (3) क्लेशों से मुक्त होने की विधि क्या है ? और (4) मूर्ख कौन है ?

युवक ने इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए: (1) जो अपने छः इन्द्रियों को वश में रखता है वही राजा है (2) जो क्लेशपूर्ण जीवन जी रहा है वह राजा नहीं है। जो क्लेशों से मुक्त है वही राजा है (3) तृष्णा से मुक्त होकर क्लेशों से मुक्त हुआ जा सकता है तथा (4) जो सांसारिक काम वासनाओं के पीछे दौड़ता है वह मूर्ख है। इसके बाद युवती ने संगीत के माध्यम से इन्द्रियों की बाढ़ रूपी इच्छाओं, जन्म-मरण के चक्कर, अज्ञान के कारण आदि के विषय में पूछा और उनसे मुक्ति के मार्ग को जानना चाहा। उत्तर ने इन सभी प्रश्नों का जवाब वैसा ही दिया जैसा बुद्ध ने सिखाया था। जब एरकपत्त ने ये उत्तर सुने तो वह सुनिश्चित हो गया कि बुद्ध का अवतरण हो गया है। अतः उसने उत्तर से आग्रह किया कि वह उसे बुद्ध के पास ले चले।

बुद्ध वाराणसी में एक बागीचे में विहार कर रहे थे। एरकपत्त शाक्य मुनि को सादर प्रणाम कर रोने लगा। बुद्ध ने पूछा, "राजन, क्यों रो रहे हो ?"

एरकपत्त बोला, "मैं बीस हजार वर्षों से श्रमण-धर्म का पालन कर रहा हूँ पर वह मेरा कल्याण नहीं कर सका और न आप सदृश बुद्ध का दर्शन करा पाया।"

तब बुद्ध ने उसे समझाया, "मानव जीवन मिलना कठिन है। वैसे ही सद्धर्म के श्रवण का अवसर मिलना कठिन है, बुद्धों की उत्पत्ति दुर्लभ है, बुद्ध का उत्पन्न होना कठिन प्रक्रिया है। मानव जन्म जीना भी कठिन है।"

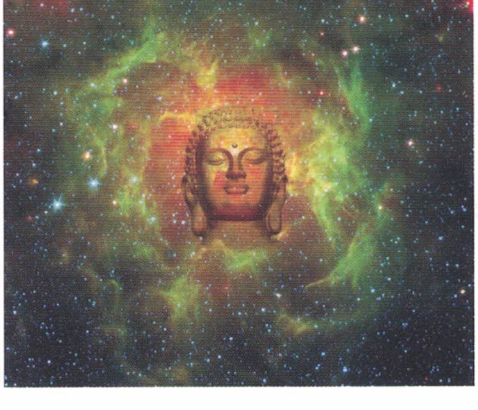

गाथा: सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
संचित्तपरियोदपनं एवं बुद्धान सासनं।।183।।

अर्थ: सभी पापों को न करना, पुण्य कर उनका संचयन करना और अपने चित्त की शुद्धि - यही सब बुद्धों की शिक्षा है।

क्या बुद्धों की शिक्षा एक है ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

स्थान: जेतवन

बुद्ध ने ये तीन गाथायें जेतवन में आनन्द स्थविर के सम्बन्ध में कहीं, जिन्होंने पूर्वकाल के बुद्धों की मूलभूत शिक्षाओं के विषय में उठायी थी ।

कथा के अनुसार एक दिन आनन्द स्थविर दिवासाधना के समय चिंतन करने लगे : बुद्ध ने पूर्व के सात बुद्धों के माता-पिता का नाम, उनकी आयु, जिस वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई, यह सब बता दिया..........

गाथा: खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती न समणो होति परं विहेठयन्तो।।184।।

अर्थ: क्षमा, जिसे सहनशीलता भी कहते हैं, उत्तम तप है। सभी बुद्ध निर्वाण को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। जो व्यक्ति दूसरों को चोट पहुँचाता है या सताता है उसे श्रमण नहीं कहा जा सकता।

संत कैसे रहते हैं ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

.... साथ ही उनके प्रमुख शिष्यों और दानकर्त्ताओं, श्रावकों के सम्मेलन, अग्रश्रावकों के सम्मेलन आदि के विषय में तो बता दिया पर उन्होंने उपोसथ के विषय में कुछ नहीं बताया कि यह एक दिन के उपवास की विधि हर बुद्ध के समय एक जैसी ही थी अथवा भिन्न थी।" अतः वे शास्ता के पास गये और उनसे यही प्रश्न किया।

तथागत ने आनन्द को समझाया, "ये सभी बुद्ध भिन्न-भिन्न समय पर हुए। उनकी सारी चीजें एक समान थीं। उपोसथ करने की विधि भी एक समान थी पर सिर्फ उपोसथ करने की बारंबारता में भी भिन्नता थी। विपश्यी सम्यकसम्बुद्ध सात वर्षों में एक बार उपोसथ कराते थे।

गाथा: अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तं च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं।185।।

अर्थ: किसी का अपमान नहीं करना, किसी को चोट नहीं पहुँचाना, शील की सुरक्षा, भोजन के सही मात्रा का ज्ञान, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना - यही बुद्ध की शिक्षा है।

मार्ग पर कैसे चलें ?
स्थविर आनन्द का प्रश्न

लेकिन उनकी एक दिन की शिक्षा का असर बाकी सात वर्षों तक रहता था। उन्हें फिर सात वर्षों तक दोबारा उपोसथ कराने की जरूरत नहीं पड़ती थी। शिखी और विश्वभू छः वर्षों में एक बार उपोसथ कराते थे। ककुच्छन्द और कोणागम बुद्ध प्रत्येक वर्ष उपोसथ करवाते थे और काश्यप दशबल अर्द्धवार्षिकी अवधि पर उपोसथ करवाते थे। एक दिन का दिया गया वह प्रवचन छः मास तक प्रभावकारी रहता था। इस प्रकार सभी बुद्धों में काल मात्र भेद था पर उन सबकी उपदेश गाथा एक जैसी ही थी।

सभी बुद्धों की शिक्षा को समझाते हुए बुद्ध ने ये तीनों गाथाएं कहीं ।

गाथाः न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो।। 186।।

अर्थः कार्षापण लगातार कितनी भी अवधि तक बरसते रहें, उनसे कामभोगों में तृप्ति नहीं हो पाती क्योंकि काम वासनाएं अल्प स्वाद वाली और अधिकांशतः दुःखदायी ही होती हैं। बुद्धिमान लोग इस सत्य को जानते हैं।

तृष्णा से खारे जल की तरह प्यास कभी नहीं बुझती

असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा

स्थानः जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा बुद्ध ने जेतवन, श्रावस्ती में एक असन्तुष्ट युवा भिक्षु के संदर्भ में कही थी।

कथा है कि यह भिक्षु संघ में प्रव्रजित हुआ तथा उपसम्पदा प्राप्त की। तब उसके उपाध्याय ने उससे कहा, "अमुक स्थान पर जाओ और धर्म पाठ याद करो।" इधर भिक्षु वहाँ गया,उधर उसके पिता ने खाट पकड़ ली। उसका पिता मृत्यु शय्या पर था और बहुत चाहता था कि बेटे से उसकी भेंट हो जाये, पर उसे ऐसा कोई नहीं मिला जिसे भेजकर अपने पुत्र को बुला लेता। जब उसकी मृत्यु का समय निकट आ गया तो वह अपने पुत्र को याद कर पुत्र प्रेम में विलाप करने लगा। अन्त में उसने सौ कार्षापण अलग निकाल कर अपने छोटे पुत्र को दे दिये और कहा, " इस पैसे से मेरे पुत्र के लिए भोजन-पात्र तथा चीवर खरीद देना।" ऐसा कहकर वह मर गया।

कुछ समय बाद युवा भिक्षु घर लौटा तो उसका छोटा भाई उसके चरणों पर गिर पड़ा और जमीन पर रोते-तड़पते हुए कहा, "भन्ते ! पिताजी आपको बहुत याद कर रहे थे और याद करते हुए, विलाप करते हुए, स्वर्ग सिधार गए। लेकिन आँखें बंद करने से पूर्व उन्होंने आपके लिए ये सौ कार्षापण दिये हैं। कृपया यह बतायें कि "मैं इनका क्या करूं।" युवा भिक्षु ने पैसे लेने से इंकार करते हुए कहा, "मुझे इन पैसों की आवश्यकता नहीं है।" लेकिन कुछ समय बाद उसने सोचा, "ऐसे जीवन का क्या जीना जिसमें घर-घर जाकर भिक्षाटन करना पड़ता है ? ये सौ कार्षापण मुझे जीवित रखने के लिए काफी हैं; अत: मैं विहार त्याग कर गृहस्थ का जीवन अपना लेता हूँ।"

यह सोचकर वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति अनुत्सुक हो गया। स्वाध्याय और साधना क्रम सब कुछ छोड़ चिंता से ग्रस्त हो पीला पड़ गया मानों पीलिया रोग से पीड़ित हो। तब उसके साथ के भिक्षुओं ने उससे पूछा, "क्या बात है ?" उसने उत्तर दिया, "भिक्षुभाव से मेरा दिल उचट गया है। मेरी संघ से रुचि उठ गई है।" ऐसा सुनकर उन भिक्षुओं ने यह बात उसके उपाध्याय को और फिर उसके आचार्य को बताई। आचार्य उसे शास्ता के पास ले गए।

गाथाः	अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
	तण्हक्खयरतो होति सम्मासंबुद्धसावको।।187।।
अर्थ :	यह जानकर, बुद्धिमान व्यक्ति देवलोक के कामभोगों में भी अनुरागी नहीं होता है। सम्यकसम्बुद्ध का शिष्य तो सदैव तृष्णा के विनाश में ही लगा रहता है।

निर्वाण : सर्वोच्च सुख
असंतुष्ट युवा भिक्षु की कथा

बुद्ध ने उससे पूछा, "क्या यह कथन सही है कि तुम अनुत्सुक हो गए हो।" "हाँ, भन्ते", उसने जवाब दिया। बुद्ध ने फिर पूछा, "तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? क्या तुम स्वावलम्बन से जीवन जीने की स्थिति में हो ? क्या तुम्हारे पास जीविका का कोई साधन है?" "हाँ, भन्ते !", "कितना धन तुम्हारे पास है ?" "भन्ते, मेरे पास सौ स्वर्ण मुद्राएं हैं।" तब शास्ता ने कहा,"कुछ कंकड़ ले आओ ताकि जोड़कर देख लें कि सौ कार्षापण से तुम्हारा काम चल पायेगा या नहीं ?" वह भिक्षु कंकड़ ले आया। कंकड़ों के माध्यम से तथागत ने गणना प्रारंभ की, "पचास कार्षापण भोजन सामग्रियों के लिए, चौबीस कार्षापण बैलों की जोड़ी खरीदने के लिए, इतना हल, इतना कुदाल, इतना फरसा आदि के लिए।" ऐसा करते-करते कार्षापणों की कमी पड़ गई; सौ कार्षापण से घर चलने की स्थिति में नहीं था।

तब शाक्य-मुनि ने उस तरुण भिक्षु को आगाह किया, "भिक्षु ! ये सौ कार्षापण तुम्हें घर चलाने में कम पड़ेंगे। तुम अपनी इच्छाओं की पूर्ति कैसे कर पाओगे ? तुम अपने एक पूर्व जन्म में राजा थे। तुम्हारे एक आदेश पर तुरत बारह योजन तक रत्नों की वर्षा हो जाती थी। जितने काल तक छत्तीस इन्द्र देवलोक पर राज्य करते हैं, उतने काल तक अकेले तुमने देवलोक पर राज्य किया है; इतने पर भी तुम्हारी तृष्णा तृप्त नहीं हुई और तुम स्वर्ग से गिर गए।" तब बुद्ध ने उसे ये दोनों गाथाएं सुनाई।

गाथा: बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
अरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।।188।।

अर्थ: मनुष्य भयभीत होने के कारण प्रकृति (पर्वत, जंगल, बागीचा, उद्यान,वृक्ष आदि) की ओर जाते हैं।

भय से मुक्ति का सही उपाय
अग्निदत्त की कथा

स्थान:श्रावस्ती जेतवन

यह धर्मदेशना शास्ता ने बालू की ढेर पर बैठे एक ब्राह्मण, अग्निदत्त के सम्बन्ध में कही जो पहले कोसल राज का पुरोहित था ।

अग्निदत्त महाकोसलराज का पुरोहित था। उसके पिता के देहावसान के बाद राजा पसेनदि ने 'यह मेरे पिता का पुरोहित था' सोचकर अग्निदत्त को प्रतिष्ठा के साथ उसी पद पर रख लिया। जब वह राजा से मिलने आता तो राजा उससे ससम्मान पेश होता तथा उससे इस प्रकार कहता, "पुरोहित जी, कृपया यहाँ आसन ग्रहण करें।" ऐसा कहते हुए राजा उसे बैठने का आसन दिया करता था। राजा के इस व्यवहार को देखकर अग्निदत्त ने एक दिन सोचा, "यह राजा मुझे बहुत आदर देता है। पर राजा लोगों के चित्त का क्या भरोसा ? कब बदल जाए ? दूसरे, समान उम्र के व्यक्ति के साथ राजसुख भोगना उचित होता है। अत: ऐसी परिस्थिति में मेरा प्रव्रजित हो जाना ही उचित है।" अत: उसने राजा से प्रव्रज्या की अनुमति माँगी। राजा ने उसे अनुमति दे दी और वह प्रव्रजित हो गया। उसके साथ ही उसके अनुयायी भी प्रव्रजित हो गए। वह उनके साथ अंग, मगध और कुरू राष्ट्रों में घूमता तथा उपासकों को उपदेश देता, "शिष्यों ! तुममें से किसी के अन्दर अगर कभी काम-भावना उत्पन्न हो तो उससे मुक्ति हेतु तुम नदी से एक बोरा बालू भरकर ले आओ और उसे यहाँ डाल दो।"

गाथा: नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।189।।

अर्थ: परन्तु ये शरण स्थल सुरक्षित और मंगलदायक नहीं हैं, सुखदायक नहीं हैं क्योंकि यहाँ जाने से दुखों से मुक्ति नहीं होती।

अंधविश्वास से कुछ नहीं मिलेगा
अग्निदत्त की कथा

उपासकों ने उसकी बात मान ली और वे एक स्थान पर बालू लाकर डालने लगे। वहाँ एक बहुत बड़ी बालुकाराशि एकत्र हो गई। तब अहिच्छत्र नामक नागराज ने उस बालुकाराशि पर आधिपत्य जमा लिया। विभिन्न स्थानों से आने वाले लोग भी उसे तरह-तरह की दान-राशि देने लगे। अग्निदत्त उन्हें उपदेश देता, "वनों की शरण में जाओ, पर्वतों की शरण में जाओ, उद्यानों की शरण में जाओ, वृक्षों की शरण में जाओ। इस प्रकार तुम सभी दु:खों से मुक्त हो जाओगे।"

उधर सिद्धार्थ, बोधिसत्व, कपिलवस्तु से गृहत्याग के बाद सम्बोधि प्राप्त कर जेतवन, श्रावस्ती में रह रहे थे। एक दिन उन्होंने अन्तर्दृष्टि से देखा कि अग्निदत्त ब्राह्मण एवं उसके शिष्य इतने परिपक्व हो चुके हैं कि वे अर्हत्व प्राप्त कर सकते हैं। अत: सायंकाल में उन्होंने महामोग्लान को बुलाया और उन्हें अग्निदत्त और उसके शिष्यों के विषय में बताया तथा कहा कि तुम अग्निदत्त के यहाँ जाकर उसे सद्‌मार्ग पर लाओ। आनन्द ने कहा, "भन्ते ! वे अनेक हैं और कहाँ मैं अकेला ? आप भी चलते तो अच्छा था।" "मोग्लान तुम आगे चलो, मैं पीछे से आता हूँ।"

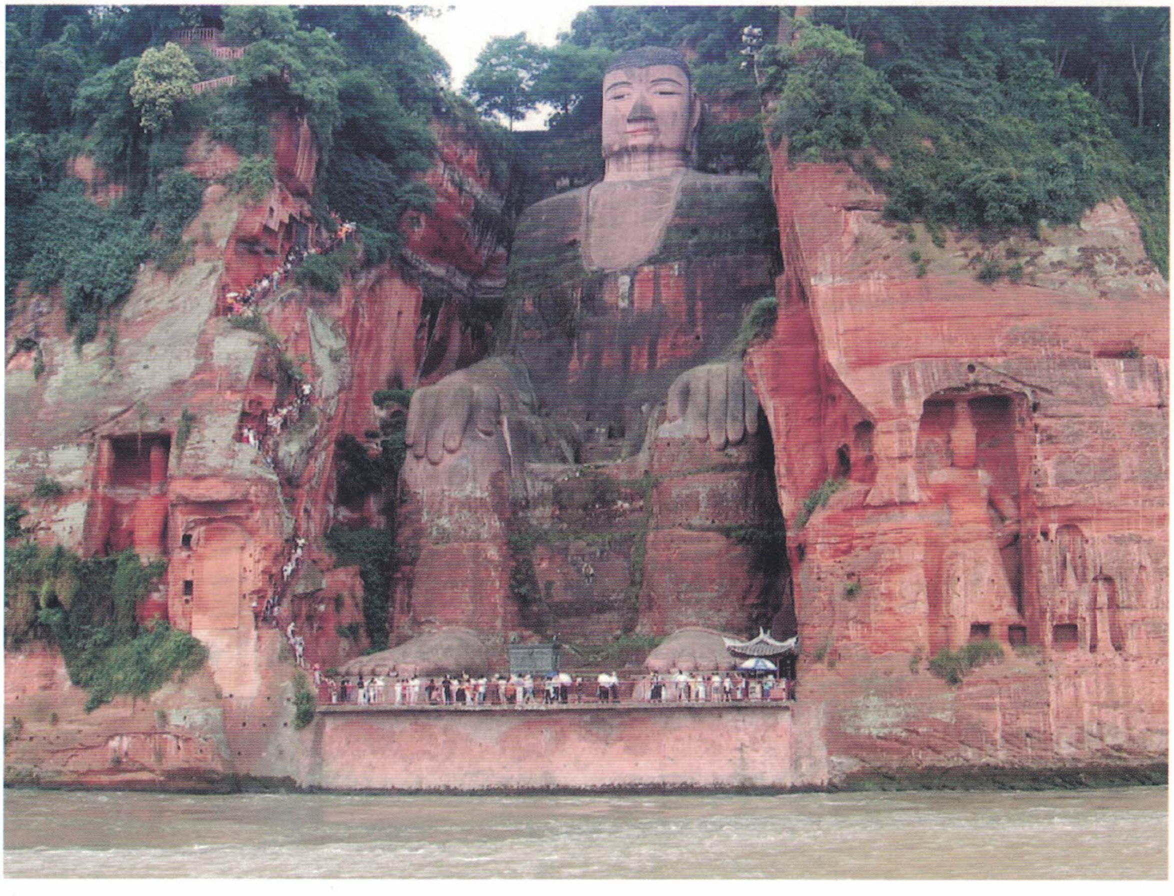

गाथाः योच बुद्धं च धम्मं च सङ्घं च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चनि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति।।190।।

अर्थः अगर कोई ज्ञानी पुरुष बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण में जाता है तो वह चारों आर्य सत्य को सम्यक प्रज्ञा से देख लेगा।

बुद्ध की शरण से सत्य देखना

अग्निदत्त की कथा

मोग्लान श्रावस्ती, जेतवन विहार से चले। उन्होंने सोचा, "मैं ठहरा अकेला और उधर अग्निदत्त अपने अनेक शिष्यों के साथ रहता है। अगर मैं जाकर उन्हें सीधा सम्बोधित करता हूँ तो संभव है कि प्रतिक्रिया में वे मुझसे लड़ बैठें।" अत: उन्होंने अपनी शक्ति से वहाँ पर वर्षा की थोड़ी फुहारें छोड़ दीं जहाँ अग्निदत्त अपने शिष्यों के साथ रहता था। "वर्षा आ गई " सोचकर सभी अपनी-अपनी कुटी में घुस गए। तब मोग्लान अग्निदत्त की कुटी के पास पहुँचे और उसे नाम लेकर पुकारा। अपने नाम से बुलाए जाने पर अग्निदत्त को क्रोधपूर्ण आश्चर्य हुआ। उसने घमंड से पूछा, "यह कौन है जो मुझे मेरे नाम से बुलाने की हिम्मत करता है ?" फिर उसने अपना प्रश्न दुहराया, "यह कौन है ?" "मैं एक ब्राह्मण हूँ।" "क्या चाहते हो ?" "मुझे रात्रि विश्राम के लिए जगह चाहिए। कोई सही स्थान बता दो।" "यहाँ ठहरने की कोई जगह नहीं है। हर आदमी अपनी-अपनी कुटी में रहता है।" "ऐसा क्यों कहते हो, अग्निदत्त ? मनुष्य मनुष्य के ही पास जाते हैं, गौएं गौओं के पास जाती हैं। प्रव्रजित प्रव्रजित के पास नहीं जायेगा तो किसके पास जायेगा ? तुम ही बताओ।" "तू प्रव्रजित है क्या ?" "हाँ।" "अगर तू प्रव्रज्या धारण कर चुका है तो तेरी झोली, जल पात्र और अन्य चीजें कहाँ है ?"

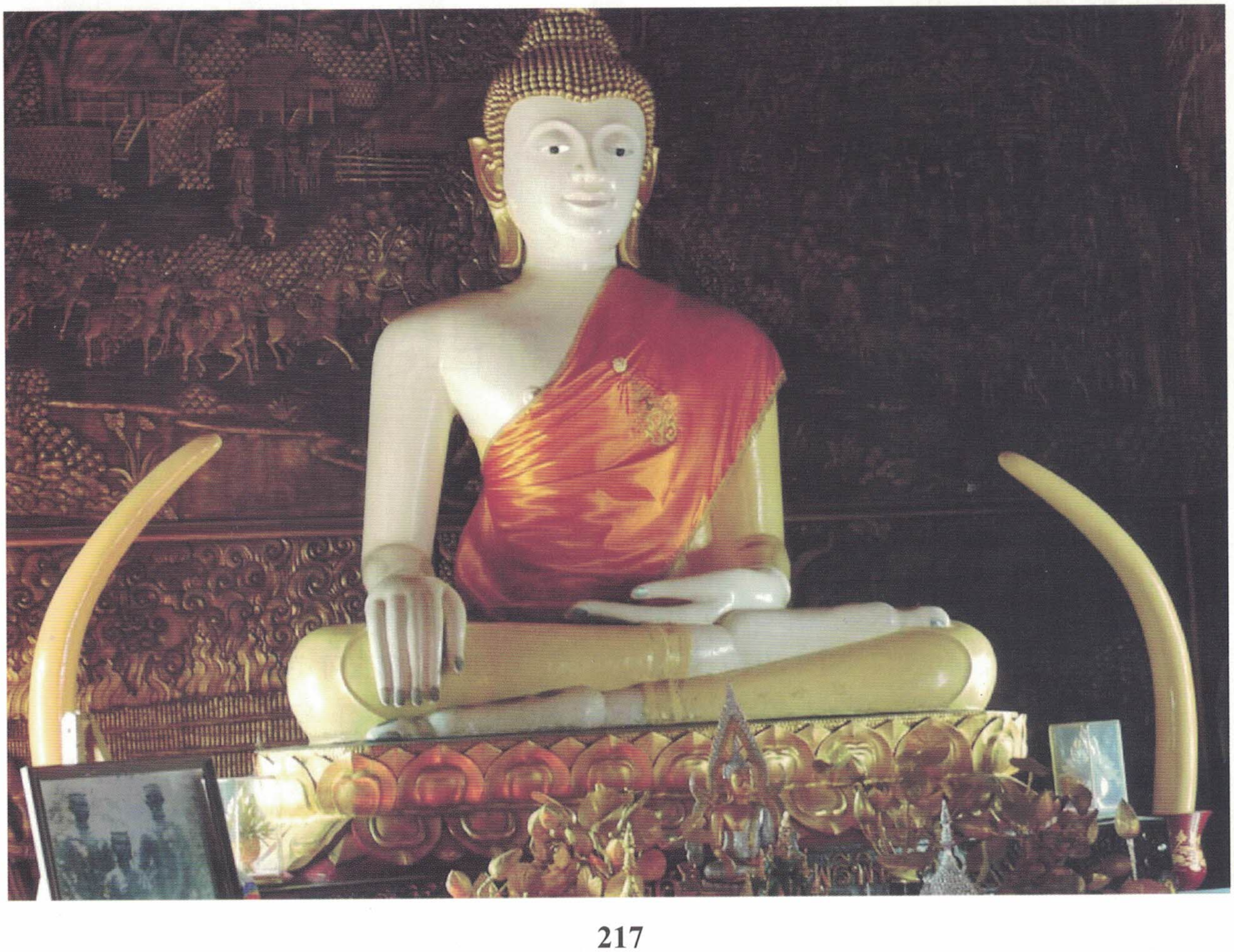

गाथाः दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स अतिक्कमं।।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं।।191।।

अर्थः चार आर्य सत्य हैं : दुख है, दुख का कारण है, दुखों से मुक्ति संभव है और दुखों से मुक्ति का मार्ग है : अष्टांग मार्ग।

आर्य सत्य क्या है?
अग्निदत्त की कथा

"मेरे पास प्रव्रजित का सारा सामान है पर भारी होने के कारण उन सबों को सदैव अपने साथ लेकर नहीं चलता हूँ। सिर्फ जरूरत के अनुसार लेकर चलता हूँ।" महामोग्लान ने अपना धैर्य नहीं खोते हुए कहा, "अग्निदत्त! मुझ पर क्रोध मत करो। सिर्फ रात गुजारने के लिए कोई जगह बता दो।" "अरे, मैंने कह दिया न ? यहाँ ठहरने की कोई जगह नहीं है।" अंततः मोग्लान ने पूछा, "यहाँ बालू का ढेर पड़ा हुआ है। इस पर कौन रहता है ?" "एक नागराज।" "चलो, मुझे वही जगह बता दो।" "नहीं, मैं नहीं बता सकता। वह तुम्हें बहुत मँहगा पड़ेगा।" "मँहगा पड़े या सस्ता, तुम वह जगह तो दिखा दो।" "मैं कुछ नहीं कर सकता। तुमको जो मन में आये करो। मुझे तुमसे कोई लेना-देना नहीं है।"

जैसी उम्मीद थी, अग्निदत्त ने स्थविर की कोई मदद नहीं की। वह स्वयं ही बालुकाराशि की ओर चल दिए। नागराज ने देखा कि यह भिक्षु तो मेरी ही ओर आ रहा है। "क्यों न इसे मार दिया जाए ?" यह सोचकर उसने विषयुक्त फुफकार छोड़ी। उधर मोग्लान सतर्क थे। एक भिक्षु को सतर्क रहना ही पड़ता है। "यह सोचता है कि फुफकार छोड़कर यही डरा सकता है, मार सकता है। मैं भी इसे समझाता हूँ कि फुफकार क्या चीज होती है ?" इस प्रकार नागराज के फुफकार के जवाब में स्थविर ने उससे अधिक तीव्र फुफकार भरी। दोनों के फुफकार से निकली ज्वाला से नागराज जलने लगा। अग्निदत्त और उसके शिष्यों ने इसे दूर से देखा। रात्रि थी, अतः दूर से स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। उन्हें लगा कि मोग्लान जल रहे हैं। तब उन्होंने आपस में कहा, "देखो इस मूर्ख श्रमण को ! हमारी बात मान ली होती तो वह आज इस तरह जलकर खत्म नहीं हो जाता।" उधर मोग्लान ने नागराज को हराकर उसका अहंकार चूर-चूर कर दिया। वे निश्चिन्त होकर बालुकाराशि पर लेट गये और नागराज पूरी रात अपने फण से छतरी बनाकर उनको सुख देता रहा।

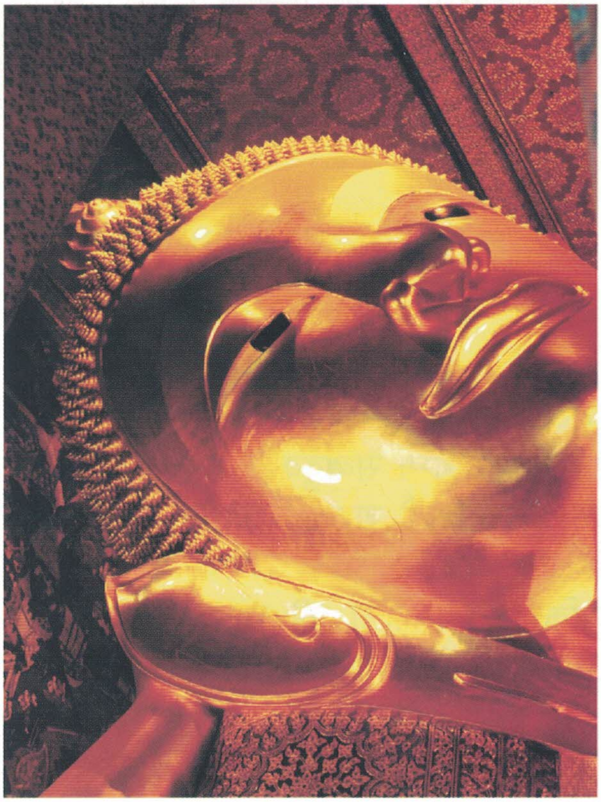

गाथा: एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एवं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।।192।।

अर्थ: इन त्रिरत्नों की शरण में जाना सबसे सुरक्षित आश्रय है और यह सर्वश्रेष्ठ आश्रय भी है। एक बार जो व्यक्ति इन त्रिरत्नों की शरण में चला जाता है, वह सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।

सर्वोत्तम शरण में कैसे आयें?
अग्निदत्त की कथा

सुबह हुई। ऋषिजन को कौतूहल था कि जल्दी जानें कि रात्रि बेला में क्या-क्या हुआ । वे देखना चाहते थे कि स्थविर के प्राण-पखेरू अभी बचे हैं कि उड़ गए। वे जब रेत के पहाड़ के पास पहुँचे तो स्थविर को जीवित देखकर अति आश्चर्य हुआ। साथ ही साथ यह भी अनुभूति हुई कि यह आगन्तुक निश्चय ही कोई साधारण व्यक्ति न होकर कोई पहुँचा हुआ आदमी है। अतः हाथ जोड़कर उनके चारों ओर बैठ गए तथा शिष्टाचारवश पूछ बैठे, "नागराज ने रात्रि बेला में कोई कष्ट तो नहीं पहुँचाया ?" मोग्लान ने मुस्कुराते हुए कहा, "देख रहे हो नागराज को? मेरे ऊपर फण से छतरी बनाकर मुझे धूप से बचा रहा है।" तब ऋषियों ने आपस में कहा, "आश्चर्य ! अति आश्चर्य !! इस सीधे प्रतीत हो रहे श्रमण ने तो विषधर नागराज के अहंकार का दमन कर दिया।"

उसी समय तथागत वहाँ पधारे। उन्हें देखकर मोग्लान ने उन्हें सादर प्रणाम किया। ऋषियों को और आश्चर्य हुआ। "एक तो यह स्थविर स्वयं इतना शक्तिशाली है, ऊपर से यह स्वयं किसी दूसरे को प्रणाम कर रहा है।" वे अपनी उत्सुकता नहीं रोक सके और प्रश्न कर बैठे, "जिन्हें तुम प्रणाम कर रहे हो, क्या ये तुमसे भी श्रेष्ठ हैं?" "हाँ, ये तो सर्वशक्तिमान हैं, तथागत हैं, मेरे गुरू हैं। मैं तो इनका शिष्य मात्र हूँ।" शास्ता उस रेत के ढेर पर बैठ गए। ऋषिगण सुनिश्चित हो गये कि गुरू अपने शिष्य से निश्चय ही अधिक चमत्कारी होगा। यह विचार कर उन्होंने बुद्ध को सादर प्रणाम किया और उनकी ओर देखते हुए उन्हें घेर कर बैठ गए।

शास्ता ने देख लिया कि ज्ञान देने का सही समय आ गया है। अतः उन्होंने अग्निदत्त को सीधा संबोधित किया और पूछा, "अग्निदत्त ! तुम अपने शिष्यों को क्या शिक्षा देते हो ?" "भन्ते ! पर्वतों की शरण में जाओ, जंगलों की शरण में जाओ, वृक्षों की शरण में जाओ, बागीचों की शरण में जाओ आदि, आदि।" "उनकी शरण में जाकर तुम्हें मुक्ति मिल जायेगी ?" तथागत ने समझाया, "क्या तुम सही-सही समझते हो कि मात्र प्रकृति की शरण में जाने से मनुष्य को उसके कष्टों से मुक्ति मिल जायेगी ?" "हाँ श्रीमान्" "नहीं अग्निदत्त ! प्रकृति की शरण मात्र में जाने से दुःखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। प्रकृति सहायक हो सकती है पर असली कार्य तो आन्तरिक अवलोकन है। वह तो अपने अन्दर जाने से ही होगा। मात्र वाह्य क्रिया कलाप से अन्दर का बदलाव नहीं हो सकेगा। दूसरी ओर अगर कोई साधक बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में जाता है तो उसे ऐसा सुअवसर प्राप्त हो जाता है कि वह अपने दुःखों का कारण तथा उनसे मुक्ति का मार्ग खोज सके।" यह कहकर बुद्ध ने ये पाँच गाथायें उपदेश के रूप में सुनाईं।

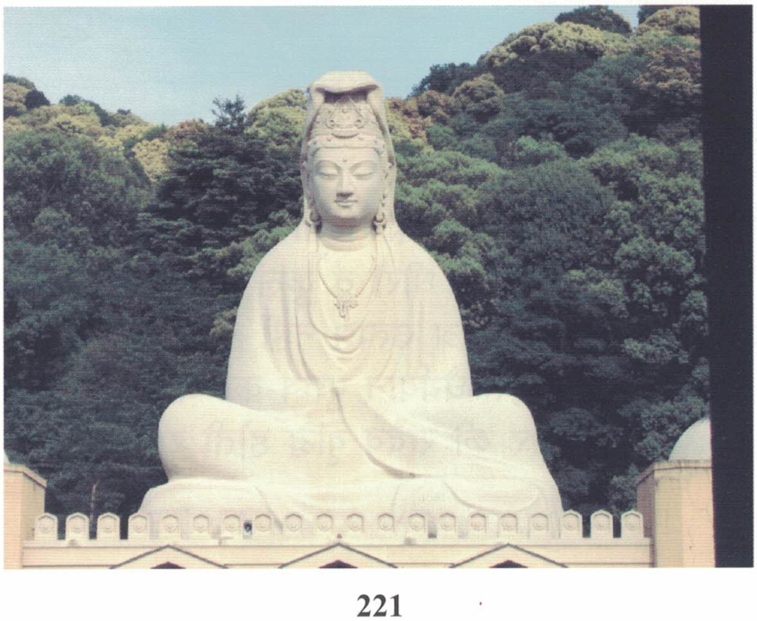

गाथा दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधति।।193।।

अर्थः ज्ञानी पुरुष सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता है। वह अति दुर्लभ है। ऐसे धैर्यवान पुरुष का जहाँ जन्म होता है उस परिवार की सदैव वृद्धि होती रहती है।

बुद्ध का आगमन परम दुर्लभ है
स्थविर आनन्द के प्रश्न की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा बुद्ध ने स्थविर आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में कही थी ।

एक दिन आनन्द स्थविर अपने दैनिक साधना में बैठे हुए सोचने लगे "शास्ता ने यह तो समझा दिया कि श्रेष्ठ हाथी का जन्म षड्दन्तकुल या उपोसथकुल में, श्रेष्ठ घोड़े का जन्म सैन्धव कुल या वलाहक राजकुल में, श्रेष्ठ वृषभ का जन्म दक्षिणपथ में होता है आदि, आदि। पर उन्होंने यह नहीं बताया कि श्रेष्ठ पुरुष कहाँ उत्पन्न होते हैं।"

प्रश्न पूछने के उद्देश्य से आनन्द तथागत के पास पहुँचे और उन्हें सादर प्रणाम कर प्रश्न कर बैठे कि श्रेष्ठ पुरुष कहाँ जन्म लेते हैं।

तब बुद्ध ने समझाया, "श्रेष्ठ पुरुष सर्वत्र दुर्लभ हैं। वे तीन सौ योजन सीधे और नौ सौ योजन घेरे वाले मध्यदेश में ही उत्पन्न होते हैं। उत्तम पुरुष सर्वत्र जन्म नहीं लेते।"

गाथाः सुखो बुद्धानं उप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो।।194।।

अर्थः इस संसार में बुद्ध का अवतरण सर्वश्रेष्ठ सुख है। उनके द्वारा दिये गए धर्मोपदेश का सुनना सुख है। इसी प्रकार संघ में एकतापूर्ण ढंग से प्रेम भाव रखकर धर्म साधना में लगे रहना भी सुख है।

सुखदायक क्या है?
अनेक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के जेतवन विहार में विराजते समय बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के वार्त्तालाप के सम्बन्ध में यह गाथा कही थी।

एक बार बहुत सारे भिक्षु इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि सर्वोच्च सुख क्या है। उन्होंने महसूस किया कि सुख का अर्थ भिन्न लोगों के लिए भिन्न था। तब उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजाओं के समान धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करना सुख है, कुछ लोगों को कामभोग में सुख मिलता है, कुछ लोगों के लिए सुस्वादु, रुचिकर भोजन करना ही सर्वश्रेष्ठ सुख है।"

भिक्षुओं के बीच जब यह चर्चा हो रही थी तब शास्ता वहाँ पधारे। चर्चा का विषय सुनने के बाद बुद्ध ने स्पष्ट किया, "जिस सुख की तुम लोग चर्चा कर रहे हो वह तुम्हें जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त नहीं कराते। संसार में बुद्ध का आगमन सुखदायी होता है, सद्धर्म का श्रवण सुखदायी होता है और संघ की एकता के अन्तर्गत एकतापूर्ण ढंग से तप करना सुखदायी होता है।"

गाथा	पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
	पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे।।195।।
अर्थः	पूज्य बुद्धों अथवा उनके श्रावकों, जो भवसागर के शोक भय को पार कर गये हैं।

पूजनीय की पूजा कीजिए
कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा

स्थान : तोदेयग्राम

एक बार श्रावस्ती से वाराणसी जाते समय बुद्ध ने ये दो गाथायें एक ब्राह्मण और कस्सप बुद्ध के स्वर्णिम चैत्य के संदर्भ में कही।

एक दिन बुद्ध अपने भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ श्रावस्ती से वाराणसी के लिए प्रस्थान कर गए। उस मार्ग में तोदेय ग्राम के निकट एक देवस्थान पहुँच कर वहीं रुक गये। बुद्ध ने वहां पास में एक किसान को खेती करते हुए देखा। उन्होंने आनन्द को भेजकर उस ब्राह्मण को बुला भेजा। वह ब्राह्मण अपने खेत से चलकर आया, शास्ता को प्रणाम न कर देवस्थान को प्रणाम किया और प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। शास्ता ने ब्राह्मण से पूछा, "ब्राह्मण! तुमने क्या सोचकर प्रणाम किया है ? "

गाथा तो तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं सुड्खातुं इमेत्तमपि केनचि।।196।।

अर्थः उनकी पूजा तथा ऐसे मुक्त पुरुषों की पूजा का परिणाम "इतना है" यह कहा नहीं जा सकता।

असीम फल देने वाले पुण्य का रहस्य

कस्सप बुद्ध के सुवर्ण चैत्य की कथा

तब ब्राह्मण ने कहा, "हे गौतम ! यह मेरे कुल के देवता का स्थान है। अत: उन्हें श्रद्धा प्रकट करने के लिए मैंने प्रणाम किया।" "ब्राह्मण ! तुमने इस स्थान को जो प्रणाम किया वह बहुत ही उचित था क्योंकि यह स्थान पूजनीय है।" बुद्ध ने ऐसा कहकर उस ब्राह्मण को इस नेक कर्म के लिए साधुवाद दिया। और उसे इस प्रकार के सत्कर्म भविष्य में भी करने के लिए प्रोत्साहित किया।

उधर ब्राह्मण-बुद्ध संवाद सुनकर भिक्षुओं ने सोचा, "क्या सोचकर शास्ता ने ब्राह्मण के उस कर्म की सराहना की और भविष्य में भी शुभ कर्म करते रहने के लिए प्रोत्साहित किया ? " तब बुद्ध ने उनकी शंका मिटाने के लिए, अपने ऋद्धिबल से, काश्यप बुद्ध के योजन ऊँचे कनक चैत्य की तरह एक दूसरा स्वर्णचैत्य तैयार किया और उसे दिखाकर सबों से कहा, "ऐसे श्रेष्ठ जनों की पूजा करना उचित ही है।"

Dhammapada

Buddha Vagga

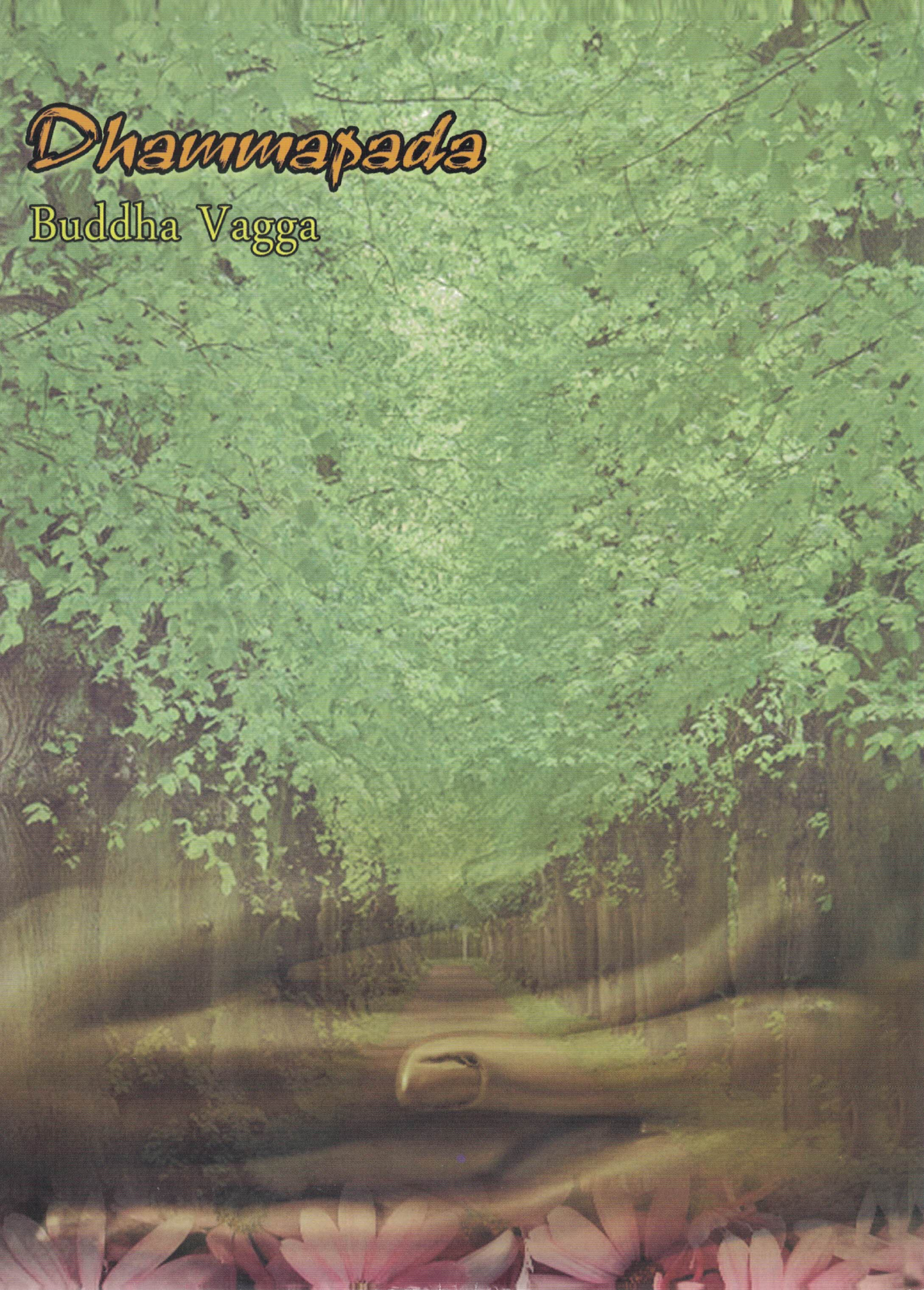

क्या तुम सचमुच सुख चाहते हो ?

धम्मपद

सुख वर्ग

गाथा और कथा

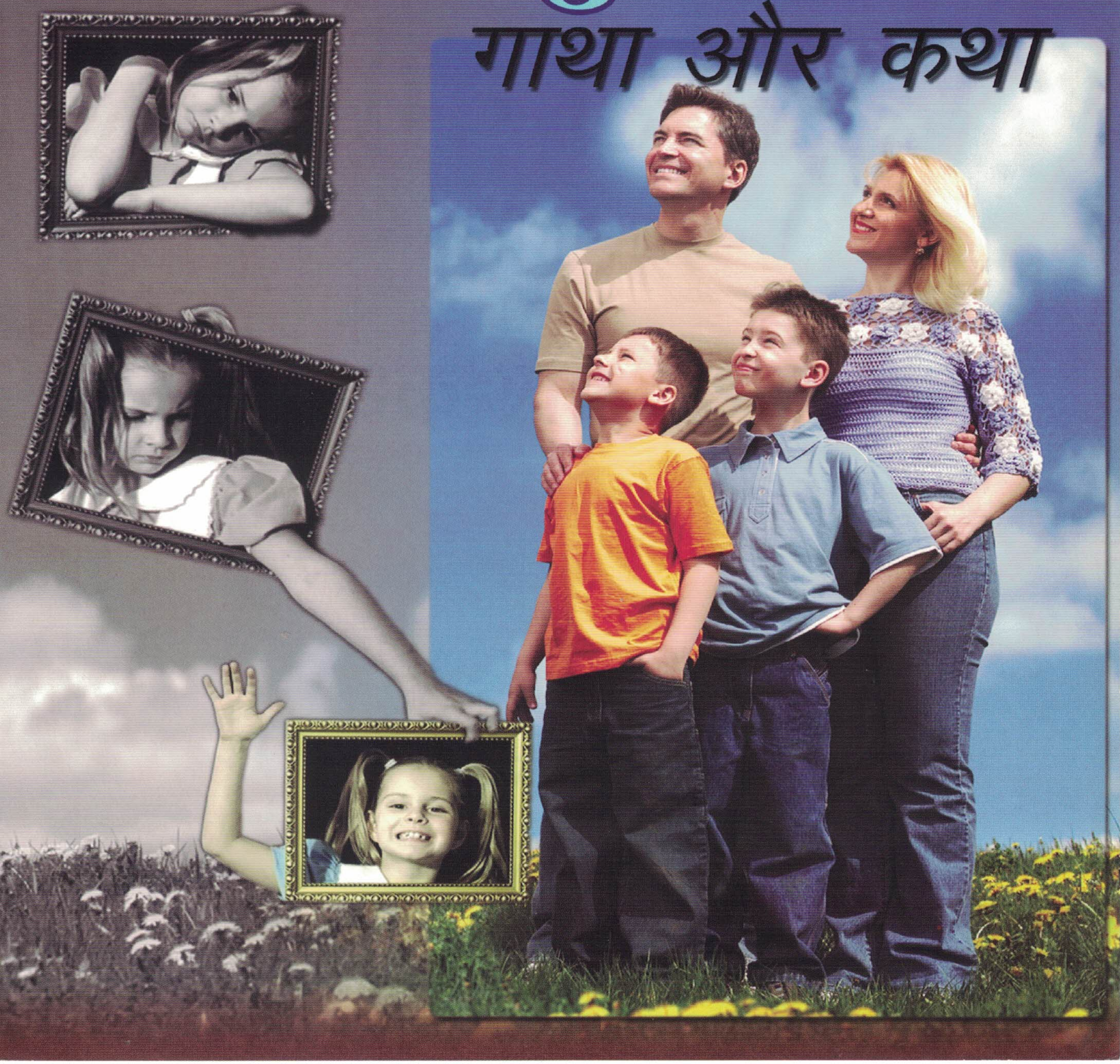

क्या तुम सचमुच सुख चाहते हो ?

धम्मपद

सुख वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

सुख वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा	197	हम मैत्री सुख में जीवित रहें	13
2.	बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा	198	बीमारों में स्वस्थ	15
3.	बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा	199	तूफानों में भी उत्तम शांति	17
4.	मार की कथा	200	हमारा सुख दिव्य सुख से कम नहीं	19
5.	कोसल राजा, पसेनदि के हार की कथा	201	जय–पराजय से परे का सुख	21
6.	एक नववधू की कथा	202	निर्वाण बिना सुख कहाँ ?	23
7.	किसी उपासक की कथा	203	रोग–दुख से मुक्त हो अमृत–सुख कैसे पायें ?	25
8.	राजा पसेनदि की कथा	204	क्या है सर्वश्रेष्ठ ?	27
9.	स्थविर तिस्स की कथा	205	धर्म रस–पान कर सुखी रहें	29
10.	शक्र की कथा	206	सही सन्तों का दर्शन सबसे सुखदायक है	31
11.	शक्र की कथा	207	पापी जनों से दूर रहें; संतों का सत्संग करें	33
12.	शक्र की कथा	208	चाँद के पीछे तारे, संतो के पीछे चरण हमारे	35

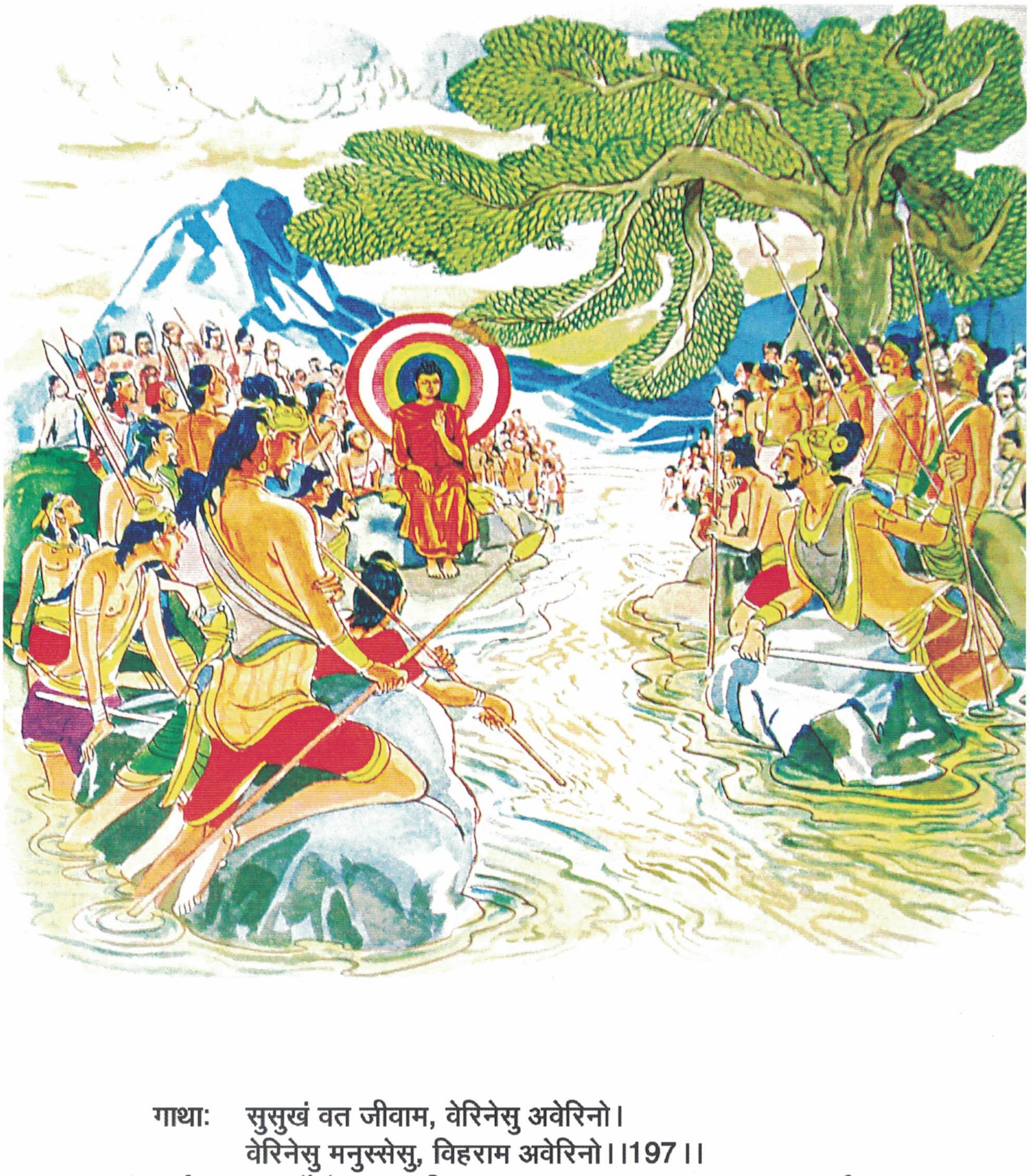

गाथा: सुसुखं वत जीवाम, वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु, विहराम अवेरिनो।।197।।

अर्थः शत्रुओं के साथ भी हम अशत्रुता का व्यवहार कर सुखपूर्वक जीवन जीए। मनुष्यों द्वारा शत्रुता करने पर भी उनसे हम अशत्रु (मित्र) की तरह व्यवहार करें।

हम मैत्री सुख में जीवित रहें
बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा
स्थान : रोहिणी नदी का किनारा

इन गाथाओं को बुद्ध ने अपने रिश्तेदारों के संदर्भ में कहा था जो रोहिणी नदी के जल के बँटवारे को लेकर आपस में लड़ रहे थे।

कथा के अनुसार शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच रोहिणी नदी के ऊपर एक बाँध था। यह कपिलवस्तु तथा कोलिय नगरों के बीच स्थित था । दोनों ही राज्यों के किसान सिंचाई के लिए इस नदी के जल का उपयोग करते थे। ज्येष्ठ का महीना आया और फसल सूखने लगी, तब दोनों तरफ जमीन के मालिकों द्वारा खेती करने के लिए लगाये हुए मजदूर जमा हो गए । कोलिय राज्य के निवासियों ने कहा, "अगर नदी का जल दोनों ही तरफ बाँट दिया जाता है तब पर्याप्त जल न तो आप लोगों को प्राप्त होगा और न हमलोगों को। लेकिन हमारी फसलें एक ही पानी मिलने से लहलहा उठेंगी । इसलिए हमलोगों को खेत में पानी पटा लेने दीजिए। "

शाक्य किसानों ने उत्तर दिया, "फसलों से जब तुमलोग अपना गोदाम भर लोगे तब हमलोगों को सोना-चाँदी और अन्य बहुमूल्य रत्न, हाथ में टोकरी और बोरा लेकर, एक घर से दूसरे घर जाकर अन्न के लिए भिक्षाटन करना होगा। हमसे यह सब नहीं हो सकेगा । हमारी फसल भी सिर्फ एक बार पानी मिल जाने से सूखने से बच जायेगी । अत: हमलोगों को इस जल का व्यवहार करने दो।"

'हमलोग तुम्हें पानी नहीं देंगे।"

"हमलोग भी तुम्हें पानी नहीं देंगे।"

इस तरह वाद-विवाद होने लगा। दोनों पक्ष में गर्मा-गर्मी होने लगी और अंतत: भीड़ में से एक आदमी उठा और उसने दूसरे समूह के एक आदमी को जोर से थप्पड़ दे मारा। दूसरे ने भी उसका जवाब थप्पड़ से दिया और फिर दोनों समूहों में आपस में लड़ाई शुरू हो गई। तू-तू, मैं-मैं होने लगी और बात यहाँ तक पहुँच गई कि दोनों समूह एक दूसरे के राजवंशजों को गाली देने लगे और उन्हें 'दोगला' कहकर सम्बोधित करने लगे। कोलिय राज्य के मजदूरों ने कहा, "तुम लोग, कपिलवस्तु के निवासी, अपने बाल-बच्चों को साथ ले लो और वहाँ जाकर रहो जहाँ तुम्हारा निवास है। तुम जिन राजपरिवारों के बल-बूते पर कूद रहे हो वे कौन थे ? ये कपिलवस्तु के राजपरिवार के लोग वही हैं जिनके वंशज अपनी बहनों के साथ भी कुत्ते-बिल्लियों की तरह सहवास किया करते थे। तुम लोगों के हाथी-घोड़ों की सेना तथा खड्ग-भाला के अस्त्र-शस्त्र हमारा क्या नुकसान कर पायेंगे?"

गाथा: सुसुखं वत जीवाम, अतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु, विहराम अनातुरा।।198।।

अर्थ: रोगियों के बीच पीड़ा रहित हो हम सुखपूर्वक जीवन जियें।
रोगी मनुष्य के बीच स्वस्थ रहकर विचरण करें।

बीमारों में स्वस्थ
बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा

शाक्य किसानों के श्रमिकों ने कहा, "तुम कोढ़ी लोग, अपने- अपने बच्चों को लो और वहाँ जाकर रहो जहाँ कोढ़ियों के रहने की जगह है। तुम जो कोलिय राज्य के वंशजों के आधार पर गर्जन कर रहे हो, वे कौन थे ? वे अनाथ और शरण विहीन थे। अतः पशु-पक्षियों की तरह पेड़ों पर अपना जीवन बिताते थे। ऐसे लोगों के हाथी-घोड़े और अस्त्र-शस्त्र भला हमारा क्या बिगाड़ लेंगे ?" दोनों तरफ के श्रमिकों ने अपने-अपने अधिकारियों को पूरी बात बताई और उन अधिकारियों ने आगे अपने-अपने राजकुल में जाकर बताया कि किस प्रकार पानी के पृष्ठभूमि में दोनों ही पक्षों में गाली-गलौज हो रहा था। तब शाक्य राजवंश के सदस्य अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध की तैयारी करके आए और चिल्लाने लगे, "अब हम लोग कोलिय वासियों को बतायेंगे कि जो अपने बहनों के साथ मैथुन करते थे,उनमें कितनी शक्ति है।" उधर कोलिय राजवंश के सदस्य भी युद्ध के लिए पूरी तैयारी कर आ पहुँचे और गर्जन किया, "अब हम लोग उन लोगों की शक्ति और बल दिखायेंगे जो वृक्षों पर निवास करते थे।" इस प्रकार दोनों पक्षों में युद्ध के लिए तैयारी होने लगी।

उस दिन प्रातः काल शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से जगत का सर्वेक्षण किया और अपने सगे-संबन्धियों की मनः स्थिति देखी और मन ही मन सोचा, "अगर मैं वहाँ नहीं जाता हूँ तो ये दोनों ही पक्ष अपना नाश कर लेंगे क्योंकि वे दोनों ही युद्ध करने के लिए उद्यत हैं। अतः मैं वहाँ चलता हूँ। मेरा कर्त्तव्य बनता है कि मैं दोनों पक्षों के बीच होने वाले युद्ध को रोकूँ।" यह सोचकर वे आकाश-मार्ग से उड़ चले तथा उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ उभय पक्ष की जनता लड़ने के लिए बेताब हो रही थी। वहाँ पहुँचकर वे पद्मासन की मुद्रा में रोहिणी नदी के बीच में आकाश में विराजमान हो गए। जब दोनों पक्षों के सगे-संबंधियों ने उन्हें देखा तो अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र एक तरफ रख दिये और उन्हें सादर प्रणाम कर अपनी श्रद्धा प्रकट करने लगे।

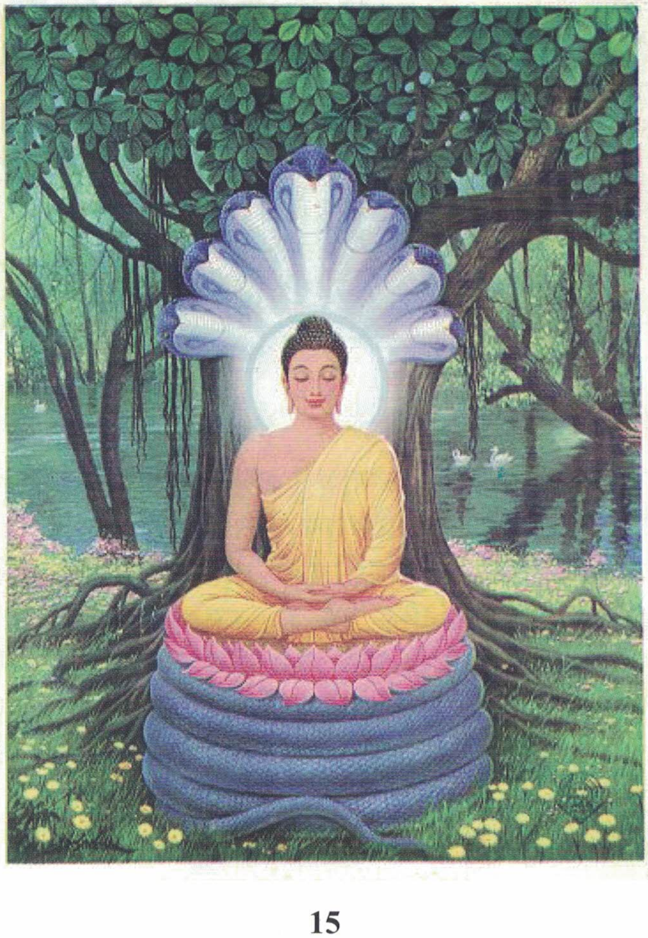

गाथा: सुसुखं वत जीवाम, उस्सुकेसु अनुस्सुका।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु, विहराम अनुस्सुका।।199।।

अर्थ: दुखी, आसक्त पुरुष-नारियों के बीच, जो व्यग्रता से सांसारिक चीजों के पीछे दौड़ रहे हैं, हम जो अनासक्त हैं और सांसारिक चीजों के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं, सुखपूर्वक जीवन जिए उन लोगों के साथ अनासक्त होकर जियें जो सांसारिक चीजों और आनन्द की वस्तुओं में आसक्त होकर जीवन जी रहे हैं।

तूफानों में भी उत्तम शांति
बुद्ध के रिश्तेदारों के शांत होने की कथा

तब शास्ता ने अपने रिश्तेदारों से पूछा, "राजन ! यह झगड़ा किस बात को लेकर हो रहा है ?" "हमें नहीं मालूम, भन्ते !" "किसे मालूम हो सकता है ?" "सेनाध्यक्ष को मालूम हो सकता है।" सेनाध्यक्ष ने कहा, "मेरे अधीनस्थ पदाधिकारी को संभवतः मालूम हो।" इस प्रकार बुद्ध ने एक से प्रश्न पूछा और उसके बाद दूसरे से और इस तरह सबसे पूछते-पूछते अंततः दासों से पूछा। उन श्रमिकों ने बताया, "सारे फसाद की जड़ रोहिणी नदी के पानी का बँटवारा है।" तब बुद्ध ने राजा से पूछा, "जल का कितना मूल्य है राजन ?" "उसका मूल्य तो अत्यल्प है, थोड़ा सा है।" "महाराज ! एक क्षत्रिय अर्थात् मनुष्य के शरीर का क्या मूल्य है ?" "भन्ते ! उसका क्या मूल्य लगाया जा सकता है ? वह तो अमूल्यवान है। वह तो मूल्य से परे है।" "क्या यह अनुचित नहीं है कि तुम लोग थोड़े से जल के लिए उस शरीर को नष्ट करने पर तुले हुए हो जिसका मूल्य आँका ही नहीं जा सकता।" यह सुनकर वे सभी निरुत्तर हो गए।

तब बुद्ध ने दोनों पक्षों को संबोधित किया, "हे महाराजागण ! आप इस तरह क्यों कर रहे हैं ? अगर मैं आप लोगों के मध्य आकर बीच-बचाव नहीं करता तो आज यहाँ खून की नदी बह जाती। आप दोनों पक्षों ने जो भी किया वह सर्वथा अनुचित था। तुम पाँच प्रकार के वैरों को साथ बाँधकर वैर-पूर्वक जीते हो। मुझे देखो, मैं निर्वैर होकर घूमता हूँ। तुम बुरी कामनाओं की बीमारी से ग्रसित होकर जीवन जीते हो। मैं इस बीमारी से परे जीता हूँ। मैं किसी भी भोग की वस्तु के पीछे नहीं भागता।"

गाथाः सुसुखं वत जीवाम, येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम, देवा आभस्सरा यथा। ।200। ।

अर्थः जिन हम लोगों के पास कुछ भी नहीं है, हम सुखपूर्वक जीवन जीते रहेंगे। हम आभास्वर देवताओं की तरह, प्रीति ही भोजन है जिनका, प्रीति भक्षण से ही अपना काम चला लेंगे।

हमारा सुख दिव्य सुख से कम नहीं
मार की कथा

स्थान : पंचशाला ब्राह्मणग्राम

यह गाथा बुद्ध ने पंचशाला नामक ब्राह्मणों के गाँव में मार के संदर्भ में कही थी।

एक दिन बुद्ध ने अपनी अंतर्दृष्टि से देखा कि ब्राह्मणों के पंचशाला नामक गाँव की अनेक युवतियाँ स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में हैं। एक दिन गाँव की अनेक युवतियाँ नदी के तट पर स्नान करने गईं; स्नान के बाद वे पूरी तरह सज-धजकर गाँव लौटीं क्योंकि वह किसी त्योहार का दिन था। उसी समय बुद्ध भी पंचशाला ग्राम में प्रविष्ट हुए लेकिन उस दिन किसी भी ग्राम-वासी ने उन्हें भोजन-दान नहीं दिया क्योंकि वे सभी मार के मंत्र से पूर्णतः प्रभावित हो गए थे, मार ने उन्हें अपने वश में कर लिया था।

जब बुद्ध गाँव से लौट रहे थे तो राह में मार मिल गया। उसने शास्ता से व्यंग्य करते हुए पूछा कि उन्हें कहीं से कुछ भिक्षा मिली या नहीं। बुद्ध को पता चल गया कि मार के कारण ही उन्हें उस दिन भिक्षा नहीं मिली थी। अतः उन्होंने उत्तर दिया, "दुष्ट मार ! तू ही था जिसने ग्रामवासियों को मेरे खिलाफ भड़का दिया था। तूने उन्हें वशीभूत कर लिया था। अतः उन्होंने मुझे भोजन-दान नहीं दिया। क्या यह सही नहीं है ? रे पापी ! तूने ऐसा क्यों किया कि गाँव में मुझे भिक्षा नहीं मिले ?" मार ने बुद्ध के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उसने बुद्ध से मजाक करने का विचार किया कि बुद्ध को पुनः ग्राम में प्रवेश करने के लिए उकसाया जाय और इस बार जब ग्रामीणजन उन्हें भोजन नहीं देंगे तो उनकी बेइज्जती हो जायेगी। अतः उसने सुझाव दिया, "श्रमण गौतम ! एक बार फिर गाँव में क्यों नहीं जाते हो ? इस बार तुम्हें अवश्य ही भोजन मिलेगा।" उसने सोचा था कि इस बार जब बुद्ध ग्राम में प्रवेश करेंगे और ग्रामवासी उन्हें भोजन नहीं देंगे तो वह ताली बजाकर उनका मजाक उड़ायेगा।

उसी समय गाँव की महिलायें वहाँ आ गईं और श्रद्धापूर्वक बुद्ध को सादर नमस्कार किया। उनकी उपस्थिति में मार ने व्यंग्य किया ," हे भन्ते ! चूँकि आज तुम्हें भोजन नहीं मिला, तुम्हें तो भूख से पेट में पीड़ा हो रही होगी ?" उसे डाँटते हुए स्वर में बुद्ध ने कहा, "अरे पापी ! आज भिक्षा में मुझे कुछ नहीं मिला तो क्या हुआ ? आज भिक्षा नहीं मिलने पर भी मैं उसी तरह अपना दिन बिता दूँगा जिस तरह ब्रह्मा आभास्वर लोक में प्रीति सुख भोग करते हैं।"

गाथा: जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जयपराजयं।।201।।

अर्थ: जिन हम लोगों के पास कुछ भी नहीं है, हम सुखपूर्वक जीवन जीते रहेंगे। हम आभास्वर देवताओं की तरह, प्रीति ही भोजन है जिनका, प्रीति भक्षण से ही अपना काम चला लेंगे।

जय-पराजय से परे का सुख
कोसल राजा, पसेनदि के हार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा बुद्ध ने कोसल राजा पसेनदि की उनके अपने ही भाँजे, मगध के राजा अजातशत्रु, से उनकी हार के संदर्भ में कही थी।

कोसल राजा पसेनदि काशिकग्राम के लिए अपने भाँजे, राजगृह नरेश, अजातशत्रु के साथ युद्ध करते हुए तीन बार पराजित हुआ। अजातशत्रु, राजा बिंबिसार और रानी वैदेही, जो कोशलराजा की बहन थी, का पुत्र था। पसेनदि अपने भाँजे से तीन बार हारकर बहुत दुखी था और शर्म से मरा जा रहा था। वह बार-बार अपने आप को इस प्रकार धिक्कारता, "मुझे अपने आप पर धिक्कार है ! मैं इस दूध पीते हुए बच्चे को भी पराजित नहीं कर सका और उससे तीन बार हार गया। मेरे जीवित रहने का क्या लाभ ?" इस प्रकार अति दुखी व चिन्तित होकर उसने भोजन करना छोड़ दिया और खाट पर जा पड़ा।

राजा के मन: स्थिति की खबर पूरे राज्य में आग की तरह फैल गई। बुद्ध को भी इसकी जानकारी मिली। उन्होंने भिक्षु-संघ की बैठक में भिक्षुओं को समझाया, "जीतने वाले के मन में दुश्मनी और घृणा बढ़ती है और हारने वाले के मन में खिन्नता और दुख का सन्ताप बढ़ता है। जीतने वाला जीत तो जाता है पर उस विजय में वैर का सृजन कर लेता है। विजय शत्रुता को जन्म देती है और पराजय, बिना नींद भरी रातें। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह जय-पराजय दोनों से ही ऊपर उठ जाये।"

टिप्पणी: प्रश्न उठता है कि वैसी जीत का क्या महत्त्व जिसमें दुश्मनी के कारण भविष्य में संभावित पराजय का बीज छिपा हो ? जीतने वाला वैर पैदा कर अपने लिए मानसिक अशांति को आमंत्रित करता है। दूसरी ओर हारने वाला आदमी यह सोचता रहता है कि "पता नहीं अपने दुश्मन की पीठ देख पाऊँगा या नहीं।" यह सोचकर सदैव दु:खी और चिंतित रहा करता है। उसकी सोच-समझ, कार्यशैली, उसका दैनिक जीवन सभी कुछ बदल जाता है।

इसके विपरीत जो राग-द्वेष से ऊपर उठ गया है वह जय-पराजय की भावना से भी ऊपर उठ गया है। उसके शरीर की सभी चेष्टाएं सुखपूर्वक चलती हैं और वह सुखपूर्वक जीवन जीता है।

गाथा: नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा, नत्थि सन्तिपरं सुखं।।202।।

अर्थ: राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान कोई पाप नहीं। पंच स्कन्धों में मोह के समान कोई दुख नहीं है और निर्वाण के समान कोई सुख नहीं है।

निर्वाण बिना सुख कहाँ ?
एक नववधू की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक दिन एक कन्या के विवाह का आयोजन हुआ। लड़की के माता-पिता ने बुद्ध और उनके शिष्यों को उस अवसर पर भोजनदान के लिए आमंत्रित किया। तथागत भिक्षु संघ के साथ वहाँ पधारे और सभी अपने-अपने आसन पर बैठ गए। भोजन परोसने की प्रक्रिया में वह वधू बार-बार आना जाना कर रही थी। उसका पति वहीं खड़ा था और उसे बहुत ही ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसकी सुन्दरता से मोहित हो उसके अन्दर रागाग्नि प्रज्जवलित हो उठी। उसके मन में अनेक काम-राग सम्बन्धी विचार उठने लगे और वह उस वधू को पाने के लिए अंदर से तड़प उठा। उसका मन बेचैन हो गया। अपने अंदर उठे इस राग के तूफान के कारण उसने बुद्ध और भिक्षुसंघ की सेवा नहीं की और अपने ही विचारों में खोया रहा। सेवा-सत्कार, आवभगत में मन लगाने के बजाय उसका मन कहीं और खोया हुआ था। अंततः वही हुआ जो ऐसे अवसर पर नहीं होना चाहिए। अपनी व्यग्रता तथा अविवेक के कारण उसने वधू का हाथ पकड़कर एक तरफ खींचना चाहा। बुद्ध उसकी मनः स्थिति को समझ चुके थे। अतः उन्होंने ऐसा चमत्कार किया कि वह वधू लोगों की सेवा तो करती रही पर उस युवक की दृष्टि से ओझल हो गई। थोड़ी देर बाद उसका पति थककर एक तरफ बैठ गया। तब बुद्ध ने उस युवक को बुलाकर समझाया, "कुमार ! रागाग्नि के समान कोई तीव्र अग्नि नहीं है, द्वेष के समान कोई अपराध(पाप) नहीं है। क्रोध और घृणा के समान कोई मल नहीं है; शरीर के अस्तित्व के इन पाँच स्कन्धों को ढोने के समान जीवन में कोई दुःख नहीं है और अनुपम, शान्त, निर्वाण के समान कोई सुख नहीं है।"

इस प्रवचन के बाद दोनों पति-पत्नी श्रोतापन्न हो गए। बुद्ध ने अपना प्रभाव भी हटा लिया और वे एक दूसरे को देखने लगे।

गाथा: जिघच्छापरमा रोगा, सड्खारपरमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं।।203।।

अर्थ: भूख सबसे बड़ा रोग है। रूप, वेदना आदि संस्कार सबसे बड़े दुख हैं। इस सत्य को यथार्थ रूप में (जैसा है) समझ लेने से यही निष्कर्ष निकलता है कि निर्वाण से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

रोग-दुख से मुक्त हो अमृत-सुख कैसे पायें ?
किसी उपासक की कथा

स्थान : आलवी

यह गाथा बुद्ध ने आलवी नगर में एक उपासक के संबंध में कही थी।

एक दिन बुद्ध ने अंतर्दृष्टि से देखा कि आलवी नगर का एक उपासक स्रोतापन्न प्राप्त करने के लिए परिपक्व है। अतः वे आलवी गाँव गए, जो श्रावस्ती से तीस योजन दूर पड़ता था। संयोग से उसी दिन उस किसान का बैल खो गया। अतः उसे उस बैल को खोजने के लिए जहाँ-तहाँ जाना पड़ा। इस बीच आलवी ग्राम में बुद्ध और उनके शिष्यों को भोजन-दान दिया गया। भोजन के बाद, लोग बुद्ध के प्रवचन की प्रतीक्षा करने लगे, लेकिन बुद्ध उस नवयुवक की प्रतीक्षा करते रहे। अंततः अपने बैल को खोजकर वह आदमी दौड़ता-दौड़ता वहाँ पहुँचा जहाँ शास्ता विराजमान थे। वह किसान थक गया था और भूखा भी था। अतः बुद्ध ने आयोजकों से आग्रह किया कि वे उस किसान को भोजन करा दें। जब उस किसान ने भोजन कर लिया तब बुद्ध ने पुण्यानुमोदन शुरू किया। उन्होंने धर्म के विषय में थोड़ा-थोड़ा करके बताना शुरू किया और अंततः चार आर्य सत्य का प्रतिपादन किया। उनके प्रवचन के अन्त में वह किसान स्रोतापन्न हो गया।

बाद में बुद्ध और शिष्यगण जेतवन विहार लौट आए। रास्ते में भिक्षुगण चर्चा कर रहे थे कि तथागत की कृपा देखो कि बुद्ध ने पहले उस किसान को भोजन कराया और उसके बाद ही प्रवचन देना प्रारंभ किया। उनकी टिप्पणी सुनकर तथागत ने कहा, भिक्षुगण ! जो तुम कह रहे हो वह सत्य है। लेकिन तुम्हें यह नहीं मालूम कि मैं तीस योजन दूर से उसी किसान के लिए आया हूँ क्योंकि मुझे यह दिख गया था कि वह स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। वह किसान सुबह से ही अपने खोये हुए बैल की तलाश कर रहा था। बहुत थक गया था तथा भूखा भी था। अगर वह भूखा ही रहता तो भूख की पीड़ा उसे धर्म-प्रवचन से वंचित कर देती। उसका ध्यान उसमें पूरी तरह नहीं लगता। भिक्षुओं ! भूख से बढ़कर कोई बीमारी नहीं है।"

टिप्पणी: सामान्य रोग एक बार चिकित्सा कर देने से ठीक हो जाता है। वह समूल समाप्त हो जाता है या दब जाता है पर भूख का रोग ऐसा नहीं है। भूख का रोग अन्य सामान्य रोगों की तरह नहीं है। एक बार भोजन करने पर भूख का रोग उस समय के लिए ठीक हो जाता है पर समय के अंतराल पर वह रोग पुनः प्रकट हो जाता है अर्थात् निश्चित अन्तराल के बाद उस रोग-भूख की पुनरावृत्ति हो जाती है। इसलिए भूख को सबसे कठिन रोग कहा गया है

जैसे भौतिक शरीर में भूख सबसे बड़ी बीमारी है उसी प्रकार आन्तरिक शरीर में स्कन्धों के ममत्व के समान कोई दु:ख नहीं है। इस बात को जानकर समझदार लोग इनसे ऊपर उठकर निर्वाण की दिशा में अपना मन लगाकर अंततः निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

गाथा : आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठिपरमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं ।।204।।

अर्थ : निरोग रहना सबसे बड़ा लाभ है। सन्तोष सर्वोत्कृष्ट धन है। विश्वास सबसे बड़ा सम्बन्धी है तथा निर्वाण सर्वोत्कृष्ट सुख है।

क्या है सर्वश्रेष्ठ ?
राजा पसेनदि की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध ने यह गाथा राजा पसेनदि के संदर्भ में कही थी।

अपने जीवन के प्रारंभिक काल में राजा पसेनदि काफी मात्रा में चावल और उतनी ही मात्रा में दाल और सब्जी खाया करता था। एक दिन सुबह-सुबह उसने इसी प्रकार का गरिष्ठ भोजन किया और अधिक खाने के कारण निद्रा की स्थिति को प्राप्त करने लगा। वह बुद्ध के यहाँ पहुँचा और थका हुआ सा, ऊँघता हुआ बैठ गया। उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह वहीं सो जाए लेकिन वह वैसा नहीं कर सका। तब बुद्ध ने उससे कहा, "राजन ! क्या विश्राम करके नहीं आए हो ?" "नहीं श्रीमन् ! मुझे अक्सर भोजन करने के बाद पीड़ा होती है।" तब बुद्ध ने उससे कहा, "राजन ! अत्यधिक भोजन करने से इस प्रकार की पीड़ा होती है।" ऐसा कहते हुए बुद्ध ने समझाया, "जब मनुष्य तन्द्रा के अधीन हो जाता है, पेटू हो जाता है, अधिक खाने लगता है और इस कारण अधिक सोने लगता है, कष्ट के कारण करवटें बदलता रहता है

तब ऐसा मनुष्य खाये-पीये सूअर की तरह मोटा हो जाता है और संसार में बार-बार जन्म लेता रहता है।

राजन ! भोजन सदैव उचित मात्रा में ही करना चाहिए। वही जीवन के लिए उपयोगी और सुखद होता है।" तथागत ने और भी समझाया, "जो व्यक्ति सदा स्मृतिमान रहकर, भोजन की सही मात्रा जानकर सीमित ढंग से भोजन करता है उसका कष्ट कम होता जाता है और ऐसा करने से उस व्यक्ति की आयु लगातार बढ़ती जाती है।"

चेष्टा करने पर भी राजा इस गाथा को याद नहीं कर पाया। तब बुद्ध ने राजा के भाँजे, राजकुमार सुदासन, जो पास ही खड़ा था, को इस गाथा को याद कर लेने के लिए कहा। सुदासन ने बुद्ध से पूछा, "भन्ते, इस गाथा को याद करके मैं क्या करूँगा ?" तथागत ने कहा, "जब राजा भोजन कर रहे हों और अपने भोजन का अंतिम कौर लेने वाले हों तब यह गाथा सुना देना। राजा इस गाथा को सुनाने का उद्देश्य समझ जायेंगे और तुरंत वह अंतिम कौर फेंक देंगे। जब अगली बार राजा के लिए भोजन बनाने के लिए चावल लाया जाये तो तुम कम चावल देना।" "जो आज्ञा, भन्ते", सुदासन ने उत्तर दिया। इस प्रकार जब भी राजा सुबह-शाम भोजन करने जाता और अंतिम कौर लेता तो उसका भाँजा यह गाथा सुनाता और अगली बार भोजन के लिए कम चावल देता। इस प्रकार राजा संतोषपूर्वक भोजन करने लगा। कुछ समय बाद वह पतला हो गया और प्रसन्न रहने लगा। एक दिन राजा शास्ता को श्रद्धा-सुमन भेंट करने गया और उन्हें साष्टांग प्रणाम कर कहा, "भन्ते, मैं अब प्रसन्न हूँ, अब तो मैं दौड़ते हुए मृग भी पकड़ सकता हूँ। पहले मेरे अपने भाँजे से मेरी लड़ाई होती थी लेकिन अभी हाल ही में अपनी बेटी, वज्रा, का उससे विवाह कर दिया है और उन्हें काशिक नाम का ग्राम भी दे दिया है। साथ ही राजमहल का एक मणिरत्न खो गया था, वह भी मिल गया है। आपके श्रावकों का विश्वास जीतने के लिए आपके रिश्तेदारों की पुत्री अपने घर ले आया हूँ। इन सभी कारणों से मैं अति प्रसन्न हूँ।"

तब शाक्य मुनि ने समझाया, "मनुष्य के लिए अच्छा स्वास्थ्य ही सबसे बड़ी उपलब्धि है। जो कुछ भी जीवन से प्राप्त हुआ है उससे संतोष करना सबसे बड़ा धन है। विश्वास हमारा सबसे बड़ा बंधु है। लेकिन निर्वाण के समान कोई सुख नहीं है अर्थात् निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।"

गाथा: पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवं।।205।।

अर्थ: एकान्त चिंतन और शांति के रस को पीकर धर्म के प्रीति रस का पान करता हुआ साधक भय और पाप से मुक्त हो जाता है।

धर्म रस-पान कर सुखी रहें
स्थविर तिस्स की कथा

स्थान : वैशाली

बुद्ध ने यह गाथा स्थविर तिस्स के संदर्भ में कही थी।

जब बुद्ध ने घोषणा की कि वे चार महीनों में महापरिनिर्वाण प्राप्त करेंगे तो संसार से अभी भी आसक्त बहुत सारे शिष्य दु:खी हो गए।

यह जानकर कि बुद्ध चार महीनों में शरीर त्याग देंगे, अनेक शिष्य उनके आस-पास रहने लगे। क्षीणास्रव एवं अर्हत भिक्षुओं के मन में धर्म के प्रति संवेग हुआ। भिक्षुगण विभिन्न समूहों में बँट गए तथा तरह-तरह की मंत्रणा करने लगे। तिस्स नाम के एक भिक्षु ने भी बुद्ध के महापरिनिर्वाण की खबर सुनी। तब उसने अपने आप से सोचा, "तथागत सिर्फ चार मास की अवधि में ही महापरिनिर्वाण प्राप्त कर जायेंगे पर मैं अभी भी राग से पूर्णत: मुक्त नहीं हो पाया हूँ। मुझे ऐसी साधना करनी चाहिए कि उनके शरीर त्यागने से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ।" तिस्स बुद्ध के आस-पास न रहकर एकान्त जगह पर चला गया और खड़े रहकर, चलकर, उठकर, बैठकर सभी परिस्थितियों में विपश्यना साधना का अभ्यास करने लगा और अपने ऊपर पूर्ण संयम एवं नियन्त्रण रखने लगा। नौसिखिये शिष्यों को उसका यह व्यवहार कुछ अटपटा सा लगा और उन्होंने तिस्स से पूछा, "तिस्स, तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? शास्ता में अपनी श्रद्धा और सम्मान क्यों नहीं दिखा रहे हो ?" पर तिस्स उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं देता और अपनी साधना में लगा रहता। उसके इस व्यवहार से नाराज होकर भिक्षुगण शास्ता के पास गये और उन्हें बताया कि भिक्षु तिस्स आपके प्रति सम्मान भाव नहीं रखता है। शास्ता ने तिस्स को बुलाकर उसे अपना व्यवहार स्पष्ट करने को कहा। तिस्स ने अपनी मनोकामना बताई जिसे सुनकर शाक्यमुनि अति प्रसन्न हुए तथा अनेक प्रकार से उसे साधुवाद दिया। उन्होंने भिक्षुओं के समूह को भी समझाया, "भिक्षुगण ! जो मुझमें प्रेम और सच्ची श्रद्धा रखते हैं उन्हें तिस्स के समान होना चाहिए। मुझे पुष्प, माला, इत्र और अगरबत्ती अर्पित कर तुम मेरी शिक्षा का अनुपालन नहीं करते हो । इनसे की गई पूजा-अर्चना का कोई महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत अगर कोई साधक मेरे द्वारा बताये मार्ग पर चलता है और धर्म साधना करता है तो वही मुझमें सच्ची श्रद्धा प्रकट करता है।" इस देशना के अंत में तिस्स स्थविर अर्हत्व को प्राप्त हो गए ।

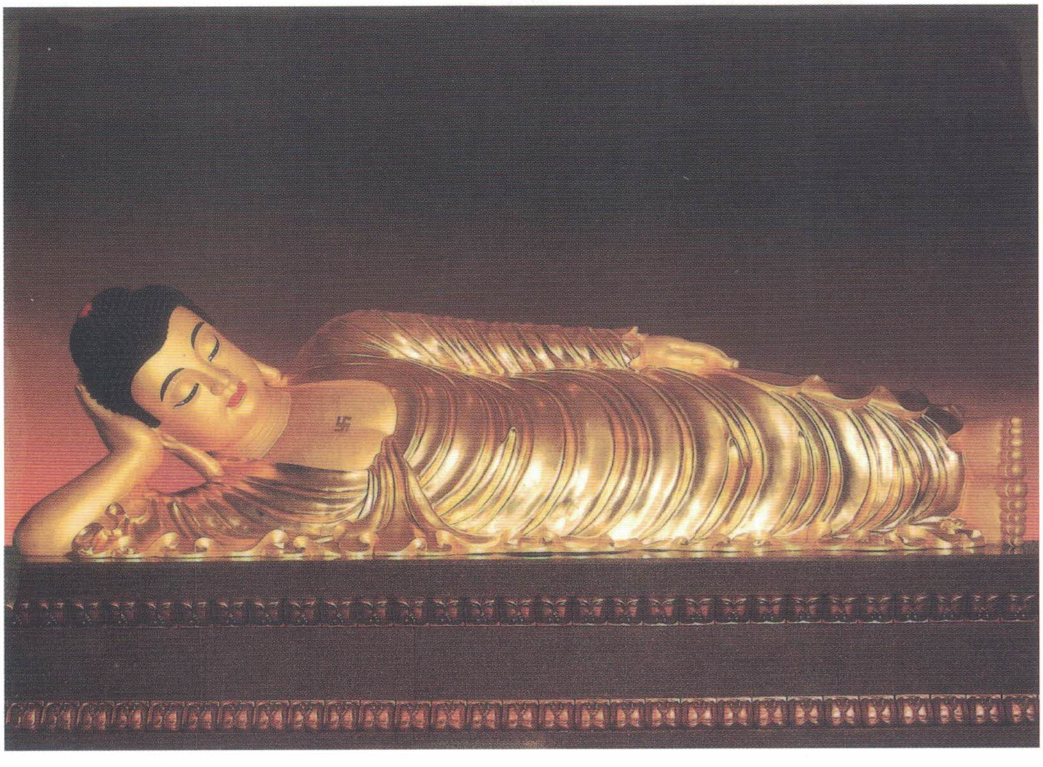

गाथा: साहु दस्सनमरियानं, सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं, निच्च्मेव सुखी सिया।।206।।

अर्थ : सन्त जनों का दर्शन हितकारी होता है । उनके साथ रहना मंगलमय, आनन्ददायी होता है । इसके विपरीत दुर्जनों एवं मूर्खों का दर्शन ही आनन्ददायक होता है ।

सही सन्तों का दर्शन सबसे सुखदायक है
शक्र की कथा

स्थान : वेणुग्राम

इन तीन गाथाओं को बुद्ध ने देवताओं के राजा शक्र के संदर्भ में कही थी ।

जब बुद्ध के पार्थिव शरीर के अंत का समय आ रहा था और वे रक्तस्राव से पीड़ित थे, देवताओं के राजा इन्द्र को इस बारे में पता चला और उसने अपने आप से सोचा, "मेरा कर्त्तव्य बनता है कि मैं बुद्ध के पास जाऊँ और उनकी बीमारी में उनकी सेवा-सुश्रूषा करूँ ।" ऐसा सोच उसने अपने शरीर का स्वरूप बदल दिया और तथागत के पास जाकर उनके चरणों को हाथों से दबाने लगा । तब शाक्य-मुनि ने पूछा, "कौन है?" उत्तर मिला, "भन्ते, मैं शक्र हूँ।" "यहाँ किस उद्देश्य से आए हो?" "भन्ते ! आपकी बीमारी में आपकी सेवा करने।" "शक्र ! देवताओं को मनुष्यों की गंध सड़े, गले माँस की तरह लगती है । सौ योजन की दूरी से भी देखने में लगता है जैसे गले में कोई गला-सड़ा मृत शरीर बाँध दिया गया है, अतः तुम जाओ । मेरी सेवा करने के लिए बहुत सारे भिक्षु विद्यमान हैं।" "भन्ते ! मैंने चौरासी हजार योजन की दूरी से आपके शील की गंध को महसूस किया है और उसी से प्रभावित होकर चला आ रहा हूँ । मेरे वापस जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । मैं तो आपकी सेवा करूँगा ही," ऐसा कहकर शक्र शास्ता की सेवा में तन-मन से जुट गया । वह शास्ता के मलपात्र को किसी को छूने नहीं देता और अपने सर पर रखकर बाहर फेंक आता था, ऐसा करते समय भी उसके चेहरे पर मुस्कान दिखती थी । उसे लगता था कि जैसे वह सुगन्धित फूलों की टोकरी लेकर जा रहा हो । इस प्रकार वह तथागत की सेवा तब तक करता रहा जबतक वे पूर्णतः स्वस्थ न हो गए । जब वे पूर्णतः स्वस्थ हो गए तब इन्द्र देवलोक लौट गया ।

गाथा: बालसङ्गतचारी हि, दीघमद्धान सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो, अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो, ञातीनंव समागमो।।207।।

अर्थ : मूर्ख जनों के संग रहने वाला पुरुष समय के अंतराल में दुःख ही दुःख पायेगा । मूर्खों के साथ रहना शत्रुओं के साथ रहने जैसा है । यह और भी अधिक कष्टप्रद, दुखदायी होता है । इसके विपरीत सज्जन पुरुष का समागम वैसा ही अति सुखदायी होता है जैसे अपने किसी प्रियजन के साथ रहना ।

पापी जनों से दूर रहें; संतों का सत्संग करें
शक्र की कथा

भिक्षुगण ने एक दिन धर्मसभा में चर्चा कर दी, "धन्य था इन्द्र का शास्ता में प्रेम ! उसने अपनी दिव्य सम्पत्ति को छोड़ा और बुद्ध की सेवा में लग गया पर उसके चेहरे पर जरा भी उदासी न दिखी। वह उनका मलपात्र भी उठाकर ऐसा प्रसन्न चलता था मानो सुगंधित पुष्पों की टोकरी लेकर जा रहा हो ।" शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं की चर्चा सुनकर कहा, "क्या कह रहे हो भिक्षुओं ? यूँ ही, अकारण, शक्र का मुझमें प्रेम नहीं है । कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि शक्र का मुझमें प्रेम है। यह देवराज, मुझ में स्नेह के कारण ही, वृद्ध शक्र से युवा शक्र में परिणत होकर स्रोतापन्न हो चुका है । उसने अपना पुराना शरीर त्याग दिया है और उसे तरूण शरीर प्राप्त हुआ है । एक बार वह मृत्यु के भय से अति भयभीत हुआ पञ्चशिख गन्धर्वदेव को आगे कर उसके साथ इन्द्रशाल गुफा में देवताओं के समूह के सम्मुख आया था।

गाथा: तस्मा हि धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतञ्च, धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं, भजेथ नक्खत्तपथंव चन्दिमा।।208।।

अर्थ: चन्द्रमा शुद्ध निर्मल आकाश में नक्षत्रों के साथ अच्छा लगता है। उसी प्रकार मनुष्य को धैर्यशाली, प्रज्ञावान, विद्वान, कर्मयोगी, आर्य एवं मेधावी पुरुष का समागम कर आनन्द की अनुभूति करनी चाहिए ।

चाँद के पीछे तारे, संतों के पीछे चरण हमारे
शक्र की कथा

तब मैंने उसके भय को दूर किया था और शक्र से कहा था - देवेन्द्र ! तुम्हारे मन में जो भी प्रश्न करने की इच्छा हो उसे कर लो । मैं तुम्हारे मन की सारी शंकाओं का समाधान कर दूँगा और तुम्हारे हृदय में विद्यमान हर संदेह को दूर कर दूँगा।" यह कहकर मैंने उसकी सारी शंकाओं का समाधान कर दिया था और धर्मचर्या द्वारा उसके सारे दुःखों को दूर कर दिया था । उस देशना के फलस्वरूप असंख्य लोगों को धर्म की जानकारी हुई थी और अंततः धर्म में उनकी प्रीति हो गई थी । और उधर शक्र, वहीं बैठा हुआ, धर्मचर्या सुनकर, स्रोतापन्न होकर वृद्ध शक्र से तरूण शक्र में परिणत हो गया । इस प्रकार मैंने उसे कई बार समय-समय पर उपदेश दिया है और उसकी शंकाओं का समाधान किया है । अगर मेरे इस प्रकार बार-बार मदद करने से उसके हृदय में मेरे प्रति प्रीति, श्रद्धाभाव और लगन से सेवा करने की तीव्र इच्छा पैदा होती है तो इसमें आश्चर्य क्या है ? भिक्षुगण ! सद्पुरूषों का संग अति सुखकर होता है । उनके साथ रहने में सुख की अनुभूति होती है । ऐसे पुरूषों के साथ रहने का, समय बिताने का अवसर मिले तो अथाह आनन्द प्राप्त होता है । इसके विपरीत मूर्खों का दर्शन और उनका साथ दुखदायक होता है ।

इस प्रकार समझाते हुए बुद्ध ने तीन गाथाएँ कहीं।

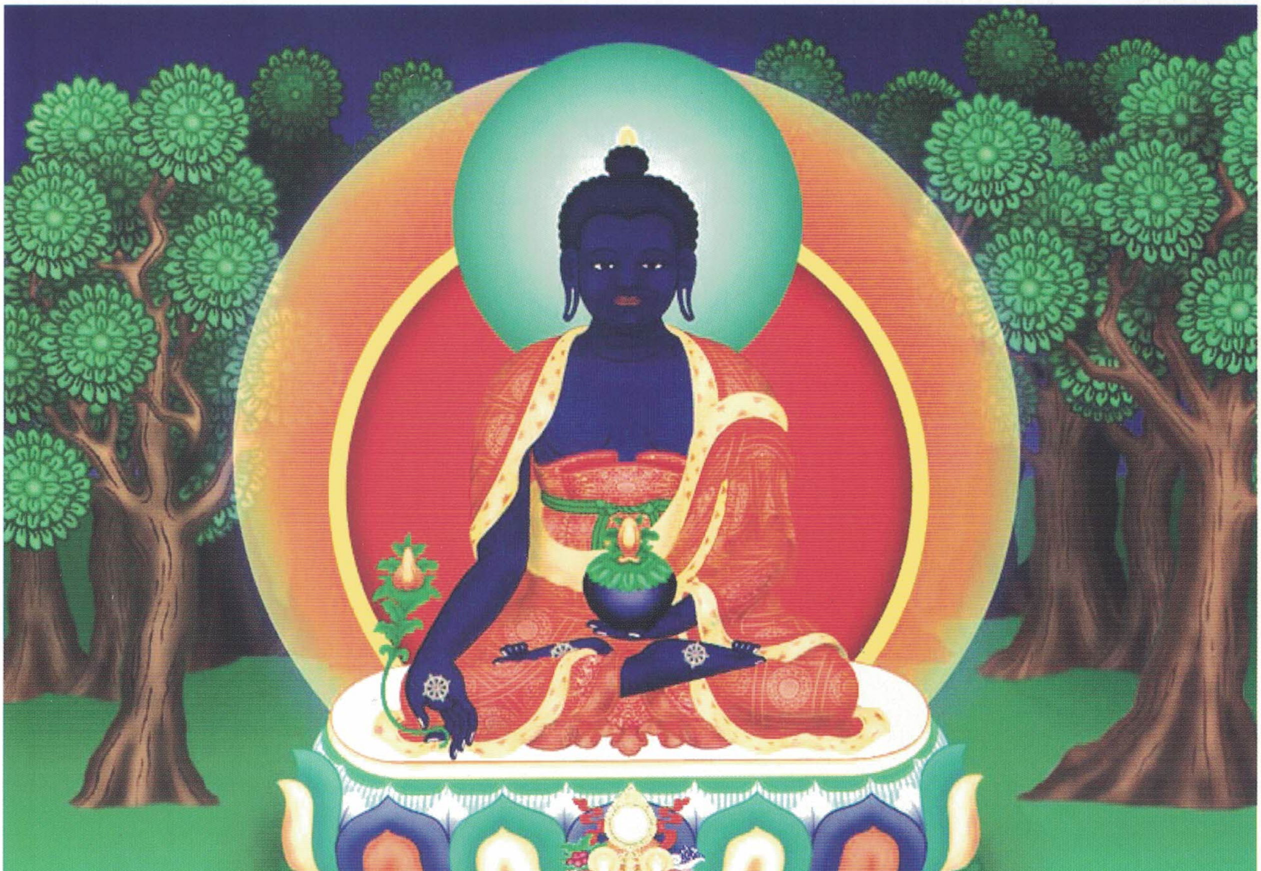

DHAMMAPADA

SUKHA VAGGA

आसक्ति की जाल

धम्मपद

प्रिय वर्ग

गाथा और कथा

आसक्ति की जाल

धम्मपद

प्रिय वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

प्रिय वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	तीन भिक्षुओं (माता–पिता–पुत्र) की कथा	209	आत्म–अन्वेषी की प्रशंसा	41
2.	तीन भिक्षुओं(माता–पिता–पुत्र) की कथा	210	प्रिय का बिछड़ना और अप्रिय से मिलन	43
3.	तीन भिक्षुओं(माता–पिता–पुत्र) की कथा	211	प्रिय–अप्रिय दोनों से परे	45
4.	एक धनी गृहस्थ की कथा	212	आसक्ति से भय और शोक उत्पन्न होता है	47
5.	विशाखा की कथा	213	प्रियजनों से दुःख और भय की उत्पत्ति होती है	49
6.	लिच्छवी राजकुमारों की कथा	214	राग की आग	51
7.	कुमार अस्त्रीगन्ध की कथा	215	शोक और भय : काम का परिणाम	53
8.	एक ब्राह्मण की कथा	216	तृष्णा : दुःख और भय का कारण	55
9	पाँच सौ बालकों की कथा	217	धर्मस्थ सबों को प्रिय होता है	57
10.	अनागामी भिक्षु की कथा	218	उर्ध्वगामी पुरुष के गुण	59
11.	नन्दिय की कथा	219	आपके सत्कर्म आपका स्वागत करते हैं	61
12.	नन्दिय की कथा	220	सद्पुरुष का सदैव स्वागत होगा	63

गाथा: अयोगे युञ्जमत्तानं, योगस्मिञ्च अयोजयं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही, पिहेतत्तानुयोगिनं।।209।।

अर्थ: अपने को उचित कर्म में नही लगाता है वरन् अनुचित में लगाता है; परमार्थ को छोड़कर प्रिय विषयों की प्राप्ति में ही लगा रहता है; ऐसा व्यक्ति सद्मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों के साथ ईर्ष्या करता है।

आत्म-अन्वेषी की प्रशंसा
तीन भिक्षुओं (माता-पिता-पुत्र) की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के एक परिवार में माता-पिता की एकलौती संतान थी - उनका पुत्र,जो उन्हें बहुत प्रिय था। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उनके घर पर भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन-दान के बाद उन्होंने धर्म-प्रविचय कराया। जैसे-जैसे बालक ने धर्म की बात सुनी, उसकी प्रव्रज्या लेने की इच्छा तीव्र हो उठी। उसने तत्काल अपने माता-पिता से भिक्षुसंघ में शामिल होने की अनुमति माँगी, उन्होंने इसकी अनुमति नहीं दी। तब उसके मन में विचार आया, "मेरे माता-पिता स्वेच्छा से मुझे प्रव्रज्या की अनुमति नहीं देंगे।अत: इनकी अनुमति के बिना ही मैं प्रव्रज्या क्यों नहीं ग्रहण कर लूँ ? जब मेरे माता-पिता घर में नहीं होंगे, तब मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा और प्रव्रज्या ग्रहण कर लूँगा।"

माता-पिता भी अपने पुत्र के मन को भांप गए। अत: उन्होंने हर कीमत पर अपने पुत्र की निगरानी करने का विचार किया। जब कभी पिता घर छोड़कर बाहर जाता, वह अपनी पत्नी को ताकीद देकर जाता कि उसके वापस आने तक पुत्र का ध्यान रखे कि कहीं वह घर छोड़कर चला न जाए। इसी प्रकार जब कभी माता घर से बाहर जाती, तो वह अपने पति को जिम्मेदारी देकर जाती कि वह पुत्र का ध्यान रखे। इस प्रकार समय बीतता गया। एक दिन जब पिता घर के बाहर गया हुआ था, माँ ने अपने आप से कहा, "मैं निश्चय ही अपने पुत्र को बाँधकर रखूँगी और उसे जाने नहीं दूँगी।" ऐसा सोचकर वह एक पैर दरवाजे के बाहर तथा एक पैर चौखट पर पसार कर बैठ गई और चरखे पर सूत कातने लगी। लड़के को लगा कि घर से भागने का यह अच्छा अवसर है। उसने सोचा, "मैं अपनी माँ को झाँसा देकर भाग जाऊँगा।" इसलिए उसने माँ से कहा, "प्यारी माँ, तुम अपना पैर जरा सा खिसका लो; मैं शौच होकर आता हूँ। उसने अपना पैर खिसका लिया और वह बाहर निकल गया। वह दौड़ा, जोर से दौड़ा और दौड़ते-दौड़ते बौद्ध विहार पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर बौद्ध भिक्षुओं से आग्रह किया, "भन्ते ! मुझे भी संघ में शामिल कर लें।" भिक्षुओं ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया और उसे संघ में शामिल कर लिया।

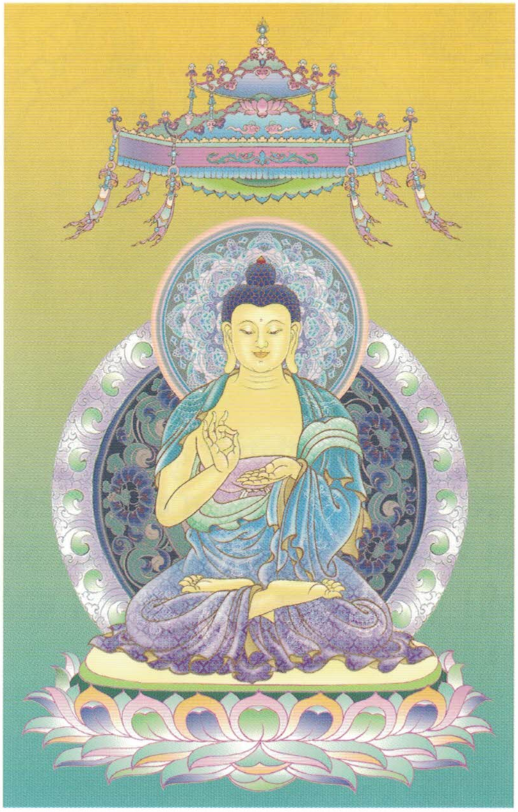

गाथा: मा पियेहि समागञ्छि, अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानदस्सनं दुक्खं, अप्पियानं च दस्सनं।।210।।

अर्थ: प्रिय का न देखना दुखदायी होता है और अप्रिय का देखना दुखदायी। ऐसा सोचकर साधक को इन दोनों से दूर रहना चाहिए।

प्रिय का बिछड़ना और अप्रिय से मिलन
तीन भिक्षुओं (माता-पिता-पुत्र) की कथा

जब पिता घर लौटा, तो उसने पत्नी से पूछा, "मेरा पुत्र कहाँ है ?" "पतिदेव, अभी-अभी तो यहीं था।" "मेरा पुत्र कहाँ हो सकता है ?" पिता ने इधर-उधर देखते हुए सोचा। उसे इधर-उधर न पाकर, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा, "निश्चय ही वह बौद्ध-विहार चला गया होगा।" इसलिए पिता विहार चला गया और अपने पुत्र को एक भिक्षु के वस्त्रों में देखकर फूट-फूट कर रोने लगा, पश्चाताप करने लगा और पुत्र से कहा, "प्यारे पुत्र, तुम क्यों हमारा नाश करने पर तुले हुए हो ?" लेकिन उसी क्षण उसके मन में यह विचार आया, "अब जब मेरा पुत्र भिक्षु हो गया है, मैं आगे एक गृहस्थ का जीवन क्यों जीऊँ ?" ऐसा सोचकर उसने भिक्षुओं से स्वयं को संघ में प्रव्रजित करने की प्रार्थना की और तत्काल भिक्षु संघ में शामिल हो गृहस्थ जीवन से अलग हो गया।

उधर लड़के की माँ सोचने लगी, "मेरे पुत्र और पति आने में इतना विलंब क्यों कर रहे हैं ?" इधर-उधर देखते हुए उसे तत्काल कौंधा, "निश्चय ही वे दोनों विहार गए हैं और प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया है।" इसलिए वह विहार गई और अपने पति और पुत्र को भिक्षुओं के वस्त्र में देखकर सोचा, "जब मेरे पुत्र और पति दोनों ही संन्यासी बन गये हैं तब मेरा गृहस्थ बने रहने का क्या प्रयोजन ?" अतः वह स्वतः ही भिक्षुणियों के समूह में गई और वहाँ जाकर प्रव्रजित हो गई और संसार का त्याग कर दिया।

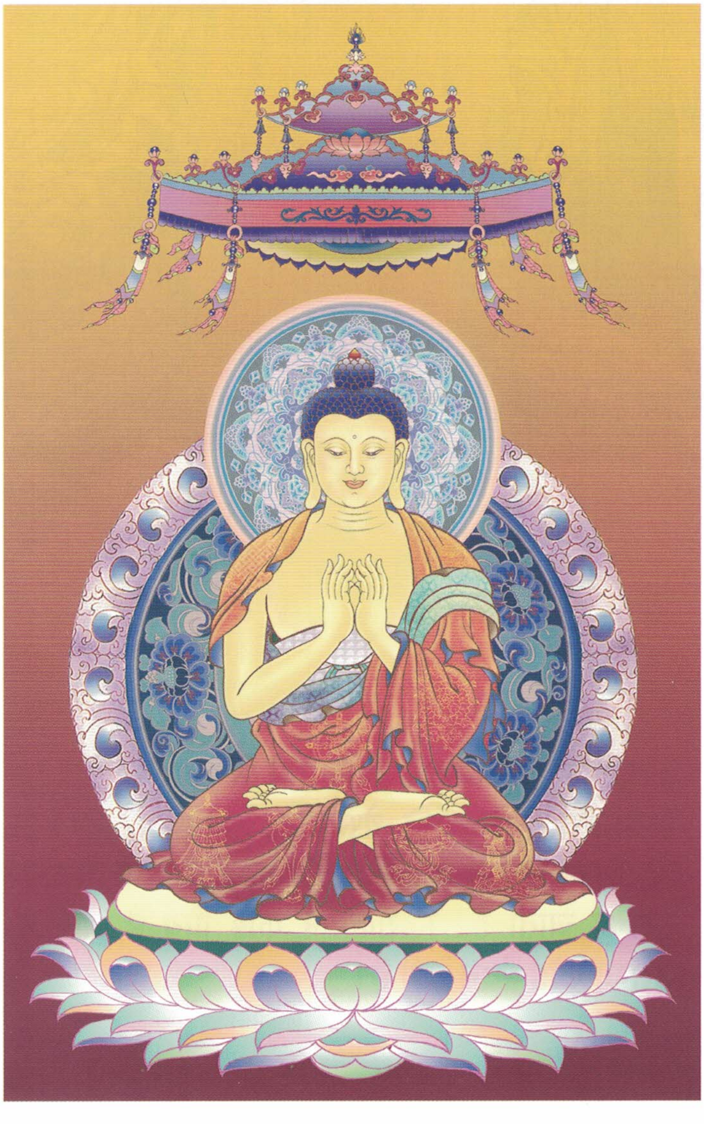

गाथा: तस्मा पियं न कयिराथ, पियापायो हि पापको।
गन्था तेसं न विज्जन्ति, येसं नत्थि पियाप्पियं।।211।।

अर्थ: किसी को प्रिय न बनावें क्योंकि कभी न कभी प्रिय का वियोग दुख दे जाता है। जिसका न कोई प्रिय है और न अप्रिय, उसका कोई बंधन नहीं है।

प्रिय-अप्रिय दोनों से परे
तीन भिक्षुओं (माता-पिता-पुत्र) की कथा

यद्यपि तीनों (माता-पिता-पुत्र) ने संसार का त्याग कर दिया था पर तीनों सांसारिक की तरह ही रहने लगे। पहले तो कुछ दिनों तक संघ के नियमों का अनुपालन किया पर उसके बाद संघ की मर्यादा भंग करने लगे। वे एक दूसरे से अलग नहीं रहते थे। विहार में वे तीनों एक साथ बैठ जाते थे तथा घंटों बातचीत करते हुए समय निकाल देते थे। साधना-ध्यान का प्रश्न ही नहीं था। तब भिक्षुगण बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि क्या हो रहा है। बुद्ध ने उन्हें बुलाया और उनसे पूछा, "क्या यह सही है कि तुम लोग संघ के नियमों का उल्लंघन कर विहार में रह रहे हो ?" उन्होंने कहा-हाँ। तब बुद्ध ने समझाया, "तुम लोग ऐसा क्यों कर रहे हो ? भिक्षु और भिक्षुणी को इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए।" "लेकिन हम लोगों के लिए अलग रहना असंभव है।"

तब तथागत ने उन्हें स्पष्ट करते हुए समझाया,"संसार से संन्यास लेने के बाद इस प्रकार का व्यवहार पूर्णतः वर्जित है। प्रियजनों का दर्शन न होना निश्चय ही दुख का कारण होता है और अप्रिय जनों का दर्शन होना भी दु:ख का कारण होता है। इस कारण, प्राणियों या सांसारिक वस्तुओं दोनों में से किसी के भी प्रति आसक्ति नहीं आने देना चाहिए; भिक्षुओं को प्रिय और अप्रिय दोनों से ही ऊपर उठ जाना चाहिए।"

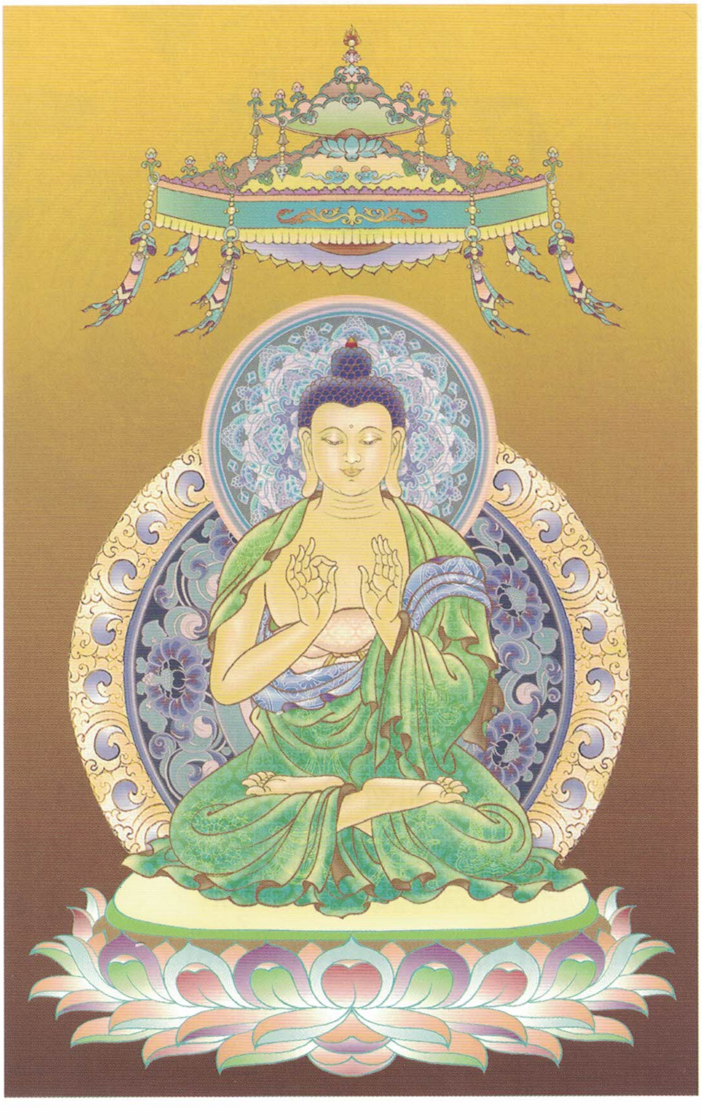

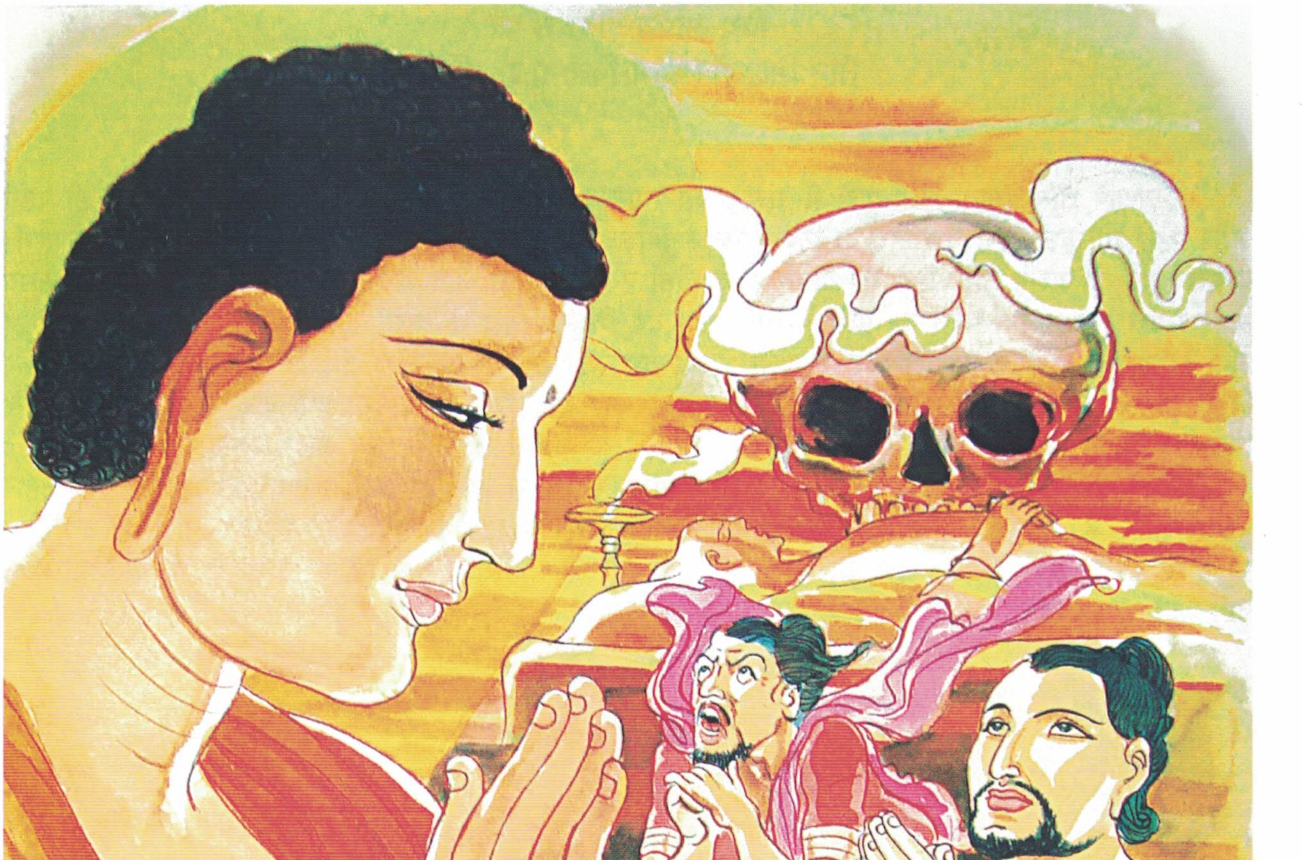

गाथा: पियतो जायती सोको, पियतो जायती भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।212।।

अर्थ: प्रिय जन से ही शोक उत्पन्न होता है, प्रिय जन से ही भय भी उत्पन्न होता है। जो प्रिय जन से मुक्त हो जाता है उसे शोक कहाँ से होगा और भय का प्रश्न ही कहाँ ?

आसक्ति से भय और शोक उत्पन्न होता है
एक धनी गृहस्थ की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक धनी गृहस्थ के पुत्र की मृत्यु हो गई। उस दु:ख से वह इतना व्यथित हुआ कि वह प्रतिदिन श्मशान जाकर घंटों रोया करता था, क्योंकि अपने दु:ख से ऊपर उठ नहीं पा रहा था। एक दिन बुद्ध ने प्रातः काल अपनी अन्तर्दृष्टि में पाया कि वह गृहस्थ स्रोतापन्न प्राप्त करने की स्थिति में है। अतः अपने दैनिक भिक्षाटन से वापस आने के बाद एक भिक्षु को साथ लेकर बुद्ध उस गृहस्थ के दरवाजे पर पहुँच गए। जब उस आदमी ने सुना कि बुद्ध उसके घर आए हैं तो उसने सोचा, "संभवतः शास्ता मुझसे मेरा स्वास्थ्य आदि पूछने तथा मैत्री भाव दिखाने पधारे हैं।" इसलिए उसने बुद्ध को अपने घर में आमंत्रित किया और बैठने के लिए आसन दिया। जब बुद्ध उस आसन पर विराजमान हो गए तब वह उनके पास आकर एक बार पुनः प्रणाम कर; एक तरफ ससम्मान बैठ गया। तब बुद्ध ने उससे पूछा, "उपासक ! तुम इतने दु:खी क्यों हो ?" "मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई है; अतः मैं उदास हूँ," उसने उत्तर दिया। बुद्ध ने समझाया, "उपासक ! मन को दु:खी मत होने दो। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह किसी व्यक्ति विशेष के पास नहीं आती, वरन् सभी प्राणियों के पास आती है। जिन्होंने शरीर धारण किया है उनमें से कोई भी शाश्वत नहीं है। इसलिए आदमी को दु:खी नहीं होना चाहिए, वरन् मृत्यु को उसकी पृष्ठभूमि में, उसी के दृष्टिकोण से देखना चाहिए। कहा भी गया है - जो मरणशील था वह मर गया, जो नाशवान् था वह नष्ट हो गया। इस उक्ति पर चिंतन, मनन करना चाहिए।"

"पुराने काल में विद्वान लोग पुत्र की मृत्यु पर शोक नहीं करते थे, वरन् मृत्यु के ऊपर सतत् चिंतन, मनन करते थे और अपने आप को समझाते थे, मरण स्वभाव वाला मृत्यु को प्राप्त हुआ, नष्ट होने वाला नष्ट हो गया, अब मुझे मात्र मरणस्मृति की भावना करनी चाहिए। पुराने जमाने में, जो पुत्रशोक आज तुम कर रहे हो, ऐसा लोग नहीं करते थे। तुमने अपना काम-धंधा बंद कर दिया है और अपना समय केवल रोते-धोते बिताते हो। भूतकाल के विद्वान ऐसा नहीं करते थे। इसके विपरीत वे मरण-भावना का ध्यान करते थे, शोकग्रस्त नहीं होते थे, सामान्य रूप से भोजन करते थे और अपना रोजगार-धंधा सामान्य रूप से करते थे। इसलिए यह सोचकर कि तुम्हारा पुत्र मर गया है, दु:खी मत होवो क्योंकि दु:ख से भय की उत्पत्ति होती है क्योंकि किसी प्रिय का नाश हुआ है।"

"जिस प्रकार समय आने पर साँप अपनी केंचुली छोड़कर चला जाता है, वस्त्र पुराने होने पर व्यक्ति उसे छोड़ देता है उसी प्रकार इस शरीर का कार्य समाप्त हो जाने पर इस शरीर रूपी मशीन का चलना बंद हो जाता है।"

टिप्पणी: किसा गोतमी को भी बुद्ध ने पुत्र शोक पर समझाते हुए कहा था कि किसी परिवार से मुट्ठी भर सरसों ला दो जहाँ कोई मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है तो तुम्हारे पुत्र को पुनः जीवित कर दूँगा।

गाथा: पेमतो जायती सोको, पेमतो जायती भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।213।।

अर्थ: आसक्ति से शोक होता है, आसक्ति से ही भय भी होता है। आसक्ति रहित को शोक नहीं हुआ करता। भय की बात ही कहाँ ?

प्रियजनों से दुःख और भय की उत्पत्ति होती है
विशाखा की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाउपासिका विशाखा की एक पौत्री थी जिसका नाम सुदत्ता था। जब विशाखा घर में नहीं होती थी तो वह भिक्षुओं की आवभगत किया करती थी। कुछ समय बाद सुदत्ता का निधन हो गया। विशाखा ने उसके शरीर का क्रिया-कर्म किया पर अपने दुःख को संभाल नहीं सकी। वह दुःखी होकर समय गुजारने लगी। मन की उसी दुःखद स्थिति के साथ वह एक दिन बौद्ध-विहार गई तथा शास्ता को सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गई। बुद्ध ने पूछा, "विशाखा ! तुम किस कारण यहाँ दुःखी, उदास, अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ, रोती और कलपती हुई बैठी हुई हो ?" तब विशाखा ने पूरी बात को समझाते हुए कहा, "भन्ते ! वह कन्या मुझे अति प्रिय थी, कर्त्तव्यनिष्ठ भी थी और सेवाभाव होने के कारण मेरा सारा काम सँभाल लेती थी; अब मुझे उसके जैसा दूसरा कोई नहीं मिलेगा।" "विशाखा ! मुझे बताओ कि श्रावस्ती में कितने लोग निवास करते हैं ?" "मैंने आपको ही चर्चा करते सुना है कि लाखों लोग रहते हैं।" "अगर ये सभी लोग तुमको तुम्हारी सुदत्ता की तरह प्रिय हो जायें तो क्या होगा ? क्या तुम ऐसा चाहोगी कि वे सभी लोग उसी की तरह तुम्हारे प्रिय हो जायें ?" "हाँ भन्ते" "लेकिन श्रावस्ती में कितने लोग प्रतिदिन मरते हैं ? " "अनेक, भन्ते ! " "ऐसा होने पर यह सुनिश्चित है कि तुम्हारे पास समय ही नहीं बचेगा कि तुम पूरी तरह रो भी सको; तुम दिन और रात कुछ और नहीं करोगी, सिर्फ रोती ही रहोगी। रोने के सिवा तुम्हें करने को कुछ नहीं बचेगा।" "हाँ भन्ते ! अब मैं समझ गई।" तब बुद्ध ने समझाया, "ठीक है, समझ गई। दुःखी मत होवो। जिनके सौ प्रियजन हैं, उन्हें सौ दुःख होंगे। जिनका कोई प्रियजन नहीं होगा उन्हें कोई दुःख नहीं होगा। ऐसा व्यक्ति राग रहित होकर शोक रहित हो जाता है। यह जो दुःख और भय है ये दोनों ही प्रियजनों से उत्पन्न होते हैं। अतः जिसने प्रियजनों का सृजन नहीं किया उसे दुःख कैसे होगा ? "

टिप्पणीः बुद्ध के उक्त संदेश से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वे पाषाण की तरह निष्ठुर, कठोर हैं क्योंकि वे प्रेम के विपरीत संदेश देते हैं। सच्चाई इससे पूर्णतः भिन्न है, बुद्ध वस्तुतः मानव जाति के प्रति प्रेम, दया, करुणा एवं मैत्री से परिपूर्ण हैं। इसीलिए वे मानव जाति को दुःखों से मुक्त कराना चाहते हैं। अपनी शोध के आधार पर उन्होंने पाया कि मनुष्य के दुःख का सबसे बड़ा और एक मात्र कारण है "आसक्ति"। हमें आसक्ति और प्रेम के बीच का भेद समझना चाहिए। जिसे हम अक्सर प्रेम समझ बैठते हैं वह वस्तुतः प्रेम नहीं, आसक्ति है। प्रेम हमें मुक्त करता है, आसक्ति हमें बाँधती है। प्रेम सार्वभौम होता है, आसक्ति व्यक्ति विशेष या समूह विशेष के साथ होती है। प्रेम स्व के परे होता है, आसक्ति स्व के दायरे में ही सीमित रहती है। प्रेम हमें उर्ध्व दिशा में ले जाता है, आसक्ति निम्न दिशा की ओर। प्रेम हमें मुक्त कर खुले, नीले गगन में पंछी की तरह उड़ने का अवसर देता है, आसक्ति पैरों में बेड़ी बाँधकर कैदी की तरह जीवन जीने का।

अतः एक साधक को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि प्रेम और आसक्ति में क्या भेद है और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए।

गाथा: रतिया जायती सोको, रतिया जायती भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।214।।

अर्थ: आसक्ति (काम) से शोक उत्पन्न होता है, आसक्ति (काम) से भय उत्पन्न होता है। जिसमें आसक्ति (काम) नहीं है उसमें शोक कैसे उत्पन्न होगा, भय की तो बात ही कहाँ है ?

राग की आग
लिच्छवी राजकुमारों की कथा
स्थान : कूटागारशाला, वैशाली

किसी उत्सव के दिन लिच्छवीकुमारगण अति सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर उद्यान जाने के लिए अपने घरों से निकले। उसी समय बुद्ध नगर में भिक्षाटन हेतु प्रविष्ट हुए और उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुगण ! इन लिच्छवी राजकुमारों को देखो ! जिन्होंने त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के देवताओं को नहीं देखा है वे इन्हें देख लें।" ऐसा कहते हुए बुद्ध नगर में प्रवेश कर गए।

उधर उद्यान जाने के मार्ग में राजकुमारों ने एक सुन्दर वेश्या को भी अपने साथ ले लिया। वहाँ पहुँचने पर वेश्या के कारण उनमें आपस में जलन होने लगी और ईर्ष्यावश वे आपस में मार-काट कर युद्ध करने लगे। आपस में उस महिला को लेकर खूब घमासान युद्ध हुआ, मानों रक्त की नदी बह रही हो ! वे आपस में लड़कर घायल हो गए। उनकी हालत इतनी खराब हो गई कि उन्हें खाट पर लादकर ले जाना पड़ा। बुद्ध भोजन से निवृत्त होने के बाद नगर से विहार हेतु प्रस्थान कर गए।

जब भिक्षुओं ने इन लिच्छवी राजकुमारों को ढोये जाते हुए देखा तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! प्रातःकाल में लिच्छवी राजकुमार त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक के देवतागण से भी अधिक सज-धज कर वैशाली से उद्यान की ओर गए और वे सभी एक स्त्री हेतु इस दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। अब वे सभी गंभीर रूप से घायल होकर अपने-अपने घरों में पड़े हैं।" उनकी बात सुनकर शास्ता ने कहा, "भिक्षुओं ! स्त्री प्रेम (रति, आसक्ति) से अंततः शोक एवं भय उत्पन्न होता है और वह कष्ट का कारण बनता है।"

टिप्पणी : आसक्ति के विभिन्न कारणों में काम-शक्ति सबसे अधिक शक्तिशाली कही जाती है। विश्व इतिहास साक्षी है कि स्त्रियों के लिए राज्यों, राजाओं ने युद्ध लड़े हैं, खून बहाये हैं।

सिद्धार्थ को बुद्धत्व न मिले इसके लिए मार ने अन्तिम शस्त्र के रूप में अपनी पुत्रियों को भेजा था पर वे भी उन्हें पथ से च्युत न कर पाईं और वे अडिग रहे।

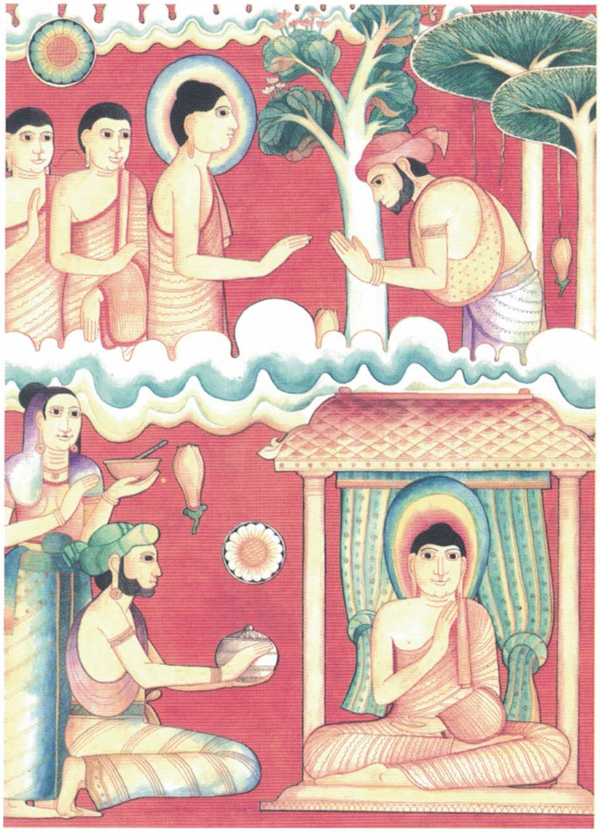

गाथा: कामतो जायती सोको, कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।215।।

अर्थ: काम से ही शोक का जन्म होता है। काम से ही भय उत्पन्न होता है। जो पुरुष कामी नहीं है वह न तो दुखी होता है और न भय से त्रस्त होता है।

शोक और भय : काम का परिणाम
कुमार अस्त्रीगन्ध की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अस्त्रीगन्ध श्रावस्ती के एक महाधनवान का पुत्र था। जन्म से ही उसमें एक आश्चर्यजनक आदत थी। वह स्त्रियों के निकट नहीं जाता था, क्योंकि वह स्त्री-गंध बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उसकी माता भी उसको कपड़े में लपेटकर दूध पिलाती थी। अतः उसका नाम अस्त्रीगन्ध कुमार पड़ गया। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसके माता-पिता ने उससे कहा, "पुत्र, हमलोग तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं; इस घर में एक बहू लाना चाहते हैं।" युवक के माता-पिता ने उस पर बहुत दबाव डाला तब उसने स्वर्णकारों को बुलाकर एक अति सुन्दर स्त्री की स्वर्ण-मूर्ति बनाने को कहा। स्वर्ण-मूर्ति बन गई तब उसने अपने माता-पिता से कहा; "अगर आप इस मूर्ति की तरह सुन्दर स्त्री ला सकते हों तो फिर मैं आपके आदेश का पालन कर सकता हूँ और उससे विवाह कर सकता हूँ।"

ऐसा कहकर उसने वह स्वर्ण-मूर्ति अपने माता-पिता को दे दी।

उसके माता-पिता ने पंडितों को बुलाकर उन्हें यह संदेश दिया, "अवश्य ही कोई लड़की होगी जो उसके योग्य होगी। इस स्वर्ण-मूर्ति को साथ लेकर जाओ और चारों दिशाओं में जाकर इस मूर्ति के समान खूबसूरत सुन्दरी को लेकर आओ।" वे उस युवती की तलाश में मद राज्य के सागल नगर में पहुँचे।

सागल नगर में एक अति सुन्दर षोडशी कन्या अपने माता-पिता के साथ रहती थी। ब्राह्मण पंडित उस मूर्ति को एक तालाब के बगल में रखकर विश्राम करने लगे। उस युवती की दासी उस तालाब के पास आई और जब उसने उस मूर्ति को देखा तो अपने आप से कहा, "मैंने सोचा था कि यह हमारी बेटी है; लेकिन देखें कि यह है क्या ? "पंडितों ने उससे पूछा, "स्त्री ! क्या तुम्हारी पुत्री इस मूर्ति की तरह सुन्दर लगती है ? " "यह मूर्ति हमारी बेटी की सुन्दरता के सामने कुछ नहीं है।" "ठीक है, तो फिर हमें अपनी पुत्री को दिखाइये।" वह दासी उन पंडितों को अपने स्वामी के आवास पर ले गई। लड़की के माता-पिता ने अपनी बेटी को बुला लिया और वह लड़की उस स्वर्ण-मूर्ति के बगल में आकर खड़ी हो गई। वह लड़की इतनी सुन्दर थी कि उसके सामने वह सुन्दर मूर्ति बिल्कुल साधारण प्रतीत होने लगी। पंडित जन ने लड़की के माता-पिता को वह मूर्ति भेंट में दे दी और उनसे विदा लेकर श्रावस्ती आ गए। उन्होंने अस्त्रीगन्धकुमार के माता-पिता को उस अति सुन्दर लड़की के विषय में बताया जिसे उन्होंने पसन्द किया था। कुमार के माता-पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने पंडितों से कहा, "तुरंत जाओ और यथाशीघ्र उस कन्या को लेकर आओ।" जब अस्त्रीगंधकुमार ने इस प्रस्ताव के विषय में सुना तब उसने भी कहा, "जल्दी से जल्दी उस तरुणी को लेकर आओ।" उस लड़की की प्रशंसा सुनकर उसको भी उस लड़की में आसक्ति हो गई थी। ब्राह्मण उस लड़की को लेकर श्रावस्ती चले। वह बहुत ही नाजुक थी, पहले किसी रथ में इतनी दूर नहीं गई थी। अतः उस रथ की यात्रा को बर्दाश्त नहीं कर पाई और मर गई। जब उसकी मृत्यु की सूचना अस्त्रीगंधकुमार को दी गई तो उसने कहा, "ऐसी सुन्दर स्त्री के साथ मिलना संभव नहीं हो पाया।" वह दुख के सागर में डूब गया।

उसी समय बुद्ध भिक्षाटन हेतु उसके गृहद्वार पर पहुँचे। उसके माता-पिता ने श्रद्धापूर्वक अंदर बुलाकर भोजन कराया। अनुमोदन के समय बुद्ध ने पूछा, "अस्त्रीगंधकुमार कहाँ है ? उसे बुलाओ।" कुमार को बुलाया गया। वह शास्ता को सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। तब तथागत ने पूछा, "कन्या नहीं मिली इसी कारण इतने दुखी हो ? " "हाँ भन्ते ! बहुत मुश्किल से एक अति सुन्दर स्त्री मिली थी। पर वह भी राह में आते समय मर गई। अब कुछ अच्छा नहीं लगता। शोक-समुद्र में छोड़ गई।" तथागत ने समझाया, "क्या तुम जानते हो कि तुम्हें इतना अधिक शोक क्यों हुआ है ? " "नहीं।" "यह काम के कारण उत्पन्न हुआ है। काम से ही शोक और भय उत्पन्न होता है।

गाथा: तण्हाय जायती सोको, तण्हाय जायती भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं।।216।।

अर्थः तृष्णा शोक की जननी है, वही भय को भी जन्म देती है। जो तृष्णा से परे है, उसे शोक नहीं हो सकता है, भय होने का प्रश्न ही कहाँ है ?

तृष्णा : दु:ख और भय का कारण
एक ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक अन्य सम्प्रदाय का अनुयायी ब्राह्मण रहता था। एक दिन नदी के तट पर अपने खेत में काम कर रहा था। बुद्ध उधर से गुजरे और उन्होंने उस किसान को देखा। उस ब्राह्मण किसान ने यद्यपि बुद्ध की ओर देखा पर उन्हें प्रणाम नहीं किया और चुपचाप अपने काम में लगा रहा। पहल करने वाले बुद्ध ही थे और उन्होंने कहा, "ब्राह्मण ! क्या कर रहे हो ?" "अपने खेत की सफाई कर रहा हूँ, भन्ते !" बुद्ध ने और कुछ नहीं कहा और अपनी राह चले गए। दूसरे दिन वह ब्राह्मण अपने खेत में हल चलाने गया। बुद्ध उसके निकट गए और पूछा, "ब्राह्मण क्या कर रहे हो ?" "हल चला रहा हूँ, भन्ते !" बुद्ध ने उसका उत्तर सुना और अपने रास्ते चले गए। इस प्रकार कई दिनों तक बुद्ध उस ब्राह्मण के पास गए और उससे वही प्रश्न किया। उत्तर पाकर कि "भन्ते ! मैं बीज बो रहा हूँ, मैं खर-पतवार निकाल रहा हूँ, मैं अपने खेत की रखवाली कर रहा हूँ " बुद्ध अपनी दिशा चले गए। एक दिन ब्राह्मण ने बुद्ध से कहा, "भन्ते ! आप मेरे पास तब से आ रहे हैं जब से मैंने खेत की सफाई शुरू की थी। अगर मेरी फसल अच्छी हुई तो मैं आपको भी उस फसल का हिस्सा दूँगा। मैं आपको दिये बिना सिर्फ अकेला नहीं खाऊँगा, आज के बाद आप भी मेरे इस फसल के हिस्सेदार हैं।" समय बीतता गया, फसल बढ़ती गई। एक दिन किसान ने अपने आप से कहा, "मेरी फसल पक गई है, कल किसानों को कटाई के लिए लगा दूँगा।" इस प्रकार उसने अगले दिन कटाई कराने का प्रबंध करा दिया, लेकिन उसी रात बड़ी तेज बारिश हुई, तूफान आया और सारी खड़ी फसल को बहा ले गया। देखने से ऐसा लगता था कि कोई खेती हुई ही नहीं है; खेत पूरी तरह साफ था यद्यपि बुद्ध को प्रथम दिन से ही पता था कि ब्राह्मण फसल नहीं काट पायेगा। अगले दिन जब ब्राह्मण ने पूरी फसल चौपट देखा, तो उसने अति दु:खी होकर अपने आप से कहा, "प्रथम दिन, जब मैंने खेत की सफाई की थी, तब से ही भिक्षु गौतम मेरे खेत पर आते रहे हैं और मैंने उन्हें कहा भी है, 'अगर मेरी खेती अच्छी होती है तो मैं इसका आपसे भी बँटवारा करूँगा। मैं आपको दिये बिना अकेला नहीं खाऊँगा। आज से आप मेरे भागीदार हैं' लेकिन मेरे हृदय की कामना पूरी नहीं हो पाई ।" ऐसा सोचकर उसने भोजन त्याग दिया और बिस्तर पर जा गिरा। उधर बुद्ध प्रात:काल भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। वे उसके दरवाजे पर रूके। जब ब्राह्मण ने सुना कि बुद्ध आये हैं, तब उसने कहा, "मेरे हिस्सेदार को बुला लाओ और उन्हें मेरे पास यहाँ बैठने के लिए आसन दो।" उसके नौकरों ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। जब बुद्ध उसके पास आकर आसन पर विराजमान हो गए तब उन्होंने पूछा, "ब्राह्मण, क्या बात है ?" "भन्ते ! आप प्रथम दिवस से ही मेरे खेत पर आते रहे हैं जब से मैंने उसकी सफाई की थी और मैंने आपसे कहा था, 'यदि मेरी फसल अच्छी हुई तो इसे आपके साथ बाँटकर खाऊँगा' लेकिन मेरे हृदय की इच्छा पूरी नहीं हो पाई । इसलिए मेरे ऊपर दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा है और कुछ भी अच्छा नहीं लगता है; भूख मर गई है।" तब बुद्ध ने उससे कहा, "लेकिन, ब्राह्मण ! क्या तुम्हें इस दु:ख का कारण मालूम है कि तुम क्यों दु:खी हो ?" "नहीं भन्ते, मुझे नहीं पता है, लेकिन आपको पता है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हाँ, ब्राह्मण ! जब कभी दु:ख या भय की उत्पत्ति होती है, वह मात्र तृष्णा से उत्पन्न होती है।"

टिप्पणी : चार आर्य सत्य में भी दु:ख के कारण का विश्लेषण करते हुए बुद्ध बताते हैं कि तृष्णा ही सभी दु:खों का कारण है।

गाथा: सीलदस्सनसंपन्नं, धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्म कुब्बानं, तं जनो कुरुते पियं।।217।।

अर्थ: जो भिक्षु शील-सदाचार एवं दर्शनज्ञान से युक्त है, धर्माचरण करता है, सत्यवक्ता है, अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग है ऐसे व्यक्ति से सबों को प्रेम हो जाता है।

धर्मस्थ सबों को प्रिय होता है
पाँच सौ बालकों की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

किसी त्यौहार के दिन बुद्ध अपने आठ वरिष्ठ भिक्षु एवं भिक्षुसंघ के साथ जब राजगृह में प्रवेश कर रहे थे तब उन्होंने पाँच सौ लड़कों को मालपूओं की टोकरी लेकर बागीचे की ओर जाते हुए देखा। जब उन्होंने बुद्ध को देखा तो उन्हें सादर प्रणाम किया पर किसी भी भिक्षु से मालपूआ खाने का आग्रह नहीं किया और अपने रास्ते पर चले गए। जब वे चले गए तब बुद्ध ने भिक्षुओं से प्रश्न किया, "भिक्षुगण, क्या तुमलोग मालपूआ खाना नहीं चाहोगे ?" "भन्ते, मालपूए हैं कहाँ ?" "उन लड़कों को अपने सिर पर मालपूओं की टोकरी ले जाते हुए नहीं देख रहे हो ?" "भन्ते, इस प्रकार के युवक किसी को भी मालपूए नहीं देते हैं।" "शिष्यों, यद्यपि इन बालकों ने तुमलोगों को या मुझे पूए खाने के लिए आमंत्रित नहीं किया है, लेकिन इन मालपूओं का स्वामी, एक भिक्षु, इनके पीछे-पीछे आ रहा है। तुमलोग जाने से पूर्व कुछ पूए तो खा लो।"

बुद्ध या भिक्षुगण किसी भी व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना या घृणा नहीं रखते। इस कारण बुद्ध ने उपरोक्त बात कही। ऐसा कहकर बुद्ध अन्य भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

जब युवकों ने भन्ते महाकाश्यप को अपने पीछे-पीछे आते हुए देखा तो तुरंत उनके पास जाकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। वे सभी उनको देखकर अति प्रसन्न थे। उन्होंने तुरंत मालपूओं की टोकरियों को जमीन पर रख दिया और उनसे आग्रह किया, "भन्ते ! कुछ मालपूए ग्रहण करें।" तब उनको उत्तर देते हुए महाकाश्यप ने कहा, "वहाँ सामने बुद्ध अपने भिक्षुसंघ के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। अपने मालपूओं की टोकरी ले जाओ और उन्हें समर्पित करो।" "जो आज्ञा, भन्ते", युवकों ने उत्तर दिया। उन्होंने उनकी आज्ञा का पालन किया, महाकाश्यप के साथ जाकर उन भिक्षुओं में मालपूए बाँटकर एक तरफ खड़े हो गए। जब भिक्षुओं ने मालपूए खा लिए तब उन्हें पीने का पानी दिया और उनका हाथ भी धुला दिया।

बालकों के इस प्रकार के आचरण से कुछ भिक्षु नाराज हो गए और कहा, "इन युवकों ने दान देने में पक्षपात किया है; उन्होंने न तो बुद्ध से और न अन्य भिक्षुओं से मालपूए खाने के लिए पूछा। जब उन्होंने महाकाश्यप को देखा तो उनके ही पास चले गए और उन्हें मालपूए खाने के लिए आग्रह किया।"

बुद्ध ने उनकी बात सुनकर कहा, "भिक्षुओं ! मेरे पुत्र महाकाश्यप के समान भिक्षु सबों को प्रिय होता है। मनुष्य और देवतागण दोनों ही उसमें श्रद्धा रखते हैं। इसीलिए वे उसकी चारों प्रत्ययों से पूजा करते हैं।"

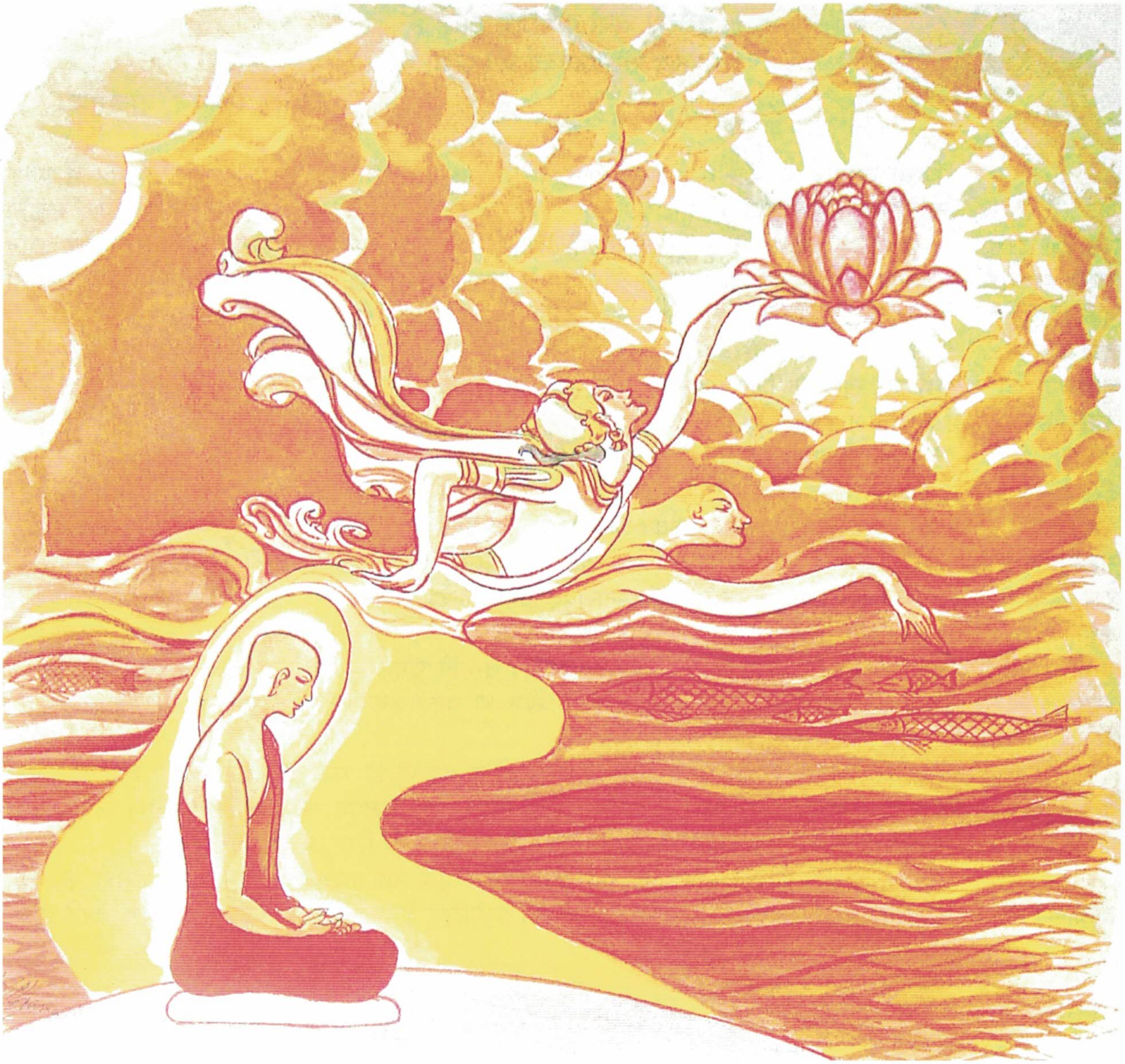

गाथा: छन्दजातो अनक्खाते, मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो, उद्धंसोतो ति वुच्चति।।218।।

अर्थ: जिसके अन्दर निर्वाण प्राप्त करने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो गई है और जो उसी के लिए प्रयत्नशील है तथा कामनाओं से मुक्त हो चुका है, उसे ही उर्ध्वस्त्रोत कहा जाता है।

उर्ध्वगामी पुरुष के गुण
अनागामी भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा बुद्ध ने एक अनागामी भिक्षु के संदर्भ में कही थी। एक दिन एक स्थविर से अन्य भिक्षुओं ने पूछा, "भन्ते ! क्या आपने दूसरों की तुलना में कोई अतिरिक्त फल प्राप्त किया है ?" यद्यपि स्थविर ने मार्ग के तृतीय सोपान, अनागामी फल को प्राप्त कर लिया था फिर भी उसे लगा कि यह उपलब्धि भी कोई उपलब्धि है क्या ? "अनागामी फल तो गृहस्थ भी प्राप्त कर लेते हैं; तब मेरी क्या उपलब्धि है ? अर्हत्व प्राप्त करने के बाद अपने विषय में बताऊँ तो फिर कोई बात हुई !" ऐसा सोचकर वह स्थविर चुप रहा। इस प्रकार लज्जावश वह स्थविर अपने बारे में कुछ नहीं बता सका। उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय वह अर्हत्व प्राप्त नहीं कर सका ।

उस स्थविर के शिष्यगण उसकी मृत्यु से बहुत दुःखी हुए। उन्हें लगा कि उनके उपाध्याय ने बिना किसी उपलब्धि के ही संसार से आँखें मूँद ली हैं। वे रूदन-क्रंदन करते हुए शास्ता को प्रणाम कर एक तरफ शांति से बैठ गए।

तब शास्ता ने उनसे उनके रूदन का कारण पूछा। "हमारे उपाध्याय का निधन हो गया।" "यह बात सुनिश्चित मान लो कि शरीरधारी का निधन होगा ही, जो आया है, वह जायेगा ही। तब तुम उस पर शोक क्यों कर रहे हो ?" "हम उनके निधन के ऊपर शोक नहीं कर रहे हैं। शरीर त्यागने से पूर्व हमारे उपाध्याय ने हमें नहीं बताया कि उन्होंने इस जन्म में कोई विशिष्ट उपलब्धि हासिल की या नहीं। इस बात को बताये बिना ही वे दुनियाँ से चले गए, हमें इसी बात का दुःख है। कृपया हमें बताइए कि उनका पुर्नजन्म कहाँ हुआ है ?"

तब बुद्ध ने वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा, "भिक्षुओं ! तुम्हारे गुरू पहले ही अनागामी फल प्राप्त कर चुके थे। देहपात के बाद उनका जन्म शुद्धावास देवलोक में हुआ है। उन्होंने अनागामी फल प्राप्त कर लिया था पर लज्जावश यह सोचकर कि अभी तक मात्र इतना ही प्राप्त किया था, अनागामी की उपलब्धि बता नहीं पाए। मृत्यु के समय तक वह अर्हत्व प्राप्त करने के लिए यथासंभव प्रयत्न कर रहे थे। तुम्हारे शिक्षक अब कामलोक के इन्द्रियजनित आसक्तियों से मुक्त हो गए हैं।"

गाथा: चिरप्पवासिं पुरिसं, दूरतो सोत्थिमागतं।।
ञातिमित्ता सुहज्जा च, अभिनन्दन्ति आगतं।।219।।

अर्थ: जैसे दूर से बहुत दिनों के बाद सकुशल आने वाले प्रवासी व्यक्ति का उसके सम्बन्धी एवं मित्र स्वागत करते हैं।

आपके सत्कर्म आपका स्वागत करते हैं
नन्दिय की कथा

स्थान : ऋषिपत्तन, सारनाथ

यह गाथा बुद्ध ने ऋषिपत्तन (सारनाथ, वाराणसी) में नन्दिय कुलपुत्र के सम्बन्ध में कही थी।

बनारस में नन्दिय नाम का एक युवक रहता था। वह एक श्रद्धावान माता-पिता का होनहार पुत्र था। वह धर्म में आस्था रखने वाला, आज्ञाकारी और संघ का उपासक था। उसके तरुणावस्था में पहुँचने पर उसके माता-पिता ने सोचा कि उसका विवाह उसके मामा की लड़की रेवती से कर दिया जाये जो उनके घर के ठीक सामने ही रहती थी। लेकिन रेवती को बुद्धसंघ में कोई श्रद्धा नहीं थी और न ही उसे दान आदि पुण्य कर्म करने में कोई रुचि थी। इसलिए नन्दिय उससे शादी नहीं करना चाहता था। अतः नन्दिय की माँ ने रेवती को समझाया, "प्यारी बेटी, घर की सफाई अच्छी तरह करो, विशेषकर वह स्थल जहाँ भिक्षु आकर बैठेंगे, उसे गोबर से अच्छी तरह लीप दो, भिक्षुओं के बैठने के लिए आसन लगा दो, सभी चीजों को सुव्यवस्थित रख दो, और जब भिक्षुगण पधारें, उनका पात्र ले लो, उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करो और उनके जल-पात्र में जल दे दो। जब वे भोजन कर लें तब उनके पात्र को धो डालो। अगर तुम ऐसा करोगी तो मेरा पुत्र तुमसे प्रसन्न हो जाएगा और विवाह करने के लिए राजी हो जाएगा।" रेवती ने वैसा ही किया जैसा नन्दिय की माँ ने बताया था। तब नन्दिय की माँ ने नन्दिय को बताया, "रेवती अब एक बहुत ही धैर्यवान लड़की हो गई है, जिसे बौद्ध-संघ में श्रद्धा है।" तब नन्दिय ने शादी की स्वीकृति दे दी, शादी की तारीख तय की गई और उनका विवाह सम्पन्न हो गया। नन्दिय ने अपनी पत्नी से कहा, "अगर तुम निःस्वार्थ भाव से भिक्षु-संघ एवं मेरे माता-पिता की सेवा करोगी तो इस शर्त पर तुम मेरे साथ रह सकोगी; अतः तुम सजग रहना।" "जो आज्ञा", रेवती ने कहा और ऐसा ही करने का आश्वासन दिया। कुछ ही दिनों में वह भिक्षु संघ की सच्ची साधिका की तरह काम करने लगी। उसे बुद्ध में भी पूर्ण श्रद्धा हो गई। वह पूर्ण आज्ञाकारिणी की तरह पति की सेवा करती थी और भिक्षु संघ के प्रति अपने कर्त्तव्यों का अनुपालन करती थी। उसने समय के अंतराल में दो पुत्रों को जन्म दिया। जब नन्दिय के माता-पिता का देहावसान हो गया तब वह पूरे घर की गृहस्वामिनी बन गई। माता-पिता की मृत्यु पर नन्दिय को अपार धन की प्राप्ति हुई। उसने उस धन से भिक्षुओं के लिए नियमित रूप से भिक्षा-दान की व्यवस्था करा दी। अपने घर के सामने भी गरीब लोगों एवं मुसाफिरों के लिए मुफ्त भोजनशाला का प्रबंध कर दिया। कुछ समय बाद, बुद्ध के धर्म-प्रवचन को सुनकर उसने महसूस किया कि बुद्ध और भिक्षुसंघ की सेवा से उसे बहुत लाभ होगा। अतः उसने एक आवासीय भवन बनाकर भिक्षु संघ को समर्पित करने का मन बनाया। उसने इसे ऋषिपत्तन (सारनाथ, वाराणसी) के विहार के पास ही बनवाया। उसमें चारपाई और बिस्तर लगा कर इस आवासीय प्रांगण को बुद्ध और उनके भिक्षुसंघ को समर्पित कर दिया। उस धर्म-सभा में उसने बुद्ध और भिक्षु-संघ को दान दिये। बुद्ध के दाहिने हाथ पर दान रूपी जल गिराते हुए आवासीय भवन का दान कर दिया। जैसे ही उसने बुद्ध को दक्षिणोदक दिया, त्रायस्त्रिंश दिव्य लोक में, चारों तरफ बारह योजन में फैला हुआ एक विशाल भव्य प्रासाद खड़ा हो गया। विभिन्न प्रकार के रत्नजड़ित यह प्रासाद बहुत ही सुन्दर था।

गाथा: तथेव कतपुञ्ञं पि, अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति, पियं ञाती व आगतं।।220।।

अर्थ: उसी प्रकार इस लोक से परलोक गए पुरुष का भी उसके पुण्य कर्म, चिर परिचित भाई के समान, स्वागत करते हैं।

सद्पुरुष का सदैव स्वागत होगा
नन्दिय की कथा

एक दिन स्थविर महामोग्गलान चारिका हेतु देव लोक पधारे। वे उस महल के निकट रुक गए। उनके समीप कुछ देवपुत्र आए तो उनसे पूछा, "यह अप्सराओं से युक्त महल किसके आवास के लिए बना है ? "वे उस महल के स्वामी के बारे में बताने लगे, "भन्ते ! जिस नन्दिय उपासक ने ऋषिपत्तन में बुद्ध के लिए विहार बनाकर उसका दान किया है, उसी पुण्य प्रताप से यह प्रासाद उसी के लिए बना है।" उस प्रासाद में रहने वाली अप्सराएं भी उतर आईं और शास्ता से कहा, "नन्दिय के आने पर हम उनकी सेवा करेंगी। इसी कारण हम सबों की उत्पत्ति हुई है। पर हम उन्हें देख नहीं पा रहे हैं। हमें उन्हें देखने की चाह है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मिट्टी के पात्र को छोड़कर स्वर्णपात्र प्राप्त करने की कामना करता है उसी प्रकार उन्हें पृथ्वी लोक छोड़कर देवलोक आ जाना चाहिए। हमें पता नहीं कि वे यहाँ कब आयेंगे ? कृपया उन्हें यहाँ आने के लिए कहिए।" स्थविर देवलोक से लौटने के बाद शाक्य-मुनि के पास गए और उन्हें प्रणाम कर प्रश्न कर दिया, " भन्ते ! क्या ऐसा भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति के लिए जो जीवलोक में पुण्यकार्यों कर रहा है, उसके शरीर-त्याग से पूर्व ही उसके लिए दिव्य सम्पत्ति का निर्माण हो जाए।" तब बुद्ध ने मोग्गलान से पूछा, "तुमने तो अभी-अभी देवलोक जाकर नन्दिय के लिए बनाई गई सम्पत्ति को खुद अपनी आँखों से देखा है, फिर तुम मुझसे यह प्रश्न क्यों कर रहे हो ?" "क्या भन्ते ! सचमुच पहले से ही ऐसी सम्पत्ति का सृजन हो सकता है ? "

तब तथागत ने पुनः उत्तर दिया, "मोग्गलान ! तुम ऐसी बात क्यों कर रहे हो ? जैसे इस संसार में कोई व्यक्ति गाँव की सीमा पर अपने किसी चिर परिचित भाई या पुत्र को बहुत दिनों के बाद गाँव वापस आता हुआ देखता है तो वह तुरंत गाँव में दौड़ता हुआ जाता है तथा रास्ते भर कहता जाता है 'अमुक व्यक्ति आया है' और गाँव वाले अति प्रसन्न होकर उससे मिलने के लिए घर से निकल कर रास्ते में ही उस व्यक्ति से मिलकर कहने लगते हैं, 'घर आ गए पुत्र ! ठीक से हो न ?' और उसका स्वागत करने लगते हैं। उसी प्रकार जो पुरुष या स्त्री इस लोक में पुण्य कर्म करते हैं, उनके शरीर त्याग कर देवलोक जाने पर देवतागणों में आपस में होड़ लग जाती है कि कौन उस पुरुष या स्त्री के पास पहले जाए और अपने साथ लाए उपहार उन्हें भेंट कर सके।"

इस प्रकार स्पष्ट करते हुए बुद्ध ने ये दो गाथायें कहीं।

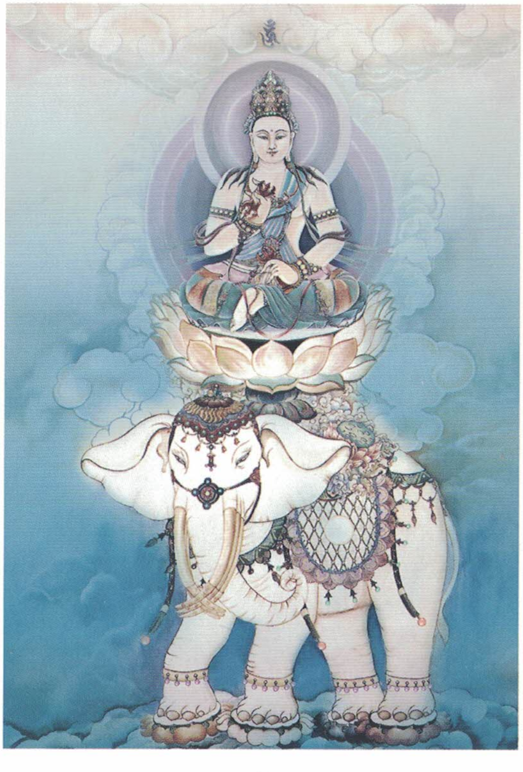

DHAMMAPADA

PIYA VAGGA

क्रोध का अभिशाप

धम्मपद

क्रोध वर्ग

गाथा और कथा

क्रोध का अभिशाप

धम्मपद

क्रोध वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

क्रोध वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	रोहिणी की कथा	221	क्रोध और अहंकार छोड़ो	69
2.	एक भिक्षु की कथा	222	क्रोध मार्ग से बचकर चलें	71
3.	उपासिका उत्तरा की कथा	223	सच्चा विजयी कौन है ?	73
4.	महामोग्गलान के प्रश्नों की कथा	224	स्वर्ग जाने के तीन रास्ते	75
5.	ब्राह्मण की कथा जो पूर्व जन्म में बुद्ध के पिता थे	225	अमृत पथ पर कौन जायेगा ?	77
6.	पूर्णा दासी की कथा	226	अमृत पथ पर सतत् जाग्रत रहें	79
7.	उपासक अतुल की कथा	227	निंदा रहित पुरुष कहाँ मिलेगा ?	81
8.	उपासक अतुल की कथा	228	न था, न है, न होगा : मात्र निंदनीय या मात्र प्रशंसनीय	83
9.	उपासक अतुल की कथा	229	लोग कसौटी पर परख कर ही प्रशंसा करते हैं	85
10.	उपासक अतुल की कथा	230	देवतागण किसकी प्रशंसा करते हैं ?	87
11.	षड्भिक्षुओं की कथा	231	शरीर से सुकर्म करें	89
12.	षड्भिक्षुओं की कथा	232	वाणी से सुकर्म करें	91
13.	षड्भिक्षुओं की कथा	233	मन से सुकर्म करें	93
14.	षड्भिक्षुओं की कथा	234	सही शिक्षण : मन, वचन,कर्म का शिक्षण	95

गाथा: कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नामरूपस्मिं असज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ।।221।।

अर्थ: क्रोध छोड़ देना चाहिए। झूठ के अभिमान से दूर रहना चाहिए। सभी बन्धनों से मुक्त होकर आगे बढ़ते जाना चाहिए। जो नाम-रूप में आसक्त नहीं है उसे दुख नहीं होगा।

क्रोध और अहंकार छोड़ो
रोहिणी की कथा

स्थान : निग्गोधाराम

एक बार स्थविर अनुरूद्ध अन्य भिक्षुओं के साथ कपिलवस्तु पधारे। वहाँ उनके सभी सम्बन्धी उनसे मिलने आए पर उनकी बहन रोहिणी मिलने नहीं आई। उन्होंने बहन के नहीं आने का कारण पूछा तो लोगों ने बताया कि उसे कोढ़ हो गया है और इस लज्जा के कारण वह अपने भ्राताश्री से मिलने नहीं आई। स्थविर ने उसे बुला भेजा तो वह चेहरा ढक कर आई। तब स्थविर अनुरूद्ध ने उससे न आने का कारण पूछा। "मुझे चर्म रोग हो गया है। इसी लज्जा से मैं आपके सामने नहीं आ पाई," रोहिणी ने कहा। तब आयुष्मान अनुरूद्ध ने पूछा, "तू कुछ पुण्य का कार्य नहीं कर सकती है ?" रोहिणी ने पूछा, "मैं क्या करूँ भन्ते ?" "तू भिक्षुओं के निवास के लिए एक आसनशाला बनवा दे" "धन कहाँ से मिलेगा ?" "तेरे पास जो आभूषण हैं उन्हें बेच दे और उससे आसनशाला बनवा दे," "मेरी सहायता कौन करेगा ?" तब स्थविर ने अपने रिश्तेदारों की ओर देखते हुए कहा, "आपलोग रोहिणी की मदद करेंगे। मैं भी निर्माण होने तक यहीं रहूँगा।" स्थविर अनुरूद्ध ने अपनी बहन को यह भी सलाह दी कि जब तक भवन का निर्माण नहीं होता है तब तक तुम भिक्षुओं की सेवा करती रहो। रोहिणी ने अपने भ्राताश्री की आज्ञा मान ली। अपने आभूषण बेच दिये और उस पैसे से दो मंजिला आसनशाला बनवा दिया और उसकी साफ-सफाई कराकर, भिक्षुओं के रहने की व्यवस्था कर दी। भिक्षुगण वहाँ आकर रहने लगे।

इस पुण्यकर्म के फलस्वरूप रोहिणी के शरीर का चर्म रोग ठीक हो गया। तदुपरान्त उसने शास्ता और उनके भिक्षुसंघ को भोजन दान के लिए आमंत्रित किया। भोजनोपरान्त शाक्यमुनि ने अपने शिष्यों से पूछा कि यह दान किसका है। तब स्थविर अनुरूद्ध ने बताया कि यह दान उनकी बहन रोहिणी का है। बुद्ध ने पूछा, "वह कहाँ है ?" "वह घर पर ही है" "उसे बुला लो।" "वह आना नहीं चाहती है" "फिर भी उसे बुला लो।" शास्ता के आदेश पर रोहिणी आई। शाक्य मुनि ने उससे पूछा कि वह क्यों नहीं आ रही थी। उसने उत्तर दिया कि वह चर्मरोग से बुरी तरह पीड़ित है और इसी लज्जा के कारण नहीं आ रही थी। तब शास्ता ने उससे पूछा, "क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हें यह चर्मरोग क्यों हुआ" "नहीं श्रीमान्।" "तो फिर अपने भूतकाल को सुनो।"

प्राचीन काल में रोहिणी वाराणसी के एक राजा की पटरानी थी। राजा एक नर्तकी से बहुत प्रसन्न रहा करता था और पटरानी यह देखकर बहुत जलती थी। अतः उसने राजनर्तकी से बदला लेने की योजना बनाई। उसने एक अति तीव्र खुजली उत्पन्न करने वाले पदार्थ को उस नर्तकी के बिस्तर पर बिखेर दिया और फिर उसे बुलाकर उसके शरीर पर भी छींट दिया। वह खुजली से बुरी तरह त्रस्त हो गई और आराम के लिए अपनी शय्या की ओर दौड़ी। पर वहाँ बिस्तर पर लेटते ही वह और अधिक पीड़ा से तड़प उठी।

शास्ता ने उसके अतीत को समझाते हुए कहा, "ईर्ष्या और क्रोध के कारण इस जन्म में तुम कुष्ठरोग से पीड़ित हुई। जीवन में अल्पमात्र भी ईर्ष्या, जलन या क्रोध करना उचित नहीं है।"

गाथा: यो वे उप्पतितं कोधं, रथं भन्तं व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहोतरो जनो ।।222।।

अर्थ: जो क्रोध को भागते हुए रथ की तरह रोक लेता है उसे ही मैं सारथि कहता हूँ। अन्य तो मात्र लगाम पकड़ने वाले हैं।

क्रोध मार्ग से बचकर चलें
एक भिक्षु की कथा

स्थान : अग्गालव चेतिये

एक बार आलवी नगर में वास करते समय बुद्ध ने यह गाथा कही थी।

जब बुद्ध ने भिक्षुओं को स्वतंत्रता दे दी कि वे विहार के बाहर जाकर अपने आवास की व्यवस्था कर सकते हैं तब आलवी के एक भिक्षु ने अपने लिए आवास की व्यवस्था करने की सोची। अतः उसने एक हरा-भरा सुंदर वृक्ष देखकर उसे काटने की योजना बनाई। जब उसने वृक्ष को काटना शुरू किया तो उस वृक्ष में रहने वाली देवी अपने पुत्र के साथ आई और भिक्षु से प्रार्थना करने लगी कि उस वृक्ष को न काटे। उसके पास रहने के लिए कोई अन्य स्थान नहीं था और यह वृक्ष ही उसका एक मात्र सहारा था। पर भिक्षु ने उसके आग्रह की अनसुनी कर दी और वृक्ष को काटता ही रहा। तब देवी ने सोचा कि अपने पुत्र को सामने रख देती हूँ। संभव है बच्चे को देखकर भिक्षु के हृदय में दयाभाव आ जाए और वह वृक्ष काटना त्याग दे।

अतः देवी ने अपने पुत्र को वृक्ष की एक डाल पर बिठा दिया। इधर भिक्षु ने अपनी कुल्हाड़ी चला दी थी जिसे वह रोक न सका और इस कारण उस बालक का हाथ ही कट गया। वृक्ष देवी के क्रोध की सीमा न रही। उसने प्रतिशोध में भिक्षु की हत्या करने की सोची। पर उसी समय उसके मन में यह सुविचार आया कि यह भिक्षु धर्मनिष्ठ है तथा शील का पालन करता है। अगर मैंने इसकी हत्या कर दी तो निश्चय ही मैं नरक में जाऊँगी और दूसरे वृक्ष देवी-देवता भी मेरा उदाहरण दे अन्य भिक्षुओं की हत्या कर सकते हैं। साथ ही "इस भिक्षु का शास्ता अवश्य कोई होगा" यह सोचकर उसने भिक्षु के प्राण नहीं लिए और रोती-बिलखती अपने पुत्र को साथ लेकर वहाँ पहुँच गई जहाँ बुद्ध धर्म-चर्या कर रहे थे। शास्ता को प्रणाम कर वह एक तरफ बैठ गई। शास्ता ने उसके बारे में पूछा तो उसने सविस्तार अपनी कहानी सुनाई। साथ ही उसने यह भी विस्तार से बता दिया कि किस प्रकार भिक्षु के प्रति उसके मन में अपार क्रोध आ गया था पर उसने अपने क्रोध पर संयम कर लिया था।

बुद्ध उस देवी से बहुत प्रसन्न हुए तथा उसे साधुवाद दिया कि क्रोध न करके उसने सर्वोच्च कर्म किया है। जो व्यक्ति इस प्रकार क्रोध को रोक लेता है वही सच्चा सारथी कहलाता है मानो उसने भटके हुए रथ को काबू में कर लिया हो। अन्य सारथी नहीं कहे जा सकते, वे तो मानों रथ के मात्र रज्जु को पकड़े हुए हों।

गाथा: अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालीकवादिनं ।।223।।

अर्थ: साधक को चाहिए कि क्रोध को अक्रोध से, असाधु को सदव्यवहार से, कंजूस को दान से तथा असत्यभाषी को सत्यभाषण से जीते।

सच्चा विजयी कौन है ?
उपासिका उत्तरा की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

उत्तरा, पूर्ण नाम के एक किसान की पुत्री थी। एक दिन पूर्ण और उसकी पत्नी ने भन्ते सारिपुत्र को भोजन दान दिया जो गहरी समाधि से उठे थे। इस पुण्य कर्म से वे अचानक बहुत ही धनवान हो गए। पूर्ण को अपने खेत में बहुत सारा सोना मिला और राजा ने उसे सार्वजनिक रूप से "बहुधनश्रेष्ठी" घोषित कर दिया। एक बार पूर्ण और उसके परिवार ने सात दिनों तक बुद्ध और भिक्षुसंघ को भोजन दान दिया और सातवें दिन बुद्ध के धर्म-प्रवचन को सुनकर परिवार के तीनों सदस्य स्रोतापति प्राप्त कर गए। बाद में उत्तरा का विवाह एक धनी व्यक्ति सुमन के पुत्र से कर दिया गया। वह परिवार बुद्ध का उपासक नहीं था, उत्तरा वहाँ खुश नहीं रहती थी। अतः उसने अपने पिता को संदेश भेजा, "आपने मुझे इस कारागार में क्यों डाल दिया है ? यहाँ किसी भिक्षु के दर्शन नहीं होते हैं और न ही किसी भिक्षु को मैं कोई दान कर पाती हूँ।" उसके पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने उत्तरा के पास पन्द्रह हजार कार्षापण भेजा। इस पैसे से, अपने पति की आज्ञा लेकर, उत्तरा ने एक अति सुन्दर राज नर्तकी को, अपने पति की सेवा-सुश्रुषा के लिए नियुक्त कर दिया। इस प्रकार यह तय हुआ कि वह राज नर्तकी, सिरिमा, उत्तरा की जगह पत्नी के रूप में रहेगी।

इस अवधि में उत्तरा ने बुद्ध और उनके भिक्षु संघ को भोजन दान दिया। पन्द्रहवें दिन जब वह रसोईघर में भोजन बना रही थी, उसका शरीर पसीने से तर-बतर तथा गंदा हो गया था, तब उसके पति ने उसे अपने शयन-कक्ष की खिड़की से देखा और मुस्कुरा दिया। वह अपने आप से कहने लगा, "यह कितनी मूर्ख है ! जीवन का आनन्द कैसे लिया जाता है यह भी नहीं जानती है। केवल भिक्षुओं को दान देने में ही व्यस्त रहती है। सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा और यह भूल गई कि वह उत्तरा की जगह रखैल है। उसके अन्दर प्रबल ईर्ष्या की ज्वाला उठ गई और वह अपने आप को रोक नहीं सकी। वह रसोई घर में गई और एक कलछुल उबलते हुए घी को लेकर उत्तरा के शरीर पर डालने के उद्देश्य से बढ़ी। उत्तरा ने उसे आते हुए देखा, पर उसने अपने अन्दर सिरिमा के प्रति विद्वेष उठने नहीं दिया। उसने चिंतन किया कि सिरिमा के कारण ही वह पन्द्रह दिनों तक शास्ता के प्रवचन सुन सकी थी तथा भोजन-दान एवं अन्य पुण्य कर्म कर सकी थी। इसलिए वह सिरिमा के प्रति पूर्णतः कृतज्ञता के भाव से भरी हुई थी। सिरिमा उसके बहुत ही निकट आ गई थी और उसके शरीर पर घी डालने जा रही थी तब उत्तरा ने अपने आप से कहा, "अगर मेरे हृदय में सिरिमा के प्रति जरा भी विद्वेष हो तो यह खौलता हुआ घी मेरे शरीर को जला दे और अगर मेरे हृदय में उसके प्रति तनिक भी बुरी भावना न हो तो यह घी मुझे नहीं जलावे।" खौलते हुए घी से उसका शरीर तनिक भी नहीं जला।

तब सिरिमा ने सोचा कि संभवतः घी ठंढ़ा हो गया था। अतः वह दोबारा गर्म घी लाने जा रही थी कि उत्तरा के दासियों ने उसे पकड़ लिया और उसे मारने-पीटने लगीं। उत्तरा ने सिरिमा को उनसे बचाया और उसके शरीर पर औषधि लगा, मालिश कर, स्नान कराकर उसका उपचार कराया।

सिरिमा को अपनी गलती का भान हुआ और वह उत्तरा के चरणों पर गिर क्षमा-प्रार्थना करने लगी। उत्तरा ने उससे कहा, "तुम मेरे पिता से क्षमा माँगो" सिरिमा पूर्ण से क्षमा माँगने जाने लगी तब उत्तरा ने कहा, "पूर्ण तो मात्र शरीर देने वाले पिता हैं। जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कराने वाले पिता तो बुद्ध हैं।" तब उत्तरा के सुझाव के अनुसार सिरिमा ने बुद्ध और भिक्षु संघ के लिए भोजन तैयार किया और दूसरे दिन उचित भेंट देकर एक तरफ बैठ गई। भोजनोपरान्त सिरिमा बुद्ध के चरणों में गिर गई। बुद्ध ने उत्तरा तथा सिरिमा के बीच का वृत्तांत सुना। सिरिमा ने अपना संपूर्ण दोष स्वीकार करते हुए बुद्ध से प्रार्थना की कि वे क्षमा-दान दें अन्यथा उत्तरा उसे माफ नहीं करेगी। तब शास्ता ने उत्तरा से पूछा कि जब सिरिमा उसके शरीर पर गर्म घी डाल रही थी तब उसे किस प्रकार की अनुभूति हो रही थी। उत्तरा ने उत्तर दिया, "भन्ते ! मैं सिरिमा के प्रति कृतज्ञता से इतनी दबी हुई थी कि मैंने निश्चय कर लिया था कि अपना संयम नहीं खोऊँगी, उस पर क्रोध नहीं करूँगी और न ही उसके प्रति अपने अन्दर दुर्भावना आने दूँगी। मैंने उसके प्रति पूर्णतः प्रेम, दया, करुणा तथा मैत्री का भाव रखा।" बुद्ध ने कहा, " अति सुन्दर ! अति सुन्दर !! साधुवाद ! साधुवाद !! उसके प्रति दुर्भावना रोककर तुमने उस पर विजय प्राप्त कर लिया है जिसने तुमसे घृणा करते हुए तुम्हें हानि पहुँचायी थी। असत्यभाषी को सत्यवचन द्वारा तथा कंजूस को दान के द्वारा जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।"

गाथा: सच्चं भणे न कुज्झेय्य, दज्जाप्पस्मिं पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि, गच्छे देवान सन्तिके ।।224।।

अर्थ: सदा सत्य बोलना, क्रोध न करना, किसी सत्पात्र को अल्प अंश दान देना- ये तीनों देवलोक की ओर ले जाते हैं।

स्वर्ग जाने के तीन रास्ते
महामोग्गलान के प्रश्नों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह गाथा बुद्ध ने महामोग्गलान के प्रश्नों के उत्तर में कही थी।

एक बार स्थविर महामोग्गलान देवलोक गए और वहाँ अनेक देवों को सुन्दर-सुन्दर प्रासादों में रहते हुए देखा। उन्होंने देवों से प्रश्न किया कि किन पुण्य कारणों से उन्होंने देव-लोक में जन्म लिया था। सभी देव-देवियों ने उन्हें भिन्न-भिन्न उत्तर दिए। उनमें से एक का देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं हुआ था कि उसने बहुत दान-पुण्य किया था या बुद्ध के धर्म का श्रवण किया था; अपितु इसलिए कि उसने सदैव सच बोला था। दूसरी एक देवी थी। उसका देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए हुआ था कि अपने पूर्व जन्म में जब वह एक दासी थी, अपने स्वामी के प्रति कभी क्रोध नहीं आने देती थी यद्यपि उसका स्वामी उसे अक्सर पीटा करता था तथा गाली दिया करता था। घृणा भावना त्यागने के कारण उसका देवलोक में पुनर्जन्म हुआ था। उस देव लोक में अन्य देवी-देवता ऐसे भी थे जिन्होंने पुण्य का अल्प मात्र कार्य किया था जैसे किसी भिक्षु को चूसने के लिए गन्ना दिया था, एक फल या कोई सब्जी दान में दी थी। फिर भी उन्होंने देव लोक में जन्म लिया था।

देव लोक से लौटने के बाद स्थविर महामोग्गलान बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि क्या मात्र सत्य वचन का पालन करने से, क्रोध न करने से या फल या सब्जी का अल्पमात्र सा दान देने से कोई देव लोक जा सकता है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर देते हुए समझाया,"पुत्र ! तुम यह प्रश्न क्यों कर रहे हो ? क्या तुमने स्वयं अपनी आँखों से नहीं देखा है या अपने कानों से देवताओं का कथन नहीं सुना है ? तुम्हें कोई शंका नहीं होनी चाहिए। पुण्य के छोटे-छोटे कार्य भी देवलोक को ले जाते हैं।" तब बुद्ध ने यह गाथा कही।

गाथा: अहिंसका ये मुनयो, निच्चं कायेन संवुता ।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचरे ।।225।।

अर्थ: शरीर से सदैव संयमित जीवन व्यतीत करने वाले अहिंसाव्रतधारी साधक वीतरागी हो जाते हैं और उनका आवागमन समाप्त हो जाता है।

अमृत पथ पर कौन जायेगा ?
ब्राह्मण की कथा जो पूर्व जन्म में बुद्ध के पिता थे

स्थान : अंजनवन

एक बार बुद्ध अपने कुछ शिष्यों के साथ भिक्षाटन हेतु साकेत नगरी में प्रवेश किया। एक बूढ़ा ब्राह्मण उनको देखकर उनके निकट आया और उनसे बोला, "पुत्र, इतने वर्ष तुम कहाँ रहे कि अपने माता-पिता से मिलने कभी नहीं आए ? मेरे साथ आओ, तुम्हें तुम्हारी माँ से मिलाता हूँ।" ऐसा कहकर उसने बुद्ध को अपने घर में निमंत्रित किया। घर पहुँचने पर ब्राह्मण की पत्नी ने भी बुद्ध से वही बात कही और अपने बच्चों से बुद्ध का परिचय "तुम्हारे अग्रज भ्राता" के रूप में कराया और उनसे प्रणाम करवाया। उस दिन से वे ब्राह्मण-युग्म बुद्ध को प्रतिदिन भोजन-दान देते थे और प्रतिदिन धर्मश्रवण कर कुछ दिनों में उन्होंने अनागामी फल प्राप्त कर लिया। भिक्षुगण आश्चर्यचकित थे कि उस ब्राह्मण-युग्म ने बुद्ध को पुत्र कहकर क्यों संबोधित किया और बुद्ध ने भी स्वीकार कर लिया। शंका-समाधान के लिए उन्होंने बुद्ध से यह प्रश्न पूछ लिया। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं, उन्होंने मुझे पुत्र कहकर संबोधित किया क्योंकि पन्द्रह सौ पूर्व जन्मों में मैं उन दोनों का पुत्र या भतीजा था। इस प्रकार तीन हजार जन्मों में इन्होंने मुझे पुत्र की तरह प्रेम से पाला पोसा है।" शास्ता ने यह गाथा भी कही, "ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिन्हें देखते ही उनमें मन रम जाता है, चित्त प्रसन्न और सरल हो जाता है। जिस आदमी को इस जन्म में पहले कभी नहीं देखा है, ऐसे आदमी में पूर्व जन्मों में अभूतपूर्व प्रेम होने के कारण उसमें स्वतः ही श्रद्धा और विश्वास प्रकट हो जाता है।" बुद्ध साकेत में उस ब्राह्मण-युग्म के पास तीन महीने रुके रहे और इस अवधि में वह ब्राह्मण-युग्म अर्हत्व को प्राप्त हो गया और फिर परिनिर्वाण भी। देहपात के बाद नागरिकों ने उन दोनों का एक साथ दाह-संस्कार कर दिया। शास्ता भी अपने शिष्यों के साथ इस शव यात्रा में शामिल हुए तथा श्मशान घाट पर एक चबूतरे पर बैठ गए। शव यात्रा में शामिल कुछ लोग बुद्ध को लौकिक पुरुष की तरह समझाने लगे कि उनके शरीर त्याग पर दु:खी न हों। बुद्ध ने उन्हें ऐसा कहने से मना नहीं किया; वरन् उन्हें बताया, "मनुष्य का जीवन-काल बहुत छोटा है। कोई कितना जीयेगा ? सौ वर्ष ? उसके बाद तो उसे मरना ही है। जो इससे अधिक जीता है - बुढ़ापा उसका शरीर शिथिल कर देता है।"

कुछ भिक्षुओं ने, यह नहीं जानते हुए कि ब्राह्मण पति-पत्नी ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया था, बुद्ध से पूछा कि उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ था। उन्हें बुद्ध ने बताया, "ऐसे अशैक्ष्य मुणिगण पुर्नजन्म धारण नहीं करते। ऐसे सिद्ध पुरुष तो निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"

गाथा: सदा जागरमानानं, अहोरत्तानुसिक्खिनं ।
निब्बाणं अधिमुत्तानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा ।।226।।

अर्थ: जो सतत जाग्रत हैं,अपने आप को अनुशासित करने तथा दिन-रात अध्ययन करने के प्रति समर्पित कर दिया है, जो निर्वाण के साधक हैं, उनके चित्तविकार विनष्ट हो जाते हैं।

अमृत पथ पर सतत् जाग्रत रहें
पूर्णा दासी की कथा

स्थान : गृधकूट पर्वत, राजगीर

राजगृह में पूर्णा नाम की एक दासी रहती थी । एक दिन उसे कूटने के लिए बहुत सारा धान दिया गया। वह देर रात एक लालटेन जला कर कूटती रही। वह बहुत थक गई थी। अतः थोड़ा सुस्ता लेने के लिए अपने झ ोपड़ी से बाहर निकली तथा हवा का आनंद लेने लगी। पसीने से तर-बतर थी। तभी उसने देखा कि आयुष्मान दब्ब मल्लपुत्र कुछ भिक्षुओं को मार्ग प्रकाश दिखा रहे थे, जो गृधकूट पर्वत पर बुद्ध के संदेश सुनकर लौट रहे थे । उस प्रकाश में पूर्णा ने उन भिक्षुओं को अपने निवास पर लौटते हुए देखा । उसने अपने आप सोचा, "जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं अपने काम से बोझिल हूँ; अतः इतनी रात बीत जाने पर भी सो नहीं सकती हूँ । क्या कारण है कि आदरणीय भिक्षुगण सो नहीं रहे हैं ? ऐसा विचारकर वह निम्न निष्कर्ष पर पहुँची, "अवश्य ही कोई भिक्षु बीमार है या किसी साँप-बिच्छु ने काट लिया है ।"

सुबह होने पर पूर्णा ने चावल के कुछ दाने लिये, उसे पानी में भिंगोया और फिर आग में सेंककर रोटी बना दी। तब उसने सोचा कि स्नान हेतु जाते समय रास्ते में इसे खाऊँगी। ऐसा सोचकर उसने रोटी को अपने वस्त्र में बाँध लिया और जल-पात्र हाथ में लेकर स्नान-घाट की ओर चल पड़ी ।

बुद्ध भी उसी मार्ग से भिक्षाटन हेतु गाँव की ओर चल पड़े। जब पूर्णा ने बुद्ध को देखा तो अपने आप से कहा, "कई दिन ऐसा हुआ है कि बुद्ध के दर्शन हुए हैं पर उस दिन दान देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था, कभी ऐसा भी हुआ कि मेरे पास दान देने के लिए तो था पर उस दिन बुद्ध के दर्शन ही नहीं हुए आज सिर्फ बुद्ध के दर्शन ही नहीं हो रहे हैं, बल्कि आज देने के लिए भी मेरे पास कुछ है। अगर वे इस विचार के बिना इसे स्वीकार कर लेंगे कि यह स्वादिष्ट है या नहीं तो फिर मैं इसे उन्हें समर्पित कर दूँगी।" इसलिए अपने जल-पात्र को एक तरफ रखते हुए, उसने बुद्ध को साष्टांग प्रणाम किया और उनसे कहा, "भन्ते, कृपया इस तुच्छ खाद्य -पदार्थ को स्वीकार कीजिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए" बुद्ध ने आनन्द की ओर देखा और उन्होंने अपने वस्त्र में से कीमती भोजन-पात्र बुद्ध को दे दिया जिसे किसी राजा ने बुद्ध को दान में दिया था। बुद्ध ने उस पात्र में पूर्णा का दान स्वीकार किया। जब पूर्णा ने बुद्ध को भोजन-दान दे दिया तब उसने उन्हें पुनः प्रणाम कर कहा, "भन्ते, आपके द्वारा प्राप्त सत्य धर्म में मुझे भी भागी बनावें।" "तथास्तु", बुद्ध ने कहा। फिर बुद्ध ने अपने आप से पूछा, "इस महिला के मन में क्या विचार थे।" यह देखकर कि उसके मन में क्या विचार थे बुद्ध ने आनन्द की ओर दृष्टि की; स्थविर आनन्द ने चीवर बिछा दिया और बुद्ध ने उस पर बैठकर अल्पाहार किया। जब अल्पाहार कर लिया तब उन्होंने पूर्णा को सम्बोधित करते हुए उससे पूछा, "पूर्णा, मेरे भिक्षुओं के प्रति तुमने अपने मन में दुर्विचार क्यों रखा ?" भन्ते ! मैंने आपके भिक्षुओं के प्रति कोई भी दुर्विचार नहीं रखा।" "तब यह बताओ कि तुमने मेरे भिक्षुओं को देखा था तो क्या कहा था ?" "भन्ते ! मेरी सोच बिल्कुल स्पष्ट थी। मैंने अपने आप से सोचा, मैं तो अपने काम के बोझ से बोझिल होने के कारण सो नहीं पाती हूँ, परन्तु ऐसा क्या है कि ये भिक्षुगण भी सो नहीं पा रहे हैं। अवश्य ही कोई भिक्षु, जो यहाँ निवास करता है, वह बीमार है या किसी साँप-बिच्छु ने उसे काट लिया है।" बुद्ध ने उसके कथन को सुना और उससे कहा, "पूर्णा ! तुम इसलिए नहीं सो पा रही हो क्योंकि तुम कष्ट में हो। मेरे भिक्षु सतत् जाग्रत अवस्था में हैं, अतः सो नहीं पाते ।"

गाथा: पोराणमेतमतुल नेतं, अज्जतनामिव ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं, निन्दन्ति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनं पि निन्दन्ति, नत्थि लोके अनिन्दितो ।।227।।

अर्थ: अतुल ! यह तो बहुत पुरानी बात है। तुम आज की कोई नई बात नहीं कह रहे हो। चुप रहने वाले की निन्दा होती है और उसी प्रकार अधिक बोलने वाला भी निन्दित होता है। ऐसा कोई नहीं है जिसकी इस लोक में निन्दा नहीं होती हो।

निंदा रहित पुरुष कहाँ मिलेगा ?
उपासक अतुल की कथा
स्थान : जेतवन , श्रावस्ती

उपासक अतुल श्रावस्ती में रहता था। उसके साथ पाँच सौ अन्य उपासकों का संघ भी था। एक दिन वह उन पाँच सौ उपासकों को साथ लेकर धर्मश्रवण के लिए जेतवन विहार जा पहुँचा। भन्ते रेवत से धर्म श्रवण के उद्देश्य से उसने भन्ते रेवत को प्रणाम किया और आदर के साथ एक ओर बैठ गया। उस समय भन्ते रेवत एकान्त साधना में लीन थे और एकान्त में आनन्दित हो रहे थे जैसे एक सिंह एकान्तवास में आनन्द की अनुभूति करता है । इसलिए उन्होंने अतुल को कुछ नहीं कहा।

"इन भन्ते को कहने के लिए कुछ नहीं है, " अतुल ने सोचा। क्रुद्ध होकर, अपने आसन से उठा, भन्ते सारिपुत्र के पास गया और एक तरफ सादरपूर्वक खड़ा हो गया। "किस प्रयोजन से मेरे पास आए हो ?" स्थविर सारिपुत्त ने पूछा। अतुल ने उत्तर दिया, "भन्ते ! मैं इन उपासकों को धर्म श्रवण हेतु ले आया और भन्ते रेवत के पास गया, लेकिन उनके पास मुझे बताने के लिए कुछ नहीं था। वे मौन रहे, अतः मुझे उन पर क्रोध आ गया और अब मैं आपके सम्मुख आ गया हूँ। कृपया मुझे धर्म की शिक्षा दें।" "ठीक है, उपासक", स्थविर सारिपुत्र ने कहा।

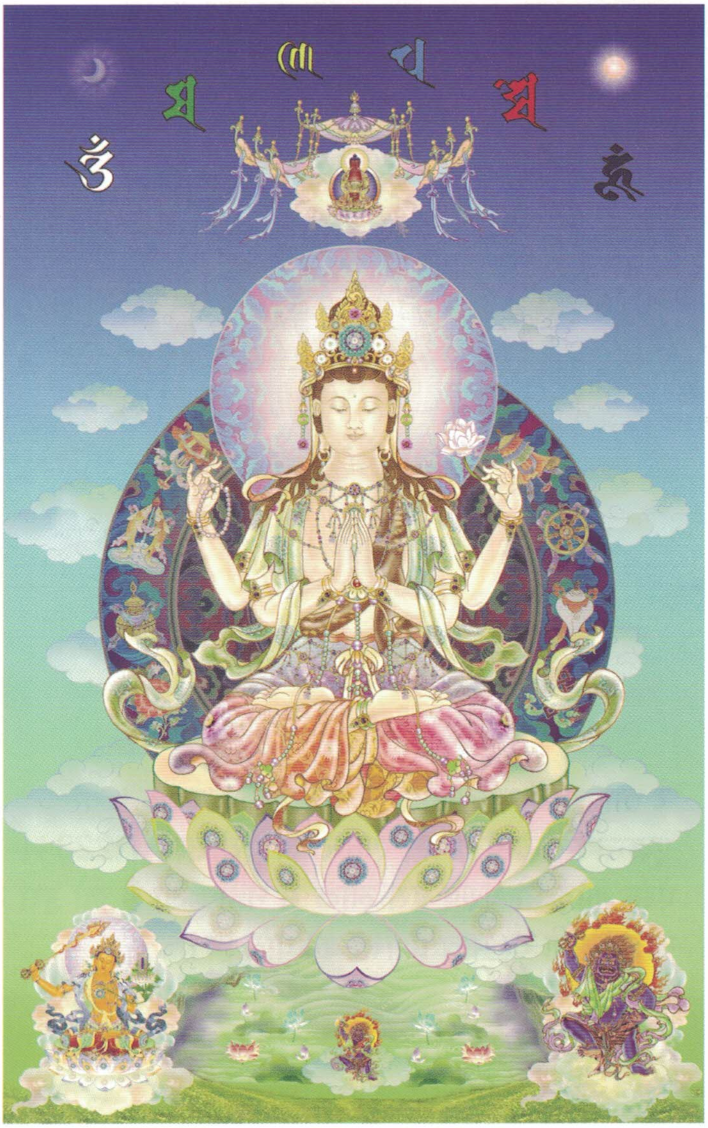

गाथा: न चाहु न च भविस्सति, न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो, एकन्तं वा पसंसितो ।।228।।

अर्थ: ऐसा कोई भी पुरुष इस लोक में नहीं हुआ है जो इस लोक में
मात्र निन्दा या मात्र प्रशंसा का पात्र हो।

न था, न है, न होगा : मात्र निंदनीय या मात्र प्रशंसनीय
उपासक अतुल की कथा

"बैठ जाओ" और उन्होंने तुरंत ही उन्हें अभिधर्म सम्बन्धी बहुत सारी कथा सुना डाली। उपासक ने सोचा, "अभिधर्म अति गूढ़ प्रतीत होता है, और भन्ते ने मात्र इसे ही मुझे विस्तार से समझाया है; उनसे क्या लाभ?" अतः क्रुद्ध होकर अपने उपासकों के समूह के साथ वह स्थविर आनन्द के पास पहुँचा। स्थविर आनन्द ने पूछा, "उपासक क्या बात है ?" अतुल ने उत्तर दिया, "भन्ते ! हम धर्मश्रवण हेतु स्थविर रेवत के पास गए, लेकिन उन्होंने एक शब्द का भी प्रवचन नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर हम लोग स्थविर सारिपुत्र के पास गए और उन्होंने विस्तार से हमें सिर्फ अभिधर्म ही गहराई से समझाया।

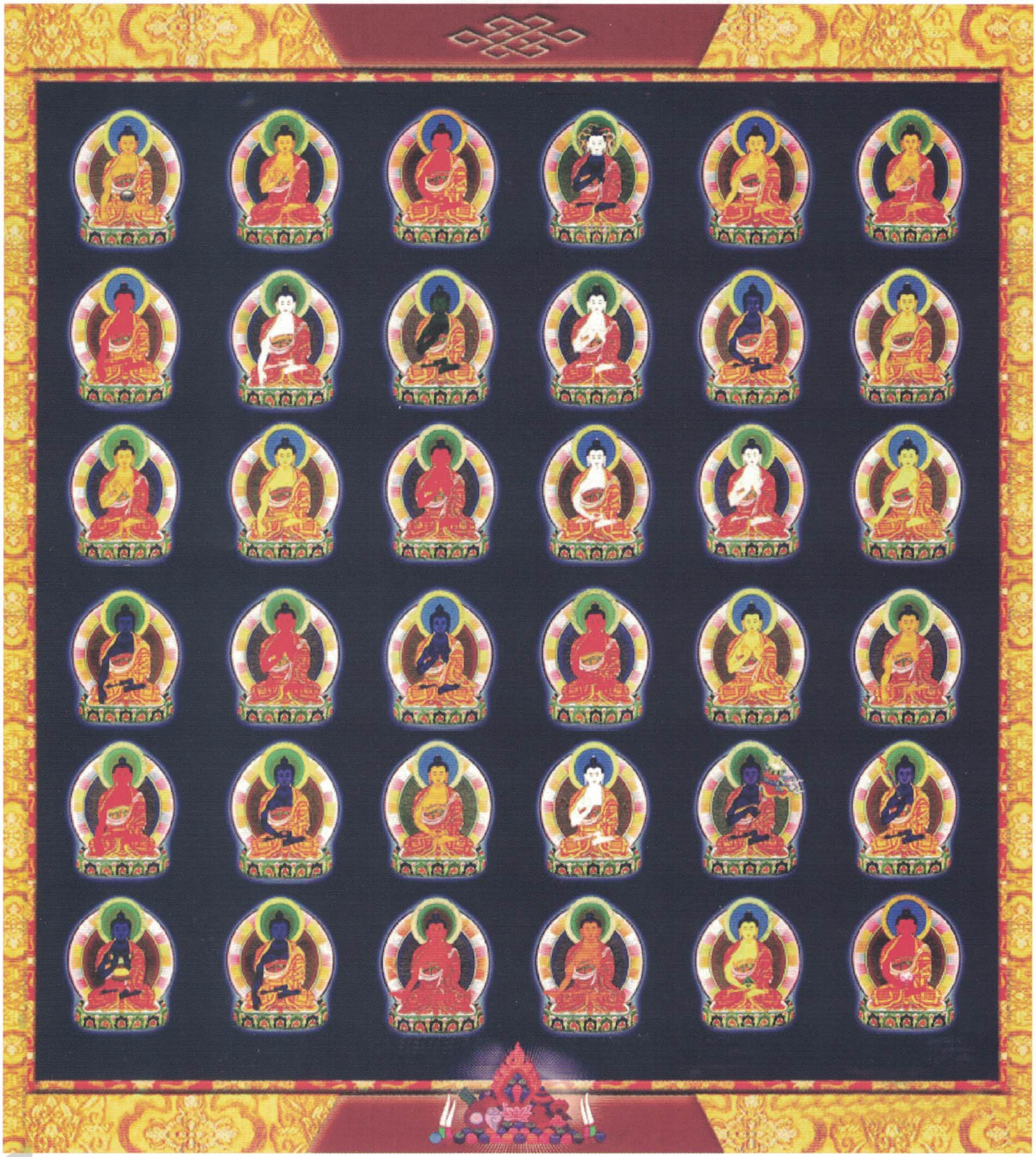

गाथा: यं चे विञ्ञू पसंसन्ति, अनुविच्च सुवे सुवे ।
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं, पञ्ञासीलसमाहितं ।।229।।

अर्थ: वैसे पंडित जन निश्छल एवं पवित्र चरित्र वाले मेधावी एवं प्रज्ञ
ाशील पुरुष की प्रतिदिन प्रशंसा किया करते हैं।

लोग कसौटी पर परख कर ही प्रशंसा करते हैं
उपासक अतुल की कथा

उनसे भी हमें कोई लाभ नहीं हुआ, और उनसे भी हम सभी क्रुद्ध हो गए और अब आपसे धर्मकथा सुनने आये हैं। भन्ते ! हमें धर्मकथा सुनाइए।" "ठीक है" भन्ते आनन्द ने उत्तर दिया, "बैठो और सुनो" तत्पश्चात् स्थविर आनन्द ने उन्हें संक्षेप में और बहुत ही सरल ढंग से धर्म कथा सुनाई। लेकिन वे भन्ते आनन्द से भी क्रुद्ध हो गए और बुद्ध के पास जाकर, उन्हें सादर प्रणाम कर एक ओर आदरपूर्वक बैठ गए। बुद्ध ने उनसे पूछा, "उपासकगण ! तुम लोग क्यों आए हो ?" "धर्मचर्या सुनने हेतु भन्ते "लेकिन तुमने तो धर्मश्रवण कर लिया है " "आदरणीय भन्ते ! पहले हम लोग रेवत भन्ते के पास गए, उन्होंने हमें कोई शिक्षा न दी; वे मौन रहे। उनसे क्रुद्ध होकर हम लोग स्थविर सारिपुत्त के पास गए और उन्होंने अभिधर्म का विस्तार से विवेचन किया पर उनके प्रवचन को समझने में हम लोग असमर्थ रहे, उन पर क्रुद्ध होकर हम लोग स्थविर आनन्द के पास गए। भन्ते आनन्द ने हमें बहुत ही संक्षेप में धर्म-कथा सुनायी, इससे भी हम लोग सन्तुष्ट न हुए और अब आपसे प्रवचन सुनने आए हैं।"

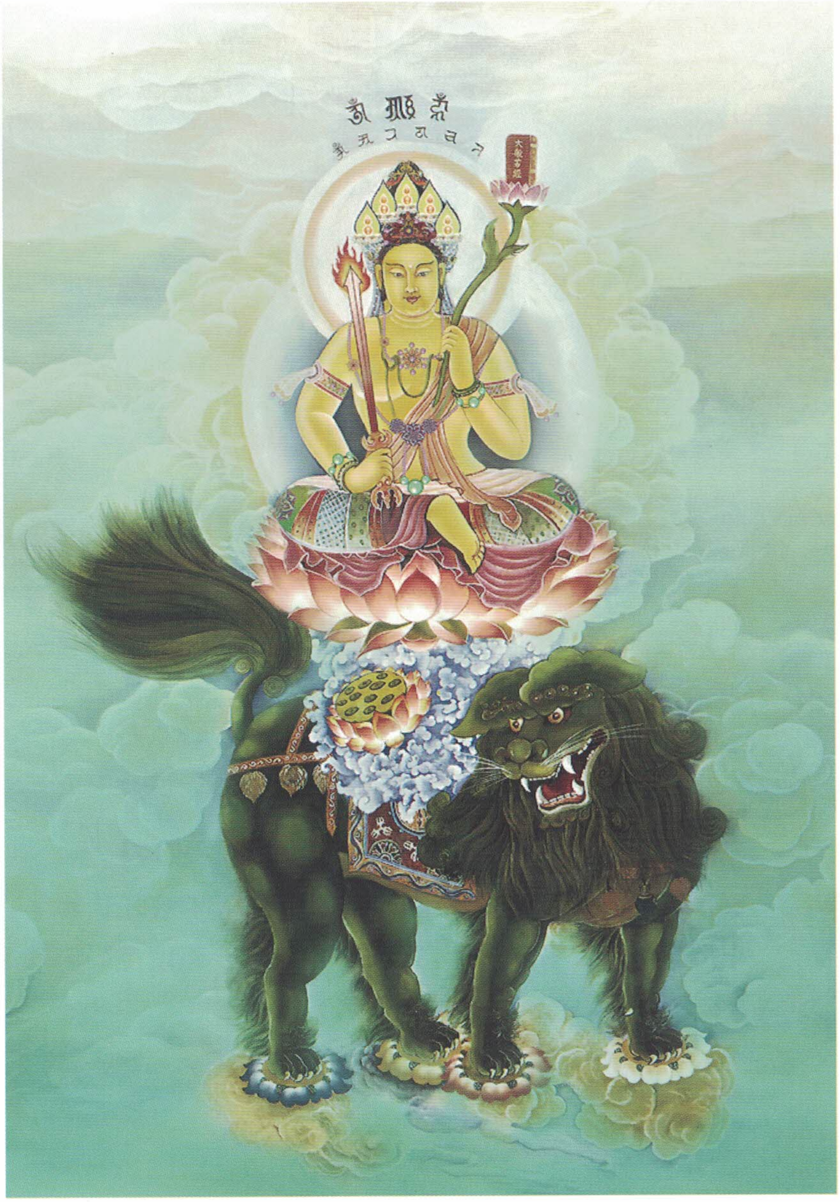

गाथा: निक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति ।
देवा पि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुना पि पसंसितो ।।230।।

अर्थ: शुद्ध सोने से बने सिक्के की कौन निंदा कर सकता है ? देवता भी ऐसे साधक की प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मा तो करते ही हैं।

देवतागण किसकी प्रशंसा करते हैं ?
उपासक अतुल की कथा

बुद्ध ने उनकी बात सुनी और उत्तर दिया, "अतुल, प्राचीन काल से लेकर आज तक मानव का स्वभाव रहा है कि वह दोष ढूँढ़ निकालता है उसमें जिसने कुछ नहीं कहा है, जिसने विस्तार से कहा है या जिसने संक्षेप में कहा है - अर्थात् मनुष्य सभी में दोष ढूँढ़ ही निकालता है। कोई भी ऐसा नहीं है जो मात्र निंदा का पात्र है, उसी प्रकार कोई ऐसा भी नहीं है जो मात्र प्रशंसा का ही पात्र है। राजा की भी कुछ निंदा करते हैं तो कुछ प्रशंसा। इस विशाल धरती, सूर्य और चन्द्रमा, सर्वज्ञ सम्यक, जो चारों परिषद के बीच बैठ धर्म चर्या करते हैं -उनकी भी कुछ निंदा करते हैं तो कुछ प्रशंसा। अज्ञानी पुरुष निंदा करते हैं या प्रशंसा - दोनों का ही महत्व नहीं है, लेकिन विद्वान और ज्ञानी पुरुष जब निंदा या प्रशंसा करते हैं तब वस्तुतः उस पुरुष की सचमुच ही निंदा या प्रशंसा होती है।

गाथा: कायप्पकोपं रक्खेय्य, कायेन संवुतो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा, कायेन सुचरितं चरे ।।231।।

अर्थ: शरीर के दुराचरण से बचना चाहिए, शरीर को संयम में रखना चाहिए, शरीर के दुराचार को छोड़ शरीर के सदाचार का आचरण करना चाहिए।

शरीर से सुकर्म करें
षड्भिक्षुओं की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार वेणुवन में षड्भिक्षुओं के सम्बन्ध में बुद्ध ने इन गाथाओं को कहा था।

एक दिन षड्भिक्षु अपने पैरों में लकड़ी की खड़ाऊँ धारण कर और दोनों हाथों में एक-एक लाठी लेकर पत्थर की एक शिला पर आवाज करते हुए ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे। उनकी खटखट आवाज को सुनकर बुद्ध ने आनन्द से पूछा, "आनन्द यह शोर कैसा है ?" भन्ते ने उत्तर दिया, "षड्भिक्षुओं का समूह काठ की खड़ाऊँ पहन कर चल रहा है; यह उनके खड़ाऊँ की आवाज है।" जब बुद्ध ने इसे सुना, तो उन्होंने सभी भिक्षुओं के लिए यह शिक्षाप्रद निर्देश दिया - "भिक्षु को मनसा, वाचा तथा कर्मणा से संयमित रहना चाहिए।" तब उन्होंने ये चार गाथाएं कहीं ।

गाथा: वचीपकोपं रक्खेय्य, वाचाय संवुतो सिया ।
वचीदुच्चरितं हित्वा, वाचाय सुचरितं चरे ।।232।।

अर्थ: वाणी के दुराचरण से बचना चाहिए, वाणी का संयम रखना चाहिए। वाणी के दुराचार को छोड़, वाणी के सदाचार का आचरण करना चाहिए।

वाणी से सुकर्म करें
षड्भिक्षुओं की कथा

टिप्पणी: काया, मन एवं वचन के दोष से बचना चाहिए। इन गाथाओं को बुद्ध ने षड्भिक्षुओं को समझाने के लिए कहा था जिनका व्यवहार भिक्षुओं के अनुकूल नहीं था। बुद्ध ने उन्हें गलत कर्म करने के प्रति सावधान किया। बौद्ध धर्म में नियम कठिन बनाए गए हैं और भिक्षुओं से आशा की जाती है कि वे दृढ़ता से इनका अनुपालन करेंगे।

गाथा: मनोपकोपं रक्खेय्य, मनसा संवुतो सिया ।
मनोदुच्चरितं हित्वा, मनसा सुचरितं चरे ।।233।।

अर्थ: मानसिक दुराचरण से बचना चाहिए, मन पर संयम रखना चाहिए। मानसिक दुराचार को छोड़, मानसिक सदाचार का आचरण करना चाहिए।

मन से सुकर्म करें
षड्भिक्षुओं की कथा

अगर भिक्षु को आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति करना है तो उसे संयमित जीवन जीना ही होगा। जो निर्वाण के मार्ग पर जाना चाहता है उसके लिए सभी छोटी-छोटी बातों का भी बहुत महत्व है क्योंकि मन को संयमित करने से वाणी और कर्म का संयम आसान हो जाता है। इनका उल्लंघन करने से मार्ग में अवरोध खड़े हो

गाथा: कायेन संवुता धीरा, अथो वाचाय संवुता ।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता ।।234।।

अर्थ: जो प्रबुद्ध व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से संयमित हैं, वे ही वस्तुतः पूर्ण रूप से संयमित हैं।

जाते हैं और उसका नैतिक विकास रुक जाता है। इनके अनुपालन का अर्थ है मार्ग पर निरन्तर विकास। ऐसा साधक सांसारिक आनन्दों का त्याग करता है और त्याग का जीवन ही उसे आनन्द देता है।

DHAMMAPADA
KRODHA VAGGA

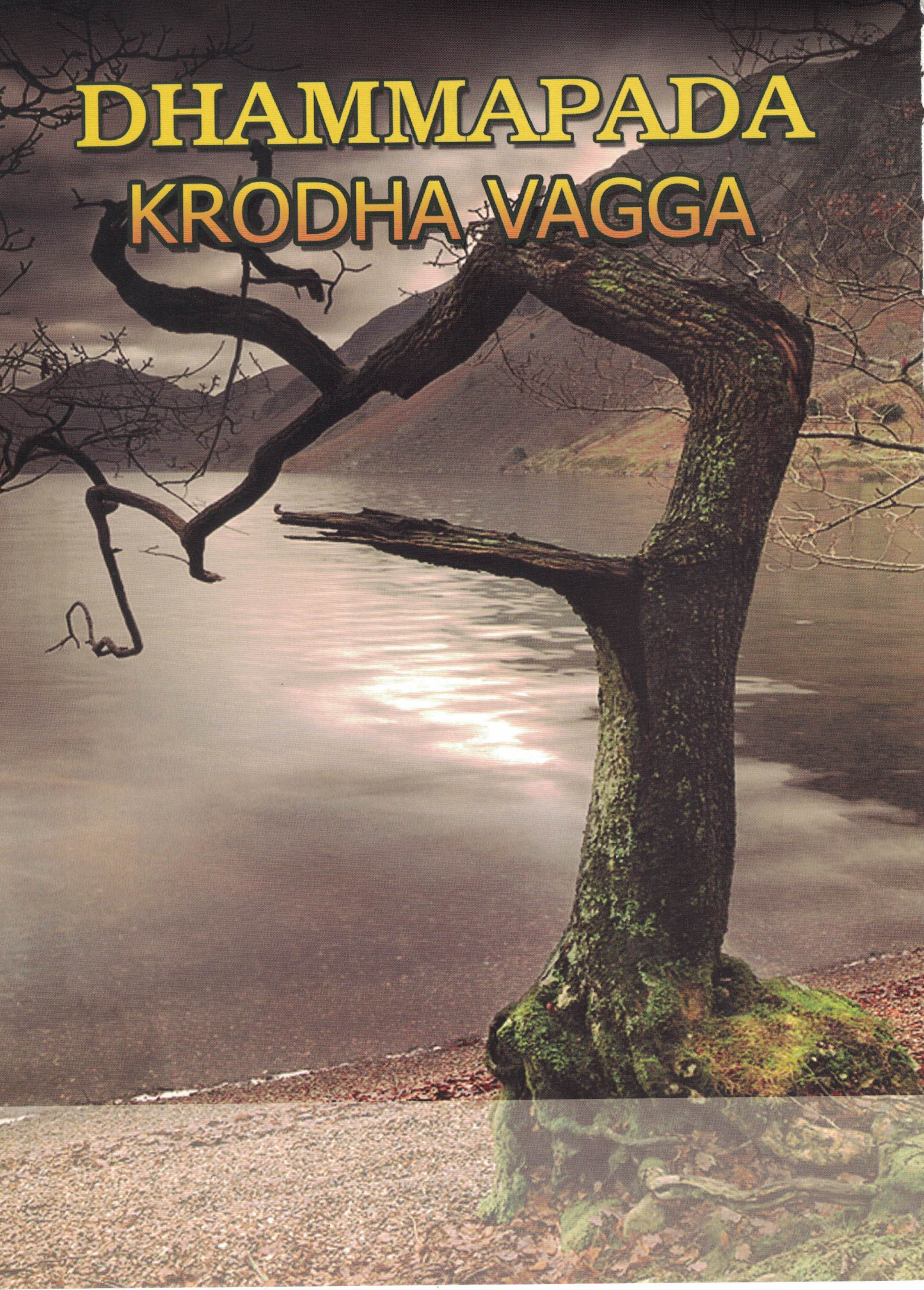

मन को साफ रखें

धम्मपद
मल वर्ग

गाथा और कथा

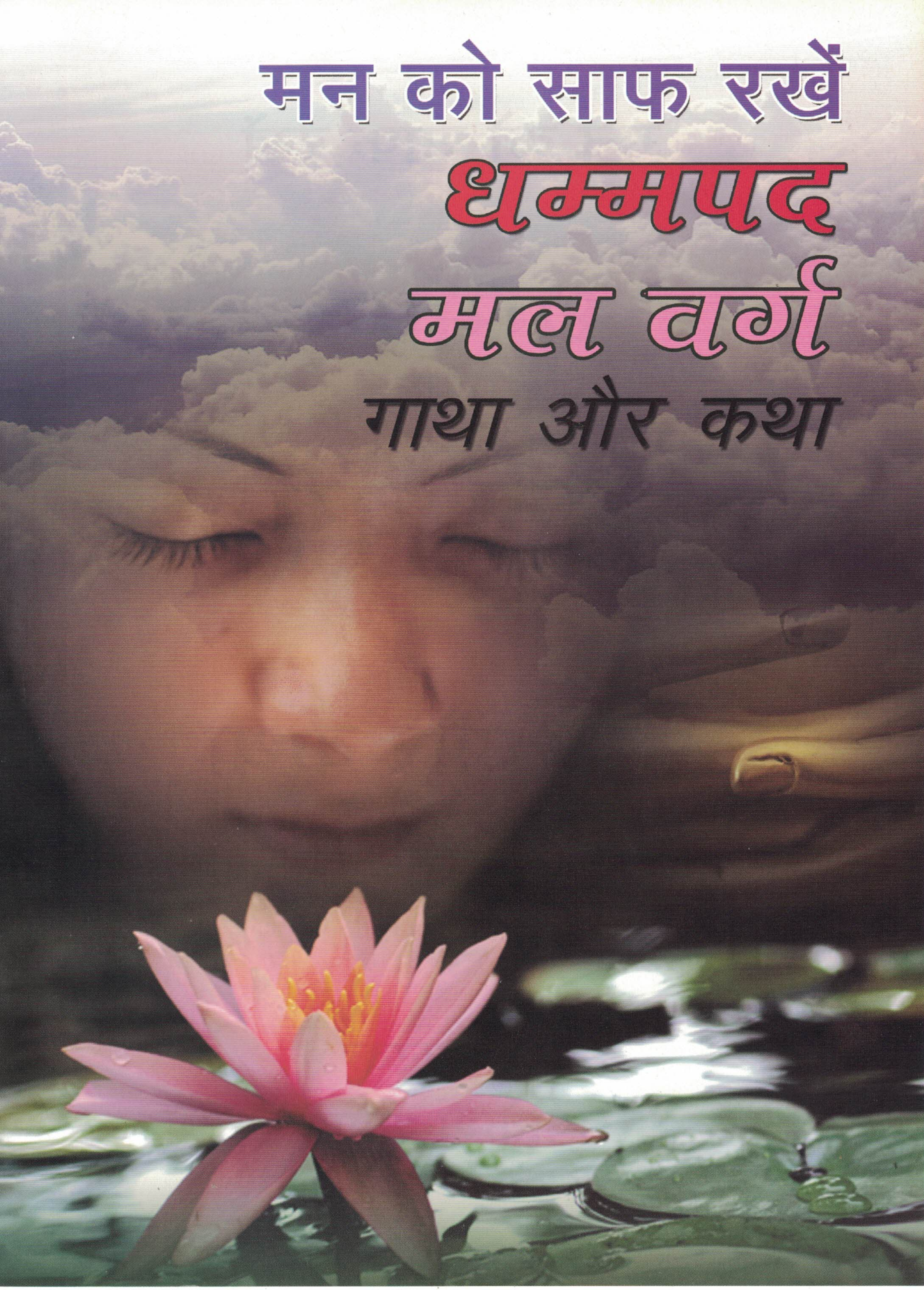

मन को साफ रखें

धम्मपद

मल वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

मल्ल वर्ग

कम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	पशुवधक के पुत्र की कथा	235	यात्रा से पूर्व कुछ तो तैयारी करेंगे ?	101
2.	पशुवधक के पुत्र की कथा	236	डूबने से पहले द्वीप पर पहुँच जाइए	103
3.	पशुवधक के पुत्र की कथा	237	सावधानी से चलिए : घनघोर अँधेरा है	105
4.	पशुवधक के पुत्र की कथा	238	जन्म मरण के चक्कर से बचिए	107
5.	एक ब्राह्मण की कथा	239	बुद्धिमान पुरुष गन्दगी में नहीं रहते	109
6.	तिष्य थेर की कथा	240	अपनी बर्बादी : अपने हाथों	111
7.	लाल उदायी की कथा	241	क्या है मैल ?	113
8.	व्यभिचारिणी पत्नी की कथा	242	लोक–परलोक में मैल क्या है ?	115
9.	व्यभिचारिणी पत्नी की कथा	243	सबसे बड़ा मैल : अविद्या	117
10.	चूलसारि की कथा	244	पापी मिथ्या ढंग से जीवन जी लेता है	119
11.	चूलसारि की कथा	245	पवित्र साधक का जीवन कठिनाई से बीतता है	121
12.	पाँच सौ उपासकों की कथा	246	पापकर्मी पाप का फल पायेगा	123
13.	पाँच सौ उपासकों की कथा	247	पापी स्वयं अपनी जड़ खोदता है	125
14.	पाँच सौ उपासकों की कथा	248	सावधान ! लोभ और अधर्म से बचें	127
15.	तिष्य भिक्षु की कथा	249	कौन एकाग्रता प्राप्त नहीं कर सकेगा ?	129
16.	तिष्य भिक्षु की कथा	250	कौन एकाग्रता प्राप्त करेगा ?	131
17.	पंच उपासकों की कथा	251	राग की आग : न बुझने वाला दावानल	133
18.	मेण्डक श्रेष्ठी की कथा	252	दूसरों का दोष देखना आसान है, अपना कठिन	135
19.	थेर उज्झानसंज्ञि की कथा	253	चित्तमल क्यों बढ़ता है ?	137
20.	परिव्राजक सुभद्र की कथा	254	बुद्ध शासन की विशेषता	139
21.	परिव्राजक सुभद्र की कथा	255	बुद्ध शासन ही शाश्वत है	141

गाथा: पण्डुपलासोव दानिसि, यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि, पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।।235।।

अर्थ: अब तुम एक वृक्ष के सूखे, पीले पत्ते के समान हो। हवा का पहला झोंका तुम्हें टहनी से अलग कर देगा और तुम गिर जाओगे। यमदूत आकर तुम्हें ले जाने के लिए तैयार खड़े हैं। अब तुम मृत्यु के द्वार पर परलोक की यात्रा पर जाने के लिए खड़े हो और उस यात्रा पर जाने के लिए तुम्हारे पास रास्ते के लिए पुण्य रूपी भोजन भी नहीं है।

यात्रा से पूर्व कुछ तो तैयारी करेंगे ?
पशुवधक के पुत्र की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में निवास के समय बुद्ध ने इन दो गाथाओं को एक पशुवधक के पुत्र के सम्बन्ध में कही थी।

कथा है कि श्रावस्ती में एक कसाई रहता था। वह गायों को मारता था और उनके मांस का सबसे अच्छा भाग अपने खाने के लिए अलग कर लेता था। उसे पकवाता था और फिर अपनी पत्नी और पुत्र के साथ बैठकर खाता था। मांस का बचा हुआ भाग वह बेच देता था। पचपन वर्षों तक वह इस प्रकार गौवध करता रहा। इस काल में, हालाँकि बुद्ध पास के ही विहार में रहते थे पर उसने भोजन का एक भी दाना उन्हें भोजन-दान के रूप में नहीं दिया। जब तक उसे मांस नहीं मिलता था वह भोजन नहीं करता था। एक दिन जब अँधेरा होने वाला था। उसने गौमांस बेचने के बाद उसका एक टुकड़ा अपनी पत्नी को रात के भोजन हेतु पकाने के लिए दिया और स्वयं पास के तालाब में स्नान करने चला गया। स्नान करने के बाद वह भोजन करता।

गाथा: सो करोहि दीपमत्तनो, खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमालो अनङ्गणो, दिब्बं अरियभूमिं उपेहिसि।।236।।

अर्थ: आज की परिस्थिति देख-समझकर, अपना दीपक स्वयं बन जाओ, अपने आप को एक द्वीप बना लो और अपनी शरण में चले जाओ। शीघ्र प्रयास प्रारंभ करो, श्रद्धापूर्वक सतत चेष्टा करो और एक ज्ञानी पंडित बनने की कोशिश करो। चित्तविकारों एवं सभी प्रकार के पापों का नाश करके दिव्य आर्यभूमि में पहुँचने की चेष्टा करो।

डूबने से पहले द्वीप पर पहुँच जाइए
पशुवधक के पुत्र की कथा

उसकी अनुपस्थिति में उसका एक मित्र उसके घर आया और उसने मित्र की पत्नी से कहा, "मुझे थोड़ा सा मांस खरीदना है क्योंकि मेरे घर में एक मेहमान आ गए हैं।" "हमारे पास जरा भी गौमांस बिक्री के लिए नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा टुकड़ा तुम्हारे मित्र ने अपने खाने के लिए अलग रखा है अभी वह तालाब में स्नान करने गया है।" यह सुन उस मित्र ने धीरे से मांस का टुकड़ा उठाया और भाग गया। स्नान के बाद कसाई लौटा और पाया कि मांस नहीं था। वह बिना मांस के कभी भोजन नहीं करता था। उसने सोचा क्या करे ?

उसके घर के पीछे एक बैल बँधा था। कसाई उस बैल के पास गया, उसके मुँह में अपना हाथ डाला, उसकी जीभ बाहर खींच निकाली और छुरे की तेज धार से उसे काट लिया। कटी हुई जीभ को लेकर घर लौट आया। उसे कोयले पर भून लिया और चावल के ऊपर रख खाने बैठा। उसने चावल का एक कौर खाया और उसके बाद मांस का एक टुकड़ा अपने मुँह में रखा। जैसे ही उसने मांस का टुकड़ा अपने मुँह में रखा, उसकी खुद की जीभ कटकर उस थाली में गिर गई जिसमें वह खाना खा रहा था। उसकी स्थिति वैसी ही हो गई जैसी जीभ काटते समय उस बैल की हो गई थी। मुँह से खून की धारा बहने लगी। वह भागकर घर के आँगन में आ गया। मुट्ठी बाँधे, जमीन पर गिरकर, लोट-पोटकर चीत्कार करता हुआ एक बैल की तरह रंभाने लगा।

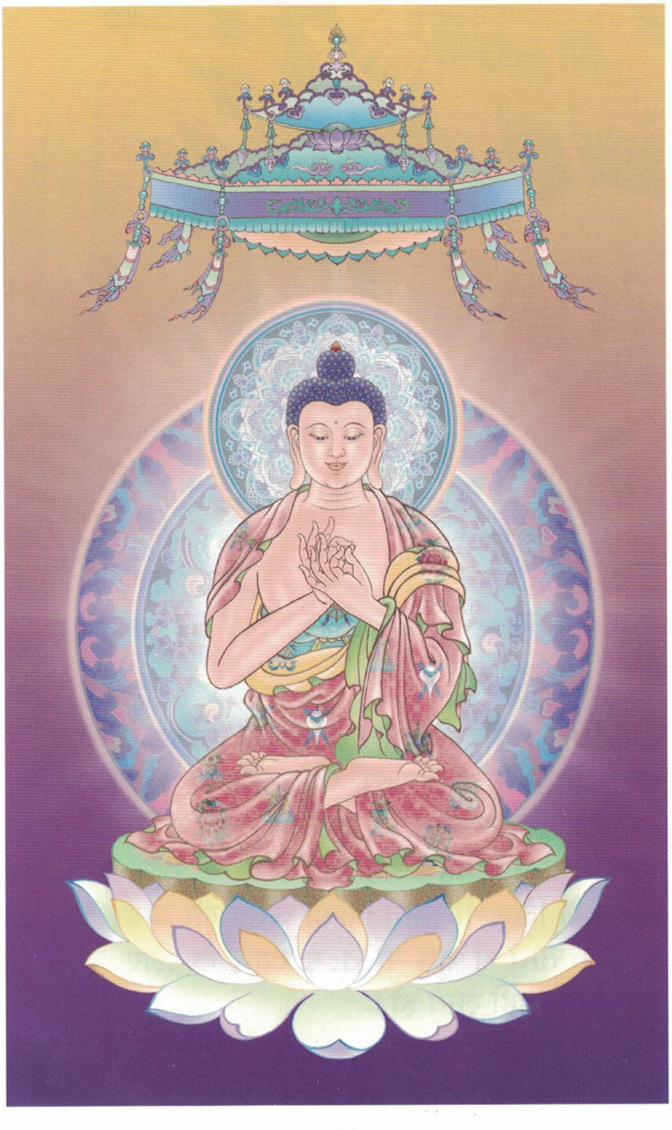

गाथा: उपनीतवयो च दानिसि, संपयातोसि यमस्स सन्तिके।
वासो पि ते नत्थि अन्तरा, पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।।237।।

अर्थः तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है। तुम धीरे-धीरे चलकर यम देवता तक पहुँच गए हो। रास्ते के मध्य में थोड़ी देर रुकने के लिए भी तुमने किसी जगह की व्यवस्था नहीं की है और साथ में तुम रास्ते में खाने के लिए अपने साथ भोजन भी नहीं लाये हो।

सावधानी से चलिए : घनघोर अँधेरा है
पशुवधक के पुत्र की कथा

उस समय उसका पुत्र उसको तड़पता हुआ देख रहा था। उसकी माँ ने उसे बुलाकर उससे कहा, "पुत्र, देखो ! एक कसाई को किस प्रकार अपने घुटनों के बल बैल की तरह चित्कार करना पड़ रहा है। यह सजा तुम्हारे माथे भी पड़ने वाली है। मेरे बारे में चिंता मत करो, बस यहाँ से भाग निकलो।" मृत्यु के भय से लड़के ने माँ की बात मान ली, उसे प्रणाम किया और वहाँ से भाग निकला। भागकर वह तक्षशिला पहुँचा। उधर कसाई बहुत देर तक आँगन में बैल की तरह लोटता रहा और चित्कारता हुआ मर गया। मरकर नरक में जा पहुँचा। वह बैल भी मर गया।

गाथा: सो करोहि दीपमत्तनो, खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्णो, न पुनं जातिजरं उपेहिसि।।238।।

अर्थ: अतः तुम अपना स्वयं दीपक, द्वीप या शरण स्थल बन जाओ। आध्यात्मिक साधना तत्काल प्रारंभ करो और ज्ञानी पंडित बन जाओ। इस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्वक सभी काम सम्पन्न करते हुए अपने आप को निर्मल और निष्पाप बनाओ। ऐसा करके तुम जन्म और जरा के चक्र से मुक्त हो जाओगे।

जन्म मरण के चक्कर से बचिए
पशुवधक के पुत्र की कथा

तक्षशिला पहुँचकर उस लड़के ने एक स्वर्णकार के यहाँ नौकरी कर ली। एक दिन उसका मालिक अपने गाँव जा रहा था। जाने से पहले उसने उस लड़के से कहा, " इस प्रकार का एक आभूषण बनाकर रखना।" ऐसा कहकर उसका मालिक चला गया। उस लड़के ने ठीक वैसा ही आभूषण बना दिया जैसा उसका मालिक चाहता था। जब उसका मालिक लौटा और उसने आभूषण देखा तो वह बहुत खुश हुआ और उसने सोचा, "यह लड़का जहाँ-कहीं भी रहेगा, अपनी रोजी-रोटी कमा लेगा।" इसलिए लड़का जब बड़ा हुआ, तब स्वर्णकार ने अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर दिया। उनके बाल-बच्चे हुए, परिवार में बढ़ोत्तरी हुई। जब वे बाल-बच्चे बड़े हुए तो उन्होंने बहुत सारी कलाएं सीखीं और श्रावस्ती में जा बसे । वहाँ उन्होंने अपना कारोबार फैला लिया और बुद्ध के उपासक बन गए। उनका पिता तक्षशिला में ही रुका रहा। उसने पुण्य का कोई भी काम नहीं किया और धीरे-धीरे बूढ़ा हो गया। उसके लड़कों ने सोचा, "हमारे पिता अब वृद्ध हो चले हैं" और ऐसा सोचकर उन्होंने अपने पिता को बुला लिया और श्रावस्ती में ही अपने साथ रखने लगे। तब उन्होंने सोचा, "हमें अपने पिता की ओर से पुण्य का काम करना चाहिए।" इसलिए उन्होंने बुद्ध एवं संघ को भोजन दान के लिए आमंत्रित किया। अगले दिन बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ पधारे, सबों ने अपने-अपने आसन पर विराजमान हो उपासकों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिया गया भोजन दान ग्रहण किया और भोजन दान के बाद उन उपासकों ने बुद्ध से अनुमोदन किया, "भन्ते ! आज का भोजन-दान हमारे पिताश्री की ओर से स्वीकार करें और आशीर्वाद दें कि इसका पुण्य दान उन्हें मिले।" तब बुद्ध ने उस वृद्ध पिता का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "उपासक, तुम बूढ़े हो गए हो। तुम्हारा शरीर परिपक्व हो गया है और एक पीले पत्ते के समान है। तुमने कोई शुभ कर्म नहीं किया है जिसका इस जीवन के बाद के जीवन मार्ग के पाथेय के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। इसलिए अब भी अपने लिए स्वयं प्रयत्न करो और अपना द्वीप बन जाओ। बुद्धिमान बनो, जीवन को इसी प्रकार व्यर्थ मत गँवा दो।"

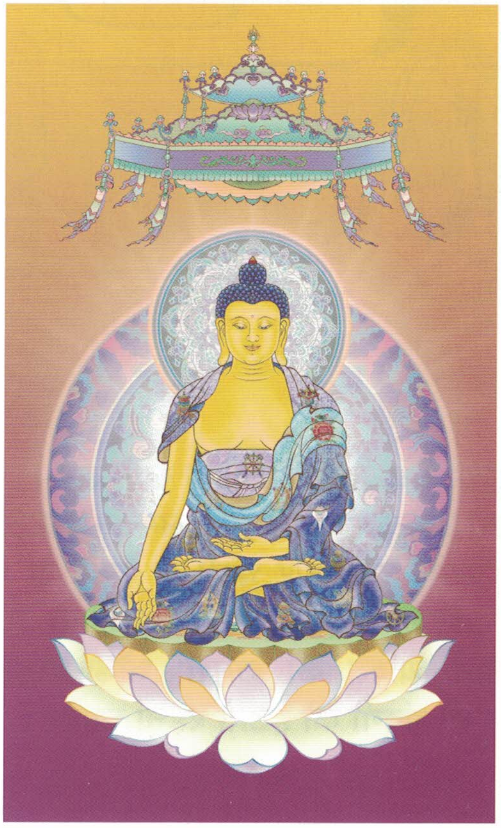

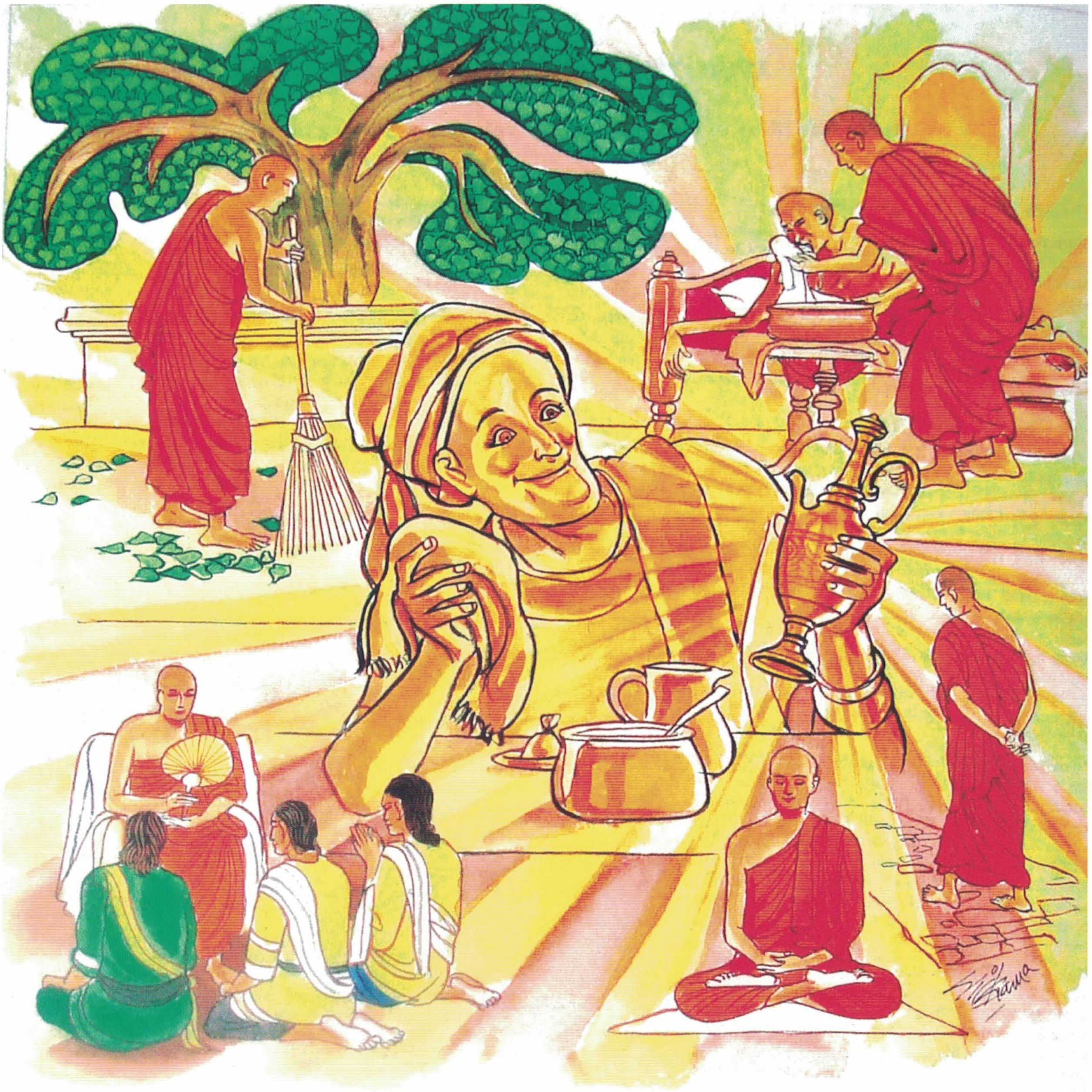

गाथा: अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो।।239।।

अर्थ: जिस प्रकार स्वर्णकार चाँदी के अंदर के मैल को थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे जला डालता है, उसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा करके अपने अन्दर की गंदगी को हटाते रहना चाहिए।

बुद्धिमान पुरुष गन्दगी में नहीं रहते
एक ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में निवास करते समय बुद्ध ने यह गाथा एक ब्राह्मण के संदर्भ में कही थी।

कथा के अनुसार एक दिन प्रातः एक ब्राह्मण नगर से बाहर गया। बाहर जाकर वहाँ रुक गया जहाँ भिक्षुगण अपना चीवर धारण करते थे और उन्हें ध्यान से देखने लगा। उस जगह पर लम्बी-लम्बी घास उगी हुई थी। चीवर पहनते समय, एक भिक्षु का चीवर धरती को छू गया जहाँ किसी का मूत्र पड़ा हुआ था और इस प्रकार उसका चीवर गंदा हो गया। ब्राह्मण ने सोचा, "इस घास को साफ कर देनी चाहिए।" अतः दूसरे दिन वह ब्राह्मण एक कुदाल लेकर आया और उस स्थान का घास छीलकर उसे बिल्कुल ही साफ-सुथरा और चिकना बना दिया। उसके बाद एक दिन वह फिर उसी स्थान पर गया जहाँ भिक्षुगण चीवर धारण किया करते थे और उन्हें चीवर धारण करते हुए देखा। उसने देखा कि जब भिक्षुगण चीवर पहन रहे थे तो उनमें से एक का चीवर धरती पर गिर गया। उसमें मिट्टी लग गई और वह गंदा हो गया। अतः उस ब्राह्मण को लगा कि यहाँ बालू बिछा देने से इस प्रकार की समस्या का हल निकल आयेगा। उसने दूसरे दिन बालू मंगाकर वहाँ बिछा दिया।

एक दिन धूप बड़ी ही तेज थी। उस दिन ब्राह्मण वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि भिक्षुगण तेज धूप में चीवर पहन रहे थे और उनके शरीर से पसीना चू रहा था। इसे देखकर ब्राह्मण ने सोचा, "मुझे यहाँ मंडप बनवा देना चाहिए।" उसने उस जगह पर एक मंडप बनवा दिया।

एक दिन सुबह में वर्षा हो गई। उस समय ब्राह्मण ने उन भिक्षुओं को बारिश में भीगते हुए देखा। ब्राह्मण ने सोचा, "वर्षा से बचने के लिए मुझे यहाँ एक शाला बनवा देनी चाहिए।" अतः उसने वहाँ एक शाला बनवा दिया। जब शाला बन गई तब ब्राह्मण ने सोचा, "इस शाला के निर्माण के सुअवसर पर मुझे एक विशेष-उत्सव का भी आयोजन करना चाहिए।" अतः उसने विशेष उत्सव का आयोजन किया और बुद्ध एवं भिक्षुसंघ को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध एवं भिक्षुओं को शाला के अंदर और बाहर बिठा कर उन्हें भोजन-दान दिया।

भोजन-दान की समाप्ति के बाद धर्म-देशना का समय आया। अतः उसने शास्ता के सामने से पात्र हटाते हुए अनुमोदन हेतु आग्रह करते हुए निवेदन किया, "भन्ते ! मैंने यह शाला भिक्षुओं के लिए बनवा दी है क्योंकि मैंने भिक्षुओं को चीवर पहनते समय कष्ट में देखा था।" इस प्रकार उसने शुरू से अंत तक की कहानी सुना दी।

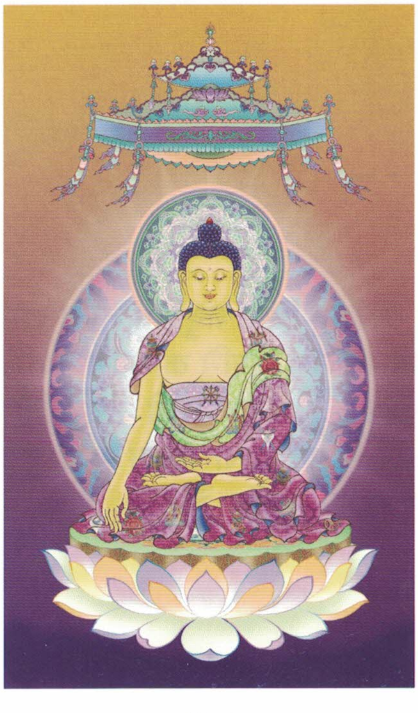

गाथा: अयसा व मलं समुट्ठितं, तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं, सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं।।240।।

अर्थ: लोहे से उत्पन्न हुआ जंग जैसे उस लोहे को खा जाता है उसी प्रकार इंसान द्वारा किया गया दुष्कर्म (पाप) उसी इंसान का नाश कर देता है।

अपनी बर्बादी : अपने हाथों
तिष्य थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में विराजते समय बुद्ध ने यह गाथा तिष्य थेर के संदर्भ में कही थी।

कथा के अनुसार एक संभ्रान्त परिवार के युवक ने, जो श्रावस्ती में रहता था, संसार से मुँह मोड़ लिया, संन्यासी बन गया और तिष्य थेर के नाम से जाना जाने लगा। एक बार वह वर्षावास के लिए किसी गाँव में ठहरा और वर्षावास के बाद उसे आठ गज का एक वस्त्र दान में मिला। गाँव लौटकर उसने वह वस्त्र अपनी बहन को रखने के लिए दे दिया। बहन ने सोचा, "यह कपड़ा मेरे भैया के लायक नहीं है।" अतः उसने कैंची लेकर उस कपड़े को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिया और उसे ऊखल में मूसल से कूटकर और फिर उसे कातकर नौ हाथ का नया वस्त्र बना दिया। स्थविर ने सूई-धागा का प्रबंध कर लिया और वस्त्र बनाने वाले युवा भिक्षुओं को बुलाकर अपनी बहन के पास गया और कहा, " वह कपड़ा मुझे दे दो। मैं उसका चीवर बनवा लूँगा।" बहन ने नौ हाथ का वह कपड़ा अपने भाई को दे दिया। उसने उसे फैलाकर देखा और बहन से कहा, "मेरा कपड़ा मोटा था, वह आठ हाथ लम्बा था। पर यह बहुत ही महीन है और नौ हाथ लम्बा है। यह तुम्हारा है, मेरा नहीं। मुझे मेरा कपड़ा दे दो जिसे मैंने तुम्हें दिया था।" "भन्ते, यह आपका ही है, ले लीजिए।" उसने लेने से इन्कार कर दिया। तब उसकी बहन ने पूरे विस्तार से बता दिया कि उसने क्या किया था और फिर से कपड़ा देते हुए कहा, "भन्ते ! यह आपका ही है, ले लीजिए।" अंततः स्थविर ने वह कपड़ा ले लिया, विहार चला गया और दर्जी को चीवर बनाने के लिए दे दिया। उसकी बहन ने दर्जी के लिए विशेष भोजन बनाया और अगले दिन जब दर्जी ने कपड़े सील दिए तो बहन ने उसे वह खाना खिला दिया। तिस्स ने सिले कपड़े देखे। वे उसे बहुत अच्छे लगे। उसने कहा, "मैं इन्हें कल पहनूँगा।" उसका तह लगाकर उसने उसे एक तरफ रख दिया।

रात्रि में तिस्स का अति भोजन करने के कारण देहान्त हो गया और उसने उसी कपड़े में एक चीलर के रूप में जन्म लिया। तिस्स की मृत्यु के बाद उस चीवर का भिक्षुओं के बीच बँटवारा किया जाना था। पर बँटवारे के नाम पर वह चीलर चिल्लाने लगा। गंधकुटी में बैठे बुद्ध ने अपनी अंतर्दृष्टि से उसकी आवाज सुनी और आनन्द को सलाह दी कि चीवर का अभी तुरंत बँटवारा न करके सात दिनों के बाद बँटवारा किया जाए। ऐसा ही हुआ। सातवें दिन उस चीलर की मृत्यु हो गई और उसका जन्म तुषिर लोक में हो गया। उसके दूसरे दिन तिस्स के चीवर के विभाजन की आज्ञा मिल गई।

भिक्षुओं में चर्चा का विषय था कि बुद्ध ने सात दिनों तक उस वस्त्र के विभाजन को क्यों रोक दिया था। बुद्ध ने यह बात सुनी तो शिष्यों को समझाया, "तिस्स का जन्म उसी वस्त्र में चीलर के रूप में हुआ था। जब तुमने वह वस्त्र बाँटना चाहा तो वह चिल्लाने लगा। अगर तुमने उस कपड़े को जबरदस्ती बाँट लिया होता, तो वह चीलर तुम लोगों के प्रति घृणा भाव रखता और इस कारण वह पुनः नरक में जन्म लेता। इसलिए जब उसका जन्म तुषित लोक में हो गया है तब मैंने तुम्हें अनुमति दी है कि तुम उस कपड़े को बाँट लो। बुद्ध ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "देहधारी के लिए तृष्णा बहुत ही खतरनाक चीज है। इससे मुक्ति पाना बहुत ही कठिन है। जैसे लोहे में लगा हुआ जंग अंततः उसी लोहे को खा जाता है, उसी प्रकार तृष्णा जिस व्यक्ति में उत्पन्न होती है वह उसी व्यक्ति का नुकसान कर देती है और उसे पुनः नरक में जन्म लेना पड़ता है।"

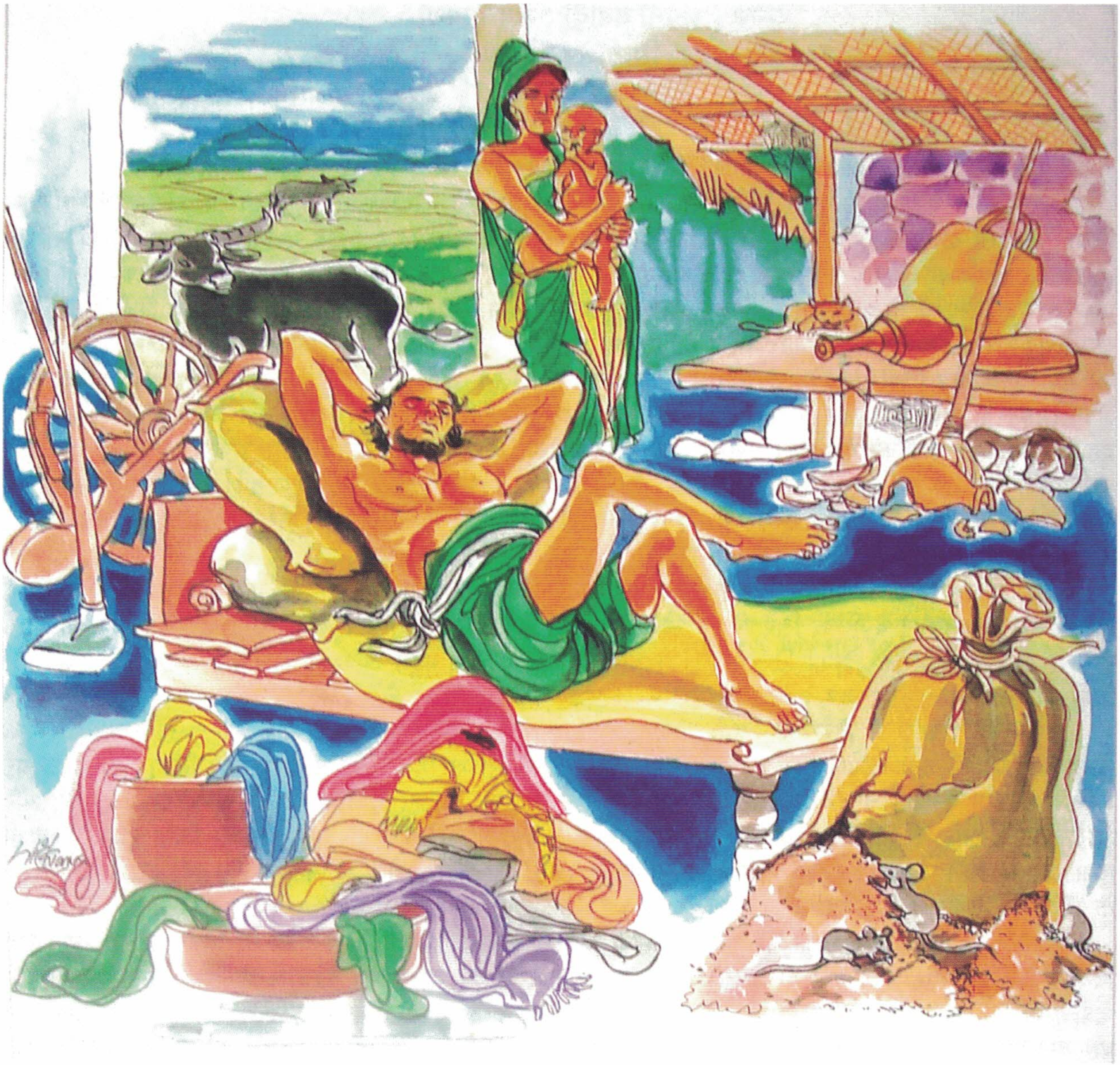

गाथा: असज्झायमला मन्ता, अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं, पमादो रक्खतो मलं।।241।।

अर्थ: धर्मज्ञान का स्वाध्याय न करना 'मैल' है। आलस्य शरीर की सुन्दरता का 'मैल' है तथा सिपाही का असावधान होना 'मैल' है।

क्या है मैल ?
लाल उदायी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कथानुसार श्रावस्ती के अनेक उपासक बौद्ध-विहार में विभिन्न प्रकार का दान देते थे और धर्म-प्रवचन सुनते थे। वहाँ से विदा होते हुए वे अक्सर स्थविर सारिपुत्त एवं महामोग्गलान के प्रवचनों की प्रशंसा किया करते थे। जब लाल उदायी थेर ने उन्हें प्रशंसा करते हुए सुना तो उसे जलन हुई और उसने उनसे कहा, "तुम सिर्फ उनका ही प्रवचन सुनते हो। अतः केवल उनका ही गुणगान करते हो। जब मेरी कथा सुनोगे तब पता नहीं तुमलोग क्या करोगे ?" उसकी बात सुनकर लोगों ने सोचा, "यह निश्चय ही कोई श्रेष्ठ धर्मवक्ता है। अन्यथा ऐसी बात नहीं करता। हमें उसका भी प्रवचन सुनना चाहिए।" इसलिए उन्होंने एक दिन स्थविर से आग्रह किया, "भन्ते ! आज हम लोग आपसे धर्म-प्रवचन सुनना चाहते हैं। अतः संघदान समाप्त हो जाने के बाद आप कृपया धर्म कथा सुनायें।" लााल उदायी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

धर्मश्रवण का समय आया। साधकों ने स्थविर के पास आकर उनसे आग्रह किया, "भन्ते ! हमें कृपया धर्मोपदेश दें।" अतः लाल उदायी आसन पर विराजमान हुआ, अपने हाथ में एक चित्रित पंखा लिया और आगे-पीछे हवा झलने लगा। उसे धर्म का एक शब्द भी मालूम नहीं था। अतः क्या करता ? उसने जनता से कहा, "मैं गाथाओं का सस्वर पाठ करूँगा, कोई दूसरा व्यक्ति धर्मकथा सुना दे।" ऐसा कहकर वह आसन से उतर गया। तब उपासकों ने किसी अन्य से धर्मकथा सुनाने के लिए कहा। उसके बाद उन्होंने लाल उदायी से पुनः गाथाओं का सस्वर पाठ करने का आग्रह किया। लेकिन उदायी को तो कुछ भी नहीं आता था । अतः उसने एक बार फिर कहा, "मैं रात्रि बेला में धर्मकथा सुना दूँगा, अभी कोई और गाथाओं का सस्वर पाठ कर दे। अतः नागरिकों ने एक बार फिर किसी से गाथाओं का सस्वर पाठ सुना और रात्रि बेला में एक बार फिर स्थविर उदायी के पास आ धमके। रात्रि बेला में भी वह क्या बोलता ? उसे तो धेला भी आता-जाता नहीं था। इसलिए उसने कहा, "मैं सुबह में धर्म-पाठ करूँगा। अभी कोई और ही धर्म-पाठ कर दे।" ऐसा कहकर वह एक बार फिर आसन से उतर गया। उपासकों ने फिर किसी अन्य से धर्म-कथा सुनी और प्रातः काल लाल उदायी के पास आ पहुँचे। लेकिन एक बार फिर वही कहानी दुहराई गई। ऐसा सुनकर भीड़ ने अपना धैर्य खो दिया। लोग उस पर डंडे, लाठी, पत्थर आदि फेंकने लगे और उसका तिरस्कार करते हुए कहे, "मूर्ख ! जब हम लोग भन्ते सारिपुत्त और महामोग्गलान के गुणों की चर्चा कर उनकी प्रशंसा कर रहे थे तब तू उनकी निन्दा करने लगा। अब तू कुछ क्यों नहीं बोलता है ? तुझे तो ज्ञान का क, ख, ग भी नहीं मालूम ।" लाल उदायी मार के भय से भागने लगा। लोग उसके पीछे दौड़े और वह एक मलकूप में जा गिरा।

इस घटना के बाद नागरिकों और भिक्षुओं में चर्चा का विषय था- लाल उदायी। वे आपस में बातें कर रहे थे, "लाल उदायी को आज चार बार धर्मासन पर बैठाया गया पर वह एक बार भी धर्मकथा नहीं कह सका। हमारे द्वारा भन्ते सारिपुत्त तथा मोग्गलान की प्रशंसा किए जाने पर वह उनसे ईर्ष्या करता था और स्वयं को भी एक धर्म-प्रचारक के रूप में घोषित करता था। जब लोगों ने उसे अवसर दिया कि वह धर्म-प्रवचन दे तो वह एक शब्द भी नहीं बोल सका। बाद में लोगों ने उसकी पिटाई कर दी।" जब यह चर्चा चल रही थी, उसी समय बुद्ध वहाँ पधारे। उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि किस विषय पर चर्चा चल रही थी। तब भिक्षुओं ने सारी घटना सुनाई। बुद्ध ने कथा सुनने पर भिक्षुओं को बताया कि अपने पूर्व जन्म में भी लाल उदायी सज्जनों की निंदा करता था और उस जन्म में भी मल कूप में जा गिरा था। तथागत ने समझाते हुए कहा, "भिक्षुओं ! लाल उदायी ने धर्म का अभ्यास नाम मात्र किया है और स्वाध्याय तो लेश-मात्र भी नहीं किया। इस तरह नाम मात्र का धर्म ग्रहण करना और फिर उसका अभ्यास न करना, एक प्रकार का मल ही है।"

फिर उन्होंने यह गाथा कही।

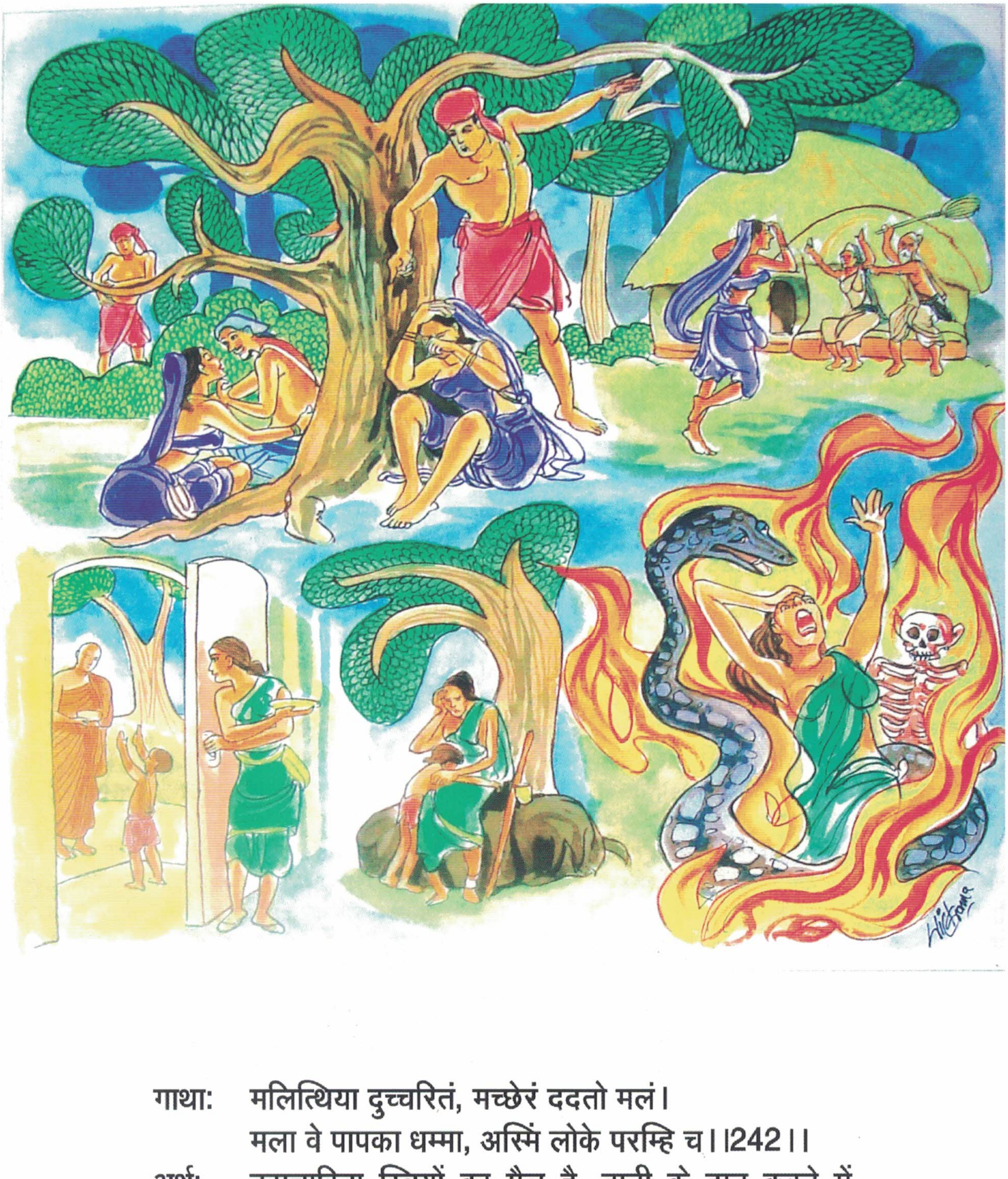

गाथा: मलित्थिया दुच्चरितं, मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा, अस्मिं लोके परम्हि च।।242।।

अर्थ: दुराचारिता स्त्रियों का मैल है, दानी के दान करने में कंजूसी मैल है तथा इस लोक तथा परलोक में किए गए अकुशल कर्म- ये तीनों ही मैल (मल) कहलाते हैं।

लोक-परलोक में मैल क्या है ?
व्यभिचारिणी पत्नी की कथा

स्थान : जेतवन, राजगृह

वेणुवन में प्रवास काल में बुद्ध ने ये दोनों गाथाएं एक सम्मानित परिवार के युवक के सम्बन्ध में कही थी जिसकी पत्नी व्यभिचारिणी थी।

कथानुसार एक युवक का अपने ही समकक्ष परिवार की एक युवती से विवाह हो गया। विवाह के दिन से ही उसकी पत्नी अतिचारिणी थी। उसके व्यभिचार की चर्चा समाज में होने लगी। इससे वह युवक लज्जित महसूस करने लगा। किसी भी आदमी के पास जाने तथा लोगों में उठने-बैठने में वह संकोच का अनुभव करने लगा। उसका बौद्ध विहार जाना भी बंद हो गया। दैनिक पूजा-पाठ और ध्यान-साधना में भी उसे विरक्ति हो गई। कुछ दिनों के बाद उसे लगा कि उसे बुद्ध के पास जाना चाहिए। अतः वह बौद्ध विहार गया, उसने शास्ता को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। तब बुद्ध ने उससे पूछा, "उपासक ! क्या बात है ? बहुत दिनों से नहीं दिख रहे थे ? " उस युवक ने सारी कथा वृत्तान्त से सुना दी। तब तथागत ने उसे समझाया, "उपासक ! तुम्हारे एक पूर्व जन्म में भी मैंने तुम्हें बताया था, "स्त्रियाँ नदियों के सदृश होती हैं। समझदार आदमी को उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए,' लेकिन तुम्हें वह पूर्व जन्म की बात याद नहीं है, अतः तुम समझ नहीं पा रहे हो। तुम सांसारिक जाल में फँसे हुए हो अतः यह तुम्हें स्पष्ट नहीं हो पाया है।" उस युवक ने शास्ता से इस विषय पर और अधिक जानना चाहा। तब उन्होंने जातक को विस्तार से समझाया, "जैसे नदी, लम्बा राजमार्ग, शराबखाना, धर्मशाला तथा प्याऊ का व्यवहार सभी करते हैं अर्थात् जैसे ये सभी सर्वभोग्य हैं वैसे ही जगत में स्त्रियाँ भी सर्वभोग्य हैं। उनका उपभोग सभी करते हैं। अतः ज्ञानी जन स्त्रियों के विषय पर क्रोध नहीं किया करते हैं।" उन्होंने और स्पष्ट करते हुए समझाया, "स्त्री का अतिचारी होना, दानी का कृपण होना, लोक या परलोक में प्राणियों का अकुशल कर्म करना - ये तीनों ही विनाश के लक्षण हैं। अतः ये 'मल' कहलाते हैं। पर अविद्या, अज्ञान सबसे बड़ा 'मल' होता है। अतः भिक्षुगण ! इन मलों को त्यागकर निर्मल हो जाओ।"

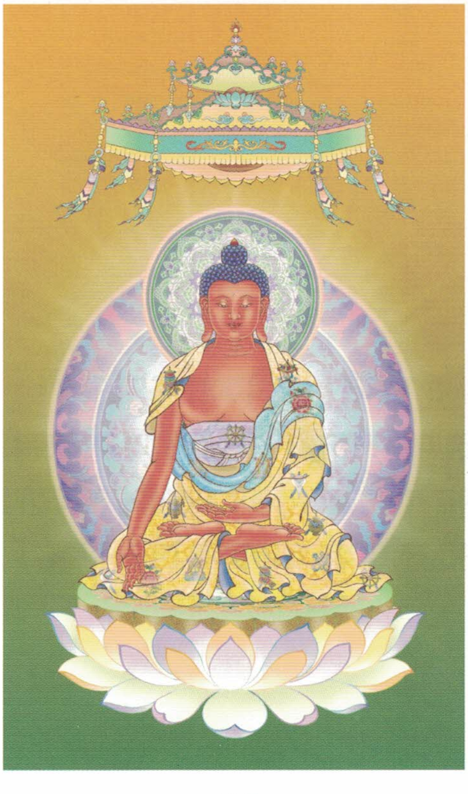

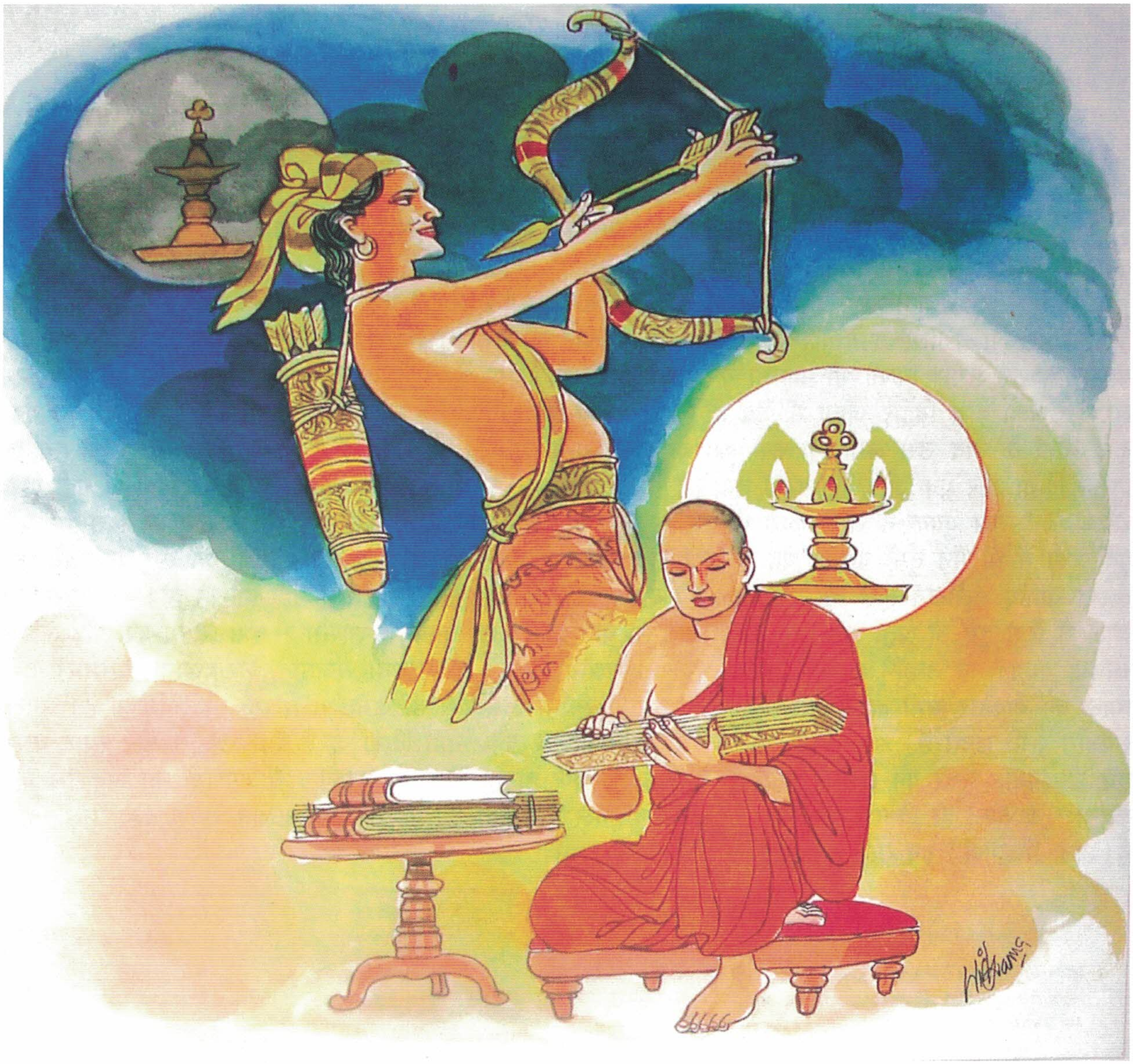

गाथा ततो मला मलतरं, अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहन्त्वान, निम्मला होथ भिक्खवो।।243।।

अर्थः इन सभी मलों से बढ़कर मैल है- अविद्या। अतः भिक्षुओं !
इन सभी मलों को त्यागकर निर्मल बनो।

सबसे बड़ा मैल : अविद्या
व्यभिचारिणी पत्नी की कथा

टिप्पणी: स्त्री का सबसे बड़ा दोष उसका दुश्चरित्र होना है। समकालीन धार्मिक शिक्षकों में बुद्ध ही सबसे अधिक उदारवादी माने जाते हैं। बुद्ध ने ही सर्वप्रथम स्त्रियों को समाज में सम्मान दिलाने की चेष्टा की थी और उनके स्तर को उठवाया था। उनके प्रयत्न से ही स्त्रियों को समाज में अपनी उपादेयता की अनुभूति हुई और सबसे पहले उन्होंने समाज में अपना महत्व समझा। बुद्ध से पूर्व समाज में स्त्रियों को बहुत ही हीन भावना से देखा जाता था। कुछ लोगों की मान्यता थी कि स्त्रियाँ नरक के मार्ग पर जाने का प्रकाश दिखाती थीं। बुद्ध ने स्त्रियों को अपमानित नहीं किया, उन्होंने उनको चंचल स्वभाव वाला बताया। उन्होंने पूर्णतः माना की समाज के विकास के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का ही योगदान है और उन्होंने दोनों को ही प्रतिष्ठा दी। आत्मशुद्धि, पवित्रीकरण या सेवा भाव के लिए लिंग व्यवधान नहीं है।

यदा कदा पालि भाषा में स्त्रियों को सम्बोधित करने के लिए 'मातुगम' शब्द का व्यवहार किया जाता है। इसका अर्थ होता है - 'माता का समूह' या 'माता का समाज।' माता को बौद्ध धर्म में बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। माता को वह सीढ़ी माना गया है जिसके द्वारा आदमी आसानी से स्वर्ग को जाता है और पत्नी को पति का सर्वश्रेष्ठ मित्र (परम सखा) माना गया है।

यद्यपि प्रारंभ में बुद्ध ने सुनिश्चित कारणों से स्त्रियों का संघ में प्रवेश वर्जित कर रखा था, फिर भी बाद में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आदरणीय आनन्द तथा अपनी पालन-पोषण करने वाली माता, महा पजापति गौतमी के अनुरोध पर स्त्रियों के प्रवेश की अनुमति दे दी। उसी के बाद भिक्षुणियों का भी संघ बनाया गया। इस प्रकार बुद्ध ही थे जिन्होंने भिक्षुणियों के लिए सबसे पहले पहल कर संघ का गठन किया था।

गाथा सुजीवं अहिरिकेन, काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन, सङ्किलिट्ठेन जीवितं।।244।।

अर्थः पाप के प्रति निर्लज्ज होकर, कौवे जैसा स्वार्थी बनकर, दूसरों का अहित करते हुए, पापी, पतित बनकर, मिथ्या ढंग से अपनी चतुरता से जीवन सुखपूर्वक जी लिया जाता है।

पापी मिथ्या ढंग से जीवन जी लेता है
चूलसारि की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

ये दोनों गाथाएं शास्ता ने जेतवन में सारिपुत्त स्थविर के शिष्य चूलसारि के संदर्भ में कही थी जो वैद्यकर्म भी किया करता था।

कथा के अनुसार एक दिन चूलसारि ने नगर में वैद्य के रूप में उपासकों का ईलाज किया और उसके एवज में उपासकों ने उसे स्वादिष्ट भोजन दिया। वह भोजन लेकर विहार जा रहा था कि मार्ग में उसे स्थविर सारिपुत्त मिल गए। उसने भन्ते सारिपुत्त से कहा, "मैंने यह अति स्वादिष्ट भोजन वैद्यकर्म द्वारा अर्जित किया है। आप चाहें तो आप भी इसे ग्रहण कर लें।" स्थविर सारिपुत्त ने न तो उससे भोजन लिया और न ही उसे कोई बात कही। तब चूलसारि ने पुनः कहा, "मैं ईलाज करके नित्य इसी प्रकार का भोजन लाऊँगा।" भिक्षुओं के लिए इस प्रकार से भोजन प्राप्त करना शील के नियमों के विपरीत था। अतः चूलसारि को इस विधि से न तो भोजन प्राप्त करना चाहिए था और न भविष्य में भोजन प्राप्त करने की योजना बनानी चाहिए थी। अतः थेर सारिपुत्त ने कुछ नहीं कहा और चुपचाप शांत रहकर चल दिए।

विहार पहुँचने पर सारिपुत्त के साथ चल रहे भिक्षुओं ने शास्ता को सारी बताई । तथागत ने उनकी बातें सुनकर कहा, " भिक्षुओं ! सिर्फ लज्जाविहीन साधक ही एक कौए की तरह अपनी चतुराई दिखाते हुए इक्कीस प्रकार के निषिद्ध आजीविका को अपनाकर, अनुचित विधि से अपने लिए सुख सामग्री एकत्र कर लेता है। इसके विपरीत धर्म में आस्था रखने वाला साधक दुखपूर्वक जीवन जीता है। इस प्रकार उपदेश देकर तथागत ने ये दो गाथाएं कहीं।

टिप्पणीः जिस व्यक्ति की लज्जा खतम हो गई है, वह जो 'माँ' नहीं है उसको 'माँ' कह सकता है और जो 'पिता' नहीं है उसे पिता कह सकता है। इस प्रकार के इक्कीस गलत ढंग से जीवन यापन करता हुआ ऐसा व्यक्ति एक कौए की तरह सुखपूर्वक जीवन जी लेता है।

कौआ कैसे सुखपूर्वक जी लेता है ? धूर्त कौआ चावल-दाल चुराकर खाने की इच्छा संजोए किसी अच्छे परिवार के घर की दीवार पर चुपचाप बैठा हुआ अपना पूरा ध्यान अपने लक्ष्य पर केन्द्रित किए रहता है पर ऐसा दिखाता है जैसे उसका ध्यान भोजन की तरफ नहीं है या जैसे वह सो रहा हो। लेकिन जैसे ही परिवार वालों का थोड़ा सा भी ध्यान इधर-उधर होता है, वह कौआ बड़ी ही फुर्ती से झपट्टा मारता है। घर के लोग ताली बजाकर उसे मारने दौड़ते हैं पर इस बीच बर्तन से अपनी चोंच में भोजन भर कर भाग जाता है। लोग कुछ कर नहीं पाते।

निर्लज्ज भिक्षु भी कुछ इसी प्रकार का होता है। वह अन्य भिक्षुओं के साथ ग्राम में प्रवेश करता है पर जाता उधर है जहाँ उसे अधिक चावल-दाल मिलने की संभावना रहती है। जहाँ अन्य भिक्षु शरीर का वहन करने के लिए आवश्यक न्यूनतम भोजन की मात्रा लेकर चल देते हैं, वह अधिक मात्रा में भोजन लेता है। जहाँ अन्य भिक्षु विहार आकर भोजन कर ध्यान साधना या स्वाध्याय में और नहीं तो विहार की साफ-सफाई में लग जाते हैं, वह लालची भिक्षु कोई साधना कर्म नहीं करता है और एक बार पुनः गाँव की ओर वापस चल देता है।

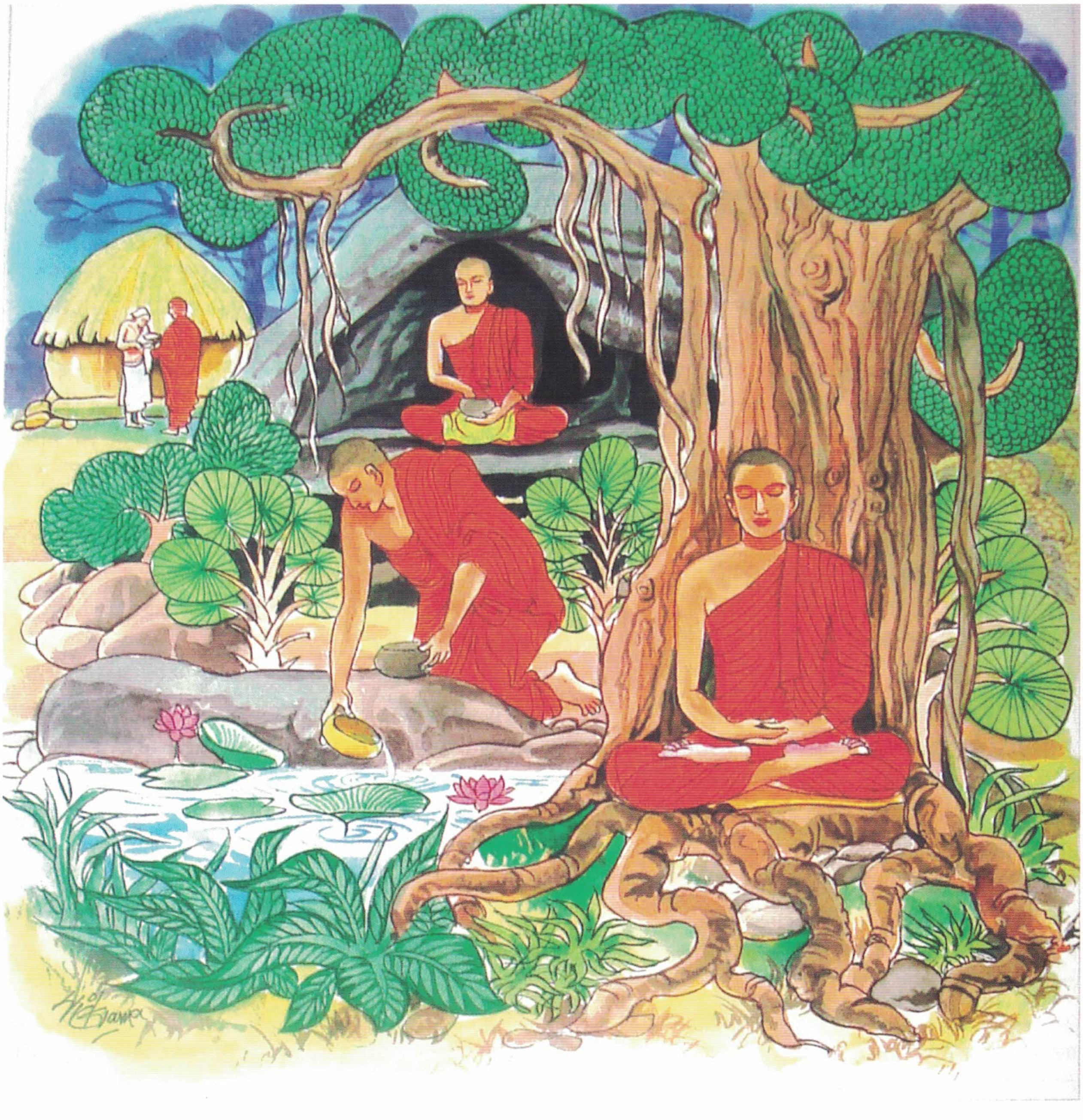

गाथा हिरीमता च दुज्जीवं, निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेनप्पगब्भेन, सुद्धाजीवेन पस्सता।।245।।

अर्थः किन्तु लज्जावान, नित्य पवित्रता बरतने वाले, आलस्य मुक्त, मितभाषी, पवित्र जीविका वाले ज्ञानी साधक का भौतिक जगत का जीवन कठिनाई से बीतता है।

पवित्र साधक का जीवन कठिनाई से बीतता है
चूलसारि की कथा

गाँव में जाकर वह उस घर की ओर चला जाता है जहाँ जाने का निश्चय उसने प्रातः ही कर लिया है। उस घर पर जाकर दरवाजा खटखटाता है और भले ही घर के लोग शोक ग्रस्त होकर क्रंदन कर रहे हों, वह दरवाजा खुलवा कर जबरदस्ती अंदर चला जाता है। ऐसे बेशर्म अतिथि को देखकर घर वाले उसे बैठने के लिए आसन देते हैं और वह वहाँ बैठ जाता है। घर वाले उसे भोजन की भिक्षा देते हैं। जितना खाने की क्षमता हो, उतना भोजन कर, वह भिक्षु पुनः बाकी भोजन को साथ ले वापस चल देता है।

इस प्रकार के स्वभाव वाले भिक्षु को 'काकशूर' कहते हैं। ऐसा निर्लज्ज भिक्षु सुखमय जीवन व्यतीत करने में कुशल होता है।

इसी प्रकार कुछ भिक्षु ऐसे भी होते हैं, जिन्हें 'ध्वंसी' कहा जाता है। इनकी आदत होती है कि ये दूसरों के गुणों का ध्वंस करते हैं। ऐसा ध्वंसी पुरुष अपना और दूसरों का नाश ही करता है।

भिक्षुओं के एक अन्य समूह को जो व्यर्थ की उछल कूद मचाता है, 'पक्खन्दिना' कहते हैं।

इस प्रकार निर्लज्ज भिक्षुओं का जीवन सांसारिक दृष्टि से सुखमय होता है।

दूसरी ओर आत्मसंयम और अनुशासन के साथ जीवन जीने वाला भिक्षु कष्टमय जीवन जीता है। वह अपने लाभ के लिए जो माता नहीं है उसे 'माता' नहीं कह सकता, धर्म विरुद्ध बातों को वह मल की तरह त्याग देता है। भोजन उतना ही ग्रहण करता है जितनी शरीर को आवश्यकता है । सांसारिक दृष्टि से वह सुखमय जीवन नहीं जीता। वरन् लोगों की दृष्टि में उसका जीवन 'सूखा' होता है।

दूसरे शब्दों में अगर किसी के पास 'हया' नाम की कोई चीज नहीं है, तो ऐसे आदमी का सांसारिक जीवन आसान होता है क्योंकि वह जैसा जीवन चाहे, वैसा जी सकता है। उसे लोक-लज्जा से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है। वह हठी कौए की तरह अपने लाभ के लिए कुछ भी कर सकता है, किसी का कुछ भी नुकसान पहुँचा सकता है। जैसे कौए का जीवन गंदा होता है वैसे ही ऐसे व्यक्ति का जीवन भी मलीन होता है। वह घमंडी होता है और अपने दंभ का प्रदर्शन करता हुआ, दूसरों की परवाह किए बिना जीवन जीता है।

नम्र व्यक्ति का जीवन कठिन होता है। जो व्यक्ति संवेदनशील, संयमित है और सदैव पवित्र उद्देश्यों का ही अनुपालन करता है, आसक्त नहीं है और अपनी अर्न्तप्रज्ञा से कार्य करता है, उसका जीवन सांसारिक दृष्टि से रूखा-सूखा होता है।

अतः उचित-अनुचित क्या है ? यह संसार एक जादू का खिलौना है। हम जो चाहेंगे, वही पायेंगे। प्रश्न का उत्तर हमारे पास है। हम सांसारिक दृष्टि से धनी, सुखी होना चाहते हैं या आध्यात्मिक दृष्टि से ? निर्णय हमारा खुद का होगा।

सांसारिक वस्तुएं नश्वर हैं। हमें आज नहीं तो कल उन्हें यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। अतः अगर हम दूर की सोचें तो यही पायेंगे कि 'संसार का मिलना' वास्तव में भूसा प्राप्त करने के समान है। दूसरी ओर अगर हमारी आध्यात्मिक उन्नति होती है तो इस प्रक्रिया में 'संसार खो जाता है'। लेकिन दूर-दूर तक का हिसाब लगाएं, जन्म-जन्मों की गणना करें तो इस प्रकार 'संसार का खोना' खोना नहीं है। ऐसा 'खोना' तो वास्तव में सोना प्राप्त करने के समान है।

अगर हम बुद्ध के जीवन को गहराई से समझने की कोशिश करें तो हमारी शंका निर्मूल हो जाएगी।

गाथा यो पाणमतिपातेति, मुसावादं च भासति।
लोके अदिन्नंमादियति, परदारञ्च गच्छति।।246।।

अर्थ: जो जीव हिंसा करता है, असत्य बोलता है, जो चीजें उसकी नहीं हैं उसे ले लेता है अर्थात् चोरी करता है तथा पराई स्त्री से सम्बन्ध रखता है।

पापकर्मी पाप का फल पायेगा
पाँच सौ उपासकों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शास्ता ने ये गाथाएं जेतवन विहार में पाँच भिक्षुओं के सम्बन्ध में कही थीं जो आपस में वाद-विवाद में उलझ गए थे कि कौन सा शील अधिक श्रेष्ठ है।

कथानुसार श्रावस्ती में किसी समय पाँच सौ उपासकों ने उपोसथ व्रत रखा और शील पालन प्रारंभ किया। हर एक उपासक एक शील का अनुपालन करता था। जैसे एक उपासक सिर्फ इसी शील का पालन करता था कि प्राणी हत्या नहीं करेगा, जीवन नहीं लेगा। दूसरा उपासक 'प्राणातिपाप से विराम' के अतिरिक्त किसी दूसरे शील का पालन नहीं करता था। वह सिर्फ उसी शील का पालन करता था। इस प्रकार एक दिन पाँच उपासक जो एक-एक शील का पालन कर रहे थे आपास में भिड़ गए। उनमें आपस में चर्चा होने लगी कि उनके द्वारा पालन किया जाने वाला शील ही सबसे कठिन है। उनका कहना था, "इस शील का पालन करना ही सबसे कठिन है, और मैं इस सबसे कठिन शील के पालन में लगा हूँ।" जब आपस में उनके वाद-विवाद से कोई हल नहीं निकला तो वे शंका समाधान हेतु शास्ता के पास पहुँचे और उनसे ही यह प्रश्न कर डाला। तब शास्ता ने उन्हें समझाया, "किसी भी एक शील को छोटा नहीं समझना चाहिए। यही समझना चाहिए कि इनमें से प्रत्येक का पालन करना अति दुष्कर है।"

इस प्रकार समझाने के बाद बुद्ध ने ये गाथाएं कहीं।

टिप्पणी: इन तीनों गाथाओं में पंचशील का जिक्र आता है। गृहस्थ से भी आशा की जाती है कि वह अपने जीवन में पंचशील का पालन करेगा। वस्तुत: बौद्ध शिक्षा पूर्णत: शील पर आधारित है और पंचशील आचार-विचार का न्यूनतम स्तर है। आध्यात्मिक मार्ग के पथिक को कम से कम पंचशील का पालन तो करना ही पड़ेगा। ऐसा नहीं करने से वह अध्यात्म का क, ख, ग भी नहीं जान पायेगा।

ये पाँच शील हैं:-

(i) मैं प्रण करता हूँ कि किसी भी प्रकार की जीव हत्या नहीं करूँगा।

(ii) मैं प्रण करता हूँ कि जिस वस्तु पर मेरा हक नहीं है उसे प्राप्त करने के लिए चेष्टा नहीं करूँगा अर्थात् चोरी नहीं करूँगा।

(iii) मैं प्रण करता हूँ कि मैं किसी से गलत यौन सम्बन्ध नहीं रखूँगा।

(iv) मैं प्रण करता हूँ कि मैं कभी भी मिथ्या वचन का उच्चारण नहीं करूँगा।

(v) मैं प्रण करता हूँ कि मैं कभी भी शराब एवं अन्य नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।

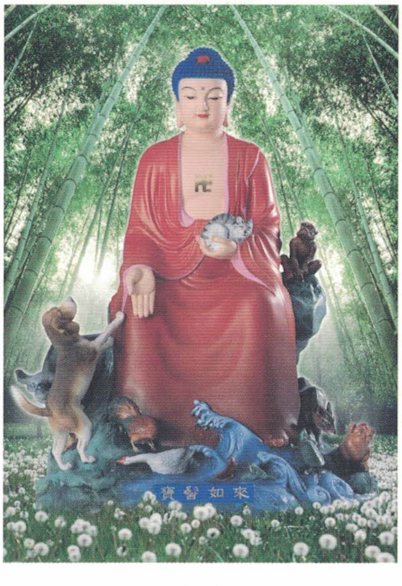

गाथा सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं, मूलं खणति अत्तनो।।247।।

अर्थः जो मद्यपान का अभ्यस्त हो गया है वह इस लोक में स्वयं अपनी जड़ खोदता है अर्थात् अपने लिए विनाश का मार्ग बनाता है।

पापी स्वयं अपनी जड़ खोदता है
पाँच सौ उपासकों की कथा

सर एडविन आर्नल्ड ने अपनी पुस्तक "लाइट ऑफ एशिया" में इसका जिक्र किया है। इसका हिन्दी रूपान्तरण कुछ इस प्रकार है:-

दया के नाते करो मत जी हिंसा भ्राता !
क्षुद्र से अति क्षुद्र यह जो जीव है दरसाता।
करते पूरा भोग, ऊँचे जाते पंथ सुधार,
बाधा मत डालो तुम, इनको बीच में ही मार।

बने जो कुछ देओ-लेओ तुम इस जग में,
कुछ मत लो पर तुम लोभ वश पड़ छलबल में।
दो न साक्षी झूठी, मत करो निंदा जान,
सत्य बोलो, सत्य ही है शुद्धता की खान।

मत पीओ मद, बुद्धि नष्ट कर हर लेता है ज्ञान,
शुद्ध जिसका मन, उसे क्या सोमरस का पान ?
दृष्टि मत डालो पराई नारी पर कर घात,
करो न अपनी इंद्रियों को पाप में रत, भ्रात !

इन शीलों को दैनिक जीवन में व्यवहार में उतारा जाना चाहिए। वे मात्र मंत्र की तरह उच्चारण करने हेतु नहीं हैं। वाणी के स्तर पर सिर्फ उच्चारण करने से या मात्र यह उम्मीद लगाने से कि दूसरे इनको जीवन में उतारेंगे, किसी का भी लाभ नहीं होने वाला है।

बहुत ही सुन्दर ढंग से इसे यूँ समझाया गया है:- "अगर कोई इन गाथाओं को हृदय से याद कर ले पर जीवन में उसे नहीं उतारे तो वह व्यक्ति वैसा ही है जैसे उसने रोशनी तो जला ली है पर उसके बाद उसने अपनी आँखें मूँद ली हैं।"

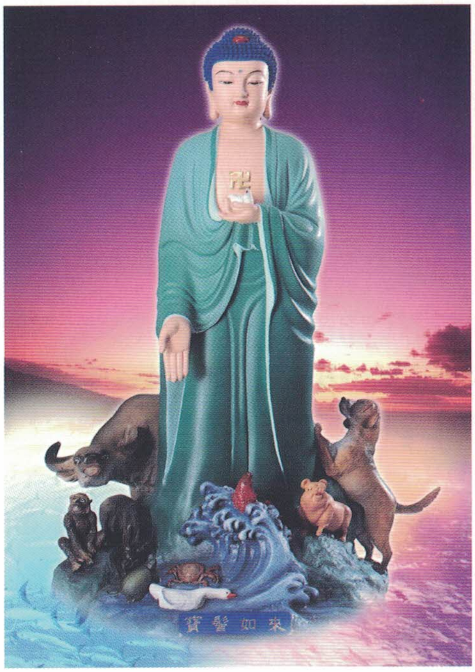

गाथा: एवं भो पुरिस जानाहि, पापधम्मा असञ्ञता।
मा तं लोभो अधम्मो च, चिरं दुक्खाय रन्धयुं।।248।।

अर्थ: हे पुरुष ! कृपया यह जान लो कि अगर तुम संयम रहित हो तो तुम लोक में पाप कर्म ही करते रहोगे। अगर ऐसा हुआ तो तुम्हें लोभ और अधर्म अनन्त काल तक जलाता रहेगा।

सावधान ! लोभ और अधर्म से बचें
पाँच सौ उपासकों की कथा

बौद्ध धर्म गृहस्थ से उस प्रकार के शील की आशा नहीं करता जैसा कि संघ के किसी भिक्षु से। लेकिन कोई गृहस्थ है या संन्यासी - उर्ध्वमार्ग के पथिक के लिए शील का पालन अति आवश्यक है। अगर कोई बौद्ध धर्म में आस्था रखता है और बुद्ध, धर्म तथा संघ के त्रिरत्न को जीवन में धारण करता है तो फिर उसके लिए पंचशील का अनुपालन मानों पहली सीढ़ी है। उनका अनुपालन एक दिन, सप्ताह, महीना या सिर्फ वर्ष भर ही नहीं किया जाना चाहिए। वरन् जीवन पर्यन्त ही नहीं प्रत्येक जन्म में भी किया जाना चाहिए। हर पल, हर क्षण का महत्व है क्योंकि जैसे दुर्घटना एक पल में हो जा सकती है उसी प्रकार एक क्षण की असर्तकता से चूक हो जा सकती है। कहा भी गया है- "सतर्कता हटी, दुर्घटना घटी।"

पंचशील के अनुपालन में हमें इसलिए भी सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि सावधानी नहीं बरतने से किसी भी स्तर पर साधक द्वारा गलती होने पर शील भंग होने का भय बना रहता है । शील भंग होने की संभावना तब तक बनी रहेगी जब तक साधक स्रोतापन्न की स्थिति प्राप्त नहीं कर लेता है। तमाम सावधानियों के बावजूद संभव है कभी हमसे शील भंग हो जाए। तब अपनी असफलता या कमजोरियों पर रोने से कोई लाभ नहीं क्योंकि अफसोस करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होने वाला है। इससे सिर्फ हमारा मन व्यथित होगा। उचित यही होगा कि अपनी गलती पुनः न दुहराने का दृढ़ निश्चय कर एक बार फिर आगे की ओर कूच कर जायें।

गाथा ददाति वे यथासद्धं, यथापसादनं जनो।
तत्थ यो च मड्कु होति, परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा, समाधिमधिगच्छति।।249।।

अर्थः लोग दान प्राप्त कर्ता के ऊपर उनकी कितनी श्रद्धा और भक्ति है, इस पर दान देते है। जो दूसरों को खाता पीता देख जलने लगता है वह कभी भी न तो दिन और न रात में एकाग्रता प्राप्त कर सकेगा।

कौन एकाग्रता प्राप्त नहीं कर सकेगा ?
तिष्य भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में अपने प्रवास के दौरान बुद्ध ने उक्त गाथाएं एक नवयुवक भिक्षु के संदर्भ में कही थीं।

कथानुसार तिष्य नाम का एक नवयुवक भिक्षु सदा दूसरों में दोष खोजा करता था। वह अनाथपिंडिक तथा विशाखा द्वारा दिए जा रहे दान में भी छिद्रान्वेषण करता था। उसकी टिप्पणी से कोई भी अछूता नहीं रह पाया था। राजा द्वारा दिए गए दान की भी निंदा करता था। अगर कोई उसे खाने की ठंढी चीज देता तो वह शिकायत करता कि यह चीज ठंढी है और अगर कोई गर्म चीज देता तो वह शिकायत करता कि यह चीज गर्म है। अगर कोई उसे थोड़ी खाद्य सामग्री देता तो वह शिकायत करता, "इतनी कम मात्रा में क्यों दे रहे हो ?" और यदि कोई पर्याप्त मात्रा में भोजन देता तो उसकी भी निन्दा करते हुए कहता, "इतना अधिक क्यों दे रहे हो ? पात्र में वैसे ही जूठा छूट जाएगा। घर में रखने के लिए जगह नहीं है क्या ? भिक्षु को तो अल्पाहारी होना चाहिए। बर्बाद करने से क्या लाभ ?" आदि, आदि। दूसरी ओर उसे जब भी अवसर प्राप्त होता, अपने परिवार के सदस्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करता था। अपने परिवार वालों के संदर्भ में वह अक्सर कहा करता, "हमारा और हमारे सम्बन्धियों का घर तो कुएं के समान है जिसका पानी कभी समाप्त नहीं होता। कोई भी आये और जिसे जितना चाहिए ले जाए। मुँह माँगा दान मिलेगा।" इस प्रकार वह सदैव अपने परिवार की प्रशंसा किया करता था।

वास्तव में तिष्य एक द्वारपाल का पुत्र था। एक बार वह कुछ बढ़ई लोगों के साथ कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसलिए श्रावस्ती पहुँच कर उसने संसार से संन्यास ले लिया और एक भिक्षु बन गया।

गाथा यस्स चेतं समुच्छिन्नं, मूलघच्चं समूहतं।
स वे दिवा वा रत्तिं वा, समाधिमधिगच्छति।।250।।

अर्थ: जिसके चित्त से उपरोक्त जलन का समूल नाश हो गया है, वह दिन-रात, सदैव शांतचित्त रहकर सदैव आसानी से एकाग्रता प्राप्त कर लेगा।

कौन एकाग्रता प्राप्त करेगा ?
तिष्य भिक्षु की कथा

तिष्य द्वारा निरंतर निन्दा और स्तुति सुनते-सुनते जब सभी भिक्षुओं के कान पक गए तब उन्होंने सोचा, "क्यों न हम तिष्य के परिवार वालों की वास्तविकता की जाँच करें कि तिष्य की बातों में कितनी सच्चाई है ?" इसलिए उन्होंने उससे पूछा,"भन्ते! तुम्हारे परिवार के सदस्यगण कहाँ रहते हैं ?" तिष्य ने जवाब दिया,"फलाँ, फलाँ गाँव में।" तब भिक्षुओं ने कुछ तरुण भिक्षुओं को उस गाँव में वस्तुस्थिति पता लगाने के लिए भेजा। गाँव वासियों ने उन तरुण भिक्षुओं का स्वागत किया। उन्होंने उनके आवास और भोजन की व्यवस्था भी कर दी। युवक भिक्षुओं ने ग्रामवासियों से पूछा, "इस गाँव का एक युवक गाँव से निकलकर भिक्षु बना है। उसके परिवार वाले कौन हैं ? उसका नाम तिष्य है।" ग्राम वासियों ने सोचा, "हमारे कुल गृह से तो कोई भी अभी तक भिक्षु नहीं हुआ है। ये नवयुवक क्या पूछ रहे हैं ?" फिर सोचकर उन्होंने उन भिक्षुओं से कहा, "भन्ते ! हमारे एक द्वारपाल का पुत्र कुछ बढ़ई लोगों के साथ बाहर गया था और उधर ही श्रावस्ती में उसने संसार से संन्यास ले लिया। संभवत: आप उसकी ही चर्चा कर रहे हैं। आप उसी के विषय में तो नहीं पूछ रहे हैं ?" इस प्रकार उन भिक्षुओं ने तिष्य के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली कि उसका कोई ऐश्वर्यवान सम्बन्धी उस ग्राम में नहीं रहता था। वे वहाँ से श्रावस्ती वापस आ गए और अपने से वरीय भिक्षुओं को सच्चाई बता दी, "भन्ते ! तिष्य अकारण ही सभी जगह अपने बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बोलता रहता है।" इस प्रकार भिक्षुओं के समक्ष तिष्य के वाग्जाल की पोल पूरी तरह खुल गई।

बात बुद्ध तक पहुँची। तब बुद्ध ने कहा, "शिष्यों ! ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि तिष्य बढ़ा-चढ़ा कर बोल रहा है। इससे पूर्व जन्म में भी वह नमक-मिर्च मिलाकर बातें करता रहा है। पहले भी वह बिना किसी बात के अपनी डफली, अपना राग बजाता रहा है।" शिष्यों ने उसके पूर्व जन्म की कहानी विस्तार से जाननी चाही। तब तथागत ने कटाहक जातक की कथा सुनाई और उपदेश दिया, "भिक्षुओं ! जो कलुषित हृदय का पुरुष, दूसरों द्वारा थोड़ा या बहुत रूखा-सूखा दान दिए जाने पर, या दूसरों को दिए जाने पर और स्वयं को नहीं दिये जाने पर दुखी हो जाता है, उसको ध्यान तथा विपश्यना भावना या मार्गफल प्राप्त नहीं होता।"

इस प्रकार उपदेश देकर बुद्ध ने उक्त गाथाएं कहीं।

गाथा नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी।।251।।

अर्थः संसार में रागाग्नि से बढ़कर कोई अग्नि नहीं है, द्वेष के समान कोई ग्रहण नहीं है, मोह के समान कोई मायाजाल नहीं है और तृष्णा के समान गहरी कोई नदी नहीं है।

राग की आग : न बुझने वाला दावानल
पंच उपासकों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह देशना बुद्ध ने पाँच उपासकों को ध्यान में रखकर कही थी।

कथानुसार एक बार पाँच उपासक धर्म-उपदेश सुनने की इच्छा से बुद्ध के पास जाकर बैठ गए। तथागत उन पाँचों को गम्भीर उपदेश देने लगे। स्थविर आनन्द वहीं पर शास्ता को पंखा झल रहे थे और इन उपासकों को देख रहे थे।

आनन्द ने देखा कि उन पाँच श्रोताओं में से एक बैठे ही बैठे सोने लगा, दूसरा जमीन पर अँगुली से लकीर खींच रहा था, तीसरा एक वृक्ष के पत्तों और डाली को हिलता हुआ देखकर प्रसन्न हो रहा था, चौथा सिर्फ आकाश की ओर देखे जा रहा था। सिर्फ पाँचवाँ उपासक ध्यानचित्त हो एकाग्रता पूर्वक बुद्ध-प्रवचन सुन रहा था।

आनन्द इन उपासकों की गतिविधियों को देखकर अपने आप को रोक नहीं सके। उन्होंने शाक्य-मुनि से कहा, "भन्ते ! आप इतना प्रयत्न कर इन सबों को प्रेमपूर्वक प्रवचन दे रहे हैं पर इनमें से एक को छोड़ कर और कोई भी आपका धर्म प्रवचन ध्यान-पूर्वक नहीं सुन रहा है।"

तब बुद्ध ने आनन्द को समझाया कि ये पाँचों उपासक अपने-अपने पूर्व जन्म की आदतों से लाचार थे।

पहला उपासक पाँच सौ जन्मों तक नाग योनि में पैदा होता रहा। अत: फण पर सिर रखकर सोना उसकी आदत बन गई है। दूसरा उपासक पाँच सौ वर्षों तक केचुआ की योनि में रहा। अत: जमीन पर मिट्टी खोदना उसकी आदत बन गई है। तीसरा उपासक अपने पूर्व जन्मों में बंदर था। अत: वह वृक्ष की डाली और पत्तों को हिलता-डोलता देख प्रसन्न होता था। चौथा उपासक पिछले पाँच सौ वर्षों से ग्रह-नक्षत्र का अध्ययन करता रहा है। अत: वह सदैव आकाश की ओर ही ध्यान गड़ाये रहता है। हाँ, पाँचवाँ उपासक पूर्व जन्मों में भी धर्म पारायण था। अत: इस जन्म में भी उसकी धर्मश्रवण में रुचि रही है।

तब आनन्द ने शास्ता से पूछा, "क्या कारण है कि इंसान धर्म के मार्ग पर चल नहीं पाता है ?" तब बुद्ध ने जवाब दिया, "आनन्द ! लोग राग, द्वेष, तृष्णा और मोह में लिप्त होने के कारण धर्मोपदेश ग्रहण नहीं कर पाते। राग के समान इस सृष्टि में कोई अग्नि नहीं है। वह प्राणी को जलाने के बाद जरा सा भस्म भी नहीं छोड़ती है। यह समझो कि प्रलय के समय जो सात सूर्य उदित होते हैं वे भी राग के सामने कमजोर पड़ जाते हैं। वे जब सृष्टि को जलाते हैं तो प्रकृति में कुछ न कुछ अनजला हुआ छूट जाता है। पर इस रागाग्नि से हर प्राणी पूर्णत: जलकर राख हो जाता है। सात सूर्यों की गर्मी तो बहुत समय के अन्तराल के बाद, कभी-कभी पैदा होती है। पर रागाग्नि के पैदा होने का कोई समय नहीं है। यह कभी भी पैदा होकर प्राणी को भस्मीभूत कर सकती है। इस प्रकार राग से बढ़कर कोई आग नहीं है, द्वेष के समान कोई ग्रहण, मोह के समान कोई मायाजाल तथा तृष्णा के समान कोई गहरी नदी नहीं है।"

गाथा सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं, अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि, ओपुनाति यथा भुसं।
अत्तनो पन छादेति, कलिंव कितवा सठो।।252।।

अर्थ: पर दोष देखना आसान है, अपना दोष देखना कठिन। आदमी दूसरों के दोषों को भूसे की तरह फैलाता है ताकि सभी देख सकें। परन्तु अपने दोषों को इस प्रकार छिपाता है जैसे एक धूर्त जुआरी अपने पासे को छिपाता है या जैसे एक धूर्त बहेलिया पक्षियों को मारने के उद्देश्य से अपने आप को पेड़ों के पत्तों से छिपाता है।

दूसरों का दोष देखना आसान है, अपना कठिन
मेण्डक श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जातिवन (भद्दियनगर)

भद्दिय नगर में वास करते समय बुद्ध ने यह गाथा मेण्डक के एक धनी श्रेष्ठी एवं उसके परिवार के सम्बन्ध में कही थी।

एक बार बुद्ध अंग-उत्तरा क्षेत्र में पधारे। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि मेण्डक, उसकी पत्नी, उसके पुत्र, पुत्र-वधू, पोती और नौकर-सभी का स्रोतापन्न प्राप्त करने का समय आ गया। उनका कल्याण करने के उद्देश्य से बुद्ध भद्दिय नगर पधारे।

मेण्डक एक बहुत ही धनी श्रेष्ठी था। कहा जाता था कि उसके आँगन में भेंड़-बकरियों के आकार की स्वर्ण-मूर्तियाँ रखी थीं। इसलिए लोग उसे मेण्डक (भेंड़) श्रेष्ठी कहकर पुकारते थे।

मेण्डक और उसके परिवार ने सुना कि बुद्ध भद्दिय पधारे हैं। अतः वे उनका दर्शन-लाभ करने के लिए भद्दिय की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें तैर्थिक मिले और उन्होंने मेण्डक से पूछा, "गृहस्थ ! ऐसा कैसे है कि तुम तो आत्मा की क्रियाशीलता में विश्वास रखते हो फिर भी अनात्मवादी, अक्रियावादी गौतम के पास जा रहे हो।" इस प्रकार तैर्थिकों ने उसे और उसके परिवार को रोकना चाहा। लेकिन मेण्डक ने उनकी बातों को अनसुनी कर दी और विहार की ओर कूच कर गया। विहार पहुँच कर उसने शास्ता को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया। तब बुद्ध ने उसे क्रमबद्ध तरीके से धर्म पाठ सुनाया। धर्मदेशना सुनकर मेण्डक, पत्नी चंद्रप्रभा, पुत्र धनंजय, पुत्रवधू सुमन देवी, नतिनी विशाखा और पूर्ण नाम का दास, सभी स्रोतापन्न हो गए।

तब मेण्डक ने बुद्ध को बताया कि रास्ते में तैर्थिक मिले थे तथा उन्होंने मेण्डक को समझाया था कि वह बुद्ध के पास न जाए। वहाँ कोई लाभ मिलने वाला नहीं है।

बुद्ध ने उन्हें समझाया, "शिष्यों ! लोगों की प्रकृति है कि वे अपना दोष नहीं देखते हैं। दूसरी ओर वे अन्य लोगों के दोष और उनकी कमजोरियाँ बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा परवज्जानुपस्सिस्स, निच्चं उज्झानसञ्जिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति, आरा सो आसवक्खया।।253।।

अर्थ: जो सदा दूसरों के दोष देखता है और दूसरों से ईर्ष्या करता है उसके चित्तमल लगातार बढ़ते जाते हैं। उसके चित्तमल का क्षय नहीं होता है।

चित्तमल क्यों बढ़ता है ?
थेर उज्झानसंज्ञि की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध ने यह गाथा जेतवन विहार में कही थी।

थेर उज्झानसंज्ञि की आदत थी कि वे सदा दूसरों के दोष ढूँढ़ निकालते थे और दूसरों की निन्दा किया करते थे। भिक्षुओं ने बुद्ध को इस बात की जानकारी दी। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओ ! यदि कोई दूसरों के दोष इसलिए ढूँढ़ता है कि वह उन्हें बता सके और उनका सुधार कर सके तो उसमें कोई दोष नहीं है। वह व्यक्ति कोई गलत काम नहीं कर रहा है। लेकिन अगर कोई सदैव दूसरों के दोष मात्र ढूँढ़ने के उद्देश्य से ढूँढ़ता रहता है और उनकी निन्दा करता रहता है तो वह व्यक्ति निश्चय ही गलत काम कर रहा है। ऐसे व्यक्ति का चित्त ध्यान में नहीं लगेगा और उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। उसे धर्म के तत्व समझ में नहीं आयेंगे और उसके आस्रव बढ़ते ही जायेंगे।"

तब बुद्ध ने यह गाथा कही।

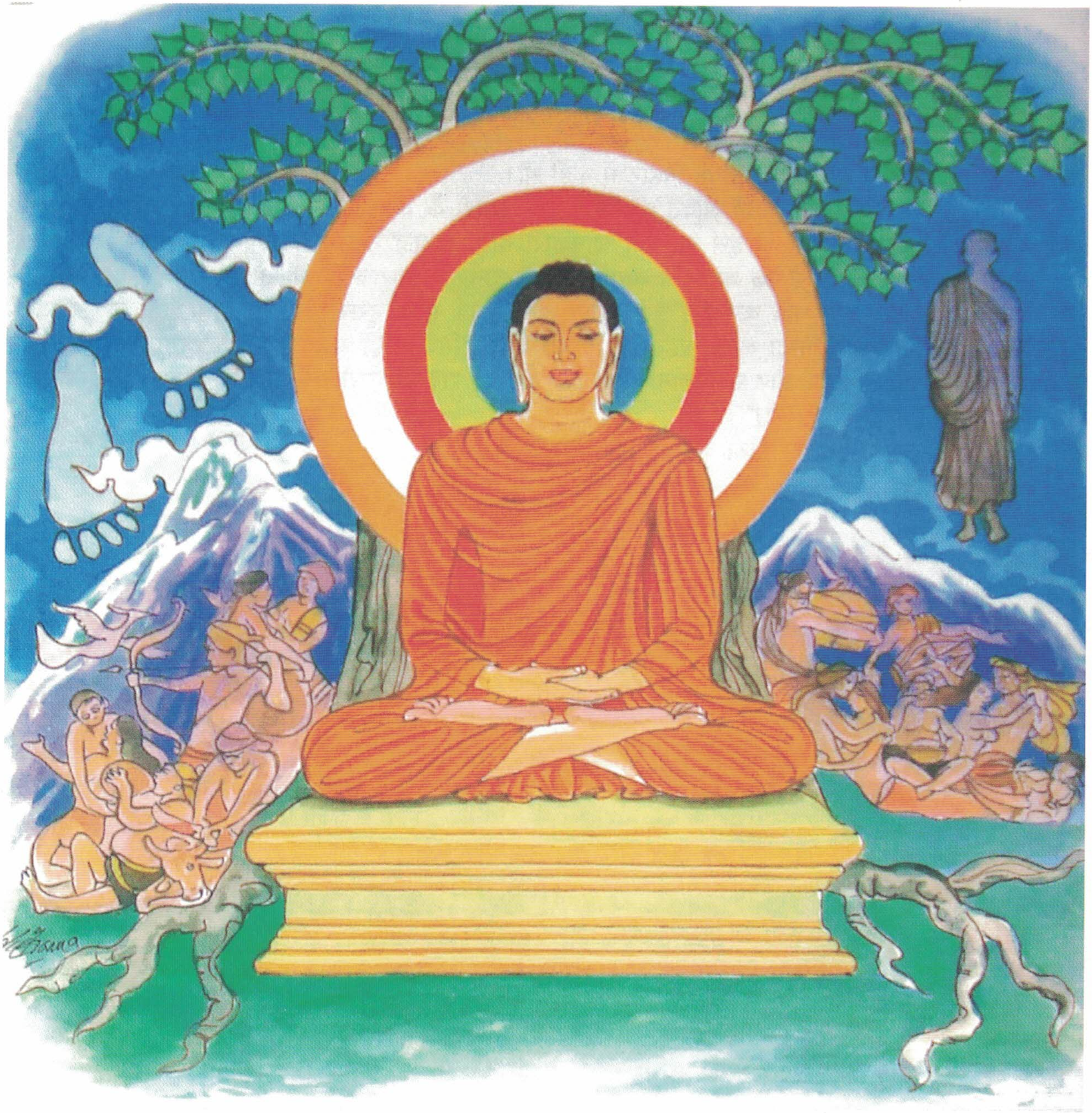

गाथा: आकासे पदं नत्थि, समणो नत्थि बाहिरे।
पपच्चाभिरता पजा, निप्पपञ्चा तथागता।।254।।

अर्थ: आकाश में कोई पदचिन्ह नहीं होता है अर्थात् उसका वर्ण या आकार नहीं होता है। बुद्ध के शासन के बाहर के संप्रदायों के साधनामार्ग द्वारा कोई श्रमण नहीं होता। लोग सांसारिक प्रपंचों में खोये रहते हैं परन्तु शाक्य-मुनि इन सभी प्रपंचों से ऊपर उठ चुके हैं।

बुद्ध शासन की विशेषता
परिव्राजक सुभद्र की कथा

स्थान : कुसीनगर (कुसिनारा)

कुसिनारा के मल्ल राजाओं के शाल जंगलों में बुद्ध ने इन गाथाओं को महापरिनिर्वाण से पूर्व सुभद्र के प्रश्न के उत्तर में कहा था।

कथा के अनुसार सुभद्र के छोटे भाई ने नौ बार नई फसल की उपज से भिक्षुसंघ को भोजन-दान दिया था पर सुभद्र को इस प्रकार के भोजन-दान में कोई रुचि नहीं थीं । लेकिन अंततः उसने भोजन-दान दिया। बुद्ध के महापरिनिर्वाण का समय आ गया था। सुभद्र ने सोचा, "मैं तीन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ रहा हूँ। मैंने अनेक संन्यासियों से उनका उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश की पर सफल नहीं हुआ। मैं बुद्ध को सदैव नौसिखुआ सोचता रहा। यह सोच मैंने उनसे शंका समाधान के लिए कभी प्रश्न नहीं किया। अब उनके महापरिनिर्वाण का समय आ गया है। अगर अभी भी मैं अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त नहीं करता हूँ तो मुझे इस बात का सदैव दुःख रहेगा।" इसलिए वह बुद्ध का दर्शन करने जा पहुँचा।

भन्ते आनन्द ने उसे बुद्ध दर्शन से रोकने की चेष्टा की। लेकिन बुद्ध ने आनन्द को समझाया, "आनन्द, सुभद्र को मत रोको। उसे आने दो और प्रश्न पूछने दो।" इस प्रकार सुभद्र बुद्ध के पास पहुँचा और चरण-स्पर्श कर, तीन प्रश्न किए, "पहला : क्या आकाश में पद होते हैं, क्या आकाश में पदचिन्ह बनते हैं ? दूसरा : क्या संघ ही मात्र श्रमण है या संघ से बाहर भी कोई श्रमण है ? तीसरा : क्या संस्कारों में शाश्वत के अस्तित्व को सिद्ध किया जा सकता है ?"

गाथा: आकासेव पदं नत्थि, समणो नत्थि बाहिरे।
संखारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं।।255।।

अर्थ: आकाश में कोई पदचिन्ह नहीं होता है अर्थात् उसका वर्ण या आकार नहीं होता है। बुद्ध के शासन के बाहर के सम्प्रदायों के साधनामार्ग द्वारा कोई श्रमण नहीं होता। संस्कार शाश्वत नहीं होते। इसके विपरीत बुद्ध ही शाश्वत हैं। उनमें अस्थिरता और चंचलता नहीं होती।

बुद्ध शासन ही शाश्वत है
परिव्राजक सुभद्र की कथा

बुद्ध सामान्यतः ऐसे कौतूहल भरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देते थे पर सुभद्र उनका अंतिम अनुयायी था। अतः उन्होंने उसे उत्तर दे समझाया कि इन चीजों का कोई अस्तित्व नहीं है,। फिर उन्होंने इन गाथाओं के माध्यम से शिक्षा दी।

टिप्पणीः सुभद्र बुद्ध से प्रव्रजित होने वाला अंतिम संन्यासी था। इस कारण बौद्ध साहित्य में उसका विशिष्ट स्थान है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय यह घुमक्कड़ साधु कुशीनगर में रह रहा था। उसने सुना कि रात्रि में भन्ते गौतम महापरिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे। तो उसने सोचा, "मैंने बड़े - बुजुर्ग शिक्षकों का प्रवचन सुना है । संसार में संपूर्ण रूप से अर्हत शिक्षकों का उदय कभी-कभी ही होता है। आज बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे। मुझे विश्वास है कि अगर मैं उनसे प्रश्न करूँगा तो वे मेरी शंकाओं का समाधान अवश्य ही कर देंगे। इस प्रकार सुभद्र बुद्ध के सम्मुख प्रस्तुत हुआ और इन गाथाओं के श्रवण से लाभान्वित हुआ।"

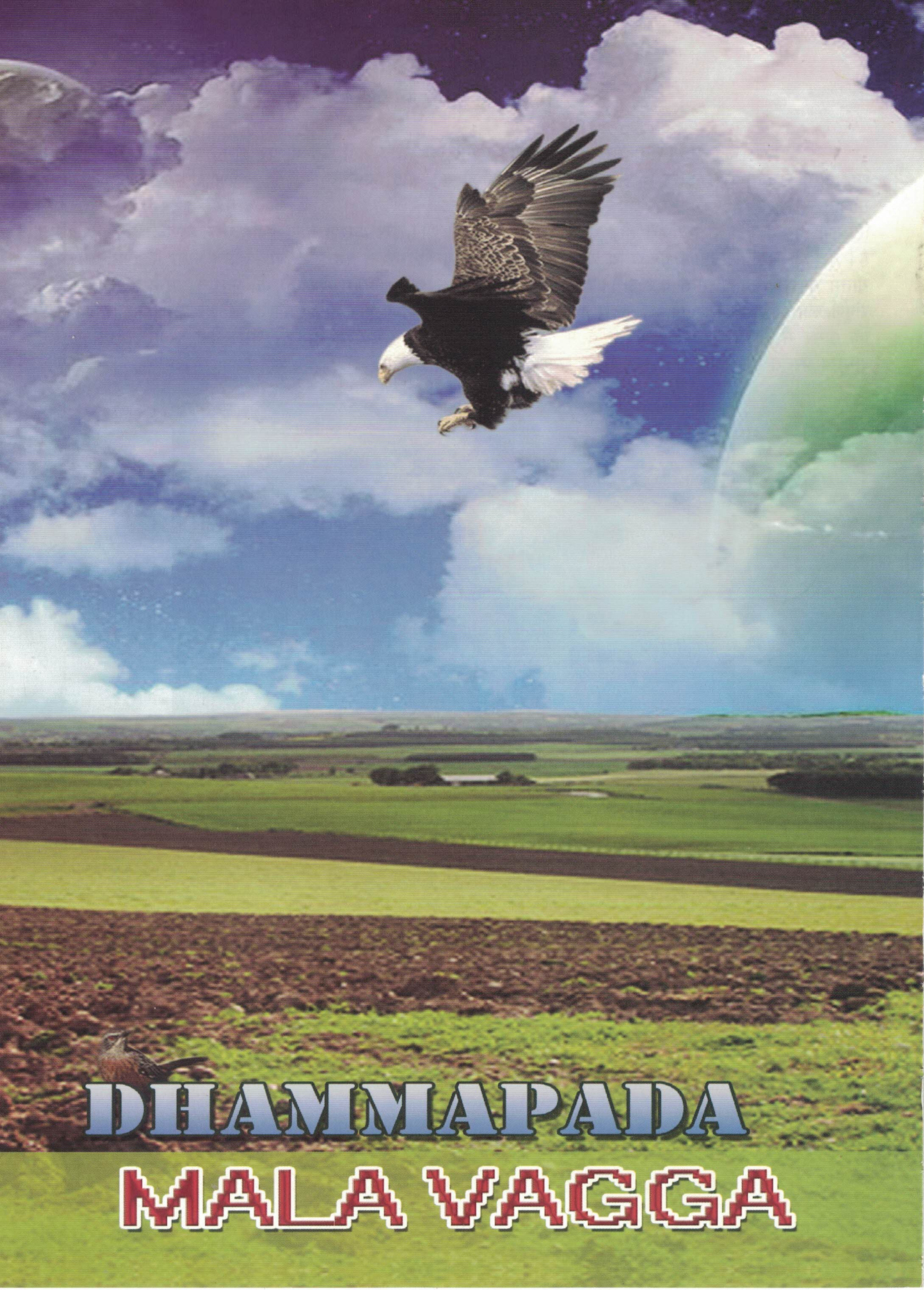
DHAMMAPADA
MALA VAGGA

सत्यधर्म की कुटिया

धम्मपद

धर्मस्थ वर्ग

गाथा और कथा

सत्यधर्म की कुटिया

धम्मपद

धर्मस्थ वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

धर्मस्थ वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	न्यायाधीश की कथा	256	न्याय की तराजू पर न्याय करना	147
2.	न्यायाधीश की कथा	257	धर्ममार्ग पर न्यायी कौन है ?	149
3.	षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा	258	ज्यादा बोलना ज्ञानी की निशानी नहीं है	151
4.	थेर एकूदान की कथा	259	सही धर्मधर कौन है ?	153
5.	लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा	260	बाल सफेद होने मात्र से थेर नहीं	155
6.	लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा	261	आन्तरिक शुद्धि से ही थेर बनते हैं	157
7.	कुछ भिक्षुओं की कथा	262	भीतर से गंदा : बाहर से साफ क्या लाभ ?	159
8.	कुछ भिक्षुओं की कथा	263	आन्तरिक शुद्धि से ही सुन्दरता बढ़ती है	161
9.	भिक्खु हत्थक की कथा	264	सिर मुड़ाँ लेने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता	163
10.	भिक्खु हत्थक की कथा	265	जिसने पापों का किया दमन, वही हुआ श्रमण	165
11.	एक ब्राह्मण की कथा	266	केवल भिक्षाटन मात्र से कोई भिक्षु नहीं हो जाता	167
12.	एक ब्राह्मण की कथा	267	सही भिक्षु कौन है ?	169
13.	तीर्थिकों की कथा	268	मौन रखने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता	171
14.	तीर्थिकों की कथा	269	सच्चा ज्ञान : मुनि की पहचान	173
15.	मछुआरे की कथा	270	नाम में क्या रखा है ?	175
16.	कुछ भिक्षुओं की कथा	271	सभी आस्रवों को समाप्त करना आवश्यक है	177
17.	कुछ भिक्षुओं की कथा	272	दृढ़ प्रतिज्ञ ही निर्वाण पायेगा	179

गाथा: न तेन होति धम्मट्ठो, येनत्थं सहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थञ्च, उभो निच्छेय्य पण्डितो ।।256।।

अर्थ: जो निर्णय देने वाला, बिना सोचे-समझे, अन्यायपूर्ण निर्णय देता है वह "धर्म में स्थित निर्णायक" नहीं कहा जा सकता। अर्थ और अनर्थ दोनों पर ही जो विचार करे और फिर निर्णय देवे, वही सत्यवादी न्यायी कहलाता है।

न्याय की तराजू पर न्याय करना
न्यायाधीश की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

इन दोनों गाथाओं को बुद्ध ने कुछ घूसखोर न्यायाधीशों के संदर्भ में कहा था।

एक दिन कुछ भिक्षुगण श्रावस्ती नगर के उत्तरी द्वार के पास स्थित ग्राम में भिक्षाटन के लिए गए। भिक्षाटन से निवृत्त हो उत्तर द्वार से वे नगर में प्रवेश कर गए। भिक्षाटन से बौद्ध विहार लौटते हुए उन्हें नगर के मुख्य मार्ग से आना पड़ा जहाँ न्यायाधीशों के कार्यालय भी थे। जब वे नगर के मध्य से गुजर रहे थे, आकाश में बादल छा गए और वर्षा होने लगी। वर्षा से बचने के लिए उन्हें एक छत चाहिए थी। इधर-उधर और कुछ तो दिखा नहीं। सामने न्यायाधीशों की एक अदालत दिखी और बारिश से बचने के लिए वे उसमें घुस गए। उस न्यायालय में उन्होंने न्यायाधीशों को रिश्वत लेते हुए देखा। वे विवाद में उभय पक्षों के विवाद को इंसाफ के तराजू पर तौलकर निर्णय देने के बजाय जो विवाद में सही नहीं था उससे रिश्वत लेकर, उसके पक्ष में निर्णय दे रहे थे। इसे देखकर उन्होंने सोचा, "अरे ये न्यायाधीश तो अधर्मी हैं ! अभी तक हम समझते थे कि ये न्याय की कुर्सी पर बैठकर इंसाफ के पक्ष में फैसला देते होंगे। ये तो असत्य मार्ग का आचरण कर अधार्मिक निर्णय दे रहे हैं। हम तो इन्हें धर्म पर आश्रित होकर निर्णय देने वाला समझते थे।"

थोड़ी देर बाद जब वर्षा रुक गई तो वे अदालत से बाहर निकले और बौद्ध विहार चले गए। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने तथागत को सारी बातें बताईं कि किस प्रकार न्यायाधीशगण रिश्वत लेकर, न्याय का गला घोंटकर, गलत एवं अन्यायपूर्ण निर्णय दे रहे थे।

तब बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! जो न्यायाधीश, स्वेच्छाचारी होकर, अधर्म पर आधारित निर्णय देते हैं वे न्यायाधीश धार्मिक नहीं कहला सकते। इसके विपरीत जो न्यायाधीश अपराध की गहराई में जाते हैं और अंत:स्थल तक पहुँचकर निर्णय देते हैं, वे ही वस्तुतः धार्मिक कहलायेंगे।"

गाथा: असाहसेन धम्मेन, समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी, "धम्मट्ठो" ति पवुच्चति ।।257।।

अर्थ: जो सत्य और असत्य दोनों का निर्णय कर, विचार करके, धर्म पर आश्रित होकर, पक्षपात से ऊपर उठकर न्याय करता है वही धर्म की रक्षा करने वाला सच्चा न्यायाधीश कहलाता है।

धर्ममार्ग पर न्यायी कौन है ?
न्यायाधीश की कथा

इस प्रकार उपदेश देते हुए बुद्ध ने ये गाथायें कहीं।

टिप्पणी: बौद्ध धर्म की रीढ़ है - "कर्म का सिद्धान्त" अर्थात् हम जैसा बोयेंगे, वैसा ही काटेंगे। काँटे बोयेंगे तो काँटे काटेंगे और फूल बोयेंगे तो फूल ही काटेंगे। यह प्रकृति का शाश्वत नियम रहा है, और सदैव रहेगा।

उसी प्रकार बुरे कर्म करने वाला अपने लिए बुरे फल का प्रबंध कर चुका है।अब यह मात्र समय की बात है कि वह फल आज ही काट ले या कल काटे या परसों या फिर तरसों। संभव है इस जन्म में नहीं काटना पड़े पर उसका अर्थ यह नहीं कि उसे उस फल को काटने से मुक्ति मिल गई। मुक्ति नहीं मिली है; फल काटने का समय मात्र थोड़ा आगे बढ़ गया है। इस प्रकार गलत निर्णय देने वाले न्यायाधीश ने अपने लिए अपनी सजा आज ही सुनिश्चित कर ली है। उस निर्णय को मात्र सुरक्षित रखा गया है और जैसे ही उपयुक्त समय होगा, उस न्यायाधीश को उसके किए का फल सुना दिया जायेगा। अतः गलत निर्णय देकर इस कथा के सभी न्यायाधीशों ने अपने बचाव का पूरा अवसर गँवा दिया।

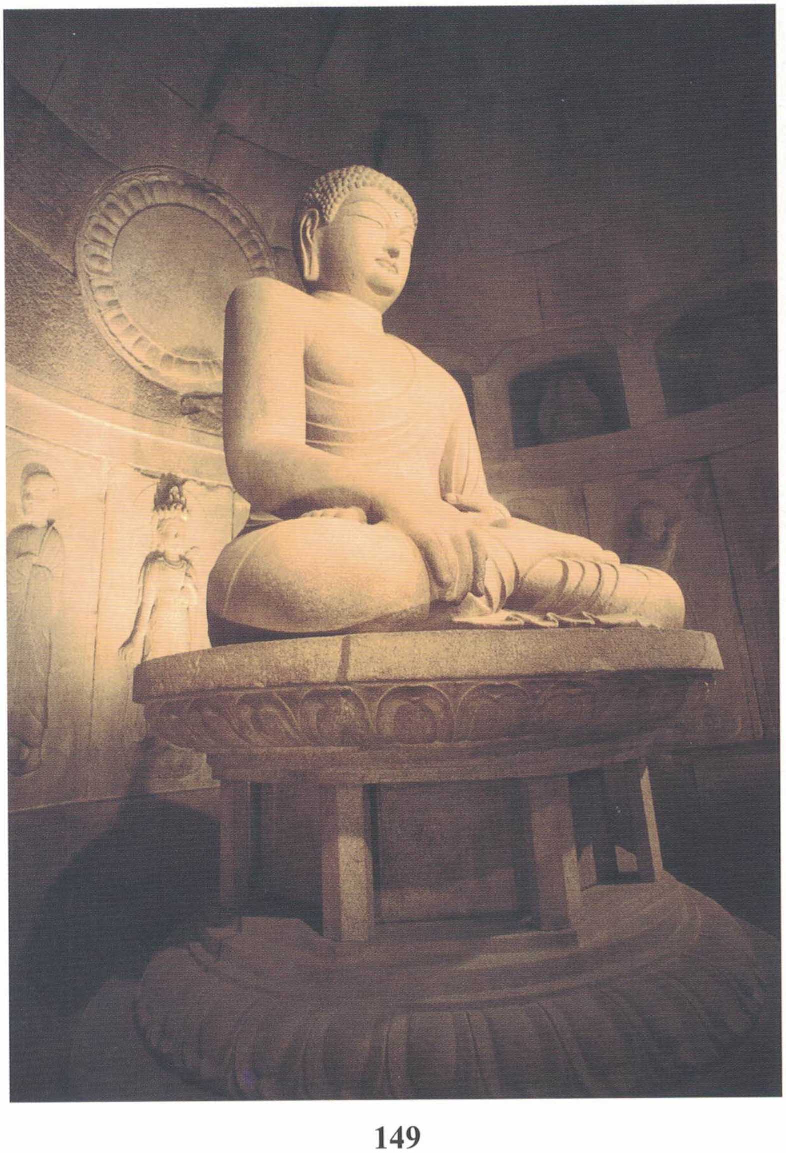

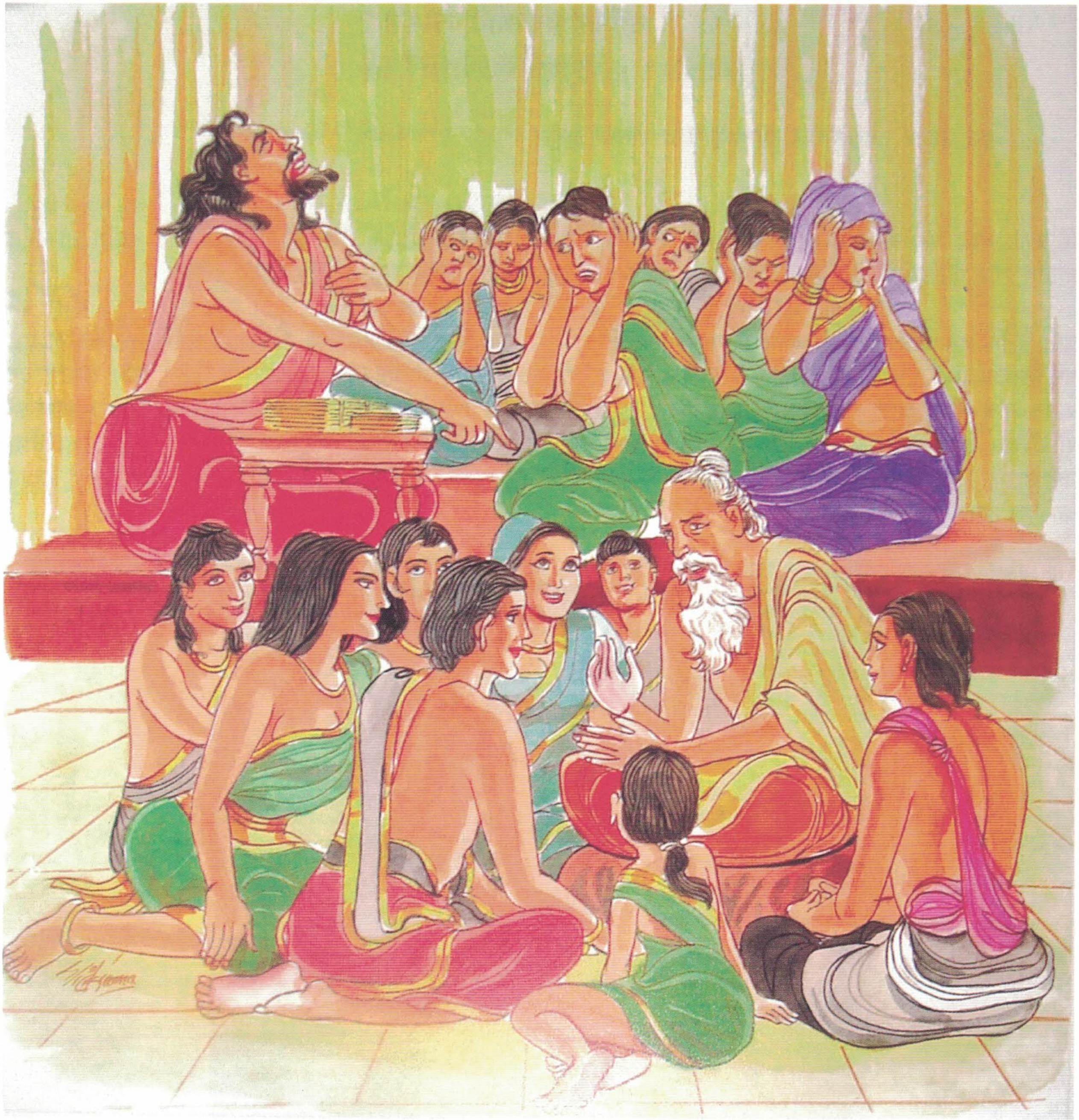

गाथा: न तेन पण्डितो होति, यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो, "पण्डितो" ति पवुच्चति ।।258।।

अर्थ: बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं हो जाता है। वरण जो क्षमाशील, अवैरी और निर्भय होता है, वही पंडित कहा जाता है।

ज्यादा बोलना ज्ञानी की निशानी नहीं है।
षड्वर्गीय भिक्षुओं की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

बुद्ध ने यह गाथा षड्वर्गीय भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

बुद्ध-विहार में षड्वर्गीय भिक्षुओं का एक समूह भी रहता था। वे बहुत ही असंयमित थे, उदंड थे। अक्सर कुछ न कुछ गड़बड़ी करते रहते थे और गाँव हो या विहार- हर जगह सबों को अपने आचरण से दुःखी किए रहते थे। एक दिन कुछ युवा भिक्षु और श्रामनेर गाँव से भिक्षाटन कर अभी विहार में लौटे ही थे कि षड्वर्गीय भिक्षु उनसे कुछ प्रश्न करने लगे। तब उन भिक्षुओं ने षड्वर्गीय भिक्षुओं से कहा, "भन्ते, यह हमसे मत पूछिए।" यह सुनकर षड्वर्गीय भिक्षु बहुत नाराज हो गए और उन्हें धमकाते हुए कहा, "तुम हमको ऐसा उत्तर देते हो। बड़ों के साथ इस प्रकार जवाब देते हो। हम विद्वान हैं, समझ में नहीं आता। दिखता नहीं कि यहाँ सिर्फ हम ही विद्वान हैं ? हमारे साथ ठीक से बातें करो और हमारे प्रश्नों का ठीक से उत्तर दो। हमारी समझ और बुद्धिमत्ता को नहीं जानते हो। हम इतने समझदार और बुद्धिमान हैं कि तुम्हारे इस अपराध के बदले, हम चाहें तो तुम्हारे सिर पर गन्दगी का कूड़ा डालकर तुम्हें विहार से बाहर निकाल दें" ऐसा कहकर वे अपनी विद्वता झाड़ने लगे।

एक बार गाँव में भोजन दान हुआ। वहाँ पर ये षड्वर्गीय भिक्षु भी गए और ये श्रामनेर भी। वहाँ पर भी ये भिक्षु उन श्रामनेरों पर अपनी विद्वता बघारने लगे और उनके ऊपर बर्त्तन और भोजन फेंकने लगे।

श्रामनेर विहार में लौटे। विहार के भिक्षुओं ने उनसे प्रश्न किया, "भिक्षुओं आज का भोजन दान कैसा रहा ? " तब श्रामनेर बोल उठे, "भन्ते, मत पूछिए भोजन दान कैसा रहा? षड्वर्गीय भिक्षुओं ने हमें तबाह कर दिया। हमारे ऊपर जूठा भोजन डाल दिया और अंत-अंत तक कहते रहे कि हम ही शांत हैं, हम ही विद्वान हैं। इस प्रकार उन्होंने भोजन दान में बहुत गड़बड़ी की।"

बात शास्ता के कानों तक पहुँची। उन्होंने उन श्रामनेरों को बुलाया और उनसे पूरी जानकारी ली। तब शास्ता ने सबों को समझाते हुए बताया, "सिर्फ ज्यादा भाषण करने से कोई विद्वान नहीं हो जाता। वरन् जो शांतिप्रिय है और किसी से भी शत्रुभाव नहीं रखता और इस प्रकार दूसरों को अभय रखता है, उसे ही मैं पंडित मानता हूँ।"

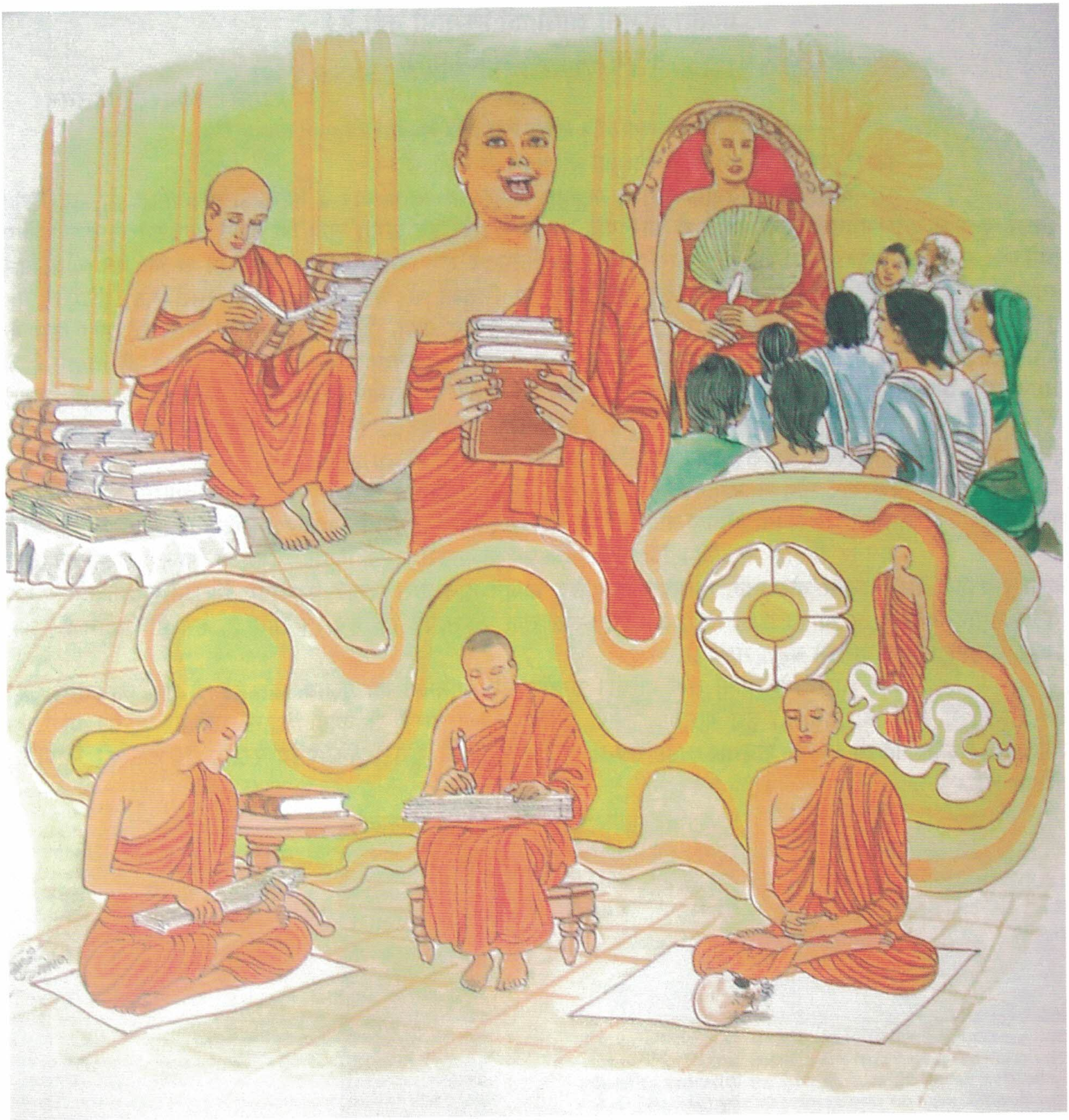

गाथा: न तावता धम्मधरो, यावता बहु भासति ।
यो च अप्पम्पि सुत्वान, धम्मं कायेन पस्सति ।
स वे धम्मधरो होति, यो धम्मं नप्पमज्जति ।।259।।

अर्थ: बहुत बोलने से कोई धर्मधर नहीं हो जाता। वरण जो थोड़ा सुनकर भी धर्म से साक्षात्कार करता है, जो धर्म में प्रमाद नहीं करता, वही धर्मधर कहलाता है।

सही धर्मधर कौन है ?
थेर एकूदान की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

यह गाथा बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में कही जो अर्हत हो गया था।

यह भिक्षु श्रावस्ती के पास ही एक वन-खंड में रहता था। उसे लोग एकूदान कहकर पुकारते थे क्योंकि उसे एक ही (गाथा) उदान पूरी तरह याद थी। "उच्च विचारों वाले, सतत् सजग, क्षमाशील, सतर्क, शांत भिक्षु को दुःख नहीं सताते।" लेकिन यह भिक्षु यद्यपि एक ही गाथा जानता था पर वह इस गाथा द्वारा प्रतिपादित अर्थ को पूरी तरह जानता था। प्रत्येक उपोसथ के दिन वह सबों को धर्म-श्रवण करने के लिए कहता था और स्वयं उस उदान को गाकर सुनाता था। उसकी एक ही गाथा को सुनकर वन देवता उसका साधुवाद करते थे और इस प्रकार वह जंगल उनकी प्रशंसा से गुंजित हो उठता था।

किसी उपोसथ के दिन दो ज्ञानी भिक्षु, जो त्रिपिटक के विद्वान थे, अपने भिक्षुओं के साथ वहाँ पधारे। एकूदान ने उन दोनों बुजुर्ग भिक्षुओं से धर्म प्रवचन करने की प्रार्थना की। उन्होंने जानना चाहा कि क्या इस दूर-दराज की जगह पर बहुत सारे श्रोतागण थे। एकूदान ने 'हाँ' में उत्तर दिया और यह भी कहा कि यहाँ वन देवता भी आते थे और धर्म-प्रवचन के बाद प्रशंसा करते थे तथा साधुवाद देते थे। इसलिए दोनों त्रिपिटकाचार्य ने एक-एक कर व्याख्यान दिया लेकिन जब उनके व्याख्यान समाप्त हुए, तब जंगल के देवतागण की ओर से किसी भी प्रकार का साधुवाद नहीं हुआ। दोनों ज्ञानी भिक्षु आश्चर्यचकित हो गए और उन्हें संदेह हुआ कि एकूदान ने सच कहा था या नहीं। लेकिन एकूदान ने दोहराया कि वन देवता सदा आते थे तथा गाथा के अंत में साधुवाद देते थे। अतः दोनों आचार्यों ने तब एकूदान को स्वयं शिक्षा देने के लिए कहा। एकूदान ने उसी एक गाथा को गाकर सुना दिया जो उसे याद था। उस गाथा के अंत में वन देवता पुनः सदा की तरह साधुवाद देने लगे। उन दोनों विद्वानों के साथ जो भिक्षु आए थे उन्होंने शिकायत की कि वन में रहने वाले देवता पक्षपात कर रहे थे। जेतवन विहार आने पर इस घटना की जानकारी शास्ता को दी गई। बुद्ध ने उन्हें समझाया, "भिक्षुगण ! मैं नहीं कहता कि एक भिक्षु जो बहुत कुछ जानता है और धर्म के बारे में बहुत कुछ बोल सकता है, वह सचमुच ही स्वयं धर्मनिष्ठ है। जिसने सिर्फ थोड़ा सीखा है और धर्म का सिर्फ एक पाठ ही जानता है पर चार आर्य सत्य को खूब अच्छी तरह समझता है और सदैव सतर्क और जागरुक रहता है, वस्तुतः वही धर्म में स्थित कहा जा सकता है।"

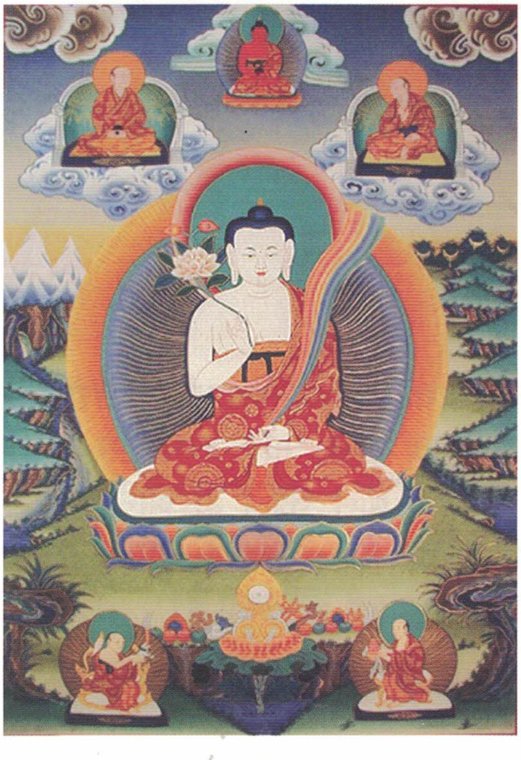

गाथा: न तेन थेरो सो होति, येनस्स पलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स, "मोघजिण्णो" ति वुच्चति ।।260।।

अर्थ: सिर्फ सिर के बाल सफेद हो जाने से कोई स्थविर नहीं कहला सकता। ऐसे व्यक्ति की आयु अवश्य परिपक्व हो गई है और वह वृथावृद्ध कहलाता है।

बाल सफेद होने मात्र से थेर नहीं
लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

यह गाथा शास्ता ने जेतवन में स्थविर भद्दिय के संदर्भ में कही थी। उन्हें लकुण्टक भद्दिय भी कहा जाता था क्योंकि वे कद में बहुत छोटे थे।

एक दिन वह स्थविर शास्ता से मिलने गए। जब वह उन्हें प्रणाम कर जा रहे थे तब रास्ते में उसे तीस अरण्यक भिक्षुओं ने देखा। वे अरण्यक भिक्षु तथागत के पास आए, उन्हें सादर प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक ओर बैठ गए। शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लिया कि इन भिक्षुओं में निकट भविष्य में अर्हत्व प्राप्ति की संभावना है; अतः उनसे पूछा, "क्या तुमने अभी-अभी यहाँ से गए स्थविर को देखा ?" "नहीं भन्ते, हमने किसी स्थविर को नहीं देखा।" "तो कोई दिखा था ?" "हाँ भन्ते ! एक श्रामनेर को देखा था।" "भिक्षुओं ! वह श्रामनेर नहीं था, वह तो स्थविर था।" "भन्ते ! उसकी आयु तो कुछ भी नहीं थी। वह तो उम्र में बहुत ही छोटा दिखाई दे रहा था।" "भिक्षुओं ! मैं उम्र से मात्र वृद्ध हो जाने वाले को या स्थविरासन मात्र पर विराजमान होने वाले को स्थविर नहीं कहता। हाँ, जो व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार कर लेता है तथा सबों के साथ मैत्री की भावना रखता है, वस्तुतः वही स्थविर है।"

यह कहकर शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।

टिप्पणी: "परिपक्व" का अर्थ क्या लेना चाहिए ? भौतिक शरीर की परिपक्वता या आन्तरिक शरीर की परिपक्वता ? अगर हम भौतिक शरीर की परिपक्वता से आध्यात्मिक प्रगति को जोड़ दें तो यह हमारी बहुत बड़ी भूल होगी। ऐसी सोच में यह दोष होगा कि किसी को कोई आन्तरिक यत्न नहीं करना पड़ेगा और मात्र समय के अन्तराल में वह श्रामनेर से स्थविर हो जाएगा और फिर अर्हत्व प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार मनुष्य के जीवन में आन्तरिक संघर्ष और उर्ध्वदिशागामी होने की तीव्र तड़प का कोई महत्व नहीं होगा। निश्चय ही यह प्रकृति के नियम और विकास की प्रक्रिया के विपरीत होगा।

गाथा: यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, अहिंसा संयमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो, "थेरो" इति पवुच्चति ।।261।।

अर्थ: जो साधक सत्य, अहिंसा, शील तथा इन्द्रियसंयम में तिष्ट है, वही निर्मल धैर्यशाली 'स्थविर' कहलाता है।

आन्तरिक शुद्धि से ही थेर बनते हैं
लकुण्टक भद्दिय थेर की कथा

दूसरी बात यह है कि जो कुछ संघर्ष करके प्राप्त किया जाता है, लोग उसे ही मूल्यवान मानते हैं। संघर्ष ही जीवन, गति की पहचान है। एक उदाहरण है कि एक बार कक्षा में शिक्षक अपने शिष्यों को समझा रहे थे कि अंडे से तितली का बच्चा किस प्रकार निकलता है। उन्होंने समझाया कि तितली का बच्चा अंडे के अंदर सुप्त अवस्था में रहता है। समय के अन्तराल में उसमें गति आती है और उस गति से वह संघर्ष करना प्रारंभ कर देता है। गति की तीव्रता बढ़ती जाती है और जब वह एक शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है तो वह तितली का बच्चा अंडे को फोड़कर तितली के रूप में बाहर निकल आता है। बच्चों को समझा कर शिक्षक कक्षा से बाहर चले गए पर जाते समय बच्चों को बताना नहीं भूले कि उस अंडे के साथ छेड़-छाड़ नहीं करना।

थोड़े समय बाद अंडा गतिमान हो गया। एक लड़के को तितली के बच्चे पर दया आ गई। उसने तितली के बच्चे को संघर्ष से बचाने के लिए क्या किया ? अंडा ही फोड़ दिया। नतीजा क्या हुआ ? तितली का बच्चा मर गया।

अतः संघर्ष करके जो प्राप्त किया जाता है वही मूल्यवान है। केवल बूढ़ा हो जाने से, संघर्ष के अभाव में, हमें जो सम्मान मिलेगा, वह मात्र उस उम्र के कारण मिलेगा। अगर कोई हमें सादर प्रणाम करे और सम्मान दिखाये तो हमें इस पर गर्व नहीं करना चाहिए। वह व्यक्ति मात्र भौतिक शरीर के प्रति श्रद्धा प्रकट कर रहा है, आन्तरिक शरीर के प्रति नहीं क्योंकि अन्दर से तो हम शून्य हैं, पूर्णतः खोखले हैं।

कहते हैं कि अर्हत्व दिया नहीं जाता है, संघर्ष कर, युद्ध कर प्रकृति से छीना जाता है। अगर यह अंश सही है तो फिर उम्र का कोई महत्व नहीं है क्योंकि किसी भी उम्र का व्यक्ति, किसी भी समय, किसी भी स्थान पर इसे छीन सकता है।

अतः छोटे कद के, कम उम्र के लकुण्टक भद्दिय थेर अगर श्रामनेर नहीं थे, स्थविर थे और शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त करने जा रहे थे तो इसमें आश्चर्य क्या था ?

गाथा: न वाक्करणमत्तेन, वण्णपोक्खरताय वा ।
साधुरूपो नरो होति, इस्सुकी मच्छरी सठो ।।262।।

अर्थ: केवल प्रभावशाली वक्ता होने से, सुन्दर रूप के कारण या दूसरों पर प्रभाव डालने की कला जानने के कारण एक लालची, ईर्ष्यालु, धोखेबाज व्यक्ति साधु नहीं हो जाता। ऐसा व्यक्ति 'साधु' नहीं कहला सकता।

बाहर से साफ, भीतर से गंदा : क्या लाभ ?
कुछ भिक्षुओं की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

शास्ता ने ये दो गाथाएं कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में जेतवन में कही थी।

एक बार कुछ श्रमण भिक्षु और कुछ श्रामनेर अपनी धर्मचर्या के क्रम में अपने उपाध्यायों के चीवर रंगने का काम कर रहे थे और उन्हें दूसरी अन्य सेवायें भी अर्पित कर रहे थे। कुछ स्थविरों ने उन्हें यह कार्य करते हुए देखा और उन्हें इनसे ईर्ष्या हो गई। उन स्थविरों ने सोचा, "हम भी तो पढ़ाने-लिखाने का काम करते हैं और पढ़ाने-लिखाने में दक्ष भी हैं पर हमारी ओर कोई ध्यान नहीं देता और न हमारी सेवा ही करता है। हमारे पास वह कुछ भी नहीं है जो इन उपाध्यायों को प्राप्त है। अगर हमें यह सब कुछ प्राप्त करना है तो हमें तथागत के पास जाकर उनसे इस प्रकार विनती करनी चाहिए, "भन्ते ! जहाँ तक पढ़ाई-लिखाई की बात है, हम भी पढ़ाने-लिखाने में अति दक्ष हैं, अतः इन युवक भिक्षुओं और श्रामनेर को इस प्रकार का आदेश दीजिए - 'यद्यपि तुमने धर्म के गूढ़ तत्वों को दूसरे उपाध्यायों से सुना है, पढ़ा है फिर भी उनको ठीक से न सुनाओ, स्वाध्याय भी न करो और इन स्थविरों से संपर्क करो।' ऐसा करने से हम लोगों का आदर-सत्कार बढ़ जाएगा।"

इस प्रकार का विचार-मनन कर वे शाक्य-मुनि के पास गए तथा उन्हें अपना आग्रह सुना दिया। बुद्ध ने सब कुछ सुन लिया और समझ गए कि वे भिक्षु मात्र स्वार्थवश ये सारी बातें कर रहे थे। अतः उन्होंने सोचा, "मेरे धर्म शासन में इस प्रकार के लाभ सत्कार मिला करते हैं पर ये भिक्षुगण लाभ-सत्कार के लोभी हैं और स्वार्थवश मात्र अपना ही लाभ चाह रहे हैं।" अतः शास्ता ने उनसे कहा, "तुम लाभ-सत्कार के लोभी हो अतः ऐसा जानकर केवल तुम्हारे कहने मात्र से या तुम्हारे अच्छा वक्ता होने से मैं तुम्हें 'साधु' नहीं मान सकता। जिसके अर्हत मार्ग से ईर्ष्या-द्वेष आदि समाप्त हो गए हैं वही साधु स्वरूप है। केवल वाक्-चार्तुय के बदौलत या शरीर की सुन्दरता और सौन्दर्य के कारण ईर्ष्या रखने वाला, दंभी और धूर्त व्यक्ति साधु नहीं हो जाता है। जिसकी ये सभी त्रुटियाँ समाप्त हो गई हैं वही साधु कहा जा सकता है।

टिप्पणीः बौद्ध धर्म समस्त बुराइयों को समूल नष्ट करने पर जोर देता है। हमने अक्सर देखा है कि हम अपने बागीचे में बरसात के बाद खर-पतवार साफ करते हैं। अगर खर-पतवार को जड़ से निकाल देते हैं तो वह नष्ट हो जाता है और फिर नहीं निकलता है। दूसरी ओर अगर खुरपी लेकर सतह के ऊपर ही सफाई कर देते हैं तो अगली बार बरसात में, उपयुक्त वातावरण पा, खर-पतवार एक बार फिर निकल आते हैं।

मनुष्य जीवन में तृष्णा भी खर-पतवार की ही तरह है। अगर हम सतही स्तर पर तृष्णा को समाप्त कर देंगे तो रावण के दस सिर की तरह एक सिर कटने पर पुनः दूसरा सिर उसके स्थान पर आकर खड़ा हो जाएगा। इस प्रकार हमारा अंततः कोई कल्याण नहीं होगा, हम ज्यों के त्यों बने रहेंगे। दूसरी ओर अगर हम तृष्णा को अपने हृदय से जड़ से निकाल देंगे तो उस प्रक्रिया में निश्चय ही हमारे हृदय से रक्त निकलेगा, हमारा हृदय लहू-लुहान हो जाएगा पर यदि उसे हम धैर्यपूर्वक अपने ही किए कर्म के प्रसाद के रूप में स्वीकार करेंगे तब हम सदा-सदा के लिए अपने जीवन से तृष्णा समाप्त कर देंगे। तब हमें बहुत कुछ करने को बाकी नहीं रहेगा।

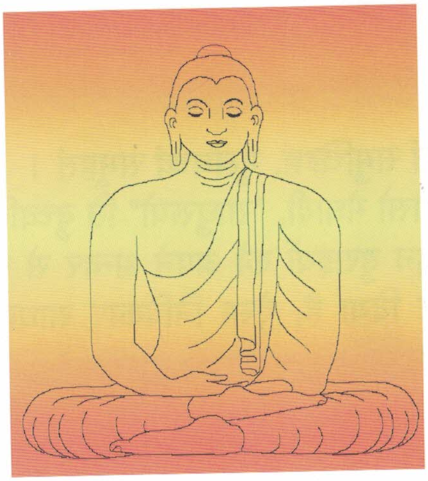

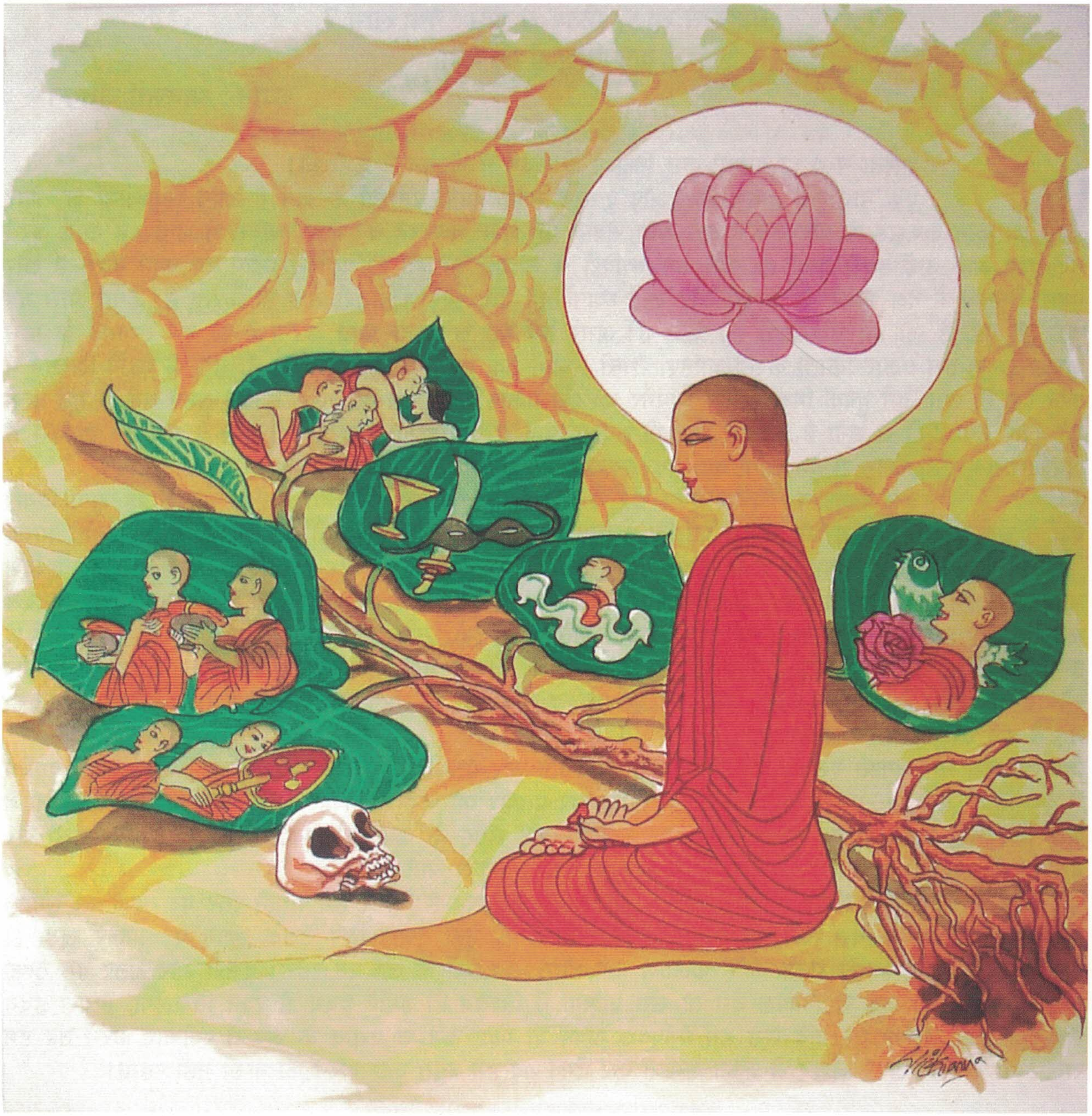

गाथा: यस्स चेतं समुच्छिन्नं, मूलघच्चं समूहतं ।
स वन्तदोसो मेधावी, "साधुरूपो" ति वुच्चति ।।263।।

अर्थ: जिसने इन बुराइयों को अपने अन्दर से समूल उखाड़ कर नष्ट कर दिया है, ऐसा निर्विकार साधक ही 'साधु' कहा जाता है।

आन्तरिक शुद्धि से ही सुन्दरता बढ़ती है
कुछ भिक्षुओं की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

सिर्फ अपने प्रारब्ध कर्म को खुशी-खुशी बर्दाश्त करना होगा जैसा थेर महामोग्लान ने अंतिम जन्म में किया था। जब जीवन इस स्थिति में पहुँच जाता है तो फिर कर्म का चक्र एक ऐसे चक्र के रूप में परिणत हो जाता है जिसमें और अधिक ऊर्जा नहीं लगाई जाती । अगर हम चक्र के चलने के लिए नूतन ऊर्जा नहीं लगायेंगे तो फिर वह चक्र घर्षण के कारण धीरे-धीरे अंततः रुक जाएगा। वह जल्दी ही रुक जायेगा अथवा थोड़े विलंब के बाद रुक जायेगा। पर वह जरूर ही रुक जायेगा।

दूसरा उदाहरण दीप का दिया जाता है। अगर हम दीप में अलग से तेल न डालेंगे तो क्या होगा ? शनैः शनैः वह तेल समाप्त होता जाएगा। और एक समय आयेगा जब वह तेल पूरा का पूरा समाप्त हो जाएगा। तब वह दीपक किस प्रकार जलेगा जब तेल ही नहीं होगा ? नूतन जीवन का निर्माण कैसे होगा अगर जीवन का निर्माण करने वाले कर्मतत्व को ही समाप्त कर दिया जायेगा ?

बुद्ध इसी बात को बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति के बाद कहते हैं। कहते हैं कि मैंने हर जन्म में आकर मेरे लिए कारागार बनाने वाले को पहचान लिया है। सारे यंत्र तोड़ दिये हैं, सारी निर्माण सामग्री तहस-नहस कर दी है। अब कारागार बनेगा तो कैसे ?

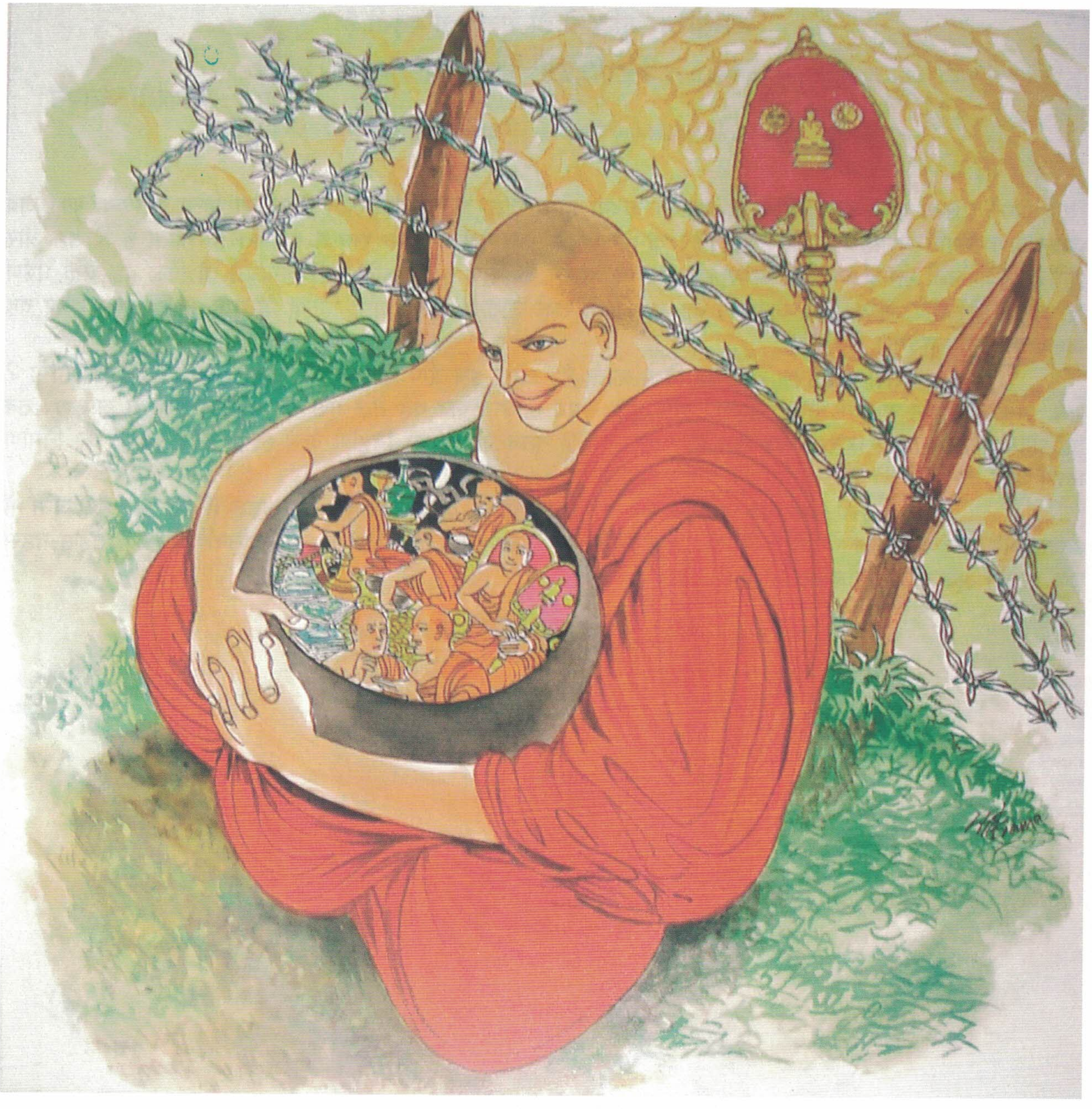

गाथा: न मुण्डकेन समणो, अब्बतो अलिकं भणं ।
इच्छालोभसमापन्नो, समणो किं भविस्सति ।।264।।

अर्थ: क्या कोई व्यक्ति, जो धर्म का पालन नहीं करता, असत्य बोलता है और लोभ और इच्छाओं से युक्त है मात्र शिर मुँड़ा लेने से 'श्रमण' बन जाएगा ?

सिर मुड़ा लेने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता
भिक्खु हत्थक की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

इन दो गाथाओं को बुद्ध ने जेतवन विहार में हत्थक नामक एक भिक्षु को संबोधित कर कहा था।

श्रावस्ती में हत्थक नाम का एक भिक्षु था। वह अक्सर वाद-विवाद में लगा रहता था और शास्त्रार्थ में अधिकांशतः पराजित हो जाता था। लेकिन वह अपनी पराजय को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। अतः हर बार शास्त्रीय वाद-विवादों में पराजित हो जाने के बाद वह विद्वानों को पुनः चुनौती देते हुए कहता था, "तुम अमुक स्थान पर मुझसे अमुक समय पर मिलो। वहीं शास्त्रार्थ होगा और तय होगा कि हम दोनों में विद्वान कौन है।" लेकिन अमुक स्थान पर वह निर्धारित समय पर न पहुँचकर उससे पहले ही पहुँच जाता था। उसके प्रतिद्वन्द्वी निर्धारित समय से पूर्व नहीं आते थे। अतः प्रतिवादियों के न आने पर उपस्थित भीड़ से कहता था, "देखो, मेरे प्रतिवादी मुझसे इतना अधिक भयभीत हैं कि उनमें हिम्मत ही नहीं कि वे आकर मुझसे मिलें। जो व्यक्ति मेरे भय से मुझसे मिलने नहीं आ पाया वह मुझसे शास्त्रार्थ क्या करेगा ? उन्होंने अपनी हार मान ली। वे पराजित हो गये" इस प्रकार वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की पराजय और अपनी विजय की घोषणा करता हुआ चला जाता था। जब कभी कहीं पर पुनः पराजित हो जाता तो पुनः यही युक्ति लगाता था।

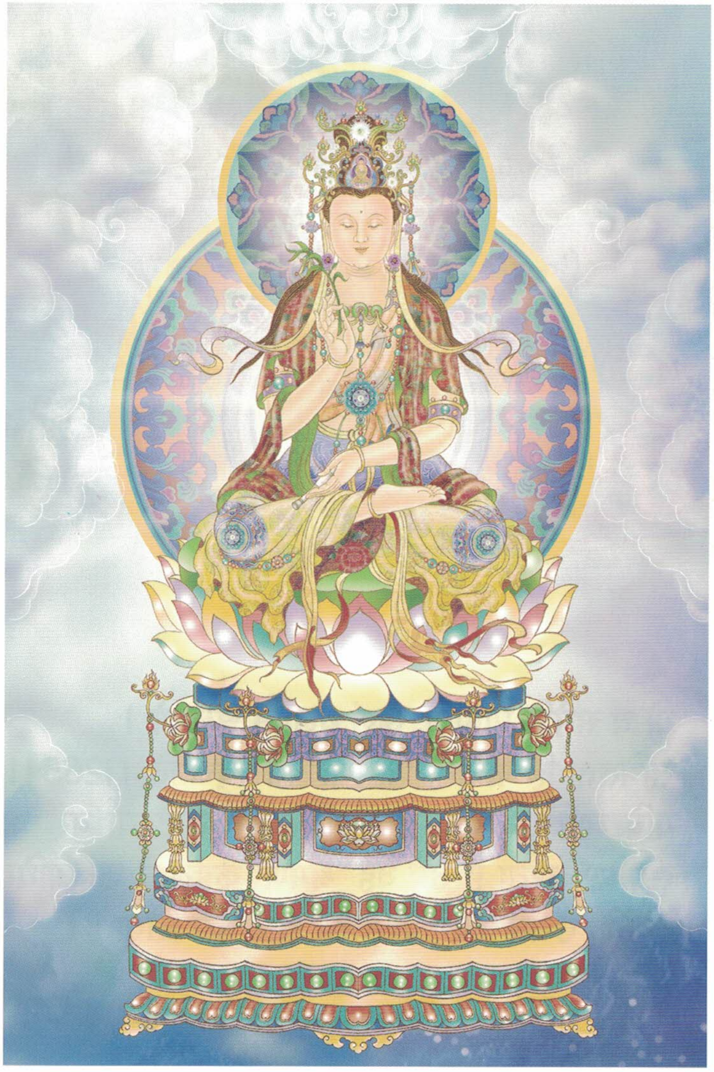

गाथा: यो च समेति पापानि, अणुं थूलानि सब्बसो ।
समितत्ता हि पापानं, "समणो" ति पवुच्चति ।।265।।

अर्थ: यदि व्यक्ति अपने अन्दर विद्यमान छोटे या बड़े पापों को समाप्त करता है तब वह 'श्रमण' कहलाने का अधिकारी है क्योंकि उसने अपने पापों को शांत कर लिया है।

जिसने पापों का किया दमन, वह हुआ श्रमण
भिक्खु हत्थक की कथा

बात शास्ता के कानों तक पहुँची। उन्होंने हत्थक को बुला भेजा। हत्थक के आने पर उन्होंने उससे पूछा, "मैंने तुम्हारे विषय में इस प्रकार की बातें सुनी है। क्या तुम सचमुच ऐसा ही करते हुए घूम रहे हो ? " हत्थक ने स्वीकार किया। उसके स्वीकार कर लेने पर शाक्य-मुनि ने उससे पूछा, "तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? एक मिथ्यावादी का मात्र सिर का मुण्डन कराकर श्रमण कहलाना लज्जाजनक है। जिस व्यक्ति ने अपने पापों को शांत कर दिया है, वस्तुतः वही श्रमण है।" ऐसा कहकर उन्होंने इन दोनों गाथाओं को कहा।

गाथा: न तेन भिक्खु सो होति, यावता भिक्खते परे ।
विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता ।।266।।

अर्थ: दूसरों के घर में जाकर भिक्षा मांगने मात्र से कोई भिक्षु नहीं हो जाता। विषम धर्म का पालन भी करे और भिक्षु भी कहलावे ऐसा नहीं हो सकता।

केवल भिक्षाटन मात्र से कोई भिक्षु नहीं हो जाता
एक ब्राह्मण की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

इन दो गाथाओं को बुद्ध ने जेतवन विहार में एक ब्राह्मण के संदर्भ में कहा था।

वह ब्राह्मण संसार से संन्यास लेकर किसी अन्य सम्प्रदाय में प्रव्रजित हो गया। वह भिक्षाटन करता हुआ एक दिन विचार करने लगा, " बुद्ध अपने शिष्यों को भिक्षाटन करने के कारण 'भिक्षु' कहकर पुकारते हैं। भिक्षाटन तो मैं भी करता हूँ। अतः मैं भी भिक्षु हूँ। मुझे भी 'भिक्षु' कहकर पुकारा जाना चाहिए। इसलिए वह तथागत के पास गया और उनके पास जाकर उनसे कहा, "हे गौतम ! आपके भिक्षुओं की तरह मैं भी भिक्षाटन करता हुआ जीवन यापन करता हूँ। अतः मुझे भी आप 'भिक्षु' कहकर ही संबोधित किया करें।" पर उसकी बात मानने की बजाय बुद्ध ने उससे कहा, "ब्राह्मण ! मैं किसी को भिक्षु मात्र इसलिए नहीं कहता क्योंकि वह भिक्षाटन करता है। अधर्म का पालन करने वाला वस्तुतः भिक्षु कैसे हो सकता है ? इसके विपरीत जो सभी संस्कारों में ज्ञानपूर्वक व्यवहार करता है, उसे ही भिक्षु कहलाने का अधिकार है।

तब शास्ता ने ये दो गाथाएं कहीं।

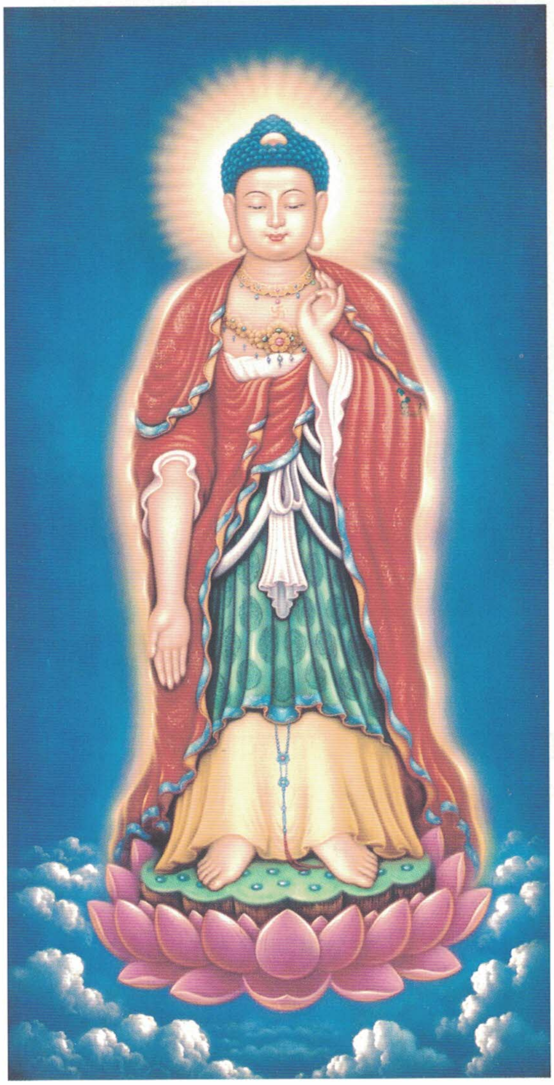

गाथा: योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, बाहेत्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति, स वे "भिक्खू" ति वुच्चति ।।267।।

अर्थ: जो इस संसार में पाप और पुण्य का त्याग कर ब्रह्मचर्यपूर्वक, ज्ञान के साथ संसार में विचरण करता है, वही वास्तविक भिक्षु कहलाने का अधिकारी है।

सही भिक्षु कौन है ?
एक ब्राह्मण की कथा

टिप्पणी: बौद्ध धर्म में बाह्य कर्म-कांडों को आडंबर की तरह देखा गया है। इसलिए उनका कोई महत्व नहीं है। वास्तव में महत्व की चीज है- आंतरिक रूपान्तरण। और आंतरिक रूपान्तरण के लिए बाह्य आडंबरों की कतई आवश्यकता नहीं।

कहा गया है : "मन न मुँड़ाय, मुँड़ाय जोगी कपड़ा।" अर्थात् संन्यासी ने अपने मन को नहीं रंगा अर्थात् अपने मन को परिशुद्ध, पवित्र नहीं किया। उसके विपरीत सिर्फ बाहर से गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया तो फिर वह संन्यासी कैसे कहा जा सकता है ?

संन्यासी किसे कहेंगे ? भिक्षु किसे कहेंगे ? उसे, जिसने जीवन से संन्यास ले लिया है, सांसारिक चीजों से मुँह मोड़ लिया है और इस कारण भोजन के लिए, संसार पर आश्रित रहने के कारण, भिक्षाटन करता है, लेकिन वास्तव में महत्व की जो चीज है वह है जीवन से संन्यास और जीवन से संन्यास की कहानी मन से शुरू होती है। मन भौतिक शरीर की तरह आँखों से दिखने वाली कोई चीज नहीं है। अतः उसका रूपान्तरण पूर्णतः आंतरिक प्रक्रिया है जिसे इस भौतिक जगत के नेत्रों से नहीं देखा जा सकता है।

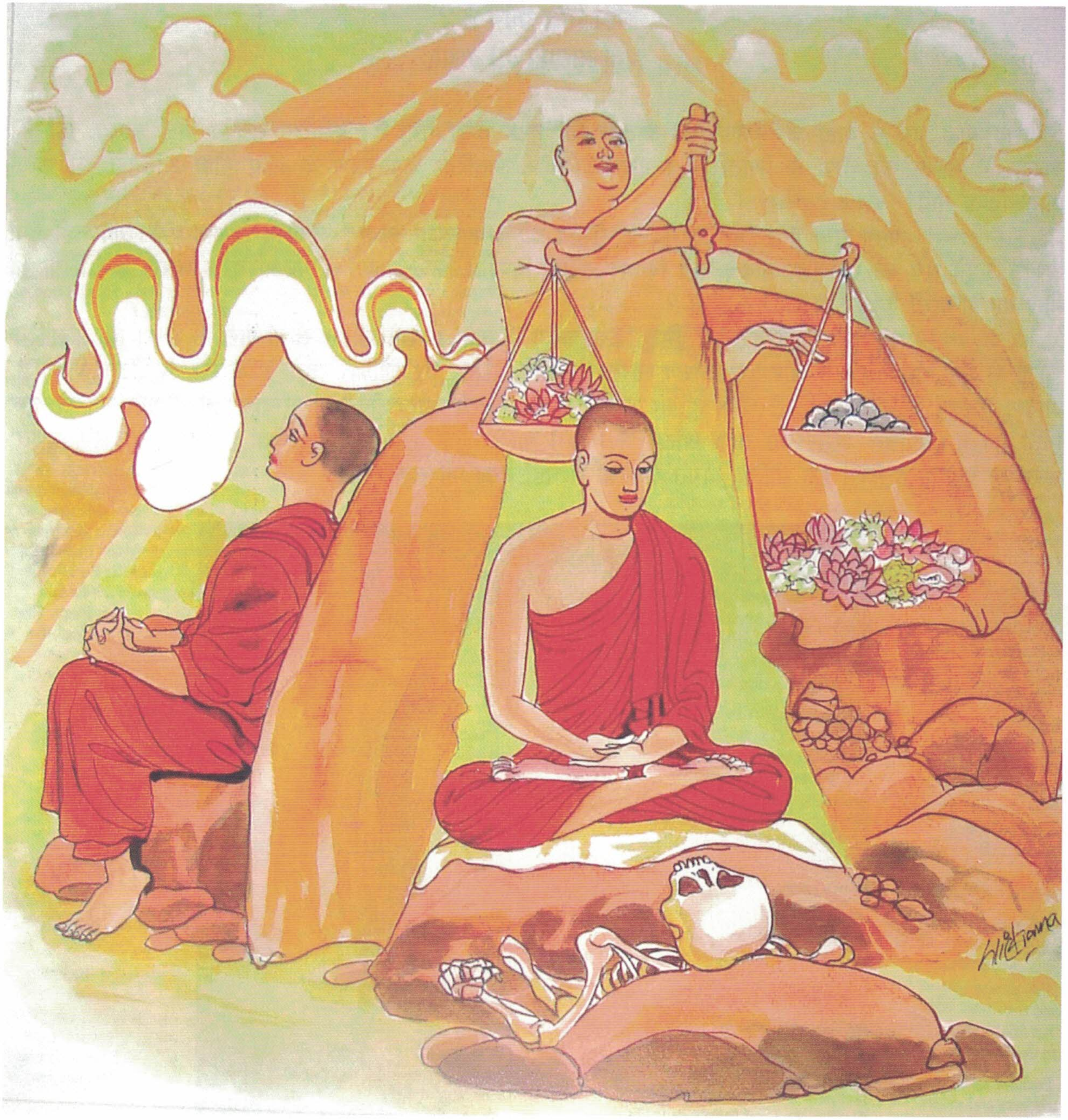

गाथा: न मोनेन मुनी होति, मूळहरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलंव पग्गय्ह, वरमादाय पण्डितो ।।268।।

अर्थ: अज्ञानी व्यक्ति, अज्ञानपूर्वक मार्ग का अनुशरण करते हुए, विस्मित हुआ मौन धारण कर सकता है जो मुनि का गुण है। पर मात्र मौन धारण करने से वह 'मुनि' नहीं हो जाता है। जो व्यक्ति, तुला की तरह, अच्छे और बुरे को तौलकर अशुभ को त्याग देता है और शुभ को ग्रहण कर लेता है, वही 'मुनि' कहलाता है।

मौन रखने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता
तीर्थिकों की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

यह धर्म देशना बुद्ध ने जेतवन में किसी अन्य सम्प्रदाय के साधुओं के सम्बन्ध में कही थी।

कथा है कि जब भी तीर्थिक किसी गृहस्थ के घर पर भोजन करते तो फिर उस गृहस्थ को भोजनोपरान्त आशीर्वाद देते हुए कहते थे, "तुम्हारे घर में सुख-शांति हो", "आनन्दित होओ, खुश रहो, आयुष्मान होवो" आदि-आदि। इस प्रकार वे इस प्रकार के मंगल वाक्यों से भक्तानुमोदन करते थे। "अमुक स्थान पर कीचड़ है, अमुक स्थान काँटों से भरा हुआ है; अतः ऐसी जगह पर जाना ठीक नहीं है", वे इस प्रकार की सलाह भी दिया करते थे। इस विधि से उन गृहस्थों को अपना धन्यवाद ज्ञापन करके और फिर उनको अपनी शुभ कामना देकर ही वे उनसे विदा लेते।

इसके विपरीत बौद्ध विहार के भिक्षुगण मौन रहकर ही भोजन करते और भोजनोपरान्त धर्म प्रवचन किए बिना ही, बिना कुछ बोले ही चल देते थे क्योंकि प्रथम बोधिकाल में बुद्ध ने भक्तानुमोदन की अनुमति नहीं दी थी। उस समय तक भक्तानुमोदन की परंपरा प्रारम्भ नहीं हुई थी। भिक्षुओं का यह व्यवहार गृहस्थों को अच्छा नहीं लगता था। उल्टे उनका इस प्रकार का रूखा व्यवहार उन्हें बुरा लगता था और वे कहने लगे, "हम लोग तीर्थिकों से तो भक्तानुमोदन एवं शुभकामनाएं प्राप्त करते हैं पर आदरणीय भिक्षुगण मौन धारण किए हुए प्रस्थान कर जाते हैं। अच्छा हो, हम इन तीर्थिकों को ही निमंत्रित करके उनसे मंगलवाक्य सुना करें क्योंकि इससे हमारा कुछ तो लाभ होगा। भिक्षुओं को जब इस बात का पता चला तो इस बारे में उन्होंने शास्ता को बताया। शास्ता ने उन्हें भक्तानुमोदन की अनुमति देते हुए कहा, "भिक्षुओं ! आज से तुम लोग भी भोजन दान ग्रहण करने के बाद सुखपूर्वक भक्तानुमोदन करो। गृहस्थों के साथ बैठो, धर्मोपदेश दो, धर्म कथा सुनाओ।" इसके बाद बुद्ध के आदेशानुसार भोजन दान के बाद भक्तानुमोदन की परंपरा प्रारंभ हो गई। भक्तानुमोदन सुनकर गृहस्थ जन भी अति प्रसन्न होने लगे और अधिक उत्साह पूर्वक अधिक से अधिक भिक्षुओं को निमंत्रित करने लगे और आदर-सत्कार में भी वृद्धि हो गई। उन भिक्षुओं का पहले की तुलना में अधिक आदर-सत्कार होने लगा। इससे तीर्थिक जन नाराज हो गए और उन्होंने इसके प्रत्युत्तर में मौन रहने का निर्णय ले लिया। अर्थात् अब जब कभी भी ये भिक्षु भक्तानुमोदन करेंगे, उस समय हम लोग मौन बैठा करेंगे। उन्होंने यह भी कहा, "हम मुनि हैं अतः हम मौन रहा करेंगे, बुद्ध के शिष्य तो सिर्फ लम्बे-लम्बे उपदेश दिया करते हैं।" जब बुद्ध ने यह टिप्पणी सुनी तो कहा, "भिक्षुओं ! मैं चुप रहने मात्र से किसी व्यक्ति को 'मुनि' नहीं मानता। क्योंकि लोग विभिन्न कारणों से मौन रह सकते हैं। कुछ लोगों को मौन इसलिए रखना पड़ता है क्योंकि वे अज्ञानी हैं, उन्हें कुछ नहीं आता। अतः वे कुछ बोलने की स्थिति में नहीं होते। अन्य ऐसे हैं जिनमें आत्म विश्वास की कमी है। अतः वे बोल नहीं सकते और इस कारण चुप रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो किसी विषय-वस्तु को जानने के बावजूद उसे दूसरों के साथ बाँटना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें लगता है कि दूसरों को जानकारी दे देने से उनका वर्चस्व खत्म हो जाएगा और इस प्रकार उनका महत्व कम हो जाएगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति मुनि मात्र इसलिए नहीं कहलायेगा क्योंकि वह मौन धारण करता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने जीवन को पापमुक्त करता है वहीं 'मुनि' कहलाता है।

गाथा: पापानि परिवज्जेति, स मुनी तेन सो मुनि ।
यो मुनाति उभो लोके, "मुनि" तेन पवुच्चति ।।269।।

अर्थ: वह शुभ और अशुभ की जाँच कर, वह अशुभ (पापों) को त्याग देता है। इस कारण वह मुनि है और मुनि कहलाता भी है। वह अपने अंर्तदृष्टि से दोनों लोकों (आन्तरिक एवं वाह्य) का चिंतन मनन करने में सक्षम है।

सच्चा ज्ञान : मुनि की पहचान
तीर्थिकों की कथा

टिप्पणी: मौन रहना मुनि का एक गुण है। मुनि के अन्दर और भी गुण होने चाहिए और मौन रहना उनमें से एक गुण है। यह मौन रहना, हो सकता है, उसके अज्ञान के कारण हो। जैसे रूई तौलने वाला एक तरफ रूई रखता है और दूसरी ओर बाट और अगर रूई अधिक हो तो उसमें से निकाल देता है और अगर कम हो तो थोड़ा और डाल देता है; उसी प्रकार जीवन में अधिक रूई निकालने के समान पाप को निकाल देना चाहिए तथा कम होने पर रूई मिलाने के समान कुशल एवं पुण्य का काम करना चाहिए। व्यक्ति इस अभ्यास को निरंतर करता हुआ शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्तिज्ञान दर्शन नामक उत्तम साधन को अपनाकर पाप कर्म (अकुशल कर्म) को त्याग देता है।

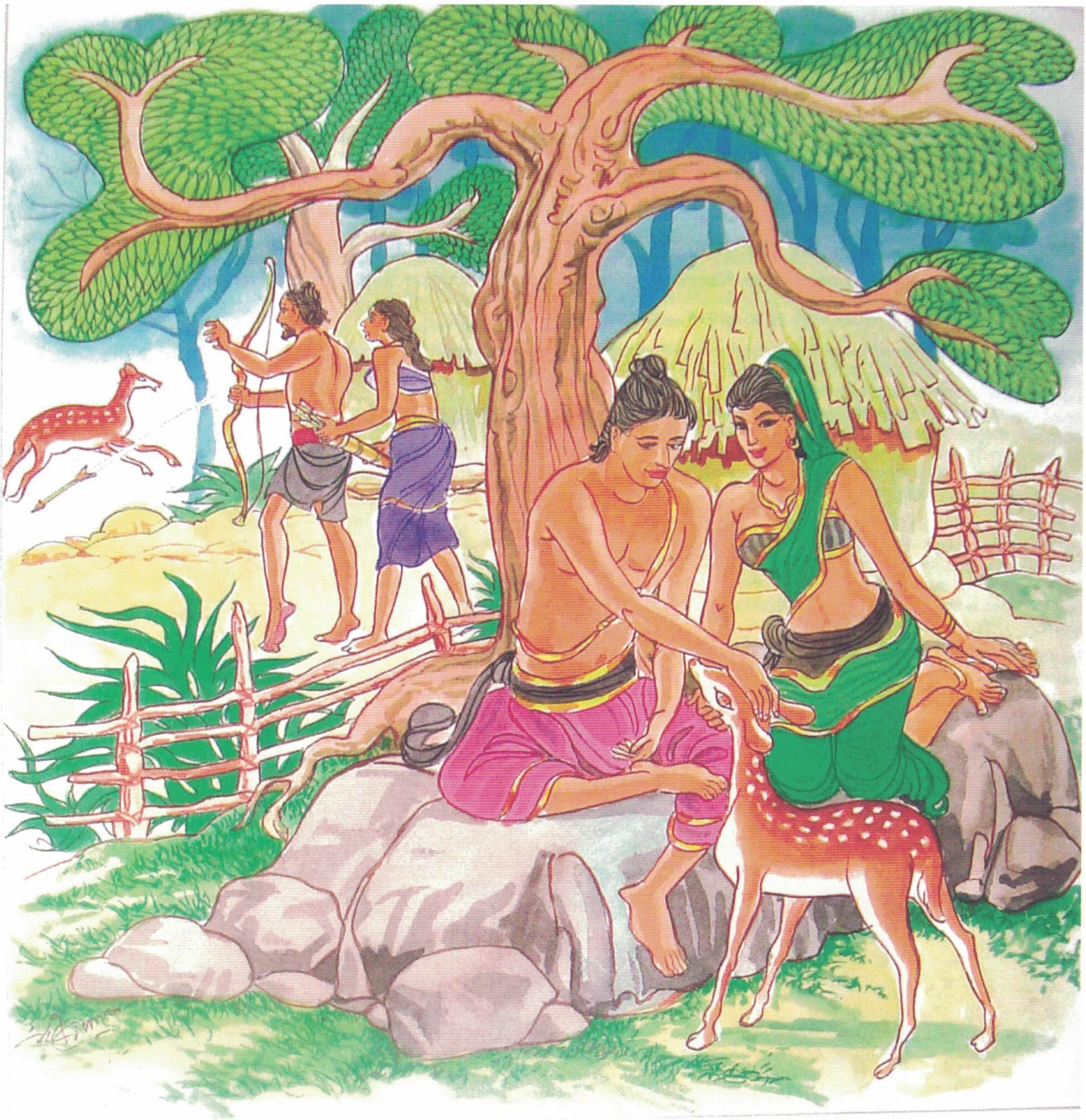

गाथा: न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सब्बपाणानं, "अरियो" ति पवुच्चति ।।270।।

अर्थ: जो प्राणियों के प्राण हरता है उसे आर्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा की प्रवृत्ति रखने वाला ही इस लोक में 'आर्य' कहलाता है।

नाम में क्या रखा है ?
मछुआरे की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

यह गाथा बुद्ध ने जेतवन में एक मछुआरे, जिसका नाम आर्य था, को संबोधित कर कही थी। एक दिन उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि मछुआरा स्रोतापन्न स्थिति प्राप्त करने के लिए परिपक्व था। अतः भिक्षाटन से लौटते समय, बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ जब उसके पास से गुजरे तो वहाँ रुक गए। जब मछुआरे ने बुद्ध को देखा तो उसने मछली मारने की बंशी (मछली मारने का काँटा) को फेंक दिया और उनके पास आकर प्रणाम करके खड़ा हो गया। तब बुद्ध ने एक-एक कर अपने सभी भिक्षुओं का नाम उस मछुआरे की उपस्थिति में पूछा। सारिपुत्त मोग्लान सभी ने एक एक कर अपना नाम बताया। मतस्यघातक ने सोचा "संभव है, मेरा क्रम आने पर मेरा नाम भी पूछें।" बुद्ध ने उसके मन की स्थिति को जान लिया। अतः क्रम आने पर उसका नाम भी पूछ दिया, "क्या नाम है तुम्हारा उपासक ?" मछुआरा प्रसन्न हुआ और अपना नाम बताते हुए बोला, "भन्ते ! मेरा नाम 'आर्य' है।"

शास्ता ने इसे सुना और तब उससे प्रश्न किया, "तुम तो मछलियों को मारते हो, उनकी हत्या करते हो, उनके प्राण लेते हो; तुम्हारा नाम आर्य कैसे हो सकता है ? एक 'प्राणघातक' का नाम आर्य कैसे हो सकता है ? आर्य तो वे होते हैं जो प्राणियों के प्राण नहीं लेते, जीव-हत्या नहीं करते और सबों के साथ मैत्री-भाव रखते हैं।"

यह कहते हुए उन्होंने यह गाथा कही। देशना के पश्चात् मत्स्यघातक स्रोतापन्नफल में स्थित हो गया।

गाथा: न सीलब्बतमत्तेन, बाहुसच्चेन वा पन ।
अथ वा समाधिलाभेन, विवित्तसयनेन वा ।।271।।

अर्थ: केवल शील और व्रत धारण करने मात्र से, सत्यभाषण से, समाधिसाधना या एकान्तवास करने से......

सभी आस्त्रवों को समाप्त करना आवश्यक है
कुछ भिक्षुओं की कथा

स्थान : श्रावस्ती जेतवन

यह देशना बुद्ध ने जेतवन में कुछ शील सम्पन्न भिक्षुओं के संदर्भ में कही थी।

कथा के अनुसार एक समय कुछ भिक्षुओं ने मन में सोचा, "हमने सभी सदगुणों को प्राप्त कर लिया है, हम शील में स्थित हैं; हम पवित्र जीवन जीते हैं; हम दूर एकान्तवास करते हैं; हमने ध्यान साधना द्वारा शक्तियां भी प्राप्त कर ली हैं, सभी व्रत पूरे कर चुके हैं। हमारे लिए अर्हत्व प्राप्त करना अब कठिन नहीं है; वस्तुतः हम जिस दिन भी चाहें, उसी दिन अर्हत्व प्राप्त कर सकते हैं।" उन भिक्षुओं में कुछ अनागामी फल भी प्राप्त कर चुके थे। उनका भी सोचना था, "अब हमारे लिए अर्हत्व प्राप्त करना कठिन नहीं है।"

एक दिन वे सभी शास्ता के पास पहुँचे, उन्हें सादर प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए।

तब बुद्ध ने पूछा, "भिक्षुओं ! क्या तुम्हारे प्रव्रजित होने का उद्देश्य पूरा हो गया ? " भिक्षुगण ने उन्हें उत्तर दिया, "भन्ते ! हमने फलाँ-फलाँ सीढ़ी पार कर ली है। अतः हम जब चाहें, अर्हत्व प्राप्त कर सकते हैं। हम यही सोचकर साधना कर रहे हैं।"

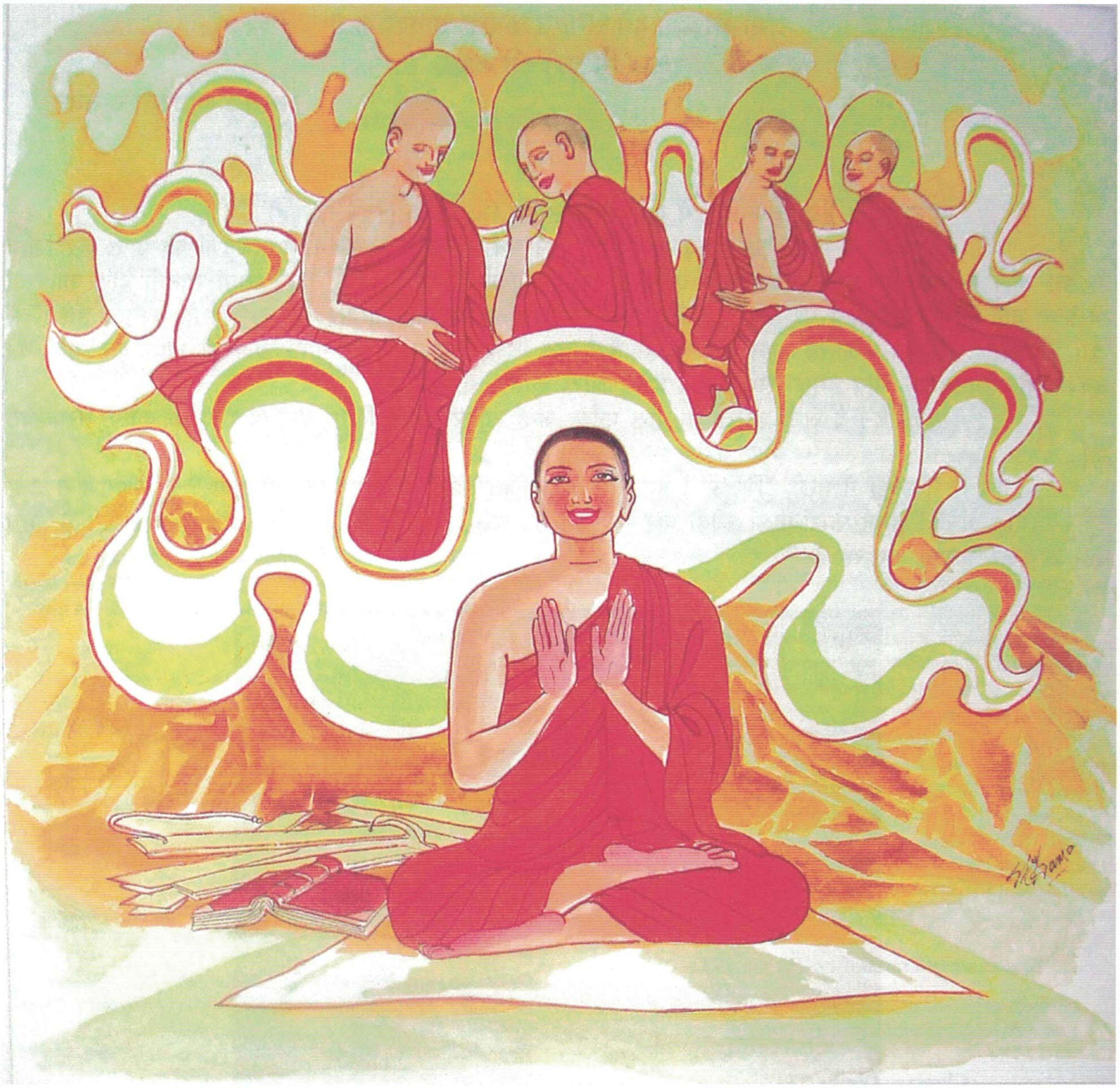

गाथा: फुसामि नेक्खम्मसुखं, अपुथुज्जनसेवितं ।
भिक्खु विस्सासमापादि, अप्पत्तो आसवक्खयं ।।272।।

अर्थ: ......'मैं पृथक जनों द्वारा अप्राप्त अनागामी सुख का अनुभव कर सकता हूँ'- ऐसी धारणा नहीं बनानी चाहिए जब तक आस्रवों का पूर्णत: क्षय न हो जाये।

दृढ़ प्रतिज्ञ ही निर्वाण पायेगा
कुछ भिक्षुओं की कथा

जब बुद्ध ने उनका जवाब सुना तब उन्हें समझाते हुए कहा, "भिक्षुओं ! किसी भी भिक्षु को जो शीलादि व्रत से परिशुद्ध हो चुका है या अनागामी की स्थिति में पहुँच चुका है, यह नहीं सोचना चाहिए कि थोड़ा-सा सांसारिक दुःख जीतना बाकी है क्योंकि सभी आस्रवों से मुक्त हुए बिना 'मैं सुखी हूँ' यह नहीं कहा जा सकता। इसके बाद तथागत ने ये दो गाथाएं कहीं।

टिप्पणीः इन दो गाथाओं के द्वारा बुद्ध अपने शिष्यों को नसीहत देते हैं कि निर्वाण की साधना में रत भिक्षुओं को अपनी साधना में कदापि ढिलाई नहीं बरतनी चाहिए। थोड़ा कुछ प्राप्त हो गया, कुछ दूर तक पहुँच कर संतोष नहीं कर लेना चाहिए कि अब तो मंजिल पास है। जब चाहें पहुँच सकते हैं। भिक्षुओं को यह भी हिदायत दी जाती है कि वे कर्म कांडों से संतुष्ट न हो जायें और न यह सोचकर संतुष्ट हो जायें कि बहुत सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। 'मन को जीतने की कुछ सीढ़ियाँ पार कर गया' यह संतोष का विषय नहीं होना चाहिए।

अपने अंदर की कमजोरी जब तक पूर्णतः समाप्त नहीं हो जाएगी, अर्हत्व की प्राप्ति नहीं होगी। अतः अपने अन्दर स्थित अशुद्धियों से मुक्त होने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। जिस प्रकार थोड़ा भी विष्टा दुर्गन्ध देता है उसी प्रकार अल्पमात्र आश्रव भी दुख का कारण होता है।

माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने और उससे एक सीढ़ी नीचे तक पहुँचने में बहुत अंतर है। पर्वतारोही विजयी तभी कहलाता है जब वह चोटी पर पहुँच जाता है। अतः जब तक मंजिल तक न पहुँच जायें, संतोष न करें।

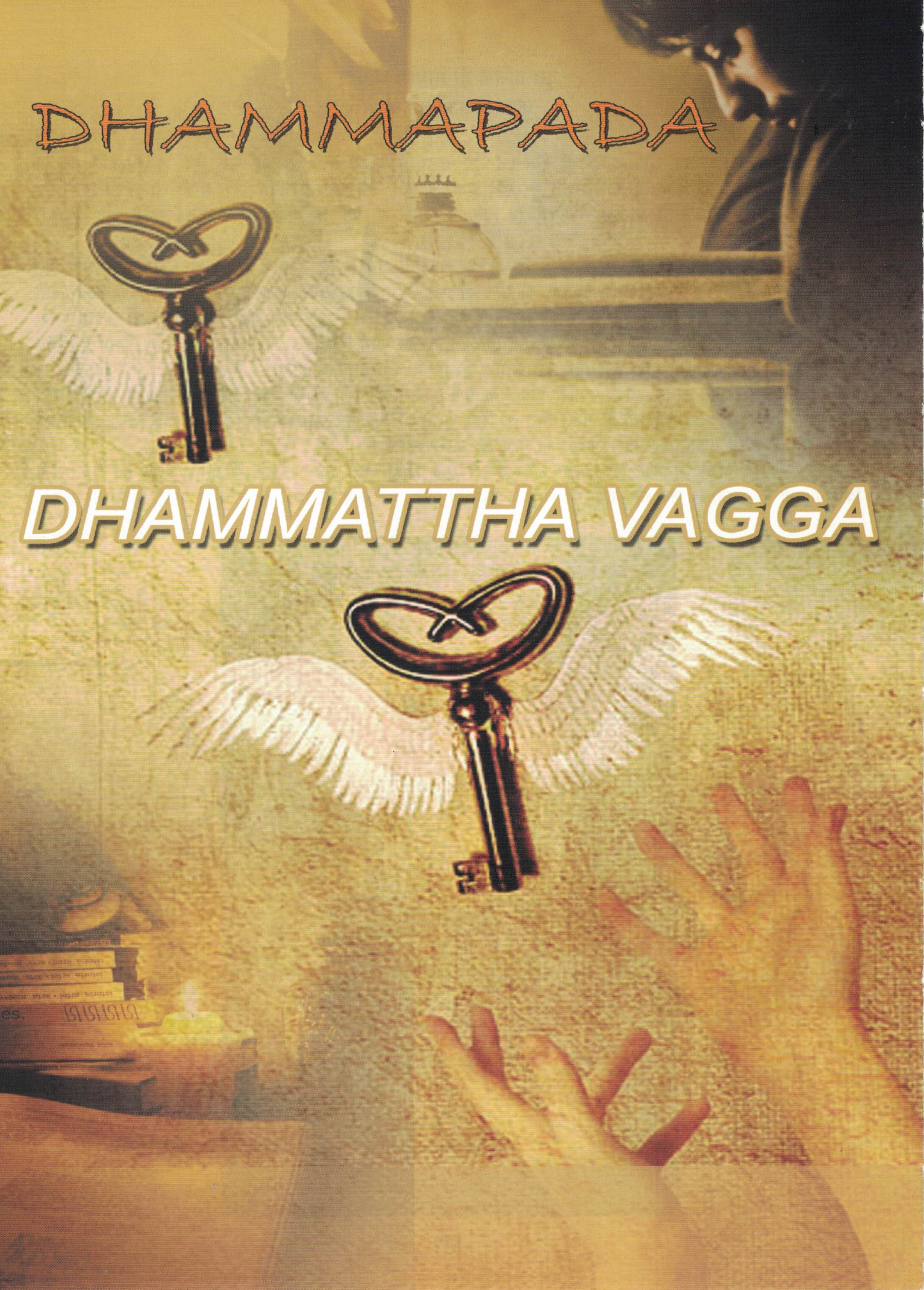
DHAMMAPADA
DHAMMATTHA VAGGA

मुक्ति का मार्ग

धम्मपद

मार्ग वर्ग

गाथा और कथा

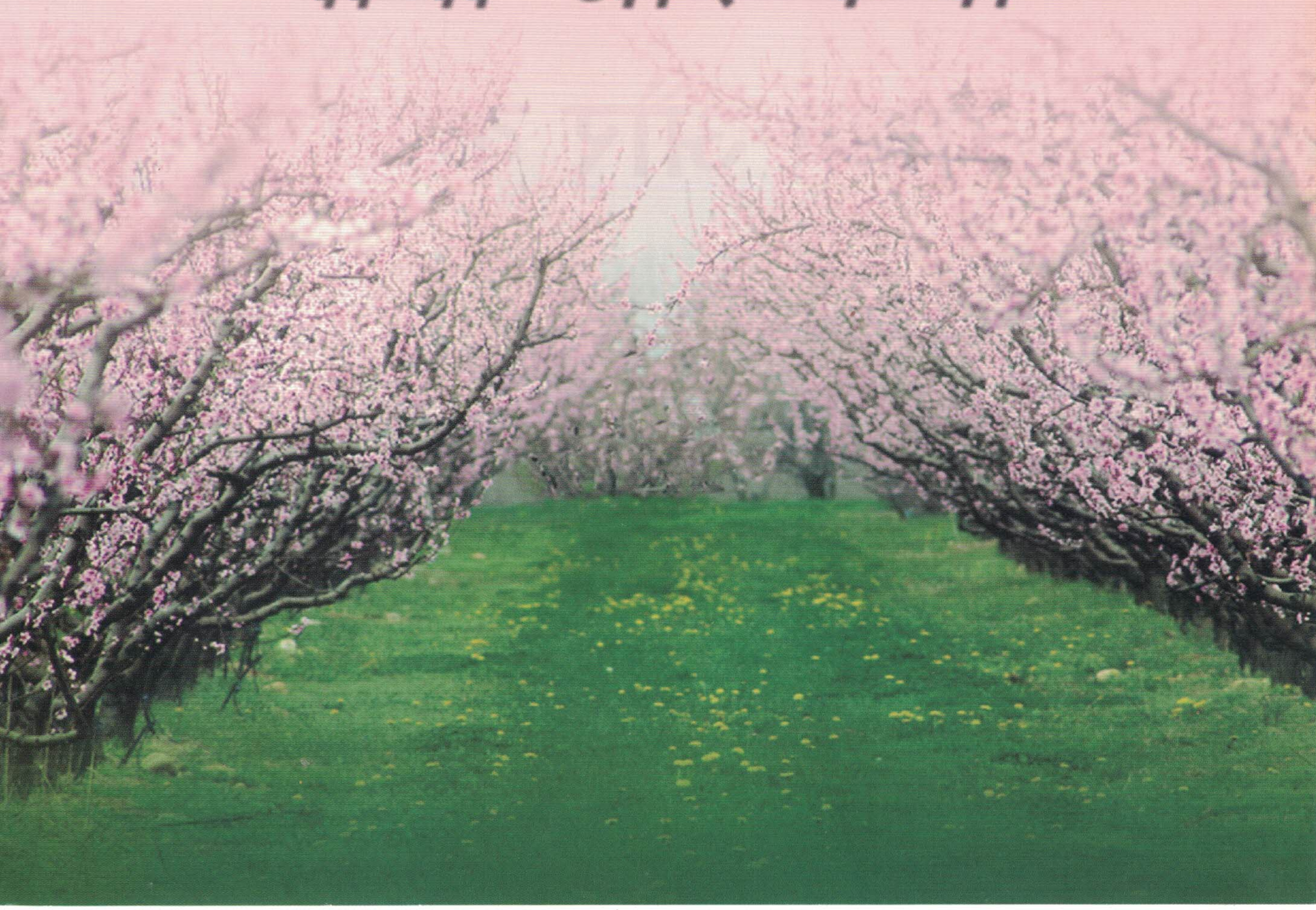

मुक्ति का मार्ग

धम्मपद

मार्ग वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

मार्ग वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	273	श्रेष्ठ क्या है ?	185
2	पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	274	मार्ग एक ही है	187
3.	पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	275	मार्ग पर चल सांसारिक दुःखों से मुक्त हों	189
4.	पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	276	कठिन तप स्वयं ही करना होगा	191
5.	अनित्य–लक्षण की कथा	277	सभी संस्कार अनित्य हैं	193
6.	दुःख लक्षण की कथा	278	सारे संस्कार दुःखमय हैं	195
7.	अनात्म लक्षण की कथा	279	सभी धर्म अनात्म हैं	197
8.	योगाभ्यासी तिस्स थेर की कथा	280	आलसी प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता	199
9.	शूकर प्रेत की कथा	281	मन–वचन और शरीर को शुद्ध करें	201
10.	पोटिल स्थविर की कथा	282	प्रज्ञा की वृद्धि के लिए यत्न करें	203
11.	वृद्ध भिक्षुओं की कथा	283	आसक्ति और कामना को काटो	205
12.	वृद्ध भिक्षुओं की कथा	284	काम वासना के बंधन से मुक्त हों	207
13.	सुवर्णकार थेर की कथा	285	शरद ऋतु के पुष्पों की तरह आसक्ति को काट डालो	209
14.	महाधनी व्यापारी की कथा	286	सिर्फ मूर्ख ही विघ्न नहीं देखता	211
15.	किसा गोतमी की कथा	287	आसक्त व्यक्ति : मृत्यु के अधीन	213
16.	पटाचारा की कथा	288	मृत्यु आगमन पर कोई बच नहीं सकता	215
17.	पटाचारा की कथा	289	शीलवान निर्वाण मार्ग पर गमन करें	217

गाथा: मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सट्ठो धम्मानं, द्विपदानञ्च चक्खुमा।।273।।

अर्थ: आध्यात्मिक चितन के मार्ग में अष्टांगिक मार्ग ही श्रेष्ठ है। सत्यों में चार आर्य-सत्य श्रेष्ठ हैं। धर्मों में वैराग्य सर्वश्रेष्ठ है और देवताओं और मनुष्यों में ज्ञानवान तथागत (चक्षुष्मान) ही श्रेष्ठ हैं।

श्रेष्ठ क्या है ?
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन का बौद्ध विहार, सायं काल की बेला थी । सूर्य देवता अस्त हो चुके थे। रात अपनी काली चादर ओढ़कर उतरने लगी थी और उधर तारे भी आकाश में टिमटिमाने लगे थे। ठंढी-ठंढी हवा मंद-मंद बह रही थी। विहार में पूर्णतः नीरसता थी। शास्ता विहार में भिक्षुओं के साथ विराजमान थे। कुछ भिक्षु थोड़े समय पहले चारिका से लौटे थे तथा आसनशाला में बैठकर विश्राम कर रहे थे। साथ ही साथ आपस में कुछ इधर-उधर, कुछ घर की चर्चा भी कर रहे थे।

गाथा: एसो व मग्गो नत्थञ्ञो, दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतम्हि तुम्हे पटिपज्जथ, मारस्सेतं पमोहनं।।274।।

अर्थ: दर्शन की विशुद्धि (ज्ञान की प्राप्ति) के लिए यही एक मात्र मार्ग है, अन्य कोई दूसरा नहीं। तुम इसी पर चलना। यह मार को हक्का बक्का करने वाला (मुग्ध कर निस्तेज करने वाला), किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनाने वाला है।

मार्ग एक ही है
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

उनकी बातचीत और साधारण लोगों की बातचीत में कोई अन्तर नहीं था। सांसारिक लोगों की तरह वे भी गप्पें मार रहे थे। वरन् उनकी चर्चा का विषय है - सांसारिक चीजें, सारी की सारी चर्चा अन्तर्यात्रा से सम्बन्धित न होकर अर्हियात्रा से ही सम्बन्धित थी। निजी अनुभूति, अपनी-अपनी साधना उनकी चर्चा का विषय नहीं था, बल्कि विषय था- "अमुक गाँव की सड़क अच्छी है, अमुक गाँव की सड़क अच्छी नहीं है। वहाँ का रास्ता कंकड़ युक्त है, पथरीला है, दूसरी जगह के रास्ते पर कंकड़ भी नहीं है और मार्ग पथरीला भी नहीं है।"

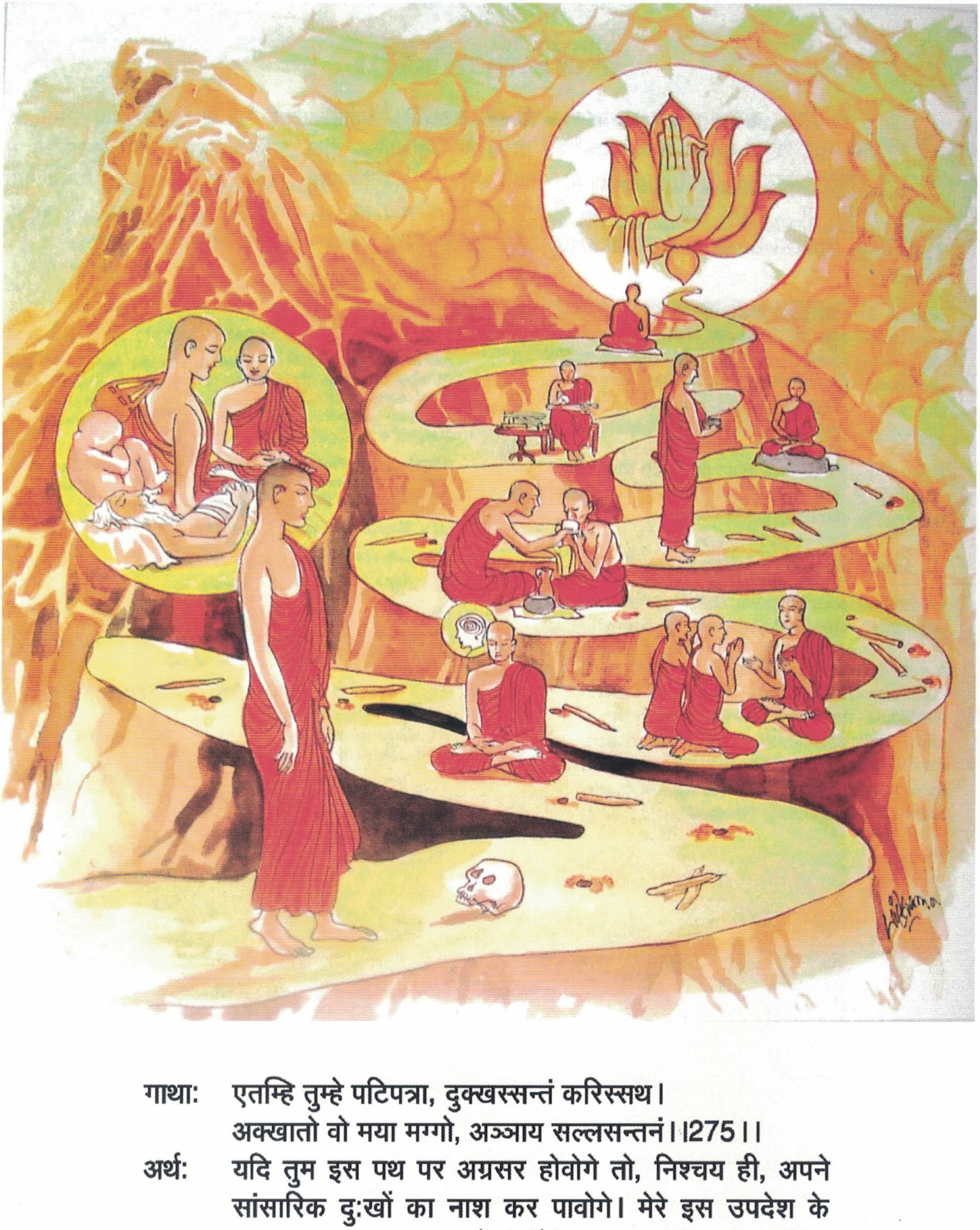

गाथाः एतम्हि तुम्हे पटिपन्ना, दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वो मया मग्गो, अञ्ञाय सल्लसन्तनं।।275।।

अर्थः यदि तुम इस पथ पर अग्रसर होवोगे तो, निश्चय ही, अपने सांसारिक दु:खों का नाश कर पावोगे। मेरे इस उपदेश के अनुसार चलकर तुम अपने भवरोग (भवकण्टक) का नाश कर सकोगे।

मार्ग पर चल सांसारिक दु:खों से मुक्त हों
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

वहाँ की जमीन ऊबड़-खाबड़ है तो वहाँ की जमीन समतल और उपजाऊ। उस रास्ते से जाने पर काँटे मिलेंगे पर फलाँ तरफ से जाने से रास्ते में काँटे नहीं मिलेंगे। उस तरफ छायादार वृक्ष हैं तो उस मार्ग पर कोई वृक्ष है ही नहीं।"

गाथा: तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारो तथागता।
पटिपत्रा पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धना।।276।।

अर्थ: तुम्हें ही इसके लिए कठिन तप (उद्योग, परिश्रम) करना है। तथागत तो केवल मार्ग बता सकते हैं। यह निश्चित समझ लो कि जो इस मार्ग पर अग्रसर होवेंगे वे अवश्य ही भवदु:ख से मुक्त हो जायेंगे।

कठिन तप स्वयं ही करना होगा
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लिया कि इन भिक्षुओं में अर्हत्व प्राप्ति की प्रबल संभावना है। अतः वे उन भिक्षुओं के निकट पहुँचे और आसन पर विराजमान होते हुए बोले, "तुम लोग अभी क्या चर्चा कर रहे थे ? " भिक्षुओं ने अपने मार्ग से सम्बन्धी विषय पर हुई चर्चा की जानकारी दी। तब शाक्य मुनि ने उन्हें बताया, "भिक्षुओं ! तुम तो वाह्य मार्ग की चर्चा कर रह हो। भिक्षुओं की चर्चा का विषय तो होना चाहिए - आध्यात्मिक आर्य मार्ग। ऐसा करने से मनुष्य अपने दुःखों से मुक्त हो सकता है।"

गाथा: "सब्बे सङ्खारा अनिच्चा" ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।277।।

अर्थः 'सभी संस्कार अनित्य है' ऐसा जब साधक प्रज्ञा द्वारा साक्षात करता है तब उसे दुःख से विरक्ति होती है। यही चित्तविशुद्धि का वास्तविक मार्ग है।

सभी संस्कार अनित्य है
अनित्य-लक्षण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन में थे। उसी समय कुछ भिक्षु आये। वे उनसे ध्यान-साधना सीखकर साधना के उद्देश्य से वन को प्रस्थान कर गए। वे एकान्त में साधना करते रहे। पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि शायद ध्यान-साधना सीखने में कोई कमी रह गई है। फिर से चलकर सीख लेते हैं।

शाक्य मुनि ने अपनी दिव्यदृष्टि से जान लिया था कि ये भिक्षु अनित्य की भावना पर ध्यान करने के पथ पर अग्रसर हैं। अतः उन्होंने भिक्षुओं को समझाया, "काम भाव आदि में सभी संस्कार उत्पन्न होकर अभाव को प्राप्त होने के कारण अनित्य ही हैं।" उन्होंने आगे स्पष्ट किया, " आदमी जब ऐसा विपश्यना प्रज्ञा द्वारा जान जाता है तब वह इस स्कन्धपरिहरण दुःख से निर्वेद वैराग्य पैदा करता है। अर्थात् वैराग्य होने से दुःख क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है, दुःख के साक्षात्कार से सत्य का ज्ञान करता है।" ऐसा है यह विमुक्ति का मार्ग ! ऐसा समझाते हुए उन्होंने यह गाथा कही।

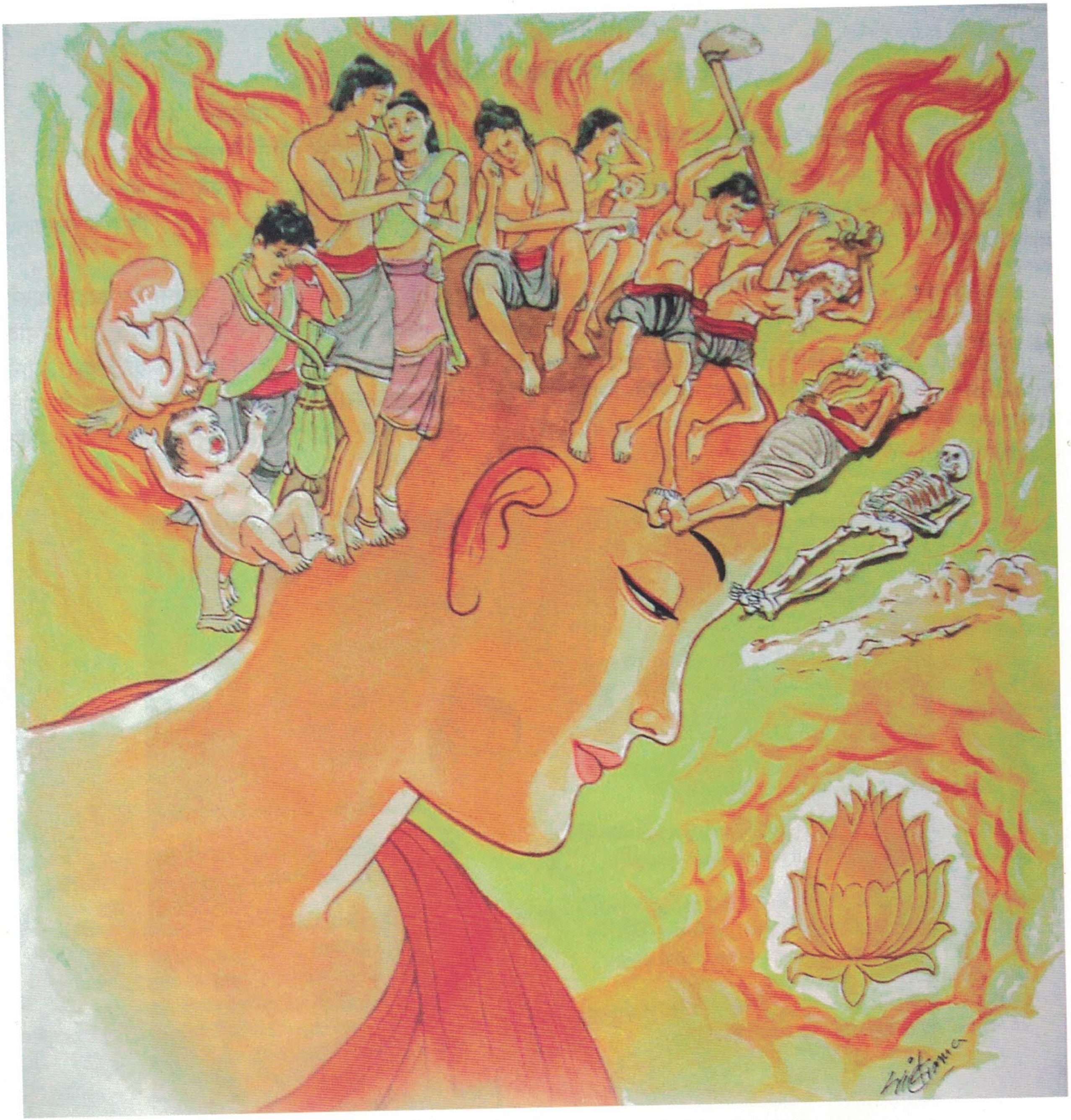

गाथा: "सब्बे सङ्खारा दुक्खा" ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।278।।

अर्थः 'सभी संस्कार दुःखमय हैं' - जब साधक यह बात प्रज्ञा द्वारा जान लेता है तब उसको दुःख के प्रति वैराग्य (घृणा) पैदा हो जाता है। यही चित्तविशुद्धि का सच्चा मार्ग है।

सारे संसार दु:खमय हैं
दु:ख लक्षण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह दूसरी गाथा भी जेतवन में उन्हीं भिक्षुओं के संदर्भ में कही गई है।

कुछ समय बाद एक दिन शाक्य मुनि ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि इन भिक्षुओं में दु:ख लक्षण भावना है तो फिर उन्होंने भिक्षुओं को बुलाया और उनसे बोले, "भिक्षुओं ! सभी संस्कार प्रतिपीड़क होने के कारण दु:खमय हैं। यह सारा संसार ही दु:खमय है। यहाँ संसार में सुख की कोई किरण नहीं है। जिस दिन समझ लोगे कि सभी संस्कार दु:ख-स्वरूप हैं। उस दिन से तुम दु:खों से छुटकारा पाने लगोगे। प्रज्ञा से जब यह पहचान लोगे तो सभी दु:खों से मुक्ति हो जायेगी। यही निर्वाण का मार्ग है, यही चित्त के विशुद्धि की राह है। अत: मनुष्य को समझने की कोशिश करनी चाहिए कि सारे संस्कार दु:खदायक हैं अर्थात् जो उत्पन्न होता है, वह नाशवान् होने के कारण दु:खदायी है। इस सच्चाई को जब कोई विपश्यना ज्ञान से देख लेता है, जान और समझ लेता है अर्थात् दु:ख क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है - तब वह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग प्राप्त कर लेता है।"

तब शास्ता ने यह गाथा कही।

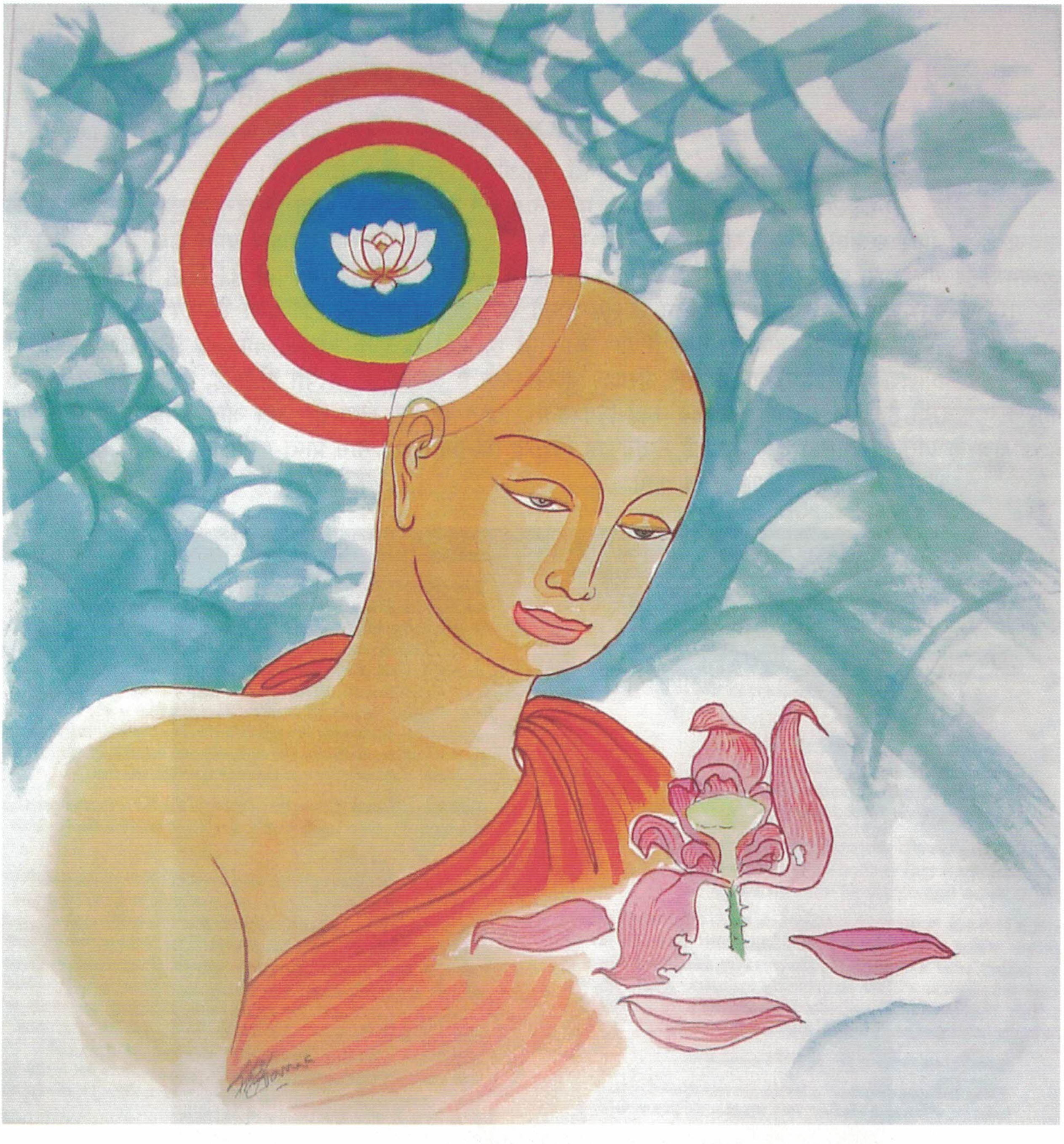

गाथा: "सब्बे धम्मा अनत्ता" ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया।।279।।

अर्थः सभी धर्म (पदार्थ, पंचस्कन्ध) अनात्म हैं- जब मनुष्य इस बात को प्रज्ञा से देखता है तब उसे संसार से वैराग्य (निर्वेद) पैदा होता है और यही विशुद्धि का सच्चा मार्ग है।

सभी धर्म अनात्म हैं
अनात्म लक्षण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह धर्मदेशना भी शास्ता ने उन्हीं भिक्षुओं के संदर्भ में जेतवन में कही थी।

एक दिन शाक्य-मुनि ने उन्हें सम्बोधित करते हुए समझाया, "भिक्षुओं ! सभी धर्म (पंचस्कन्ध) अनात्म हैं। आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। न तो तुममें और न ही इन चीजों में कोई आत्मा है। आत्मा से भाव होता है किसी चिरस्थायी, शाश्वत, स्थिर चीज का। पर इस जगत में चिरस्थायी, शाश्वत, स्थिर नाम की तो कोई चीज है ही नहीं। सभी कुछ अशाश्वत है, अस्थिर है। न तो कोई पदार्थ निरंतर रहने वाला है और न तुम निरंतर रहने वाले हो। सभी कुछ स्कन्ध के अलावा और कुछ नहीं है। मनुष्य कुछ और नहीं है - सभी स्कन्धों को मिलाकर, जोड़-जोड़कर बनाया गया एक पुतला है। इस धर्म को जानो, इस सच्चाई को पहचानो। इस धर्म के स्वरूप को जान जाओगे तो समझ जाओगे कि आत्मा-परायण या ईश्वर परायण से विशुद्धि और फिर विमुक्ति प्राप्त नहीं होती। जब यह समझ लोगे तो निर्वेद को प्राप्त कर लोगे। यही विशुद्धि का मार्ग है। अर्थात् साधक को समझने की चेष्टा करनी चाहिए कि 'सभी धर्म अनात्म हैं यानि लौकिक या लोकोत्तर, जो कुछ भी है, वह सब अनात्म है, 'मैं', 'मेरा' नहीं है। इस सच्चाई को जब कोई विपश्यना प्रज्ञा द्वारा जान लेता है, देख लेता है तब उसको सभी दुःखों से निर्वेद प्राप्त हो जाता है अर्थात् दुःख क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है। ऐसा अद्भुत है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग ! "

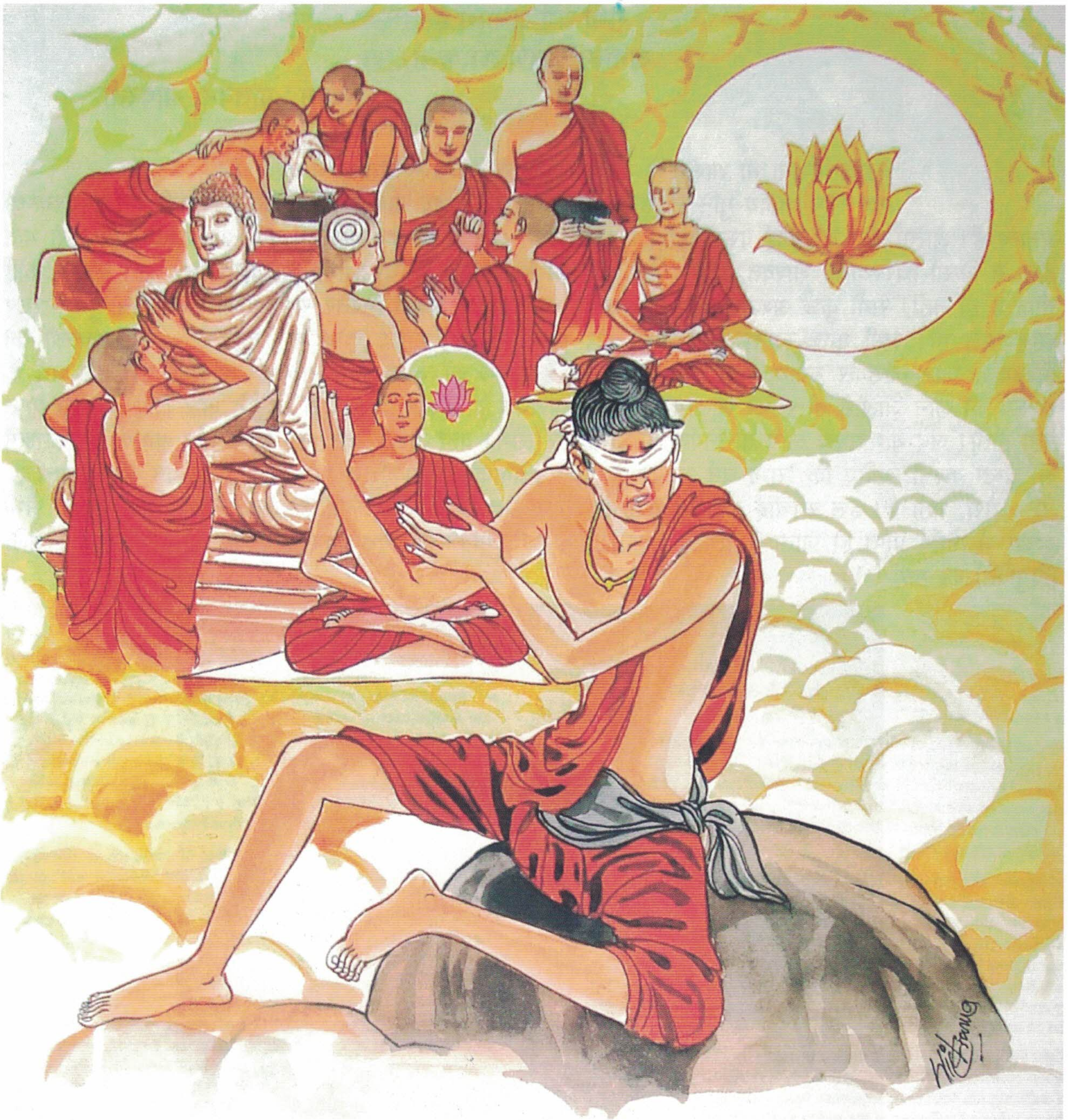

गाथा: उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो, युवा बली आलसियं उपेतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो, पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति।।280।।

अर्थ: उठ खड़ा होने के समय जो उठ खड़ा नहीं होता, युवा और बलशाली होने पर भी आलस्य करता है, जिसने उच्च आकांक्षाओं को छोड़ दिया है और उसकी जगह जिसका मन व्यर्थ के संकल्पों से भरा है ऐसा दीघसूत्री तथा आलसी व्यक्ति प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता।

आलसी प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता
योगाभ्यासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन में एक समय बहुत सारे कुलपुत्र शास्ता से प्रव्रजित हुए। उनसे प्रव्रज्या ग्रहण कर, ध्यान-साधना की विधि सीख सभी जंगल की ओर तपस्या करने हेतु प्रस्थान कर गए। उनमें से सिर्फ तिस्स नाम का एक भिक्षु विहार में रह गया।

वन में उन भिक्षुओं ने सतत् साधना की, घोर तपस्या की और सभी ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। वे सभी वन से शाक्य-मुनि से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए चल पड़े। अपनी उपलब्धि से वे बहुत प्रसन्न थे। हृदय उमंग और उत्साह से भरा हुआ था। रास्ते में किसी उपासक ने उन्हें भोजन-दान दिया और अगले दिन के लिए भी आमंत्रित कर दिया।

श्रावस्ती पहुँचकर, विहार में पात्र-चीवर रखकर इन सफल भिक्षुओं ने संध्या बेला में शास्ता को सादर प्रणाम किया और अपने विषय में बताया। शाक्य-मुनि ने उनके कार्य और उपलब्धि पर संतोष व्यक्त किया और उनका स्वागत सत्कार किया।

अर्हत रहित भिक्षु तिस्स ने सोचा, "शास्ता के पास इन सफल भिक्षुओं के स्वागत के लिए शब्दों की कमी पड़ रही है और इसके विपरीत मुझे कहने के लिए उनके पास एक भी शब्द नहीं है क्योंकि मैंने अर्हत्व प्राप्त नहीं किया। मैं आज ही अर्हत्व प्राप्त करूँगा।"

तिस्स ने रात भर अर्हत्व प्राप्ति हेतु चंक्रमणत्व किया। इससे थककर वह एक पत्थर पर गिर गया और उसके जाँघ की एक हड्डी टूट गई। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुन भिक्षुगण दौड़े-दौड़े आए और उसकी मरहम पट्टी की। इलाज करते-करते सुबह हो गई। वे उपासक के पास पुनः भोजनदान हेतु नहीं जा पाये। शास्ता को इस बात की जानकारी हुई। उन्होंने बताया कि पूर्व जन्म में भी तिस्स तुम्हारे लिए व्यवधान बन चुका था। उन्होंने यह भी समझाया, "भिक्षुओ ! जो परिश्रम करने के समय परिश्रम (उद्योग) नहीं करता उस समय उत्साहहीन मन वाला होकर बैठा रहता है, वह आलसी समय के अन्तराल से ध्यान आदि में कोई विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाता।

इस प्रसंग में उन्होंने यह गाथा कही।

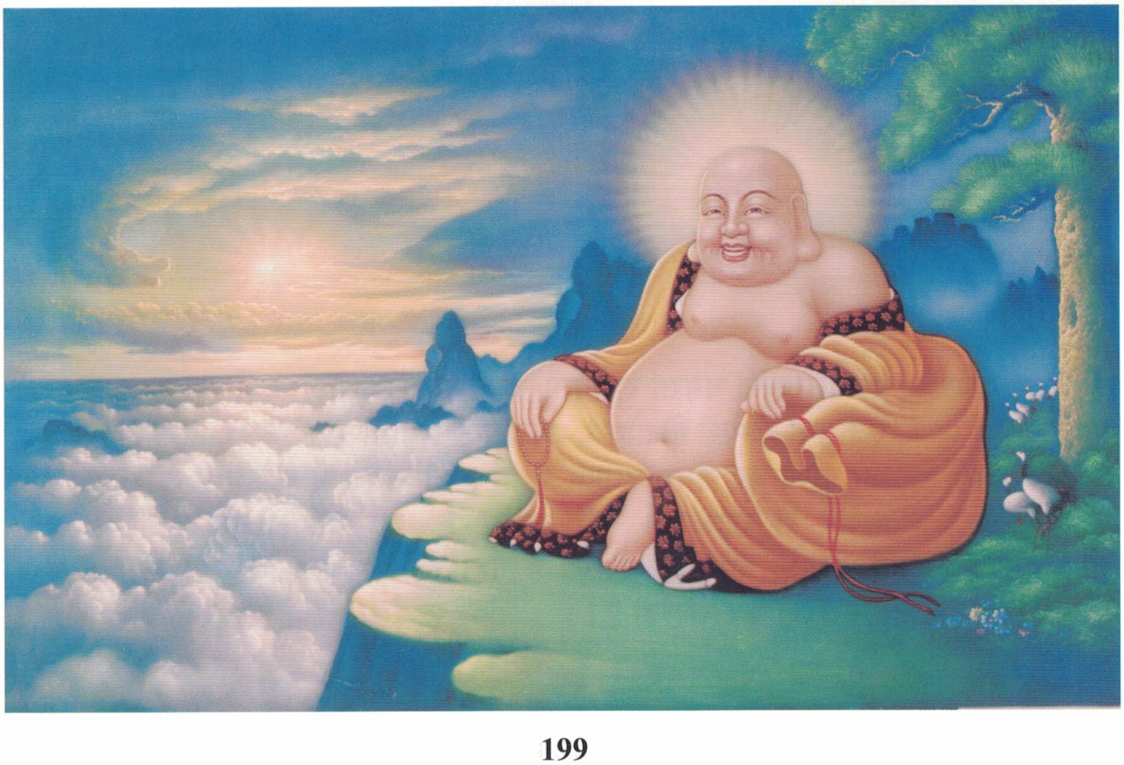

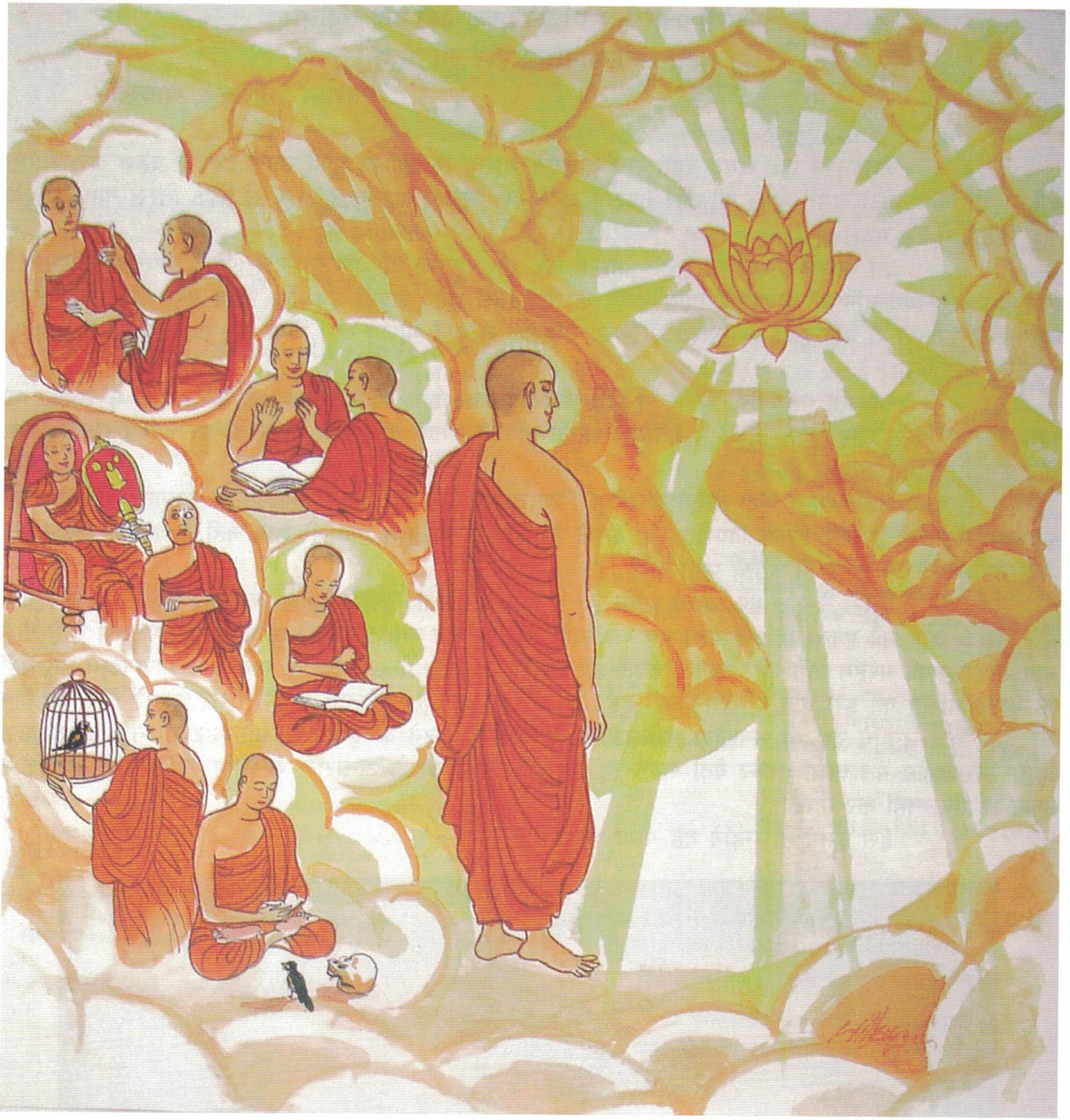

गाथा: वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो, कायेन च अकुसलं कयिरा।
एते तयो कम्पथे विसोधये, आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं।।281।।

अर्थ: जो वाणी पर संयम रखता है, मन को संयत में रखता है और शरीर से पाप-कर्म नहीं करता है; जो व्यक्ति इन तीनों कर्मेन्द्रियों को शुद्ध रखता है वही बुद्ध के बतलाये मार्ग का अनुसरण कर सकता है।

मन-वचन और शरीर को शुद्ध करें
शूकर प्रेत की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार महामोग्गलान और लक्ष्मण थेर गृध्रकूट पर्वत से नीचे उतर रहे थे। महामोग्गलान मुस्कुराये तो लक्ष्मण थेर ने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि विहार चलकर शास्ता के सामने यह प्रश्न पूछना।

दोनों विहार पहुँचे। शाक्य मुनि की उपस्थिति में लक्ष्मण थेर ने यह प्रश्न पूछा। तब मोग्गलान ने बताया कि उन्होंने एक प्रेत देखा था जिसका शरीर तो मनुष्यों की तरह था पर सिर सूअर की तरह था। यह सुनकर तथागत बोले, "मैंने भी इस प्रेत को बोधिवृक्ष के निकट देखा था पर उस समय किसी से नहीं कहा था क्योंकि अगर मैं किसी से कहता और वह विश्वास नहीं करता तो अपने लिए गलत कर्म का सृजन कर लेता। मोग्गलान सच कह रहे हैं।"

शिष्यों ने उसके पूर्व जन्म की गति जाननी चाही कि वह कैसे इस योनि में प्रकट हुआ। तब बुद्ध ने यह कथा सुनाई।

प्राचीन काल में काश्यप बुद्ध के समय दो भिक्षु, एक साठ साल का और एक उनसठ साल का, जिनमें परस्पर गाढ़ी मैत्री थी, एक साथ एक विहार में रहते थे। वहाँ एक धम्मकथा सुनाने वाला आया। वे उसे गाँवों में धर्मकथा सुनाने के लिए ले जाने लगे। इन दोनों स्थविरों के सरल स्वभाव को देखकर धर्मकथित ने सोचा, "क्यों न इनमें फूट डालकर, इन्हें विहार से निकाल दूँ तथा यह विहार हथिया लूँ।" ऐसा सोचकर वह दोनों स्थविरों से अलग-अलग एक दूसरे की चुगली करने लगा। स्थविरों को उसके षड्यंत्र का भान न हुआ और वे दोनों आपस में लड़ बैठे और विहार से निकल गए। वर्षों बाद दोनों कहीं पर फिर एक साथ मिले और रो पड़े । आपस की बातचीत से पता चला कि किस प्रकार उस धर्मकथित ने उनके अन्दर फूट डाली थी। वे दोनों विहार लौटे और मार-मार कर उस धर्मकथित को विहार से बाहर निकाल दिया। पर धर्मकथित ने इतना बड़ा पाप किया था कि उसके द्वारा किया गया पुण्य भी उसे नहीं बचा पाया। वह नरक लोक में जा गिरा और फिर शूकर की योनि में जन्म लिया। शास्ता ने शिष्यों को समझाया, "मनुष्य को मन, वचन और कर्म से सदा शांत आचरण करना चाहिए।"

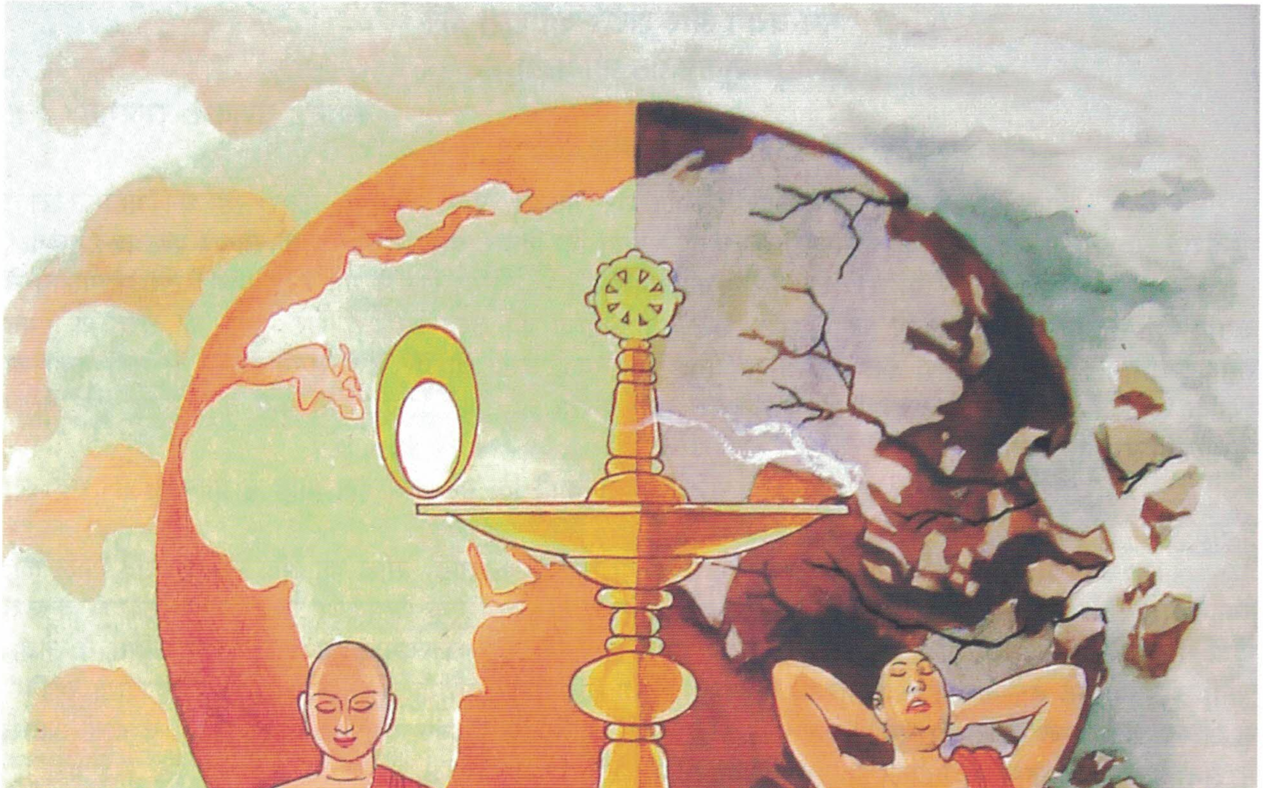

गाथा: योगा वे जायती भूरि, अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा, भवाय विभवाय च।
तथत्तानं निवेसेय्य, यथा भूरि पवड्ढति।।282।।

अर्थ: योग अभ्यास से ज्ञान बढ़ता है और योग न करने से ज्ञान का क्षय होता है। लाभ और हानि इन दोनों प्रकार के मार्ग को जानकर साधक अपने आप को ऐसा रखे जिससे उसमें ज्ञान की वृद्धि हो।

प्रज्ञा की वृद्धि के लिए यत्न करें
पोटिल स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन विहार में पोटिल नामक एक स्थविर रहते थे। वे त्रिपिटक के ज्ञानी थे, प्रवचन तो देते थे पर स्वयं मार्ग फल प्राप्त नहीं किया था। शास्ता को ज्ञात था कि इनके अन्दर अभी भी अहंकार समाप्त नहीं हुआ है। अत: वे उसे 'तुच्छ पोटिल' कहकर संबोधित करते थे।

एक दिन पोटिल ने सोचा, "मैंने त्रिपिटक का गहराई से अध्ययन कर लिया है। अन्य धर्मग्रंथों को भी पढ़ा है। फिर भी तथागत मुझे 'तुच्छ पोटिल' कहकर ही संबोधित करते हैं; शायद इसलिए कि मैंने अर्हत्व प्राप्त नहीं किया है।" ऐसा सोचकर उसे अपने आप पर बहुत ग्लानि हुई और प्रात: काल ही वह धर्मश्रवण कर विहार से निकल गया। जेतवन से तीस योजन दूर चल एक जंगल में पहुँच गया जहाँ तीस अर्हत भिक्षु साधना करते थे। वहाँ पहुँच कर उसने सादर प्रणाम किया और संघस्थविर से बोला, "अर्हत प्राप्ति हेतु कृपया मेरा आश्रय बनिए।" संघस्थविर इसके लिए तैयार न हुए क्योंकि उन्हें मालूम था कि इसे अपने पढ़े हुए का अभिमान है। सभी भिक्षु उसे टालते रहे। अंत में उसे एक सात वर्षीय भिक्षु के पास भेज दिया। इस प्रकार पोटिल का मान मर्दन हो गया।

जब पोटिल का मान मर्दन हो गया तब उसने श्रामनेर से प्रार्थना की, "आप मेरे अर्हत बनने का आधार बनिए। मैं आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करूँगा। अगर आग में कूदने के लिए कहेंगे तो आग में भी कूद जाऊँगा।" तब श्रामनेर ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। उससे कहा, "आप जिस स्थिति में हैं उसी स्थिति में सामने के सरोवर में कूद जाइए।" पोटिल कूदने को उद्यत हुए तो श्रामनेर ने उसे बुला लिया फिर श्रामनेर ने उसे समझाया कि मनोद्वार के माध्यम से साधना प्रारंभ करो। पोटिल को लगा कि जैसे अंधकार में किसी ने दीपक जला दिया हो। वह अपने मलयुक्त शरीर के ऊपर चिंतन करता हुआ साधना करने लगा।

शास्ता ने यह सब कुछ देखा और पोटिल के सामने अपनी दिव्य आभा बिखेरते हुए यह गाथा कही।

गाथा: वनं छिन्दथ मा रुक्खं, वनतो जायती भयं।
छेत्वा वनं च वनथञ्च, निब्बना होथ भिक्खवो।।283।।

अर्थ: वासनाओं (आसक्ति) के वन को काटो केवल वृक्ष (शरीर) को नहीं। इस वन (वासना-वन) से भय उत्पन्न होता है। हे साधकों ! वन को तथा झाड़ियों (तृष्णा) का काटकर तुम वन वासना (आसक्ति) रहित हो जाओ।

आसक्ति और कामना को काटो
वृद्ध भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जिन दिनों बुद्ध जेतवन में वास करते थे उन दिनों बहुत सारे वृद्ध पुरुष एक साथ प्रव्रजित हो गए। वे सभी अपने गृहस्थ आश्रम में अच्छे-अच्छे परिवारों में पैदा हुए थे तथा आपस में मित्र भी थे। वे सत्कर्म के फल से तथा तथागत के प्रवचनों से प्रभावित होकर भिक्षु हो गए थे। यह सोचकर कि 'अब हम बूढ़े हो रहे हैं, अब हमारा गृहस्थ आश्रम में रहना शोभनीय नहीं है' वे प्रव्रजित हो गए थे। शास्ता ने उन्हें प्रव्रज्या दिला तो दी थी पर वे धर्म श्रमण का दृढ़ता से पालन करने में असमर्थ थे। अत: उन्होंने विहार के बाहर ही एक पर्णशाला बना ली और उसी में रहने लगे। भिक्षाटन हेतु जब वे जाते तो अपने परिवार वालों के पास ही जाते। उनमें से एक की पत्नी का नाम मधुरपाचिका या महामधुरिका था। वह बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और उन्हें दान स्वरूप देती थी। वे सभी भिक्षु भिक्षाटन में जो भोजन मिलता उसे लेकर उस स्त्री के घर आते थे। वह स्त्री भी सूप, व्यंजन आदि जो कुछ बना होता, दे देती थी। वे सभी उसी के घर में बैठकर खाना खाया करते थे।

एक दिन किसी गम्भीर बीमारी के कारण मधुरपाचिका का देहान्त हो गया। वे सभी वृद्ध स्थविर उस स्थविर के घर पर एकत्र हुए जिसकी वह पत्नी थी और आपस में गले लगकर जोर-जोर से विलाप करने लगे, "उपासिका, मधुरपाचिका का देहान्त हो गया। वह हम लोगों पर अनन्य कृपा रखती थी। अब उसके जैसा कृपालु कहाँ मिलेगा ? " इस प्रकार करूणापूर्ण दृश्य उत्पन्न हो गया। अन्य भिक्षुओं ने उनका करूण क्रन्दन सुना तो उनके पास आए और उनसे क्रन्दन का कारण पूछा। उन्होंने बता दिया कि मधुरपाचिका संसार से चल बसी ।

संध्या बेला में धर्म सभा में यह बात उठी। तब शास्ता ने काक जातक कहकर पूर्व काल की घटना सुनाई, "भिक्षुओं ! आज से बहुत जन्मों पूर्व ये सभी काक योनि में उत्पन्न हुए थे। वे समुद्र के किनारे रहते थे। एक बार समुद्र के किनारे विचरण करते समय उनकी मादा कौआ (काकी) समुद्र में बह गई। सभी मिलकर रोने लगे, विलखने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि हम सभी मिलकर समुद्र को सुखा डालेंगे और काकी को फिर प्राप्त कर लेंगे। तब इन कौओं ने अपने चोंच में समुद्र का जल भर कर बाहर फेंकना शुरू किया। लेकिन वे जितना जल समुद्र से बाहर फेंकते थे उससे अधिक जल समुद्र में आ गिरता था। इस प्रकार उस जन्म में भी ये बहुत दुःखी हुए।"

गाथा: याव हि वनथो न छिज्जति, अणुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनो व ताव सो, वच्छो खीरपको व मातरि।।284।।

अर्थः जब तक जरा सा भी (अणुमात्र भी) पुरुष के मन में स्त्रियों के प्रति कामना बनी रहती है तब तक वह उनसे वैसा ही बँधा रहता है और मुक्त नहीं होता जैसे दूध पीने वाला बछड़ा अपनी माँ से बँधा रहता है।

काम वासना के बंधन से मुक्त हों
वृद्ध भिक्षुओं की कथा

उनके पूर्व जन्म की कथा कहते हुए शाक्य-मुनि ने उनका कथन सुनाया, "हम समुद्र को सुखाने का प्रयत्न कर रहे हैं पर समुद्र को सुखाने में सफल नहीं हो रहे हैं। हमारी चोंच थक गई और मुँह भी सूखता जा रहा है। हम सभी थककर चूर हो रहे हैं। दूसरी ओर यह महासमुद्र बार-बार भरता ही जा रहा है।"

इस प्रकार काकजातक की कथा सुनाकर, उन वृद्ध भिक्षुओं को बुलाकर समझाया, "भिक्षुओं ! राग, द्वेष और मोह के वन के कारण ही तुम्हें कष्ट हो रहा है। तुम्हें इस वन को काट देना चाहिए। तभी तुम दुःखों से मुक्त हो सकोगे। वन को काटना ही तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।" तुम लोग वृक्ष को काटने पर अपनी ऊर्जा लगा रहे हो। वृक्ष को मत काटो। एक वृक्ष को काटोगे तो दूसरा वृक्ष निकल आयेगा। अगर वृक्ष को काटने पर ध्यान दोगे तो एक-एक वृक्ष से उलझते रहोगे। क्रोध काटोगे तो द्वेष रूपी वृक्ष उठ खड़ा हो जाएगा। द्वेष को काटोगे तो लोभ नामक वृक्ष उग आयेगा। जब लोभ को काटोगे तो पाओगे कि अब काम रूपी वृक्ष उग गया है और अब सारी शक्ति उसे काटने में लग रही है। इसलिए एक वृक्ष काटने की बजाय पूरा का पूरा वन ही काट डालो। अन्यथा मूल जहाँ का तहाँ विद्यमान रहेगा। वन और झाड़ी को काट वनरहित अर्थात् वासना रहित हो जाओ।"

शाक्य मुनि ने "वन को काटने" का उपदेश दिया तो वे सभी प्रव्रजित वृद्ध भिक्षु सोच बैठे कि शास्ता ने उन्हें पेड़ काटने की आज्ञा दी है। अतः वे फरसा, कुल्हाड़ी आदि लेकर पेड़ काटने को उद्यत हुए। तब शास्ता ने उन्हें समझाया कि 'वन' से उनका अभिप्राय 'वन वृक्ष' नहीं था अपितु उनका अभिप्राय 'राग आदि का क्लेश वन काटने का था।' उन्होनें पेड़ काटने से मना किया और समझाया कि जैसे वन में सिंह, बाघ आदि का भय रहता है उसी प्रकार जीवन के क्लेशवन में भी जन्म, मरण, जरा, बीमारी आदि का भय बना रहता है। "जब तक किसी पुरुष में वासना रूपी क्लेश अणुमात्र भी बचा रहता है तब तक, दूध पीने वाले बछड़े की गाय में आसक्ति की तरह, पुरुष की भी स्त्रियों में आसक्ति बनी रहती है।"

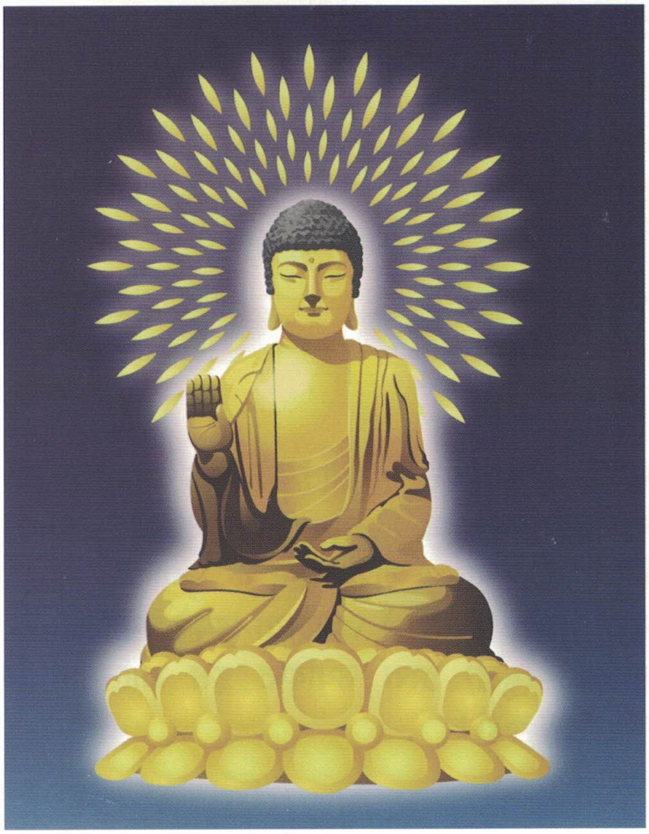

गाथा: उच्छिन्द सिनेहमत्तनो, कुमुदं सारदिकं व पाणिना।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय, निब्बानं सुगतेन देसितं।।285।।

अर्थः जिस प्रकार मनुष्य शरद ऋतु के पुष्पों को तोड़ डालता है, उसी प्रकार संसार में उपस्थित अपने स्नेह को काट डालो। तथागत (बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट इस शांतिमार्ग निर्वाण का अनुसरण करो।

शरद ऋतु के पुष्पों की तरह आसक्ति को काट डालो
सुवर्णकार थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सारिपुत्त का एक शिष्य स्वर्णकार कुल में पैदा हुआ था। वहीं से उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। सारिपुत्त ने ध्यान विपश्यना के लिए रागविरोधी कर्म स्थान बताया। उस शिष्य ने तीन महीने तक प्रयत्न किया पर सफल नहीं हो पाया। सारिपुत्त ने उसे वही कर्मस्थान तीन बार समझाया पर वह तीनों ही बार असफल रहा। तब स्थविर ने सोचा , "मेरा शिष्य बुद्धिमान है, मूर्ख नहीं है। संभव है मैं इसे ठीक से नहीं समझा पाया हूँ। अतः शाम में शास्ता के पास ले चलता हूँ।" ऐसा सोचकर शाम में वे उस शिष्य को शाक्य-मुनि के पास ले गए।

शास्ता ने अपनी अन्तर्दृष्टि से समझ लिया कि यह शिष्य पिछले पाँच सौ जन्मों में सुवर्णकारों के कुल में जन्म लेता रहा है और विभिन्न प्रकार के पुष्प आदि बनाता रहा है। अतः उन्होंने अपने ऋद्धिप्रभाव से एक सुवर्णकमल देकर उसे कहा, "भिक्षु ! विहार के सीमा प्रदेश पर जाकर इस कमल की डंडी को जमीन में गाड़कर 'लोहितक, 'लोहितक' (लाल, लाल) यह शब्द बार-बार दुहराओ।" वह प्रसन्न चित्त होकर ध्यान-साधना में रत हुआ और चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर लिया।

अब तथागत ने अपनी शक्ति से उस कमल-पुष्प को सुखाना शुरू किया। उसे मुर्झाते हुए देखकर शिष्य को जीवन की अनित्यता का बोध होने लगा। उसे अनित्यता का बोध खूब अच्छी तरह हो गया। बुद्ध ने उसके मन की प्रवृत्ति देखी तो कन्धकुटी में बैठे-बैठे उसकी ओर प्रकाश डाला। यह प्रकाश उसके मुँह पर पड़ा तो उसने सोचा यह क्या है। उसे लगा मानों शास्ता उसके सामने खड़े हैं तथा उसे समझाया, "भिक्षु ! तृष्णा को काट दो। जिस तरह मनुष्य शरद ऋतु के कुमुद को अपने हाथों द्वारा आसानी से काट लेता है उसी तरह स्व-स्नेह को काट डालो। यह स्व स्नेह एक झटके से टूट सकता है। हिम्मत चाहिए।" फिर उन्होंने यह गाथा कही।

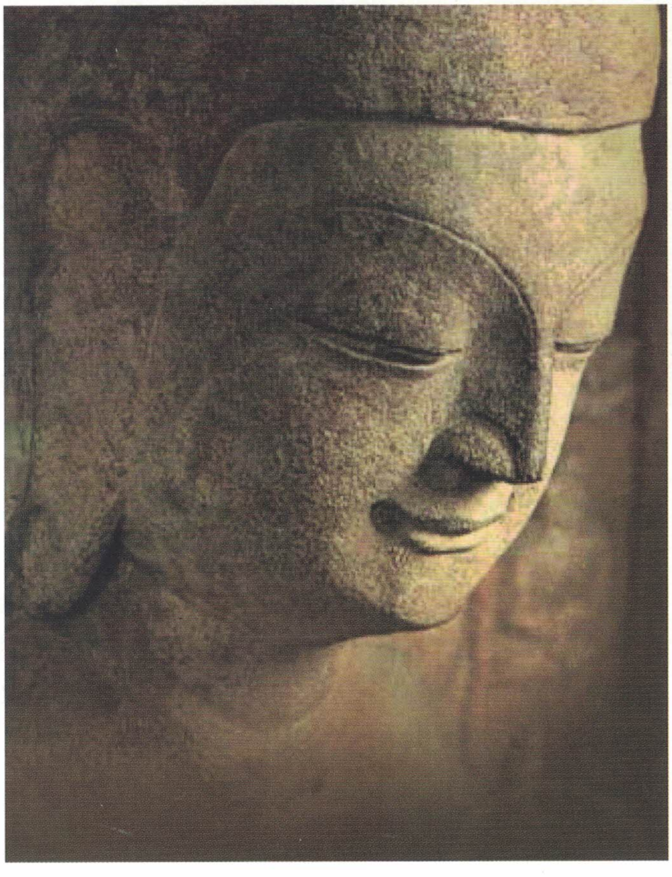

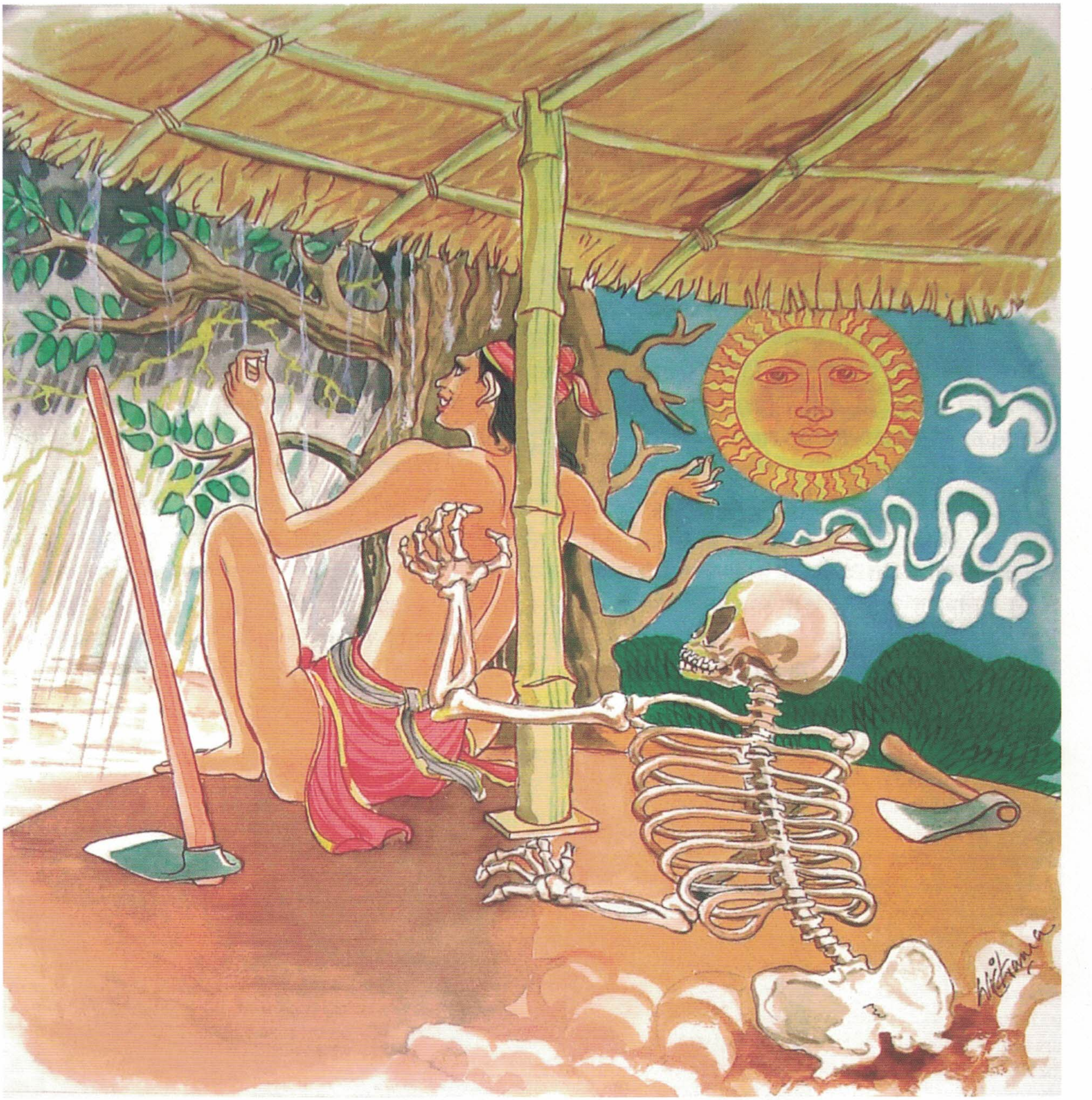

गाथा: इध वस्सं वसिस्सामि, इध हेमन्तगिम्हिसु।
इति बालो विचिन्तेति, अन्तरायं न बुज्झति।।286।।

अर्थ: मैं यहाँ वर्षाऋतु में रहूँगा और यहाँ हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में वास करूँगा मूर्ख व्यक्ति इस प्रकार सोचता है और अपने जीवन पर आने वाले किसी संभावित संकट पर ध्यान नहीं देता कि मैं किसी भी समय, देश अथवा उम्र में इस जीवन से कूच कर सकता हूँ।

सिर्फ मुर्ख ही विघ्न नहीं देखता
महाधनी व्यापारी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक उपासक वाराणसी से कुसुम और लाल रंग में रंगे हुए कपड़ों की गाड़ियाँ लेकर व्यापार के लिए श्रावस्ती पहुँचकर रुक गया कि "कल नदी पार करूँगा।" रात में बड़ी तेज बारिश हुई और नदी में सात दिनों तक पानी लबालब भरा रहा। वह नदी पार नहीं जा सका। अतः उसने सोचा, "मैं इतनी दूर से आया हूँ। अगर इन वस्त्रों को फिर ढोकर वाराणसी जाऊँगा तो कोई विशेष लाभ नहीं होगा। क्यों नहीं, यहीं रहकर वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में परिश्रम करके इन कपड़ों को यहीं बेच दूँ ? "

शास्ता ने भिक्षाटन करते समय, उसकी मनःस्थिति देखी और मुस्कुरा दिए। आनन्द ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया, "आनन्द ! इस धनी व्यापारी को देख रहे हो ? " "हाँ भन्ते ! " "यह एक वर्ष तक की योजना बना रहा है। पर अपने जीवन पर आये संकट को नहीं देख रहा है।" "परन्तु इसके जीवन पर क्या संकट है, भन्ते ! " "एक सप्ताह में इसका देहान्त हो जाएगा।" यह कहते हुए शास्ता ने ये गाथायें कहीं, "पता नहीं हमारी मृत्यु कब हो जाएगी ? अतः हमें अभी तत्काल ही शुभ कर्मों में लग जाना चाहिए। उस विशाल सेना वाले यमराज से हमारी क्या प्रतिद्वन्दिता हो सकती है ? " "दिन-रात आलस्यरहित हो उद्योग करने वाले साधक को मुनिजन "भद्रैकरात्र" कहते हैं।"

शाक्य-मुनि से अनुमति लेकर आनन्द उस महाधनिक के पास गए और उसके जीवन पर आये संकट के विषय में बता दिया। अपने कल्याण के लिए व्यापारी ने पूरे सप्ताह बुद्ध और भिक्षुसंघ को आमंत्रित कर भोजन दान दिया। शास्ता ने भक्तानुमोदन करते हुए समझाया, "उपासक ! समझदार व्यक्ति को 'संसार में मैं इतने वर्षों तक रहकर यह महान कार्य करूँगा' ऐसी योजना नहीं बनानी चाहिए। अपने जीवन पर संकट का ध्यान रखते हुए सतत् धर्म चिंतन करना चाहिए।

फिर उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: तं पुत्तपसुसम्मत्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो व, मच्चु आदाय गच्छति।।287।।

अर्थ: जैसे सोये हुए गाँव को कोई बड़ी बाढ़ बहाकर ले जाती है वैसे ही पुत्र और पशु के नशे में धुत्त आसक्तचित्त पुरुष को मौत लेकर चली जाती है।

आसक्त व्यक्ति : मृत्यु के अधीन
किसा गोतमी की कथा

किसा गोतमी का प्रसंग पहले भी 'धम्मपद' के 'सहस्त्रवर्ग' (गाथा 114) में आ चुका है। वहाँ शास्ता ने गोतमी को समझाते हुए कहा था, "अमृत स्थान (निर्वाण) को बिना देखे हुए सौ वर्षों तक जिन्दा रहना व्यर्थ है। उसके बजाय यदि कोई अमृत स्थान (निर्वाण) को देखकर सिर्फ एक दिन भी जीवित रहता है तो वह जीवन श्रेष्ठ है।"

शास्ता ने गोतमी को थोड़ा-सा सरसों लाने के लिए कहा था, सिर्फ ऐसे घर से नहीं लाना था जहाँ कोई मरा हो। दूसरे दिन शाक्य मुनि ने पूछा, "किसा गोतमी ! सरसों मिली ? " "नहीं भन्ते ! इस गाँव में जीवित लोगों की तुलना में मरे हुए लोगों की संख्या अधिक है, " किसा गोतमी ने कहा। तब तथागत ने उसे समझ ााया, "गौतमी ! कल तुम्हें लगता था कि तुम्हारा पुत्र ही सिर्फ मृत्यु को प्राप्त हुआ है; परन्तु आज सरसों के माध्यम से समझ गई हो कि घर-घर की एक ही कहानी है। मृत्यु की ओर जाना सभी प्राणियों की स्वाभाविक गति है। मृत्युराज सभी प्राणियों को, उनका संकल्प पूरा हो या न हो, मृत्यु की तरफ उसी तरह बहा ले जाता है जैसे बाढ़ सोये हुए गाँव को बहाकर ले जाती है।" यह उपदेश देते हुए उन्होंने यह गाथा कही।

टिप्पणी: आसक्त पुरुष का अर्थ है ऐसा पुरुष जो अपने रूप, बल, धन, पद आदि पर अभिमान करने लगता है तथा उनमें आसक्ति उत्पन्न कर लेता है। जब नदी की बाढ़ आती है तो वह एक कुत्ते को भी बहाये बिना नहीं छोड़ती, उसी प्रकार प्रमादयुक्त व्यक्ति को मृत्युराज लेकर चल देते हैं। देशना के अंत में किसा गोतमी स्रोतापन्न में प्रतिष्ठित हो गई।

गाथा: न सन्ति पुत्ता ताणाय, न पिता नापि बन्धवा।
अन्तकेनाधिपत्रस्स, नत्थि ञतिसु ताणता।।288।।

अर्थ: जब मृत्यु आती है तो न पिता, न पुत्र, न रिश्तेदार और न कोई बंधु बान्धव ही - काई भी रक्षा नहीं कर सकता।

मृत्यु आगमन पर कोई बच नहीं सकता
पटाचारा की कथा

पटाचारा का प्रसंग पहले भी 'धम्मपद' के 'सहस्त्रवर्ग' (गाथा 113) में आ चुका है। वहाँ शास्ता ने कहा था, "सांसारिक पदार्थों के उत्पाद और विनाश को न देखा जाए और सौ वर्षों तक भी जीवित रहा जाए तो वह जीना व्यर्थ ही है। इसके विपरीत यदि उत्पाद और विनाश को देखते हुए एक दिन का जीवन भी जिया जाये तो वह अधिक श्रेयस्कर है।"

पटाचारा के जीवन की कथा दुःखों की पराकाष्ठा की कथा है। उसने अपना पति गँवाया, दो पुत्र खोये, माता-पिता और सभी भाई-एक ही समय काल कवलित हो गए। वह भीतर से पूरी तरह टूट चुकी थी और ऐसी मनःस्थिति के साथ जेतवन में शाक्य-मुनि के सम्मुख उपस्थित हुई थी। ऐसे समय बुद्ध के वचन उसके लिए मरूभूमि में तरूवर की शीतल छाया के समान लगे। पटाचारा का शोक कुछ कम हुआ तो तथागत ने उसे समझाया था, "पटाचारे ! परलोक जाने वाले का कोई भी शरण स्थल नहीं हो सकता- न तो उसका पुत्र, न कोई सगा-संबंधी और न कोई मित्र। कोई किसी का रक्षक नहीं हो सकता है। अतः अंत समय में कोई भी किसी प्रकार काम नहीं आने वाला है। पुत्र, सगे-संबंधी या मित्रों का रहना या नहीं रहना दोनों ही एक समान है। इस सच्चाई को समझकर बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने शील का विशोधन कर निर्वाण के मार्ग को साफ करे ताकि वह उस मार्ग पर चल सके।"

गाथा: एतमत्थवसं ञत्वा, पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बानगमनं मग्गं, खिप्पमेव विसोधये।।289।।

अर्थ: इस सत्य को जानकर शीलवान, समझदार, पंडित पुरुष को चाहिए कि वह निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे (गमन करे)

शीलवान निर्वाण मार्ग पर गमन करें
पटाचारा की कथा

इसके बाद बुद्ध ने पटाचारा को संबोधित कर ये दो गाथायें सुनाईं।

टिप्पणीः सांसारिक चीजों में तो पिता-पुत्र, मित्र किसी संकट में सहायक हो भी सकते हैं पर जब मृत्यु आ घेरती है तो उस पर किसी का वश नहीं चलता। अतः सभी असहाय हो जाते हैं तथा रक्षा करने में असमर्थ हो जाते हैं। मृत्यु आती है और इंसान को ले जाती है। मूर्ति की तरह खड़े रहकर देखने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं रहता। इसीलिए कहा जाता है कि मृत्यु के आने पर कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता है। अगर कोई रक्षा कर सकता है तो वह है- पिछले जन्म में किया गया उसका धर्म और कर्म।

इसलिए मृत्यु रूपी साँप के दंश से बचने के लिए उचित है कि मनुष्य अपने लिए 'धर्म', और 'अच्छे कर्म' बटोरे।

DHAMMAPADA

MAGGA VAGGA

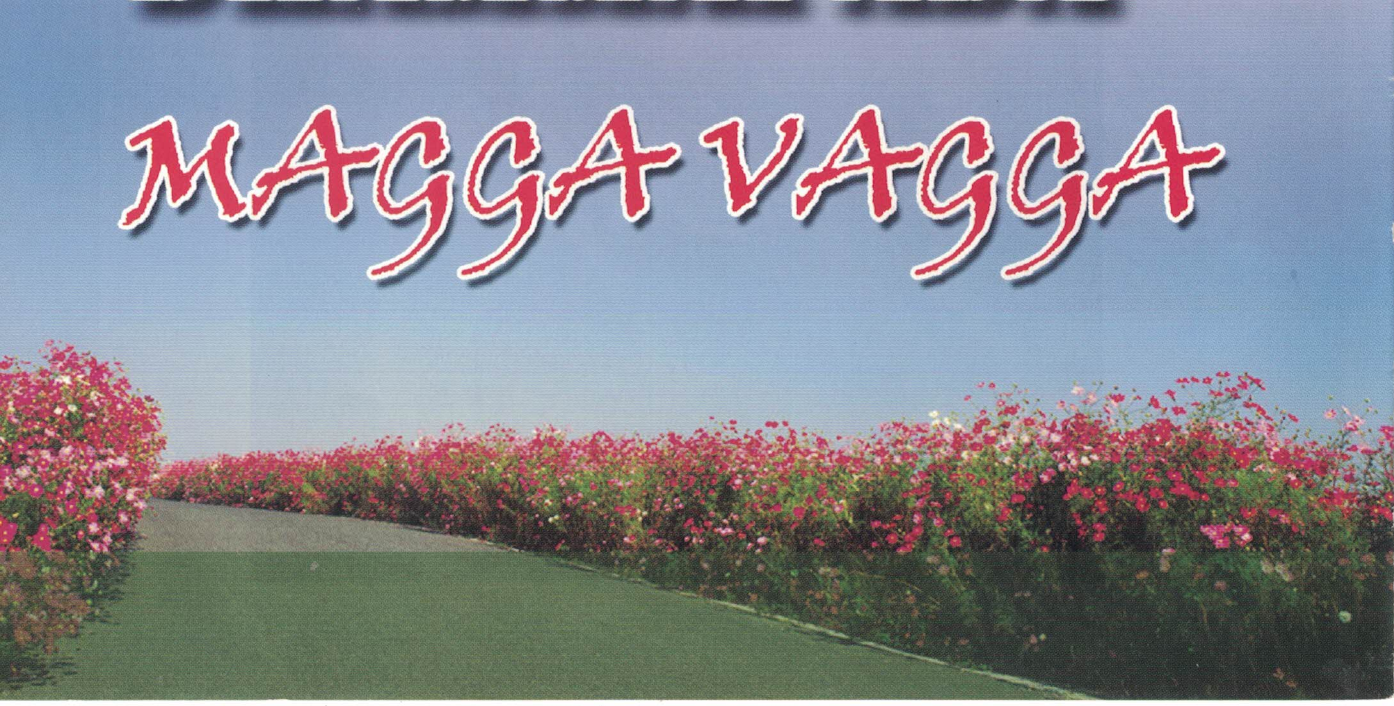

हमेशा जागते रहो

धम्मपद

प्रकीर्ण वर्ग

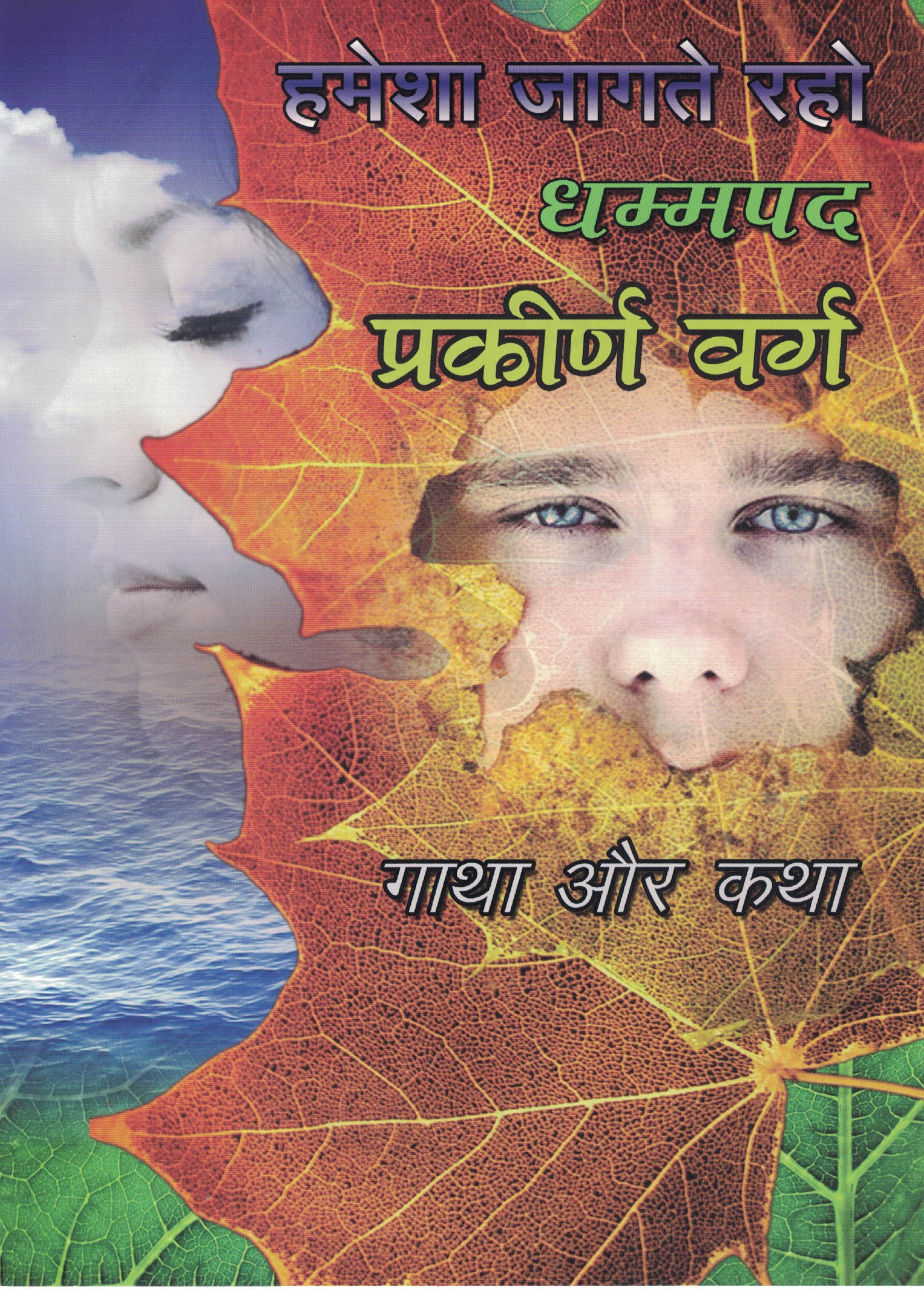

गाथा और कथा

हमेशा जागते रहो

धम्मपद

प्रकीर्ण वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

प्रकीर्ण वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	गंगारोहण की कथा	290	निर्वाण लाभ, सर्वश्रेष्ठ लाभ	223
2.	मुर्गी के अंडे खाने वाले की कथा	291	दूसरों को कष्ट देना : सबसे बड़ा पाप	225
3.	भद्दियवासी भिक्षुओं की कथा	292	कर्म और अकर्म का भेद जानो	227
4.	भद्दियवासी भिक्षुओं की कथा	293	अशुभ की स्मृति रखें, शुभ होता जायेगा	229
5.	लकुण्टक भद्दिय की कथा	294	माता, पिता और राजा–दास को कैसे मारें ?	231
6.	लकुण्टक भद्दिय की कथा	295	हत्या कर भी क्षीणास्रव कैसे ?	233
7.	दारूशाकटिक पुत्र की कथा	296	बुद्धानुस्मृति वाले शिष्य सदा प्रबुद्ध रहते हैं	235
8.	दारूशाकटिक पुत्र की कथा	297	धर्मानुस्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं	237
9.	दारूशाकटिक पुत्र की कथा	298	संघानुस्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं	239
10.	दारूशाकटिक पुत्र की कथा	299	कायगतास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं	241
11.	दारूशप्रकटिक पुत्र की कथा	300	अहिंसास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं	243
12.	दारूशाकटिक पुत्र की कथा	301	नित्यभावनास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं	245
13.	वज्जिपुत्तक भिक्षु की कथा	302	संसार के आवागमन से मुक्ति लें	247
14.	चित्त गृहपति की कथा	303	शीलवान की सर्वत्र पूजा होती है	249
15.	चूल सुभद्रा की कथा	304	सत्पुरुष दूर से ही दिखते हैं	251
16.	अकेले विहार करने वाले थेर की कथा	305	आत्मसंयमी साधक तो अकेला ही चलेगा	253

गाथा: मत्तासुखपरिच्चागा, पस्से चे विपुलं सुखं ।
चजे मत्तासुखं धीरो, सम्पस्सं विपुलं सुखं।।290।।

अर्थ: थोड़े सुख के त्याग से यदि विपुल सुख (निर्वाण) का लाभ दिखे तो बुद्धिमान पुरुष को अपना वह अल्प सुख विपुल सुख की आशा में छोड़ देना चाहिए।

निर्वाण लाभ, सर्वश्रेष्ठ लाभ
गंगारोहण की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक बार वैशाली में अभूतपूर्व अकाल पड़ा। वहाँ के नागरिक दाने-दाने को मोहताज हो गए। जो सबसे अधिक गरीब थे वे मौत की चपेट में पहले आ गए। उनके शव जहाँ-तहाँ पड़े रहे और उनमें आसक्त होकर भूत-प्रेत आ धमके। उन भूत-प्रेतों के आतंक से भी कई मर गए। महामारी भी फैल गई। इस प्रकार वैशाली एक ही समय में तीन कष्टों से पीड़ित हो गया (1) अकाल का कष्ट (2) भूत-प्रेतों का कष्ट और (3) संक्रामक रोगों का कष्ट।

राजा और नागरिकों ने आपस में मंत्रणा की कि बुद्ध को वैशाली आने का आमंत्रण दिया जाये। उनके आने से सभी कुछ ठीक हो जाएगा। शास्ता उन दिनों राजगृह में वर्षावास कर रहे थे। नागरिकों ने महालि लिच्छवी और पुरोहितपुत्र को राजगृह भेजा कि वे किसी प्रकार शास्ता से प्रार्थना कर उन्हें वैशाली ले आवें। वे राजगृह गए और उन्होंने तथागत से वैशाली चलने का आग्रह किया। बुद्ध ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि अगर वहाँ 'रतनसुत्त पाठ' किया जाए तो वैशाली का कष्ट दूर किया जा सकता है। यह सोचकर शास्ता ने वैशाली चलने की स्वीकृति दे दी।

राजा बिंबिसार को पता चला कि शाक्य-मुनि भिक्षु संघ के साथ वैशाली जा रहे हैं तो उसने सड़क मरम्मत करवा दी, रास्ते में विहार बनवा दिए और उन्हें पूरे स्वागत-सत्कार के साथ गंगा तट से विदा किया। उधर वैशाली वालों ने भी शास्ता के स्वागत में कोई कमी नहीं रखी। राजा स्वयं तथागत का स्वागत करने आया।

बुद्ध ने ज्यों ही वैशाली की भूमि पर चरण रखे, बड़े जोरों से वर्षा होने लगी। वर्षा के जल से शव बहकर गंगा में आ गए। इस प्रकार नगर पूर्णतः साफ हो गया। नगर के साफ हो जाने से सभी भूत-प्रेत भी भाग गए। तब शास्ता ने आनन्द को बुलाकर कहा, "तुम रात्रि के तीसरे प्रहर तक 'रतनसुत्त' का पाठ करते हुए विचरण करो।" स्थविर आनन्द ने वैसा ही किया और नगर त्रिकष्ट से मुक्त हो गया।

रास्ते में लौटते समय राजा बिंबिसार ने पुनः अद्वितीय आदर-सत्कार किया। शास्ता राजगृह चले आए। एक दिन संध्या में धर्म सभा में तथागत के अभूतपूर्व आदर-सत्कार की बात चली। शास्ता ने अपने पूर्व जन्म की बात बताते हुए कहा, "इस स्वागत में किसी का हाथ नहीं है। मैंने ही अपने पूर्व जन्म में एक सद्कर्म किया था। उसी के परिणाम स्वरूप मुझे इतना अधिक आदर-सत्कार मिला है।"

तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: परदुक्खूपधानेन, अत्तनो सुखमिच्छति।
वेरसंसग्गसंसट्ठो, वेरा सो न परिमुच्चति।। 291।।

अर्थ: जो दूसरों को दु:ख देकर अपने लिए सुख चाहता है, वैर के संसर्ग में पड़कर वह व्यक्ति वैर से नहीं छूटता।

दूसरों को कष्ट देना : सबसे बड़ा पाप
मुर्गी के अंडे खाने वाले की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती नगर के निकट पण्डुर नामक एक गाँव था। जहाँ एक महिला रहती थी। उसे मुर्गी के अंडे बहुत अच्छे लगते थे। उसने एक मुर्गी पाल रखी थी। मुर्गी जब भी अंडे देती, वह अंडे खा जाती। मुर्गी को बहुत क्रोध आता था पर वह कुछ कर नहीं सकती थी। अतः उसने बदला लेने का प्रण लिया।

कर्म का चक्र चलता है। अगले जन्म में वह औरत मुर्गी बनी और वह मुर्गी एक बिल्ली। अब इस जन्म में बिल्ली मुर्गी के अंडे खा जाती थी। कालचक्र फिर चला। अगले जन्म में मुर्गी एक तेंदुआ बनी और वह बिल्ली एक हिरणी। तेंदुए ने हिरणी व उसके बच्चे को खा लिया। हिरणी ने अगले जन्म में बदला लेने की ठानी।

दोनों का अगला जन्म बुद्ध काल हुआ। वह हिरणी एक यक्षिणी बनी और तेंदुआ ने एक स्त्री के रूप में जन्म लिया। उस औरत को इस जन्म में एक पुत्र हुआ। एक दिन वह अपने पति के साथ मायके से वापस आ रही थी। रास्ते में तालाब के पास थोड़ी देर सुस्ताने के लिए रुकी। यक्षिणी ने मौका देखकर बालक को मार देना चाहा। माँ बच्चे को लेकर जेतवन की ओर भागी और बच्चे को बुद्ध के चरणों में रख दिया। बुद्ध ने यक्षिणी को भी बुलाया और दोनों को पूर्व जन्मों की कथा सुनाकर समझाया कि वैर का अंत वैर से नहीं होता, वैर का अंत होता है : प्रेम, दया, करुणा और मैत्री से। इसका जिक्र "युग्मवर्ग" (गाथा नं. 5) में भी किया गया है।

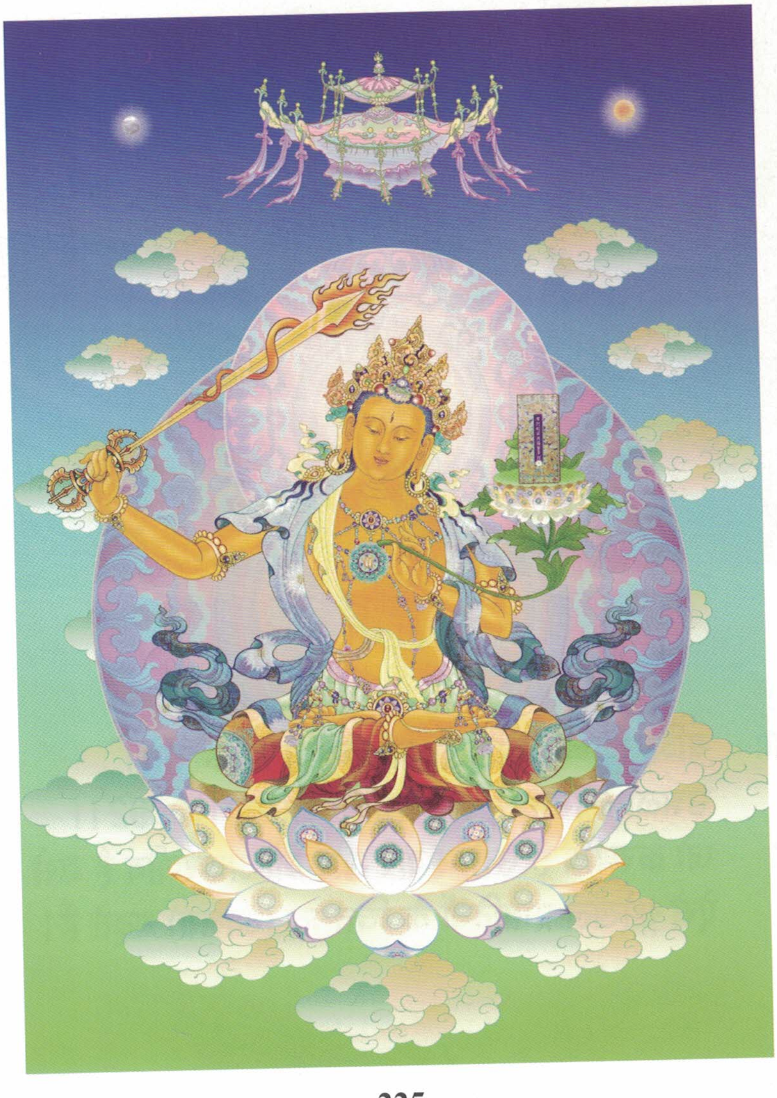

गाथा: यञ्हि किच्चं अपविद्धं, अकिच्चं पन कयिरति।
उन्नळानं पमत्तानं, तेसं वड्ढन्ति आसवा।। 292।।

अर्थ: जो करणीय है उसे न करे और जो अकरणीय है उसे करे।
ऐसे खोखले प्रमादियों के चित्तमल (आश्रय) बढ़ते हैं।

कर्म और अकर्म का भेद जानो
भद्दियवासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि का वास भद्दियनगर में चल रहा था। यह घटना उसी समय की है। वहाँ के भिक्षु अपनी ध्यान-विपश्यना के असली काम को छोड़कर सांसारिक काम- जूते बनाने में लग गए थे। कुछ ने अन्य काम शुरू कर दिया था- जैसे पात्रों को रंगकर सुन्दर बनाने का काम, कपड़ों पर नाना प्रकार की कशीदाकारी आदि-आदि। वे विभिन्न तरह की सजी-सजाई अलंकृत पादुकाओं को या तो बनाते थे या दूसरों से बनवाते थे। पादुकाएं एक से एक सुन्दर होती थीं- तृण की भी, बब्बज घास की भी, खजूर के पत्तों की भी होती थीं। वे कमल और कम्बल से बने चप्पल भी पहनते थे। इस कारण उनके पास ध्यान-विपश्यना का समय ही नहीं बचता था। या वस्तुतः यह कहें कि वे ध्यान-विपश्यना भूल गए थे अथवा ध्यान-विपश्यना से बहुत दूर चले गए थे तो अतिशयोक्ति न होगी।

उनके साथ कुछ शान्त प्रकृति के भिक्षु भी रहते थे। वे सभी यह सब देखकर बहुत विचलित और दुःखी होते थे। जब उन्होंने देखा कि वस्तुस्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है तो वे अपनी शिकायत लेकर बुद्ध की शरण में पहुँचे।

शाक्य मुनि की यह विशेषता रही कि उन्होंने सबों का कल्याण ही सोचा। सर एडविन ऑरनाल्ड ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक "लॉइट आफ एशिया" की प्रस्तावना में लिखा है, "भले ही बौद्ध साहित्यों में बुद्ध की शिक्षा के विषय में विद्वानों में मतभेद हो पर संपूर्ण विश्व के समस्त बौद्ध साहित्य में इस महान सुकुमार राजकुमार, जो अंततः बुद्ध हो गए, के चरित्र में कोई कमी, कमजोरी का वर्णन नहीं है। इस प्रकार संसार के इतिहास में वे एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो पूर्णतः निष्कलंक हैं।"

गाथा: येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा।। 293।।

अर्थ: इसके विपरीत जिन साधकों की इस अशुभ कर्त्तव्यों के प्रति सदा स्मृति बनी रहती है, ऐसे साधक उन अकरणीय कर्त्तव्यों के प्रति आँख भी नहीं उठाते तथा करणीय कर्मों को करने में सदैव ध्यान लगाये रहते हैं।

अशुभ की स्मृति रखें, शुभ होता जायेगा
भद्दियवासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाकारुणिक उन सांसारिक भिक्षुओं को सही मार्ग पर लाना चाहते थे। अत: उन भिक्षुओं को बुलाया और उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! तुम भूल गए हो कि किस भावना और किस उद्देश्य से प्रव्रजित हुए थे। आज तुम क्या कर रहे हो ? तुम अपने कर्त्तव्यों और अकर्त्तव्यों का स्मरण करो।" शास्त्रों में भिक्षुओं के पालन करने वाले कर्त्तव्य बताये गये हैं (1) अपरिमित शील स्कन्ध की रक्षा (2) अरण्यवास (3) द्युतांगव्रत का धारण एवं (4) करुणा, मैत्री आदि की भावना। इन्हें 'भिक्षुकृत्य' कहा जाता है। उनके लिए निषिद्ध कर्म हैं : अपने छाता, जूता, खड़ाऊँ, पात्र, थाली, जलपात्र, कायबन्धन, अंसबन्धन को सजाते, सँवारते रहना। जो इन अकृत्य कर्मों को करते हैं, समाज में उनकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है। लोग उन्हें अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगते हैं और उनके चारों ही आस्त्रव बहुत अधिक बढ़ जाते हैं।

शाक्य मुनि ने आगे समझाया, "सांसारिक कार्यों को अपने उत्तरदायित्व के रूप में लेकर तुमने अपने आस्त्रवों की बाढ़ का सृजन कर दिया है। अब तुम ऐसे कृत करो जिनसे इनका सृजन बंद हो जाए और जो पहले से बन चुके हैं उनका प्रभाव कम हो जाए और अंतत: वे समाप्त हो जायें।"

फिर बुद्ध ने उन्हें ये गाथाएं सुनाईं। वे भिक्षु अंतत: अर्हत्व प्राप्त कर गए।

गाथा: मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो।। 294।।

अर्थ: तृष्णा (माता), अहंकार (पिता), आत्म दृष्टि तथा उच्छेद दृष्टि (दो क्षत्रिय राजाओं), राग (अनुचर) और पाँच उपादान स्कन्द यानि सारे संसार की आसक्ति (राष्ट्र) को मारकर ज्ञानी दु:ख रहित (क्षीणास्त्रव) निष्पाप हो जाता है।

माता, पिता और राजा-दास को कैसे मारें ?
लकुण्टक भद्दिय की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन में विहरते थे। बहुत सारे आगन्तुक भिक्षु वहाँ पधारे। उन्हें सादर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। उसी समय लकुण्टकभद्दिय स्थविर नामक एक थेर शास्ता से बिदा ले थोड़ी दूर जा रहे थे। लकुण्टकभद्दिय स्थविर को कई बार भिक्षुगण सामनेर मान बैठते थे क्योंकि वे कद से ठिगने थे। इस बार भी शास्ता ने उनके मन की दशा देखी। उन भिक्षुओं के मन की दशा को देखकर उनसे पूछा, "भिक्षुओं ! उस सामने जा रहे लकुण्टक भिक्षु को देख रहे हो ? उसने अपने माता-पिता की हत्या कर दी है और अब निर्दु:ख (क्षीणास्रव) हुआ जा रहा है।" यह बात सुनकर भिक्षु अति आश्चर्यचकित हुए और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। फिर उन्होंने साहस जुटाकर तथागत से कहा, "भन्ते ! आप यह क्या कह रहे हैं ? " तथागत ने उन्हें बताया, "इस भिक्षु ने न केवल माता-पिता की हत्या की है, बल्कि इसने दो क्षत्रिय राजाओं की, उनके दासों की और संपूर्ण राष्ट्र की भी हत्या की है और यह करके भी वह निर्दोष, निष्पाप और निष्कलंक निकल आया है।"

आगन्तुक भिक्षुओं को शाक्य-मुनि की यह बात एक पहेली की तरह लगी। वे संदेह और भ्रम में पड़ गए। माता-पिता, राजा, दास और संपूर्ण राष्ट्र का क्या अर्थ है ? हत्या से तथागत का तात्पर्य क्या है ? जब वे उत्तर नहीं ढूँढ़ पाये तो शास्ता से इस संदेह को दूर करने का आग्रह किया। तब शास्ता ने उनको स्पष्ट करते हुए कहा, "यह स्थविर अर्हत हो चुका है। तृष्णा ही सभी प्रकार के क्लेशों की जननी है। तृष्णा ही बार-बार हमें संसार की भौतिक माता की कोख में भेजती है और जन्म-मृत्यु के चक्कर में बाँधे रखती है। तृष्णा समाप्त कर देने से बार-बार कोख में आने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।" "अहंकार पिता है। जैसे पिता और माता के संयोग से भौतिक शरीर बनता है उसी प्रकार अहंकार और तृष्णा के संयोग से हमारा कर्म सृजित होता है और हम जन्म-मरण के आवागमन से जुड़ जाते हैं। अगर हम माता और पिता, तृष्णा और अहंकार को समाप्त कर दें तो हम भव बंधन से मुक्त हो जायेंगे।"

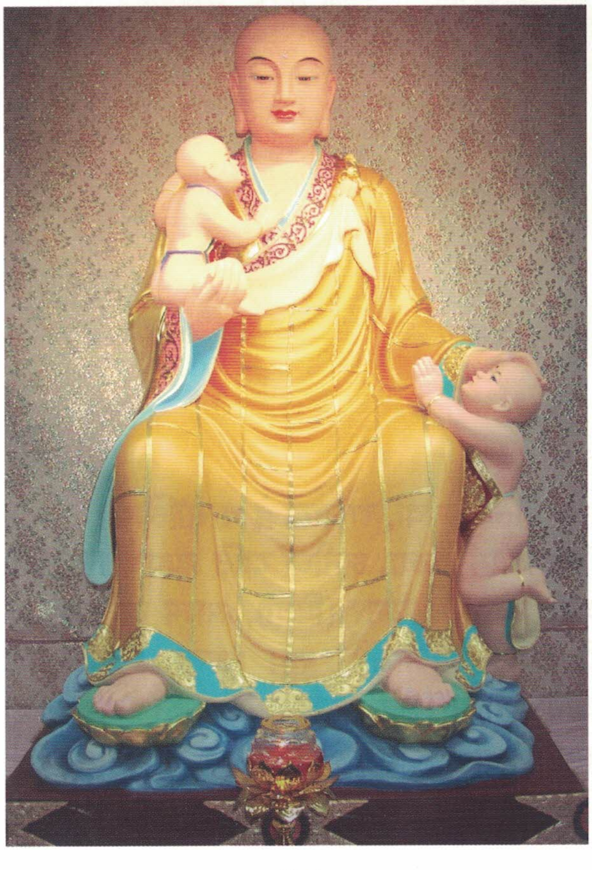

गाथा: मातरं पितरं हन्त्वा, राजानों द्वे च सोत्थिये।
वेयग्घपञ्चमं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो।।295।।

अर्थ: तृष्णा (माता) अहंकार (पिता), आत्म दृष्टि तथा उच्छेद दृष्टि (दो क्षत्रिय राजाओं), राग (अनुचर) और पाँच आवरणों (व्याघ्र) को मारकर ज्ञानी दु:ख रहित (क्षीणास्त्रव) निष्पाप हो जाता है।

हत्या कर भी क्षीणास्त्रव कैसे ?
लकुण्टक भद्दिय की कथा

"दो क्षत्रिय राजा हैं- शाश्वतवाद (आस्तिकता) तथा उच्छेदवाद (नास्तिकता)। हम सबों के ऊपर इन दोनों में से एक राजा राज्य करता रहता है। इन दोनों का ही शासन कष्ट दायक है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह इन दोनों से ऊपर उठे। अपने अन्दर दोनों ही प्रकार की शंकाओं का नाश कर दे और फिर मध्यम मार्ग अपना ले। जो ऐसा करेगा वह सभी प्रकार के दुःखों से ऊपर उठ जाएगा।"

"जहाँ राजा रहेगा; उसके साथ उसके सिपाही भी होंगे। दास उसके साथ-साथ ही चलेंगे। ये दास हैं - अन्य सिद्धांत, अन्य दर्शन, सारे शास्त्र। ये सभी दास हमें जंजीरों में जकड़े रखते हैं तथा एक कैदी की तरह अपने साथ लिए चलते हैं। जो इन दासों को मार देगा अर्थात् सिद्धांत, दर्शन, और शास्त्रों से ऊपर उठ जाएगा वह निश्चय ही इन जंजीरों से मुक्त हो जाएगा।" ऐसा व्यक्ति फिर पाँच बाघों को भी मार डालता है। ये पाँच बाघ हैं : हमारी पाँच इन्द्रियाँ जिनके माध्यम से मनुष्य शरीर से जुड़ा हुआ होता है।

लकुण्टक भद्दिय थेर देखने में तो छोटे कद के थे पर उन्होंने जीवन में यह सब कुछ कर लिया था। अतः वे अर्हत हो चुके थे। भिक्षुओं के समझ में बात आ गई।

तब शास्ता ने ये दो गाथायें कहीं।

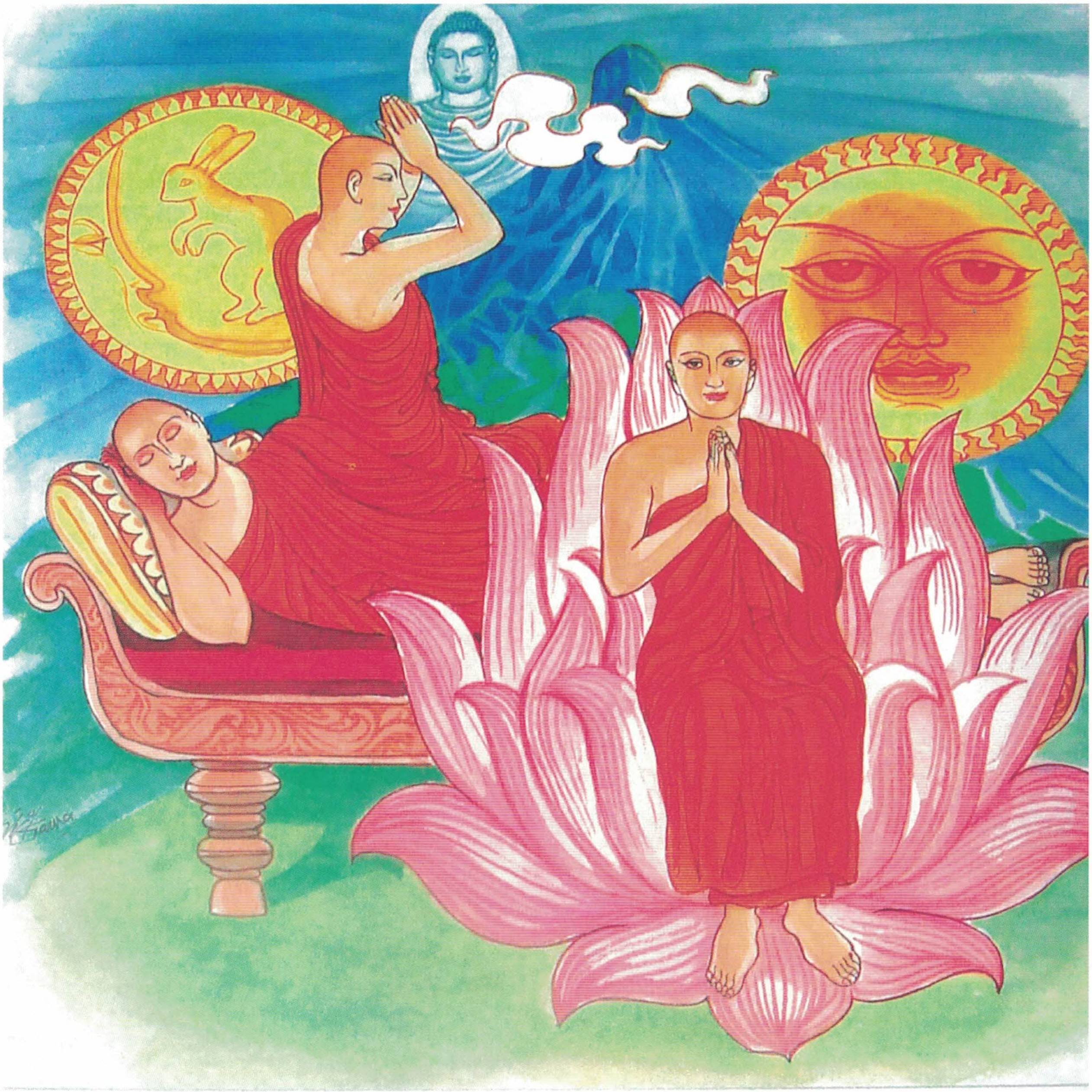

गाथा: सुप्पबुद्धं पुबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं बुद्धगता सति।। 296।।

अर्थ: जिनकी दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

बुद्धानुस्मृति वाले शिष्य सदा प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

यह घटना उस समय की है, जब शाक्य मुनि राजगृह में विद्यमान थे। नगर के दो लड़के, एक सम्यग्दृष्टि का पुत्र और दूसरा मिथ्यादृष्टि का पुत्र गलियों में सदैव गोलियों का खेल और अन्य खेल भी खेला करते थे। सम्यग्दृष्टि का पुत्र गोलियाँ फेंकते समय या किसी खेल के प्रारंभ में 'नमो बुद्धाय' मन्त्र का उच्चारण किया करता था और तब गोलियाँ फेंकता था या खेल प्रारंभ करता था। दूसरा, मिथ्यादृष्टि का पुत्र, किसी अन्य मंत्र का जाप करता हुआ गोली फेंकता था या खेल प्रारंभ करता था। हर बार, हर खेल में सम्यग्दृष्टि वाले का पुत्र विजयी हो जाता था तथा मिथ्यादृष्टि वाले का पुत्र पराजित। जीतने वाला बालक दाँव-पेंच, शक्ति सभी चीजों में पराजित होने वाले लड़के से कमजोर था। फिर भी जीतता वही था। हारने वाले ने हर प्रकार के प्रयत्न किए, परन्तु वह जीत नहीं सका। वह जीतने वाले के खेलने के तौर-तरीकों पर विचार करता, विश्लेषण करता, चिंतन-मनन करता और एकान्त में अभ्यास करता पर सब कुछ करने पर भी सफलता उसके हाथ कभी नहीं लगी।

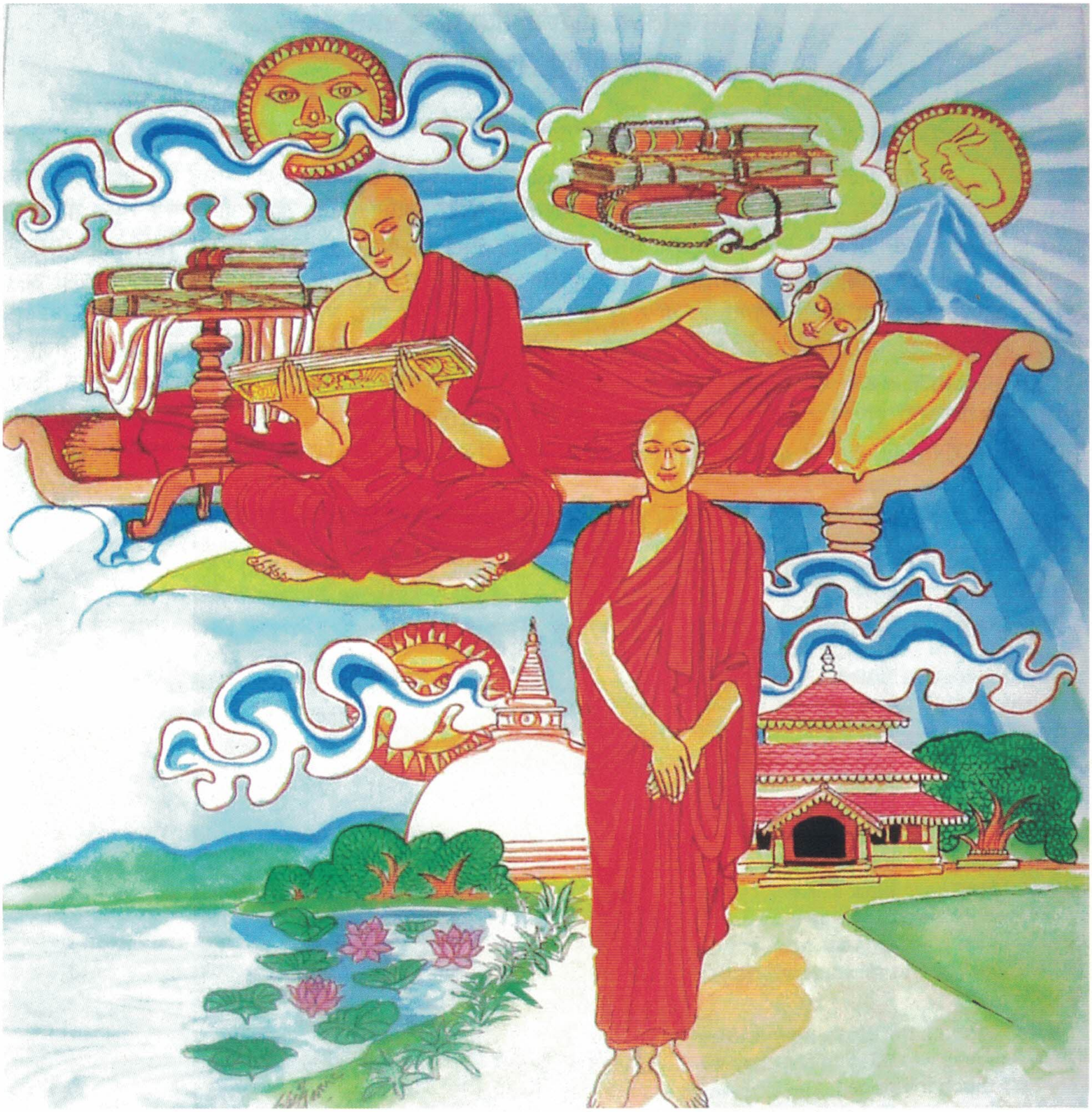

गाथा: सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं धम्मगता सति।।297।।

अर्थ: जिनकी दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

धर्मानुस्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

हारने वाले बालक ने जीतने वाले बालक की मन:स्थिति को देखना शुरू किया। उसने पाया कि जीतने वाला बालक सदैव शांत चित्त रहता है, वह कभी बेचैन नहीं दीखता है और न उसने उसमें जीतने की प्रबल महत्वाकांक्षा ही देखी। वह खेलता था मात्र खेलने के लिए, अपना मन पूरी तरह एकाग्रचित्त करके खेलता था। वास्तव में वह सदैव अपने मन को स्थिर करके, सम्यक गति का खेल प्रारंभ करता था। खेल से पूर्व वह सदैव अपनी स्मृति को सम्यक बनाता था और अपनी स्मृति को, अपने मन को स्थिर करने के लिए वह बुद्धानुस्मृति कर खेल शुरू करता था। हारने वाले ने यह सब देखा और उसने उससे जीत का रहस्य पूछ लिया। जीतने वाले बालक ने उसे बता दिया कि वह हर खेल का प्रारंभ बुद्ध का स्मरण कर और 'नमो बुद्धाय' मंत्र का उच्चारण करने के बाद ही प्रारंभ करता था।

मिथ्यादृष्टि के पुत्र ने भी 'नमो बुद्धाय' कहना प्रारंभ कर दिया। उसे पहले से कुछ मालूम नहीं था। उसका मन, दिमाग और बुद्धि तो एक कोरे कागज की तरह था। फिर भी थोड़े ही दिनों में परिणाम सामने आने लगा। वह पहले की अपेक्षा थोड़ा शांत हो गया। उसके मन की बेचैनी कम होने लगी। वह भी अब सिर्फ जीतने के भाव से नहीं खेलता था। खेल की भावना से खेल खेलने लगा। अब उसे हारने में वह पीड़ा नहीं होती थी जैसी पहले हुआ करती थी। उसने भी सम्यक स्मृति की आदत डाल ली थी। यह आदत उसने खेल-खेल में डाल ली थी। लेकिन जो आदत उसने खेल-खेल से शुरू की थी वह अब उसके जीवन का अंग बन गई थी। अनजाने में ही उसके जीवन का कल्याण हो गया था।

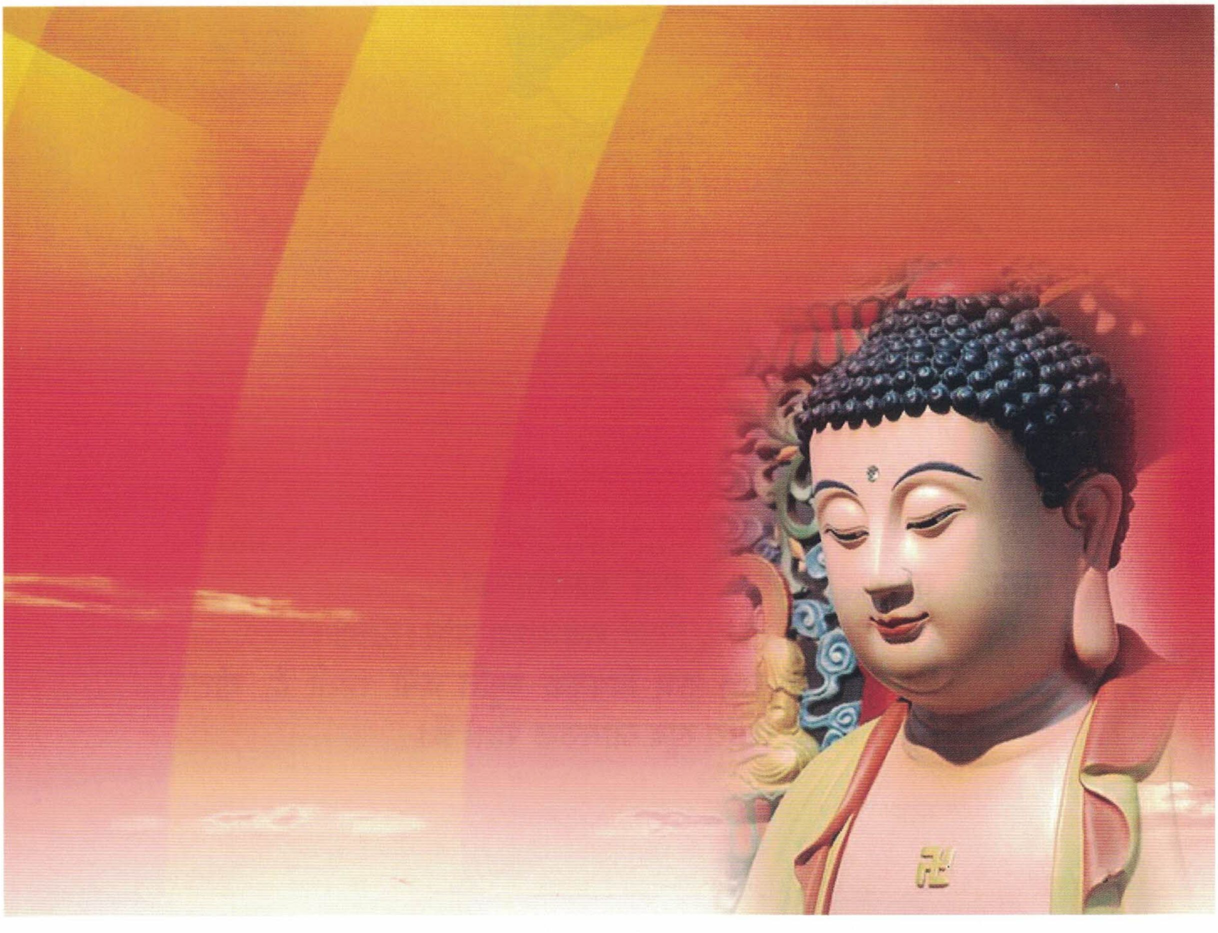

गाथा: सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं सङ्घगता सति।।298।।

अर्थ: जिनकी दिन-रात सघ विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

संघानुस्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

सम्यगदृष्टि का पिता जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाता था और उसे बेचता था। अतः लोग उसे पिता के नाम के आधार पर 'दारूशाकटिक पुत्र' कहने लगे।

एक दिन दारूशाकटिक पुत्र और उसके पिता दोनों वन में लकड़ी काटने गए। पिता-पुत्र लकड़ियों से भरी बैलगाड़ी लेकर शाम में घर लौटने लगे। बोझा भारी था अतः बैल धीरे-धीरे चल रहे थे। रास्ते में थोड़ी देर सुस्ता लेने के लिए और जलपान करने के उद्देश्य से वे एक श्मशान के पास रुके। उन्होंने बैलों को भी खोल दिया कि वे भी कुछ चर लें और सुस्ता लें।

पिता-पुत्र दिन भर के शारीरिक परिश्रम से थक गए थे। अतः आँख लग गई। बैल भी घास चरते-चरते आगे बढ़ गए। कोई रोकने वाला नहीं था । वे राजगृह नगर में प्रवेश कर गए। पिता-पुत्र की नींद खुली। देखा बैल नदारत थे। पिता ने सोचा "क्या करें ? " बैलगाड़ी को अकेला छोड़ नहीं सकता था और पुत्र बैल ढूँढ़कर ला नहीं सकता था। अतः पिता ने पुत्र को बैलगाड़ी पर बिठा दिया और स्वयं बैल खोजने निकल पड़ा। बैल नजदीक में न मिलने पर खोजते-खोजते राजगृह नगर में उसे बैल मिल गए। वह उन बैलों को साथ लेकर लौटने लगा पर विलंब हो गया था। अतः नगर के सभी द्वार बंद हो गए थे और उसे नगर में ही रुक जाना पड़ा।

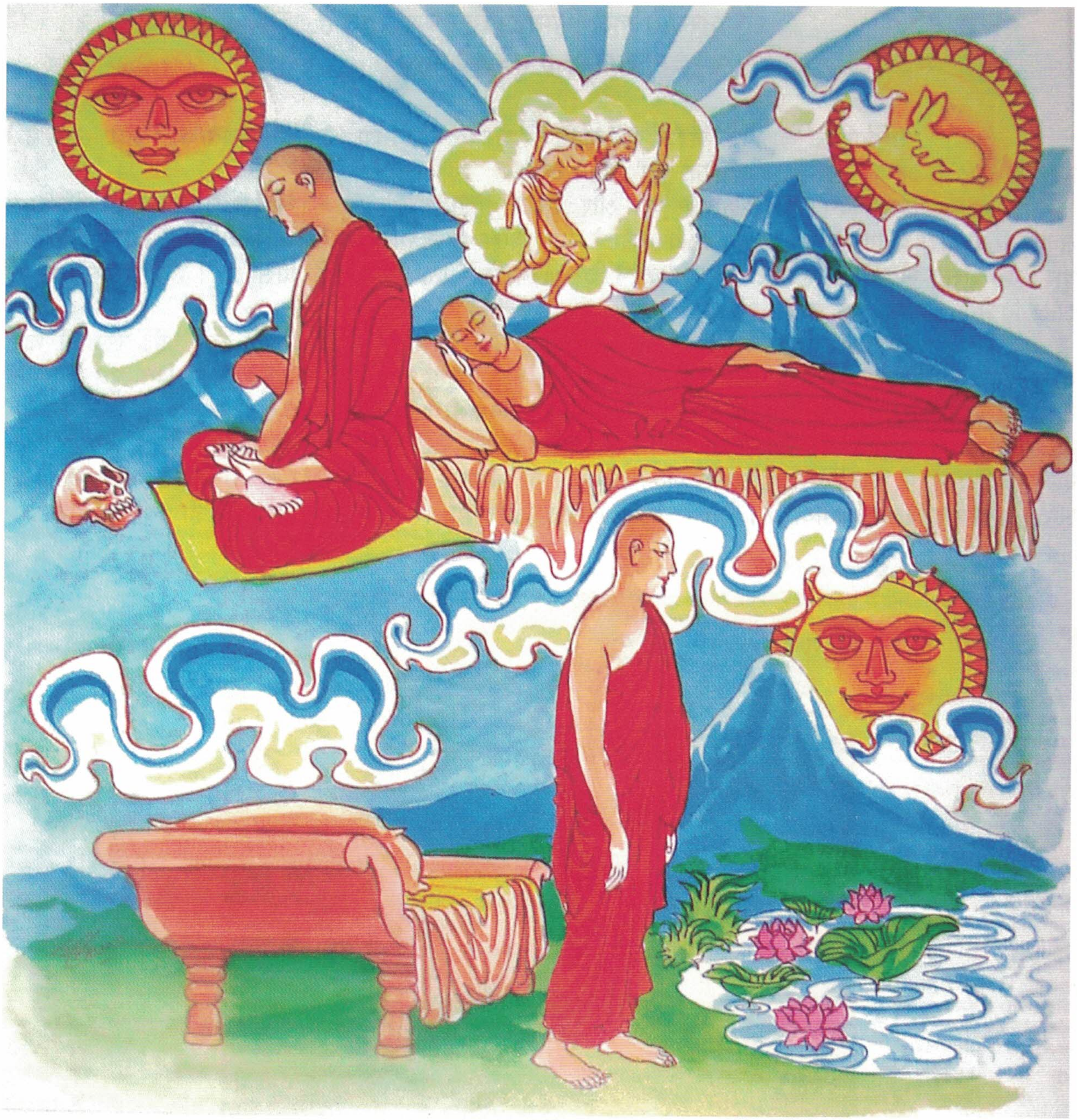

गाथा: सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं कायगता सति।।299।।

अर्थ: जिनकी दिन-रात काय-स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

कायगतास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

उधर उसका बेटा बैलगाड़ी पर बैठा पिता की प्रतीक्षा कर रहा था। पिता नगर के अंदर बंद था और उसका बेटा उधर श्मशान में अकेला। बेटा गाड़ी के नीचे छिपकर सो गया। राजगृह में बहुत सारे भूत-पिशाच रहता थे और बेचारा लड़का श्मशान में अकेला था। रात का अंधेरा छाते ही दो प्रेतों ने उसे देख लिया। उधर लड़के के मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। लेकिन वह शांत होकर बुद्धानुस्मृति 'नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय' का उच्चारण करने लगा। वह भयभीत नहीं हुआ और शांतिपूर्वक वहीं लेटा रहा। बौद्ध साहित्य में जिक्र आता है कि उसी समय दो प्रेत आए - एक बुद्ध शासन का विरोधी मिथ्यादृष्टि था और दूसरा सम्यग्दृष्टि था जिसकी बुद्ध-शासन में प्रीति थी। उनमें से मिथ्यादृष्टि ने कहा, "यह खाने की वस्तु है। इसे खा जाना चाहिए।" सम्यग्दृष्टि ने कहा, "नहीं, ऐसा करना उचित नहीं होगा। तुम ऐसा मत करो।" पर मिथ्यादृष्टि नहीं माना, उसने उस बालक के पैर पकड़ लिए और पकड़कर खींचने लगा। बालक को लग गया कि उसका पैर खींचा जा रहा है पर वह अपने स्वभाव के अनुसार 'नमो बुद्धाय' मंत्र का जाप करने लगा। बौद्ध मंत्र सुनते ही मिथ्यादृष्टि वहाँ से दूर भाग खड़ा हुआ।

गाथा: सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, अहिंसाय रतो मनो।।300।।

अर्थ: जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है,
गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

अहिंसास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

तब सम्यग्दृष्टि प्रेत ने मिथ्यादृष्टि प्रेत को समझाया, "हमने उस लड़के के साथ ऐसा व्यवहार करके उसके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है। अब हमें इसका प्रायश्चित करना चाहिए।" ऐसा कहकर वे दोनों उसकी रक्षा में बैठ गए। मिथ्यादृष्टि ने सोचा, "बच्चे को भूख लगी होगी।" अतः राजमहल गया और राजा के सोने की थाली में बालक के लिए भोजन ले आया। उस बालक के सामने भोजन रख दिया। फिर दोनों प्रेतों ने उस बालक के माता-पिता का रूप धारण कर लिया और उसे खाना खिला, रात भर उसकी रक्षा करते रहे। उन्होंने थाली को बैलगाड़ी में लकड़ी के अंदर छुपा दिया।

सुबह-सुबह राजमहल में हंगामा हो गया कि 'राजा के रसोईघर से सोने की थाली चोरी हो गई है।' सुरक्षा की दृष्टि से नगर के सभी द्वार बंद कर दिये गये और जब नगर के अंदर थाली नहीं मिली तो राज सिपाही थाली खोजते हुए नगर के बाहर निकले। खोजते-खोजते वे बैलगाड़ी तक पहुँचे और वहाँ बैलगाड़ी से सोने की थाली बरामद कर ली। राज सिपाहियों ने सोचा कि इसी लड़के ने चोरी की है। अतः उसे पकड़कर राजा के पास ले गए। राजा ने लड़के से पूछा, "क्या बात है ? " बालक ने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता हूँ। सिर्फ यह जानता हूँ कि रात्रि बेला में मेरे माता-पिता मेरे पास आए, उन्होंने मुझे भोजन कराया और मेरे पास बैठे रहे। मैं भी यह सोचकर कि 'मेरे माता पिता मेरे पास ही बैठे हैं तथा मेरी रक्षा कर रहे हैं', निश्चिन्त होकर रात भर सोता रहा। मैं सिर्फ इतना ही जानता हूँ। इसके अलावा और कुछ नहीं जानता।"

गाथा: सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, भावनाय रतो मनो।।301।।

अर्थः जिनका मन दिन-रात योग-अभ्यास (भावना) में रत रहता है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

नित्यभावनास्मृति वाले शिष्य सदैव प्रबुद्ध रहते हैं
दारूशाकटिक पुत्र की कथा

जब यह वार्तालाप चल रहा था तो उसी समय लड़के के माता-पिता वहाँ आ गए। राजा को सच्चाई का पता चल गया। तब वह माता-पिता और पुत्र- तीनों को लेकर शाक्य मुनि के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने शास्ता से जिज्ञासा जाहिर की, "भन्ते ! क्या बुद्धानुस्मृतिमात्र से कष्ट और भयों से छुटकारा पाया जा सकता है या उसके साथ-साथ धर्मानुस्मृति भी आवश्यक है ? " तब शास्ता ने स्पष्ट किया, "केवल बुद्धानुस्मृति मात्र ही रक्षक नहीं होती है। बल्कि जिनका चित्त छः प्रकार से अभ्यस्त है उन्हें किसी और रक्षा कवच या मन्त्रौषधि की जरूरत नहीं पड़ती है।"

उन छः प्रकारों का वर्णन करने के लिए तथागत ने ये छः गाथायें कहीं।

गाथा: दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं, दुरावासा घरा दुखा।
दुक्खोसमानसंवासो, दुक्खानुपतितद्धगू।
तस्मा न चद्धगू सिया, न च दुक्खानुपतितो सिया।।302।।

अर्थः संसार में प्रब्रजित होना बहुत कठिन है। गृहस्थ में रहना दुःखकर है, न अनुकूल प्रकृति के लोगों के साथ रहना दुःखद है, संसार के आवागमन के पथ का पथिक होना दुःखद है। इसलिए न तो संसाररूपी मार्ग का पथिक बनें और न दुःख में पड़ने वाला बनें।

संसार के आवागमन से मुक्ति लें
वज्जिपुत्तक भिक्षु की कथा

स्थान : महावन, वैशाली

शाक्य मुनि उन दिनों वैशाली में विराजमान थे। पूर्णिमा का दिन था। कार्तिक का मास था। नगर में उत्सव का माहौल था। चारों ओर उत्सव आयोजित हो रहे थे। मधुर संगीत लहरी बह रही थी। लोग उसमें आनन्द के गोते लगा रहे थे।

उसी शोर-शराबे के बीच एक वज्जिपुत्त भिक्षु अरण्यक के विहार से निकल कर वैशाली नगर में प्रविष्ट हुआ। उत्सव के अवसर पर बजने वाले संगीत को सुनकर उसका मन उदास हो गया। उसे लगा कि वह भिक्षु का जीवन निरर्थक ही जी रहा है। इससे तो अच्छा था कि वह गृहस्थ का ही जीवन जीता। उसके मुँह से अकस्मात् निकल पड़ा, "हम लोग दूर एकान्त वन में, जंगल में कटे लकड़ी के कुन्दे की तरह पड़े हैं। हम लोगों के जैसा और कौन मन्दभाग्यवाला पापी होगा जो आज ऐसी सुन्दर रात्रि में भी इस प्रकार पड़ा हुआ है ? " यह सोचकर उसने निर्णय लिया कि अगले दिन वह प्रव्रज्या त्याग देगा तथा एक बार फिर गृहस्थ का जीवन अपना लेगा। उसके मन की बात को देखकर एक वन देवता ने सोचा कि मैं इस दुःखी भिक्षु का मन शांत करूँगा। अतः उसके सामने आकर उसने यह गाथा कही : निश्चय ही आप जैसे लोग दूर, एकान्त में जंगल में एक कटे हुए कुन्दे की तरह पड़े हुए हैं। लेकिन आपकी स्थिति से अनेक लोगों को उसी प्रकार ईर्ष्या होती है जैसे नरक में रहने वालों को स्वर्ग में रहने वालों के प्रति होती है।

सूर्योदय हुआ। वह भिक्षु शाक्य-मुनि के सम्मुख सादर प्रणाम किया और फिर एक तरफ खड़ा हो गया। शास्ता सर्वज्ञ थे। उन्होंने उसके मन की स्थिति जान ली और उसे पाँच प्रकार के दुःख गिनाये। उन्होंने गृहस्थी में होने वाले जंजाल से उत्पन्न दुःख के विषय में भी बताया और तब यह गाथा कही।

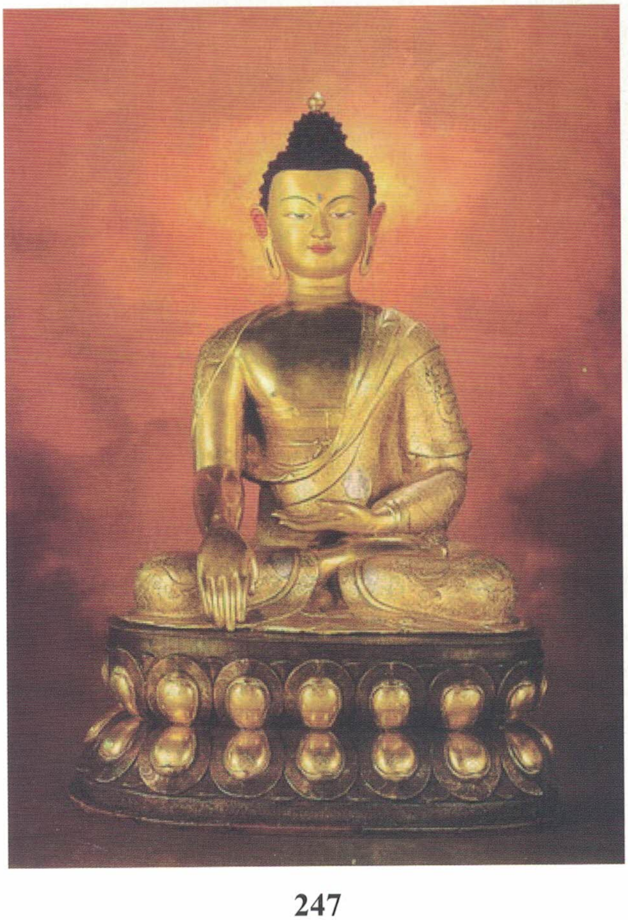

गाथा: सद्धो सीलेन सम्पन्नो, यसोभोगसमप्पितो।
यं यं पदेसं भजति, तत्थ तत्थेव पूजितो।। 303।।

अर्थ: श्रद्धावान, शीलवान और यश और सम्पत्ति से युक्त कुलपुत्र जिस-जिस प्रदेश में जाता है, वहीं-वहीं लाभ सत्कार से पूजित होता है।

शीलवान की सर्वत्र पूजा होती है
चित्त गृहपति की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

चित्त गृहपति अनागामी था। थेर सारिपुत्त से धर्म श्रवण करके उसने यह फल प्राप्त किया था। एक बार वह कई बैलगाड़ियों में उपहार भरकर श्रावस्ती आया और उन्हें शाक्य-मुनि एवं भिक्षुसंघ को दान में दे दिया। जब वह दान दे रहा था तब आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। चित्त गृहपति वहाँ एक महीना रुका और अपने अनुचरों के साथ खुले हृदय से दान करता रहा। फिर भी उसके भंडार पूरे के पूरे भरे रहे।

जब वह वापस जाने को हुआ तो सभी बचा-खुचा सामान विहार के भंडारागार में रखवा दिया। पर उसकी बैलगाड़ियाँ धन-धान्य से पूरी तरह भर गईं। थेर आनन्द को आश्चर्य हुआ और उन्होंने तथागत से पूछा, "क्या चित्त का वैभव बढ़ना आपके पास आने का परिणाम है ? क्या उसे यह लाभ सिर्फ आपके पास आने से प्राप्त हुआ है या अन्यत्र जाने से भी प्राप्त होगा ? " शास्ता ने समझाया, "यह उपासक श्रद्धालु है, शीलवान है, रत्नत्रय के प्रति समर्पित है। अत: यह जहाँ भी जाता है उसे आदर-सत्कार प्राप्त होता है।"

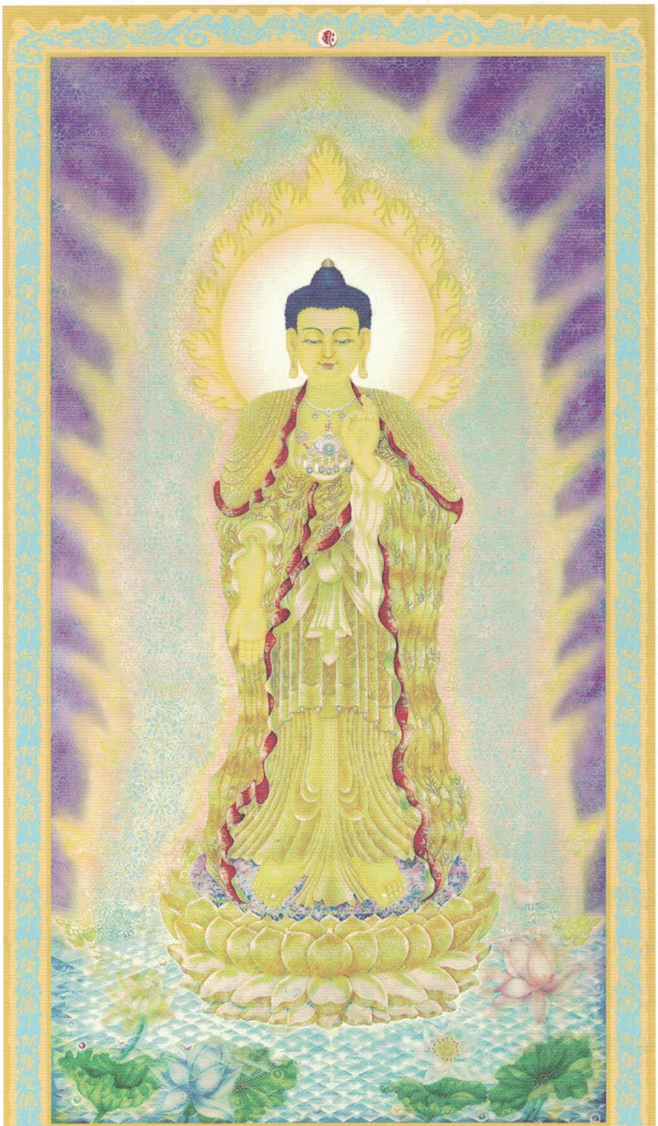

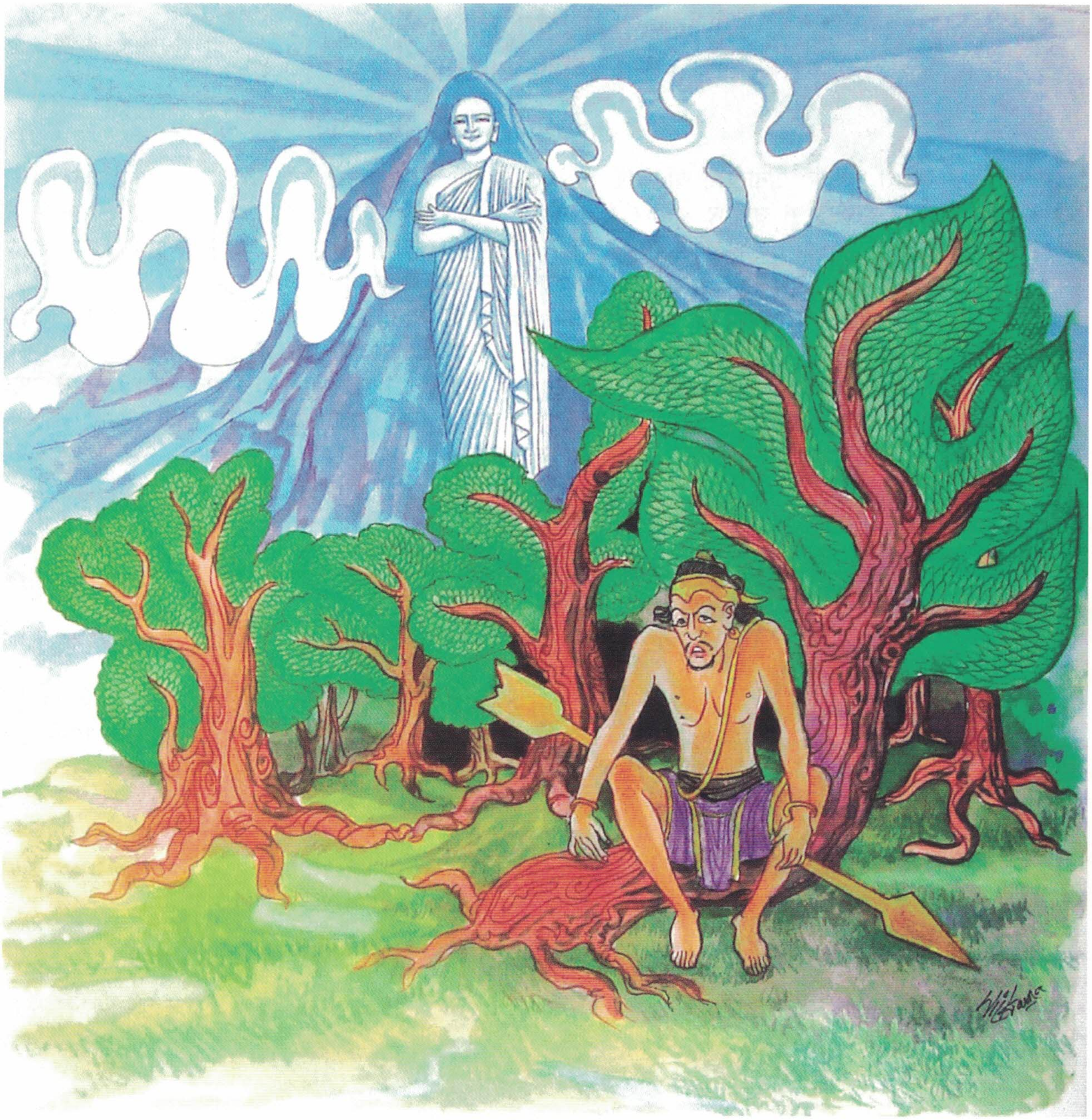

गाथा: दूरे सन्तो पकासेन्ति, हिमवन्तोव पब्बतो।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति, रत्तिं खित्ता यथा सरा।।304।।

अर्थ: सत्पुरुष, हिमालय पर्वत की भाँति दूर से भी प्रकाशित होकर दीखते हैं। असत्पुरुष निकट होने पर भी रात्रि में फेंके गए बाण की तरह नहीं दिखाई देते।

सत्पुरुष दूर से ही दिखते हैं
चूल सुभद्रा की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अनाथपिंडिक और उग्र सेठ बचपन के मित्र थे। साथ-साथ ही बड़े हुए। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी यद्यपि अनाथपिंडिक बुद्ध का अनुयायी था और उग्र सेठ नंगे साधुओं का। उग्र सेठ को एक पुत्र हुआ, अनाथपिंडिक को एक पुत्री; चूल सुभद्रा नाम था उसका। दोनों ने बच्चों की शादी करने की सोची। अनाथपिंडिक ने बुद्ध से अनुमति माँगी। उग्र सेठ के धर्म के प्रति भविष्य के भाव को देखकर उन्होंने अनुमति दे दी।

विवाह सम्पन्न हो गया। अनाथपिंडिक ने विदाई से पूर्व अपनी बेटी को समझाया, "बेटी ! श्वसुर घर में रहते हुए घर की अग्नि बाहर नहीं निकालनी चाहिए।"

ससुराल में सुभद्रा के परिवारवालों तथा नागरिकों ने ह्रदय से स्वागत किया। एक दिन उग्र सेठ ने नागा साधुओं को निमंत्रित किया था। परिवार वालों ने उन पर श्रद्धा प्रकट की पर सुभद्रा लज्जावश उन साधुओं के पास नहीं गई, वन्दना की बात ही कौन करे ? बार-बार बुलाये जाने पर भी जब सुभद्रा नहीं आई तो श्वसुर ने आदेश दिया कि इस बहू को बाहर निकाल दिया जाये। इस पर सुभद्रा ने श्वसुर को जवाब दिया, "मेरे जैसे निर्दोष को बिना किसी कारण के बाहर नहीं निकाला जा सकता।" लोगों ने उग्र सेठ को समझा-बुझाकर शांत किया।

उसकी सास ने एक दिन अपनी बहू से पूछा, "तुम बुद्ध और उनके भिक्षुओं की निरंतर प्रशंसा करती रहती हो। उनके आचार-व्यवहार और गुणों के विषय में बताओ।" तब सुभद्रा ने बुद्ध एवं उनके शिष्यों के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया, "वे संयत इन्द्रिय, शांत मन वाले हैं, वे सभी कार्य सोच-समझकर करते हैं, अन्दर और बाहर दोनों से स्वच्छ, शंख और मोती के समान निर्मल हैं। उनका आचरणीय धर्म भी पूर्णतः शुद्ध है। साधारण-जन थोड़ा सा लाभ पा अभिमान करने लगते हैं और थोड़ी सी हानि होने से दुःखी होने लगते हैं पर बुद्ध शिष्यों का मनोभाव हर परिस्थिति में एक जैसा रहता है। उसी प्रकार वे यश और अपकीर्ति, प्रशंसा या निन्दा, सुख या दुःख दोनों स्थितियों में एक समान रहते हैं। चंचल नहीं होते।"

इन बातों को सुनकर परिवार वालों ने उससे कहा, "तुम इन्हें बुलाओ। देखें तो ये कैसे हैं।" सुभद्रा ने बुद्ध और भिक्षुओं के लिए अगले दिन भोजनदान की तैयारी करने के लिए कहा। वह स्वयं अपने महल की छत पर गई और जेतवन की ओर मुँह कर, पंचाग प्रणाम कर प्रार्थना की, "भन्ते ! अपने भिक्षुओं के साथ कल मेरे घर पर भोजन दान के लिए पधारें।" ऐसा कह उसने जूही के आठ फूल आकाश की ओर फेंके। उसके परिवार वाले इस कार्य पर काफी हँसे, क्योंकि जेतवन वहाँ से बहुत दूर था।

उधर शाक्य मुनि प्रवचन दे रहे थे। प्रवचन रोककर उन्होंने पूछा, "जूही की सुगन्ध आ रही है न ? " ऐसा कह उन्होंने उग्र नगर की ओर अपनी दृष्टि कर ली। उसी समय अनाथपिंडिक ने आग्रह किया, "भन्ते ! कल मेरे घर भोजन ग्रहण करें।" शास्ता ने कहा, "मैं तो तुम्हारी बेटी सुभद्रा से निमंत्रित हूँ।" "पर उसने आपको कैसे निमंत्रित किया ? मैंने तो उसे देखा तक नहीं। मैं तो यहीं हूँ।" तब शास्ता ने यह गाथा कही।

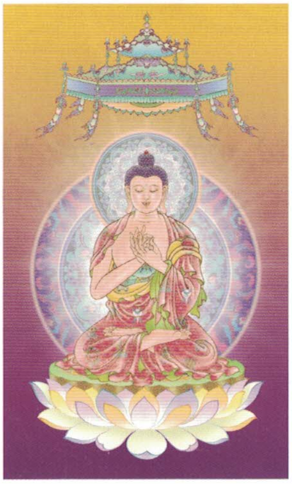

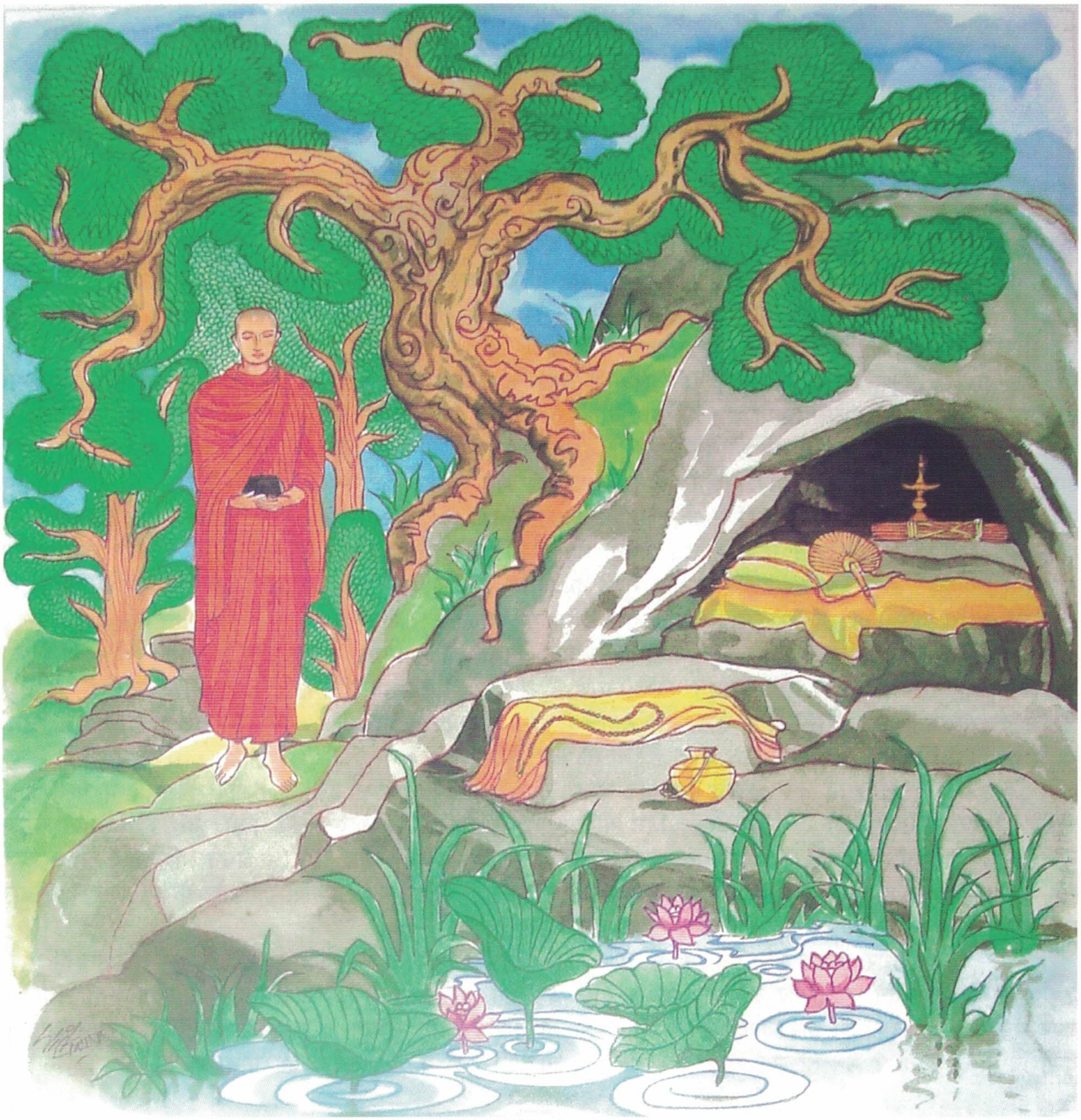

गाथाः एकासनं एकसेय्यं, एको चरमतन्दितो।
एको दमयमत्तानं, वनन्ते रमितो सिया।। 305।।

अर्थः एक ही आसन पर निश्चल बैठने वाला, एक ही शयनासन का उपयोग करने वाला, एकाकी विचरण करने वाला, आलस्य रहित होकर आत्मसंयमी साधक भिक्षु वन के एकांत प्रदेश में आनन्द से रहता है।

आत्मसंयमी साधक तो अकेला ही चलेगा
अकेले विहार करने वाले थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन में विहरते थे। विहार में अनेक भिक्षु रहकर ध्यान-साधना का अभ्यास करते थे। वे आपस में मिलते-जुलते भी थे, धर्म-चर्या भी करते थे, लेकिन उनमें एक भिक्षु इनसे सर्वथा भिन्न था। वह दूसरे भिक्षुओं से मिलता-जुलता नहीं था। वह एकान्त प्रेमी था। वह अपना आसन अकेला ही कहीं अलग लगाता था। अकेला ही उठता-बैठता था। अकेला ही कहीं खड़ा होता था। अकेला ही चंक्रमण करता था। वह पूर्णतः एक विहारिक था।

दूसरे भिक्षुओं को यह बात कुछ अटपटी-सी लगी। बात पूरे विहार में फैल गई। 'एक विहारिक' भिक्षु संघ में चर्चा का विषय बन गया। भिक्षुओं ने उसके अकेलेपन की चर्चा तथागत से की। शास्ता ने उसकी चर्या को अनुचित नहीं ठहराया, वरन् उसे उचित ठहराते हुए उसे साधुवाद दिया और कहा, "भिक्षु को इसी प्रकार एकांतवासी होना चाहिए। उसे एकाकी होकर विचरण करना चाहिए। एकान्त के आनन्द की अनुभूति लेनी चाहिए। भीड़-भाड़ के आनन्द से बचना चाहिए और 'अपने साथ' रहना चाहिए। एकासन वाला, एकशय्या वाला, आलस्य रहित होकर एकान्त प्रदेश में वास करना चाहिए।"

तब शाक्य मुनि से यह गाथा कही।

DHAMMAPADA

PAKINNAKA VAGGA

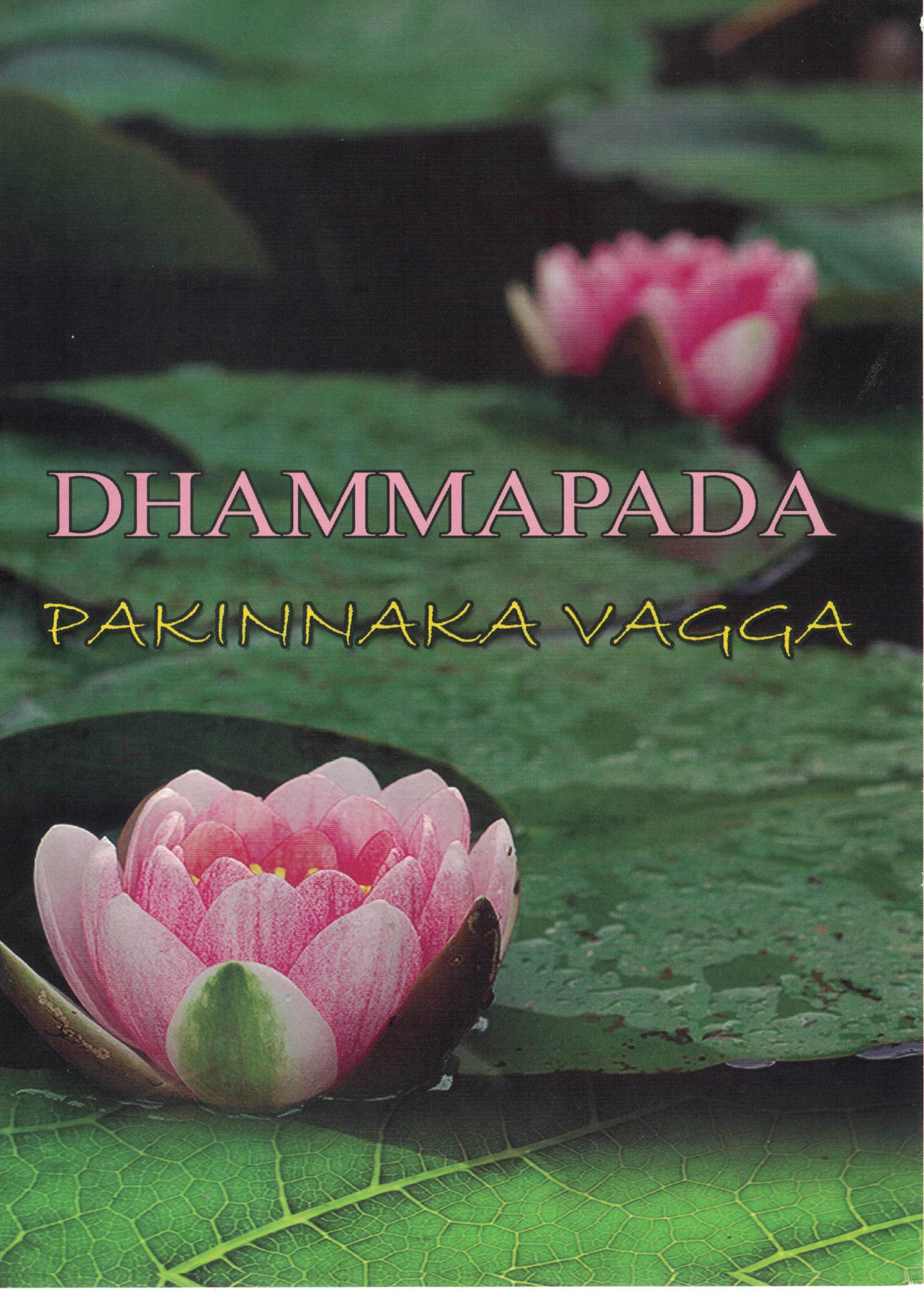

नरक से बचने के उपाय

धम्मपद

निरय वर्ग

गाथा और कथा

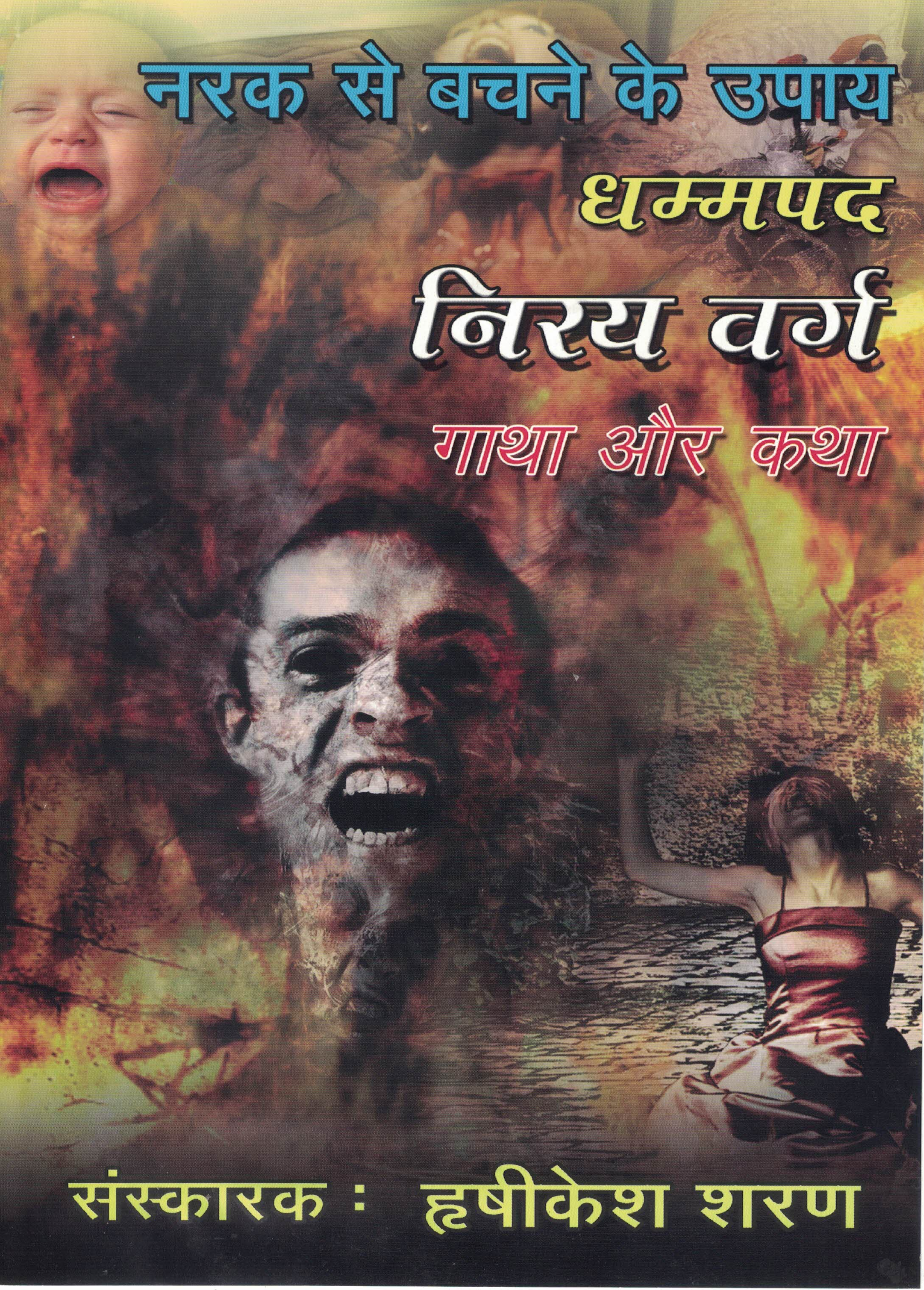

संस्कारक : हृषीकेश शरण

नरक से बचने के उपाय

धम्मपद

निरय वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

निरय वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	अति सुन्दर परिव्राजिका की कथा	306	झूठ बोलना : नरक की गारंटी	13
2.	दुश्चरित्र का फल भोगने वालों की कथा	307	भिक्षु ! गेरुआ वस्त्र की गरिमा रखें	15
3.	वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुओं की कथा	308	आग का गोला खाना श्रेयस्कर है	17
4.	पराई स्त्री के संग का फल : खेम की कथा	309	पराई स्त्री का संग न करें	19
5.	पराई स्त्री के संग का फलः खेम की कथा	310	व्यभिचार के दुष्परिणाम	21
6.	दुर्वच भिक्षु की कथा	311	श्रामण्य (संन्यास) ठीक से धारण करें	23
7.	दुर्वच भिक्षु की कथा	312	किसे महान फल मिलता है ?	25
8.	दुर्वच भिक्षु की कथा	313	कर्म संकल्पपूर्वक करें, शिथिलता न आने दें	27
9.	ईर्ष्यालु स्त्री की कथा	314	सत्कर्म करें, दुष्कर्म से बचें	29
10.	बहुत सारे आगन्तुक भिक्षुओं की कथा	315	प्रमाद से बचें : सतर्कता हटी, दुर्घटना घटी	31
11.	निर्ग्रन्थों की कथा	316	लज्जा और अलज्जा में भेद जानें	33
12.	निर्ग्रन्थों की कथा	317	भय–अभय का भेद न जानने वाले दुर्गति प्राप्त करेंगे	35
13.	तैर्थिक शिष्यों की कथा	318	मिथ्यादृष्टि वाला दुर्गति पायेगा	37
14.	तैर्थिक शिष्यों की कथा	319	सम्यक दृष्टि वाला सुगति पायेगा	39

गाथा: अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमि चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ।। 306।।

अर्थ: झूठ बोलने वाला आदमी नरक में जाता है। वह भी नरक में ही जाता है जो किसी पापकर्म करने के बाद भी पूछने पर कहता है 'मैंने नहीं किया।' ये दोनों ही प्रकार के नीच व्यक्ति, मरने के बाद, समान दुःख भोगने वाले हो जाते हैं।

झूठ बोलना : नरक की गारंटी
अति सुन्दर परिव्राजिका की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि के संदेश जम्बू द्वीप के कोने-कोने में पहुँच रहे थे। लोग भारी संख्या में उनके उपासक बन रहे थे, उपासक भिक्षु बन रहे थे। स्त्री-पुरुष सभी त्रिरत्न की शरण में जा रहे थे। स्वाभाविक था, बौद्ध भिक्षुओं और संघ का बहुत अधिक आदर-सत्कार होने लगा था। दूसरे मतावलम्बियों की संख्या घटती जा रही थी। उनकी दुकान बंद होने के कगार पर थीं। उनकी स्थिति वैसी ही हो गई थी जैसे सूर्य के उदय होने पर जुगनू की हो जाया करती है।

मरता क्या न करता ? मतान्ध लोगों ने एक परिव्राजिका को तैयार किया जो अति सुन्दर थी और उसकी मदद से एक षड्यंत्र रचा। वह प्रतिदिन संध्या बेला में गन्धकुटी की ओर जाती, रात में मतान्धों की कुटी में रह जाया करती थी और सुबह वह पुनः ऐसा दिखाती मानों वह गन्धकुटी से निकलकर वापस आ रही हो। लोग पूछते तो कहती, "रात्रि गुजारने गन्धकुटी जा रही हूँ। राजकुमार के साथ रात्रि बिताकर गंधकुटी से वापस आ रही हूँ" आदि-आदि। कुछ दिनों बाद उन मतान्धों ने भाड़े के कुछ हत्यारों को पैसा देकर उस स्त्री की हत्या करवा दी और उसके शव को जेतवन के पास फूलों के ढेर में छुपा दिया।

आगे वही किया, जो किया जाता है। उन मतान्धों ने चारों तरफ अफवाह फैला दी कि लगता है श्रमण गौतम और उनके शिष्यों ने स्त्री की हत्या कर दी है। उन्होंने फूलों के ढेर से शव को निकाला और राजा प्रसेनजित के पास ले गए। मतान्धों ने शहर में यह कहना शुरू कर दिया कि बुद्ध परिवार ने उस स्त्री की हत्या कर दी है।

बात शास्ता तक पहुँची। उन्होंने कहा, "सत्य स्वयं में इतना बलशाली होता है कि वह अपनी रक्षा कर सके। इसके विपरीत असत्य में वह बल कहाँ कि वह टिक सके ? सभी कुछ सात दिनों में ठीक हो जाएगा।" हुआ भी वही।

राजा ने हत्या की छानबीन का आदेश दिया। एक सप्ताह के अंदर ही षड्यंत्रकारी पकड़े गये। राजा के आदेश के अनुसार उन्हें पूरे नगर में घूम-घूम कर घोषणा करनी पड़ी, "हमने ही तथागत को बदनाम करने के लिए षड्यंत्र रचा था। हमने ही उस सुन्दर स्त्री की हत्या करवाई थी।"

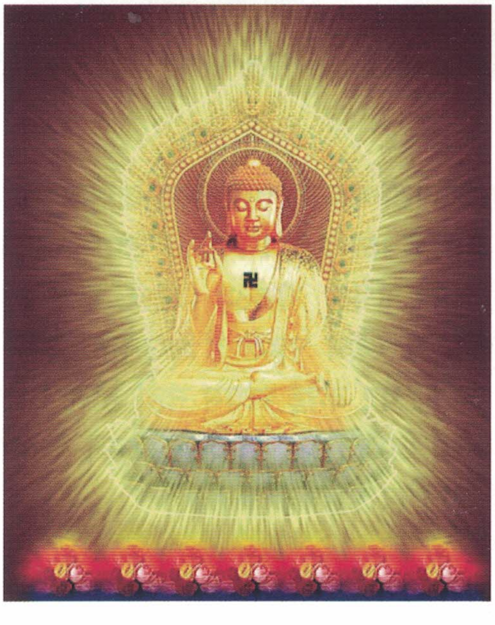

गाथा: कासावकण्ठा बहवो, पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि, निरयं ते उपपज्जरे।। 307।।

अर्थ: बहुत सारे भिक्षु गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए भी पापकर्मों में लीन रहते हैं। उनका अपनी इन्द्रियों पर और शरीर पर कोई संयम नहीं होता। ऐसे पापी, अपने पाप कर्मों के कारण, शरीर त्यागने के बाद सीधा नरक में ही जा गिरते हैं।

भिक्षु ! गेरुआ वस्त्र की गरिमा रखें
दुश्चरित्र का फल भोगने वालों की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन स्थविर महामोग्गलान स्थविर लक्ष्मण के साथ गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतर रहे थे। मोग्गलान ने कुछ देखा और मुस्कुरा दिया। लक्ष्मण थेर ने इसका कारण पूछा तो महामोग्गलान ने कहा, "विहार चलकर शास्ता के सामने पूछना। मैं इसका उत्तर वहीं दूँगा।"

दोनों साथ-साथ चलते हुए वेणुवन पहुँचे। तब शास्ता की उपस्थिति में थेर लक्ष्मण ने अपना प्रश्न दोहराया। महामोग्गलान ने उत्तर देते हुए कहा, "हाँ, अब उत्तर देने का सही समय है।" उन्होंने शास्ता को संबोधित करते हुए कहा, "भन्ते ! गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतरते समय मैंने पाँच भिक्षुओं को देखा। उनका शरीर आग में जल रहा था। चीवर, कायाबंध आदि भी जल रहे थे। वे सभी आकाश से जलते हुए पर्वत पर उतर रहे थे।

भिक्षुगण आपस में चर्चा करने लगे। प्रेतों के बारे में सुना था, गृहस्थों ने बुरे कर्म किए, कुकर्म किए और प्रेत योनि में जन्म लिया, यह भी सुना था पर भिक्षुगण को प्रेत योनि में जन्म लेते तथा इतना भयावह कष्ट सहते हुए न तो देखा था और न ही सुना था। अतः भिक्षुओं में जिज्ञासा थी कि शाक्य मुनि से आग्रह करें कि वे अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर बतावें कि किन कारणों से इनकी यह दुर्गति हुई थी।

तथागत ने स्पष्ट किया, "ये सभी भिक्षु काश्यप बुद्ध के काल में प्रव्रजित होकर प्रव्रज्या के अनुरूप कार्य नहीं करते थे। जो नहीं करना चाहिए उसे कर पापकर्म में लगे रहते थे। उन्होंने बताया कि उस समय किए गए पाप का फल आज झेलना पड़ रहा है।" यह सब बताने के बाद बुद्ध ने उस समय के कुछ दुश्चरित्र पापी भिक्षुओं के विषय में भी बताया और यह गाथा कही।

गाथा: सेय्यो अयोगुळो भुत्तो, ततो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो, रट्ठपिण्डमसञ्ञतो।। 308।।

अर्थ: दुराचारी तथा असंयमी पुरुष के लिए राष्ट्र का अन्न (लोगों के द्वारा दिये जा रहे दान में प्राप्त अन्न) खाने की तुलना में आग का लोहा खा लेना ज्यादा अच्छा है।

आग का गोला खाना श्रेयस्कर है
वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : महावन, वैशाली

एक समय शाक्य मुनि वैशाली के आम्रकुंजों में बने विहार में विराजमान थे। वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से भिक्षुगण आते, शास्ता से मिलते, अपने अनुभव सुनाते, शास्ता की सलाह को गाँठ बाँधकर संजोते, शास्ता से अपनी शंका-समाधान कराते, अपनी कठिनाइयाँ बताते और उनका हल निकालते।

वर्षावास के बाद वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुगण भी तथागत से आशीर्वाद प्राप्त करने पधारे। शास्ता तो दिव्यद्रष्टा थे। उन्हें मालूम था कि ये भिक्षुगण अनैतिक ढंग से भिक्षाटन किया करते थे। वे उन्हें सुधारना चाहते थे ताकि वे भविष्य के लिए बुरे कर्म का सृजन न करें। अतः उन्होंने उन भिक्षुओं से पूछा, "वर्षाकाल में आप लोगों ने अपने भिक्षादान के लिए क्या प्रबंध किया था ?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "भन्ते ! कोई दिक्कत नहीं हुई। हमने उपासकों में यह धारणा बना दी कि हम सभी समाधिस्थ हैं। बस क्या था ? जनता की ओर से पूरा स्वागत-सत्कार होता रहा।" शाक्य मुनि ने वार्त्तालाप जारी रखते हुए पूछा, "क्या आप लोगों ने समाधि की अवस्था और मार्गफल पहले से ही प्राप्त कर रखा है ?" "क्या कहते हैं ? भन्ते ! वैसा तो हमने केवल भिक्षा प्राप्त करने के लिए किया था। हममें से कोई भी अभी तक समाधि की अवस्था तक नहीं पहुँचा है।"

तब तथागत ने उन्हें समझाया, "शील रहित माध्यम से दूसरों द्वारा दिये जाने वाले भोजन को 'मैं श्रमण हूँ' यह कहकर ग्रहण करने से अच्छा है कि आदमी अपने मुँह में आग का जलता हुआ गोला रख ले। कारण ? उस आग के गोले से उसका मुँह सिर्फ आज ही जलेगा, मात्र इसी जन्म में कष्ट होगा। लेकिन गलत ढंग से अन्न खाकर, गलत कर्म सृजित कर जन्म-जन्मान्तर तक नरक की अग्नि में उसे जलना होगा। समयानुरूप उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो, आपज्जति परदारूपसेवी।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं, निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं।। 309।।

अर्थ: पराई स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाला चरित्रहीन, प्रमादी व्यक्ति चार फल प्राप्त करता है:-

1. उसे इस कर्म से अपुण्य अर्थात् पाप मिलता है।
2. उसकी नींद उड़ जाती है।
3. इस बुरे कर्म से उसकी सारे समाज में निंदा होती है।
4. इस पापकर्म से उसका मृत्यु पर्यन्त नरक में गिरना सुनिश्चित है।

पराई स्त्री का संग न करें

पराई स्त्री के संग का फल : खेम की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा अनाथपिंडिक के भांजे खेमक (खेम) की है। वह कामदेव की प्रतिमूर्ति था। उसे देखते ही स्त्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट हो जातीं और उनका मन उससे काम संबंध स्थापित करने के लिए बेचैन हो उठता था। इस प्रकार औरतों का शरीर आसानी से प्राप्त करने के कारण वह जरूरत से ज्यादा व्यभिचारी हो गया। उसने अपने रंग-रूप का पूरा फायदा उठाया। अपने मामा से अच्छे गुणों को न सीखकर अनैतिक ढंग से काम-सुख में रत रहता था। रूपवान तो था ही, धनवान और बलवान भी था। वह कुकर्म करते हुए राजसिपाहियों द्वारा तीन बार पकड़ा गया। पर मामा से अपने सम्बन्ध के कारण बच निकला। रात के प्रहरी राजपुरुष उसको व्यभिचार का दंड दिलाने के लिए राजा के पास ले जाते। राजा पूरी बात सुनने के बाद कहता, "मैं महाश्रेष्ठी अनाथपिंडिक के विषय में सोचकर फैसला देने में संकोच करता हूँ।" ऐसा कहकर राजा उसे छोड़ दिया करता, लेकिन खेम बार-बार वही दुष्कर्म करता रहा, और हर बार छूटता रहा।

गाथा: अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका, भीतस्स भीताय रती च थोकिका।
राजा च दण्डं गरूकं पणेति, तस्मा नरो परदारं न सेवे।। 310

अर्थ: इस पाप कर्म के चार अन्य दोष हैं :- 1. अपुण्यलाभ 2. पापमय, बुरी गति अर्थात् पुनर्जन्म 3. भयभीत पुरुष की भयभीत स्त्री से अत्यल्प कामक्रीड़ा तथा 4. इस अपराध के कारण राजा का हाथ-पैर काटने जैसा भारी दंड देना। इसलिए समझदार आदमी को चाहिए कि वह पराई स्त्री का संग न करे।

व्यभिचार के दुष्परिणाम
पराई स्त्री के संग का फल : खेम की कथा

अनाथपिंडिक को लगा कि अपने भांजे को सुधारने के लिए उसके सामने आशा की एक ही किरण थी, वह उसे लेकर शास्ता के पास जाए।

उसने भांजे को मनाया और मामा-भांजा शाक्य मुनि के दरबार में जा पहुँचे। शास्ता के सामने गुहार लगाई, "भन्ते ! कुछ कीजिए ! इसकी मति मारी गई है। इसको अच्छाई के रास्ते पर ले आइए।"

शास्ता ने उसे धर्मोपदेश दिया ताकि उसके हृदय में धार्मिक संवेदना उत्पन्न हो। उसे पराई स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध रखने से होने वाले दोष के विषय में भी बताया।
बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह पराई स्त्री से सम्बन्ध न बनावे। ऐसे मनुष्य को मिलता भी क्या है- पाप कर्म, बुरी गति और भयभीत पुरुष को भयभीत स्त्री से थोड़ी सी प्रीति। इस पृष्ठभूमि में समाज के भय से डरी हुई उस स्त्री के साथ थोड़े समय की वह मैत्री बहुत सुखदायी नहीं होती क्योंकि दुष्कर्म करते समय दोनों को भय बना रहता है कि कहीं कोई उन्हें देख न ले।

शास्ता ने उन कारणों को भी स्पष्ट किया जिनसे खेमक के प्रति महिलायें इतनी अधिक आकृष्ट हो रही थीं। खेमक पूर्व जन्म में काश्यप बुद्ध के समय एक श्रेष्ठ पहलवान था। उसने उनके स्तूप पर दो सोने की पताकायें फहराईं और काश्यप बुद्ध से वर माँगा, "परिवार की स्त्रियों के अलावा भी जो स्त्री मुझे देखे वह पहली ही बार में मुझपर आसक्त हो जाए।" यही था उसका पूर्वकर्म। इसी प्रार्थना के कारण आज उसे इतनी स्त्रियाँ उपभोग के लिए मिल रही थीं तथा उसे देखते ही उस पर मोहित हो जा रही थीं।

गाथा: कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायुपकड्ढति।। 311।।

अर्थ: जिस प्रकार कुश को अगर ठीक से न पकड़ा जाए तो हाथ कट जाता है उसी प्रकार श्रामण्य (संन्यास) ठीक से धारण न किया जाए तो वह नरक ले जाता है।

श्रामण्य (संन्यास) ठीक से धारण करें
दुर्वच भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन में विहरते थे। उस समय किसी भिक्षु ने अनजाने में कुशाग्रास काट दिया। इस घास के तिनके को काटने के बाद उसे अपने किये पर पश्चाताप होने लगा। उसे लगा कि कहीं उसने कोई गलत काम तो नहीं कर दिया है। अतः वह अपने एक भिक्षु मित्र के पास गया और उससे पूछा, "बन्धु ! किसी घास के तिनके को तोड़ देने का क्या फल होगा ? घास काटने में कोई आपत्ति होगी क्या ?" "मैंने कुशाग्रास को काटा है। कोई गलत काम तो नहीं किया है ?"

गाथा: यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठञ्च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं।। 312।।

अर्थ: जो कर्म शिथिलता (ढीला-ढाला) से किया जाये, जो व्रत मलिन (मल युक्त) है, और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध (संदिग्ध) है उससे महान फल (महाफल, अधिक फल) नहीं मिलता।

किसे महान फल मिलता है ?
दुर्वच भिक्षु की कथा

भिक्षु मित्र ने उत्तर दिया, "तुम घास का तिनका तोड़ने पर चिंता कर रहे हो। अरे ! घास तोड़ने से क्या होगा ? उसको तोड़ दिया, मसल दिया, टुकड़े कर दिए, फेंक दिया या किसी भिक्षु को दे दिया। बस, कहानी खतम ! "ऐसा कहकर उसने अपने सामने की घास को तोड़ा, उसके दो-तीन टुकड़े किए और फेंक दिया। वह और भी घास उखाड़ने लगा- यह दिखाने के लिए कि कुशाग्रास उखाड़ने में कोई हानि नहीं है।

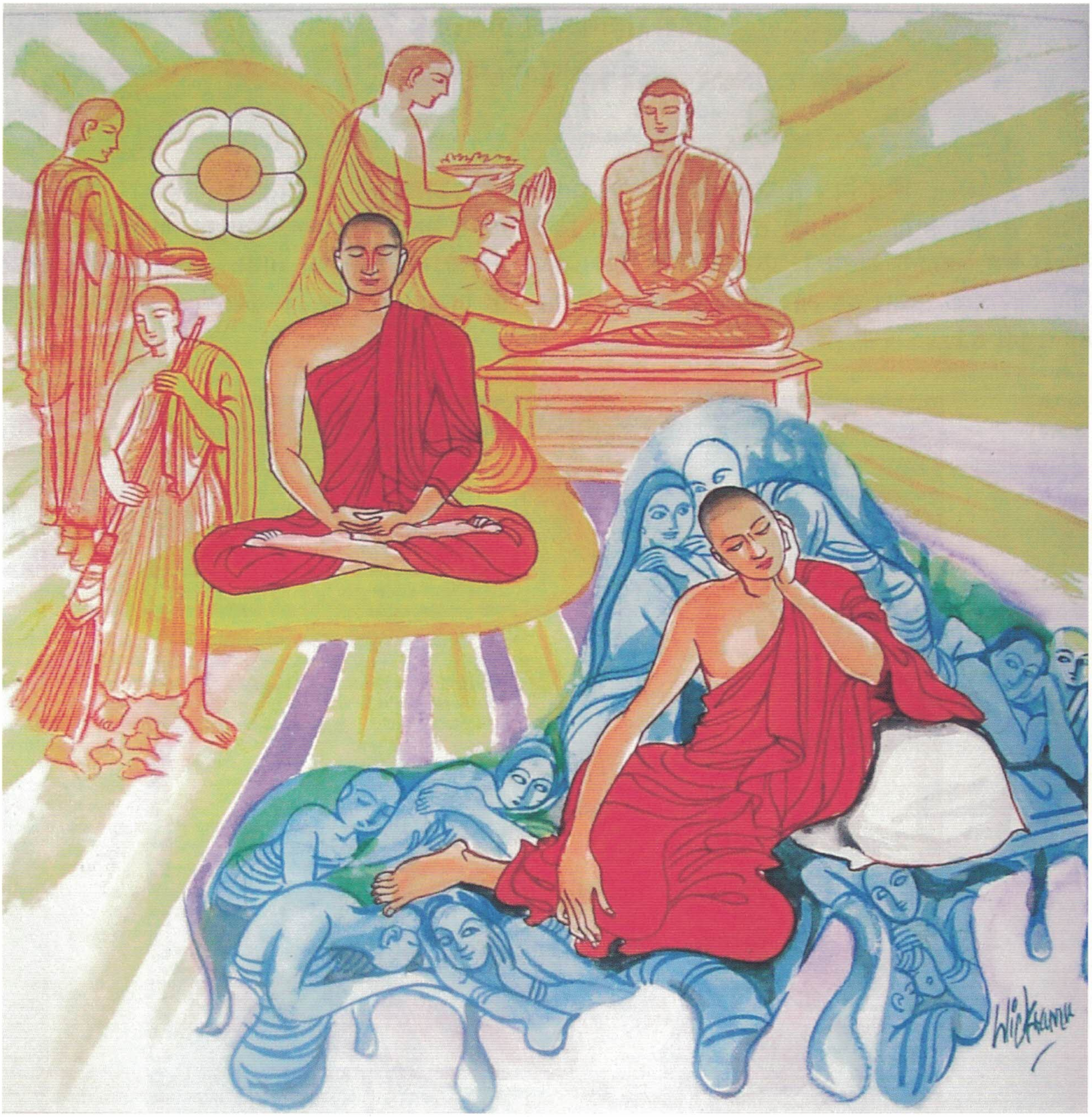

गाथा: कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं।। 313।।

अर्थ: यदि किसी कार्य को करना है तो उसे संकल्पपूर्वक करें और उसे दृढ़तापूर्वक कर डालें। शिथिल परिव्राजक, अपनी शिथिलता के कारण (अपने अन्दर राग आदि से) अपने श्रमण भाव पर अधिक मल ही बिखेरता है अर्थात् अधिक धूल (कलंक) ही फैलाता है।

कर्म संकल्पपूर्वक करें, शिथिलता न आने दें
दुर्वच भिक्षु की कथा

अपने मित्र के उत्तर, व्यवहार और आचरण से वह भिक्षु संतुष्ट नहीं हुआ। उसकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। अत: अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए वह शास्ता के पास गया। उसने शास्ता को सारी बातें बताईं। शास्ता ने कहा कि द्वितीय भिक्षु ने न तो सही उत्तर दिया था और न सही सलाह दी थी। उन्होंने उसे निन्दा के भाव से धिक्कारा और फिर समझाया, "कोई भी तेज धार वाली घास जैसे कुशा घास या खजूर की पत्ती ठीक से नहीं पकड़ी जाये तो वह हाथ काट देती है, उसी प्रकार यदि भिक्षु अपनी साधना उचित पद्धति से न करे, शीलों के पालन में कोताही बरते तो शील आदि के खंडित होने से वह साधना पद्धति नरक की ओर ही ले जाने वाली होती है। यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रव्रज्या मिल गई तो सब कुछ हो गया। अगर सचमुच प्रव्रज्या कर्म करना है, सचमुच प्रव्रजित होना है, एक सच्चा भिक्षु बनना है तो फिर हमें ईमानदारी से प्रव्रज्या स्वीकार करनी चाहिए। इसे भली-भाँति स्वीकार कर पूरे यत्न से लग जाना चाहिए। जो कोई भी कर्म प्रारम्भ किया जाए उसे पूरे संकल्प के साथ तथा स्थिरभाव से पूरा कर लेना चाहिए। किसी अन्य की सहायता की उम्मीद न लगाकर उस कार्य को स्वयं पूरा कर लेना चाहिए।"

परिस्थिति के अनुकूल शास्ता ने ये तीन गाथायें कहीं।

गाथा: अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तप्पति दुक्कटं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति।। 314।।

अर्थ: दुष्कर्म का नहीं किया जाना अच्छा है क्योंकि दुष्कर्म करने वाले को बाद में पश्चाताप (अनुताप) करना पड़ता है। इसके विपरीत सत्कर्म करना अच्छा है क्योंकि बाद में किसी प्रकार का पश्चाताप (अनुताप) नहीं करना पड़ता है।

सत्कर्म करें, दुष्कर्म से बचें
ईर्ष्यालु स्त्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक गृहस्थ का अपने ही घर की दासी से अवैध सम्बन्ध हो गया। उसकी पत्नी को यह पता लग गया। उसके क्रोध का पारा आसमान को छू गया। उसने उस नौकरानी से बदला लेने का विचार किया। क्रोधी मालकिन ने नौकरानी के हाथ-पाँव बँधवाकर उसके नाक एवं कान कटवा दिये। उसे गुड़ की कोठरी में धक्का देकर बंद कर दिया। अपने हाव-भाव से पति को जरा भी नहीं लगने दिया कि उसने उस दासी को इतनी कठोर सजा दी है। दूसरे दिन उसने पति से कहा, "स्वामी ! धर्म-प्रवचन का समय हो गया है, विहार चलें ?" पति को साथ लेकर वह बौद्ध विहार पहुँची तथा धर्म श्रवण हेतु बैठ गई।

पति-पत्नी के विहार चले जाने के बाद उनके घर कुछ अतिथि आए। वे दासी के रिश्तेदार थे। उन्होंने दासी की आवाज सुनी तो दरवाजा खोलकर उसे मुक्त कर दिया।

स्वतंत्र होने के बाद, अपनी फरियाद लेकर वह सीधा शाक्य-मुनि के पास पहुँची। बुद्ध चारों परिषद् के बीच बैठकर धर्म प्रवचन दे रहे थे। दासी ने अपनी पूरी दास्तान सुनाई।

उसकी पूरी कहानी सुनकर, धर्मोपदेश देते हुए तथागत ने समझाया, 'इसे लोग नहीं जान पायेंगे' ऐसा सोचकर छोटे से छोटा बुरा कर्म भी नहीं करना चाहिए। छुपकर पाप कर्म करने वालों के बारे में जब लोगों को पता चलता है तब उन्हें अत्यधिक आन्तरिक पीड़ा और शर्मिन्दगी महसूस होती है। इसके विपरीत 'लोग जानें या न जानें', सत्कर्म करना ही चाहिए। सत्कर्म छोटे से छोटा भी क्यों न हो, उसे कर देना चाहिए। छुपकर, गुप्त रूप से किया गया सत्कर्म भी सुख और आन्तरिक खुशी देता है।

गाथा: नगरं यथा पच्चन्तं, गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं, खणो वो मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता।।315।।

अर्थ: जिस प्रकार सीमा पर स्थित नगर की भीतर-बाहर रक्षा की जाती है, उसी प्रकार साधक को अपनी आत्मरक्षा करनी चाहिए। इसमें क्षण भर भी प्रमाद (चूक) नहीं करना चाहिए। समय विषयक प्रमाद (क्षण भर की भूल) करने वाले दुष्कर्मों के चक्र में पड़कर (समय हाथ से निकल जाने के कारण) नरक के शोक को प्राप्त करते हैं।

प्रमाद से बचें : सतर्कता हटी , दुर्घटना घटी
बहुत सारे आगन्तुक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

वर्षा ऋतु आई। भिक्षुओं के एक समूह को देश की सीमा के पास एक गाँव में वर्षावास की अवधि बितानी पड़ी। वर्षावास तीन महीनों का होता है। भिक्षुगण उस अवधि में एक ही जगह रहते हैं।

उन भिक्षुओं का पहला महीना बहुत अच्छी तरह गुजरा। गाँव वालों ने उनकी अच्छी आवभगत की। पर दूसरे महीने में एक घटना हो गई। कुछ चोर आये और जिस गाँव (भिक्षाग्राम) में भिक्षु रुके थे उसे लूट लिया और कुछ ग्रामवासियों को बंधक भी बना लिया। तब से लोगों ने चोरों से रक्षा करने के लिए उस नगर के चारों तरफ घेरा बना लिया और उसका फाटक बन्द रखने लगे। अब भिक्षुओं को नगर में आने-जाने में कठिनाई होने लगी। भिक्षाटन में भी व्यवधान आ खड़ा हुआ।

वर्षाकाल किसी तरह बीता। भिक्षुगण का समूह उस गाँव से निकला और श्रावस्ती पहुँचा जहाँ शास्ता ने वर्षाकाल बिताया था। बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के बाद अधिकांश वर्षा काल यहीं बिताये। विहार पहुँचकर उन्होंने तथागत को सादर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। शास्ता ने उनका कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने यह भी पूछा कि वर्षाकाल कैसा बीता, उनकी साधना कैसी रही। भिक्षुओं ने अपने-अपने अनुभव सुनाते हुए शिकायत की भाँति कहा, "भन्ते ! पहला मास तो सुखपूर्वक बीता पर दूसरे माह चोरों ने उपासकों के घरों में चोरी कर ली। अतः दूसरे महीने से उपासक हमारी सेवा ठीक से नहीं कर पाये।"

शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं को सांत्वना दी, "भिक्षुओं ! इस विषय पर चिंतन नहीं करना चाहिए कि सर्वत्र एवं सर्वदा सुखपूर्वक रहने का अवसर मिले। सुखावास सदैव उपलब्ध नहीं हुआ करता। परन्तु तुम्हें चोरी की घटना और अपने अनुभव से सबक लेना चाहिए। नगरवासियों ने चोरों के आक्रमण से बचने के लिए नगर की रक्षा करने का उपाय ढूँढ़ निकाला। उसी प्रकार तुम्हें भी अपने शरीर (आत्मभाव) की रक्षा करनी चाहिए। भिक्षुओं ! जैसे उन नगरवासियों ने उस नगर की रक्षा करने हेतु अन्दर सुरक्षित भवन तथा खाई आदि बनवाये तथा बाहर की तरफ प्राकार आदि बनवाकर उस नगर की रक्षा दृढ़ की; उसी तरह तुमको अपनी स्मृति व्यवस्थित रखते हुए छह आध्यात्मिक द्वारों को बन्द कर इन द्वारों की रक्षा करते हुए आत्मरक्षा करते रहना चाहिए।"

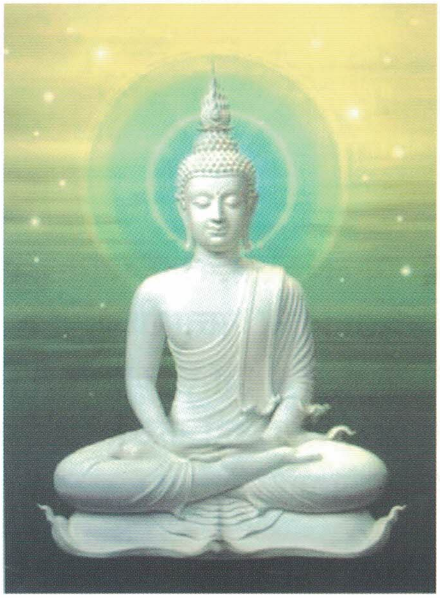

गाथा: अलज्जिताये लज्जन्ति, लज्जिताये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 316।।

अर्थ: अलज्जा के काम में जो लज्जा करते हैं तथा लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते, ऐसे झूठी धारणा वाले लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

लज्जा और अलज्जा में भेद जानें
निर्ग्रन्थों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के जेतवन वास की कथा है। एक दिन कुछ निर्ग्रन्थ साधु भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। वे अपने भिक्षापात्र ढँके हुए थे। उनको देखकर कुछ भिक्षुओं ने आपस में चर्चा की, "मित्रों ! शरीर से सभी प्रकार नंगे घूमते हुए साधुओं से ये निर्ग्रन्थ थोड़ा श्रेष्ठ हैं जो कम से कम अपने भिक्षापात्र को तो ढँककर रखते हैं। उनकी तुलना में इनके अन्दर कुछ तो लज्जा, हया बची हुई है।" निर्ग्रन्थों ने उनकी बात सुनी तो स्पष्ट किया, "मित्रों ! हम लोग भिक्षा पात्र को निश्चय ही ढँककर रखते हैं पर हम लोग इस लज्जा से इसे नहीं ढँकते कि हम नंगे जा रहे हैं। हमारे नंगेपन से इसका कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि हम इसे यह सोचकर ढँकते हैं कि पांशु और मिट्टी आदि के अन्दर भी सूक्ष्मजीव रहते हैं और कहीं वे भिक्षापात्र में गिर न जायें।" इस प्रकार इस विषय पर निर्ग्रन्थों और भिक्षुओं के बीच काफी देर तक वार्त्तालाप होता रहा।

बाद में जब भिक्षुगण शास्ता के सम्मुख बैठे तो निर्ग्रन्थों के साथ हुए वाद-विवाद के विषय में उन्हें बताया। शास्ता ने उन्हें स्पष्ट करते हुए बताया, "न लज्जा करने योग्य विषय में लज्जा करना तथा लज्जा करने की बात में लज्जा नहीं करने वाले व्यक्ति की अंततः दुर्गति होती है। न लज्जा करने योग्य विषय में, जैसे भिक्षापात्र को ढँककर उससे लज्जा करते हैं। वे लज्जा करने योग्य विषय मूत्रेन्द्रिय को अनावृत रखकर लोक में विचरण करते हुए लज्जित नहीं होते। इस तरह उन निर्ग्रन्थों का अलज्जितव्य में लज्जित होना तथा लज्जितव्य में लज्जित न होना- उनको मिथ्यादृष्टि तक पहुँचा देता है। उस मिथ्यादृष्टि को स्वीकार कर लोक में विचरण करते हुए मिथ्यादृष्टिगृहीत वे प्राणी निरय आदि विविध भेदों वाली दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

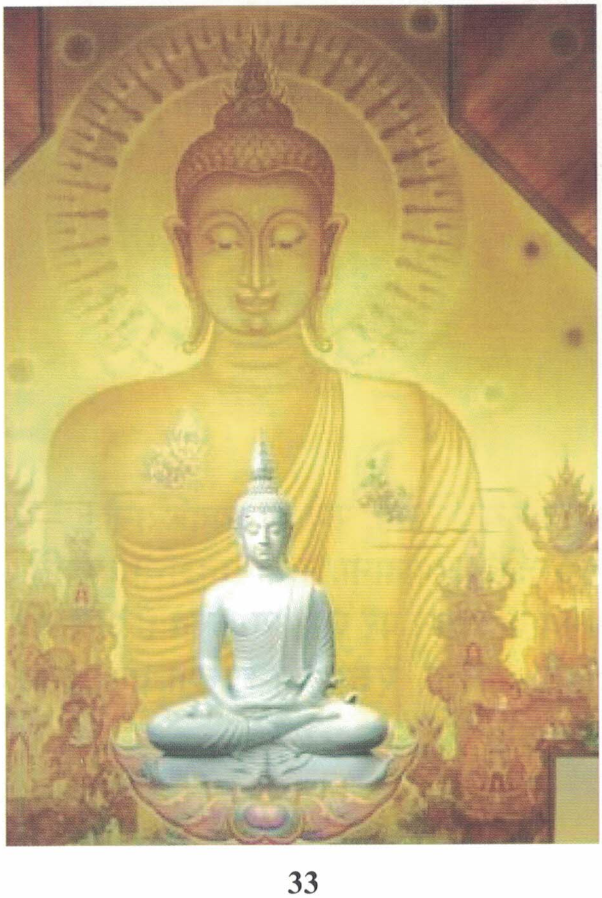

गाथा: अभये भयदस्सिनो, भये चाभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 317।।

अर्थ: अभय के स्थान पर जो भय करते हैं और भय में जो भय रहित रहते हैं, ऐसे झूठी धारणा वाले लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

भय-अभय का भेद न जानने वाले दुर्गति प्राप्त करेंगे निर्ग्रन्थों की कथा

भिक्षापात्र के कारण किसी को राग, द्वेष, मोह, मान, मिथ्यादृष्टि, क्लेश दुश्चरित आदि का कोई भय उत्पन्न नहीं होता, अतः वह 'अभय' कहलाता है। परन्तु भय से उसको ढँकते हुए वे अभय में भय प्रदर्शित करते हैं। इसके विपरीत, मूत्रेन्द्रिय के कारण उक्त रागादि का भय उत्पन्न होता देखा जाता है, अतः उसे 'भय' कहा जा सकता है। उस मूत्रेन्द्रिय को खुला रखकर भय में अभय का प्रदर्शन करते हैं। जैसे को तैसा न ग्रहण करने से मिथ्यादृष्टियुक्त हो जाने के कारण वे निर्ग्रन्थ तथा उनके सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

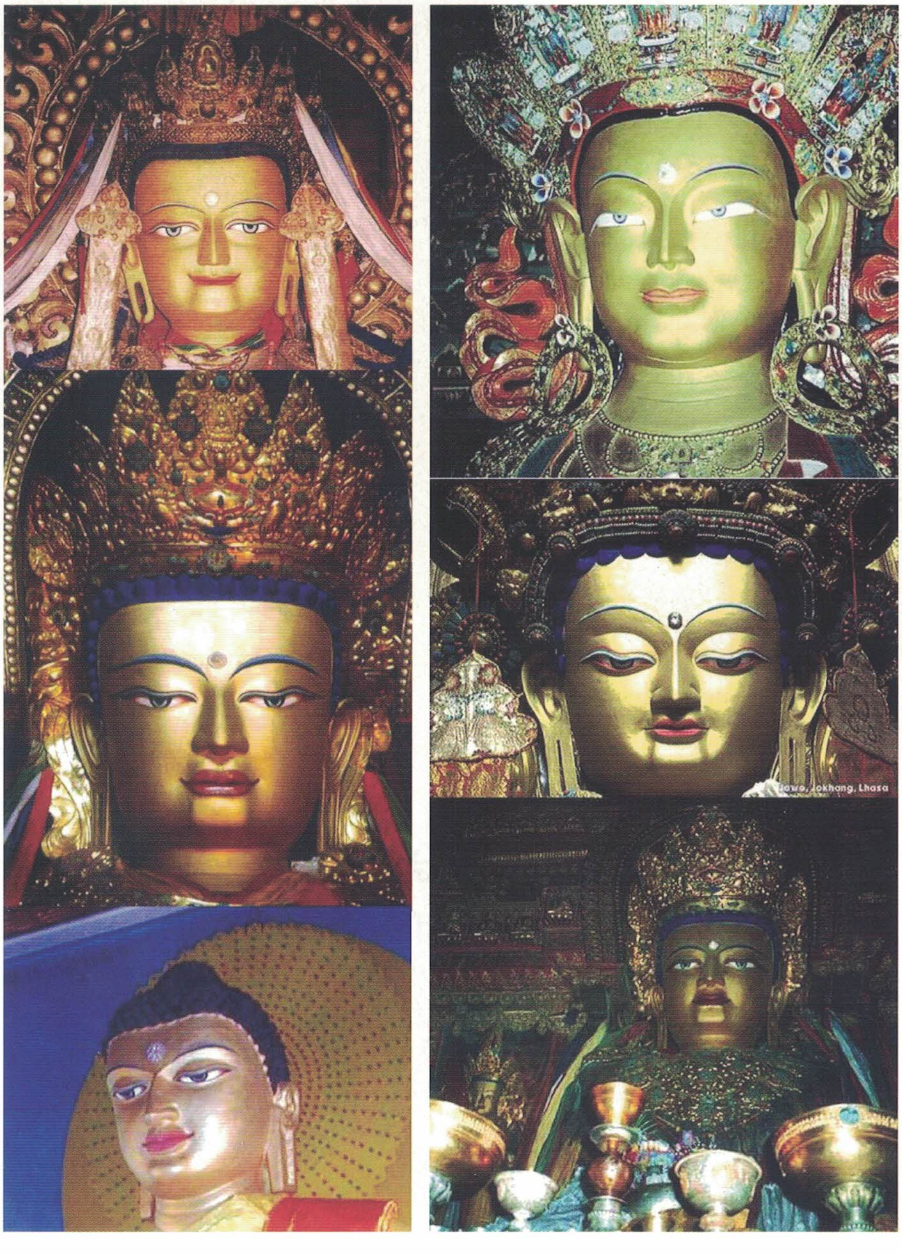

गाथा: अवज्जे वज्जमतिनो, वज्जे चावज्जदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 318।।

अर्थ: जो अदोष में दोष बुद्धि रखते हैं और दोष में अदोष दृष्टि रखते हैं, ऐसे लोग मिथ्या दृष्टि के कारण दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

मिथ्यादृष्टि वाला दुर्गति पायेगा
तैर्थिक शिष्यों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय की बात है। बुद्ध के उपासकों के पुत्र किसी अन्य सम्प्रदाय के उपासकों के पुत्रों के साथ खेल रहे थे। उनके माता-पिता ने उन्हें खेलते हुए देखा। जब वे घर लौटे तब अन्य सम्प्रदाय के उपासकों ने अपने बच्चों को सावधान किया, "तुम शाक्यमुनि के भिक्षुओं को कभी प्रणाम न करना और न ही कभी उनके विहार जाना।" उन्होंने अपने बच्चों को इस बात की शपथ दिला दी।

एक दिन ये बालक जेतवन के मुख्य द्वार के बाहर खेल रहे थे। गर्मी का दिन था। उन्हें प्यास लग गई। पानी पीने के लिए उन्होंने इधर-उधर देखा तो उन्हें जेतवन विहार छोड़ और कुछ भी नजर नहीं आया। प्यास तो प्यास होती है। यह जात-पात, ऊँच-नीच, धर्म-वर्ण नहीं देखती। लड़के इस बात को भूल गए कि उन्होंने अपने माता-पिता को प्रण दे रखा था कि वे कभी भी विहार में नहीं जायेंगे। दोस्तों ने एक लड़के को समझाकर अंदर भेजा, "तुम अंदर जाओ। खुद वहीं पानी पी लेना और हम लोगों के लिए पानी लेते आना।" लड़के ने वैसा ही किया। वह जेतवन विहार के अंदर चला गया।

लड़के के कर्म का प्रारब्ध देखिए ! उसे अंदर प्रवेश करते ही शाक्य-मुनि के भव्य स्वरूप के दर्शन होते हैं। जैसे लोहा चुम्बक के पास खींचा चला जाता है, वह लड़का भी तथागत के पास पहुँच जाता है तथा जगत्राता से पीने के लिए पानी माँगता है। जिसने जीवन पर्यन्त लोगों की आध्यात्मिक भूख मिटाई हो वह पानी तो पिलायेगा ही ! बुद्ध उसे पानी पिलाते हैं। दोनों में मित्रता का भाव पैदा हो जाता है। लड़का बताता है कि उसके माता-पिता ने उसे विहार में आने से मना कर रखा है। बुद्ध इस बात पर ध्यान नहीं देते और उस बच्चे से कहते हैं, "अपने मित्रों को भी लेकर आओ और यहीं पर जितना मन हो, पेट भर कर पानी पियो।"

शास्ता और उस बालक में मैत्री सम्बन्ध बन चुका है। मैत्री दो हाथों से बजने वाली ताली की तरह होती है। सभी मित्र बुद्ध के सम्बन्ध में सुनकर बहुत प्रभावित होते हैं।

जो लड़का विहार में गया था वह पहले प्रवेश करता है, फिर उसके पीछे उनकी पूरी मित्र मंडली। वे सभी भी बुद्ध के मुख पर मैत्री, करुणा, प्रेम एवं दया भाव देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। पानी पीते हैं, प्यास बुझाते हैं पर वापस खेलने नहीं जाते। आन्तरिक प्यास बुझाने के लिए वहीं रुक जाते हैं।

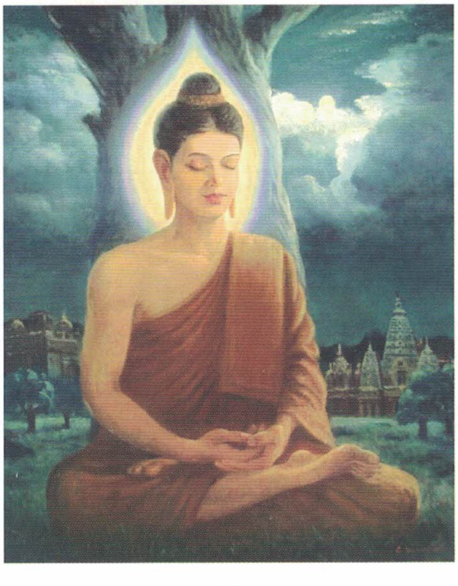

गाथा: वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा, अवज्जञ्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं।। 319।।

अर्थः जो दोष को दोष जानते हैं और अदोष को अदोष जानते हैं। ऐसे सम्यक दृष्टि वाले पुरुष सुगति को प्राप्त होते हैं।

सम्यक दृष्टि वाला सुगति पायेगा
तैर्थिक शिष्यों की कथा

तथागत बच्चों को उनके अनुरूप धर्म कथा सुनाते हैं। उनके जैसा महान शिक्षक तो इस धरती पर आजतक पैदा नहीं हुआ। याद करें कि उन्होंने अपनी चेतना को किस निम्न स्तर तक पहुँचाया था ताकि वह किसा गोतमी को उसकी ही भाषा में, उसी के स्तर पर त्रिरत्न की शिक्षा दे सकें।

बच्चे धर्म प्रवचन सुनते हैं। त्रिरत्न और पंचशील में स्थित हो जाते हैं। मुदित मन से घर जाते हैं और खूब प्रेम से अपने अनुभव सुनाते हैं। उनकी बात सुनकर उनके माता-पिता अपना सिर पीट लेते हैं। वे अपने पड़ोसियों के पास जाकर विलाप करते हैं, "हमारे बच्चों की मति भ्रष्ट हो गई। वे धर्मविरोधी हो गये।" सभी मिलकर बच्चों की सोच बदलने की कोशिश करते हैं। पर उनका मन पक्के रंग से रंगे वस्त्र की तरह हो गया है। कितना भी धोओ, रंग उतरता ही नहीं।

सभी अभिभावक मिलकर राय करते हैं, "हम सभी एक साथ श्रमण गौतम के पास चलेंगे। उससे कह देंगे कि तुम अपनी शिक्षा इनसे वापस लो और अगर ये बालक उससे भी नहीं बदले तो हम इन्हें श्रमण गौतम को ही दे देंगे। इस प्रकार सभी बच्चों के माता-पिता अपने विशाल परिवारों को इकट्ठा कर जेतवन विहार गये।

शास्ता ने उनकी बातें सुनी और सबों को धर्म में प्रतिष्ठित करने के लिए ये दो गाथायें कहीं।

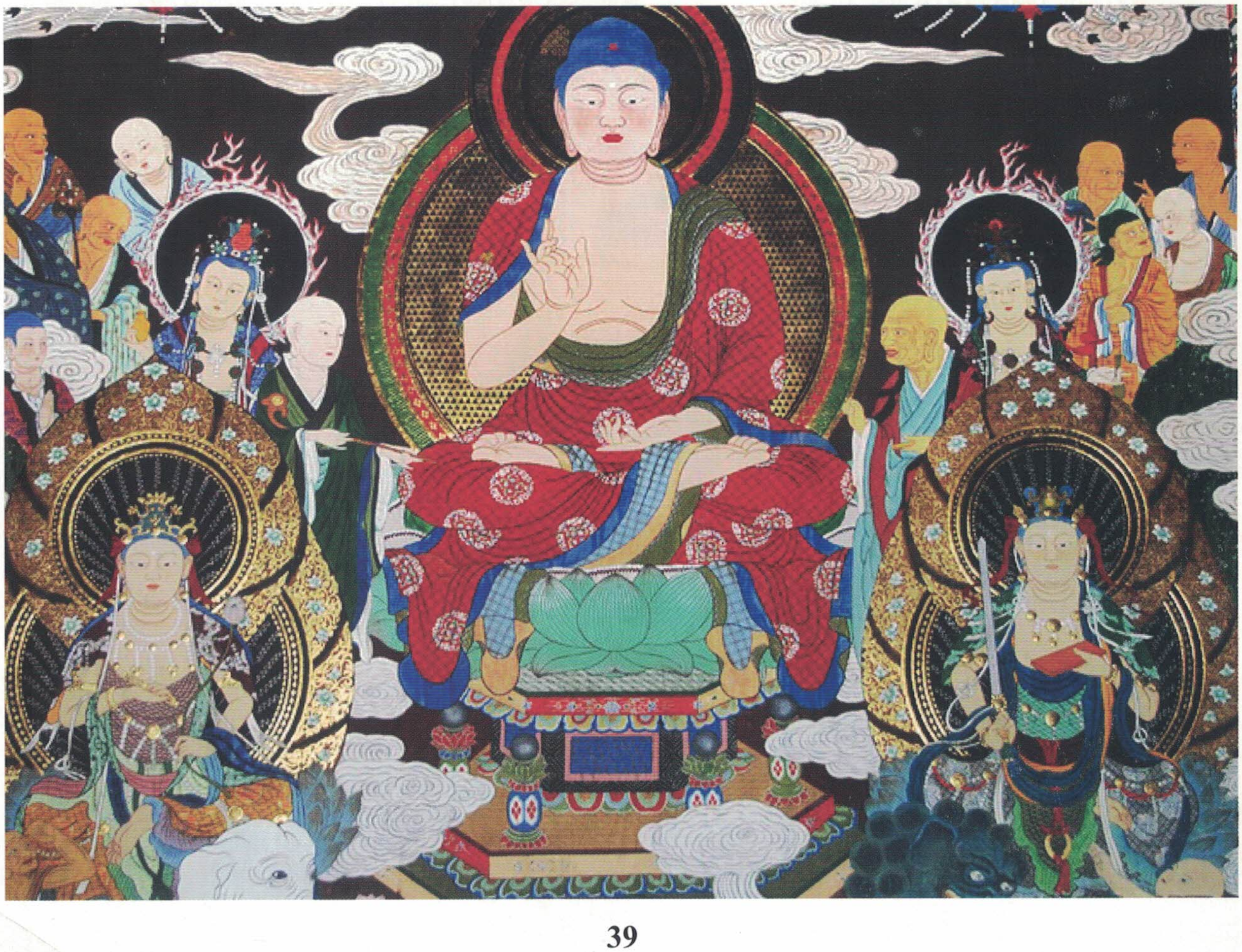

DHAMMAPADA
NIRAYA VAGGA

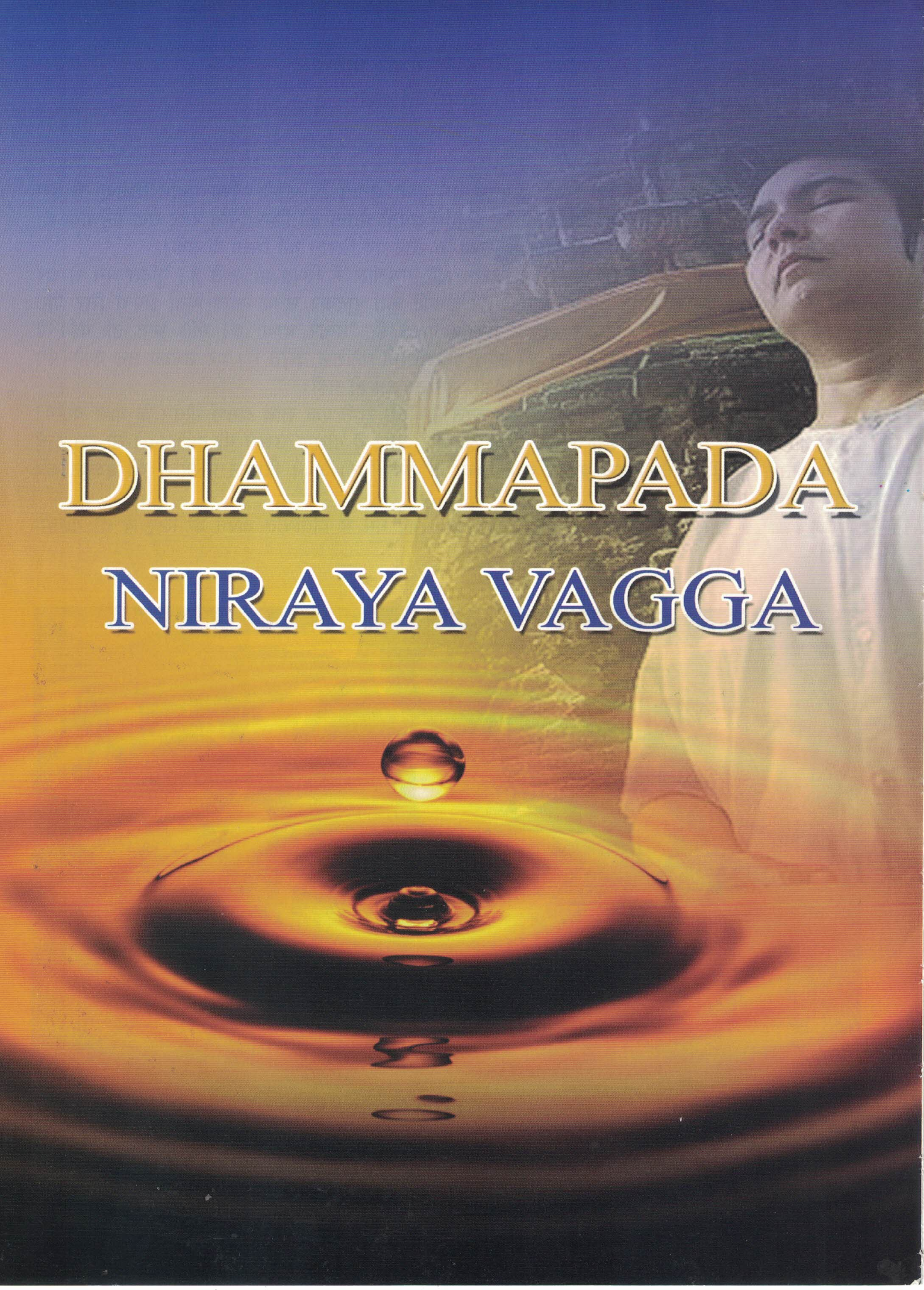

सर्वश्रेष्ठ कौन है ?

धम्मपद

नाग वर्ग

गाथा और कथा

सर्वश्रेष्ठ कौन है ?

धम्मपद

नाग वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

नाग वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	आत्म दमन की कथा	320	जैसे हाथी वाण को सहता है, वैसे ही कटु–वाक्य सहें	45
2.	आत्म दमन की कथा	321	आत्म – दमन करने वाला सर्वश्रेष्ठ होता है	47
3.	आत्म दमन की कथा	322	आत्म नियंत्रण ही सबसे कठिन साधना है	49
4.	महावत भिक्षु की कथा	323	सुदान्त ही निर्वाण तक पहुँच सकेगा	51
	किसी ब्राह्मण के चार पुत्रों की कथा	324	माता–पिता की सेवा : सर्वश्रेष्ठ सेवा	53
6.	कोशलराज की कथा	325	भोजन में भी संयम जरूरी है	55
7.	सानु सामनेर की कथा	326	मन और बहके हाथी को अंकुश से अनुशासित करना समान है	57
8.	बुद्धरेक हाथी की कथा	327	पंकमय संसार से अपने को उभारो	59
9.	पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा	328	परिपक्व बुद्धि वाला : सर्वश्रेष्ठ सहयात्री	61
10.	पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा	329	कब अकेला विचरें ?	63
11.	पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा	330	अनासक्त हो, अकेले ही विचरें	65
12.	मार की कथा	331	सबसे सुखदायी : सारे दुःखों का नाश	67
13.	मार की कथा	332	सबसे सुखदायी : निष्पाप होना	69
14.	मार की कथा	333	क्या सुखदायी है ?	71

गाथा: अहं नागोव संगामे, चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं, दुस्सीलो हि बहुज्जनो।।320।।

अर्थ: जैसे लड़ाई में हाथी धनुष के वाण को सहता है, वैसे ही मैं कटु-वाक्यों को सहूँगा क्योंकि संसार में दुर्जन लोग अधिक हैं।

जैसे हाथी वाण को सहता है, वैसे ही कटु-वाक्य सहें
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

कहते हैं कि प्रतिशोध की ज्वाला अगर नारी के अन्दर उत्पन्न हो जाए तो उसके सामने ज्वालामुखी को भी शीतल ही मानना चाहिए। बौद्ध काल में एक चरित्र आता है- मागन्दिय का। वह सुन्दरता की प्रतिमूर्ति थी। उसके माता-पिता ने बुद्ध को गृहस्थ बनाना चाहा, उससे विवाह रचाना चाहा। पर तथागत ने उन्हें समझाया, "जब मार की सभी पुत्रियाँ मिलकर भी मुझे मोहित नहीं कर सकीं तो इस कूड़े के बर्तन में क्या रखा है जिसे बाहर से मात्र रंग दिया गया है ? "

विधि की भी क्या विडंबना है ? एक ही चाकू से किसी की हत्या कर दी जाती है और उसी चाकू से शल्य चिकित्सा करके किसी घाव की पीड़ा से मुक्ति ! बुद्ध के वचन मागन्दिय के माता-पिता के ऊपर तो अमृत तुल्य पड़े और उन्होंने अनागामी फल प्राप्त कर लिया। पर मागन्दिय ने विष वृक्ष उगाया, जो पुष्पित हुआ, पल्लवित हुआ, मागन्दिय ने उस विष वृक्ष के फल काटे, फल खाये।

गाथा: दन्तं नयन्ति समितिं, दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु, योतिवाक्यं तितिक्खति।। 321।।

अर्थ: दान्त (शिक्षित हाथी) का युद्ध में इस्तेमाल होता है, दान्त पर राजा चढ़ता है। मनुष्यों में भी दान्त (अपना दमन किया हुआ) श्रेष्ठ कहलाता है क्योंकि वह दूसरों के कटु वचनों को सह लेता है।

आत्म-दमन करने वाला सर्वश्रेष्ठ होता है
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

समय का चक्र चलता है। मागन्दिय का विवाह राजा उदयन के साथ हो जाता है। अपनी सौतन सामावती के माध्यम से वह बुद्ध से बदला नहीं ले पाती है। सोचती है कि पैसे देकर कुछ भाड़े के टट्टू का इस्तेमाल क्यों न करूँ ? इसलिए पैसों का लालच देकर वह कुछ लोगों को प्रशिक्षित करती है कि वे नगर में जायें तथा सभी जगह बुद्ध और उनके संघ के प्रति झूठी अफवाहें फैलायें ताकि लोगों के मन में उनके प्रति घृणा भाव पैदा हो जाए और उनकी बेइज्जती होने लगे। इन अपशब्दों को सुनकर वे निश्चय ही नगर छोड़कर चले जायेंगे। अतः कहना प्रारंभ कर दो, 'तू चोर है', 'तू मूर्ख है', 'तू अज्ञानी है', 'तू लुटेरा है', 'तू ऊँट है', 'तू बैल है', 'तू पशु योनि में गिरेगा', 'तेरी सुगति कभी नहीं होगी, तेरी दुर्गति होगी' आदि-आदि। इस प्रकार के अपशब्दों का इस्तेमाल कर वे भाड़े के टट्टू शास्ता और भिक्षु संघ को निरंतर अपमानित करने लगे। अपमान के शब्दों को सुन-सुनकर भन्ते आनन्द के कान पक गए। वे अब कोई अपशब्द सुनने की स्थिति में नहीं थे। अतः शास्ता के पास गए तथा निवेदन किया, "भन्ते ! यहाँ के नागरिक हमारे ऊपर आक्रोश प्रकट कर रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं। इस नगर के निवासी सभ्य और अच्छे नहीं है। यह नगर हम लोगों के रहने लायक ठीक नहीं है। सभी भिक्षु, भिक्षुणी त्रस्त हैं, झुंड के झुंड लोगों की टोली हमारे पीछे चलती है और हमें भला-बुरा कहती है। सभी जगह तमाशा होने लगता है। मेला लग जाता है। चलते लोग, सड़क पर खड़े होकर हमें देखने लगते हैं। आपका संदेश है कि सदा शांति बनाकर रखो, संयमित रहो, उद्विग्न मत होवो। हम आपकी आज्ञा का पालन करके धैर्य बनाकर रह रहे हैं पर अब पानी सर के ऊपर से बह रहा है। अतः मेरा सुझाव है कि हम इस नगर को छोड़कर कहीं और चलें।"

गाथा: वरमस्सतरा दन्ता, आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा, अत्तदन्तो ततो वरं।। 322।।

अर्थ: सुशिक्षित खच्चर, सिंधु देश के सुशिक्षित घोड़े, तथा सुशिक्षित घोड़े ही श्रेष्ठ कहलाते हैं। पर इन सब से भी श्रेष्ठ होता है आत्मनियंत्रक साधक।

आत्म नियंत्रण ही सबसे कठिन साधन है
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

शास्ता ने पूछा, "कहाँ चलोगे ? " "किसी दूसरे नगर।" "वहाँ के लोगों ने भी यदि इसी प्रकार का आक्रोश किया, अगर वहाँ भी परिस्थितियाँ ऐसी ही रहीं तो फिर क्या करोगे ? वहाँ से फिर कहाँ चलोगे ? " "किसी तीसरे नगर।" "और वहाँ की परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं हुईं तो ? " "तो फिर किसी अन्य नगर चलेंगे।" शाक्य मुनि ने समझाया, "कहाँ-कहाँ जाते रहोगे, आनन्द ? जहाँ पर समस्या खड़ी हुई है वहीं पर उसका समाधान खोजने का प्रयास करो और अगर कहीं चलने का ही तुम्हारा सुझाव है तो फिर विवाद के शांत होने और स्थिति सामान्य होने पर ही जाना उपयुक्त होगा।" शास्ता ने आनन्द से एक बार पुनः पूछा, "आनन्द ! ये आक्रोश कौन करते हैं ? " आनन्द ने उत्तर दिया, "दास-दासी और सभी जन, क्रोध प्रकट करते हैं।" शास्ता ने समझाया, "आनन्द ! ऐसा किसी भी जगह हो सकता है। अतः युद्धभूमि के हाथी के समान बनो। जैसे युद्ध में उतरा हुआ प्रशिक्षित हाथी भाले, बर्छे आदि की चोट को सहन करता है और सहनशीलता का परिचय देता हुआ अपने ऊपर पड़ने वाले वाणों के प्रहार को निर्भीकता बर्दाश्त करता है, मैं उसी प्रकार इन दु:शील व्यक्तियों द्वारा कहे गए कटु वचनों को सहूँगा और अपना धैर्य नहीं खोऊँगा। कटु वचन कहने वाले नागरिक भले ही अति दुष्ट हों, जो चाहते हों वे बोल रहे हों पर उन बातों को स्वीकार या अस्वीकार करना मेरा कर्त्तव्य है। मैं जानता हूँ कि सत्य क्या है। अतः उनके मिथ्या वचनों से विचलित नहीं होऊँगा।"

"मनुष्यों में जो चार आर्य सत्यों की साधना करता है वह सुशिक्षित, निर्दोष पुरुष श्रेष्ठ कहलाता है। अपशब्दों का बार-बार व्यवहार किये जाने पर भी वह उन्हें सहता है, उत्तर नहीं देता।"

यह कहकर शास्ता ने ये तीन गाथायें कहीं।

गाथा: न हि एतेहि यानेहि, गच्छेय्य अगतं दिसं।
यथात्तना सुदन्तेन, दन्तो दन्तेन गच्छति।। 323।।

अर्थ: इन यानों (हाथी, घोड़ा आदि) से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता। जिसने अपने आप का दमन कर लिया है वही सुदान्त (श्रेष्ठ ढंग से प्रशिक्षित) वहाँ पहुँच सकता है।

सुदान्त ही निर्वाण तक पहुँच सकेगा
महावत भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अचिरावती (राप्ती) नदी का किनारा। कुछ भिक्षुगण नदी किनारे खड़े थे। देख रहे थे एक महावत को एक हाथी को अनुशासित करते हुए। वह महावत हर प्रकार की कोशिश कर रहा था कि हाथी को वश में कर ले पर सफल नहीं हो पा रहा था। भिक्षुओं में एक भिक्षु ऐसा भी था जो पूर्व जन्म में एक महावत था। उसने महावत को बताया, "अगर तुम अमुक जगह पर बर्छी से मारोगे तो उसका असर होगा और हाथी तुम्हारे वश में आ जाएगा।" महावत ने ऐसा ही किया और हाथी अनुशासित हो गया। महावत ने हाथी को वशीभूत रखने का मंत्र सीख लिया।

बात शाक्य-मुनि तक पहुँची। उन्होंने उस भिक्षु को बुलाकर समझाया, "भिक्षुओं ! इन सवारियों (अर्थात् हाथियों) को अनुशासित और प्रशिक्षित करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। सच्चा लाभ तो अपने आप को अनुशासित और प्रशिक्षित करने से प्राप्त होगा। इसलिए सांसारिक गज को वश में करने की बजाय अपने आप को वश में करो। यदि निर्वाण की प्राप्ति करनी है तो अपना दमन किये बिना, अपने आप को वश में किये बिना यह कदापि संभव नहीं है। इन साधारण यानों, हाथी-घोड़ों आदि से, स्वप्न में भी, गलती से भी, उस अगत, अगम्य स्थान, निर्वाण, तक नहीं पहुँच सकोगे। वहाँ पहुँचने के लिए पहले इन्द्रियों का दमन करो और फिर आर्यमार्ग की साधना करो ताकि अपने आप को भली-भांति संयमित कर निर्विकार चित्त वाले हो सको। तभी निर्वाण तक पहुँच सकोगे। आत्म निग्रह से बढ़कर दुनियाँ में और कोई चीज नहीं है।"

गाथा: धनपालो नाम कुञ्जरो, कटुकभेदनो दुन्निवारयो।
बद्धो कबळं न भुञ्जति, सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो।।324।।

अर्थ: तीक्ष्ण मदवाला होने के कारण सेना को तितर-बितर करने वाला, किसी के वश में न आने वाला, धनपालक नाम का हाथी बंधन में बँध जाने पर एक कौर भी भोजन नहीं करता है, सिर्फ हाथियों से भरे अपने पुराने वन को ही याद करता है।

माता-पिता की सेवा : सर्वश्रेष्ठ सेवा
किसी ब्राह्मण के चार पुत्रों की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी ब्राह्मण रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा होने लगा तब उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। अपने बच्चों के कहने से उसने अपनी सारी सम्पत्ति उनमें बाँट दी, पर सम्पत्ति मिलने के बाद उसके पुत्र और पुत्र वधुएं उसका तिरस्कार करने लगीं। उसे बहुत दुःख हुआ और उसने शास्ता को अपना दुखड़ा सुनाया।

शास्ता ने उसे कुछ गाथाएं याद कर लेने के लिए कहा और समझाया कि जब ब्राह्मण समाज बैठा हो और उसमें उसके चारों पुत्र भी बैठे हों तब वह इन गाथाओं को सुनाए। उसने वैसा ही किया जैसा शास्ता ने समझाया था। गाथाओं का संदेश था, "जिनके जन्म पर हमने हर्ष मनाया था, जिनकी सदैव उन्नति चाहते रहे, उन्हीं पुत्रों ने अपनी पत्नियों के बहकावे में आकर हमें घर से उसी प्रकार बाहर निकाल दिया जैसे कुत्ता सूअर को घर से बाहर निकाल देता है। जिनके जन्म के लिए हमने देवताओं से मिन्नतें माँगी, जीवन पर्यन्त जिन्हें पुत्र कहकर पुकारा, वे आज राक्षस रूप बन मेरे वृद्ध होने पर मुझे घर से बाहर खदेड़ रहे हैं। जैसे बूढ़ा होने पर लोग घोड़े को पर्याप्त मात्रा में घास नहीं देते, उसी प्रकार बालकों का पिता होने पर भी मुझे भिक्षाटन से जीवन यापन करना पड़ता है।"

गाथा सुनते ही चारों पुत्र पिता के पैरों पर गिर पड़े और माफ कर देने के लिए कहा। वृद्ध पिता ने पुत्रों को माफ कर दिया। अब वे पिता की सेवा करने लगे। एक दिन पुत्रों ने शास्ता को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया और भोजनोपरान्त उन्हें बताया कि अब वे हृदय से पिता की सेवा कर रहे थे। बुद्ध ने उन्हें समझाया, "ऐसा कर तुम अपना ही कल्याण कर रहे हो। पुराने पंडितों ने भी माता-पिता की सेवा करना पुत्र का कर्त्तव्य बताया है।" इसके बाद उन्होंने धनपाल नामक हाथी की कथा सुनाई।

काशीराज के गजशिक्षक द्वारा पकड़े जाने पर उस हाथी को सुसज्जित हाथीशाला ले जाया गया। वहाँ वह राजा द्वारा लाए गए स्वादिष्ट भोजन का एक कौर भी नहीं लेता था। वह 'मुझे केवल मेरा वास स्थान नागवन ही अच्छा लगता है'- यही सोचता था, मात्र इसी का स्मरण करता था। वह सोचता, "मेरी माता पुत्र वियोग में तड़प रही होगी। माता-पिता की सेवा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य था जिसे करने में मैं असमर्थ हूँ। यह धर्म तो सिर्फ नागवन में ही रहकर सम्पादित किया जा सकता था। तो फिर मेरा अकेला भोजन करना कैसे उचित कहा जा सकता है ? " यह शास्ता के किसी पूर्व जन्म की कथा थी। शास्ता ही वह गजराज थे। लोगों ने इसे सुना तो उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। लोगों का हृदय द्रवित हो गया।

गाथा: मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो।। 325।।

अर्थ: आलसी आदमी अधिक खाने वाला हो जाता है, निद्रा अभिभूत होकर करवट बदल-बदल कर सोने की चेष्टा करता है, वह दाना खाकर पुष्ट हुए मोटे सूअर के समान होता है। वह मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में पड़ता है।

भोजन में भी संयम जरूरी है
कोशलराज की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन कोशलराज ने पेट भरकर खाना खाया और शास्ता का उपदेश सुनने जेतवन विहार पहुँच गया। उसे नींद आने लगी। वह तन्द्रा से व्याकुल था। सरलता से लेटने की सुविधा न मिली। अतः एक ओर बैठ गया। शास्ता ने पूछा, "राजन ! आज भोजन के बाद बिना विश्राम के ही आ गये क्या ? " "हाँ भन्ते ! इसी कारण मुझे आज भोजन के बाद अधिक पीड़ा हो रही है।" शाक्य मुनि ने समझाया "अधिक भोजन करने से इसी प्रकार की पीड़ा होती है।" तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो।।326।।

अर्थः पहले यह मेरा मनमाना चित्त जिधर चाहता था उधर चला जाता था। उसे आज मैं अच्छी तरह वैसे ही वश में लाऊँगा जैसे एक महावत अंकुश से बहके हुए हाथी को वश में लाता है।

मन और बहके हाथी को अंकुश से अनुशासित करना समान है
सानु सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती की एक उपासिका ने बहुत प्रेम से अपने पुत्र को प्रव्रजित किया। उसका नाम सानु सामनेर पड़ा। वह प्रवचन देने में कुशल था। जब भी प्रवचन देता तो कहता, "इन प्रवचनों से मैंने जो भी पुण्य फल प्राप्त किया है, वह मेरे माता-पिता को मिले।" उसकी पूर्व जन्म की माँ इस जन्म में यक्षिणी होकर पैदा हुई थी। उसे भी वह पुण्यफल मिला तथा देवों एवं यक्षों में वह सम्मान पाने लगी। सानु को यह मालूम नहीं था कि उसकी पूर्व जन्म की एक माता यक्षिणी बनकर इस जीवन में पैदा हुई है।

जब सानु के अन्दर इन्द्रियों का विकास हुआ तो उसमें कामवासना जागने लगी। वह अपनी माँ के पास गया और माता से गृहस्थ के कपड़े देने के लिए कहा। उसकी माँ ने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं माना। उसकी यक्षिणी माँ यह सब देख रही थी। वह नहीं चाहती थी कि उसका पुत्र गृहस्थी के जंजाल में फँसे। अत: उसकी यक्षिणी माँ ने उसको वश में कर लिया। वह आंगन में जा गिरा, मिर्गी आ गई, मुँह से झाग निकलने लगा, लोटने लगा। हर आदमी ने तरह-तरह से ईलाज किया पर वह ठीक नहीं हुआ। उससे कहा गया कि अगर वह धर्म का पालन करेगा तब ठीक हो जा सकता है, अन्यथा वह बच नहीं पाएगा। "ऐसा पापकर्म कर पक्षियों की तरह उड़कर भागने पर भी तुमको मुक्ति नहीं मिलेगी।" सानु को बात समझ में आ गई और साथ ही साथ उसे होश भी आ गया।

तब इस जन्म की उसकी माँ ने उसे समझाया, "प्रव्रजित के लिए गृहस्थ धर्म में वापस आना गरम राख या नरक में गिरने के समान है। नरक का द्वार खुला है और तुम उसमें गिरना चाहते हो। हम तो तुम्हें गृहस्थ की आग से बचाना चाहते थे। अत: तुम्हें प्रव्रजित किया था, अब तुम जलते हुए घर में वापस आकर जलना चाहते हो। 'भन्ते ! दौड़ो बाहर भागो' यह बात अब हम किसको कहें ? तुम तो फेंके गये सामान की तरह घर में फिर आकर जलना चाहते हो।"

सानु को अपने किये पर बहुत दु:ख हुआ। वह विहार वापस आ गया। शाक्य मुनि को यह बात बताई गई। तब उन्होंने यह गाथा कही।

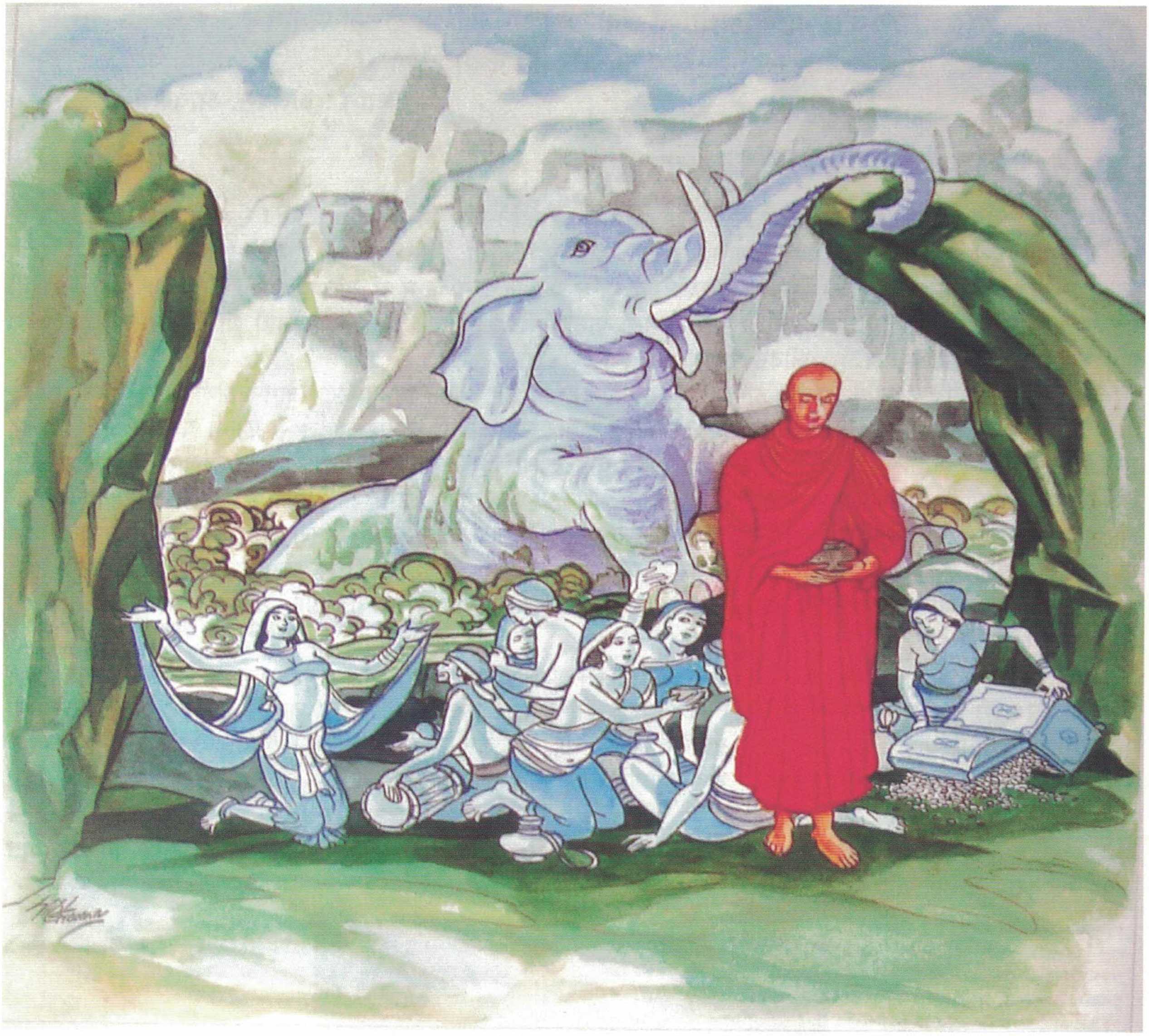

गाथा: अप्पमादरता होथ, सचित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं, पंके सन्नोव कुञ्जरो।। 327।।

अर्थ: तुम अप्रमाद में स्थित हो जागरूक, सावधान रहो। अपने मन को संभाल कर रखो। पंक (कीचड़) में फँसे हाथी की तरह अपने आप को इस कठिन संसार पंक (राग, क्लेश आदि) से निकालो और निर्वाण की धरती पर स्थित हो जाओ।

पंकमय संसार से अपने को उभारो
बुद्धरेक हाथी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोसलराज के पास बुद्धरेक (पावेयक) नाम का एक महा बलवान हाथी था। उसके साथ राजा ने अभी तक युद्ध में कभी भी मुँहकी नहीं खाई थी। कोई भी धन देकर बहुत सारे राजा-महाराजा उसे खरीदना चाहते थे पर वह राजा को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा था। वह किसी भी कीमत पर उसे बेचने को तैयार नहीं था।

कुदरत का नियम ! हाथी बूढ़ा हुआ। उसकी शक्ति क्षीण हो गई। अब वह शक्तिशाली नहीं रहा। एक दिन वह तालाब में स्नान करने गया और दलदल में फंस गया। वह इतना कमजोर हो गया था कि बहुत परिश्रम करने पर भी अपने को कीचड़ से बाहर नहीं निकाल सका। राजा ने भी पूरा प्रयत्न करवाया, पर वह कीचड़ में ही फँसा रहा। लगता था कि अब हाथी कीचड़ में ही मर जाएगा। किसी को कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। अचानक राजा को पावेयक के पुराने महावत की याद आ गई। उसने उसे बुला लिया। शायद वह कुछ कर सके। महावत भी बूढ़ा हो चुका था। त्रिरत्न की शरण में चला गया था। उसने हाथी को देखा, परिस्थिति समझी और उसे एक युक्ति याद आई। राजा से कहकर उस युक्ति को मूर्तरूप दिया।

पास में ही रण भेरी बजाने का प्रबंध किया गया। युद्ध के नगाड़े बजने लगे। दुन्दुभियाँ भी बज उठीं। हाथी को लगा कि युद्ध का समय आ गया है। वह भूल गया कि वह बूढ़ा हो गया है तथा शरीर से कमजोर है। अपनी पूरी शक्ति लगायी और एक ही झटके में कीचड़ से बाहर आ गया। बाहर आते ही वह चिंघाड़ने लगा।

बात खतम हो गई। भिक्षुओं को इस बात का पता चला तो उन्होंने शाक्य-मुनि के सामने यह सारी बात बताई।

शास्ता ने उन्हें समझाया, "हाथी ने सांसारिक कीचड़ से अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपना उद्धार किया। तुम भी क्लेशों के दलदल में फँसे हुए हो, दुःख की जंजीरों में जकड़े हुए हो। अपनी पूरी शक्ति लगाकर, सूक्ष्म ध्यान-साधना के द्वारा अपना उद्धार और कल्याण करो।"

ऐसा कहते हुए तथागत ने इस गाथा के माध्यम से यह उपदेश दिया।

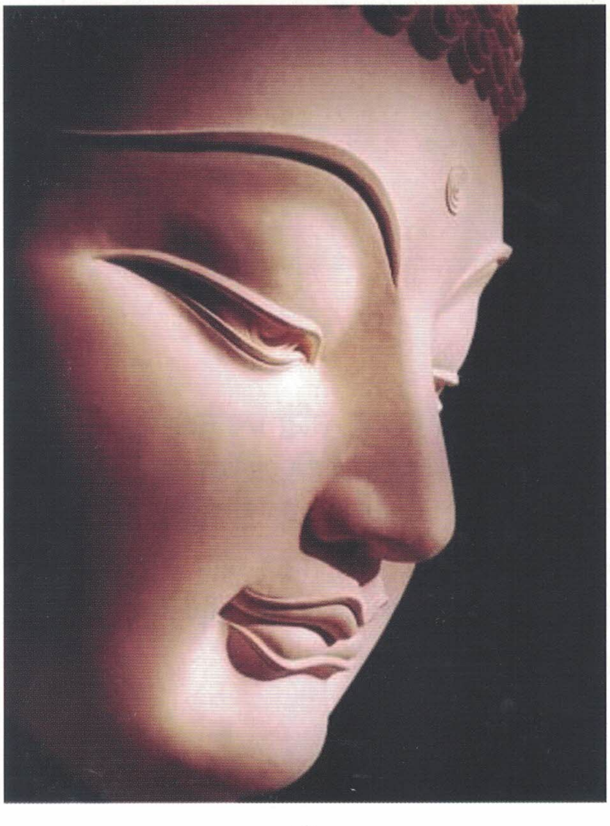

गाथा: सचे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा।।328।।

अर्थ: यदि किसी को साथ चलने के लिए परिपक्व बुद्धि वाला सद्‌चरित्र, बुद्धिमान साथी मिल जाए तो उसे सारी परेशानियों को ताक पर रखकर प्रसन्नचित और स्मृतिमान होकर उसके साथ विचरण करना चाहिए।

परिपक्व बुद्धि वाला : सर्वश्रेष्ठ सहयात्री
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : पारिलेयक

कौसाम्बी में एक बार तथागत ने विहार त्याग दिया क्योंकि भिक्षुगण आपस में कलह में भिड़ गए। शास्ता ने उन्हें बहुत समझाया पर उन्होंने अपना कलह शांत नहीं किया। वर्षाकाल था, शाक्य मुनि विहार छोड़कर पालिलय्येका के उपवन में रक्खित गुफा में चले गए। वहाँ नागराज (हाथी) परम श्रद्धा से उनकी सेवा करता रहा। नागराज उनके लिए फल, फूल, जल आदि लाया करता था। "युग्म वर्ग" की गाथा 6 में भी इसका वृतान्त आ चुका है।

वह हाथी वन में अपने दल-बल के साथ रहता था। स्नान करता था। हथिनियाँ उससे स्पर्श सुख प्राप्त करती थीं, उसके आगे पीछे रहती थीं, साथ-साथ चलती थीं। उसे सभी प्रकार का सुख प्राप्त था पर वह जीवन से पूरी तरह ऊब चुका था। वह एकान्त चाहता था। अतः विचार करने लगा, " इस समूह के साथ इस प्रकार विहार-विचरण करने में मुझे कष्ट होता है। क्यों न मैं इन हाथियों के झुंड को छोड़कर अकेला ही विचरण किया करूँ ?" यह विचार कर उस हस्तिसमूह को छोड़ वह वन में अकेला ही रहने लगा, एकाकी जीवन व्यतीत करने लगा।

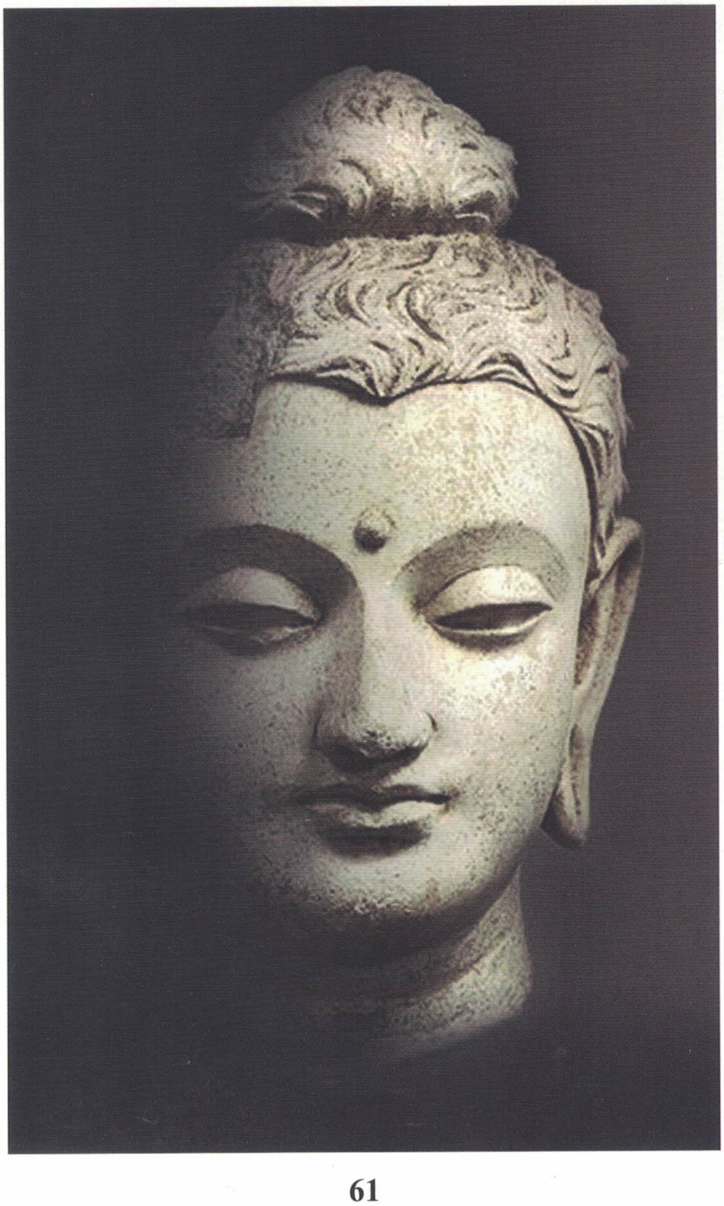

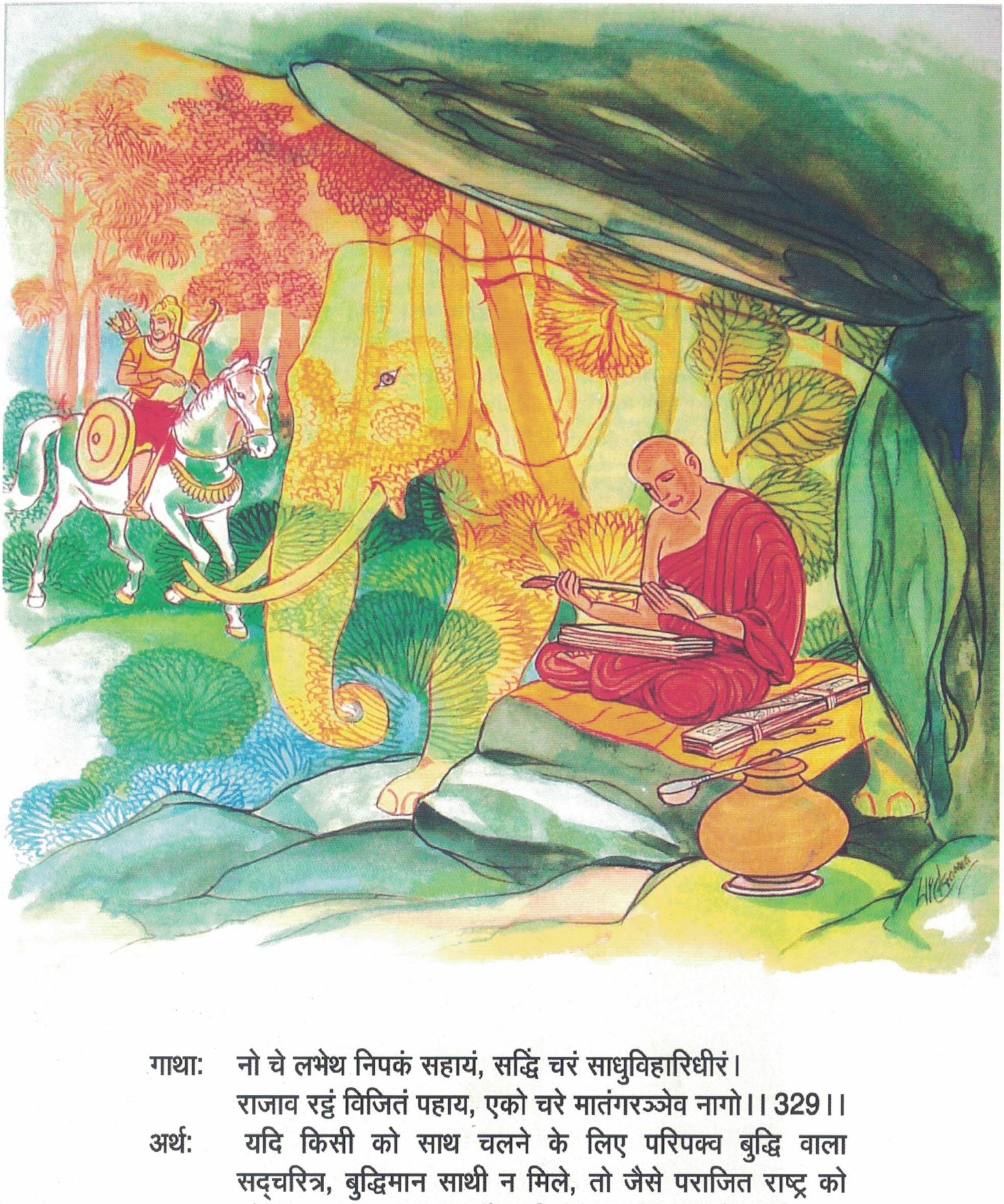

गाथा: नो चे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजाव रट्ठं विजितं पहाय, एको चरे मातंगरञ्ञेव नागो।। 329।।

अर्थ: यदि किसी को साथ चलने के लिए परिपक्व बुद्धि वाला सद्‌चरित्र, बुद्धिमान साथी न मिले, तो जैसे पराजित राष्ट्र को छोड़कर राजा या जंगल में हाथी अकेला विचरता है, उसी तरह अकेला विचरे।

कब अकेला विचरें ?
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

हस्तिराज तथागत की सेवा किया करता था, यह बात चारों तरफ फैल गई थी। अनाथपिंडिक, विशाखा आदि को भीतर से यह बात कचोटती थी कि वे बुद्ध की सेवा नहीं कर पा रहे थे। अतः उन्होंने भन्ते आनन्द से आग्रह किया, "भन्ते ! बहुत दिन हो गए, शास्ता के दर्शन कराइये।" इस बीच इधर-उधर से पाँच सौ भिक्षु भी वर्षावास के बाद आ गए। वे भी आग्रह करने लगे कि शास्ता के पास ले चलिए। भन्ते आनन्द उन भिक्षुओं को साथ लेकर जंगल की बाहरी सीमा पर पहुँचे। उन्हें लगा कि शास्ता तीन महीनों से जंगल में अकेले रह रहे हैं तथा एकाएक इतने लोगों की भीड़ लेकर जाना उचित नहीं होगा। अतः बाकी लोगों को जंगल के बाहर ही छोड़कर आनन्द अकेले ही शास्ता के सम्मुख पहुँचे। पारिलेयक भन्ते आनन्द को देखते ही उनकी ओर दौड़ा। उसे आगे बढ़ते हुए देख शास्ता ने उसे रोका। उससे कहा, "पारिलेयक ! रुको, पीछे हटो, इन्हें आने दो ये अपने आदमी हैं।" तब गजराज ने भन्ते आनन्द का भिक्षापात्र लेना चाहा पर उन्होंने अपना भिक्षापात्र उसे नहीं दिया।

भन्ते आनन्द ने शास्ता को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। तब शास्ता ने पूछा, "अकेले ही आए हो, आनन्द ? " "नहीं भन्ते ! और भी भिक्षु तथा अनाथपिंडिक और विशाखा भी साथ-साथ आये हैं।" "वे कहाँ हैं ? " "भन्ते ! आपकी मन:स्थिति की जानकारी नहीं थी। अतः उन्हें साथ नहीं लाया हूँ। उन्हें वन के बाहर ही छोड़ कर आया हूँ।" "उन्हें भी बुला लो।"

गाथा: एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा, अप्पोस्सुक्को मातंगरञ्ञेव नागो।। 330।।

अर्थ: अकेला विचरना अच्छा है पर मूर्ख की मित्रता अच्छी नहीं होती। हस्तिवन में हाथी के समान अनासक्त होकर अकेला ही विचरण करे और पाप न करे।

अनासक्त हो, अकेले ही विचरें
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : पारिलेयक

भिक्षुगण आये और उन्होंने सस्वर कहा, "भन्ते ! आप राजमहल में रहने वाले राजकुमार थे। शरीर से इतने सुकुमार और इन तीन महीनों के वर्षावास में आप अकेले रहे। निश्चय ही आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। आपको तो मुँह धोने के लिए पानी देने वाला भी कोई नहीं था।" बुद्ध ने समझाया, "ऐसा मत कहो भिक्षुगण ! पारिलेयक हाथी ने मेरी सभी प्रकार से सेवा की है। अगर ऐसे मित्र का साथ हो तो एकान्तवास भी आनन्ददायक हो जाता है। अगर ऐसा मित्र न मिले तो एकान्त में अकेला रहना ही अच्छा होता है।"

यदि किसी बुद्धिमान व्यक्ति का साथ हो तो निश्चिन्त हो उस व्यक्ति के साथ स्मृतिवान और प्रसन्न होकर चलना चाहिए। यदि अनुकूल बुद्धि वाला न मिले तो पराजित राजा की तरह पराजित राज्य को छोड़कर हस्तिराज की तरह अकेला ही रहे। उच्चकुलीन पराजित राजा यह सोचेगा, 'इस राज्य में तो विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ हैं, अतः ऐसे राज्य से मुझे क्या लाभ मिलेगा ?' ऐसा सोचकर वह उस राज्य को छोड़कर किसी विशाल वन में प्रवेश कर जायेगा और प्रव्रजित होकर जंगल में अकेला ही वास करेगा।"

"भिक्षु को भी उस हाथी की तरह ही होना चाहिए। जैसे वह सांसारिक चीजों में अनुत्सुक होता है, एक स्थान पर नहीं रहता है और इच्छानुसार विचरण करता है, साधक भिक्षु को भी उसी प्रकार एकाकी विचरण करना चाहिए। उसे थोड़ा भी पाप नहीं करना चाहिए। तुम्हें अगर कोई सही मित्र नहीं मिलता है तो तुम्हें अकेले ही विचरण करना चाहिए।"

ऐसा कहकर उन्होंने ये तीनों गाथाएं कहीं।

गाथा: अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया, तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन।
पुञ्ञं सुखं जीवितसंखयम्हि, सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहानं।। 331।।

अर्थ: काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखदायी है। थोड़ा या अधिक जो कुछ भी मिल जाए उसी से संतुष्ट रहना भी सुखदायी है। जीवन में किया गया पुण्य मृत्यु के उपरांत सुखदायी है। पर सबसे सुखदायी है- सारे दु:खों का नाश।

सबसे सुखदायी : सारे दु:खों का नाश
मार की कथा

स्थान : हिमालय पर्वत

उन दिनों शाक्य मुनि हिमालय की एक अरण्य कुटी में वास कर रहे थे। उस काल के राजा अपनी प्रजा को कठोर दंड देकर राज्य किया करते थे। दया, करुणा नहीं दिखाते थे। कठोर दंड की राजविधि और प्रजा के कष्ट का विचार कर करुणामय बुद्ध ने सोचा, "क्या बिना किसी को दंड दिये या बिना किसी को दंड दिलवाये, बिना किसी पर विजय प्राप्त किये या बिना किसी को विजय दिलवाये शासन चलाया जा सकता है ? क्या राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता जिससे उसकी न्यायप्रियता भी दिखे और वह किसी को कष्ट भी न दे ? "

मार ने शास्ता को इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए देखा। उनके चिंतन को देख दुष्ट मार के मन में आया, "लगता है श्रमण गौतम प्रजा पर राज्य करना चाहते हैं। राजकाज के विषय में सोचना प्रमाद का ही रूप है। अगर ये प्रमाद करते हैं तो निश्चय ही मैं इन्हें साधना से गिरा दूँगा। अच्छा होगा कि मैं इन्हें प्रोत्साहित करूँ ताकि इनके मन में राज्य करने की इच्छा जागृत रहे।" ऐसा विचार कर, शास्ता के पास आकर मार ने बुद्ध से कहा, "हाँ भन्ते ! बिना हिंसा किये या बिना हिंसा कराये, बिना किसी को जीते या जिताये, बिना किसी को चिंता में डाले या डलवाये आप धर्मपूर्वक राज्य कर सकते हैं।"

गाथा: सुखा मत्तेय्यता लोके, अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामञ्ञता लोके, अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा।। 332।।

अर्थ: संसार में माता की सेवा करना सुखदायी है और उसी तरह संसार में पिता की सेना करना भी सुखदायी है। संसार में भिक्षु (श्रमण, संन्यासी) की सेवा करना सुखदायी है और सुखदायी है निष्पाप होना (ब्राह्मणत्व प्राप्त करना)।

सबसे सुखदायी : निष्पाप होना
मार की कथा

शास्ता ने यह सब सुना। वे समझ गये कि मार किस उद्देश्य से उन्हें यह बात कह रहा है। अतः उन्होंने उससे कहा, "दुष्ट मार ! तूने मुझे क्या समझ रखा है जो इस प्रकार की बात करने का दुःसाहस कर रहा है ? तेरी सोच दूसरी है और मेरी दूसरी। पापी ! मुझे तेरी सलाह नहीं चाहिए।" फिर भी मार ने शाक्य-मुनि से कहा, "भन्ते ! आप को ऐसी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है कि आप चाहें तो पूरा का पूरा हिमालय पर्वत भी स्वर्णिम हो सकता है। इससे अपार धन मिलेगा और मैं सारी जरूरतें पूरी कर दूँगा। साथ ही आप धर्मपूर्वक राज्य करते रहेंगे।"

गाथा: सुखं याव जरा सीलं, सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखा पञ्ञाय पटिलाभो, पापानं अकरणं सुखं।। 333।।

अर्थ: बुढ़ापे तक शील का पालन सुखदायी है, अचल श्रद्धा सुखदायी है, प्रज्ञा ज्ञान की प्राप्ति सुखदायी है और सुखदायी है पापों का नहीं करना।

क्या सुखदायी है ?
मार की कथा

यह सुनकर तथागत ने मार को समझाया, "हे दुष्ट ! तुझे समझ में नहीं आएगा कि हिमालय बराबर पूरा सोना या चाँदी मिल जाए तब भी लोगों की तृष्णा तृप्त नहीं होती। विद्वान लोग यह सोच-समझकर ही आचरण करते हैं। साथ ही जिसने जान लिया है कि दु:खों का स्रोत क्या है, वह फिर उन दु:खों के स्रोत- कामभोगों की ओर क्यों आकर्षित होगा ? सांसारिक लाभ तो जकड़ने वाली बेड़ियाँ हैं। बुद्धिमान को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए बल्कि उसे इन्हें त्याग देने का प्रयास करना चाहिए।"

शास्ता ने स्पष्ट करते हुए बताया, "मार ! तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग। तेरी सोच अलग है और मेरी सोच अलग। अत: तेरा और मेरा मिलन संभव नहीं है।"

ऐसा कहते हुए शाक्य मुनि ने ये गाथायें कहीं।

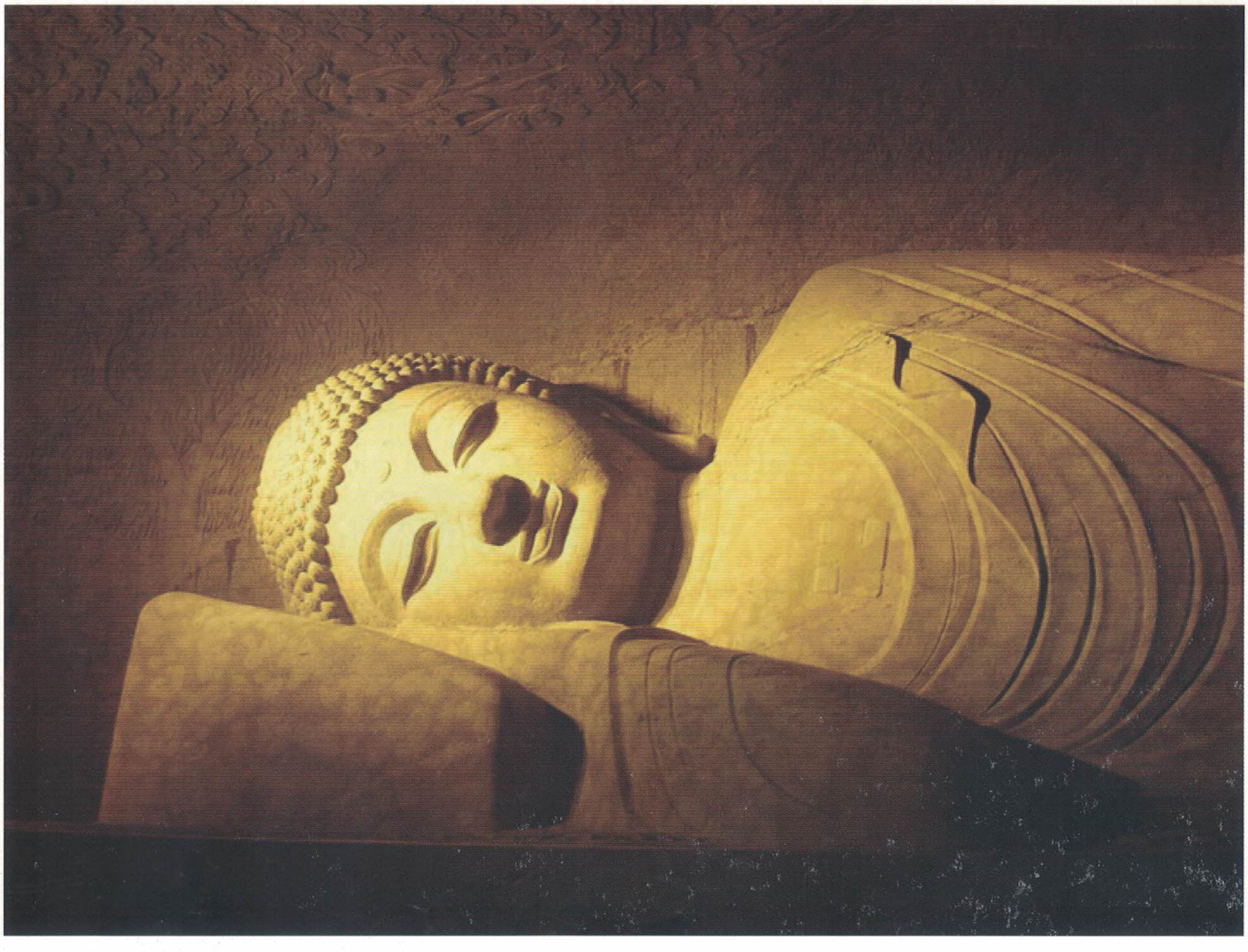

DHAMMAPADA

NAGA VAGGA

तृष्णा जाल से छुटकारा

धम्मपद

तन्हा वर्ग

गाथा और कथा

तृष्णा जाल से छुटकारा

धम्मपद

तन्हा वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

तन्हा वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	कपिल मछली की कथा	334	संसार के भवसागर में बंदर की तरह मत कूदो	79
2.	कपिल मछली की कथा	335	दुःख – शोक का कारण : बिषमयी तृष्णा	81
3.	कपिल मछली की कथा	336	तृष्णा की पराजय : दुःखों का अंत	83
4.	कपिल मछली की कथा	337	तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो	85
5.	सूअर की बच्ची की कथा	338	तृष्णा को जड़ से उखाड़े बिना कल्याण नहीं है	87
6.	सूअर की बच्ची की कथा	339	रागमय संकल्प के जलप्रवाह से बचें	89
7.	सूअर की बच्ची की कथा	340	तृष्णा रूपी लता को जड़ से काट डालो	91
8.	सूअर की बच्ची की कथा	341	भोग : कष्ट, रोग और मृत्यु के जनक हैं	93
9.	सूअर की बच्ची की कथा	342	मन के बंधनों को काट उनसे मुक्त हो जाइए	95
10.	सूअर की बच्ची की कथा	343	वैराग्य की चाह रखते हो ? : तृष्णा को दूर करो	97
11.	विभ्रान्त भिक्षु की कथा	344	बंधन से मुक्त हो फिर बंधन की ओर न भागें	99
12.	जेल की कथा	345	सबसे दृढ़ बंधन क्या है ?	101
13.	जेल की कथा	346	इस दृढ़ बंधन को ज्ञान रूपी तलवार से काटें	103
14.	खेमा थेरी की कथा	347	तृष्णाजाल काट दुःखों से मुक्त हो जायें	105
15.	उग्रसेन की कथा	348	भूत, भविष्य और वर्तमान : तीनों के बंधन त्याग दो	107

16.	एक तरुण भिक्षु की कथा	349	तृष्णा पर विजय कैसे ?	109
17.	एक तरुण भिक्षु की कथा	350	तृष्णा जैसे दैत्य से सावधान !	111
18.	मार की कथा	351	किसका यह अंतिम जीवन होगा ?	113
19.	मार की कथा	352	तृष्णा रहित महाप्राज्ञ का यह अंतिम जीवन होगा	115
20.	उपक आजीवक की कथा	353	बुद्ध कौन है ?	117
21.	शक के प्रश्न की कथा	354	सर्वश्रेष्ठ क्या है ?	119
22.	अपुत्रक श्रेष्ठी की कथा	355	भोग की तृष्णा से बचें : आपको ही मार डालेगी	121
23.	देवपुत्र अंकुर की कथा	356	वीतराग को दान महान	123
24.	देवपुत्र अंकुर की कथा	357	दोष रहित को दिया दान श्रेष्ठ	125
25.	देवपुत्र अंकुर की कथा	358	मोह रहित को दिया दान महान	127
26.	देवपुत्र अंकुर की कथा	359	इच्छा रहित को दिया दान महाफलदायी	129

गाथाः मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मि वानरो।। 334।।

अर्थः प्रमत्त होकर आचरण करने वाले आदमी की तृष्णा मालुआ लता की तरह बढ़ती है। वन में फल की चाह में बंदर जैसे एक डाली से दूसरी डाली पर कूदता रहता है, वैसे ही इंसान संसार के इस भवसागर में एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।

संसार के भवसागर में बंदर की तरह मत कूदो
कपिल मछली की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन के पास अचिरावती नदी का किनारा। एक दिन केवटों के लड़के 'नदी में मछली पकड़ेंगे' यह सोचकर नदी में जाल फेंकने लगे। उनकी जाल में सुवर्ण रंग वाली किन्तु मुँह से दुर्गन्ध निकालने वाली एक सुनहरी मछली फँस गई। 'आज हमने पहली बार मछली मारना शुरू किया और इतनी सुन्दर मछली पकड़ी, आज इसे राजा को दिखायेंगे और राजा से पुरस्कार पायेंगे' यह सोचकर वे उस मछली को राजा के पास ले गए। राजा ने मछली देख कर कहा, "इस सुवर्ण और दुर्गन्ध का रहस्य न तो तुम ढूँढ़ पाओगे और न मैं। अतः इसे बुद्ध के पास ले चलते हैं।"

शाम का समय। जेतवन का बौद्ध विहार। सभी भिक्षु शास्ता के सामने अर्द्धवृत्ताकार बैठे हैं। वहीं राजा और उनके साथ उनका समूह पधारता है। सभी शास्ता को सादर प्रणाम कर वहीं बैठ जाते हैं। मछली मुँह खोलती है और सारा जेतवन दुर्गन्ध से भर जाता है। सभी शाक्य मुनि से आग्रह करते हैं कि सुवर्ण और दुर्गन्ध का रहस्य खोलें।

गाथा: यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवट्ठंव बीरणं।। 335।।

अर्थ: इस संसार में निरन्तर जन्म लेने की यह विषमयी तृष्णा जिसे अपने वश में कर लेती है उसके दु:ख-शोक उसी प्रकार बढ़ने लगते हैं जैसा वर्षाकाल में बीरण नाम का जंगली घास बढ़ता रहता है।

दु:ख-शोक का कारण: विषमयी तृष्णा
कपिल मछली की कथा

शास्ता कहते हैं 'चलो चलते हैं कस्यप बुद्ध के काल में और तब इस मछली का रहस्य खुलता है। उच्चकुल में दो भाइयों का जन्म हुआ। बड़े भाई का नाम था- स्वागत तथा छोटे भाई का कपिल। माता का नाम साधिनी और छोटी बहन का नाम तापना। चारों ने प्रव्रज्या ली। एक दिन उन्होंने अपने उपाध्याय से पूछा, "अध्यात्म मार्ग पर प्रगति के कितने मार्ग हैं ? " उपाध्याय ने बताया, "दो मार्ग हैं, पहला मार्ग है शास्त्रों को कंठस्थ करने का तथा दूसरा मार्ग है ध्यान-विपश्यना का।" बड़े भाई ने कहा, "मैं तो ध्यान साधना ही करूँगा।" वह ध्यान-साधना में लीन हो गया और पाँच वर्षों में उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। छोटे भाई ने सोचा, "मेरी उम्र अभी है ही क्या ? मैं अभी शास्त्रों को कंठस्थ कर लेता हूँ। समय आने पर ध्यान-साधना कर लूँगा।" उसने समग्र त्रिपिटक याद कर लिया। अब वह धर्म-प्रवचन देने लगा। उसका सर्वत्र आदर-सत्कार होने लगा।

इस प्रकार पांडित्य प्राप्त कर वह बहुत बड़ा अभिमानी हो गया। अब वह सदोष को निर्दोष और निर्दोष को सदोष बताने लगा। संघ के सदाचारी भिक्षु जब उसे कुछ तर्क और साक्ष्य के आधार पर समझाना चाहते थे तो वह उनकी हँसी उड़ा देता था। उसके बड़े भाई स्वागत स्थविर ने भी उसे समझाने की बहुत चेष्टा की पर वह नहीं माना। वह दो-चार बार समझाकर चुप बैठ गया, "इसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। तुम उस परिणाम की कल्पना भी नहीं कर सकते।" पर वह नहीं माना। अपनी दुर्बुद्धि से दुष्कर्म में लगा रहा।

गाथा: यो चेतं सहते जम्मिं, तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति, उदबिन्दुव पोक्खरा।। 336।।

अर्थ: इस बार-बार जन्म देने वाली दुर्जय तृष्णा को जो संयमी पुरुष परास्त कर देता है, उसके सांसारिक दु:ख वैसे ही झड़ जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से जल की बूँदें नीचे गिरकर नष्ट हो जाती हैं।

तृष्णा की पराजय: दु:खों का अंत
कपिल मछली की कथा

उसका पतन होता गया। अब वह दुराचारियों की संगत में रहने लगा। एक दिन उपोसथ व्रतधारी भिक्षुओं से कहा, "व्रत का कोई महत्व नहीं है। व्रत रखने से कोई लाभ नहीं होता है।" इस प्रकार उसने कस्सपबुद्ध के संघ को अपार हानि पहुँचाई। अपने कर्म के कारण कपिल मृत्यु के बाद नरक में जा गिरा। माँ तथा बहन ने भी संघ तथा सदाचारी भिक्षुओं की निंदा में कपिल का साथ दिया था। अत: वे भी नरक में जा गिरीं।

उसी समय अनेक चोर चोरी का कुछ सामान लेकर भागे। लोग उनका पीछा कर रहे थे। वे जंगल में भागे तथा एक साधु की कुटिया के सामने रुक गए। साधु से आग्रह किया, "बाबा, किसी प्रकार हमारी रक्षा कीजिए।" बाबा ने समझाया, "बच्चों , शील के अतिरिक्त दुनियाँ में कोई चीज तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकती। तुम शीलपालन का वचन ले लो।" चोरों ने साधु की बात मान ली। साधु ने उपदेश दिया, "अब तुम लोगों ने शीलपालन का वचन दे दिया है। अब प्राणों पर संकट भी आ जाये तो भी तुम शीलव्रत को भंग मत होने देना।" चोरों ने ऐसा ही वचन दिया।

गाथा: तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ, उसीरत्थोव बीरणं।
मा वो नळंव सोतोव, मारो भञ्जि पुनप्पुनं।।337।।

अर्थ: इसलिए मैं तुम्हें, जितने लोग आये हो, तुम्हें कहता हूँ, तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ- जैसे खस के लिए बड़ी कुदाल लेकर बीरण को खोदते हैं, वैसे ही तुम भी तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो। कहीं ऐसा न हो कि देवपुत्र मार तुम्हें वैसे ही बार-बार उखाड़ता रहे जैसे नदी में उगे हुए सरकंडे को बड़ी तेजी से आता हुआ नदी का पानी उखाड़ देता है।

तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो
कपिल मछली की कथा

थोड़ी देर बाद लोग चोरों को ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँच गए। उन्होंने मार-मारकर उन चोरों की हत्या कर दी। शीलव्रत होने के कारण वे सभी चोर देवलोक गये। उनके प्रधान ने देवपुत्र के रूप में जन्म धारण किया।

शाक्य मुनि ने कहानी आगे बढ़ाई, "देवलोक से निकलने के बाद उन चोरों ने केवट के परिवार में जन्म लिया और वह केवट तुम लोग हो। कपिल ने भी नर्क में पाप भोगकर मछली के रूप में जन्म लिया है। आज जो स्वर्ण, दुर्गन्धयुक्त मछली देख रहे हो, यह वही कपिल है।"

पूरी कहानी सुनकर सभी दुःखी हुए तथा स्तब्ध रह गये। शास्ता ने स्पष्ट किया, "इसने बुद्ध के वचनों को याद कर जो पुण्य कमाया था उसके फलस्वरूप इसने स्वर्णिम शरीर पाया है और भिक्षुओं और संघ के प्रति जो दुर्वचन कहे उसके कारण आज इसके मुँह से दुर्गन्ध आ रही है।"

शास्ता ने मछली से पूछा, "तुम कपिल हो ? " "जी हाँ, भन्ते ! मैं ही कपिल हूँ" "कहाँ से आये हो ? " "नरक से" "तुम्हारा अग्रज स्वागत कहाँ है ? " "वह तो परिनिर्वाण को प्राप्त कर गया" "तुम्हारी माँ तथा बहन कहाँ हैं ? " "दोनों नरक में हैं" "अब तुम कहाँ जाओगे ? " "उसी नरक में वापस जाऊँगा, भन्ते ! " ऐसा कहकर कपिल ने टोकरी के एक किनारे अपना सिर बहुत जोरों से पटक दिया जिससे वह मर गया।

लोग भारी मन से यह सब देख शांत बैठ गए। सोचने लगे, "कर्म की गति कितनी न्यारी होती है।"

शास्ता ने भी उन्हें समयानुकूल ये चार गाथायें सुनाईं।

गाथा: यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे, छिन्नोपि रूक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तणहानुसये अनूहते, निब्बत्तती दुक्खमिदं पुनप्पुनं।। 338।।

अर्थ: जैसे जड़ के पूरी तरह नष्ट नहीं होने तथा उसके मजबूत बने रहने से कटा हुआ पेड़ बार-बार उग आता है, उसी प्रकार तृष्णा के जड़ से समाप्त न होने से यह दु:ख बार-बार पैदा होता रहता है।

तृष्णा को जड़ से उखाड़े बिना कल्याण नहीं है
सूअर की बच्ची की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि राजगृह में भिक्षाटन कर रहे थे। रास्ते में एक शूकर की बच्ची को देखा तो मुस्कुरा दिए। प्रत्येक दिन की भाँति आज भी आनन्द थेर उनके साथ थे। उन्होंने शास्ता की मुस्कान देखी और उनके मन में कौतूहल जाग उठा। वे अपने आप को रोक नहीं पाये। शास्ता से इसका कारण पूछा। यह सुनकर तथागत ने उन्हें कुकुसन्ध बुद्ध के काल की कथा सुनाई।

शास्ता ने पूछा, "आनन्द ! इस सूअर की बच्ची को देख रहे हो ? " "हाँ भन्ते ! " "यह कुकुसन्ध बुद्ध के काल में एक मुर्गी थी। उनके विहार के आसपास घूमती रहती थी। वह एक योगाचार्य भिक्षु के स्वाध्याय करते समय, उनके द्वारा उच्चरित शब्दों को सुना करती थी। जब भी पवित्र ग्रंथों का पाठ होता था या धर्म प्रवचन होता था तो उसे भी बड़े ध्यान से सुनती थी। शरीर त्यागने के बाद उसका पुनर्जन्म उर्वरी नाम की एक राजकन्या के रूप में हुआ। एक दिन वह शौचालय में बैठी थी। उसने वहाँ पाखाना में घूमते हुए कीड़ों को देखा। उन्हें देखकर वह चिंतन-मनन करने लगी और उसने प्रथम ध्यान की स्थिति प्राप्त कर ली। राजकुमारी का जीवन बिताने के बाद वह ब्रह्मलोक में प्रकट हुई। वहाँ से च्युत हुई तथा गमनागमन के चक्कर में पड़ी रही और अंततः शूकर योनि में आकर जन्म लिया है। कर्म के फल से मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है ।

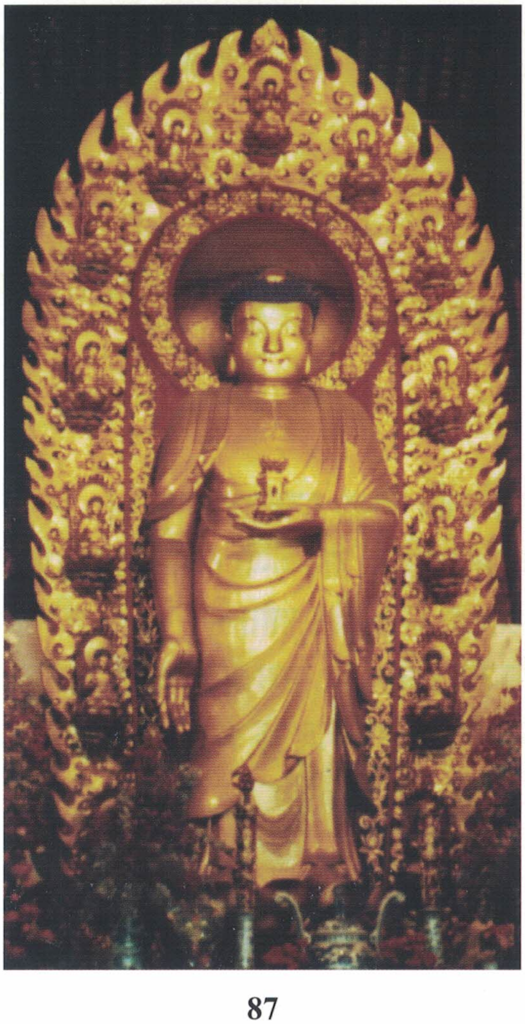

गाथा: यस्स छत्तिंसति सोता, मनापसवना भुसा।
बाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं, सङ्कप्पा रागनिस्सिता।। 339।।

अर्थः जिस आदमी के छत्तीस स्त्रोत मन को अच्छी लगने वाली चीजों की ओर ही ले जाते हों, उस झूठी धारणा वाले आदमी को उसके रागमय संकल्प जलप्रवाह के समान बहाकर ले जाते हैं।

रागमय संकल्प के जलप्रवाह से बचें
सूअर की बच्ची की कथा

आनन्द स्थविर के साथ बहुत सारे भिक्षु यह कथा सुन रहे थे। कथा सुनकर सभी स्थविरों के हृदय में वैराग्य पैदा हो गया। उन सबों की मन:स्थिति जान और सही समय देखकर शाक्य मुनि ने वहीं पर, गली में ही खड़े-खड़े, अच्छे-बुरे कर्मों के सृज़न तथा भव-तृष्णा से होने वाली हानि के विषय में बताया। शाक्य मुनि ने समझाया, "सबसे जरूरी है तृष्णा को समूल उखाड़कर फेंक देना। समूल नहीं उखाड़ने से तृष्णा बार-बार जन्म लेने के लिए बाध्य करती है। जिस प्रकार समुद्र का खारा पानी पीने से प्यास नहीं बुझती और बार-बार पीने की इच्छा होती है, उसी प्रकार तृष्णा से बँधा व्यक्ति, जीवन के प्रति आसक्ति से, बार-बार धरती पर जन्म लेता है। अगर वह अच्छे कर्म करता है तो वह उच्च लोक में जाता है। वहाँ अपने कर्मों का हिसाब करता है जैसे कोई आदमी मेले में अपने पैसे खर्च करता है। उच्च लोक में कर्म का हिसाब-किताब समाप्त हो जाने पर वह व्यक्ति फिर संसार में आकर नए कर्मों का सृजन शुरू कर देता है; जैसे पैसे खतम हो जाने पर आदमी मेले से घर वापस आ जाता है। इसी प्रकार आदमी ने अगर बुरे कर्म किये हैं तो फिर वह अधम लोक में जाता है। उच्च लोक की तरह वहाँ भी वह स्थायी रूप से नहीं रह पाता । अपने कर्मों का हिसाब-किताब चुकाकर वह धरती पर एक बार फिर जन्म धारण करता है और इस प्रकार उसकी यात्रा का सिलसिला फिर शुरू हो जाता है क्योंकि उसके अन्दर 'जीने की चाह', 'खारा पानी पीने की तृष्णा' है। इस प्रकार एक बार फिर भले और बुरे कर्म का सृजन प्रारंभ हो जाता है। यह सिलसिला जन्म-जन्मान्तर चलता रहता है।

गाथा: सवन्ति सब्बधि सोता, लता उप्पज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं जातं, मूलं पञ्ञाय छिन्दथ।। 340।।

अर्थ: ये स्रोत सभी ओर बहते हैं। जिसके कारण तृष्णारूपी लता अंकुरित रहती है। उस उत्पन्नहुई लता को देखकर प्रज्ञा से उसकी जड़ को काट डालो।

तृष्णा रूपी लता को जड़ से काट डालो
सूअर की बच्ची की कथा

जैसे गंगा अपने स्त्रोत से निकलकर पूरे रास्ते चलती हुई सागर में मिल जाती है और वहाँ सूर्य की किरणों से गंगा का पानी वाष्प रूप में परिणत हो जाता है, हल्का होने से आकाश की ओर चला जाता है और फिर उड़ता हुआ हिमालय की ओर पहुँचकर पर्वत से टकरा पुनः पानी की बूँदों में बदल नदी का स्वरूप ले लेता है, वैसा ही मनुष्य का जीवन है। पानी की बूँदें जब नदी का स्वरूप ले लेती हैं तो एक बार फिर लगातार चलने वाली यात्रा प्रारंभ हो जाती है, जिसमें न तो कहीं ठहराव है और न कहीं शांति।

मनुष्य के जीवन की कहानी एक चक्र के समान है। यह 'कर्म का पहिया' निरंतर चलता ही जाता है। इसे न तो कोई रोक पाता है और न कोई इसकी गति को घटा या बढ़ा सकता है।

गाथा: सरितानि सिनेहितानि च, सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो, ते वे जातिजरूपगा नरा।। 341।।

अर्थ: ये तृष्णा रूपी नदियाँ प्राणियों के चित्त को अच्छी लगती हैं। इन नदियों के बंधन में बँधे प्राणी भोगों को खोजते हैं और जन्म, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु के फेरे में जा पड़ते हैं।

भोग : कष्ट, रोग और मृत्यु के जनक हैं
सूअर की बच्ची की कथा

अतः अगर हमें इस 'पहिये के चलने' को रोकना है तो हमें इसमें गति देने की प्रक्रिया को बंद करना होगा। जीवन-मृत्यु रूपी दीपक की लौ को अगर समाप्त करना है तो सर्वप्रथम उस दीपक में तेल डालना बंद करना होगा। जब तेल डालना बंद कर दिया जाएगा तो फिर जितना तेल पहले से बचा है सिर्फ उसे ही जलने की जरूरत है। अतः अगर हम तेल डालना बंद कर दें और बचे हुए तेल को धैर्यपूर्वक जल जाने दें तो फिर किसी न किसी दिन लौ तो बुझ ही जाएगी। न रहेगा तेल और न जलेगी लौ।

इस प्रकार सबसे आवश्यक है, तृष्णा की समाप्ति। 'तृष्णा को काटो' कह देना आसान है पर उसे काटना इतना आसान नहीं है। वृक्ष की डाली या जड़ के आस पास पेड़ को काट दिया जाये तो पेड़ का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। पेड़ के अस्तित्व को अगर मिटाना है तो उसे समूल उखाड़ फेंकना होगा।

टिप्पणी : जिस तरह वृक्ष को ऊपर-ऊपर मात्र काट देने से वह समूल नष्ट नहीं हो जाता है उसी तरह आँख आदि छह द्वारों द्वारा सृजित तृष्णा से, चित्त की प्रवृत्ति को, अन्तर्ज्ञान द्वारा, अगर अलग नहीं किया जाए तो बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु आदि दुःख बार-बार आते ही रहेंगे।

गाथाः तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
संयोजनसङ्गसत्तका, दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय।। 342।।

अर्थः तृष्णा के पीछे दौड़ने वाले प्राणी बँधे हुए खरगोश की तरह एक ही निश्चित स्थान पर चक्कर काटते रहते हैं। मन के बंधनों में फँसे हुए लोग लम्बे समय तक बार-बार दुःखभोग के लिए जन्म लेते रहते हैं।

मन के बंधनों को काट उनसे मुक्त हो जाइए
सूअर की बच्ची की कथा

ज्ञान प्राप्ति के छत्तीस स्रोत हैं, जिनमें छः आन्तरिक हैं : आँख, स्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय और मन, तथा छः वाह्य हैं : रूप, सद्ध, गन्ध, रस, फोट्ठब्ब और धम्म। ये सभी काम, भव और विभव के भेद से 6+6=12X3=36 होते हैं। इस प्रकार अट्ठारह आध्यात्मिक तथा अट्ठारह वाह्य स्रोत हुए। इन विचार स्रोतों से समन्वित यह तृष्णा अपने प्रिय रूप आदि आसक्तियों से जुड़ी रहती है तथा वहाँ क्रमशः बलशाली होती जाती है। इस कारण उसके अन्दर बार-बार मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है। यह जब बहुत बढ़ जाती है तो साधक का ध्यान और विपश्यना आदि बाधित हो जाते हैं।

कहानी का शेष भाग : वह शूकर पुत्री भी उस शरीर को त्यागकर बर्मा देश में किसी राजकुल में प्रकट हुई। फिर एक के बाद एक अनेक जन्मों में घूमती हुई दुट्ठगामणि राजा के लकुण्टकअतिम्बर नामक मंत्री की पत्नी बनी। उसने अपनी पत्नी को बहुत अच्छी तरह रखा।

गाथा: तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
तस्मा तसिणं विनोदये, आकङ्खन्त विरागमत्तनो।। 343।।

अर्थ: इस तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे हुए खरगोश की तरह अपने आस पास ही चक्कर लगाते रहते हैं। इसलिए वैराग्य की इच्छा रखने वाले साधक को तृष्णा को दूर करना चाहिए।

वैराग्य की चाह रखते हो ?: तृष्णा को दूर करो
सूअर की बच्ची की कथा

एक दिन महा अनुरुद्ध स्थविर उनके दरवाजे से गुजरे। उन्होंने अपने संग भिक्षुओं से कहा, "आयुष्मानों ! देखो किस प्रकार शूकर पुत्री महामात्य की पत्नी बन गई है। है न आश्चर्य की बात ? " स्थविर की बात सुनकर शूकरपुत्री को वैराग्य पैदा हो गया और पूर्वजन्म की बातें याद आने लगीं। उसने पति से आज्ञा लेकर प्रव्रज्या ले ली। अंत में उसने अर्हत्व भी प्राप्त कर लिया।

उस भिक्षुणी ने अपने परिनिर्वाण से पूर्व भिक्षु संघ से अपने पूर्व जन्मों की चर्चा करते हुए कहा, "तेरह जन्म प्राप्त कर, जीवन में ऊँच-नीच देखकर मुझे संसार से विरक्ति हुई और मैंने प्रव्रज्या लेकर अर्हत्व प्राप्त किया। आप सभी सावधानी (अप्रमादपूर्वक) से अपनी साधना में रत रहें।" ऐसा कहते हुए उसने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।

गाथा: यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो, वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेथ पस्सथ, मुत्तो बन्धनमेव धावति।। 344।।

अर्थ: जो तृष्णा से छूट कर, तृष्णामुक्त हो, तृष्णा की ओर ही दौड़ता है उस आदमी को वैसा ही जानना चाहिए जैसे कोई बंधन से मुक्त हुआ व्यक्ति फिर बंधन की ओर भागने लगे।

बंधन से मुक्त हो फिर बंधन की ओर न भागें
विभ्रान्त भिक्षु की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि के अग्रणी शिष्य महाकस्सप थेर का एक शिष्य था। उसने चारों ध्यानों की सिद्धियाँ पा ली। एक बार वह अपने मामा के घर गया और सांसारिक सुख-सुविधाओं को देख उसका मन भिक्षुभाव से उचट गया और वह चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया। लेकिन गृहस्थ-जीवन में वह मेहनती नहीं था। उसे आलसी देख उसके घर वालों ने उसे घर से निकाल दिया। वह काम-काज करना नहीं जानता था, अत: बुरी संगति में फँस गया।

एक दिन वह चोरी करते हुए पकड़ा गया। उसका मामला सुनने के बाद राजा ने उसे फाँसी की सजा सुनाई। जब उसे फाँसी के लिए वधस्थल की ओर ले जाया जा रहा था तब उसकी नजर महाकस्सप पर पड़ी। उस समय महाकस्सप भिक्षाटन हेतु जा रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य को याद दिलाया, "तुम अपने अभ्यस्त कर्मस्थान पर ध्यान केन्द्रित करो।" उसने वैसा ही किया जैसा स्थविर महाकस्सप ने बताया था। इससे उसकी अपनी स्मृति ताजी हो गई। वह साधना में स्थित हो ध्यान के चतुर्थ स्थिति तक पहुँच गया।

वह वध स्थल पहुँचा। पूर्णत: शांत था। उसके चेहरे पर जरा भी भय का भाव नहीं था। इसके विपरीत, उसके चेहरे पर एक अपूर्व आभा दिख रही थी। उसे देखकर जल्लादों को अति आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसका वध करने की बजाय इस बारे में राजा को सूचना दी। राजा ने भी उसे जाँचा, परखा और उसे मुक्त कर दिया। वध स्थल पर खड़े लोगों ने यह देखकर हर्ष से खूब तालियाँ बजाईं।

तथागत ने राजा और उस बन्दी के पृष्ठभूमि में यह गाथा कही।

गाथा: न तं दळहं बन्धनमाहु धीरा, यदायसं दारूजपब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।। 345।।

अर्थ: वह बंधन दृढ़बंधन नहीं है जो लोहा, लकड़ी या रस्सी का बना हो। मजबूत बंधन तो है- धन, मणि, आभूषण तथा पुत्र और पत्नी में आसक्ति का होना।

सबसे दृढ़ बंधन क्या है ?
जेल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय कुछ चोरों को चोरी तथा अन्य अपराधों के लिए कोसलराज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। राजा के आदेश से उन्हें हथकड़ी पहना दी गई, कुछ को रस्सियों और कुछ को लोहे की जंजीरों में जकड़ दिया गया।

बाहर से करीब तीस भिक्षु आये। उन्होंने शाक्य मुनि के दर्शन किए, प्रणाम किया और भिक्षाटन हेतु निकल पड़े। रास्ते में वह कारागार दिखा जिसमें वे चोर रखे गए थे।

शाम हुई। प्रतिदिन की तरह आज भी धर्मचर्या का समय आया। बाहर से आये भिक्षुओं ने निवेदन किया, "भन्ते ! आज भिक्षाटन के समय हमने कुछ चोरों को हथकड़ियों, रस्सी तथा लोहे की जंजीरों में बँधे हुए देखा ताकि वे कहीं भाग न सकें । क्या सबसे मजबूत ये ही बंधन हैं या कोई बंधन इनसे भी अधिक मजबूत होता है ? "

शास्ता ने समझाया, "भिक्षुओं ! ये बंधन कुछ नहीं हैं। धन-दौलत, स्त्री-पुत्र आदि के सांसारिक जाल इन बंधनों की तुलना में सैकड़ों-हजारों गुना अधिक शक्तिशाली होते हैं। इन शक्तिशाली बंधनों को 'तृष्णा' कहते हैं। यह तुम्हारे बताये गए बन्धनों की तुलना में अधिक दृढ़तर एवं स्थिरतर हैं। ऐसे शक्तिशाली बंधनों से मुक्त हो प्राचीन काल में भी लोग, हिमालय पर जा, प्रव्रज्या प्राप्त कर साधना करते रहे हैं।"

भिक्षुओं ने प्राचीन काल की कोई कथा सुनाने के लिए आग्रह किया। तब शाक्य मुनि ने यह कहानी सुनाई।

गाथा: एतं दळहं बन्धनमाहु धीरा, ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति, अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय।। 346।।

अर्थ: ज्ञानी जन उस बंधन को दृढ़ कहते हैं जो देखने में तो शिथिल होता है पर अधोगति की ओर ले जाता है और कठिनता से टूटता है। पर ज्ञानी जन उपेक्षारहित हो, काम सुख त्याग कर, इस दृढ़ बंधन को भी ज्ञानी रूपी तलवार से काटकर प्रव्रजित हो जाते हैं।

इस दृढ़ बंधन को ज्ञान रूपी तलवार से काटें
जेल की कथा

प्राचीन काल में जब वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा राज्य करते थे तब बोधिसत्व का जन्म किसी परिवार में हुआ। कुछ समय बाद उनके पिता का देहान्त हो गया और माता अकेली पड़ गई। वह पुत्र का विवाह करना चाहती थी पर पुत्र विवाह करना नहीं चाहता था। माँ ने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी करा दी। शादी के कुछ दिनों बाद पत्नी ने गर्भ धारण कर लिया। इधर बोधिसत्व के मन में वैराग्य जगा और वे संसार त्याग कर संन्यास लेना चाहते थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी के सम्मुख संन्यास लेने का प्रस्ताव रखा। तब पत्नी ने समझाया, "स्वामी ! अभी तो मैंने गर्भधारण ही किया है। संतान का मुँह देख लीजिएगा तब चले जाइएगा।" पति उसकी बात मानकर रुक गया। कुछ समय बाद बोधिसत्व ने अपनी पत्नी से कहा, "तुम्हारी बात मानकर मैं रुक गया । अब तो पुत्र हो गया है, अब मुझे प्रव्रज्या की सहमति दो।" "बच्चा अभी बहुत छोटा है। गोद में माँ का दूध पीता है। थोड़ा बड़ा हो जाये, दूध पीना छोड़कर खाना-पीना शुरू कर दे, घूमने लगे तब चले जाना।" बोधिसत्व को लग गया, "अगर पत्नी की बात मानता रहा तो कभी प्रव्रजित नहीं हो पाऊँगा क्योंकि यह स्त्री कभी प्रव्रज्या की अनुमति नहीं देगी।" अतः एक रात वे धीरे से जब पत्नी सोई हुई थी घर से निकलकर जंगल की ओर जाने लगे। पर रास्ते में रात्रि पहरेदारों ने उन्हें चोर समझकर पकड़ लिया। तब उन्होंने पहरेदारों को बताया, "मैं चोर नहीं हूँ। तुम्हारी तरह गृहस्थ हूँ। प्रव्रज्या धारण करने के लिए घर से निकला हूँ।" इस प्रकार उन राज पहरेदारों को समझा-बुझा कर वे आगे निकल गए और जंगल में प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया। साधना में लीन हो गए और साधना की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

एक दिन बोधिसत्व के मुँह से अनायास ही निकल गया, "बहुत कठिन था पत्नी और पुत्र के प्रति मोहरूप क्लेश-बंधन का काटना। पर इस कठिन कार्य को मैंने कर ही दिया। बंधन काट ही डाला।"

तथागत ने इस प्रकार बोधिसत्व के पूर्व जन्म की कथा सुनाई। उसके बाद इस संदर्भ में ये दो गाथायें सुनाईं।

गाथा: ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं, सयंकतं मक्कटकोव जालं।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा, अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय।। 347।।

अर्थ: जैसे मकड़ा स्वयं बनाये जाल में फँस जाता है, वैसे ही राग में अनुरक्त लोग स्वयं बनाये तृष्णारूपी प्रवाह में फँस जाते हैं। हाँ, विरक्त और धैर्यवान साधक इस तृष्णाजाल को भी काटकर तथा सभी दु:खों को छोड़कर संसार के प्रति उदासीन (निरपेक्ष) हो जाते हैं।

तृष्णाजाल काट दु:खों से मुक्त हो जायें
खेमा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाराज बिंबिसार की पटरानी खेमा पूर्व जन्म में पद्मोत्तर बुद्ध के श्रीचरणों में श्रद्धा के फलस्वरूप इस जन्म में वह अति सुन्दर थी। उसका अभिमानी होना स्वाभाविक था। लोगों से सुन रखा था कि बुद्ध रूप-सौन्दर्य को महत्व नहीं देते, अपितु उसकी निंदा ही करते हैं। अत: वह उनके सम्मुख कभी जाना नहीं चाहती थी। राजा बहुत चाहता था कि रानी भी त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा रखे। उसने बुद्ध एवं भिक्षुओं को राजमहल में भोजन दान के लिए आमंत्रित किया पर उस समय भी वह बुद्ध की सेवा के लिए नहीं आई।

राजा ने बहुत सोचकर एक युक्ति निकाली। उसे मालूम था कि रानी को संगीत से बहुत प्रेम था। अत: उसने राजमहल के नर्तकों को वेणुवन के प्रशंसात्मक गीत याद कराए। वे जब भी रानी के सामने प्रस्तुत होते, प्रशंसा के गीत गाते। रानी ने एक दिन नर्तकों से पूछा, "तुम अपने गीत में किस उद्यान का वर्णन करते हो ? " नर्तकों ने कहा, "आपके राज्य में ही स्थित वेणुवन का।" तब रानी को लगा, "जिस वेणुवन की इतनी अधिक प्रशंसा हो, वह देखने में तो इससे भी सुन्दर होगा।" उसने राजा के सम्मुख वेणुवन देखने की इच्छा प्रकट कर दी। राजा यही चाहता था।

शास्ता खेमा का मनोभाव जानते थे। अत: जब खेमा वेणुवन आई तो उन्होंने अपनी शक्ति से एक अति सुन्दर नवयुवती का सृजन किया जो उनके पीछे खड़ी होकर उनको पंखा झल रही थी। उस स्त्री को या तो रानी या शास्ता ही देख सकते थे। रानी ने उसका सौन्दर्य देखा तो लगा कि जैसे राजहंसिनी के सामने एक कौआ खड़ा हो। तब शास्ता ने उस नवयुवती का रूप बदलना प्रारंभ किया। वह युवती से जवान, प्रौढ़, बूढ़ी हुई और अंत में मात्र अस्थि-कंकाल के समान दिखने लगी। अब खेमा को रूप-सौन्दर्य की वास्तविकता समझ में आने लगी।

तथागत ने खेमा के मनोभाव को जानकर उससे कहा, "खेमा ! तुमने स्त्री के रूप और सौन्दर्य की सच्चाई देख ली। स्त्री का सौन्दर्यमय शरीर व्याधिग्रस्त होता रहता है, अपवित्र है, दुर्गन्धमय है, चढ़ाव-उतराव वाला है। इसमें विभिन्न स्थानों से मल बहता रहता है। ऐसा शरीर सिर्फ मूर्ख और अविवेकी लोगों को ही प्रिय लग सकता है।"

यह सुनकर खेमा श्रोतापन्न में प्रतिष्ठित हो गई। शास्ता ने आगे समझाया, "सांसारिक प्राणी रागयुक्त होकर, द्वेषमग्न और मोहयुक्त होकर अपनी तृष्णा प्रवाह से मुक्त नहीं हो पाते हैं, बल्कि उसी में फंसे रहते हैं।"

तब शास्ता ने यह गाथा सुनाई। शाक्य मुनि ने राजा से कहा, "महाराज ! खेमा का अब प्रव्रजित या परिनिवृत होने का समय आ गया है।" राजा ने आग्रह किया, " भन्ते ! उसे प्रव्रजित कर लीजिए। अभी परिनिवृत मत होने दीजिए।"

खेमा उसी दिन प्रव्रजित हो गई।

गाथा: मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो, मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो, न पुनं जातिजरं उपेहिसि।। 348।।

अर्थ: भूत, भविष्य और वर्त्तमान- तीनों के बंधनों को त्याग दो तथा इस भवसागर को पार कर लो। जब सब ओर से मन को मुक्त कर लोगे तब तुम्हें ये जन्म- जरा आदि पीड़ित नहीं करेंगे।

भूत, भविष्य और वर्तमान : तीनों के बंधन त्याग दो
उग्रसेन की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में प्रतिवर्ष की भाँति नटों के खेल का आयोजन हुआ। नटों में एक नवयुवती भी थी ,जिसे देख नगर श्रेष्ठी का पुत्र, उग्रसेन उस पर मोहित हो गया। माता-पिता के न चाहने पर भी उग्रसेन ने उस युवती से विवाह कर लिया और उस नाट्य मंडली में साथ-साथ रहने लगा। उसे कोई कला नहीं आती थी, अत: सामान आदि ढ़ोने का काम किया करता था। कुछ दिनों बाद उसे एक पुत्र हुआ। उसकी पत्नी अपने बच्चे को गोद में प्यार करते समय कहती, "ओ गाड़ी के रखवाले के पुत्र ! ओ सामान ढोने वाले के पुत्र !" उग्रसेन को लग गया कि उसकी पत्नी उसका मजाक उड़ा रही थी। अत: वह अपने ससुर के पास गया, उनसे प्रार्थना की और परिश्रम कर उसने भी बहुत सारी नटकलाएं सीख लीं।

एक बार नटसमूह फिर राजगृह आया। घोषणा की गई "आज से सातवें दिन उग्रसेन अपने नटी की कला का प्रदर्शन करेंगे।" सातवें दिन उसने अपनी कला का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया। पर जनता उसे देखने नहीं आई क्योंकि वह दूसरी ओर बुद्ध के प्रवचनों को सुनने चली गई। उसने सात बार अपने करतब दिखाए पर जनता बुद्ध वचनों से ही जुड़ी रही। वह मन से उदास होने लगा।

शास्ता ने उसका मनोभाव जान लिया। उन्होंने महामोग्लान को बुलाकर कहा, "मोग्लान ! जाओ और उग्रसेन से कहो कि वह अपनी कला का प्रदर्शन करे।" मोग्गलान के कहने पर उसने एक के बाद एक अनेक प्रदर्शन किये। लोग यह देखकर बहुत खुश हुए। शास्ता ने भी उसके करतबों को देखा।

शास्ता ने उग्रसेन को समझाया, "रस्सी पर खेल खेलना बहुत आसान है पर जीवन का खेल खेलना बहुत कठिन। सीखना है तो जीवन जीने की कला सीखो। समझदार आदमी वही है जो अपने आप को इन स्कन्धों की आसक्ति से बचाता है और जन्म-जन्मान्तर के आवागमन से मुक्त होने की चेष्टा करता है।"

यह कहते हुए शाक्य मुनि ने यह गाथा कही। उग्रसेन ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया और वह एक भिक्षु हो गया।

एक बार धर्मसभा में उग्रसेन स्थविर से भिक्षुओं ने पूछा, "स्थविर ! इतनी ऊँचाई पर करतब दिखाते समय आपको भय नहीं लगता था ? " "नहीं।" भिक्षुओं ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और शास्ता से शिकायत की कि उग्रसेन झूठ बोलता है। शास्ता ने स्पष्ट किया, "नहीं भिक्षुओं ! उग्रसेन सच बोलता है। उग्रसेन सभी भवबंधनों से मुक्त हो चुका है। ऐसे व्यक्ति को किसी बात का भय नहीं लगता है।" उन्होंने गाथा भी सुनाई, "संसार से सभी प्रकार की आसक्ति त्याग देने वाला व्यक्ति किसी चीज से भयभीत नहीं होता है। वह सारे संसार में उदासीन भाव से विचरण करता है। मैं उसे 'ब्राह्मण' कहता हूँ।"

शिष्यों ने प्रश्न किया, "भन्ते ! किस प्रारब्ध कर्म के कारण उग्रसेन को नटी करना पड़ा ?" शास्ता ने उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाई कि एक बार वाराणसी में बहुत सारे कुलपुत्र काश्यपबुद्ध के चैत्य निर्माण के समय गाड़ी में खाद्य सामग्री भरकर ले जा रहे थे। रास्ते में एक स्थविर मिले। एक पति-पत्नी बैलगाड़ी से नीचे उतरे और भिक्षु को भोजन दान दिया। भोजन देने के बाद पति ने भिक्षु से प्रार्थना की, "भन्ते ! हम लोग भी आपके धर्म के भागी बनें।" भिक्षु अर्हत थे, उन्होंने देख लिया कि आगे चलकर ये दोनों भी अर्हत बनेंगे। अत: वे हँस दिए। स्त्री ने पति से कहा, "स्थविर आपके कथन पर हँस दिए। लगता है हममें से किसी को किसी जन्म में नट कर्म करना पड़ेगा।" "मुझे भी यही लगता है", पति ने कहा।

"यही उनका पूर्वकर्म है। आज दोनों पति-पत्नी अर्हत्व प्राप्त कर चुके हैं।"

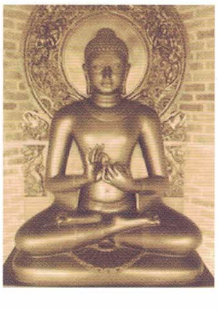

गाथा: वितक्कमथितस्सजन्तुनो, तिब्बरागस्ससुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति, एस खो दळ्हं करोति बन्धनं।। 349।।

अर्थ: जिस प्राणी के मन में बहुत संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिसके मन में तीव्र राग है, जो सांसारिक वस्तुओं में शुभ ही शुभ देखता है, उसकी तृष्णा पहले की अपेक्षा बढ़ती ही जाती है। वह अपने सांसारिक बंधनों को पहले से अधिक दृढ़ बनाता जाता है।

तृष्णा पर विजय कैसे ?
एक तरुण भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय भिक्षुओं के लिए बने एक शाला में एक प्रव्रजित भिक्षु ने भोजन ग्रहण किया। भोजन के बाद उसे प्यास लगी। वह पानी पीने पास के एक घर में गया जहाँ एक नवयुवती ने उसे पानी पिलाया। उसने ज्योंहि भिक्षु को देखा, वह उस पर आसक्त हो गई। भिक्षु को मोह जाल में फँसाने के लिए उसने प्रस्ताव दिया, "भन्ते ! जब कभी भी पानी पीने की आवश्यकता हो, यहाँ आ जाया कीजिए।" इस प्रकार जब-जब जल की जरूरत पड़ती थी, वह भिक्षु उसके घर आ जाता था। बाद में उसने उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया और उसे भोजन देने लगी। एक दिन अपने घर में, अपने समीप बैठाकर भोजन कराया और प्रेमपूर्वक यह वचन बोली, "भन्ते ! इस घर में सभी चीजें उपलब्ध हैं। किसी चीज की कमी नहीं है। पर उनका उपयोग करने वाला नहीं है। वैसा आदमी मिलता कहाँ है ? " इन बातों को सुनकर वह भिक्षु भी उस महिला में आसक्त होने लगा और धर्मसाधना की उपेक्षा करने लगा।

अब उसका मन धर्म-साधना में नहीं लगता था। वह दुबला होने लगा। अन्य भिक्षुओं ने उससे पूछा, "क्या तुम बीमार हो गए हो ? तुम्हारे शरीर की एक-एक धमनी दिखने लगी है।" "नहीं, अब मुझे विहार में रहने की इच्छा नहीं रह गई है। भिक्षु जीवन त्यागना चाहता हूँ।" तब वे भिक्षु उसे उसके उपाध्याय के पास ले गए और उसके उपाध्याय उसे शास्ता के पास ले गए। शास्ता ने पूछा, "क्या सचमुच तुम्हारी धर्म में अरुचि हो गई है ? " "हाँ भन्ते !" "अरे भिक्षु ! अगर तुम मेरे सामने आकर कहते 'मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ', 'सकृदागामी या अनागामी होने जा रहा हूँ' तो मैं अधिक संतुष्ट होता। पर ऐसा न कहकर तुम कह रहे हो 'मैं एक स्त्री पर आसक्त हो गया हूँ'। तुम इतना अविवेकपूर्ण काम क्यों कर रहे हो ? कारण क्या है?" "मैं एक स्त्री पर आसक्त हो गया हूँ", भिक्षु ने कहा।

तब शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "अगर उस स्त्री ने तुम्हें अपने जाल में फाँस लिया है तो कोई आश्चर्य नहीं है। उसने पूर्वजन्म में आर्यावर्त्त के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी पंडित को, क्षणमात्र में आसक्त हुए पुरुष के लिए, मरवा दिया था। भिक्षुओं ने याचना की कि शास्ता वह कहानी सुनावें। तब शास्ता ने उस स्त्री के पूर्व जन्म की कथा सुनाई।

गाथा: वितक्कूपसमेच यो रतो, असुभं भावयते सदा सतो।
एस खो ब्यन्ति काहिति, एस छेच्छति मारबन्धनं।। 350।।

अर्थ: इसके विपरीत जो प्राणी अपने संकल्प-विकल्पों को शांत करने में रत है, सदा जागरुक रहकर सांसारिक वस्तुओं के अशुभ को देख लेता है, वह एक न एक दिन मार के बंधनों को काट ही देगा और निश्चय ही इस तृष्णा का अन्त कर देगा।

तृष्णा जैसे दैत्य से सावधान !
एक तरुण भिक्षु की कथा

पूर्वकाल में चूलधनुर्गह पंडित ने तक्षशिला के एक आचार्य से धर्नुकला सीखी। आचार्य ने उसकी उपलब्धि से संतुष्ट होकर अपनी बेटी का हाथ उसे थमा दिया और वाराणसी के लिए विदा कर दिया। दोनों जब जंगल होकर गुजर रहे थे तो पचास चोरों का एक समूह उनके सामने आ गया और उन पर आक्रमण कर दिया। धनुर्धर पंडित ने अकेले ही उन उनचास चोरों को मार गिराया। अब पचासवें चोर और समूह के मुखिया की बारी थी। उसे मारने के लिए उसने अपनी स्त्री से तलवार माँगी, परन्तु उस स्त्री ने मुखिया को देखा और एक ही क्षण में वह उस पर आसक्त हो गई। अपने पति को तलवार देने के बदले वह तलवार मुखिया को थमा दी। चोर ने पंडित का वध कर दिया पर सोचा, "जो स्त्री एक क्षण में मुझ पर आसक्त हो अपने पति की हत्या करवा सकती है, वह किसी अन्य पर आसक्त होकर मुझे भी मरवा सकती है। अत: ऐसी स्त्री के संग से क्या लाभ ? "

ऐसा विचार कर वह चोर उस स्त्री के साथ नदी के घाट पर पहुँचा। उसने स्त्री से कहा, "तुम यहीं रुको। मैं पहले सामान उस पार पहुँचा देता हूँ तब तुम्हें लेकर जाऊँगा।" ऐसा कहकर वह स्त्री को इस पार छोड़कर चला गया।

झाड़ी से एक सियार की आवाज आई, "हे सुन्दरी ! सुन्दर जाँघों वाली ! न यहाँ नृत्य हो रहा है और न गायन। तू रोने के साथ क्यों हँस रही है ? " "अरे मूर्ख सियार ! तू क्यों चिंता कर रहा है ?" "दूसरों का दोष देखना कितना आसान है और अपना कठिन। तू तो पति और प्रेमी दोनों से बिछड़कर रो रही है।" "हाँ, जो तुम कह रहे हो वह सही है पर आगे मैं अपने पति के पदचिन्हों पर चलूँगी।" "अरे तू क्या चलेगी ? जो मिट्टी की थाली चुरा सकता है, वह काँसे की थाली अवश्य चुरायेगा। पहले भी तूने पाप किया था और तू आगे भी करेगी।"

शास्ता ने भिक्षु को समझाया, "उस जन्म में तू ही वह धनुर्धर था। इस स्त्री ने तुम्हारी हत्या की थी। सियार का रूप धारण करने वाला इन्द्र, मैं ही था। अत: इस स्त्री में आसक्ति त्यागकर धर्म में रुचि लो।"

यह समझाते हुए शास्ता ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: निट्ठङ्गतो असन्तासी, वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि, अन्तिमोयं समुस्सयो।। 351।।

अर्थ: जिसका कार्य समाप्त हो गया है अर्थात् जिसने लक्ष्य (अर्हत्व) पा लिया है, जो निर्भीक, तृष्णा रहित तथा मलरहित है, जिसने संसार के शल्यों को काट दिया है, उसका यह अंतिम जीवन होगा।

किसका यह अंतिम जीवन होगा ?
मार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध का कपिलवस्तु में आगमन। यशोधरा ने सोचा, "क्यों न राहुल को माध्यम बना कर तथागत को यहीं रोक लेने का प्रयत्न किया जाए ? " पुत्र राहुल से पूछा, "अपने पिता के पास जाओगे ? " राहुल ने खुश होते हुए कहा, "अवश्य।" माँ ने पूछा, "क्या कहोगे ? " "जो तुम बताओगी।" "अच्छा ! अपने पिताजी से कहना 'आप सम्पत्ति में मेरा हक दीजिए। मेरा हिस्सा दीजिए।"

आज शाक्य-मुनि के कपिलवस्तु आगमन का सातवाँ दिन था। भोजनोपरान्त शास्ता भिक्षु संघ के साथ चलने को तैयार हुए। राहुल खुशी-खुशी पिता के पास पहुँचा और बोला, "आपके साथ बहुत अच्छा लगता है।" माँ की बताई बात भूल गया। जब याद आया, तब शास्ता चलने लगे थे। वह बोलने लगा "मेरा हिस्सा दे दीजिए।" शास्ता ने कुछ नहीं कहा, वे चलते रहे। राहुल ने फिर कहा, "मेरा हिस्सा दे दीजिए।" शास्ता ने फिर कुछ नहीं कहा। जब राहुल कई बार कह गया तब तथागत ने अपना भिक्षापात्र राहुल को दे दिया। वे चलते गए। उनके साथ सारिपुत्त और भिक्षुसंघ के साथ राहुल भी विहार आ गया। विहार पहुँचने पर शास्ता ने सारिपुत्त से कहा, "सारिपुत्त ! राहुल को प्रव्रजित कर दो।" "क्या कह रहे हैं ? भन्ते ! " " राहुल का यही हिस्सा है। जिसके पास जो सम्पत्ति रहेगी, वह उसी से हिस्सा देगा। मेरी सम्पत्ति यही है।" बुद्ध ने सारिपुत्त और राहुल को समझाया। राहुल प्रव्रजित हो गए और बौद्ध विहार में ही रहने लगे। राजा शुद्धोदन और यशोधरा को यह बात मालूम हुई। बेचैनी की हालत में राजा बुद्ध के सम्मुख प्रस्तुत हुए और कहा, "तुम घर छोड़कर चले गए। मेरे हृदय को गहरी चोट लगी । नन्द ने संन्यास ले लिया तब मेरा दुःख और भी बढ़ गया। अब राहुल को भी भिक्षु संघ में शामिल कर लिया गया। मेरे ऊपर तो अब दुःख का बाँध ही टूट गया।" वे भरे हुए गले से बोले जा रहे थे, "मैं टूट चुका हूँ। मैं इस दुःख को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ।" फिर अपना कंठ साफ किया और हिम्मत करते हुए बोले, "शाक्य मुनि ! मेरी आपसे एक प्रार्थना है कि जब तक माता-पिता जिंदा रहें, उनकी अनुमति के बिना उनके बच्चों को प्रव्रजित नहीं किया जाये।"

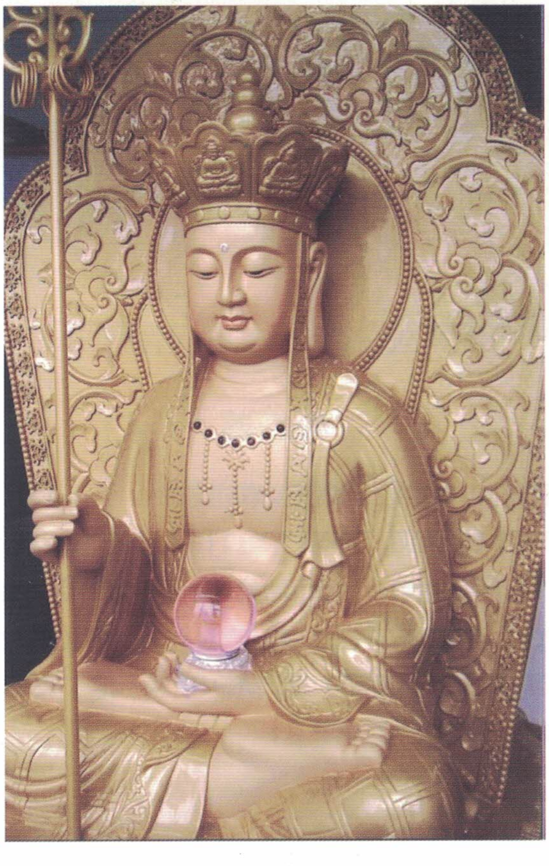

गाथा: वीततण्हो अनादानो, निरूत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं, जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे "अन्तिमसारीरो, महापञ्ञो महापुरिसो" ति वुच्चति।। 352।।

अर्थ: जो तृष्णा रहित, परिग्रह रहित है, जो भाषा और काव्य को जानता है, जो व्याकरण को जानता है, वह निश्चय ही अंतिम शरीर वाला तथा महाप्राज्ञ है।

तृष्णा रहित महाप्राज्ञ का यह अंतिम जीवन होगा
मार की कथा

शास्ता ने धर्म के तथ्यों को स्पष्ट किया, जीवन के सही उद्देश्यों की चर्चा की और इस प्रकार राजा को ढाढ़स बँधाया। राजा शान्त हुए। भिक्षुसंघ को बुलाकर प्रव्रज्या के नियमों में राजा शुद्धोदन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया। आगे से माता-पिता की अनुमति के बिना बच्चों को भिक्षु संघ में भिक्षु नहीं बनाया जाएगा।

लेकिन राहुल तो प्रव्रजित हो गए थे। उनके ऊपर यह नियम लागू नहीं हो सकता था। वे विहार में रहने लगे। वे भिक्षाटन में सदा पिता के साथ ही जाते ।

एक दिन बहुत सारे भिक्षु जेतवन विहार आ पहुँचे। राहुल के कमरे में उनके रात्रि विश्राम की व्यवस्था की गई। राहुल को कहीं और सोना था। और कहीं स्थान न देखकर राहुल ने गंधकुटी के बाहर ही अपना आसन लगा लिया। उस समय आयुष्मान राहुल को अर्हत्व प्राप्त किए एक वर्ष भी नहीं हुआ था। मार यह सब देख रहा था। उसने सोचा, "श्रमण गौतम की दुःखती अंगुली (पुत्र) बाहर पड़ी हुई है। अपने आराम से गंधकुटी में सोये हुए हैं। क्यों न अँगुली को दुःख दिया जाए, शरीर को स्वतः ही दुःख का अनुभव होने लगेगा।"

ऐसा सोचकर मार ने एक विशाल हाथी का रूप ले लिया और वहाँ आकर अपनी सूँड़ से राहुल के सिर पर प्रहार किया तथा जोर से चिंघाड़ा। शास्ता ने अन्दर से ही सब कुछ देख लिया था। मार के असली स्वरूप को वे समझ गए थे। अतः उन्होंने मार से कहा, "मार ! तुम्हारे जैसे लाखों मार भी आ जायें तो वे मेरे पुत्र को किसी प्रकार भयभीत नहीं कर सकते क्योंकि मेरा पुत्र निर्भीक, तृष्णा रहित, महाशक्तिशाली और महाप्राज्ञ है।" तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो, सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं।।353।।

अर्थ: मैं राग आदि सभी को परास्त कर चुका हूँ। मैं सब कुछ जानने वाला हूँ। सभी धर्मों (तृष्णा, दृष्टि आदि) में अलिप्त हूँ। सब कुछ त्याग चुका हूँ, तृष्णा के नाश से विमुक्त हूँ। परम ज्ञान को स्वयं ही प्राप्त कर मैं किसको अपना उपाध्याय या आचार्य बताऊँ ?

बुद्ध कौन है ?
उपक आजीवक की कथा

स्थान : अन्तरामग्ग

बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। कुछ दिन सोचते रहे, "इस ज्ञान को लोगों में किस प्रकार वितरित किया जाए" क्योंकि उन्होंने पाया कि संसार की ऐसी स्थिति थी कि 'पिंजड़े का दरवाजा खुला है पर पंछी बाहर आना नहीं चाहता।' वे उस समय तक इसी चिंतन में खोये रहे, जब तक धरती ने कराहकर नहीं कहा, "शास्ता ! अब आप उठें। बहुत विलंब हो चुका। सारी धरती पीड़ा से कराह रही है। उस पीड़ा को आप दूर करें।" तब शाक्य मुनि ने अपने मन में विचार किया कि अपने ज्ञान को सबसे पहले किसके साथ बाँटूँ ? अपने पूर्व गुरुओं की स्मृति हुई। पर उन्हें मालूम था कि उनके गुरू आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त आदि शरीर त्याग चुके थे। इसके बाद उनकी दृष्टि में पंचवर्गीय भिक्षु आए। उन्होंने सोचा कि अपना ज्ञान सर्वप्रथम उनके साथ ही बाँटना चाहिए। उन्होंने इन भिक्खुओं के बारे में पता लगाया तो पता चला कि ये वाराणसी के पास मृगदाव (ऋषिपतन, अर्थात् इसपत्तन) में रह रहे हैं। अतः बोधगया से बुद्ध वाराणसी की ओर चल पड़े।

रास्ते में उनकी भेंट उपक नामक एक आजीवक से हो गई। वह शरीर से नंगा था। उसने बुद्ध को देखकर पूछा, "आपके संपूर्ण शरीर से आभा ही आभा झलक रही है। आप अति शांत और प्रसन्नचित दिखाई दे रहे हैं। आप किस धर्म के अनुयायी हैं ? आपके गुरू कौन हैं ? " शास्ता ने कहा, "मेरा न तो कोई धर्म है और न कोई आचार्य ही है। मैं सभी धर्मों से ऊपर हूँ। सबों का त्याग कर दिया है। मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है। मैं स्वयं अपना गुरू, अपना मार्ग हूँ। मैं विमुक्त हूँ। मेरे समान कोई दूसरा नहीं। मैं अर्हत हूँ, मैं बुद्ध हूँ।"

इन बातों को सुनकर आजीवक ने तथागत के इन वचनों का न तो अभिनन्दन ही किया और न विरोध। हाँ, उसने अपना सिर हिलाया, जिह्वा निकालकर उपेक्षा का भाव दिखाया और पगडंडी पकड़ उधर चला गया जिधर शिकारियों का गाँव था।

गाथा: सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।। 354।।

अर्थ: धर्म का दान सभी दानों से बढ़कर है, धर्म-रस सभी रसों से बढ़कर है, धर्म-रति सभी रतियों से बढ़कर है और तृष्णा का क्षय सब दुःख क्षयों से बढ़कर है।

सर्वश्रेष्ठ क्या है ?
शक के प्रश्न की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार त्रायस्त्रिंश देवलोक में देवतागण आपस में चर्चा कर रहे थे। उनकी चर्चा का विषय था : (1) दानों में कौन सा दान श्रेष्ठ है ? (2) रसों में कौन सा रस श्रेष्ठ है ? (3) अनुरागों में कौन सा अनुराग श्रेष्ठ है ? तथा (4) तृष्णा क्षय (अर्हत्व) को श्रेष्ठ क्यों कहा जाता है ? वे सभी आपस में मिलकर भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं ढूँढ़ पाये। बहुत समय तक इन प्रश्नों पर शोध करते रहे पर उचित उत्तर नहीं खोज पाये।

अंत में चार महाराजिक देवताओं ने कहा, "हम भी इसका उत्तर नहीं जानते। पर हमारा राजा बहुत ज्ञानी है। वह हजार लोगों के प्रश्न का भी एक साथ उत्तर दे सकता है। वह प्रज्ञा और प्रण्य में भी हम सबों से श्रेष्ठ है। अच्छा होता हम इन प्रश्नों के समाधान के लिए उसके पास चलते।"

वे सब मिलकर एक साथ देवराज इन्द्र के पास गए। देवताओं ने अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी। इन्द्र ने इन प्रश्नों को सुना तो कहा, "ये सारे प्रश्न बुद्धज्ञान विषयक हैं। इनका उत्तर बुद्ध के अलावा और कोई नहीं दे सकता। अच्छा हो हम सब चलकर उनसे ही इनका उत्तर पूछें।" "शास्ता इस समय कहाँ होंगे ? " "जेतवन में।" "तो जेतवन ही चला जाए।" ऐसा कहकर इन्द्र के नेतृत्व में सभी देवतागण रात्रि में शास्ता के सम्मुख प्रकट हो, उन्हें सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गए। देवताओं की उपस्थिति से सारा जेतवन आलोकित हो रहा था। शाक्य मुनि ने पूछा, "देवराज इन्द्र ! इतने बड़े देवताओं के समूह के साथ इतनी रात गए आने का क्या प्रयोजन है ? " शक्र ने तब उन प्रश्नों को रखा तथा उत्तर के लिए प्रार्थना की।

शाक्य मुनि ने उनकी शंका का समाधान करते हुए कहा, "तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर हैं : (1) सभी दानों में धर्मदान श्रेष्ठ है। (2) सभी रसों में धर्म रस श्रेष्ठ है (3) सभी अनुरागों में धर्म के प्रति अनुराग श्रेष्ठ है तथा (4) तृष्णा-क्षय अर्हत्व प्राप्ति कराने के कारण श्रेष्ठ कहलाता है। यह सब समझाते हुए उन्होंने यह गाथा कही।

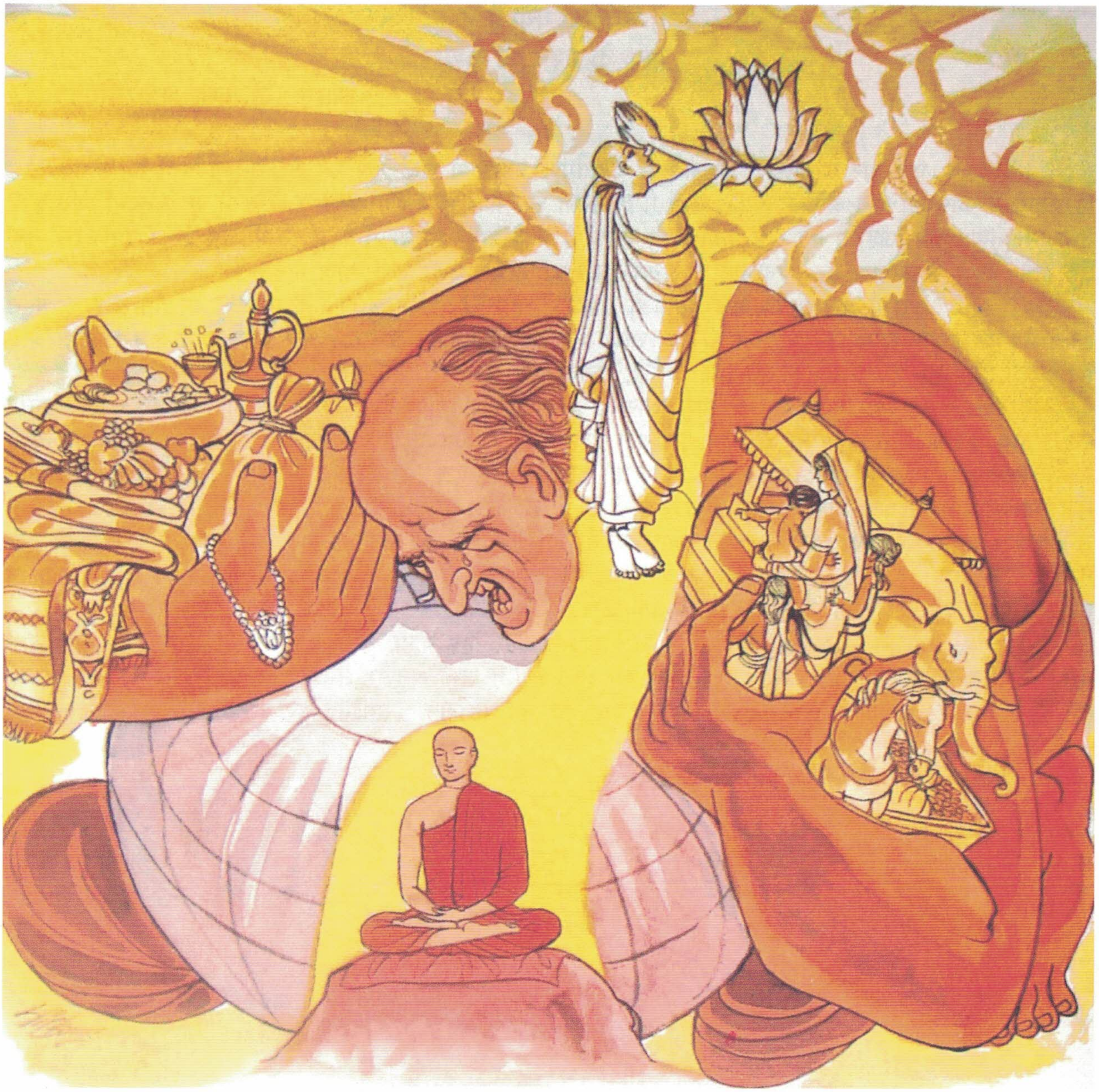

गाथा: हनन्ति भोगा दुम्मेधं, नो च पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो, हन्ति अञ्ञेव अत्तनं।। 355।।

अर्थ: यदि कोई व्यक्ति संसार से पार जाने की इच्छा नहीं करता है तो विषय भोग उस दुर्बुद्धि पुरुष का नष्ट कर डालते हैं। भोग की तृष्णा में पड़कर दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने आप को ही मार डालता है।

भोग की तृष्णा से बचें : आपको ही मार डालेगी
अपुत्रक श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा प्रसेनजित धर्म-प्रवचन सुनने कई दिनों बाद पहुँचे। राजा ने बुद्ध को स्वयं ही विलम्ब का कारण स्पष्ट करते हुए बताया, "श्रावस्ती का एक श्रेष्ठी मर गया था। उसकी कोई संतान नहीं थी। अतः उसकी सारी सम्पत्ति को राजकीय खजाने में लाकर रखना था। इसी में सात दिन लग गए। उसके पास इतनी अधिक सम्पत्ति थी। अब सारे धन को राजकीय खजाने में रखवा दिया है तब फुर्सत मिली है तो आपके दर्शन को उपस्थित हुआ हूँ।" "लेकिन एक बड़े आश्चर्य की बात थी। इतना धन होने के बावजूद भी वह श्रेष्ठी कभी स्वादिष्ट भोजन नहीं करता था, रूखी-सूखी ही खाता था, फटे - पुराने कपड़े पहनता था तथा पुराने रथों पर ही चलता था।"

शास्ता ने यह बात सुनी तो राजा को बताया, "महाराज ! यह सब पूर्व कर्मों का फल है।" राजा के पूछने पर शास्ता ने उसके पूर्वकाल की कथा सुनाई।

पूर्वकाल में इसने तगरशिखी नामक प्रत्येक बुद्ध को दान दिलवाया था। इससे यह धन-सम्पत्ति वाला हुआ। लेकिन दान देने के बाद इसे अफसोस हुआ । अतः इसकी भूख तथा वस्त्र आदि पहनने की इच्छा जाती रही। संपत्ति के लोभ में इसने अपने भतीजे को जंगल में ले जाकर उसकी हत्या कर दी । इस कारण उसे संतान का सुख प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक बुद्ध को दान देने के कारण वह इतनी संपत्ति वाला बना। पर यहाँ भी इसने कोई दान-पुण्य नहीं किया। इसलिए मृत्यु के बाद उसने नरक में जन्म लिया है।

तब बुद्ध ने यह गाथा सुनाई।

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 356।।

अर्थ: खरपतवार खेतों का दोष है। राग प्रजा का दोष होता है, इसलिए राग रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

वीतराग को दान महान
देवपुत्र अंकुर की कथा

स्थान : पण्डुकम्बलसिला

एक समय बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक में पाण्डुकमल शिला पर बैठे थे। उस समय देवताओं में चर्चा चली कि इन्द्रक ने एक बार भिक्षा चारिका करते हुए स्थविर अनिरुद्ध को एक कलछुल भर भात की भिक्षा दी थी। इन्द्रक का यह छोटा सा पुण्य अंकुर के कई वर्षों के दान-पुण्य से बहुत अधिक प्रभावशाली रहा। अंकुर ने कई वर्षों तक चूल्हों की लम्बी कतार लगाकर, उनमें लगातार स्वादिष्ट भोजन बनवाकर दान दिया था। पर उसका इतना बड़ा दान इन्द्रक के उस एक कलछुल भात के सामने फीका पड़ गया। 'इन्द्रक को यह महाफल क्यों और कैसे मिला ?' सभी देवताओं के बीच यही चर्चा का विषय था। "यह कैसा गणित था ? दोनों दान के पीछे क्या रहस्य था ? कौन सी तर्क-सारणी काम कर रही थी ? "

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 357।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिए द्वेष रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

दोषरहित को दिया दान श्रेष्ठ
देवपुत्र अंकुर की कथा

देवतागण ने आपस में मंत्रणा की । विचार-विमर्श किया। पर कोई उत्तर नहीं ढूँढ़ पाये। तब इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने शास्ता के पास पहुँच गए। शास्ता ने अंकुर को संबोधित करते हुए कहा, "अंकुर ! दान तो सोच समझकर विवेकपूर्ण ढंग से ही करना चाहिए। अगर दान सोच समझकर, विवेकपूर्ण ढंग से सही पात्र को दिया जाता है तो वह अच्छे खेत में ठीक तरह बोये हुए बीज की तरह फलदायी होता है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो उस दान का महत्व नहीं रह जाता। तुमने वैसा नहीं किया। अतः तुम्हारे द्वारा दिया गया दान प्रभावशाली नहीं रहा।"

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 358।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, इस प्रजा का दोष मोह है, इसलिए मोह रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

मोहरहित को दिया दान महान
देवपुत्र अंकुर की कथा

"दान ही सब कुछ नहीं है। दान जिसे दिया जाता है, दान प्राप्त करने वाला पात्र भी महत्वपूर्ण है। मन की किस दशा से दान दिया जाता है वह भी महत्वपूर्ण है। जैसे खेतों में घास-पात, खर-पतवार आदि उगी हो और उसी के ऊपर अगर बीज फेंक दिया जाये तो वे बीज व्यर्थ जायेंगे। खर-पतवार उन बीजों को खा जायेगी और वे नहीं उगेंगे। पैदा भी होंगे तो बढ़ नहीं पायेंगे। खर-पतवार से ही दब जायेंगे, खो जायेंगे। इसी प्रकार मनुष्य की कमजोरी, उसका दोष है- राग। अगर रागी को दान दिया गया तो दिया हुआ दान उस राग में ही लुप्त हो जायेगा। उल्टे यह उसका राग ही बढ़ायेगा। इसलिए अगर दान देना है तो वीतरागी को देना उचित है।"

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु, दिन्नं होति महप्फलं।
तिणदोसानि खेत्तानि, तहणादोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीततण्हेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 359।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिए इच्छा रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

इच्छारहित को दिया दान महाफलदायी
देवपुत्र अंकुर की कथा

उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि सामा, कोदो आदि निरर्थक घास पहले की खेती वाले या बाद की खेती वाले खेतों को बेकार कर उनमें अधिक अन्न उत्पन्न नहीं होने देते। इसी प्रकार प्राणियों के चित्त में उत्पन्न हुआ राग प्राणियों को दूषित कर देता है। वैसे लोगों को दान देना या नहीं देना- दोनों ही बराबर है। अर्हतों को दिया गया दान ही फलदायी हो सकता है। शाक्य मुनि ने स्पष्ट करते हुए बताया, "सोच समझकर, विवेकपूर्ण ढंग से दान करना चाहिए। तभी वह दान अधिक फल दायक होता है। विवेकपूर्ण दान की बुद्ध भी प्रशंसा करते हैं। इस जीव लोक में जो दान देने योग्य पात्र हैं उन्हीं को दिया हुआ दान अधिक फलप्रद होता है; जैसे अच्छे खेत में भली भाँति बोया हुआ बीज अधिक फलदायी होता है।"

तब बुद्ध ने ये चार गाथायें कहीं।

DHAMMAPADA
TANHA VAGGA

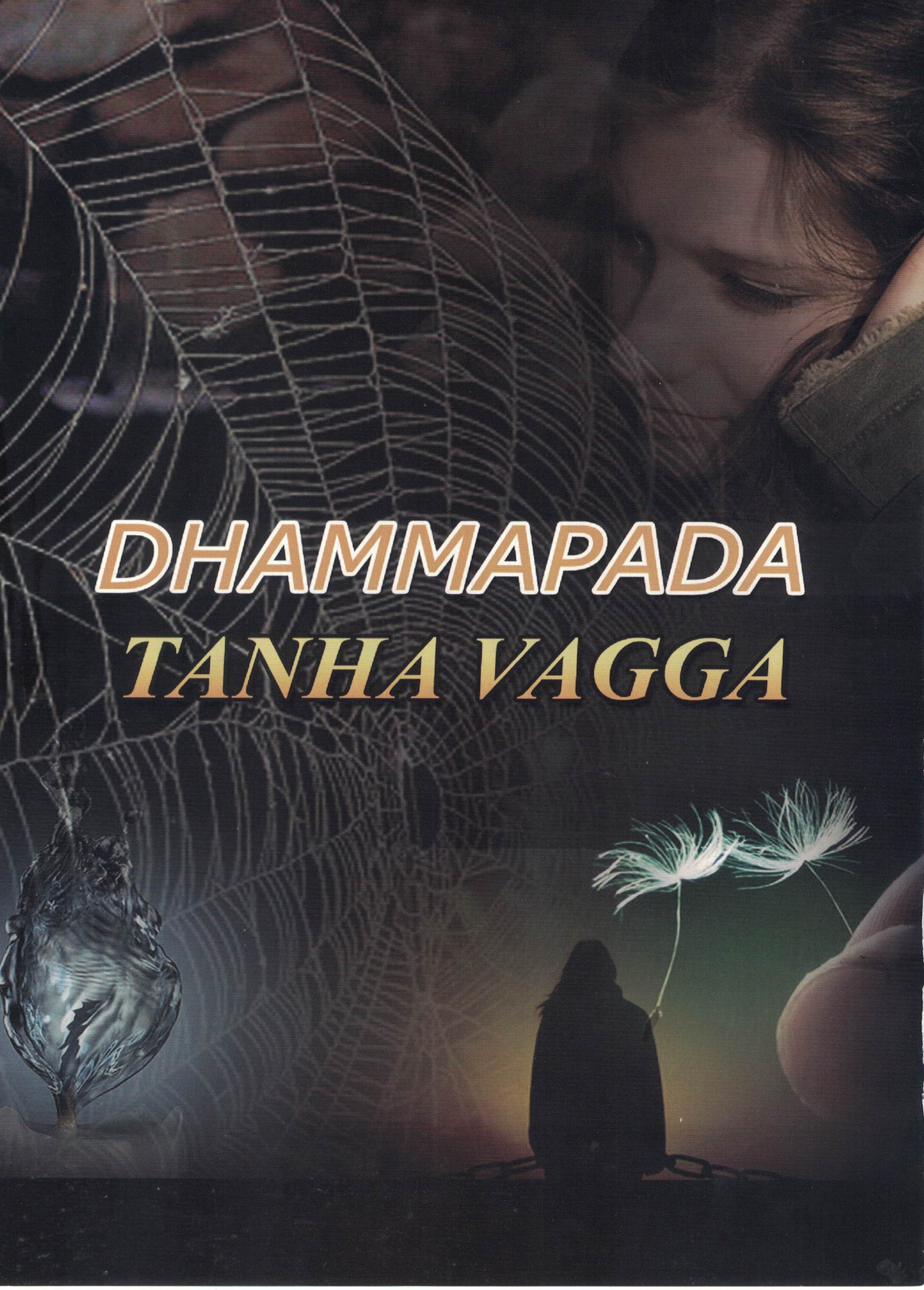

सच्चा संत कौन ?
धम्मपद
भिक्खु वर्ग
गाथा और कथा

सच्चा संत कौन ?

धम्मपद

भिक्खु वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

भिक्खु वर्ग

कम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	पॉच भिक्षुओं की कथा	360	किसका संयम हितकारी है ?	137
2.	पॉच भिक्षुओं की कथा	361	सभी इन्द्रियों का संयम हितकारी है	139
3.	हंस मारने वाले भिक्षु की कथा	362	भिक्षु कौन है ?	141
4.	कोकालिक भिक्षु की कथा	363	किसका भाषण मधुर होता है ?	143
5.	धम्माराम थेर की कथा	364	बुद्ध का सच्चा शिष्य कौन ?	145
6.	विपक्षसेवक भिक्षु की कथा	365	आप भला तो जग भला	147
7.	विपक्षसेवक भिक्षु की कथा	366	अपनी भलाई : अपने हाथों में	149
8.	पंचग्र–दायक ब्राह्मण की कथा	367	सच्चा भिक्षु कौन है ?	151
9.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	368	कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?	153
10.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	369	आत्मभाव नाम की नाव उलीचें	155
11.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	370	तृष्णा रूपी बाढ़ को पार करने वाला कौन है ?	157
12.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	371	भिक्षु ! सावधान ! सावधान !!	159
13.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	372	ध्यान और प्रज्ञा द्वारा निर्वाण की प्राप्ति	161
14.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	373	लोकोत्तर (दिव्य) आनन्द कैसे प्राप्त करें ?	163
15.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	374	ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत कैसे प्राप्त करें ?	165

16.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	375	भिक्षु का कर्त्तव्य	167
17.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	376	भिक्षु दुःख का अंत कैसे करेगा ?	169
18.	पाँच सौ भिक्षुओं की कथा	377	कुम्हलाये फूलों की तरह राग द्वेष छोड़ देना	171
19.	शान्तकाय थेर की कथा	378	उपशान्त भिक्षु कौन है ?	173
20	नंगलकुल थेर की कथा	379	कौन भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा ?	175
21.	नंगलकुल थेर की कथा	380	अपने आप को संयत में रखें	177
22.	वक्कलि स्थविर की कथा	381	सुखस्वरूप शान्त–पद कैसे प्राप्त करें ?	179
23.	सुमन सामनेर की कथा	382	अर्हत्व : उम्र (आयु) से क्या लेना–देना ?	181

गाथा: चक्खुना संवरो साधु, साधु सोतेन संवरो।
घानेन संवरो साधु, साधु जिव्हाय संवरो।। 360।।

अर्थ: आँखों का संयम करना अच्छा है, कान का संयम करना अच्छा है, नाक का संयम अच्छा है और जिह्वा का संयम अच्छा है।

किसका संयम हितकारी है ?
पाँच भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि उन दिनों जेतवन में विराजते थे। वहाँ पाँच भिक्षु ऐसे थे जिनमें से प्रत्येक सिर्फ एक-एक इन्द्रिय पर संयम बरत पाता था। जैसे एक भिक्षु अपनी आँखों पर संयम रखता था, अन्य इन्द्रियों पर नहीं। उसी प्रकार दूसरा अपने कानों के प्रति अधिक सतर्क था पर दूसरी इन्द्रियों की उपेक्षा करता था; आदि, आदि।

एक दिन उन भिक्षुओं में चर्चा छिड़ गई कि शरीर की कौन सी इन्द्रिय सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सभी अपने-अपने इन्द्रिय संयम को सबसे महत्वपूर्ण बतलाने लगे। वाद विवाद बढ़ता गया। कोई भी दूसरी इन्द्रियों को महत्वपूर्ण मानने को तैयार नहीं था। जब बात आपस में सुलझती हुई नजर नहीं आई तो उन पाँच भिक्षुओं ने विचार किया कि हमें शास्ता के पास चलकर अपनी शंका का समाधान ढूँढ़ना चाहिए।

गाथा: कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु, सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 361।।

अर्थ: शरीर का संयम अच्छा है, वाणी का संयम अच्छा है, मन का संयम अच्छा है। सभी इन्द्रियों पर संयम रखने वाला भिक्षु सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

सभी इन्द्रियों का संयम हितकारी है
पाँच भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

उन्होंने तथागत से पूछा, "भन्ते ! हम सभी एक-एक इन्द्रिय का संयम कर रहे हैं और हमें लगता है कि हमारी इन्द्रिय का संयम ही सबसे कठिन है। आप कृपा करके हमें बताइये कि किस इन्द्रिय का संयम सबसे कठिन है।"

शास्ता ने उनके उत्साह को कम नहीं किया और भिक्षुओं को समझाया, "यह नहीं कहा जा सकता है कि फलाँ इन्द्रिय का संयम सबसे कठिन है और फलाँ इन्द्रिय का संयम सबसे आसान। वस्तुतः सभी इन्द्रियों अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय का संयम करना कठिन चुनौती है। तुम लोग आज पहली बार इस प्रकार के विवाद में नहीं पड़े हो। पहले भी तुमने पंडितों की बात नहीं मानी और इसी प्रकार के वाद-विवाद में फँसते रहे और अपनी जान गँवा बैठे।" भिक्षुओं ने एक साथ पूछा, "यह कैसे ? भन्ते ! विस्तार से कथा सुनाइये।"

तब बुद्ध ने उन्हें तक्षशिलाजातक की कथा सुनाई। "उस काल में भी तुम पाँचों राज्य प्राप्ति के लिए बोधिसत्व के साथ अपने हाथों में शस्त्र लेकर उनके। राक्षसियों ने रास्ते में अनेक मनमोहक जाल फैला रखे थे। पंडित बोधिसत्व के समझाने पर भी उनकी बात न मानकर तुम पाँचों उन राक्षसियों के जाल में फँस गए और अपना जीवन खो बैठे। इसके विपरीत तुम्हारे ही साथ चलता हुआ दूसरा व्यक्ति उन मनमोहक जालों मे नहीं फंसा। वह इन्द्रियों पर कुशलतापूर्वक संयम रखकर तक्षशिला का राजा बन गया। वह राजा मैं ही था।"

उस जातक से मेल बैठाते हुए शास्ता ने ये दो गाथायें कहीं।

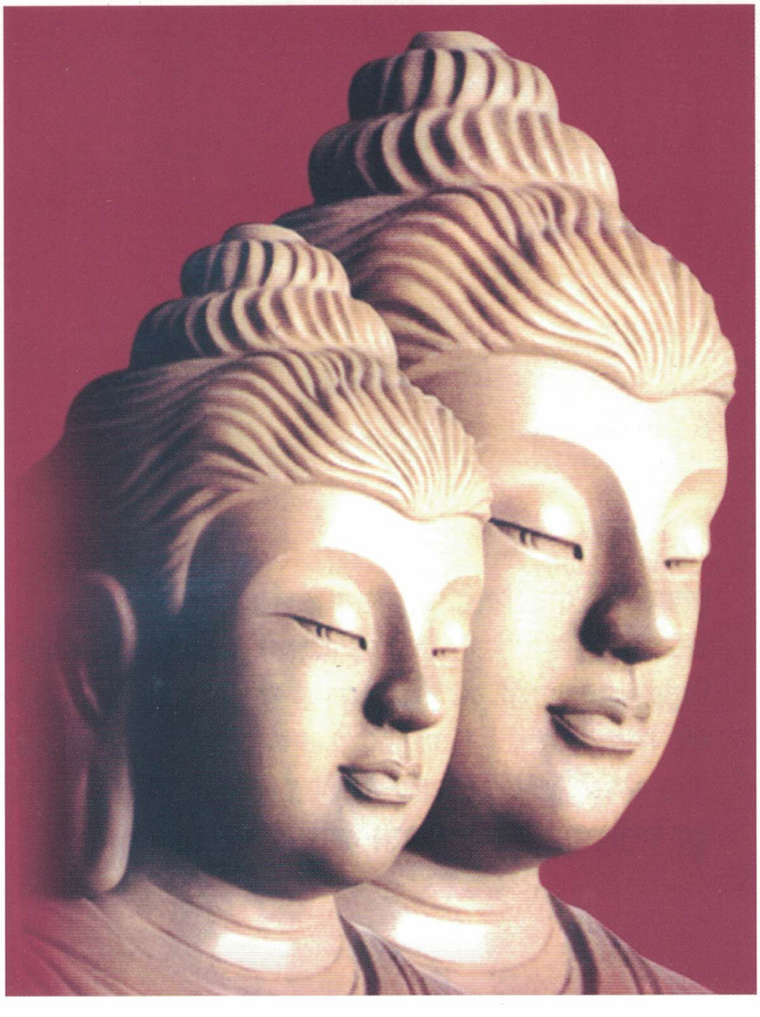

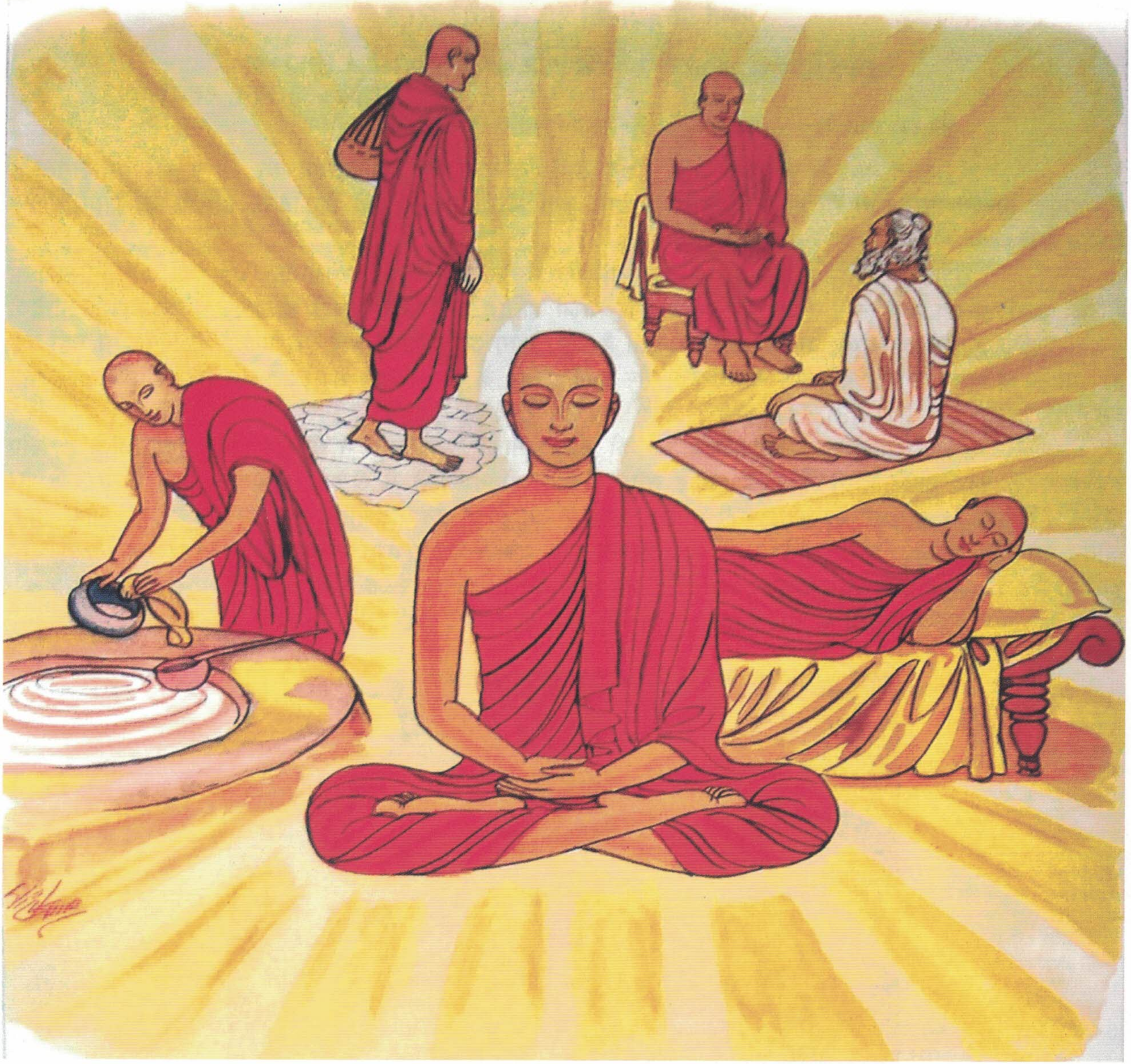

गाथा: हत्थसंयतो पादसंयतो, वाचासंयतो संयतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं।। 362।।

अर्थ: विद्वान लोग उसी को 'भिक्षु' कहते हैं जो अपने हाथों और पैरों पर संयम रखता है। जो अपनी वाणी पर संयम रखता है, वही श्रेष्ठ संयमी है। जो समाधि में स्थित है और एकांत जीवन बिताते हुए संतोषपूर्वक रहता है वही वस्तुतः भिक्षु है।

भिक्षु कौन है ?
हंस मारने वाले भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार दो युवक भिक्षु अचिरावती नदी के किनारे स्नान कर धूप का आनन्द ले रहे थे। ऊपर आकाश में हंसों के झुंड उड़ रहे थे। दोनों युवकों में एक पत्थर से निशाना लगाने में बहुत ही तेज था। उसने अपने मित्र से एक हंस की ओर इंगित करते हुए कहा, "मेरा निशाना इतना अचूक है कि इस हंस की आँख वेध सकता हूँ।" "ऐसा नहीं हो सकता", दूसरे ने कहा।

निशानेबाज भिक्षु ने एक पत्थर उठाया और उस निरीह पक्षी पर निशाना लगाते हुए पत्थर चला दिया। वह पत्थर उस निर्दोष पक्षी की एक आँख में लगा और दूसरी आँख बेधता हुआ बाहर निकल गया। हंस तड़पता हुआ धरती पर आ गिरा।

भिक्षुओं ने उस निशानेबाज भिक्षु के इस काम की बड़ी निन्दा की और शाक्य मुनि को भी इसकी जानकारी दी । उन्होंने उस भिक्षु को बुलाया और उसे धिक्कारा, "भिक्षु ! तुम तो निर्वाण के मार्ग पर अग्रसर हो, बुद्धशासन में प्रतिष्ठित हो, तुमने ऐसा कैसे कर डाला ? पुराने जमाने में बुद्धावतार से पहले बुद्धिमान लोग अल्प मात्र प्रमाद होने पर भी दु:ख प्रकट करते थे और पश्चाताप किया करते थे पर इतना बड़ा अपराध करने पर भी तुम्हें न तो जरा दु:ख ही हुआ और न जरा भी पश्चाताप।"

भिक्षुओं ने अतीत कथा सुनाने का आग्रह किया। तब उन्होंने कुरुधम्मजातक की कथा सुनाई और बोले, "प्राचीन काल में पंडित अगर थोड़ा सा भी शीलभंग करते थे तो तुरंत पश्चापात किया करते थे। पर तू जरा भी पश्चाताप प्रकट नहीं कर रहा है। तू ने बहुत ही अनुचित अपराध किया है। भिक्षु को तो हाथ, पैर और वाणी से संयमित व्यवहार करना चाहिए।"

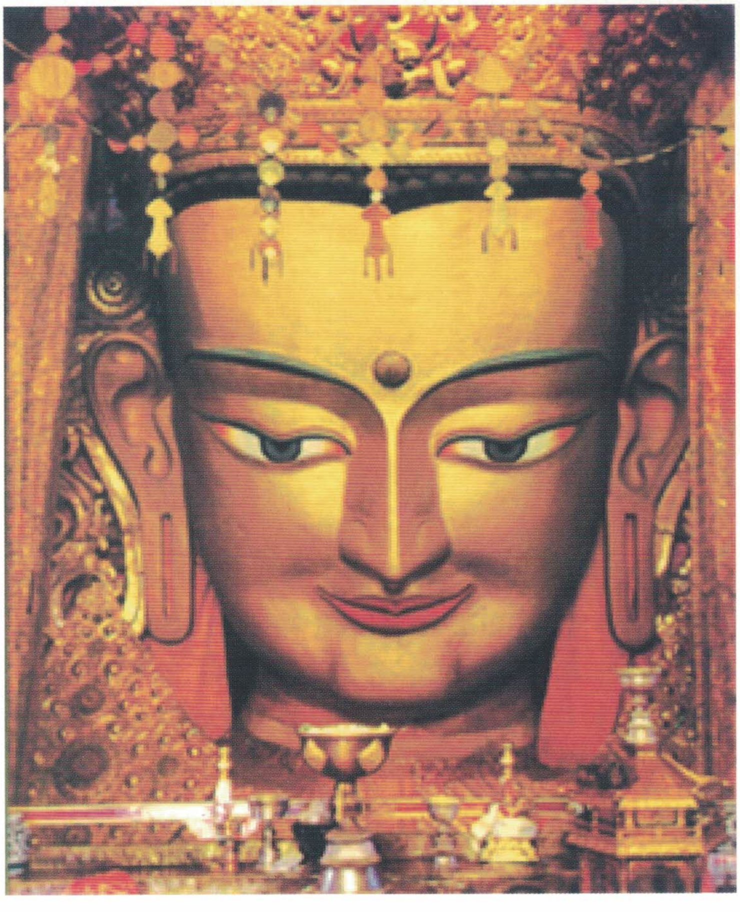

गाथा: यो मुखसंयतो भिक्खु, मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति, मधुरं तस्स भासितं।। 363।।

अर्थ: जो भिक्षु वाणी से संयमित है, मितभाषी है और मनन करके बोलता है जो उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रकाशित करता है, उसका भाषण मधुर होता है।

किसका भाषण मधुर होता है?
कोकालिक भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार कोकालिक भिक्षु ने अग्रश्रावकों, सारिपुत्र और मोग्गलान को अपशब्द कहा। इसके कारण उसे पृथ्वी तुरंत ही निगल गई।

बुद्ध को यह बात बताई गई तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! यह भिक्षु कोकालिक आज ही नहीं, पहले भी अपनी वाणी के दुरुपयोग से प्राण गँवा बैठा था। पर उस गलती से भी उसने कुछ नहीं सीखा।" तब भिक्षुओं ने वह कथा सुनाने का आग्रह किया।

शाक्य मुनि ने उन्हें प्राचीन काल की कच्छप कथा सुनाई। पुराने जमाने में हिमालय की तलहटी पर एक सरोवर में एक कछुआ रहता था। हंस के दो बच्चे भोजन की तलाश में उधर आने लगे। धीरे-धीरे उनका कछुए से परिचय बढ़ता गया। एक दिन हंस के बच्चों ने कहा, "हिमालय प्रदेश में चित्रकूट पर्वत के पास एक रमणीय स्थान है। क्या तुम हमारे साथ वहाँ चलोगे ? " "मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ ? " "अगर तुम अपना मुँह बंद रख सको तो हम तुम्हें वहाँ ले चल सकते हैं।" "हाँ, मैं अपना मुँह बंद रखूँगा, तुम मुझे वहाँ ले चलो।" तब वे हंस कहीं से एक डंडा ले आए और डंडे का मध्य भाग कछुए के मुँह में पकड़ा दिया, लकड़ी के दोनों सिरों को उन्होंने अपने मुँह से पकड़ लिया और कछुए को साथ ले उड़े।

हंसों द्वारा इस प्रकार कछुए को डंडे के सहारे ले जाते देखकर बच्चों का झुंड उनके पीछे लग गया और चिल्लाने लगा, "कितने आश्चर्य की बात है। है न ? " कछुआ इन बातों को सुन रहा था। अपने वायदे के अनुसार उसे मुँह बंद रखना चाहिए था। निन्दा सुनने के बाद भी वाणी का संयम रखना चाहिए था। पर वह ऐसा नहीं कर पाया। उसने उन बालकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "दुष्ट बालकों ! अगर मेरे मित्र मुझे इस प्रकार ले जा रहे हैं तो तुम्हें क्या कष्ट है ? " डंडा मुँह से छूटा, कछुआ धरती पर गिर प्राण गवां बैठा।

शास्ता ने स्पष्ट किया, " श्रेष्ठजन ! इस कहानी से शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य को कुशल वाणी ही बोलनी चाहिए और वह भी उचित समय पर। समय की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। आपलोगों ने देख लिया कि अगर कछुए ने वाणी का उल्लंघन नहीं किया होता तो फिर वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।" भिक्षु के गुणों को समझाते हुए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! वाणी पर संयम रखकर सबों के साथ नम्रतापूर्वक एक समान व्यवहार करना चाहिए।"

टिप्पणी : कहते हैं कि लोग सोच ही रहे थे कि मैं मूर्ख था या नहीं। मैंने मुँह खोला और साबित कर दिया कि मैं मूर्ख था।

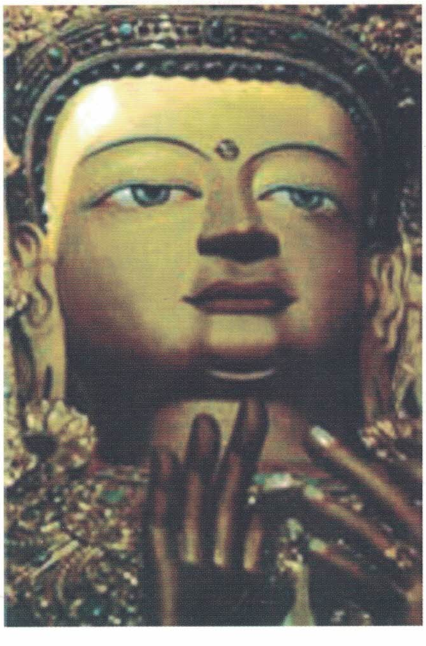

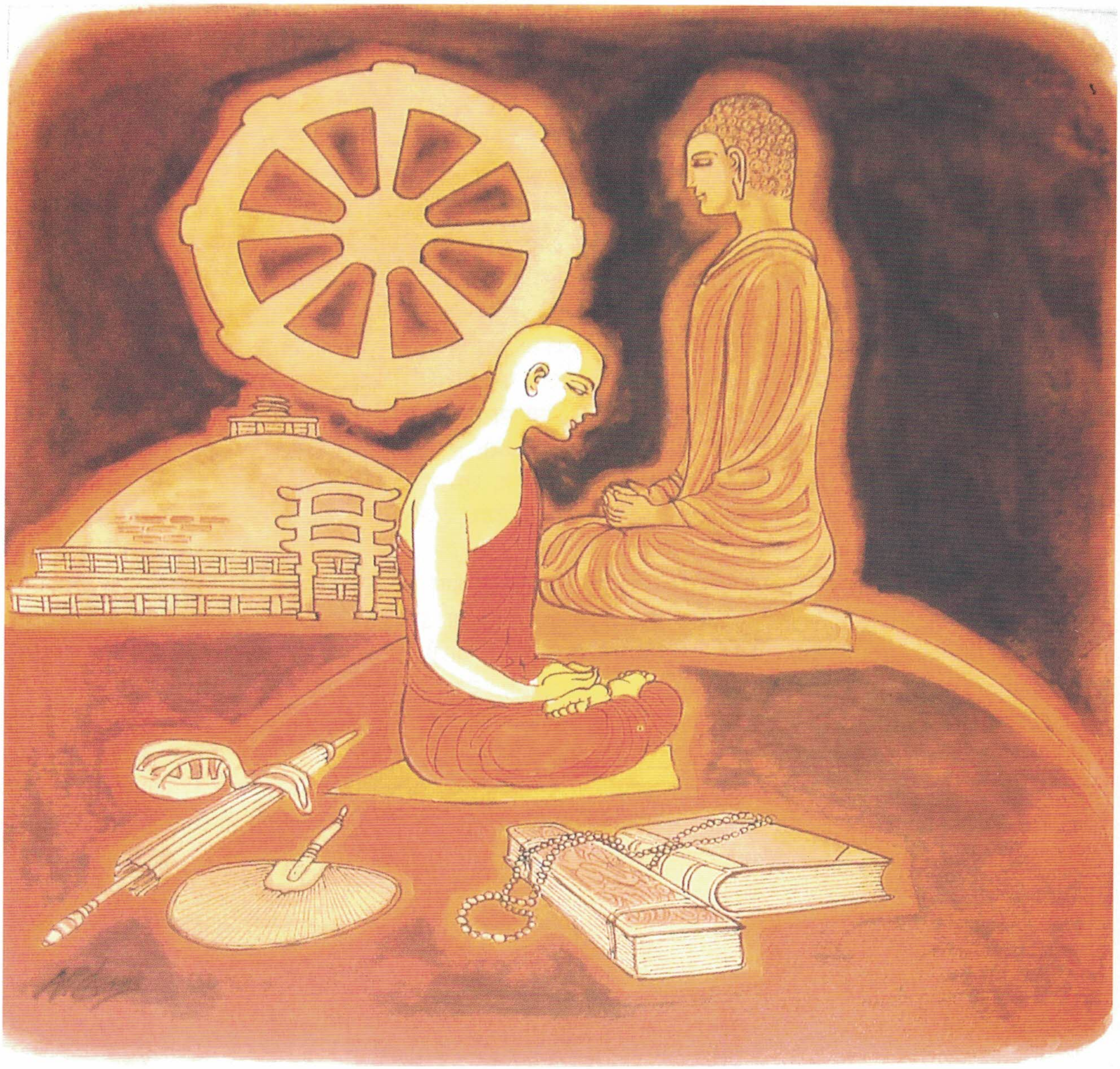

गाथा: धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति।। 364।।

अर्थ: धर्म में ही रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करने वाला, धर्म का अनुसरण करने वाला भिक्षु सच्चे धर्म के पथ से च्युत नहीं होता।

बुद्ध का सच्चा शिष्य कौन ?
धम्माराम थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जब से शाक्य मुनि ने घोषणा की, 'आज से चार महीने में मेरा महापरिनिर्वाण हो जायेगा,' अनेक भिक्षु उनके आस-पास ही रहने लगे। साधारण भिक्षु शास्ता के पार्थिव शरीर से बिछड़ने की सोचकर अपने आँसू रोक नहीं पा रहे थे। अर्हत भिक्षुओं में भी धर्मसंवेग हो गया। सभी अपना-अपना समूह बनाकर विचार करने लगे, 'अब आगे क्या होगा ? हमें आगे क्या करना चाहिए,' आदि, आदि।

धम्माराम नाम का एक भिक्षु इनसे भिन्न था। उसने भी शास्ता के परिनिर्वाण की खबर सुनी। तब उसने सोचा, "शास्ता चार महीनों बाद शरीर त्याग देंगे और इधर एक मैं हूँ जो अभी तक सांसारिक राग और बंधनों से मुक्त नहीं हो पाया हूँ। संसार से मेरी आसक्ति अभी तक छूटी नहीं है। क्यों न मैं शास्ता के रहते ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ ? " यह विचार कर, वह पूर्ण समर्पण के साथ एकाग्रचित्त होकर एकांत साधना करने लगा। वह न तो किसी भिक्षु से मिलता-जुलता था और न किसी से कोई बातचीत ही करता था। वह सिर्फ अपनी साधना में लगा रहता था।

यह देखकर भिक्षुगण शास्ता के पास गए और उनसे शिकायत की, "भन्ते ! धम्माराम आपमें जरा भी श्रद्धा नहीं रखता। जब कभी हम लोग आपके परिनिर्वाण की चर्चा करते हैं तो वह कभी भी उस चर्चा में भाग नहीं लेता है ।" शाक्य मुनि ने उसे बुलाकर पूछा, "भिक्षु ! क्या तुम सचमुच ऐसा करते हो ? " "हाँ भन्ते ! " "पर किस कारण ? " तब धम्माराम ने स्पष्ट किया, "भन्ते ! चार मास बाद आप परिनिवृत्त हो जायेंगे। मेरा सांसारिक राग अभी तक पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है। अतः चाहता हूँ कि कठिन साधना कर आपके परिनिर्वाण से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ।" शाक्य मुनि ने कहा, "साधु ! साधु !! " फिर उन्होंने भिक्षुओं को समझाया, "भिक्षुओं ! तुम सभी को धम्माराम की तरह होना चाहिए। वास्तविक श्रद्धा तो फूल या गंध द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती । वास्तविक श्रद्धा तो धर्म के सही अनुपालन द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है और ऐसा शिष्य मुझे बहुत प्रिय है।" इसे समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही। गाथा सुनकर धम्माराम अर्हत हो गया।

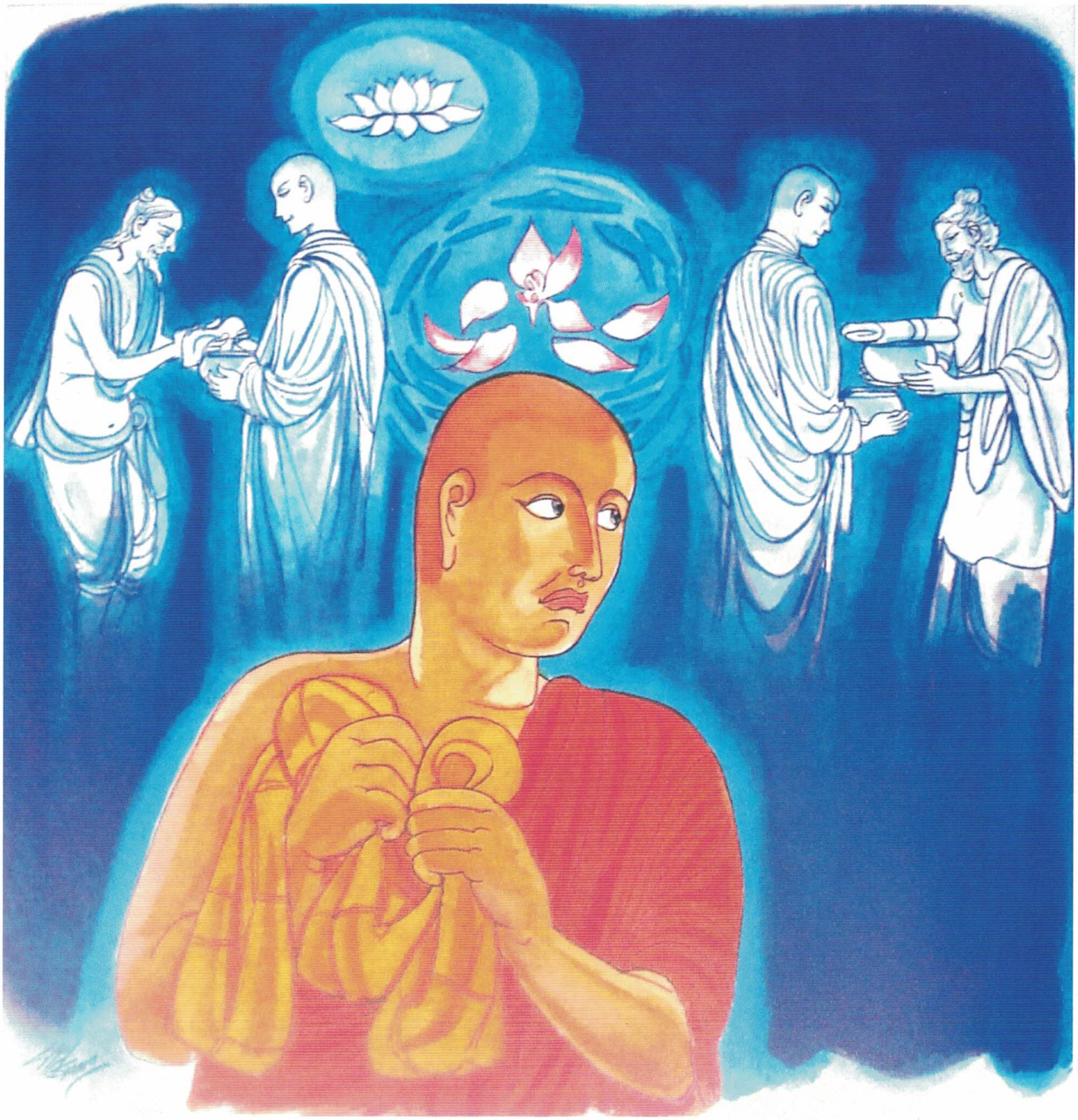

गाथा: सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु, समाधिं नाधिगच्छति।। 365।।

अर्थ: भिक्षु को अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए और न दूसरों के लाभ की स्पृहा (चाह)। दूसरों के लाभ की स्पृहा करने वाला भिक्षु चित्त की एकाग्रता प्राप्त नहीं कर पाता। अत: समाधि (ध्यानादि धर्म) को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।

आप भला तो जग भला
विपक्षसेवक भिक्षु की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

भिक्षु विपक्षसेवक का एक मित्र था जो देवदत्त पक्ष का भिक्षु था। एक दिन विपक्षसेवक भिक्षाटन कर वापस आ रहा था तो वह रास्ते में मिल गया। उसने विपक्षसेवक से पूछा, "कहाँ गये थे ? " "भिक्षाटन के लिए।" "भिक्षा मिली ? " "हाँ मिल गई।" मित्र ने विपक्षसेवक से कहा, "हमारे विहार में बहुत लाभ-सत्कार होता है। तुम भी कुछ समय मेरे ही साथ ठहर जाओ।" उसके आग्रह पर विपक्षसेवक ने उसकी बात मान ली और देवदत्त के विहार में कुछ दिन रुक गया। उसने देवदत्त के सौजन्य से मन से खाया-पीया, आराम किया और फिर कुछ दिनों बाद वेणुवन चला गया।

भिक्षुओं ने उसे वापस आते देखा तो तथागत को सूचित किया, "भन्ते ! यह देवदत्त के पक्ष का भिक्षु है क्योंकि देवदत्त के द्वारा प्राप्त लाभ-सत्कार का उपभोग करता रहा है।" शास्ता ने उससे पूछा, " भिक्षु ! ये भिक्षुगण जो कह रहे हैं क्या वह सही है ? " भिक्षु ने उत्तर दिया, "हाँ भन्ते ! मैं अपने एक भिक्षु मित्र के कहने से वहाँ कुछ समय रुक गया था पर मैं न तो देवदत्त का पक्षधर हूँ और न उसके मत में मेरी कोई रुचि है।" शास्ता ने उसे समझाते हुए कहा, "अरे ! तुम कहते हो कि तुम्हें देवदत्त का मत स्वीकार नहीं है पर घूम रहे हो उन्हीं मतावलम्बियों के ही साथ ! तुम्हारा यह आचरण आज का नहीं है। बल्कि तुम तो पहले भी ऐसा कर चुके हो और न ही आजतक तुमने अपना आचरण सुधारा।

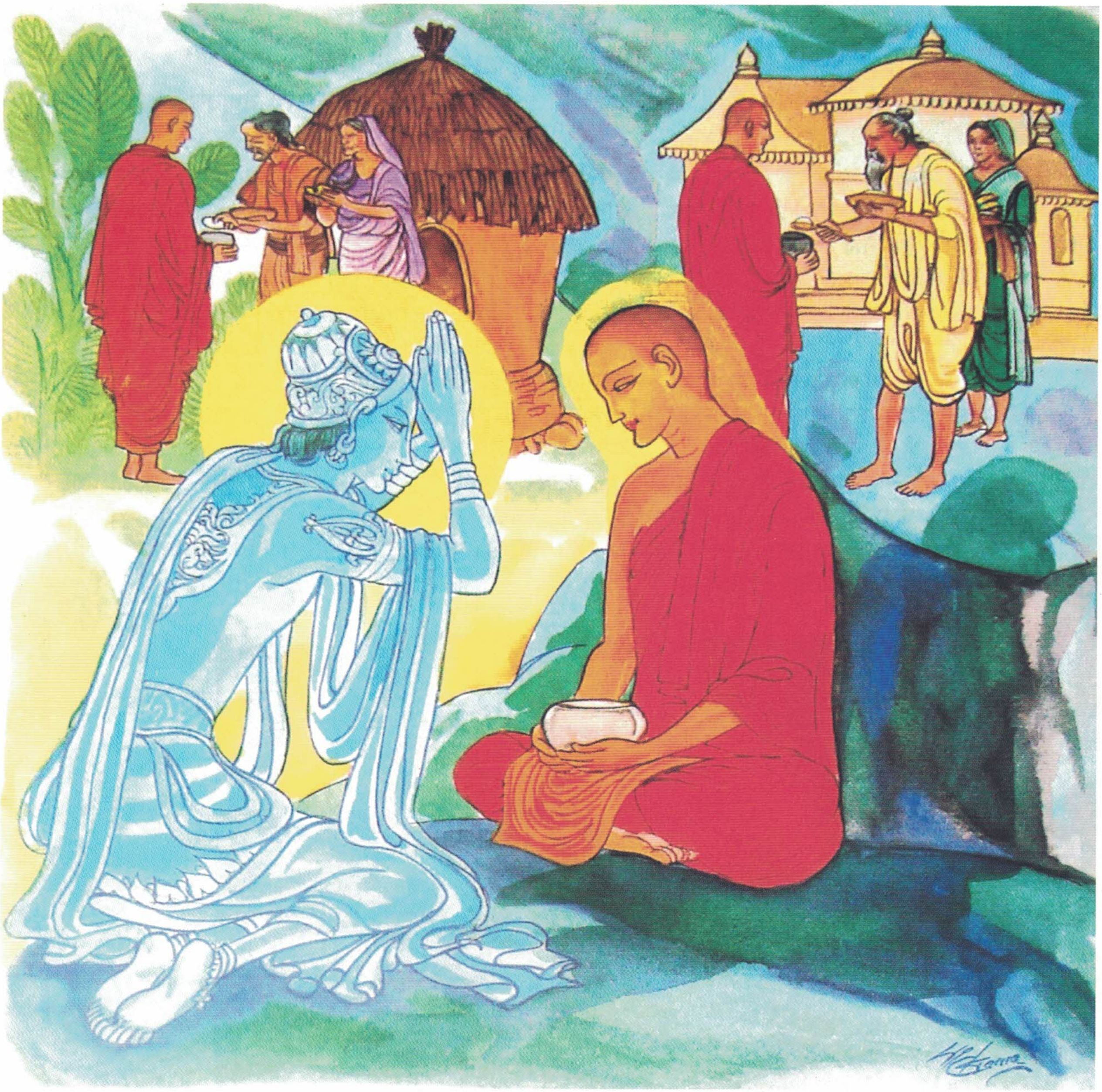

गाथा: अप्पलाभोपि चे भिक्खु, सलाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति, सुद्धाजीविं अतन्दितं।। 366।।

अर्थ: भले ही स्वलाभ थोड़ा हो, यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता तो उस शुद्ध आजीविका वाले आलस्य रहित भिक्षु की देवता भी प्रशंसा करते हैं।

अपनी भलाई : अपने हाथों में
विपक्षसेवक भिक्षु की कथा

भिक्षुओं को विपक्षसेवक का भूतकाल जानने की जिज्ञासा हुई। अतः उन्होंने शास्ता के सम्मुख निवेदन किया, "भन्ते ! विपक्षसेवक का आज का आचरण हमने देख लिया पर पूर्वकाल में क्या हुआ था ? उसने किस प्रकार धर्म का उल्लंघन किया था ? कृपया हमें बताने का कष्ट करें।"

तब तथागत ने महिलामुखजातक की कथा विस्तार से सुनाई, "महिलामुख हाथी पुराने चोरों की बात मानकर, उनका आचरण अपना कर लोगों को मारने वाला हो गया। इसके विपरीत वही गजराज, आगे चलकर संयमी पुरुषों की बात सुनकर, उनका आचरण अपना कर पुनः सर्वगुणसम्पन्न हो गया।"

शास्ता ने उपदेश दिया, "भिक्षुओं ! भिक्षु को अपने ही लाभ में संतुष्ट रहना चाहिए। दूसरों से लाभ की उम्मीद नहीं लगानी चाहिए क्योंकि दूसरों से लाभ की आशा रखने वाले व्यक्ति को ध्यान, विपश्यना और मार्गफल - इनमें से एक भी धर्मफल प्राप्त नहीं हो पाता। इसके विपरीत अपने ही लाभ से संतुष्ट भिक्षु को ये ध्यान आदि धर्मफल प्राप्त हो जाते हैं।"

फिर बुद्ध ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: सब्बसो नामरूपस्मिं, यस्स नत्थि ममायितं।

असता च न सोचति, स वे "भिक्खू" ति वुच्चति।। 367।।

अर्थ: नाम रूप (पंचस्कन्ध) वाले संसार में जिसका कुछ भी 'मेरा' नहीं है, जो किसी वस्तु के न रहने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहलाता है।

सच्चा भिक्षु कौन है ?
पंचग्र-दायक ब्राह्मण की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती में पंचग्रदायक नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह खेत बोने से लेकर फसल कटने तक पाँच बार भिक्षु संघ को दान दिया करता था : खेत में बीज डालते समय, फल आने पर, फलों के भंडारण के समय, ऊखल में कूटते समय तथा पुनः बोरियों में भरते समय। इस प्रकार प्राप्त होने वाली वस्तु के प्रथम भाग का दान दिये बिना वह उसका उपभोग नहीं करता था। अतः लोग उसे पंचाग्रदायक कहते थे।

एक दिन शाक्य मुनि ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी अनागामी फल प्राप्त कर सकते हैं। अतः वे ब्राह्मण के घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए। ब्राह्मण बाहर दरवाजे की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था। अतः उसने शास्ता को नहीं देखा। उसकी पत्नी ने सोचा कि अगर इसने शास्ता को देख लिया तो निश्चय ही यह अपना भोजन उनको दे देगा और मुझे फिर से इसके लिए भोजन तैयार करना होगा। अतः वह ब्राह्मण के बगल में इस प्रकार खड़ी हो गई कि वह शास्ता को न देख सके।

शास्ता जब तक भोजन प्राप्त नहीं करते थे, आगे नहीं बढ़ते थे। यह देखकर ब्राह्मणी हँस दी। तब ब्राह्मण को पता चला कि तथागत दरवाजे पर खड़े थे। वह तुरंत उनके पास गया, सादर प्रणाम किया, वंदना की और उन्हें अवशिष्ट भोजन देते हुए कहा, "भन्ते ! मैंने अभी आधा ही भोजन किया है। कृपया इसे ग्रहण करें।" तथागत ने कहा, "ब्राह्मण ! मुझे भोजन का हर भाग स्वीकार है। वह शेष हो या अवशेष, प्रथम हो, मध्यम हो या अंतिम - मैं सभी भाग लेता हूँ भले ही वह किसी का जूठन ही क्यों न हो ? हम तो दूसरों के दिए गए दान पर जीवित रहते हैं। दूसरों द्वारा दिये गए भोजन पर पलने वाला उस भोजन की न तो प्रशंसा करता है और न अवमानना। ऐसे ही साधक को अकच्छप के बुद्धिमान लोग 'मुनि' कहते हैं।" ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ कि शाक्य मुनि ने अवशिष्ट भोजन स्वीकार कर लिया।

फिर ब्राह्मण ने पूछा, "भन्ते ! भिक्षु किसे कहते हैं ? " शास्ता ब्राह्मण-ब्राह्मणी के पूर्व जन्म के बारे में जानते थे। अतः उन्होंने कहा, "जो नाम रूप में राग नहीं रखता, आसक्ति नहीं रखता, उनका चिंतन नहीं करता उसे ही 'भिक्षु' कहते हैं।"

तब शाक्य मुनि ने यह गाथा कही।

गाथा: मेत्ताविहारी यो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं।। 368।।

अर्थ: जो भिक्षु मैत्रीभाव से जीवन यापन करता है, बुद्ध के उपदेश में श्रद्धालु है, वह सभी संस्कारों का शमन करने वाले शांत एवं सुखद पद, निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय शाक्य-मुनि के अग्रणी शिष्य महाकात्यायन अवंति प्रदेश के कुररघर के पास वाले पर्वत पर साधना कर रहे थे वहाँ सोण कोटिकण्ण नामक एक उपासक ने महाकात्यायन में श्रद्धा व्यक्त कर उनसे प्रव्रज्या की प्रार्थना की। पर स्थविर ने प्रव्रज्या धर्म की कठिनाई समझाते हुए सलाह दी, "सोण ! प्रव्रज्या का जीवन बहुत ही कठिन है। उसमें एक शाम भोजन, एकाकी शय्या, सीमित चीवर मिलते हैं और कठिन धर्म साधना करनी पड़ती है।" सोण ने दो बार प्रार्थना की और स्थविर ने दोनों ही बार उसे समझाकर उसकी प्रार्थना टाल दी, परन्तु तीसरी बार बहुत आग्रह करने पर उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी। तीन वर्षों तक वह साधना करता रहा। उसके बाद उसने जेतवन जाकर बुद्ध दर्शन की अभिलाषा प्रकट की और अपने उपाध्याय से अनुमति माँगी। उपाध्याय ने उसे अनुमति दे दी। फिर वह चारिका करता हुआ जेतवन पहुँचा और शास्ता को सादर प्रणाम कर शास्ता के आदेशानुसार उसने गन्धकुटी में ही विश्राम किया। रात्रि विश्राम के बाद प्रातः काल शास्ता ने उसे अट्ठकवर्ग (सुत्तनिपात) के सोलह सूत्रों को सुनाने के लिए कहा। सोण ने उनका सस्वर पाठ सुनाया। इस स्वरपाठ से शास्ता अति प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे साधुवाद दिया। शास्ता द्वारा दिया गया यह साधुवाद धरती से लेकर ब्रह्म लोक तक गूँज उठा।

गाथा: सिञ्च भिक्खु इमं नावं, सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च, ततो निब्बानमेहिसि।। 369।।

अर्थ: हे भिक्षु ! इस आत्मभाव नाम की नाव को उलीचो। उलीचने पर यह नौका तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। तब तुम सांसारिक राग और द्वेष को काटकर निर्वाण तक पहुँच सकोगे।

आत्मभाव नाम की नाव उलीचें
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

सोण स्थविर की माता जेतवन से एक सौ बीस योजन दूर कुररघर नगर में रहती थी। शाक्य मुनि का साधुवाद सुनकर उस घर में रहने वाले देवता ने भी साधुवाद दिया। इसे सुनकर माता बोली, "यह कौन है जो साधुवाद दे रहा है ?" "बहन मैं हूँ।" "तुम कौन ?" "तुम्हारे घर में निवास करने वाला तुम्हारा गृह देवता।" "तुमने आज तक तो किसी बात के लिए साधुवाद नहीं दिया। आज क्यों दे रहे हो ? " "मैं आपको साधुवाद नहीं दे रहा हूँ।" "तो किसको दे रहे हो ? " "आपके पुत्र स्थविर कोटिकर्ण सोण को।" "किस बात के लिए ? " उसने कौन सा अनोखा कार्य कर दिया है ? " "आज प्रातः आपके पुत्र ने शास्ता के सम्मुख बैठकर धर्मदेशना की। शास्ता आपके पुत्र की धर्मदेशना से अति प्रसन्न हुए तथा उसे साधुवाद दिया। उसी साधुवाद को सुनकर मैं भी साधुवाद दे रहा हूँ। तथागत का दिया हुआ यह साधुवाद धरती से लेकर ब्रह्मलोक तक गूँज उठा है। उसी से मैं भी अति प्रसन्न हूँ।" "परन्तु देव ! मेरे पुत्र ने ऐसा कौन सा आश्चर्यजनक कार्य कर दिया है ? शास्ता ने मेरे पुत्र को धर्मदेशना दी या मेरे पुत्र ने शास्ता को दी ? " "आपके पुत्र ने बुद्ध को धर्मदेशना दी।" 'मेरे पुत्र ने बुद्ध को धर्मदेशना दी' यह सोचकर स्थविर की माँ के शरीर में पंचविधि प्रीति का संचार हो गया। वह अपने पुत्र के किये पर अति प्रसन्न हुई।

गाथा: पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु, "ओघतिण्णो" ति वुच्चति।। 370।।

अर्थ: सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, कामराग और व्यापाद- इन पाँच अवरणभागी संयोजनों को काटे, रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या- इन पाँच उर्ध्वभागीय संयोजनों को छोड़ दे, और तदुपरान्त इनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा- इन पाँच इन्द्रियों की भावना करे। जो भिक्षु पाँच आसक्तियों राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि का अतिक्रमण कर चुका हो, वह काम भव, दृष्टि तथा अविद्या रूपी चार प्रकार की बाढ़ों को पार किया हुआ 'ओधतीर्ण' कहा जाता है।

तृष्णा रूपी बाढ़ को पार करने वाला कौन है ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

तब उपासिका ने विचार किया, "अगर मेरा पुत्र गंधकुटी में बैठकर शास्ता को धर्मश्रवण कर सकता है तो उचित ढंग से आग्रह करने पर मुझे भी धर्मोपदेश दे सकता है। अतः जब मेरा पुत्र अगली बार यहाँ आयेगा तो मैं उससे धर्म कथा अवश्य सुनूँगी।"

शास्ता द्वारा साधुकार पाकर सोण स्थविर उत्साहित हुआ और उसने सोचा, "अब मुझे उपाध्याय द्वारा दिये गये ज्ञान को बाँटने का समय आ गया है।" अतः शास्ता के पास कुछ दिन रुककर, उनकी सेवा करने के बाद, उनकी अनुमति लेकर जेतवन से प्रस्थान कर गया और अपने उपाध्याय, कच्चान स्थविर के पास आ पहुँचा।

गाथा: झाय भिक्खु मा पमादो, मा ते कामगुणे रमेस्सु चित्तं।
मालोहगुळंगिलीपमत्तो, माकन्दि "दुक्खमिदं" ति डय्हमानो।। 371।।

अर्थ: हे भिक्षु ! ध्यान कर, प्रमाद मत कर, देख, तेरा चित्त भोगों के चक्कर में न फँसे। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगल जा। ऐसा न हो 'जलते हुए चिल्लाकर तुझे रोना पड़े कि यह दु:ख है।'

भिक्षु ! सावधान ! सावधान !!
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

स्थविर दूसरे दिन सोण को लेकर भिक्षाटन के लिए निकले। वे उपासिका के घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए। उपासिका ने उन दोनों को, विशेषकर पुत्र को, देखा तो अति प्रसन्न हुई। उन्हें सादर प्रणाम किया और आदर सहित अंदर बुलाकर भोजन कराया। भोजन कराते समय माता ने पुत्र से पूछा, "पुत्र ! क्या सचमुच तुमने गन्धकुटी में शास्ता के सम्मुख धर्म कथा कही है ? " "आपसे किसने कहा ? " "जब शास्ता तुम्हें साधुवाद दे रहे थे तो उसी समय गृहदेवता ने भी साधुवाद दिया था। मैंने उसके साधुवाद का कारण पूछा तो उसने पूरा प्रकरण कह सुनाया। जब से मैंने इस बात को जाना है तब से मेरे मन में तुमसे धर्म कथा सुनने की तीव्र इच्छा जाग उठी है। मैंने सोचा है कि अगर मेरा पुत्र शास्ता को धर्म कथा सुना सकता है तो फिर मेरे आग्रह करने पर वह मुझे भी सुना सकता है।" फिर माँ ने आग्रह किया, "तात् ! जो धर्म कथा तुमने शास्ता को सुनाई थी वही मुझे भी सुनाना।" सोण स्थविर ने माँ का आग्रह स्वीकार कर लिया।

गाथा: नत्थि झानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च, स वे निब्बानसन्तिके।। 372।।

अर्थ: जिसको प्रज्ञा नहीं, उसे ध्यान (चित्त एकाग्र) नहीं होता। जिसे ध्यान नहीं होता उसे प्रज्ञा नहीं होती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के निकट है।

ध्यान और प्रज्ञा द्वारा निर्वाण की प्राप्ति
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

अगले दिन सोण स्थविर के धर्म कथा की भेरी बजवाई गयी। माँ 'अपने पुत्र से धर्म कथा सुनने जाऊँगी' यह सोचकर , अपने घर पर एक दासी रखकर, पूरे परिवार के साथ नगर के मध्य में जा पहुँची जहाँ धर्म कथा होनी थी। अति सुन्दर मंडप में सजे हुए धर्मासन पर सोण विराजमान हुए और धर्म कथा प्रारंभ हो गयी।

जिस समय माता धर्म प्रवचन सुन रही थी, उस समय चोरों के एक बड़े गिरोह ने मौका का फायदा उठाकर उसके घर में सेंध मारकर चोरी करना शुरू कर दिया। उनका प्रधान धर्म स्थान पर जा पहुँचा कि अगर उपासिका चोरी की बात सुनकर अपनी गृह-रक्षा के लिए वापस चलती है तो वह उसे तलवार से वहीं मार देगा।

गाथा: सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति, सम्मा धम्मं विपस्सतो।।373।।

अर्थ: जो साधक शून्य आगार (एकान्त गृह, निर्जन स्थान) में रहता है, जिसका चित्त शान्त है, जिसने धर्म का सम्य साक्षात्कार कर लिया है उसे लोकोत्तर (दिव्य) आनन्द (अमानुषीरति) प्राप्त होता है।

लोकोत्तर (दिव्य) आनन्द कैसे प्राप्त करें ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों ने पहले सोने की मुहरों वाली तिजोरी खोली और मुहरें बटोरने लगे। उपासिका की दासी को जैसे ही चोरी का पता चला, वह दौड़ती हुई विहार पहुँची और मालकिन से कहा, "मालकिन ! चोरों ने सोने की मुहरों वाली तिजोरी खोल ली है और मुहरें बटोरकर ले जा रहे हैं।" उपासिका ने कहा, "चोरों को जितना धन ले जाना है, ले जाने दो। मैं अपने पुत्र से धर्म प्रवचन सुन रही हूँ। उसमें विघ्न मत डालो। वापस चली जा।" दासी वापस चली गयी। थोड़े समय के बाद चोर चाँदी वाली तिजोरी तोड़ने लगे। तब वह फिर दौड़ी-दौड़ी मालकिन के पास गई और कहा, "मालकिन ! चोरों ने चाँदी की मुहरों वाली तिजोरी खोल ली है और मुहरें बटोरकर ले जा रहे हैं।" तब उपासिका ने दासी को डाँट दिया और कहा, "अरे ! तू बार-बार मेरे पास क्यों आ रही है ? एक बार कह दिया न 'चोरों को जो ले जाना है ले जायें', तब तू हर बार आकर मुझे क्यों परेशान कर रही है ? देख नहीं रही है कि मैं धर्म कथा सुन रही हूँ। तुझे कह दिया है कि धर्म कथा छोड़कर नहीं जाऊँगी। इस बार अगर तुमने मुझे फिर तंग किया तो समझ लो, इसका फल क्या होगा। मुझे प्रेम से धर्म प्रवचन सुनने दो और तुम घर वापस चली जाओ।"

गाथा: यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं।। 374।।

अर्थ: मनुष्य जैसे-जैसे पाँच स्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) की उत्पत्ति और विनाश को देखता है, वैसे-वैसे वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत को प्राप्त करता है।

ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत कैसे प्राप्त करें ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों का सरदार यह सब सुन रहा था। सुनकर अवाक रह गया। लगा जैसे उसके मन-मन्दिर में किसी ने दीपक जला दिया हो। वह पश्चाताप करता हुआ सोचने लगा, "इतनी धर्म-परायण स्त्रियों के घर में चोरी करने वालों के ऊपर बिजली क्यों नहीं गिर जाती ? " वह वहाँ से दौड़ा-दौड़ा उपासिका के घर आया और अन्य चोरों को आदेश दिया, "उपासिका का सारा धन यथास्थान रख दो।" चोरों ने उसके आदेश से सारा का सारा धन यथास्थान रख दिया। यह सत्य है कि ऐसे धर्माचरण करने वालों की स्वयं धर्म ही रक्षा करता है। इस तरह भली भाँति आचरित धर्म उन्हें सुख देता है। धर्माचरण का यही महात्म्य है कि धर्म का आचरण करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है।

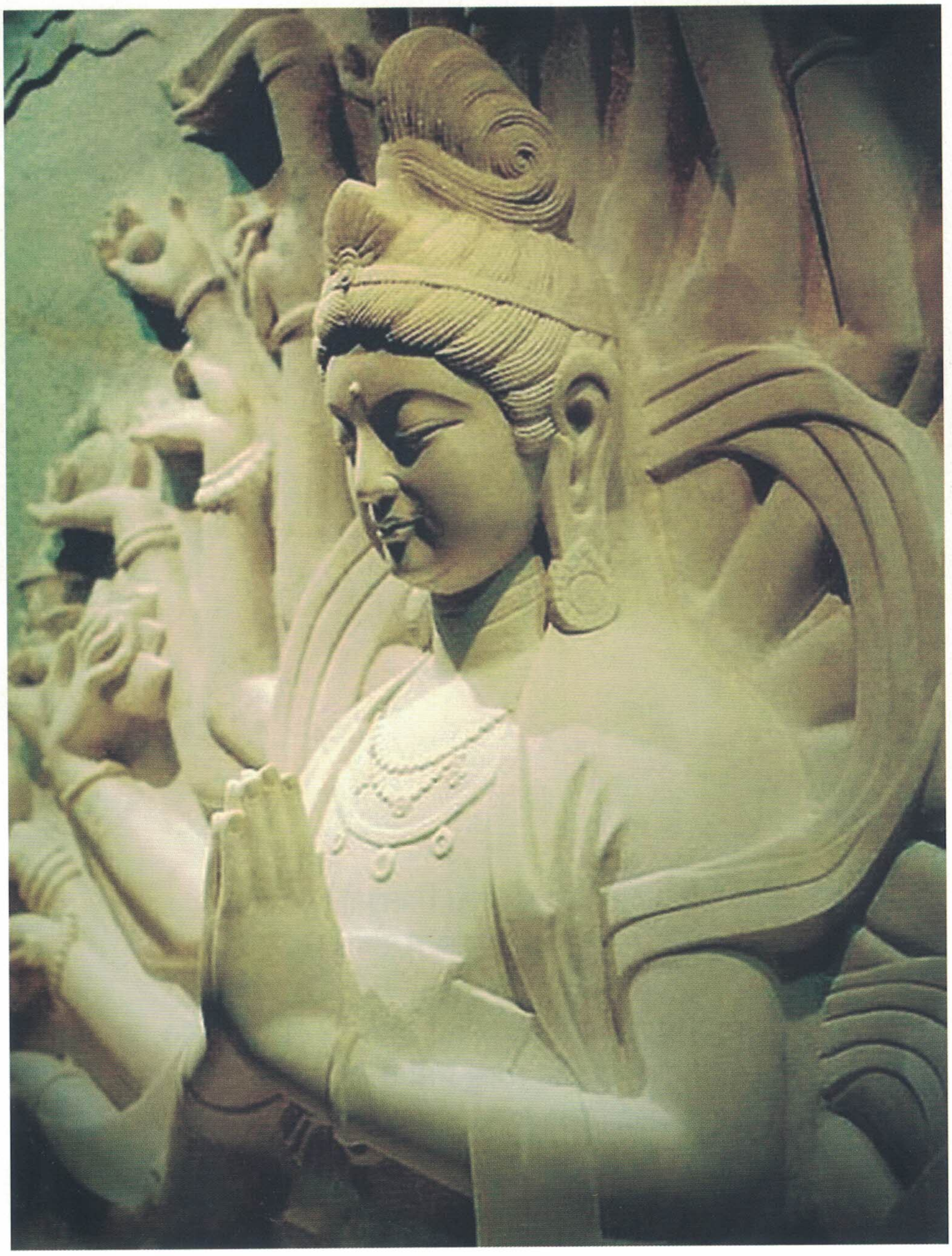

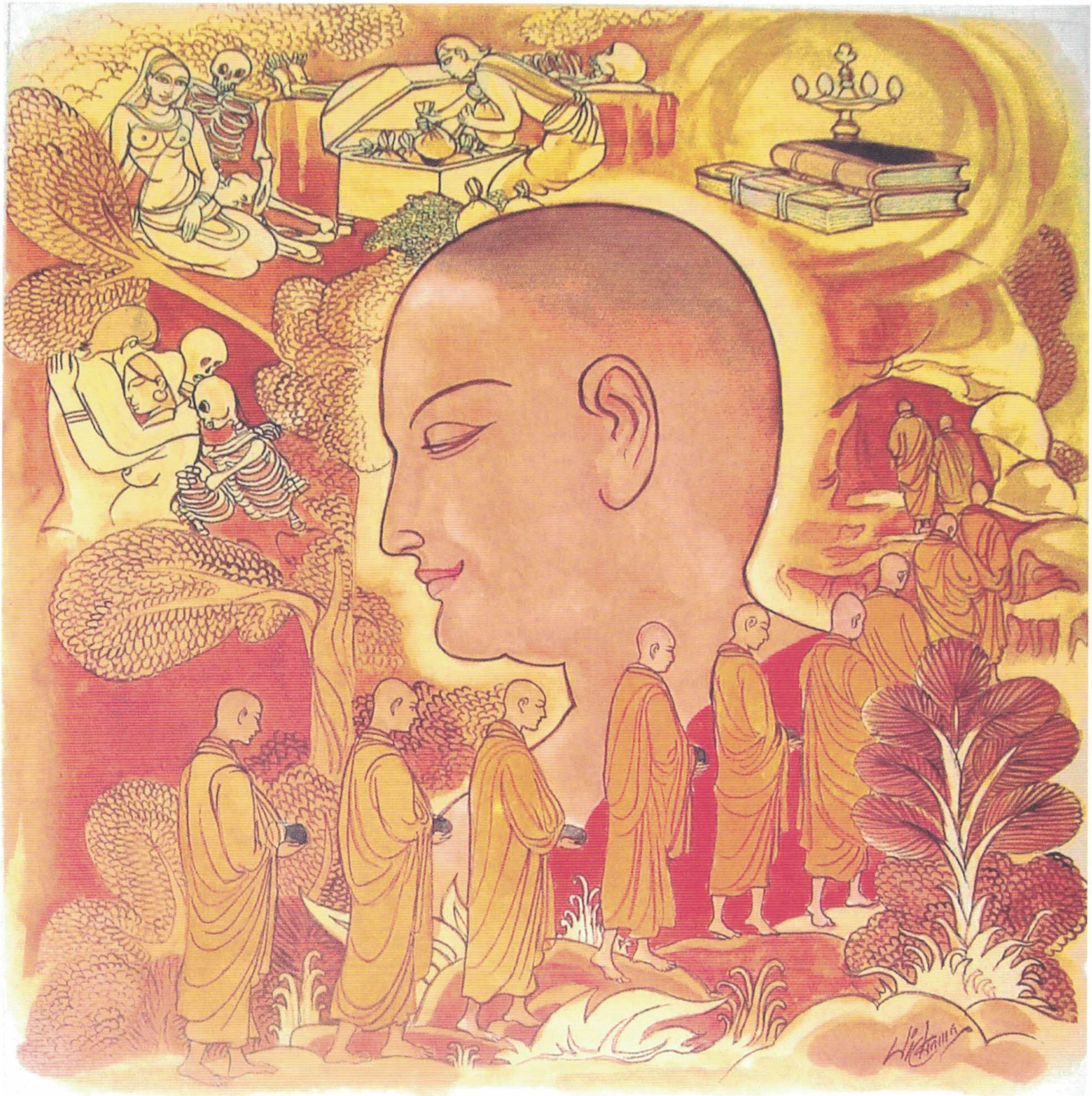

गाथा: तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि, पातिमोक्खे च संवरो।। 375।।

अर्थ: बुद्धिमान भिक्षु को पहले करना होता है- इन्द्रिय संयम, सन्तोष और प्रतिमोक्ष की रक्षा (भिक्षु-नियमों का पालन), उसे चाहिए कि वह शुद्ध आजीविका वाले, आलस्य रहित, कल्याण मित्रों की संगति करे।

भिक्षु का कर्त्तव्य
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों के सरदार ने साथियों को समझाया, "मित्रों ! चलो वहाँ चलें जहाँ इससे भी अधिक मूल्यवान वस्तु उपलब्ध है, जिसे पाकर इस घर की मालकिन ने इस घर के सारे धन को छोड़ दिया। और जिसकी हमें खबर नहीं है।" सरदार की बात उन्हें जँच गई और सभी साथी दौड़ते-दौड़ते भिक्खु कुटिकण्ण सोण से धर्म प्रवचन सुनने पहुँच गए।

स्थविर ने मध्य रात्रि में धर्म कथा समाप्त की और आसन से उतरे। तब चोरों का सरदार उपासिका के पैरों पर गिर पड़ा और कहा, "मुझे क्षमा करो माता ! " "किस बात के लिए ? " "मैं यहाँ तुम्हारी हत्या करने के प्रयोजन से बैठा था।" "अच्छा चलो, माफ किया।" बाकी चोरों ने भी माफी माँगी। उपासिका ने सबों को माफ कर दिया।

गाथा: मिते भजस्सु कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते।
पटिसन्थारवुत्यस्स, आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्सति।। 376।।

अर्थ: वह मैत्रीपूर्ण स्वागत (सेवा-सत्कार) करने वाला होवे। आचार पालन में कुशल (आचारवान्) हो। आनन्दित होकर दुःख अंत करने वाला हो।

भिक्षु दु:ख का अंत कैसे करेगा ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

तब चोरों के समूह ने कहा, "माताजी ! अगर आपने हमें माफ कर दिया तो फिर अपने पुत्र से हमें प्रव्रजित कराइये।" तब उपासिका ने सोण स्थविर को प्रणाम कर निवेदन किया, "भन्ते ! ये चोर मेरे गुणों और आपकी धर्मकथा से प्रभावित होकर प्रव्रजित होना चाहते हैं। आप कृपया इन्हें प्रव्रजित कर दें।" तब स्थविर ने उन्हें प्रव्रज्या दिला दी। वे सभी पर्वत की ओर चले गए और भिन्न-भिन्न वृक्षों के नीचे बैठकर धर्मसाधना करने लगे।

शास्ता एक सौ बीस योजन दूर जेतवन विहार में विराजमान थे। अपनी दृष्टि से सब देख रहे थे। इस चर्या से प्रसन्न होकर उन्होंने ये गाथायें कहीं।

गाथा: वस्सिका विय पुप्फानि, मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च, विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो।। 377।।

अर्थ: जैसे जूही अपने कुम्हलाये फूलों को गिरा देती है, उसी प्रकार भिक्षुओं ! तुम भी राग और द्वेष को छोड़ दो।

कुम्हलाये फूलों की तरह राग द्वेष छोड़ देना
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार पाँच सौ भिक्षु श्रावस्ती में शाक्य मुनि से साधनोपाय कर्मस्थान ग्रहण कर जंगल में साधना करने चले गये। वहाँ श्रमण धर्म (धर्मसाधना) का पालन करते हुए उन्होंने देखा कि जूही के फूल जो सुबह में खिलते थे, शाम होते-होते मुरझा जाते थे और अंत में अपनी डाली से धरती पर गिर जाते थे। इस प्रक्रिया को देखकर भिक्षुओं ने आपस में मनन किया, "हम भी क्लेशों से मुक्ति के लिए कठोर साधना करेंगे और जूही के फूलों के कुम्हला कर शाखा से टूटकर गिरने से पहले ही राग आदि विकारों से मुक्त हो जायेंगे।" ऐसा सोचकर वे कठोर अभ्यास करने लगे।

शास्ता जेतवन विहार में वास कर रहे थे। उन्होंने अपनी प्रज्ञा चक्षु से इन भिक्षुओं की मनोदशा देखी। उनका निश्चय देखकर उन्हें उत्साहित किया, "हाँ भिक्षुओं ! प्रत्येक साधक भिक्षु को निश्चय ही फूलों की डाली से गिरने के पहले ही अपने चित्त को राग आदि से मुक्त कर लेना चाहिए। जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है वैसे ही भिक्षुओं ! राग और द्वेष को छोड़ दो।"

गन्धकुटी से ही दिव्य प्रकाश भेजकर शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: सन्तकायो सन्तवाचो, सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु, "उपसन्तो" ति वुच्चति।। 378।।

अर्थ: जिसका शरीर शान्त है, जिसकी वाणी शांत है, जिसका मन शान्त है, जो समाधि युक्त है, जिसने लौकिक भोगों को छोड़ दिया है, वह भिक्षु उपशान्त कहलाता है।

उपशान्त भिक्षु कौन है ?
शान्तकाय थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शान्तकाय स्थविर बहुत ही शांत स्वभाव का था । उसके हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अंगों से चंचलता के भाव कभी प्रकट नहीं हुए। किसी ने भी उसे अंगड़ाई लेते हुए नहीं देखा था। वस्तुतः वह पिछले जन्म में सिंह योनि से निकला था। अतः सिंह के सभी गुण उसके अन्दर दिखाई देते थे।

सिंह की विशेषता है कि वे एक बार भर पेट भोजन कर पूरे सप्ताह सोये रह सकते हैं। जब उनका शरीर उन्हें स्वच्छ लगता है तभी वे गुफा से निकलत हैं।

अपने पूर्व जन्म के गुणों के कारण वह सदैव शान्त रहता था। कभी भी शरीर के किसी भाग में चंचलता का नामों निशान नहीं आने देता था। भिक्षुगण एक बार शास्ता के पास गए और उसके शरीर के सौन्दर्य की चर्चा करते हुए बोले, "भन्ते ! हमने आज तक किसी का भी ऐसा स्वच्छ और सुन्दर शरीर नहीं देखा है। इसके बैठने पर इसके हाथ-पैर आदि से हमने निरर्थक चेष्टायें कभी नहीं देखी। यह कभी अंगड़ाई भी नहीं लेता।"

यह सब सुनकर शाक्य-मुनि ने कहा, "भिक्षुओं ! भिक्षु को शान्तकाय स्थविर के समान ही अपनी शरीरिक चेष्टा शान्त रखते हुए रहना चाहिए।"

गाथा: अत्तना चोदयत्तानं, पटिमंसेथ अत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा, सुखं भिक्खु विहाहिसि।। 379।।

अर्थ: जो स्वयं अपने आप को प्रेरित करेगा, जो अपनी परीक्षा स्वयं लेगा, वह आत्म-संयमी, स्मृतिमान् भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा।

कौन भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा ?
नंगलकुल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

नंगलकुल- दीन और हीन, दरिद्र पुरुष दूसरों की नौकरी कर जीवन यापन किया करता था। किसी दिन एक भिक्षु ने उसे चिथड़ों में लंगोटी पहने हुए, कन्धे पर हल रखे हुए खेत की ओर जाते देखा। भिक्षु ने उससे पूछा, "क्या इस तरह गरीबों की जिन्दगी जीने से अच्छा नहीं है कि प्रव्रज्या ग्रहण कर ली जाए। " किसान ने कहा, "मुझ गरीब को कौन प्रव्रजित करेगा ? " "मैं करूँगा।" "ठीक है भन्ते ! आप अगर प्रव्रज्या देंगे तो प्रव्रजित हो जाऊँगा। आप कृपया मुझे प्रव्रजित कर दें।" तब स्थविर उसे जेतवन ले आये, अपने हाथों से उसको स्नान कराया और आँगन में बैठाकर उसे प्रव्रज्या दे दी। उसकी पहनी हुई लंगोटी और हल (नंगल) को आंगन से थोड़ी दूर एक पेड़ से लटका दिया। चूँकि भिक्षु हल (नंगल) लेकर आया था। अतः उपसम्पदा प्राप्ति के बाद लोग उसे नंगलकुल नाम से जानने लगे।

प्रव्रज्या के कुछ दिनों बाद उसके मन में उदासी छाने लगी। उसको गृहस्थ जीवन के दिन याद आने लगे। उसने सोचा गृहस्थी में वापस चलता हूँ। यह सोचकर वह हल लेने के लिए उस वृक्ष के पास पहुँचा। लेकिन वहाँ पहुँच कर उसके मन ने उसे धिक्कारा, "अरे निर्लज्ज ! गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद पुनः गृहस्थ आश्रम में जाकर जीवन जीना चाहता है। क्या यह बुद्धिमता का कार्य है ?"

यह सोचकर उसे अपने आप से ग्लानि होने लगी और उसका चित्त कुछ हल्का हुआ। वह अपनी कुटिया में वापस आ गया। कुछ दिनों बाद उसके मन की फिर वही दशा हुई। इस बार वह फिर उस वृक्ष के नीचे बैठ गया और अपने आप को समझाकर वापस आ गया। यही प्रक्रिया बार-बार चलती रही।

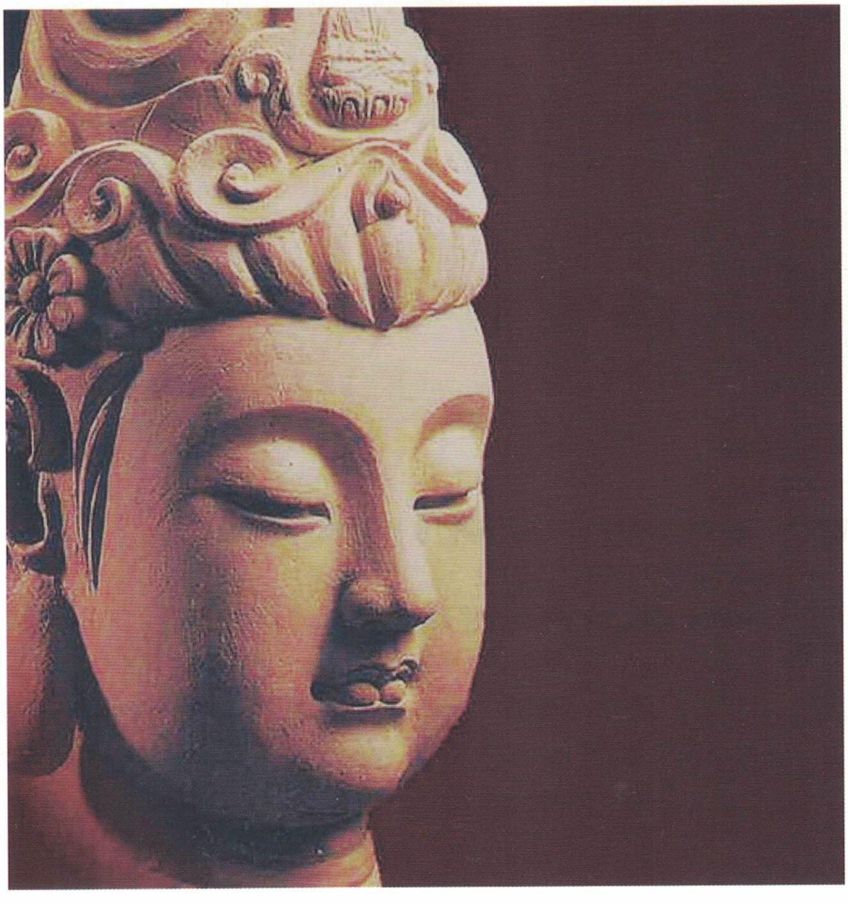

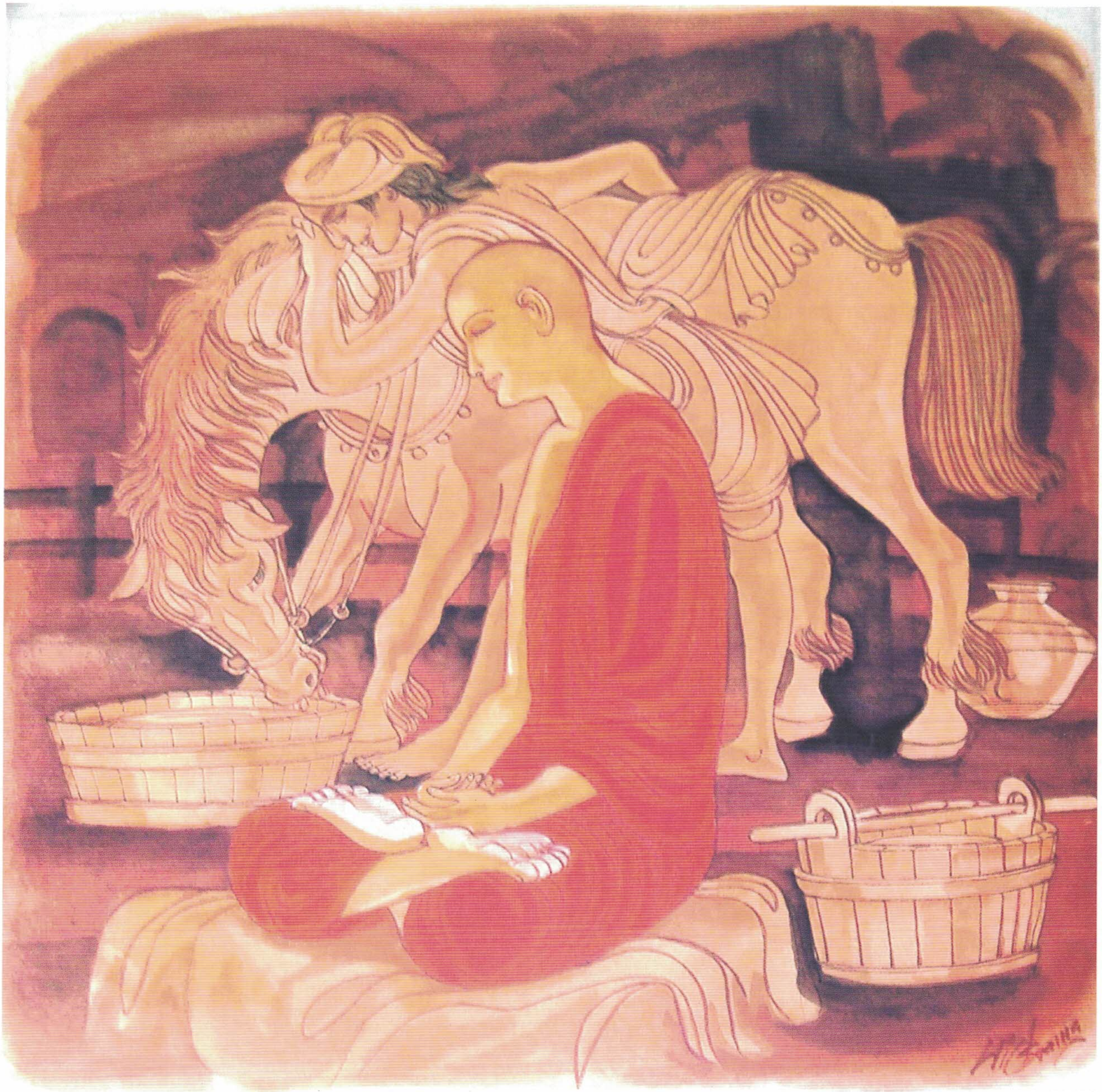

गाथा: अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयमयत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो।। 380।।

अर्थ: व्यक्ति अपना स्वामी आप है, अपनी गति (शरण) आप है, इसलिए अपने आप को उसी तरह संयत में रखे जैसे घोड़ों का व्यापारी अच्छे घोड़े को रखता है।

अपने आप को संयत में रखें
नंगलकुल थेर की कथा

साथ में रह रहे मित्र भिक्षुओं से नहीं रहा गया। उन्होंने एक दिन नंगलकुल से पूछ ही लिया, "आयुष्मान् नंगलकुल ! तुम उस वृक्ष के पास बार-बार क्या करने जाते हो ?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "अपने आचार्य से मिलने जाता हूँ।"

यह सिलसिला चलता रहा। नंगलकुल ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। अब उसे गृहस्थ आश्रम में जाने की इच्छा नहीं होती थी। अतः उसने उस वृक्ष की ओर जाना बंद कर दिया। भिक्षुओं ने उससे मजाक किया, "नंगलकुल क्या हो गया है ? आजकल अपने आचार्य से मिलने नहीं जाते हो ? " "हाँ भन्ते ! यह सच है कि अब मैं आचार्य से मिलने नहीं जाता। अब मुझे आचार्य की जरूरत नहीं रह गई है। जब जरूरत थी तब जाता था।" भिक्षुओं को लगा कि यह झूठ बोल रहा है। अतः वे शास्ता के पास गये और उनसे कहा, "भन्ते ! नंगलकुल झूठ बोल रहा है। झूठ में आत्म-प्रशंसा कर रहा है।" तब शाक्य मुनि ने उन्हें वस्तु स्थिति स्पष्ट करते हुए बताया, "नंगलकुल झूठ नहीं बोल रहा है। इस शिष्य ने अपने को बार-बार समझाया है और इस प्रकार समझाते-समझाते अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। उसने प्रव्रज्या के लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है।

यह कहकर शाक्य मुनि ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: पामोज्जबहुलो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं।। 381।।

अर्थ: जो भिक्षु खूब प्रसन्नचित रहता है, जो बुद्ध के उपदेश में श्रद्धावान है, जिसने सभी संस्कारों का शमन कर लिया है, वह सुखस्वरूप शान्त-पद को प्राप्त करता है।

सुखस्वरूप शान्त-पद कैसे प्राप्त करें ?
वक्कलि स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती में वक्कलि नाम का एक ब्राह्मण पुत्र था। एक दिन शाक्य मुनि जब भिक्षाटन के लिए जा रहे थे तो उनके दिव्य रूप को देख कर उसका मन श्रद्धा से भर गया। बुद्ध के प्रति उमड़ी श्रद्धा से उसे प्रव्रजित हो जाने का विचार आया कि अगर प्रव्रज्या धारण कर लूँगा तो सदैव शास्ता के दर्शन होते रहेंगे। ऐसा विचार कर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

प्रव्रज्या के दिन से ही वक्कलि ध्यान साधना पर ध्यान न देकर शास्ता के वाह्य रूप को ही देखा करता था। पहले तो उसे अपरिपक्व जान बुद्ध ने उसे कुछ नहीं कहा। पर बाद में जब उन्हें लगा कि इसमें परिपक्वता आ गई है तो फिर एक दिन बुलाकर उससे कहा, "वक्कलि ! शरीर के वाह्य रूप को देखने से क्या लाभ ? मेरे पास बने रहने से क्या लाभ ? जो धर्म को देखता है वह स्वतः ही मुझे देख लेता है। अतः मेरी काया को न देखकर धर्म पर ध्यान दो, ध्यान-साधना में मन लगाओ।"

शास्ता के इस प्रकार समझाने और उपदेश देने पर भी वक्कलि पर कोई असर नहीं पड़ा। तब शास्ता को लगा कि उसे झटका दिए बिना काम नहीं चलेगा। कभी-कभी कठोरता में भी मृदुलता छिपी होती है। अतः वर्षोपनायिका के दिन बुद्ध ने वक्कलि से कहा, "तू मेरे सामने से दूर हट जा।" ऐसा कहकर उन्होंने वक्कलि से बातचीत करना बंद कर दिया। वक्कलि को इस बात का बहुत दुःख हुआ। अतः आत्महत्या करने के विचार से वह गृद्धकूट पर्वत पर जा पहुँचा।

शास्ता ने उसकी मनःस्थिति जानकर उसकी ओर प्रकाश की दिव्य ज्योति बिखेर दी। इससे उसके अन्दर का शोक समाप्त हो गया। जैसे सूखे तड़ाग में जल भर दिया जाता है उसी प्रकार तथागत ने उसके मन में सात्विक प्रीति भर दी। फिर उसे सम्बोधित कर यह गाथा कही।

गाथा: यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा।। 382।।

अर्थः जो भिक्षु कम उम्र में शाक्य मुनि के उपदेशों को हृदयंगम कर लेता है वह इस संसार में अपना प्रिय आध्यात्मिक ज्ञान प्रकाश उसी प्रकार फैला देता है जैसे मेघमुक्त चन्द्रमा आकाश को प्रकाशित करता है।

अर्हत्व : आयु से क्या लेना-देना ?
सुमन सामनेर की कथा

स्थान : पूर्वाराम, श्रावस्ती

स्थविर अनुरूद्ध के एक प्रिय शिष्य थे - सामनेर सुमन। एक बार उनके गुरू जब बीमार थे तो हिमालय के अनवतप्त झील का जल लाये थे, जो वहाँ से बहुत दूर थी। अपने ऋद्धिबल के द्वारा उन्होंने इसे सम्पादित किया था। यह वही सामनेर थे जो सात वर्ष की उम्र में श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में आये थे और अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उस समय उसके भिक्षुगण मित्र उसके कान, हाथ आदि पकड़कर पूछा करते थे, "सामनेर ! दु:खी तो नहीं हो ? उदास तो नहीं हो ? "

शाक्य-मुनि ने यह सब देखा तो सबों के सामने सामनेर की शक्ति का प्रदर्शन कराया। आनन्द थेर को बुलाकर कहा, "मैं अनवतप्त झील के जल से पैर धोना चाहता हूँ। किसी को भेजकर एक घड़ा पानी मँगा लो।" आनन्द थेर ने यह बात सभी सामनेरों को कही। सामनेरों में कुछ तो असमर्थ थे। अत: उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। उनमें जो अर्हत् थे उन्हें मालूम था कि तथागत सुमन सामनेर को ही भेजना चाहते हैं। अत: उनमें से कोई जल लाने के लिए तैयार नहीं हुआ।

अंत में स्थविर आनंद ने सुमन को जल लाने के लिए कहा। वह आकाशमार्ग से बड़े घड़े में जल लेकर आ गए। जब वे आकाशमार्ग से आ रहे थे तो उनकी ओर इशारा कर शास्ता ने भिक्षुओं से कहा, "जो धर्म का अभ्यास करता है वह इसी प्रकार का ऋद्धिबल प्राप्त करता है- भले ही वह उम्र में कितना भी छोटा क्यों न हो।" ऐसा कहकर उन्होंने सुमन सामनेर की बड़ी प्रशंसा की।

सुमन के आने पर पूछा, "तू कितने वर्ष का है ? " "सात वर्ष का भन्ते ! "

"अच्छा आज से तू भिक्षु होगा", बुद्ध ने कहा। फिर उन्होंने यह गाथा कही।

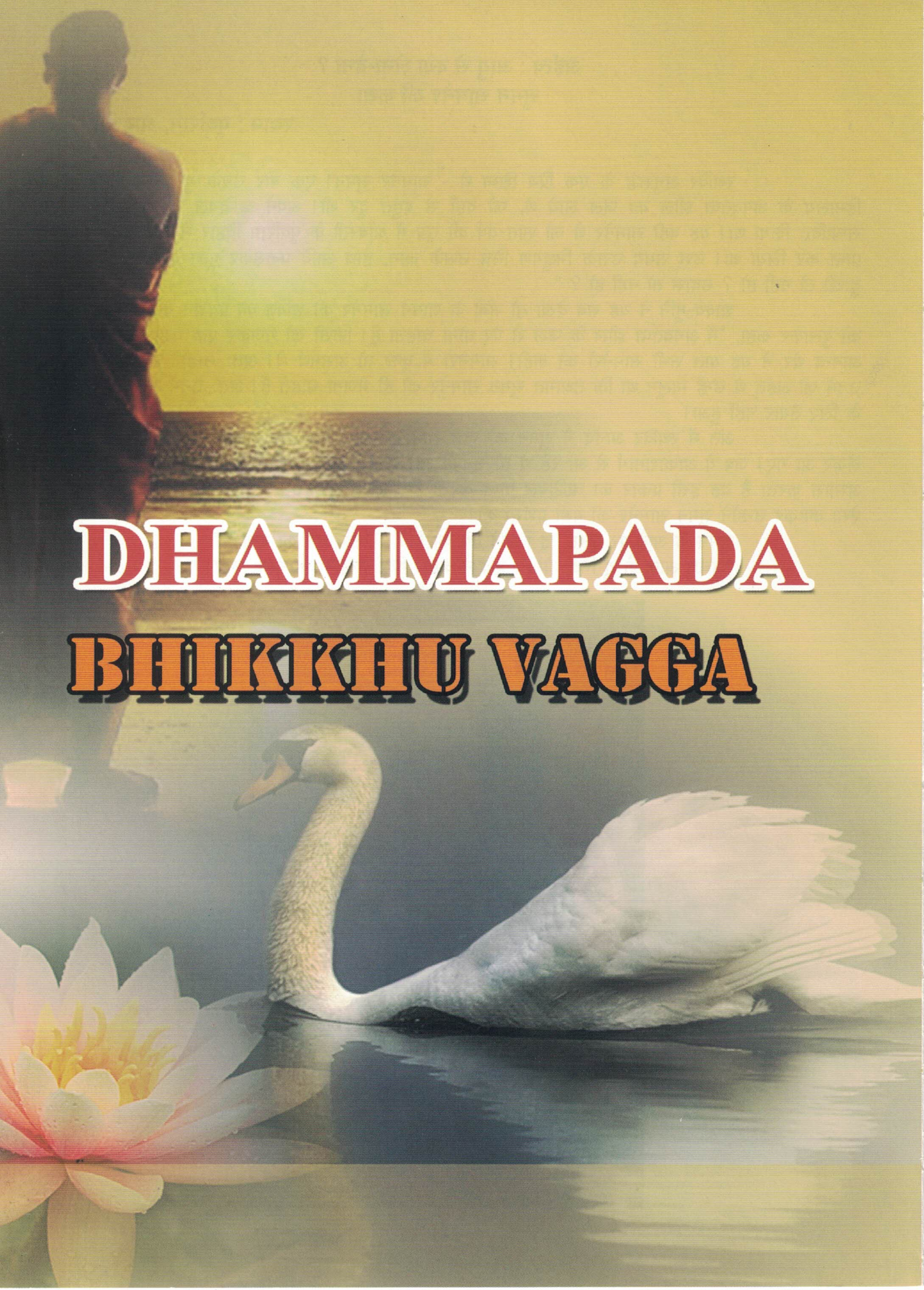
DHAMMAPADA
BHIKKHU VAGGA

सच्चा ब्राह्मण कौन ?

धम्मपद

ब्राह्मण वर्ग

गाथा और कथा

सच्चा ब्राह्मण कौन ?

धम्मपद

ब्राह्मण वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

ब्राह्मण वर्ग

क्रम सं.	पात्र	गाथा सं.	उपदेश	पृष्ठ
1.	अति श्रद्धालु ब्राह्मण की कथा	383	तृष्णा रूपी जड़ को काट निर्वाण का साक्षात्कार कर लें	189
2.	बहुत सारे भिक्षुओं की कथा	384	शमथ और विपश्यना : बंधन दूर करने के उपाय	191
3.	मार की कथा	385	ब्राह्मण किसे कहेंगे ?	193
4.	किसी ब्राह्मण की कथा	386	ब्राह्मण कौन है ?	195
5.	आनन्द स्थविर की कथा	387	बुद्ध सदैव देदीप्यमान रहते हैं	197
6.	किसी प्रव्रजित ब्राह्मण की कथा	388	प्रव्रजित कौन है ?	199
7.	सारिपुत्त थेर की कथा	389	क्रोध पर विजय : सर्वोत्तम विजय	201
8.	सारिपुत्त थेर की कथा	390	हिंसा से मन हटायें, दुःख शांत होता जाएगा	203
9.	महापजापति गोतमी की कथा	391	सबसे बड़ा संयम : काय, मन और वचन का संयम	205
10.	सारिपुत्त थेर की कथा	392	सम्यक सम्बुद्ध को दिखाने वाले आचार्य को नमस्कार है	207
11.	जटाधारी ब्राह्मण की कथा	393	जो शुचि (पवित्र) है वही ब्राह्मण है	209
12.	पाखंडी ब्राह्मण की कथा	394	मलीन मन को साफ करें, बाहर धोने से क्या लाभ ?	211
13.	किसा गोतमी की कथा	395	ब्राह्मण हो तो किसा गोतमी जैसा	213
14.	एक ब्राह्मण की कथा	396	अपरिग्रही और त्यागी ही ब्राह्मण है	215
15.	उग्रसेन की कथा	397	विषयों के संग और आसक्ति से विमुक्त ही ब्राह्मण है	217
16.	दो ब्राह्मणों की कथा	398	आसक्तियों, अविद्या को फेंकने वाला ही ब्राह्मण है	219

17.	आक्रोश भारद्वाज की कथा	399	जो क्षमा बल युक्त है वह ब्राह्मण है	221
18.	सारिपुत्त थेर की कथा	400	क्रोध, शील, व्रत से संपन्न, अभिमान रहित संयमी ही ब्राह्मण है	223
19.	उत्पलवर्णा थेरी की कथा	401	कामभोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है	225
20.	किसी ब्राह्मण की कथा	402	बोझ उतार फेंकने वाला आसक्ति रहित ही ब्राह्मण है	227
21.	खेमा भिक्षुणी की कथा	403	मार्ग–अमार्ग का जानकार प्रज्ञावान हो निर्वाण प्राप्त करेगा	229
22.	कन्दरावासी तिस्स थेर की कथा	404	ब्राह्मण की योग्यता	231
23.	किसी भिक्षु की कथा	405	अहिंसक ही ब्राह्मण होता है	233
24.	चार सामनेरों की कथा	406	ब्राह्मण के गुण	235
25.	महापंथक थेर की कथा	407	सूई की नोंक के बराबर भी राग, द्वेष, अभिमान और डाह न रखें	237
26.	पिलिन्दवत्स थेर की कथा	408	सच्ची व मधुर वाणी वाला ही ब्राह्मण है	239
27.	किसी स्थविर की कथा	409	ब्राह्मण का गुण : चोरी न करना	241
28.	सारिपुत्त की कथा	410	जो भी आसक्तियों से मुक्त है, वही ब्राह्मण है	243
29.	महामोग्गलान थेर की कथा	411	अनासक्त, निःसंशयी, निर्वाण प्राप्त ही ब्राह्मण है	245
30.	रेवत थेर की कथा	412	पाप–पुण्य से अनासक्त ही ब्राह्मण है	247
31.	चन्दाभ थेर की कथा	413	ब्राह्मण चन्द्रमा की तरह विमल होता है	249
32.	सीवलि थेर की कथा	414	जो भवसागर पार कर गया वह ब्राह्मण है	251

33.	सुन्दर समुद्र थेर की कथा	415	काम भोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है	253
34.	जटिल की कथा	416	तृष्णामुक्त ही ब्राह्मण है	255
35.	नट पुत्र की कथा	417	सभी भोगों के प्रति अनासक्त ही ब्राह्मण है	257
36.	नट पुत्र की कथा	418	रति, अरति से ऊपर उठा, शांत और क्लेशरहित व्यक्ति ही ब्राह्मण है	259
37.	वंगीस थेर की कथा	419	प्राणियों के मृत्यु—उत्पत्ति का अनासक्त जानकार ब्राह्मण है	261
38.	वंगीस थेर की कथा	420	ब्राह्मणों की गति कोई नहीं जान सकता	263
39.	धर्मदिन्ना थेरी की कथा	421	जो कालातीत है वही ब्राह्मण है	265
40.	अंगुलिमाल थेर की कथा	422	जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है वही ब्राह्मण है	267
41.	देवहित ब्राह्मण की कथा	423	जिसका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है वही ब्राह्मण है	269

गाथा: छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
सङ्खारानं खयं ञत्वा, अकतञ्ञूसि ब्राह्मण।। 383।।

अर्थ: हे ब्राह्मण (भिक्षु) ! तृष्णारूपी स्रोत को काट दो, पराक्रम करो और कामनाओं को दूर कर दो। संस्कारों के क्षय को जानकर अकृत (निर्वाण) कर साक्षात्कार कर लो।

तृष्णा रूपी जड़ को काट निर्वाण का साक्षात्कार कर लें
अति श्रद्धालु ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक अति श्रद्धालु ब्राह्मण प्रतिदिन सोलह भिक्षुओं को भोजन दान दिया करता था। जब भिक्षु उसके घर आते तो वह कहता, "पधारें अर्हत् ! बैठें अर्हत् !" आदि-अदि। इस प्रकार वह सभी भिक्षुओं को 'अर्हत्' कहकर सम्बोधित किया करता था। जो भिक्षु अर्हत् थे उन्हें लगता था कि यह कैसे जान गया है कि हम अर्हत् हैं ? दूसरी ओर जो भिक्षु अर्हत् नहीं थे उन्हें लज्जा आती थी कि उन्हें अर्हत् कहकर सम्बोधित किया जाता है। यह सब सोचकर एक दिन कोई भी भिक्षु उस ब्राह्मण के घर भोजन प्राप्त करने नहीं गया।

ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ। वह जेतवन गया। शाक्य-मुनि से मिलकर अपना दुःखड़ा कह सुनाया। तथागत ने भिक्षुओं को बुलाकर पूछा कि वे आज भोजन ग्रहण करने क्यों नहीं गए। भिक्षुओं ने उन्हें ब्राह्मण द्वारा 'अर्हत्' सम्बोधित किये जाने की बात बताई। शास्ता ने उनसे पूछा कि जब उन्हें 'अर्हत्' सम्बोधित किया जा रहा था तो क्या वे गौरवान्वित महसूस कर रहे थे? भिक्षुओं ने कहा, "ऐसी कोई बात नहीं थी।" तब शास्ता ने उन्हें समझाया, "अगर ब्राह्मण के 'अर्हत्' कहने से तुम गौरवान्वित महसूस नहीं कर रहे थे तब तुम विनय के नियमों का उल्लंघन नहीं कर रहे थे। सच बात तो यह है कि वह ब्राह्मण भिक्षुओं के प्रति अति श्रद्धावान है। अतः वह तुम्हें अर्हत् कहकर संबोधित करता है। इसमें कोई बुराई नहीं है। अच्छा होगा कि तृष्णा के स्रोतों को काटकर तुम सचमुच अर्हत हो जाओ।"

ऐसा समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: यदा द्वयेसु धम्मेसु, पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा, अत्थं गच्छन्ति जानतो।। 384।।

अर्थ: जब कोई क्षीणास्त्रव ब्राह्मण (भिक्षु) इन दो धर्मों शमथ और विपश्यना (चित्त संयम और भावना) में पारंगत हो जाता है तब उस ज्ञानी साधक के सभी सांसारिक बंधन नष्ट हो जाते हैं।

शमथ और विपश्यना : बंधन दूर करने के उपाय
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन विहार में रह रहे थे। एक दिन अन्य स्थानों से आये तीस दिशावासिक भिक्षु उन्हें सादर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गए। स्थविर सारिपुत्त ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि इन भिक्षुओं में अर्हत्व प्राप्त करने की संभावना है। अत: शाक्य मुनि के पास खड़े होकर इन भिक्षुओं की साधना में मदद करने तथा उनकी प्रगति की गति को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रश्न किया, "भन्ते ! आप दो धर्मों की बात करते हैं। वे दो धर्म क्या हैं ? " शास्ता ने समझाया, "सारिपुत्त ! ये दो धर्म 'शमथ' एवं 'विपश्यना' नाम से जाने जाते हैं। शमथ संकल्प से पाई गई समाधि है। यह योग, विधि-विधान तथा यत्न कर पाई जा सकती है। यह लौकिक समाधि है। इसमें बाहर से तो सब हो जाता है, लेकिन भीतर में कुछ कमी रह जाती है।

विपश्यना संपूर्ण समाधि है। विपश्यना में बाहर-भीतर एक जैसा हो जाता है। पुरुष रसमय हो जाता है। शमथ लौकिक समाधि है तो विपश्यना अलौकिक समाधि है। जो इन धर्मों को जान लेता है वह भवसागर के पार हो जाता है।"

ऐसा कहते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: यस्स पारं अपारं वा, पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।385।।

अर्थ: जिसके लिए न इस पार (किनारा) का महत्व रह गया है और न उस पार का और न जिसके लिए पार-अपार- दोनों का ही कोई महत्व रह गया है, वैसे निर्भय, संसार से अनासक्त, वीतरागी क्षीणास्त्रव भिक्षु को ही मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

ब्राह्मण किसे कहेंगे ?
मार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन मार ने साधारण मनुष्य का रूप धारण किया और शास्ता के सामने जाकर प्रश्न करने लगा, "भन्ते ! आप अपने उपदेशों में प्रायः 'पार', 'पार' शब्द का व्यवहार करते हैं। 'पार' से आपका क्या अभिप्राय है ? 'पार' किसे कहते हैं ? " शाक्य मुनि ने प्रश्नकर्त्ता को पहचान लिया और कहा, "अरे पापी दुष्ट ! तुझे 'पार' से क्या मतलब है ? 'पार' का अर्थ तू कैसे समझ पायेगा ? 'पार' का अर्थ 'उस किनारे' से है जहाँ जीवन मुक्त, अर्हत् ही पहुँच सकते हैं, जिसे वीतरागी ही जान सकते हैं और वहाँ पहुँच सकते हैं। इन्द्रियों के अनुभव पार हैं तथा मन के अनुभव अपार हैं। जिसके पार (भीतर के छह आयतन- आँख, कान, नाक, जीभ, काया और मन), अपार (बाहर के छह आयतन- रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म) या पार-अपार (ये दोनों ही, अर्थात् 'मैं', 'मेरे' का भाव) नहीं हैं, जो निर्भय और अनासक्त है वही ब्राह्मण (भिक्षु) कहलाता है।

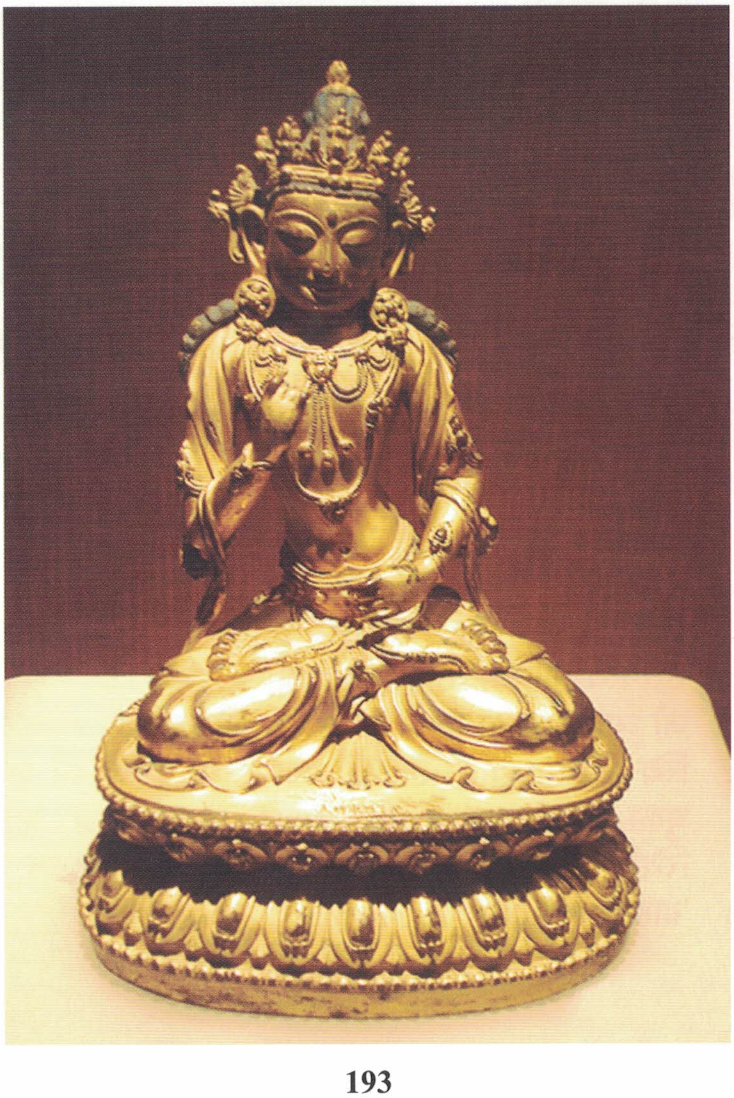

गाथा: झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चमनासवं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 386।।

अर्थ: जो ध्यानी (ध्यान करने वाला है), जो रजोगुण रहित है, जो स्थिर आसन वाला है, जो अपने सभी कृत्यों को पूर्ण कर चुका है जो आस्रव, चित्तविकार, से रहित है, जो श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर चुका है, ऐसे साधक पुरुष को मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।"

ब्राह्मण कौन है ?
किसी ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार श्रावस्ती निवासी एक ब्राह्मण ने चिंतन किया कि "शाक्य मुनि अपने कई शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहकर संबोधित करते हैं। मैं भी तो जाति तथा गोत्र से ब्राह्मण हूँ। अतः मुझे भी 'ब्राह्मण' कहा जाना चाहिए। मुझे 'ब्राह्मण' क्यों नहीं कहा जा सकता ? " ऐसा सोचकर वह शास्ता के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे अपने मन की बात बतलाई।

अपने उत्तर में बुद्ध ने स्पष्ट किया, "केवल जाति या गोत्र के आधार पर मैं किसी को 'ब्राह्मण' संबोधित नहीं कर सकता। जिसने अपने आप को जीत लिया है, जीवन के प्रयोजन को पा लिया है, जो अर्हत् हो चुका है, उस आध्यात्मिक व्यक्ति को ही मैं 'ब्राह्मण' कह सकता हूँ।"

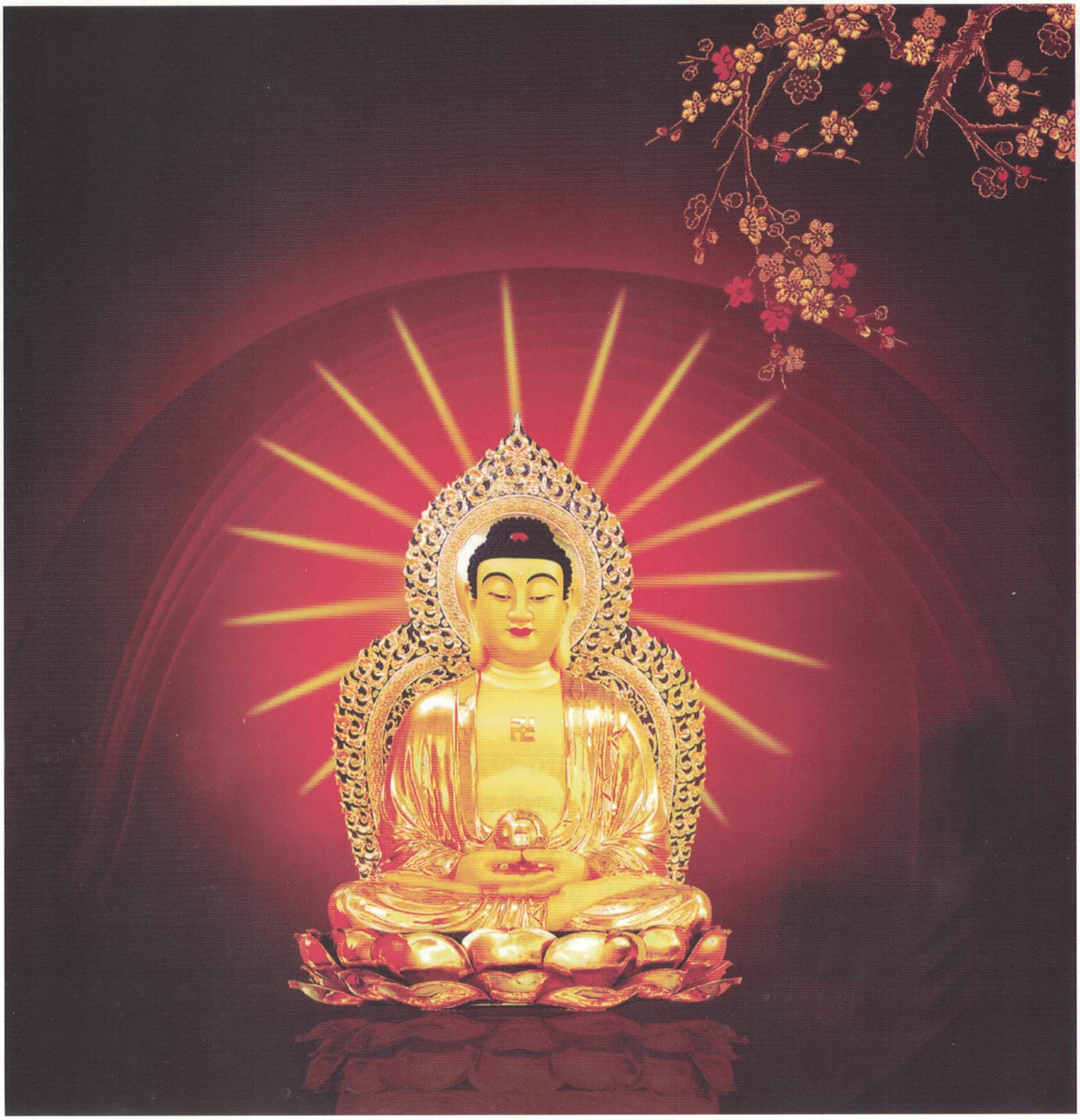

गाथा: दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेजसा।। 387।।

अर्थ: सूर्य दिन में चमकता है, चन्द्रमा रात में। क्षत्रिय जब युद्ध में जाने के लिए कवच पहनता है तब चमकता है, क्षीणास्रव भिक्षु (ब्राह्मण) समाधिनिष्ठ होने पर चमकता है पर बुद्ध अपने अलौकिक तेज से सर्वदा देदीप्यमान रहते हैं।

बुद्ध सदैव देदीप्यमान रहते हैं
आनन्द स्थविर की कथा

स्थान : मिगारमातु प्रासाद

महाप्रवारणा के अवसर पर राजा प्रसेनजित सभी आभूषणों से अलंकृत हो शास्ता के सम्मुख पहुँचे। उसी समय कालुदायी भी तुरंत समाधि से उठे तथा वहीं परिषद् में किनारे विद्यमान थे। वैसे तो उनके नाम में 'काल' शब्द जुड़ा था पर वे थे गौर वर्ण के।

उस समय सूरज डूब रहा था और चन्द्रमा प्रकट हो रहा था। आनन्द ने उदय होते चन्द्रमा को देखा, अस्त होते सूर्य को देखा, राजा के शरीर की प्रभा देखी, कालुदायी और शाक्य मुनि के शरीर की आभा भी देखी। उन्हें इन सभी शोभाओं में बुद्ध की शोभा श्रेष्ठ लग रही थी।

आनन्द स्थविर बुद्ध के सम्मुख उपस्थित हुए, उन्हें सादर प्रणाम किया और कहा, "भन्ते ! मैंने इन सभी शोभाओं की तुलना की है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आपकी शोभा ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका क्या कारण है ?"

तथागत ने समझाया, "आनन्द ! सूर्य दिन में ही प्रकाश देता है और चन्द्रमा रात में ही शोभा बढाता है। राजा आभूषणों से अलंकृत हो यूद्धभूमि में शोभायमान होता है। क्षीणास्त्रव भिक्षु समाधिस्थ रहकर शोभा देता है पर बुद्ध तो दिन-रात सभी समय पाँच प्रकार के तेज से प्रकाशित रहते हैं।वे (1) अपने शील तेज से दुश्शीलता को (2) गुणतेज से निर्गुणता को (3) प्रज्ञातेज से दुर्बुद्धि को (4) पुण्य तेज से अपुण्य (पाप) को तथा (5) धर्मतेज से अधर्म को हटाकर इस पंचविध तेज से समस्त लोक में निरंतर शोभायमान रहते हैं।

गाथा: बाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा "पब्बजितो" ति वुच्चति।। 388।।

अर्थ: जिसने पापों को नष्ट कर दिया है वह 'ब्राह्मण' है। जो समभाव का आचरण करता है वह मेरी दृष्टि में 'श्रमण' कहलाता है तथा जो चित्तविकारों को हटा देता है वह 'प्रव्रजित' कहलाता है।

प्रव्रजित कौन है ?
किसी प्रव्रजित ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में वाह्य प्रव्रज्या से प्रव्रजित होकर एक ब्राह्मण अपने आप से पूछने लगा, "शाक्य मुनि अपने शिष्यों को 'प्रव्रजित' कहते हैं। प्रव्रज्या तो मैंने भी ली है तो मुझे भी 'प्रव्रजित' कहा जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर वह जेतवन गया और बुद्ध से पूछा कि 'उसे भी प्रव्रजित क्यों नहीं कहा जाए ?' तब तथागत ने उसे स्पष्ट किया, "प्रव्रज्या ले लेने मात्र से मैं किसी को प्रव्रजित नहीं कहता। इसके विपरीत जिसने अपने चित्त से सभी क्लेश-विकारों को निकाल दिया है उसे 'प्रव्रजित' कहता हूँ।" जैसे पापों का नाश करने के कारण 'ब्राह्मण' तथा सभी अकुशलों को अपने आचरण द्वारा शांत करने के कारण 'श्रमण' कहलाता है; वैसे ही जो अपने राग आदि मलों को समाप्त करता हुआ, दूर हटाता हुआ आचरण करता है वही 'प्रव्रजित' कहलाता है।

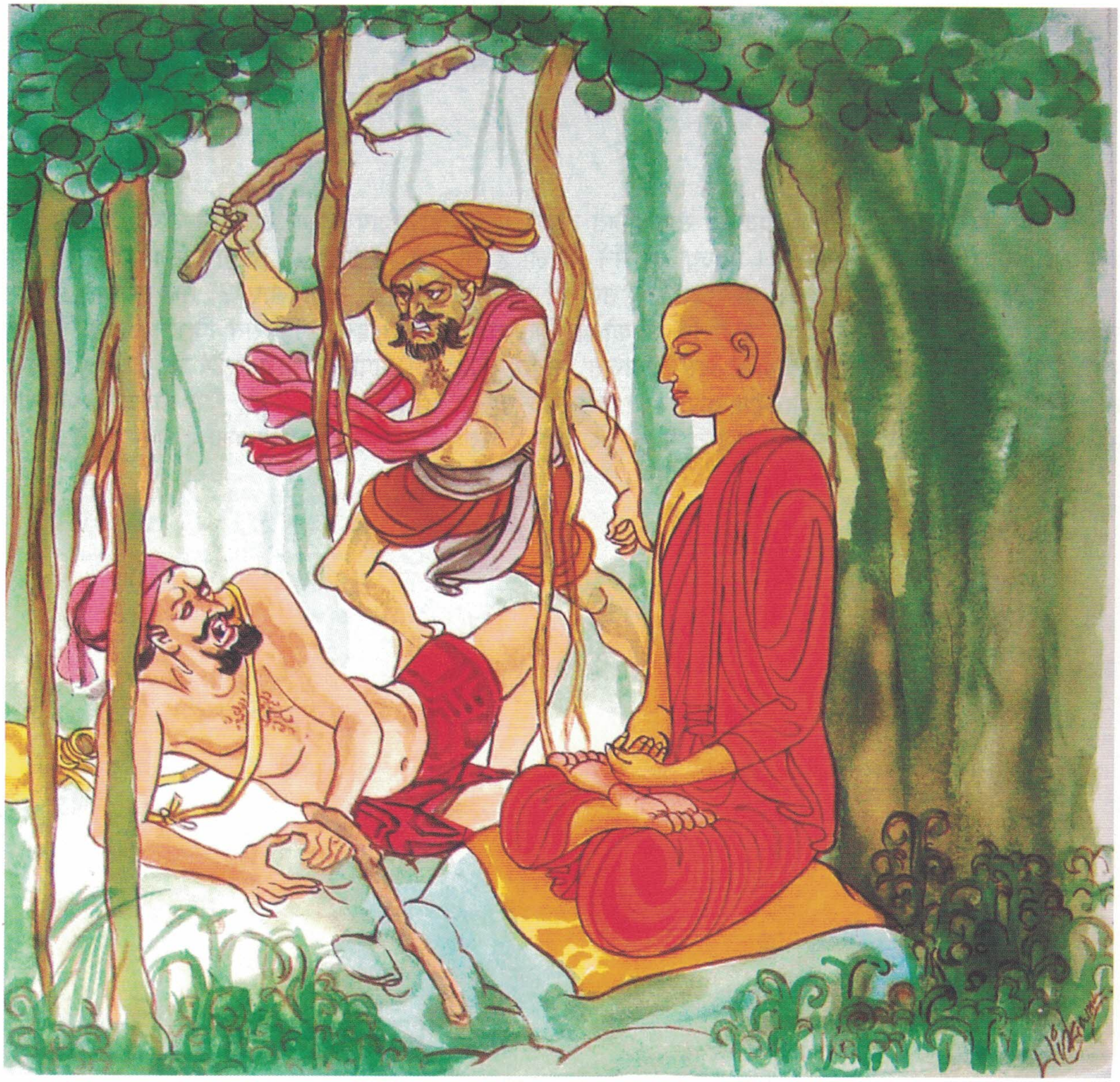

गाथा: न ब्राह्मणस्स पहरेय्य, नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धी ब्राह्मणस्स हन्तारं, ततो धी यस्स मुञ्चति।। 389।।

अर्थ: ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिए, और ब्राह्मण को भी उस प्रकार करने वाले पर कोप नहीं करना चाहिए। धिक्कार है ब्राह्मण पर प्रहार करने वाले पर और उससे भी अधिक धिक्कार है उस पर जो इसके लिए कोप करता है।

क्रोध पर विजय : सर्वोत्तम विजय
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सारिपुत्त थेर अपनी सहनशीलता के लिए सर्वदा विख्यात रहे हैं। एक बार श्रावस्ती के नागरिक एक जगह खड़े होकर उनके धैर्य और सहनशीलता की प्रशंसा कर रहे थे। वहीं पर एक अन्य मतावलम्बी ब्राह्मण भी बैठा हुआ था और इन नागरिकों की बातें सुन रहा था। वह क्रोध और ईर्ष्या से जला जा रहा था। अंत में अपने आप को रोक न सका और बोला, "कोई उन्हें क्रोधित करना जानता ही नहीं होगा। मैं क्रोधित कर दिखाऊँगा।" "ठीक है, तो तुम ही उन्हें क्रोधित कर दिखाओ।" "मैं अवश्य ही उन्हें क्रुद्ध कर दिखाऊँगा।"

दोपहर में सारिपुत्त भिक्षाटन के लिए धीरे-धीरे चल रहे थे। वह ब्राह्मण उनके पीछे पहुँच गया और खूब जोर से उनकी पीठ पर दे मारा। सारिपुत्त ने न तो कोई प्रतिक्रिया की, न कुछ कहा और न ही पीछे मुड़कर देखा। वे शांत भाव से उसी प्रकार चलते गए जैसे कुछ हुआ ही न हो। अब ब्राह्मण को लग गया कि उससे भयानक भूल हुई है। अतः वह सारिपुत्त के चरणों पर गिर गया और उनसे माफी माँगने लगा। सारिपुत्त ने उसे माफ कर दिया। उसने सारिपुत्त को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। सारिपुत्त उसके घर गए और भोजन ग्रहण किया।

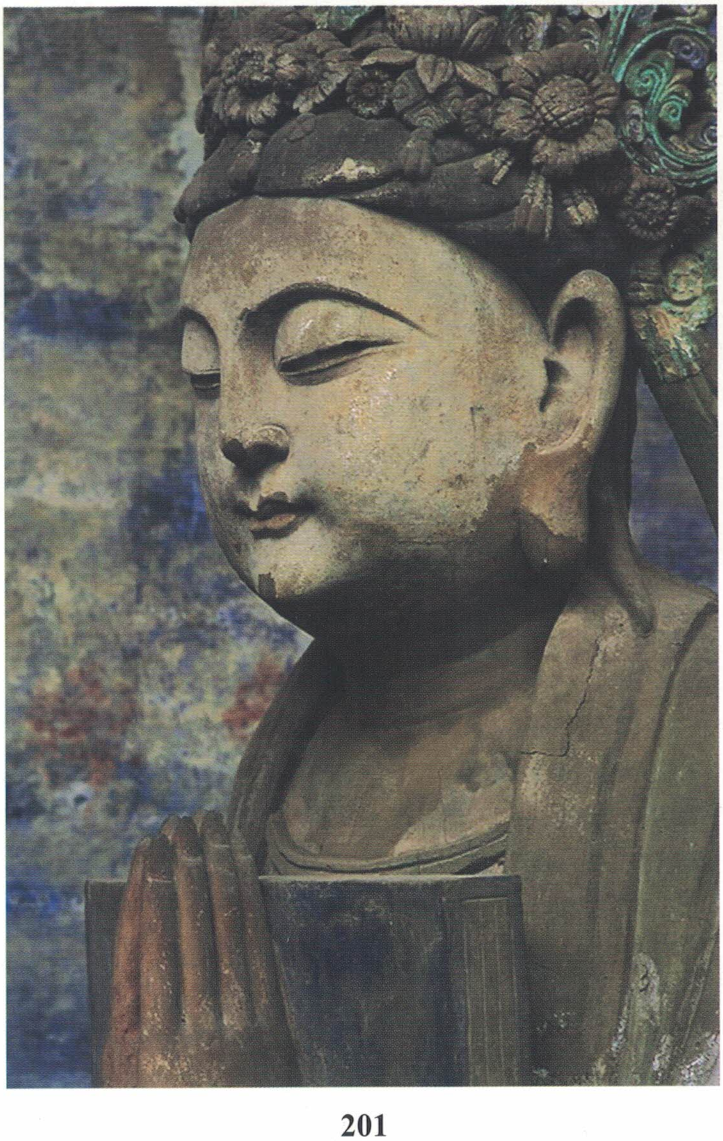

गाथा: न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो, यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति, ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं।। 390।।

अर्थ: ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं कि वह प्रिय वस्तुओं से अपना मन हटा लेता है क्योंकि ऐसा देखा गया है कि जहाँ जहाँ से साधक अपना मन हिंसा से हटा लेता है वहाँ-वहाँ से दु:ख अवश्य शांत होता चलता है।

हिंसा से मन हटायें, दु:ख शांत होता जाएगा
सारिपुत्त थेर की कथा

सारिपुत्त भोजन कर विहार आये। भिक्षुओं में आपस में चर्चा चल पड़ी, "थेर सारिपुत्त को उस ब्राह्मण को माफ नहीं करना चाहिए था और उसके घर जाकर भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए था। आज उसने सारिपुत्त को मारा है, कल वह किसी और को मारेगा।"

संध्या बेला में इन भिक्षुओं ने अपनी प्रतिक्रिया शाक्य मुनि के सम्मुख रखी। इसे सुनकर बुद्ध ने समझाया, "एक सच्चा ब्राह्मण दूसरे सच्चे ब्राह्मण को नहीं मारता है, किसी साधारण जन ने या किसी साधारण ब्राह्मण ने मारा होगा। सारिपुत्त ने वही किया है जो किसी ब्राह्मण को करना चाहिए।"

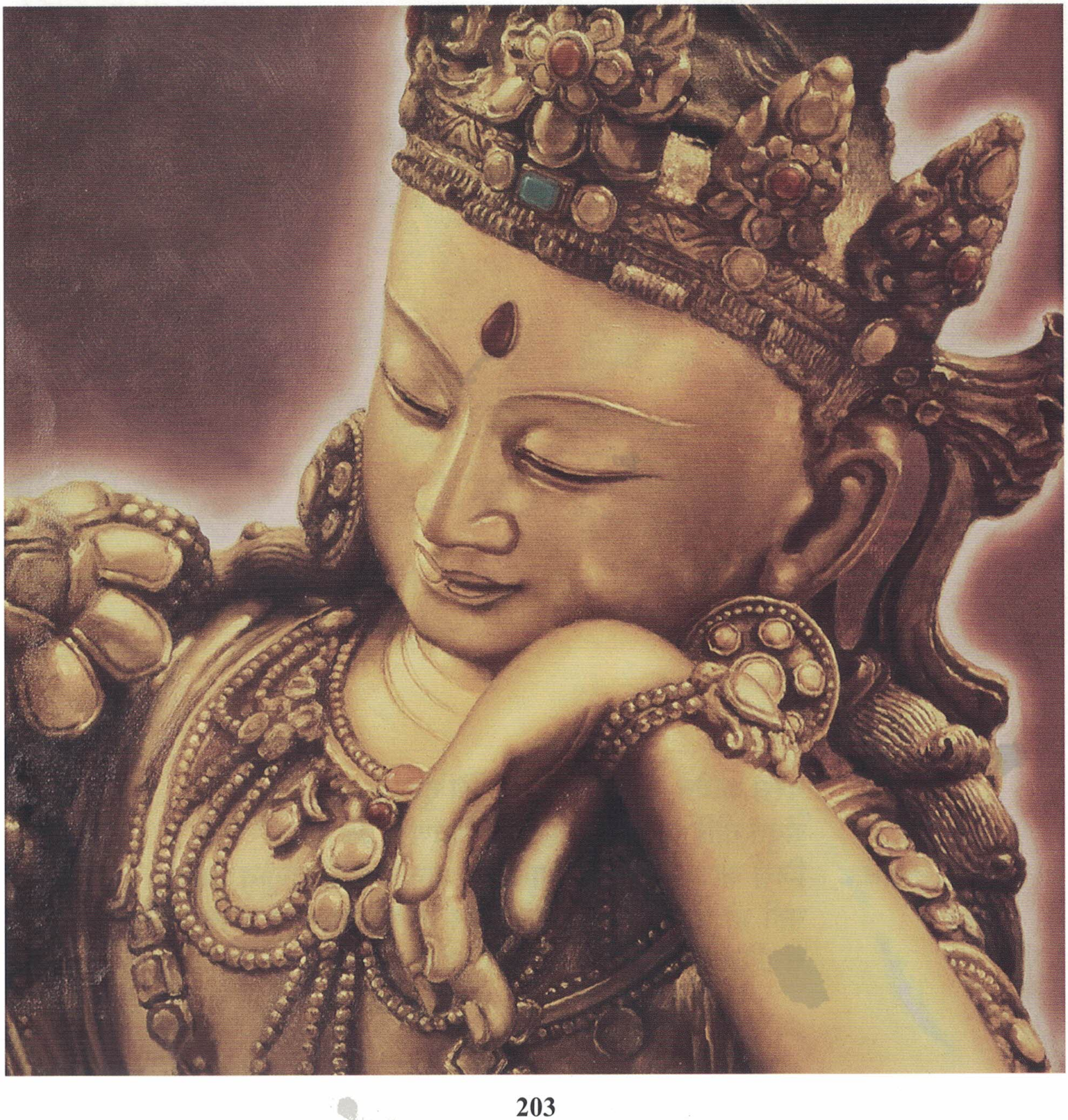

गाथा: यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
संवुतं तीहि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 391।।

अर्थ: जिस साधक के काय, वाणी एवं मन से कोई दुष्कृत (पाप) नहीं हो रहा है, वह तीनों स्थल काय, मन और वचन से संयमित है। उसे ही मैं 'ब्राह्मण' मानता हूँ।

सबसे बड़ा संयम : काय, मन और वचन का संयम
महापजापति गोतमी की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महापजापति गोतमी शाक्य मुनि की सौतेली माँ थीं। बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद जब वे कपिलवस्तु में विहार कर रहे थे तब महापजापति गोतमी ने उनसे प्रार्थना की थी कि भिक्खुसंघ में स्त्रियों को भी उपसंपदा मिले पर शास्ता ने उसे स्वीकार नहीं किया था। बाद में महाराज शुद्धोदन के अर्हत्व प्राप्त कर परिनिर्वित हो जाने के बाद वह पाँच सौ महिलाओं के साथ पैदल चलकर वैशाली पहुँचीं। उन्होंने दूसरी बार बुद्ध से भिक्षुसंघ में शामिल करने की प्रार्थना की। इस बार आनन्द थेर ने भी उनके लिए शास्ता के सम्मुख अनुमोदन किया। सभी भिक्षुणियाँ प्रव्रजित हो गईं।

कुछ समय बाद भिक्षुओं ने प्रश्न उठाया कि महापजापति की उपसंपदा सही ढंग से नहीं हुई है। उपाध्याय, आचार्य नहीं हैं । इस कारण भिक्षुणियाँ न उनके साथ उपोसथ रखना चाहती हैं और न प्रवारण। बात बुद्ध तक पहुँची। तब बुद्ध ने स्पष्ट करते हुए बताया, "भिक्षुओं ! ऐसा क्यों कह रहे हो ? मैंने महापजापति को आठ गुरूधर्मों से प्रव्रजित किया है। वह उनको जानती हैं और उनका अभ्यास भी करती हैं। मैं ही उनका आचार्य हूँ, मैं ही उनका उपाध्याय भी हूँ।"

गाथा: यम्हा धम्मं विजानेय्य, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य, अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो।। 392।।

अर्थ: जिस आचार्य के माध्यम से सम्यक सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे उसी प्रकार सत्कार पूर्वक नमस्कार करे जैसा ब्राह्मण अग्नि आहूति को करता है।

सम्यक सम्बुद्ध को दिखाने वाले आचार्य को नमस्कार है
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सारिपुत्त थेर ने अश्वजित स्थविर से 'ये धम्मा हेतुप्पभवा' धर्मदेशना सुनकर स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया था। वे इस बात को नहीं भूले। स्थविर अश्वजित के प्रति जीवन पर्यन्त उन्होंने कृतज्ञता का भाव रखा क्योंकि वे हृदय से महसूस करते थे कि भन्ते अश्वजित के कारण ही उन्हें मृत्यु के पार देखने का अवसर मिला तथा स्थविर अश्वजित ने ही उन्हें बुद्ध के दर्शन कराये। उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए प्रत्येक रात्रि सोने से पूर्व वे अपने आचार्य को प्रणाम करते थे और हाथ जोड़कर उधर ही सिर रखकर सोते थे जिस ओर आचार्य होते थे।

जेतवन विहार में अन्य भिक्षुओं ने इसे देखा तो इसका गलत अर्थ लगाया। वे शाक्य मुनि के पास गए तथा बोले, "भन्ते ! लगता है सारिपुत्त आज भी मिथ्या दृष्टि सम्पन्न हैं क्योंकि वे दिशा नमस्कार करते हैं। शास्ता ने सारिपुत्त को बुलाया और पूछा, "सारिपुत्त ! क्या यह सही है कि तुम अब भी दिशा नमस्कार करते हो।" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "तथागत ! आप तो मेरे मन की सारी बातें जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि मैं दिशा नमस्कार नहीं करता हूँ। मैं तो सिर्फ आचार्य जिधर रहते हैं उनका ध्यान कर उधर ही नमस्कार करता हूँ।" तब शाक्य मुनि ने भिक्षुओं को बुलाया और कहा, "भिक्षुओं ! सारिपुत्त दिशा नमस्कार नहीं करते हैं, वरन् अपने आचार्य को नमस्कार करते हैं।"

गाथा: न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो।। 393।।

अर्थ: न जटा बढ़ा लेने से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य (सोलह प्रकार से प्रतिवेधन किए हुए चार आर्य सत्य) और नौ प्रकार के लोकोत्तर धर्म हैं, वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।

जो शुचि (पवित्र) है वही ब्राह्मण है
जटाधारी ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन में एक जटाधारी ब्राह्मण ने विचार किया, "मैं तो मातृपक्ष तथा पितृपक्ष दोनों से ही परिशुद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। बुद्ध अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहकर पुकारते हैं। मैं तो जाति से ही ब्राह्मण हूँ। अतः उन्हें मुझे भी 'ब्राह्मण' कहकर ही संबोधित करना चाहिए।" यह बात सोचकर वह बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत हुआ तथा उनके सामने अपनी शंका रखी। तब शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "केवल ज़टा बढ़ा लेने से या जाति विशेष में पैदा होने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता है। ब्राह्मण वह है जिसने सत्य के दर्शन कर लिए हों।"

गाथा: किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि।। 394।।

अर्थ: हे दुर्बुद्धि दुष्ट ! जटाओं से तेरा क्या होगा ? मृगचर्म धारण करने से तुझे क्या लाभ होगा ? भीतर से तो तेरा चित्त गहन मलीन है। बाहर-बाहर तू इसे क्या रगड़ता-धोता है ?

मलीन मन को साफ करें, बाहर धोने से क्या लाभ ?
पाखंडी ब्राह्मण की कथा

स्थान : कूटागारशाला, वैशाली

एक दिन वैशाली में एक पाखंडी ब्राह्मण अर्जुन के पेड़ में पैर ऊपर तथा सिर नीचे कर लटक गया और आने-जाने वालों से कहने लगा, "मुझे गायें दो, कार्षापण दो, मुझे सेवक दो। नहीं दोगे तो यहीं से नीचे गिरकर आत्महत्या कर लूँगा और प्रेत बनकर तुम्हारे नगर को तबाह कर दूँगा।" नगरवासी डर गए और उसने जिन-जिन चीजों की माँग की थी उन सभी की आपूर्ति कर दी । वह नीचे उतरा, सभी चीजें उठाईं और चल दिया। भिक्षुओं ने यह सब देखा। अतः ब्राह्मण से पूछा, "जो जो चाहा था वह सब मिल गया न ? " ब्राह्मण ने सांड़ की तरह गरजते हुए कहा, "हाँ मिल गया।"

भिक्षुओं ने सारी बातें शास्ता को बताई। उन्होंने इसका स्पष्टीकरण किया, "यह भूतकाल में भी लोगों को ठगना चाहता था पर लोगों के बुद्धिमान होने के कारण उनको ठग नहीं पाया था। पर इस जन्म में इस पाखंडी ने मूर्खों को ठग दिया है।"

उन्होंने गोधजातक की कथा सुनाई, "अतीत काल में काशिक गाँव में एक पाखंडी ब्राह्मण रहता था। उसके एक भक्त परिवार ने एक दिन उसे गोधा (सर्पजाति) का माँस खिलाया। वह उसे बहुत अच्छा लगा। अतः उसने अपने पर्णकुटी में सभी तरह के मसाले मंगा लिए और पास ही बिल में रहने वाले साँप को मारने के लिए निद्रालु होने का नाटक करने लगा। साँप प्रतिदिन ब्राह्मण को प्रणाम करने आता था। आज उसके सोने के अभिनय को देखकर सोचा, 'आज आचार्य का विश्राम करने का ढंग अजीब लग रहा है।' अतः वह दूर से ही बिल में घुसने के लिए मुड़ गया। तपस्वी ने उसे मारने के लिए डंडा फेंका पर वह डंडा चूक गया। वह साँप बिल में घुस गया। उस जन्म में यह ब्राह्मण ही वह पाखंडी ब्राह्मण था और मैं गोधराज था।"

गाथा: पंसुकूलधरं जन्तुं, किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झयन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 395।।

अर्थ: जो फटे- पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो दुबला-पतला (कृश है), जिसके शरीर की सभी नसें दूर से दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यानरत रहता है, उसे मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

ब्राह्मण हो तो किसा गोतमी जैसा
किसा गोतमी की कथा

स्थान : गृद्धकूट पर्वत, राजगीर

एक रात, प्रथम प्रहर में, देवराज इन्द्र शाक्य मुनि के पास धर्मपरिषद में बैठा हुआ धर्म श्रमण कर रहा था। शास्ता उन दिनों गृद्धकूट पर्वत पर साधना किया करते थे। जिस समय यह धर्म प्रवचन चल रहा था उसी समय किसा गोतमी आकाशमार्ग से शास्ता की वन्दना के लिए आई। पर जब उसने शक्र को उनके पास बैठा हुआ देखा तो दूर से ही सादर प्रणाम कर लौट गई। शक्र ने उसे देखकर पूछा कि यह नारी कौन थी। तब तथागत ने किसा गोतमी के विषय में बताया, "यह किसा गोतमी नाम की मेरी बेटी है। एक बार मैंने इसे दु:ख के सागर से बाहर निकाला था। तब वह प्रव्रजित हो गई। उस समय उसने स्रोतापन्न प्राप्त किया था। वह मेरे संघ में पांशुकुल (फटे चीथड़ों से बना चीवर) धारण करने वाली थेरियों में अग्र है।"

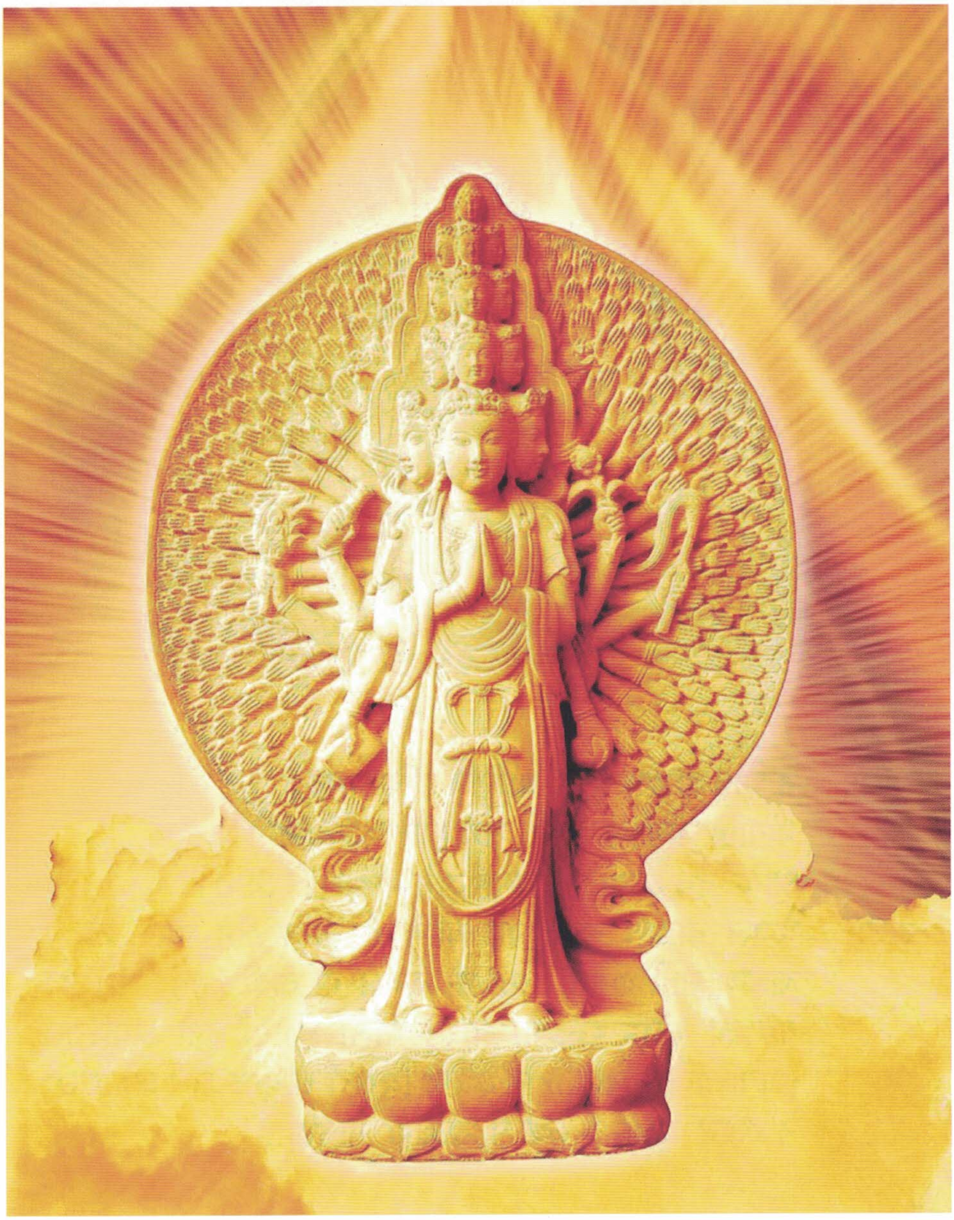

गाथा: न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं।
भोवादि नाम सो होति, सचे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 396।।

अर्थ: केवल ब्राह्मण माता की योनि से जन्म लेने वाले को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो केवल भो वादी (अहंकारी) है। वह तो संग्रह (ग्रहण) करने वाला है। हाँ जो अपरिग्रह (अनासक्ति युक्त) और त्यागी (दूसरों से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाला) है उसे मैं 'ब्राह्मण' मानता हूँ।

अपरिग्रही और त्यागी ही ब्राह्मण है
एक ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण एक दिन शाक्य मुनि के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे जिज्ञासा जाहिर की, "भो गौतम ! आप अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। मेरा जन्म ब्राह्मण योनि में हुआ है। अतः मुझे भी ब्राह्मण कहना चाहिए। क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ? "

तब शास्ता ने इस गाथा के माध्यम से समझाया कि ब्राह्मण कौन है।

गाथा: सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 397।।

अर्थ: जो सारे सांसारिक बंधनों (संयोजनों) को काटकर तृष्णा से भयभीत (त्रस्त) नहीं होता, जो विषयों के संग और आसक्ति से विमुक्त हो चुका है, जिसकी संसार में आसक्ति नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

विषयों के संग और आसक्ति से विमुक्त ही ब्राह्मण है
उग्रसेन की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में उग्रसेन ने एक नटी कन्या से विवाह कर लिया था। बाद में पत्नी के उलाहना देने पर उसने भी नट के कारनामे सीख लिए और नट कला का प्रदर्शन करने लगा। वह बहुत ऊँचाई तक जाता था, नीचे कूदता था आदि, आदि। इस कथा का जिक्र गाथा 348 (तन्हा वर्ग) में आया है।

एक दिन उसने शाक्य मुनि के सम्मुख अपना खेल दिखाया और उसी समय अर्हत्व प्राप्त कर गया। वह बाँस से नीचे उतरा, शास्ता के पास गया तथा प्रव्रजित होने की आज्ञा माँगी। शास्ता ने उसे भिक्षु बना लिया।

एक दिन भिक्षुगण उससे पूछने लगे कि उतने ऊँचे-ऊँचे बाँसों पर चढ़कर खेल दिखाते समय उसको डर नहीं लगता था। उसने कहा, "नहीं।" भिक्षुगण बुद्ध के पास गए और उसने कहा, "भन्ते ! उग्रसेन झ ूठ बोलता है कि उसे भय नहीं लगता था और उसने अर्हत्व पा लिया था।" तब शास्ता ने बताया, "नहीं भिक्षुओं ! उग्रसेन झूठ नहीं बोल रहा है। मेरे पुत्र उग्रसेन जैसे व्यक्ति, जो बन्धनों को काट चुके हैं, डरते नहीं हैं।"

गाथा: छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च, सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 398।।

अर्थ: नद्धा (क्रोध), वरत्रा (तृष्णा रूपी रस्सी), संदान (बासठ प्रकार की दृष्टियाँ रूपी पगहे), और हनुक्रम (मुँह पर बाँधे जाने वाला जाल, अनुशय) को काट कर, पटिघ (अविद्या रूपी जूए) को उतार फेंक जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

आसक्तियों, अविद्या को फेंकने वाला ही ब्राह्मण है
दो ब्राह्मणों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में दो ब्राह्मण रहते थे। एक के पास चूड़ारोहित नामक बैल था और दूसरे के बैल का नाम था - महारोहित। दोनों में अक्सर विवाद होता रहता था कि एक का बैल दूसरे की तुलना में अधिक बलवान है। फिर उन्होंने एक दिन विचार-विमर्श किया, "विवाद में उलझने से क्या लाभ ? एक दिन दोनों बैलों की परीक्षा ले लेते हैं।"

तय हुआ कि दोनों अचिरावती नदी के तट पर जायेंगे और बैलगाड़ी में बालू भरकर इन बैलों की जोड़ी से निकलवायेंगे। इससे पता चल जाएगा कि कौन बैल अधिक बलवान है।

दूसरे दिन यही हुआ। नदी तट पर बैलगाड़ी में बालू लाद दिया गया और बैलों की जोड़ी खींचने लगी। पर बैलगाड़ी टस से मस नहीं हुई। बैल उसे हिला भी न सके। यहाँ तक की उनकी रस्सी और चमड़े की पट्टी भी टूट गई।

भिक्षुगण ने इसे देखा और विहार आकर शास्ता को बताया। शास्ता ने कहा, "ये लौकिक रस्सियाँ हैं। इन्हें कोई भी तोड़ देगा। भिक्षु को तो अपनी-अपनी क्रोध और तृष्णा रूपी रस्सी को काटने का प्रयास करना चाहिए।

गाथा: अक्कोसं बधबन्धञ्च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।399।।

अर्थ: जो मनुष्य अपना चित्त दूषित किये बिना दुर्जनों के अपशब्द (गाली), मारपीट, वध (दंड) या किसी प्रकार का बंधन (कारागार) - सब कुछ सह लेता है, सहन शक्ति (क्षमा-बल) ही जिसकी सेना और सेनापति है, उसको मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

जो क्षमा बल युक्त है वह ब्राह्मण है
आक्रोश भारद्वाज की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

आक्रोश भारद्वाज के भाई की पत्नी स्त्रोतापन्न थी। वह किसी भी बहाने खखारने, खाँसने, फिसलने आदि के बाद "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" मंत्र का उच्चारण करती थी। (अर्थः उन भगवान अर्हत् सम्यकसम्बुद्ध को प्रणाम है)

एक दिन उसके घर ब्राह्मण भोज था। भोजन कराते समय वह लड़खड़ा गई और उसके मुँह से यही मंत्र निकल पड़ा। ब्राह्मण ने क्रोध करते हुए कहा, "नीच जाति की स्त्री जहाँ भी होती है उस श्रमण सिरमुंडे की ही प्रशंसा किया करती है।" फिर बोला, "शूद्र महिला ! अभी जाऊँगा और तुम्हारे श्रमण से शास्त्रार्थ करूँगा और तब देखूँगा कि वह कितना ज्ञानी है।

ब्राह्मण शाक्य मुनि के पास गया, बिना प्रणाम किये ही एक तरफ खड़ा होकर पूछा, "भो गौतम ! क्या काटकर मनुष्य सुख की नींद सो पाता है तथा क्या काट देने के बाद उसे शोक नहीं करना पड़ता है ? किस एक धर्म का नाश करना सर्वोत्तम है ? "

ब्राह्मण को इस गाथा के माध्यम से शास्ता ने समझाया, "ब्राह्मण ! मनुष्य क्रोध को काटकर सुखपूर्वक सो सकता है। क्रोध के त्याग से उसे शोक नहीं करना पड़ता है क्योंकि आरंभ में क्रोध बहुत मधुर लगता है पर उसका परिणाम विष के समान होता है। अतः आर्य (विद्वान लोग) उसे नष्ट कर देते हैं ताकि शोक को प्राप्त न हों।"

ऐसा सुन वह शास्ता का भक्त बन गया, प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया और अर्हत हो गया।

उसका छोटा भाई आक्रोश भारद्वाज यह सुनकर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और वह भी शास्ता से शास्त्रार्थ हेतु गया। पर वह भी बुद्ध के प्रति श्रद्धालु होकर, प्रव्रज्या ग्रहण कर अर्हत हो गया।

उसके बाद दो छोटे भाई - सुन्दरिक भारद्वाज और विलिडग्गक भारद्वाज भी क्रुद्ध होकर शाक्य मुनि के पास आये पर वे भी प्रव्रजित होकर अर्हत हो गए।

एक दिन भिक्षुगण शास्ता के अद्भुत गुणों की चर्चा कर रहे थे। यह सुनकर शास्ता ने बताया, "भिक्षुओं ! अन्दर में अत्यधिक शांतिबल से युक्त होने के कारण मैं दुर्जनों पर द्वेष नहीं करता। इससे आर्यजनों की प्रतिष्ठा ही बढ़ती है।"

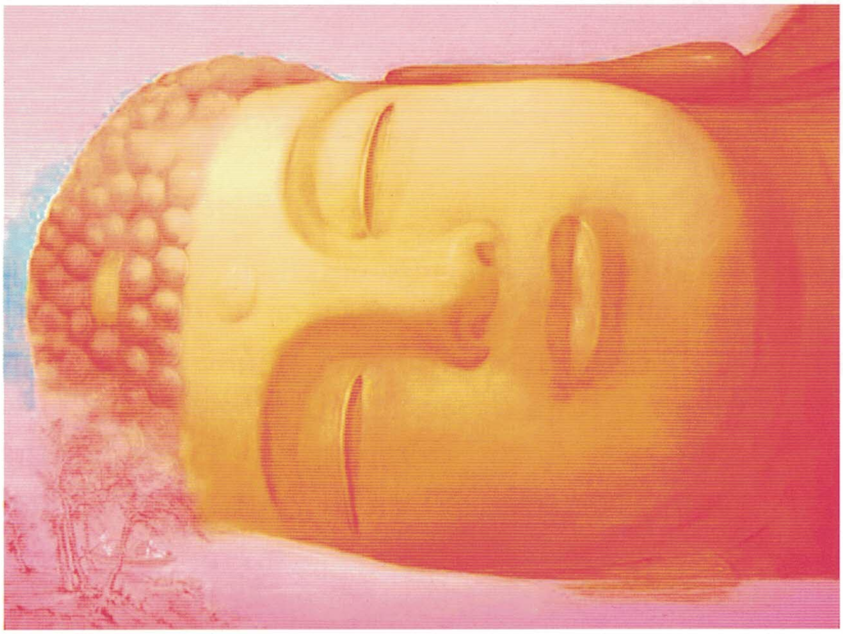

गाथा: अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 400।।

अर्थ: जो किसी पर क्रोध नहीं करता, धार्मिक शील (सदाचार) एवं व्रत से सम्पन्न है, निराभिमानी (दंभी नहीं) है, सदा तृष्णा रहित रहता है, छह इन्द्रियों का दमन कर लेने से दान्त (संयमी) और अंतिम शरीर धारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

क्रोध, शील, व्रत से संपन्न, अभिमान रहित संयमी ही ब्राह्मण है
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि के वेणुवन में विहरते समय एक दिन सारिपुत्त भिक्षुओं के साथ नालक गाँव पहुँचे और भिक्षुसंघ के साथ माँ के घर के दरवाजे पर भोजन दान के लिए खड़े हो गए। थेर की माँ ने सबों को अन्दर बुलाकर भोजन कराया पर भोजन परोसते समय सारिपुत्त को भला-बुरा कहे जा रही थीं, "जूठा खाने के लिए अस्सी करोड़ का धन छोड़कर प्रव्रजित हुआ है" आदि,आदि। सारिपुत्त ने बहुत ही शालीनता से उसे सुन लिया और कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

सभी भिक्षु बौद्ध विहार लौट आये। शास्ता ने राहुल से पूछा, "कहाँ गये थे ? " "भन्ते ! दादी के गाँव गये थे।" "तुम्हारी दादी ने तुम्हारे उपाध्याय को कुछ कहा ? " "कुछ कहा ?, बहुत कुछ कहा। दादी उपाध्याय पर बहुत नाराज थीं।" "क्या कहा ? " "यह कहा।" "तुम्हारे उपाध्याय ने उत्तर में क्या कहा ? " "भन्ते ! उन्होंने कुछ नहीं कहा और वे शांत रहे।"

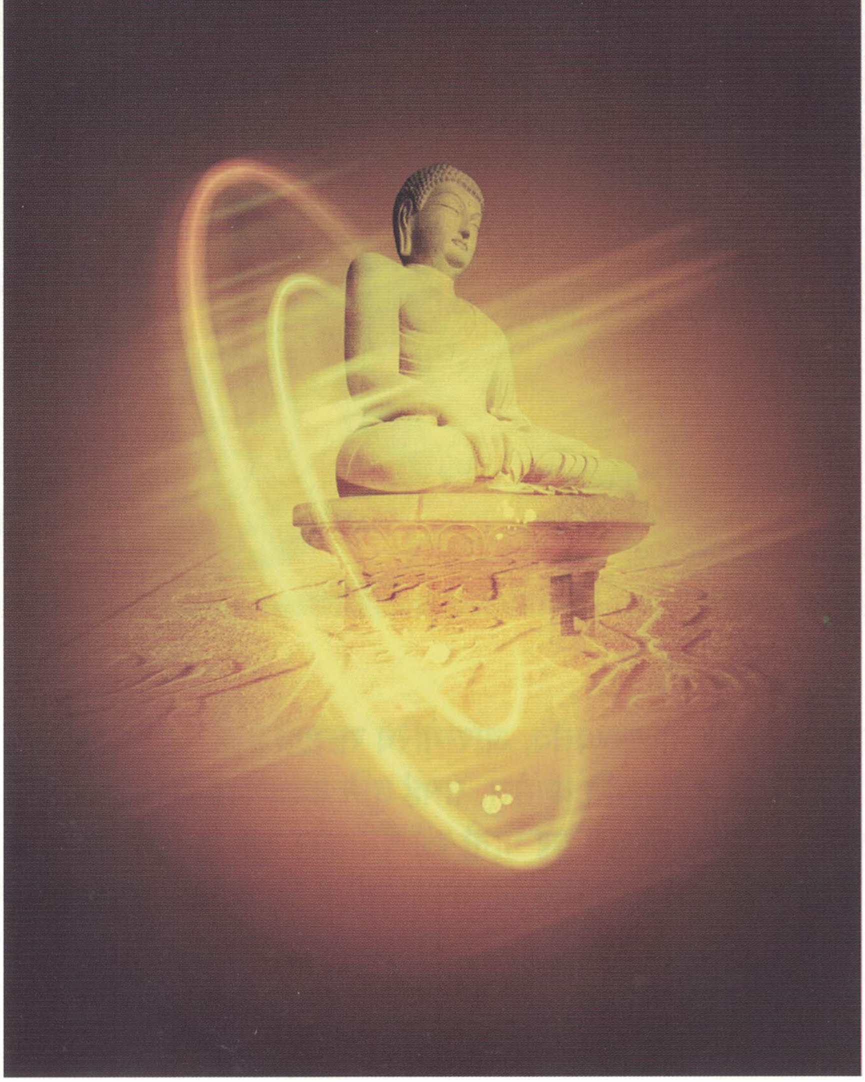

गाथा: वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 401।।

अर्थ: कमल के पत्ते पर पानी की बूँद और सूई के सिरे पर सरसों के दाने के समान जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

कामभोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है
उत्पलवर्णा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेरी उत्पलवर्णा के साथ नन्द ने बलात्कार किया था जिसके कारण धरती फटी और वह उसमें समा गया। इसका वृतांत गाथा 69 में दिया गया है।

बाद में एक दिन धर्मसभा में चर्चा का विषय था- "क्या क्षीणास्त्रव भिक्षु भी काम सुखों का सेवन करते हैं ? " भिक्षुओं में इस विषय पर मतभेद था। एक समूह कह रहा था - " सेवन क्यों नहीं करते ? क्या वे सूखे, ठूँठ वृक्षों की तरह निर्जीव हैं ? क्या उनकी इन्द्रियाँ साँप या चूहों के बिल हैं ? वे भी तो हमारी तरह रक्त-मज्जा के ही बने हुए हैं। अतः वे कामसुखों का सेवन करते हैं।" दूसरा समूह इसके ठीक विपरीत विचार धारा वाला था। जब यह वार्त्तालाप हो रहा था, उसी समय शाक्य-मुनि वहाँ पधारे। शिष्यों से चर्चा का विषय जानकर उन्होंने समझाया, "नहीं भिक्षुओं ! क्षीणास्त्रव भिक्षु इन कामसुखों का सेवन नहीं करते, वे इन्हें स्वीकार नहीं करते। वे इनमें किसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति नहीं करते।"

विषय वस्तु को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन्होंने यह गाथा सुनाई।

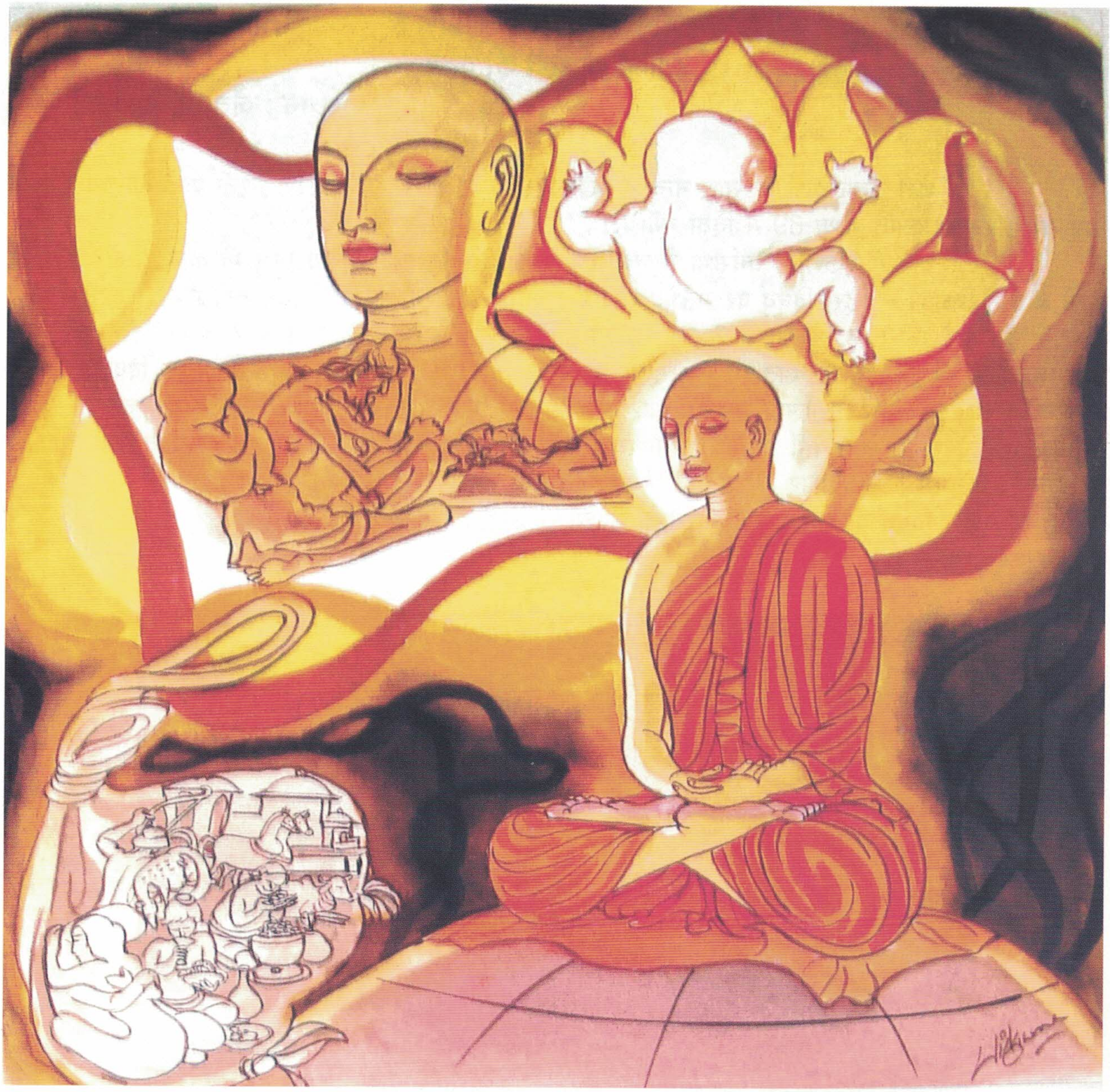

गाथा: यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 402।।

अर्थ: जो यहीं, इसी लोक में, अपने दुःख के क्षय को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार फेंका है और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बोझ उतार फेंकने वाला आसक्ति रहित ही ब्राह्मण है
किसी ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नौकर उसकी आज्ञापालन में अपने को असमर्थ पा रहा था। अतः उसे छोड़कर भाग गया और बौद्ध विहार जाकर प्रव्रजित हो गया। वहाँ साधना में तल्लीन होकर उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। ब्राह्मण नौकर को खोजता रहा पर बहुत दिनों तक वह उसे नहीं दिखा।

एक दिन वह भिक्षु (पूर्व काल में दास) शाक्य-मुनि के साथ भिक्षाटन कर रहा था। ब्राह्मण ने उसे भिक्षा माँगते हुए देख लिया। उसे देख कर उसने उस भिक्षु के चीवर का एक किनारा पकड़ लिया। तथागत ने मुड़कर देखा और लौटकर ब्राह्मण से पूछा, "यह क्या कर रहे हो ? " "भो गौतम ! यह मेरा दास है।" "इसने तो अपना सारा लौकिक भार उतार फेंका है।" ब्राह्मण को बात समझ में आ गई कि उसका पुराना नौकर अर्हत् हो चुका है। "क्या यही बात है ? " "हाँ ब्राह्मण ! यही बात है।"

गाथा: गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।403।।

अर्थ: जो गम्भीर प्रज्ञा वाला है, मेधावी है, मार्ग-अमार्ग को अच्छी तरह पहचानता है तथा जिसने उत्तम अर्थ (निर्वाण) को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

मार्ग- अमार्ग का जानकार प्रज्ञावान हो निर्वाण प्राप्त करेगा
खेमा भिक्षुणी की कथा

स्थान : गृद्धकूट , राजगृह

एक रात गृद्धकूट पर साधना करते समय शक्र अपने पूरे देवता समूह के साथ शाक्य मुनि की सेवा में प्रस्तुत हुआ। वह उनसे साराणीय (मन में बैठाने योग्य, स्मरण करने योग्य) धर्म कथा सुन रहा था। उसी समय खेमा भिक्षुणी "शास्ता के दर्शन करूँगी" यह सोचकर आकाश मार्ग से आई पर वहाँ शास्ता को शक्र एवं देव परिषद के साथ बैठा देख, आकाश से ही सादर प्रणाम कर पुनः आकाश मार्ग से चली गई। उसके जाने पर शक्र ने तथागत से पूछा, "भन्ते ! यह भिक्षुणी कौन थी जो आकाश मार्ग से आपसे मिलने आई और आकाश में ही रुककर, आपको सादर प्रणाम कर वापस चली गई ? "

बुद्ध ने इन्द्र को बताया, "महाराज ! यह महाप्राज्ञ शिष्या खेमा थी जो मेरे लिए पुत्रीतुल्य है। वह मार्ग-अमार्ग का सूक्ष्म भेद जानती है। भिक्षुणियों में उसके समान प्रज्ञावान और कोई नहीं है।"

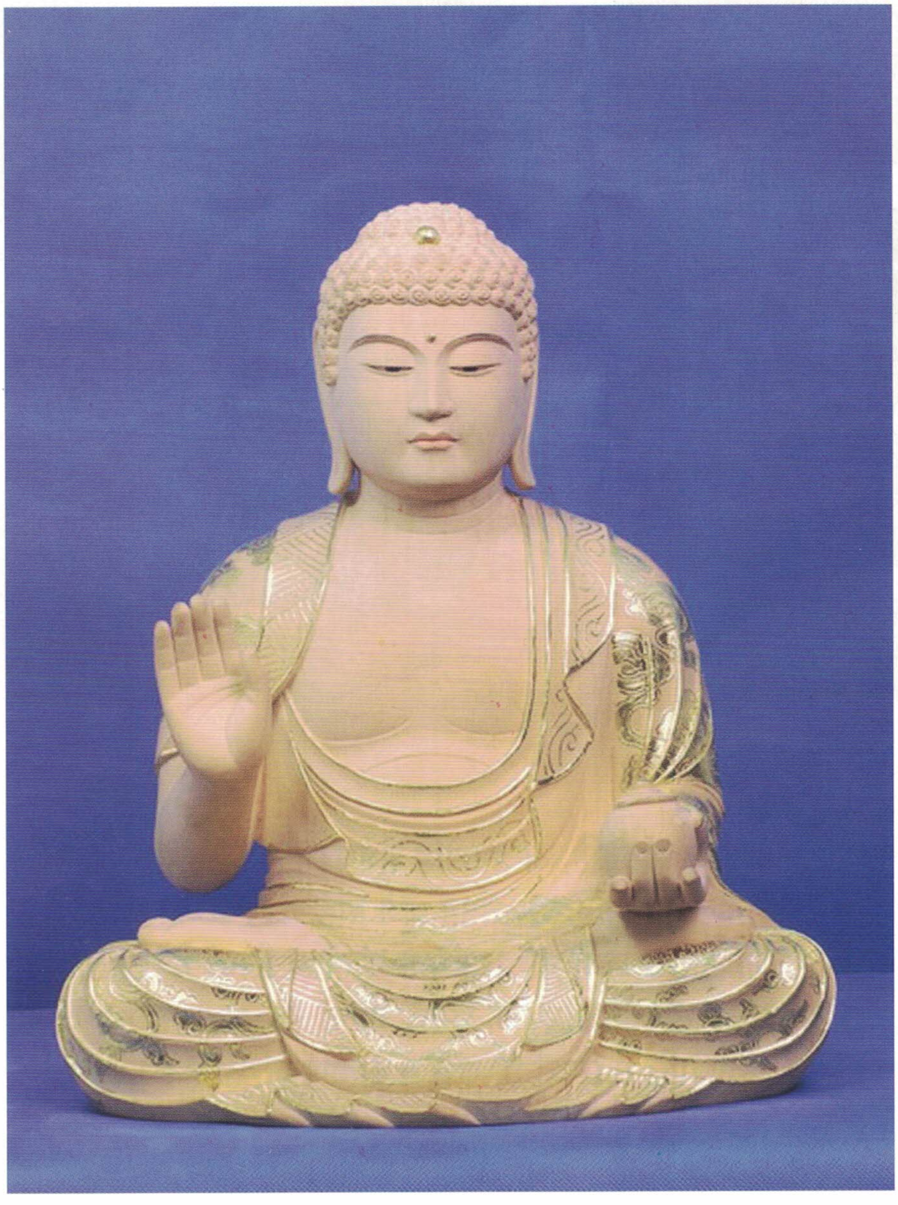

गाथा: असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 404।।

अर्थ: जो गृहस्थ तथा गृह त्यागियों दोनों में लिप्त नहीं होता, जो बिना ठौर-ठिकाने के घूमने वाला है, अल्प इच्छा वाला, संतोषवृत्ति में लिप्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण की योग्यता
कन्दरावासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स स्थविर कर्मस्थान प्राप्त कर, जंगल में एक एकान्त स्थान पर जाकर, एक गुफा में ध्यान साधना करने लगा। उसका चित्त एकाग्र होने लगा। तब उस गुफा में विद्यमान देवता ने सोचा, "यह शीलवान भिक्षु यहाँ आ गया है, अब मेरा यहाँ रहना कठिन है। पर शीलवान होने के कारण मैं इसे जाने के लिए कह भी नहीं सकता।" अत: भिक्षु को हटाने के लिए उसने एक योजना बनाई।

ऐसा सोचकर वह देवता एक दिन किसी उपासिका के ज्येष्ठ पुत्र के शरीर में प्रवेश कर गया। उसके मुँह से झाग निकलने लगा, आँखें बाहर निकल आईं और गर्दन टेढ़ी हो गई। उपासिका ने पुत्र को देखा तो चिल्लाई, "देखो भाई देखो ! पता नहीं मेरे पुत्र को क्या हो गया है ? " देवता ने कहा, "मैंने इसे कब्जे में कर लिया है" "क्या उपचार है ? " "स्थविर के पैर धोए जल को इसके सर पर डालो।" स्थविर उस समय घर में भोजन कर रहा था। भोजनोपरान्त उपासिका ने उसके चरण धोए और उससे अनुमति लेकर उस जल को पुत्र के सिर पर डाल दिया। उसका पुत्र ठीक हो गया। भिक्षाटन कर तिस्स थेर अपने साधनास्थल आ पहुँचा। देवता ने उसे दरवाजे से ही अन्दर जाने से मना किया। भिक्षु ने पूछा, "मैंने शील पालन में कब उपेक्षा की ? " "आज तुमने वैद्यकर्म किया।" "वह कैसे ? " "आज ही तो तुम्हारे पैर के धोये जल से उपासिका का पुत्र ठीक हुआ है।" यह सुनकर स्थविर को अपने शील के प्रति बड़ी ही बलवती प्रीति उत्पन्न हुई और वह अर्हत बन गया।

अब थेर ने देवता को गुफा छोड़ने का आदेश दिया। वह गुफा छोड़कर चला गया। थेर ने वहाँ वर्षावास बिताया और बाद में जेतवन चला गया।

भिक्षुओं को इस बात की जानकारी हुई तो उन्होंने तिस्स से पूछा, "इतना होने पर भी तुम्हें देवता के प्रति क्रोध नहीं आया ? " "नहीं।" भिक्षुगण शास्ता के पास गये और उनसे कहा, "यह भिक्षु अपनी उपलब्धि का गलत, दम्भपूर्ण बखान कर रहा है।"

शास्ता ने उन्हें स्पष्ट किया, "थेर तिस्स झूठ नहीं बोल रहा है। अर्हत् क्रुद्ध नहीं हुआ करते।"

गाथा: निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।405।।

अर्थ: स्थावर व जंगम (चर और अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड (हिंसा) त्याग दिया है, जो न किसी की हत्या करता है और न हत्या करवाता है, उसे में ब्राह्मण कहता हूँ।

अहिंसक ही ब्राह्मण होता है
किसी भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन के पास एक कर्मस्थान में साधना कर एक भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। वह अपने साधना स्थल से यह सोचकर निकला कि शाक्य मुनि को अपनी उपलब्धि बताऊँगा।

जब वह रास्ते से जा रहा था तो एक स्त्री, जो अपने पति से लड़कर घर से "पिता के घर चली जाऊँगी" यह सोचकर निकली थी, उसके पीछे हो ली। स्थविर ने उसे नहीं देखा। वह चलता गया, पीछे-पीछे वह चलती गई।

उधर पति भी उसकी तलाश में निकल गया। उसने स्त्री को स्थविर के पीछे-पीछे चलते हुए देखा तो सोचा कि इस स्थविर ने ही उसे बहका दिया है। अतः वह उस स्थविर के पीछे पहुँच गया और उसे बहुत जोर से मार दिया। मारने से उसके शरीर पर कई जगह घाव हो गए, खून बहने लगा। स्थविर ने उस पर क्रोध नहीं दिखाया। वह सीधा विहार गया और उसने अपना तत्काल उपचार करवा लिया। सभी भिक्षुओं को यह कथा सुनाई।

कथा सुनने के बाद भिक्षुओं ने प्रश्न किया, "इतना कुछ होने के बाद भी आपको क्रोध नहीं आया ? " "नहीं।" तब भिक्षुगण शाक्य मुनि के पास गए और कहा, "यह भिक्षु झूठ बोल रहा है, मिथ्याचार कर दंभ भर रहा है।"

शास्ता ने उन्हें समझाया, "यह भिक्षु झूठ नहीं बोल रहा है। इस अवस्था में पहुँच कर कोई क्रोध नहीं करता।"

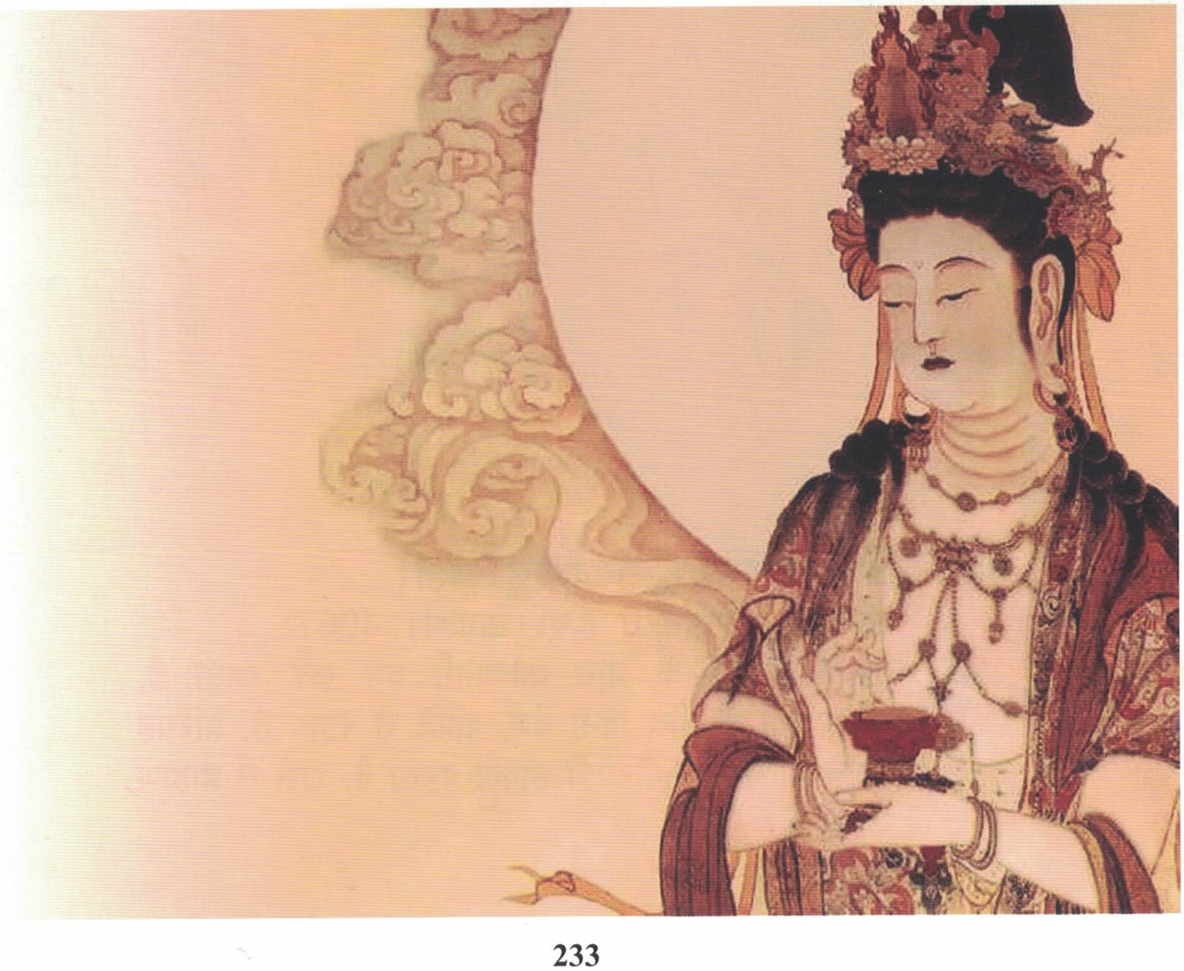

गाथा: अविरूद्धं विरूद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।406।।

अर्थ: जो विरोधियों के बीच अविरोधी बन कर रहता है, दंडधारियों के बीच बिना दंड, शांति से रहता है, परिग्रह करने वालों में अपरिग्रही होकर रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण के गुण
चार सामनेरों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा, "विहार जाकर चार वृद्ध भिक्षुओं को भोजन दान के लिए ले आओ।" उसे विहार में 1. संकिच्च 2. पंडित 3. सोपाक और 4. रेवत, ये चार सात वर्षीय श्रामणेर मिले। वह उन्हें लेकर आ गया। उसकी पत्नी बहुत नाराज हुई और बोली, "तुम्हें ये दूध पीते बच्चे ही मिले थे ? जाकर वृद्ध भिक्षुओं को लेकर आओ।" ऐसा कहकर उन श्रामणेरों को उपेक्षापूर्वक एक किनारे बैठा दिया।

थोड़ी देर बाद ब्राह्मण सारिपुत्त को लेकर आया। उन्होंने पूछा, "इन चार ब्राह्मणों को भोजन कराया ? " "नहीं।" यह देखकर कि ब्राह्मण ने सिर्फ चार लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की थी, वे अपना भिक्षा पात्र लेकर चले गए।

पत्नी ने ब्राह्मण को फिर एक वृद्ध भिक्षु लाने के लिए भेजा। इस बार वह महामोग्गलान को लेकर आया। उन्होंने भी पूरी स्थिति देखी, भोजन ग्रहण नहीं किया और भिक्षापात्र लेकर चले गए। पत्नी ने फिर से वृद्ध भिक्षु बुलाने के लिए भेजा।इधर श्रामनेरों को भूख लग रही थी। अत: शक्र ने एक वृद्ध भिक्षु का रूप धारण कर लिया। ब्राह्मण उसे ही भोजन के लिए ले आया। ब्राह्मणी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई। वह वृद्ध इन चारों श्रामणेरों को सादर प्रणाम कर उनके पास भूमि पर बैठ गया। पति-पत्नी को इस पर बहुत गुस्सा आया और वे हाथ, कंधा आदि पकड़ कर उसे उठाने लगे पर वह टस से मस नहीं हुआ। ब्राह्मण-ब्राह्मणी डर गए। इन्द्र ने अपना रूप दिखाया। तब उन्होंने उन पाँचों को भोजन कराया।

भोजन के बाद चारों श्रामनेर घर की छत से बाहर निकल कर चले गए और बूढ़ा भिक्षु सामान्य मार्ग से निकल गया।

श्रामणेर विहार पहुँचे। अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "भिक्षाकर्म कैसा रहा ? " तब उन श्रामनेरों ने अपनी आप-बीती सुनाई। उन तरुण भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "जब वह ब्राह्मणी क्रुद्ध हो रही थी तब तुम लोगों को क्रोध नहीं हुआ ? " "नहीं।" उन भिक्षुओं को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ और वे शास्ता के पास जाकर बोले, "हमें लगता है कि ये भिक्षुगण असत्य बोल रहे हैं।"

शास्ता ने उन्हें समझाया, "क्षीणास्त्रव भिक्षु अपने विरोधियों पर भी विरोध प्रकट नहीं करते हैं।"

गाथा: यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 407।।

अर्थ: जिस साधक के चित्त से राग, द्वेष, अभिमान और डाह वैसे ही गिर पड़े हैं जैसे सूई की नोंक से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सूई की नोंक के बराबर भी राग, द्वेष, अभिमान और डाह न रखें
महापंथक थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

महापंथक ने अपने भाई चूलपंथक के प्रव्रजित होने से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। छोटा भाई जब तीन महीने में भी एक गाथा याद नहीं कर पाया तो महापंथक ने क्रुद्ध होकर उससे कहा, "तू प्रव्रज्या से भी गया और गृहस्थ जीवन से भी गया। तू भिक्षु बनने के योग्य है ही नहीं।" यह कहकर उसे विहार से निकाल दिया और विहार के दरवाजे बंद कर दिए ।

एक दिन भिक्षुओं में चर्चा चल पड़ी, "महापंथक अर्हत हैं । फिर उन्हें अपने भाई पर क्रोध क्यों आया ? क्या अर्हतों को भी क्रोध आता है ? "

उनकी बातों को सुनकर शाक्य मुनि ने स्पष्ट किया, "क्षीणास्रवों में राग आदि क्लेश नहीं होते। मेरे पुत्र महापंथक ने अपने भाई की भलाई के लिए ही यह किया था।"

गाथा: अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चमुदीरये।
याय नाभिसजे कञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 408।।

अर्थ: जो अकर्कश, विषय को स्पष्ट करने वाली सार्थक, सच्ची वाणी बोलता है, जिससे किसी को पीड़ा नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सच्ची व मधुर वाणी वाला ही ब्राह्मण है
पिलिन्दवत्स थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

पिलिन्दवत्स थेर के सामने जो भी गृहस्थ या प्रव्रजित आते थे, वे "जा शूद्र ! आ शूद्र !" आदि का व्यवहार करते थे। कुछ भिक्षुओं को यह बुरा लगा और उन्होंने शाक्य मुनि को उनकी यह आदत बताई।

शास्ता ने उसे बुलाकर पूछा तो उसने इसे स्वीकार किया। तब तथागत ने उनके पूर्व जन्म का अवलोकन किया और भिक्षुओं को समझाया, "पिछले पाँच सौ जन्मों में पिलिन्द ब्राह्मण कुलों में जन्म लेता रहा है। अतः दूसरों को 'शूद्र' कहने की उसकी आदत पड़ गई है। यह उसके स्वभाव का अंग बन चुका है। वह किसी द्वेषभाव से 'शूद्र' नहीं कहता है। अतः उसकी बातों का बुरा मत मानो। अर्हत कभी भी किसी के प्रति कर्कश या दुःख देने वाली वाणी का व्यवहार नहीं करते हैं।"

गाथा: योध दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 409।।

अर्थ: जो इस लोक में लम्बी या छोटी, मोटी या महीन, सुन्दर या असुन्दर वस्तु बिना दिये नहीं लेता, अर्थात् उसकी चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण का गुण : चोरी न करना
किसी स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक ब्राह्मण ने अपना अंगवस्त्र धूप में रख दिया था। वह घर के दरवाजे पर बैठा था। हवा चली और वह वस्त्र उड़ गया तथा सड़क पर कहीं गिर गया। उधर से एक क्षीणास्त्रव भिक्षु भिक्षाटन के लिए जा रहा था। उसने इसे 'फटा पुराना कपड़ा' (पंसुकूल) समझकर उठा लिया। ब्राह्मण उसके पास दौड़ा हुआ आया और कहने लगा, "अरे सिरमुंडे ! मेरा दुपट्टा लेकर जा रहा है।" "मैंने तो इसे फटा-पुराना वस्त्र समझकर, जिसका कोई मालिक नहीं है, उठा लिया था। अगर आपका है तो आप वापस लीजिए," यह कहकर भिक्षु ने उसे वह वस्त्र लौटा दिया।

भिक्षु विहार चला गया। उसने यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई। वे उसकी बात पर विश्वास करने के बजाय उसका मजाक उड़ाने लगे, "वस्त्र लम्बा था या छोटा ? मोटा था या रूखड़ा।" भिक्षु ने उन्हें समझाने की कोशिश की, "मित्रों ! वस्त्र लम्बा था या छोटा, मोटा था या रूखड़ा -इस पर मैंने ध्यान ही नहीं दिया क्योंकि उस वस्त्र में मेरी कोई आसक्ति नहीं थी। मैंने तो उसे मात्र फटा-पुराना समझकर उठाया था।"

भिक्षुगण ने उसकी बातों का विश्वास नहीं किया और शाक्य मुनि के पास जाकर अपनी शंका रख दी कि यह भिक्षु झूठ बोलता है कि वह अर्हत् है और उसे उस वस्त्र में आसक्ति नहीं है।

तब तथागत ने उन्हें समझाया, "भिक्षुगण ! यह भिक्षु ठीक ही कह रहा है। क्षीणास्त्रव भिक्षु दूसरों की संपत्ति हड़पने का कभी भी मन नहीं बनाते।"

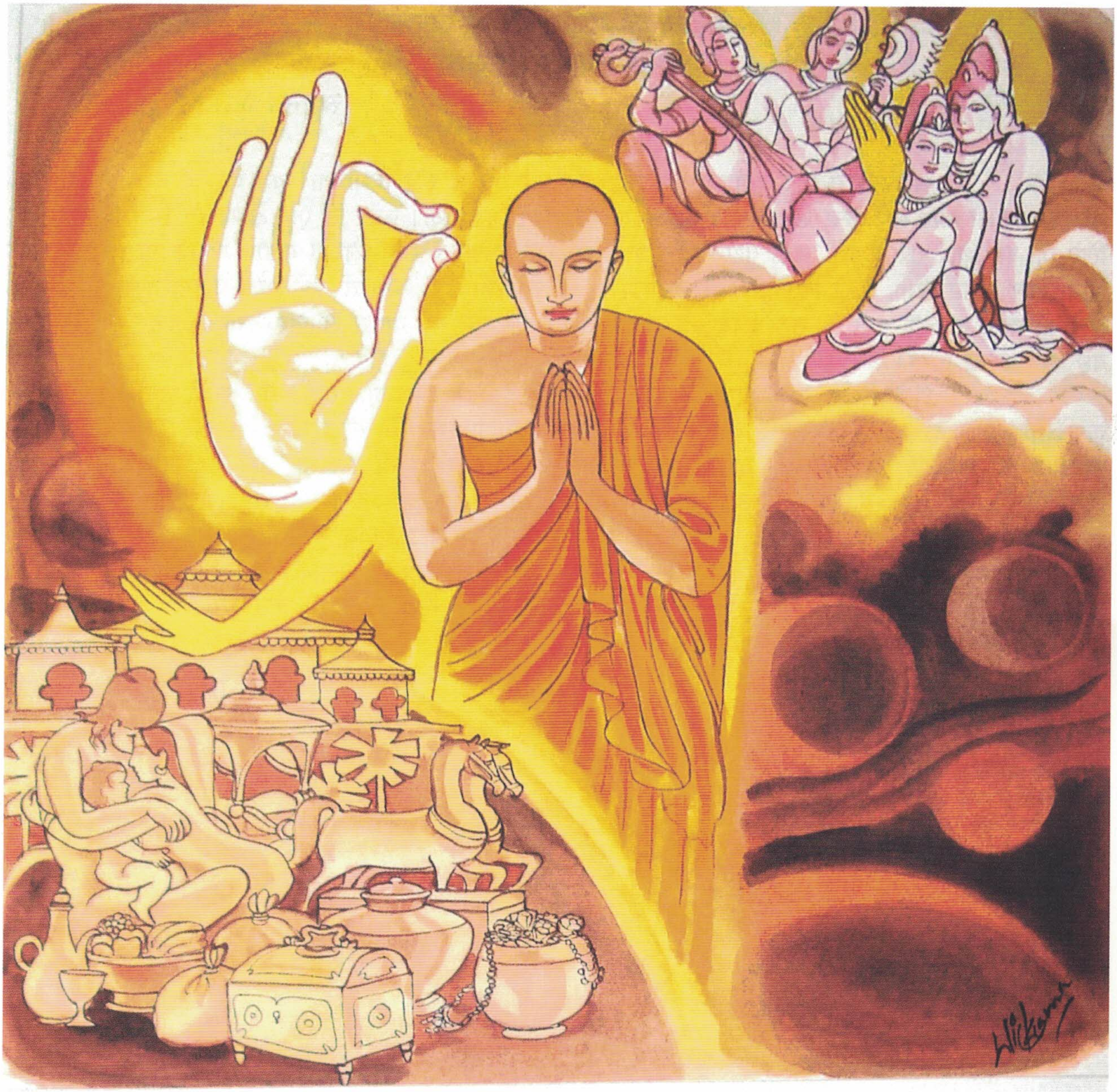

गाथा: आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासासं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 410।।

अर्थ: जिसके मन में इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गई है, जो सभी प्रकार की आशाओं-आकांक्षाओं और आसक्तियों से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो भी आसक्तियों से मुक्त है, वही ब्राह्मण है
सारिपुत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार सारिपुत्त भिक्षुओं के साथ देहात के एक विहार में गये और वर्षावास किया। प्रवारणा के बाद सारिपुत्त ने आवासिक भिक्षुओं को आदेश दिया, "उपासकों द्वारा लाया गया सब कुछ भेज देना।" ऐसा कहकर वे शाक्य मुनि से मिलने जेतवन की ओर प्रस्थान कर गए। कुछ भिक्षुओं ने इसका उल्टा अर्थ लगाया।

भिक्षुओं ने शास्ता को बताया, "लगता है स्थविर सारिपुत्त अभी भी चीवर आदि वस्तुओं में आसक्त हैं। उनके अन्दर अभी भी तृष्णा शेष है।" तथागत ने उन्हें समझाया, "सारिपुत्त ने चीवर आदि लाने को कहा ताकि मनुष्यों द्वारा किये गए कृत का उन्हें फल मिल सके और सामनेर भी चीवर से वंचित न हों। सारिपुत्त की इस लोक या परलोक में- कहीं भी कोई आशा या तृष्णा शेष नहीं रह गई है।"

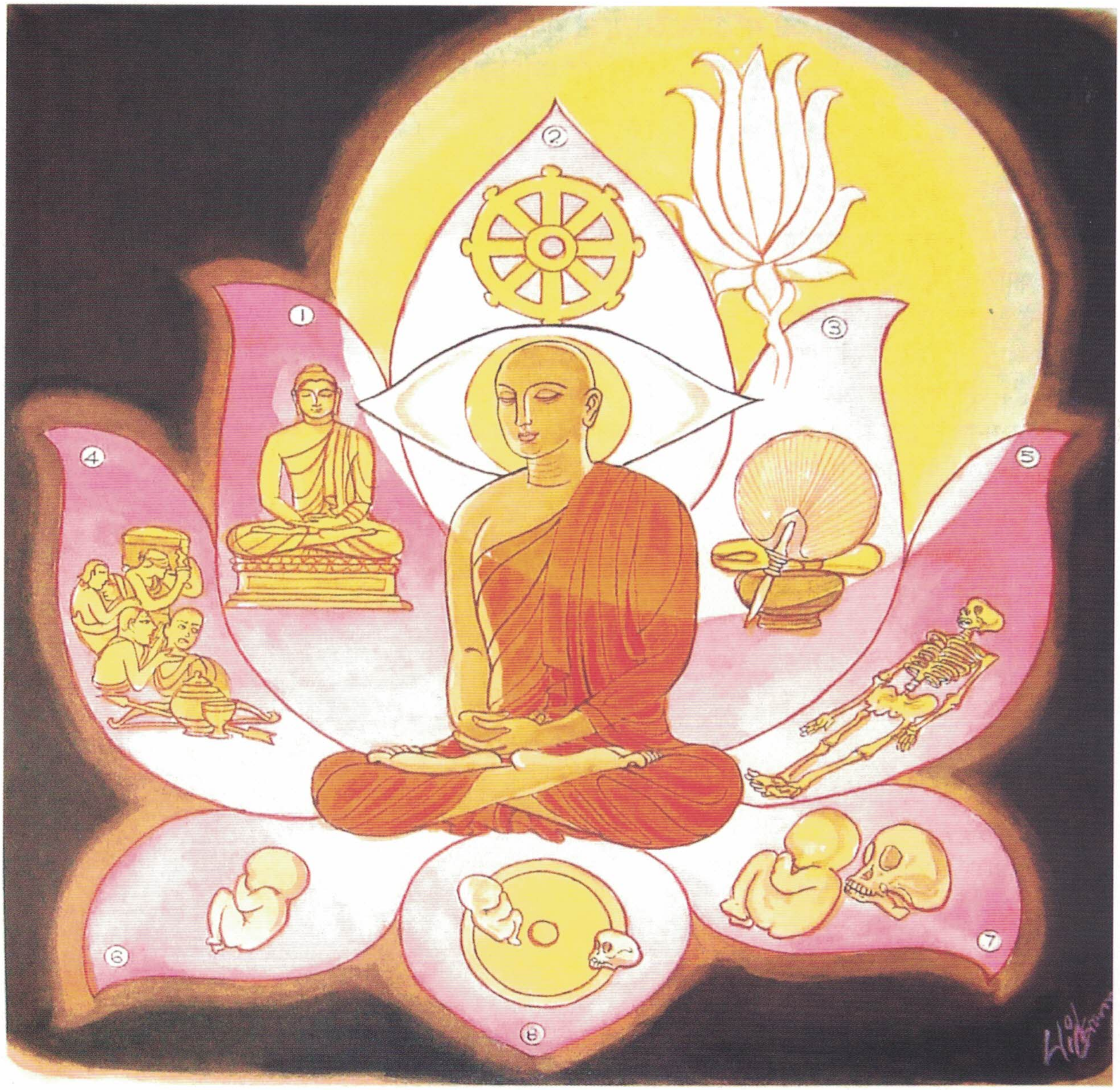

गाथा: यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 411।।

अर्थ: जिसको (आलय) तृष्णा नहीं है, जो सब कुछ जानकर संदेह रहित हो गया है, जिसने अवगाहन करके (डुबकी लगाकर) निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अनासक्त, नि:संशयी, निर्वाण प्राप्त ही ब्राह्मण है
महामोग्गलान थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार भिक्षुओं ने महामोग्गलान के विषय में भी वही बात कही जो उन्होंने थेर सारिपुत्त के लिए गाथा 410 में कही थी ।

तब शास्ता ने समझाया, "महामोग्गलान की किसी वस्तु में आसक्ति नहीं है। वह तृष्णा रहित है। वह किसी चीज में लिप्त नहीं है। वह संशय रहित, वीतराग हो गया है। उसने अपने परिश्रम से यह सब कुछ प्राप्त किया है।"

गाथा: योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, उभो सङ्गमुपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 412।।

अर्थ: जो इस लोक में पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे चला गया है, जो शोकरहित, विमल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

पाप-पुण्य से अनासक्त ही ब्राह्मण है
रेवत थेर की कथा

स्थान : पुब्बाराम

एक दिन भिक्षुओं ने शास्ता से चर्चा की, "भन्ते ! थेर रेवत को उपासकों से बहुत लाभ-सत्कार मिलता है। उन्हें ऋद्धि सिद्धियाँ भी प्राप्त हैं। वे उनका लाभ उठाते हैं जैसा उन्होंने एक बार जंगल में किया था जब शाक्य मुनि अपने भिक्षु संघ के साथ वहाँ पधारे थे। उन्होंने एक भवन का निर्माण किया था जिसमें भिक्षु संघ और शास्ता आराम से रुके थे।"

तथागत ने रेवत की प्रशंसा की और कहा, "भिक्षुओं ! मेरे पुत्र रेवत के न पुण्य हैं और न पाप। वह इन दोनों से ऊपर उठ गया है। वह ब्राह्मण बन गया है।"

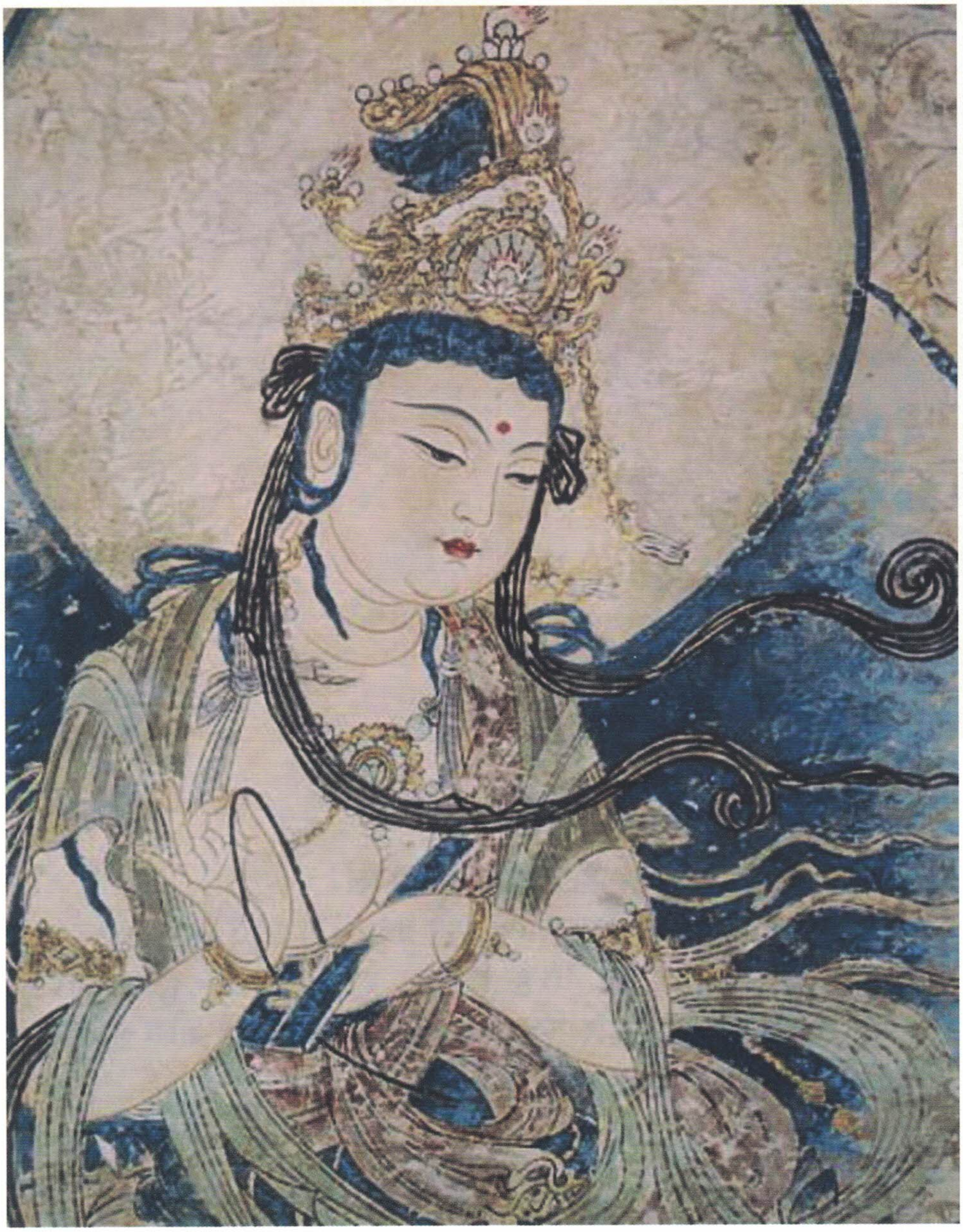

गाथा: चन्दंव विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 413।।

अर्थ: जो चन्द्रमा की तरह विमल, शुद्ध, निखरा हुआ और मलरहित है, और जिसकी भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण चन्द्रमा की तरह विमल होता है
चन्दाभ थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में चन्दाभ नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह पूर्व जन्म में कस्सप बुद्ध के चैत्य में चंदन लगाया करता था। अत: इस जन्म में उसकी नाभि से चंद्रमा समान रोशनी निकलती थी। पाखंडी ब्राह्मण उसको लेकर चलते थे और लोगों से पैसे इकट्ठा कर उनको लूटते थे।

एक दिन शाक्य मुनि जेतवन में विराजमान थे तथा संध्या वेला में धर्म देशना देने जा रहे थे। लोग उनकी धर्म सभा में आ रहे थे। पाखंडी ब्राह्मणों ने उन्हें रोकना चाहा ताकि वे चन्दाभ का चमत्कार दिखा सकें। पर वे उन्हें रोक नहीं पाये। दोनों समूहों में झगड़ा होने लगा कि शास्ता अधिक शक्तिशाली हैं या चन्दाभ। अंत में निर्णय हुआ कि विहार चलकर शक्ति परीक्षा कर इसे तय कर लिया जाए।

चन्दाभ शास्ता के सम्मुख पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसकी आभा समाप्त हो गई। देखने पर ऐसा लगने लगा जैसे कोयले की टोकरी पर कोई काला कौआ बैठा हो। उसे लगा जैसे तथागत आभा लुप्त करने का मंत्र जानते हैं। अत: वह शास्ता के पास गया और उनसे आग्रह करने लगा, "हे गौतम ! मुझे आभा समाप्त करने का मंत्र बताइये।" "इसके लिए तुम्हें प्रव्रजित होना होगा," शास्ता ने कहा।

चन्दाभ ने सोचा कि मंत्र सीखकर, पूरे जम्बूद्वीप घूम कर पैसे कमा सकता हूँ। अत: उसने तुरंत प्रव्रज्या ले ली और कुछ ही दिनों में अर्हत बन गया। अब मंत्र पूछना भूल गया। मंत्र की अब उसे जरूरत क्या थी ? उसे तो महामंत्र मिल गया था। ब्राह्मण लोग उसे वापस लेने आये तो उसने कह दिया, "अब मैं वापस नहीं आने वाला। मेरा आना-जाना समाप्त हो गया।"

भिक्षुओं में चर्चा चली कि चन्दाभ ने अभी-अभी प्रव्रज्या ली है। वह तुरंत अर्हत कैसे हो गया ? कहीं वह झूठ तो नहीं बोल रहा है ?

तथागत को पता चला तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! मेरा पुत्र चन्दाभ सच बोल रहा है। वह अब ठीक चन्द्रमा की भाँति हो गया है, पहले तो वह नाम मात्र का चन्दाभ था। अब उसकी तृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई है।"

गाथाः योमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी, अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 414।।

अर्थः जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म-मरण) के चक्कर में डालने वाले मोह-स्वरूप उल्टे मार्ग को त्याग दिया, जो तीर्ण हो गया, जो पार कर गया, जो ध्यानी है, जो स्थिर है, जो संशय रहित है, जिसने उपादान रहित निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो भवसागर पार कर गया वह ब्राह्मण है
सीवलि थेर की कथा

स्थान : कुण्डकोलिय

कोलिय पुत्री सुप्रवासा शास्ता की श्राविका-उपासिका थी। एक बार वह सात वर्षों तक अपने उदर में गर्भ धारण किए रही और फिर पुत्र जन्म के समय भी वह गर्भ सात दिनों तक योनि में रुका रहा। उसे बहुत कष्ट हुआ । जब उसे अपने दुःख से त्राण नहीं हो पा रहा था तो उसने सोचा, "बुद्ध तो करुणानिधान हैं। वे सबों का दुःख हर लेते हैं। मेरा दुःख समाप्त नहीं हो रहा है। अपने पति को उनके श्रीचरणों में भेजती हूँ।" यह सोचकर उसने अपने पति को बुद्ध के पास भेजा। पति ने शास्ता के पास जाकर प्रार्थना की और उनसे निवेदन किया, "कोलिय कन्या, मेरी पत्नी, गर्भ पीड़ा से व्यथित है, जैसे उसकी मृत्यु ही उसके पास आ गई है।" शास्ता ने पति को समझाया, "आयुष्मान ! जाओ, सब ठीक हो जाएगा। वह प्रसन्न होगी। उसे हृष्ट-पुष्ट पुत्र रत्न प्राप्त होगा।"

पति के वापस पहुँचने से पहले ही सुप्रवासा ने एक पुत्र रत्न को जन्म दे दिया था। शास्ता ने जो कुछ बताया था वह शत प्रतिशत सच निकला। सभी के हृदय में अपूर्व खुशी हुई। अतः शाक्य मुनि के सम्मान में सात दिनों तक उत्सव रखा गया। बालक का नाम 'सीवलि' अर्थात् शुभ रख दिया गया।

एक दिन सारिपुत्त सीवलि के घर गए। सीवलि ने प्रव्रजित होने की इच्छा जाहिर की। माँ ने उसे अनुमति दे दी। वह प्रव्रजित हो गया। प्रव्रज्या दिलाते समय सारिपुत्त ने उससे कहा, "तुम माँ के गर्भ में बहुत वर्षों तक रहे। तुम उसी पर ध्यान करो। तुम्हारी मुक्ति का रहस्य उसी में छिपा है।" सीवलि ने ध्यान साधना की। वह अर्हत् हो गया।

एक दिन धर्म सभा में चर्चा का विषय था, "सीवलि जैसे अर्हत्व प्राप्त भिक्षु को भी माँ की कोख में बहुत दिनों तक दुःख झेलना पड़ा। अगर उसके साथ ऐसा हुआ तो साधारण लोगों के साथ कैसा होता होगा ? "

शास्ता ने उन्हें उपदेश दिया, "हाँ भिक्षुओं ! मेरा शिष्य भीषण कष्ट से मुक्त होकर अब अर्हत्व प्राप्त कर सुखपूर्वक साधना कर रहा है।"

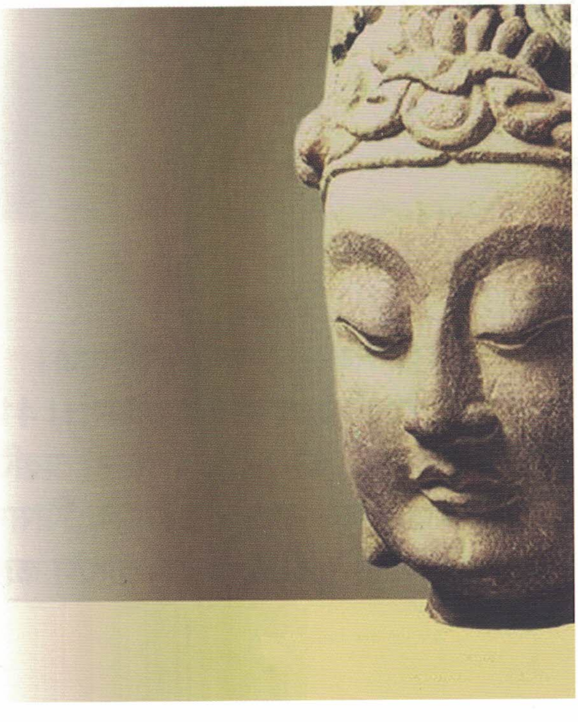

गाथा: योध कामे पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।415।।

अर्थ: जो काम भोगों को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका काम-भव नष्ट हो गया है, जिसमें जन्म लेने की कामना क्षीण हो चुकी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

काम भोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है
सुन्दर समुद्र थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के एक धनी सेठ का पुत्र सुन्दर समुद्र अपने माता-पिता की आज्ञा से प्रव्रजित होकर राजगृह जाकर ध्यान विपश्यना करने लगा। एक दिन श्रावस्ती में एक उत्सव हो रहा था। उसके माता-पिता अपने पुत्र को याद कर रोने लगे। तब उनके पास एक गणिका आई और उसने उनसे कहा, "अगर मैं तुम्हारे पुत्र को संघ से बाहर निकाल कर पुनः गृहस्थ बना दूँ तो मुझे पुरस्कार के रूप में क्या दोगे ? " "मुँह माँगा इनाम दिया जाएगा, तुम्हें मालामाल कर दिया जाएगा।" गणिका ने माता-पिता से भारी अग्रिम धनराशि वसूल ली और अपने लोगों के साथ राजगृह आकर रहने लगी।

राजगृह में उसने एक बहुमंजिला सुंदर मकान उसी मार्ग पर किराये पर ले लिया जिधर से थेर सुन्दर समुद्र भिक्षाटन के लिए आया-जाया करता था। पहले वह घर के बारह ही खड़ी होकर उन्हें भोजन दे दिया करती थी। फिर उसने कहना शुरू कर दिया, "भन्ते ! बैठकर यहीं खाइये।" दो-तीन दिनों के बाद यह कहकर अंदर बुला लिया कि बाहर बहुत धूल उड़ती है। फिर एक दिन उसने महल्ले के लड़कों को पैसे दिये कि जब भन्ते दरवाजे पर आवें तो वे खूब शोर करें। लड़कों ने वैसा ही किया। उसने भिक्षु से कहा, "भन्ते ! नीचे लड़के बहुत शोर करते हैं। ऊपर की मंजिल पर चलिए।" उसे साथ लेकर ऊपर चली गई, नीचे से दरवाजा बंद कर दिया।

ऊपर पहुँच कर उसने चालीस प्रकार के हाव-भाव और स्त्री लीला दिखाना प्रारंभ कर दिया और उससे कहा, "आप भी युवा हैं और मैं भी युवती हूँ। अभी जीवन का आनन्द ले लेते हैं। बाद में वृद्धावस्था में हम दोनों प्रव्रजित हो जायेंगे।" अब थेर को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने सोचा, "मैंने यहाँ आकर बहुत बड़ी गलती कर दी है।"

उस समय शास्ता गंधकुटी में थे। उन्होंने आनन्द को बुलाकर उस भिक्षु और युवती के बीच हो रहे घमासान संग्राम के विषय में बताया। उन्होंने यह भी कहा, "अंत में जीत भिक्षु की ही होगी।"

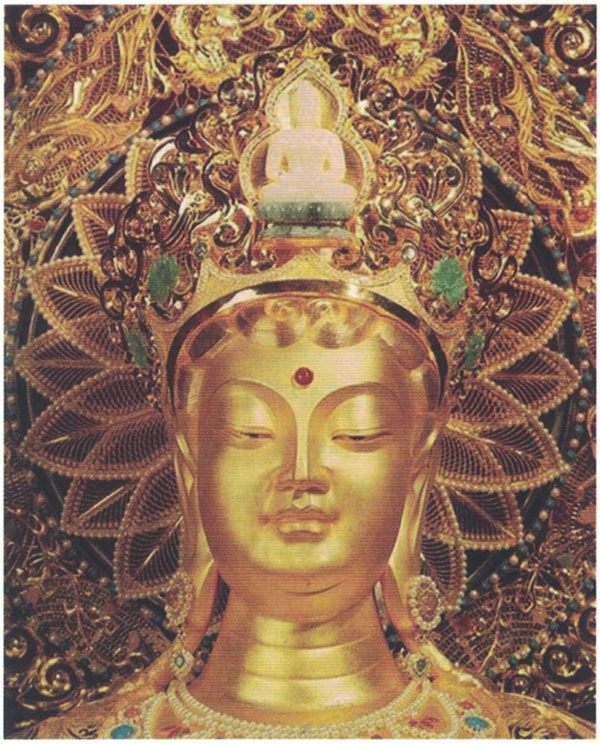

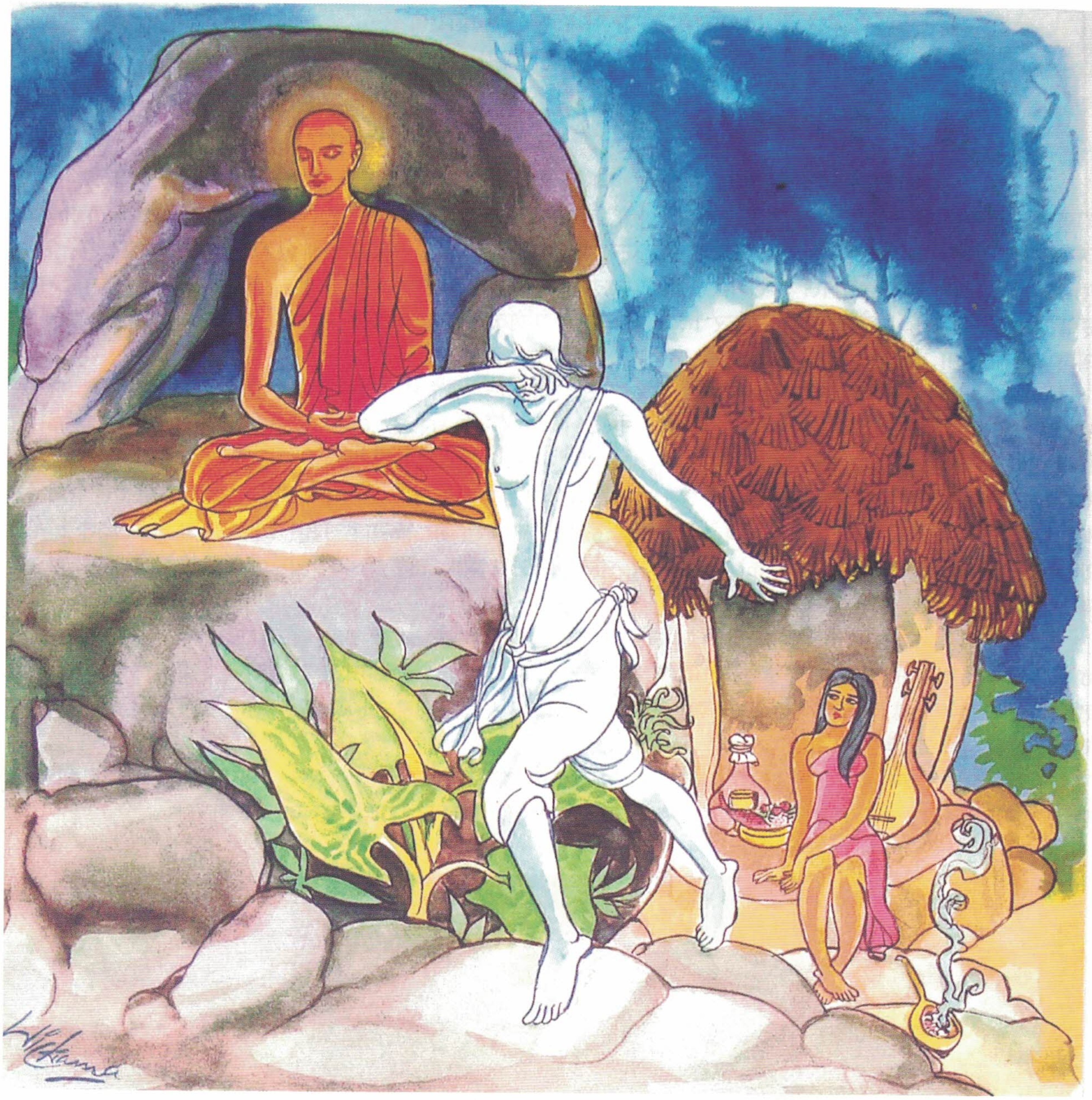

गाथा: योध तण्हं पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 416।।

अर्थ: जो यहाँ इस लोक में तृष्णा को छोड़कर, घर-बार छोड़कर प्रव्रजित हो जाये, जिसकी भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

तृष्णामुक्त ही ब्राह्मण है
जटिल की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

जटिल का जन्म एक अविवाहित धनी लड़की की कोख से हुआ था। लोक लज्जा के भय से उसकी माँ ने जन्म लेते ही उसे नदी में बहा दिया। कुछ दूर पर किसी औरत ने उसे उठा लिया और उसे अपने बच्चे की तरह पाला। बाद में वह अध्ययन हेतु तक्षशिला गया और वहीं उसका विवाह भी हो गया। उसके तीन पुत्र भी हुए। वहाँ पति-पत्नी नया घर बना रहे थे तो घर के पिछवाड़े में जमीन की खुदाई करते समय बहुत सारा सोना मिल गया। बाद में बेटों को सम्पत्ति सौंपकर, राजा से आज्ञा लेकर, जटिल प्रव्रजित हो गया। कुछ ही दिनों में वह अर्हत भी हो गया।

एक बार शास्ता जटिल और अन्य भिक्षुओं के साथ जटिल के गाँव गये। जटिल के पुत्रों ने पन्द्रह दिनों तक भोजनदान दिया। कुछ समय बाद भिक्षुओं ने जटिल से पूछा कि उसे सोने, धन, पुत्र आदि में तृष्णा है या नहीं। उसने उत्तर दिया, "नहीं।" भिक्षुओं ने इसे असत्य मानकर शास्ता से कहा कि वह झूठ बोल रहा है। तब शास्ता ने बताया, "जटिल को अब किसी चीज की तृष्णा नहीं रह गई है।"

जोतिय नामक एक अति धनवान राजगृह में रहता था। उसने एक बहुत सुन्दर प्रासाद बना रखा था जिसकी चर्चा दूर-दूर तक थी। एक बार राजा बिंबिसार भी अपने पुत्र कुमार अजातशत्रु के साथ उसे देखने गया। उसी समय अजातशत्रु ने मन बना लिया, "जब गद्दी पर बैठूँगा तो इस प्रासाद को जरूर हथिया लूँगा।"

राजा को मारकर अजातशत्रु स्वयं गद्दी पर बैठा। उसने जोतिय के प्रासाद पर हमला किया पर हमला असफल रहा। वहाँ से अजातशत्रु वेणुवन गया जहाँ जोतिय धर्मकथा सुन रहा था। अजातशत्रु बोला, "अपने रक्षकों को वहाँ पर मुझसे लड़ने के लिए लगा रखा है और स्वयं यहाँ आकर धर्मकथा सुनने का स्वांग कर रहे हो।" जोतिय समझ गया कि राजा ने प्रासाद को जबरदस्ती हथियाने का प्रयत्न किया है।

जोतिय ने राजा को समझाया, "मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझसे कुछ नहीं लिया जा सकता, मुझे ऐसा आशीर्वाद प्राप्त है।" उसने राजा से अपने हाथों की अँगुलियों से अँगूठियाँ निकालने के लिए कहा। बहुत यत्न करने पर भी राजा उन्हें नहीं निकाल पाया। तब जोतिय ने अपनी अंगुलियों से सारी अंगूठियाँ आसानी से निकाल राजा के सामने रख दीं।

इस घटना के बाद जोतिय ने सारी अंगूठियाँ राजा को दे दी और शास्ता से प्रार्थना करके प्रव्रजित हो गया। वह शीघ्र ही अर्हत् भी हो गया और जोतिय स्थविर के नाम से जाना गया। उसके अर्हत प्राप्ति के साथ ही उसकी सारी सम्पत्ति लुप्त हो गई और उसकी पत्नी उत्तर कुरू चली गई।

एक दिन भिक्षुओं ने जोतिय थेर से पूछा, "भन्ते ! क्या आपको उस प्रासाद, धन या स्त्री में कोई तृष्णा है ? " उसने कहा, "नहीं अब कोई तृष्णा नहीं है।" भिक्षुगण शास्ता के पास गये और बोले, "भन्ते ! हमें लगता है कि जोतिय झूठ बोल रहे हैं कि अर्हत हो गए हैं।" शास्ता ने उन्हें बोध कराया, "नहीं भिक्षुओं ! मेरे पुत्र में अब कोई तृष्णा नहीं रह गई है। वह अब जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है।"

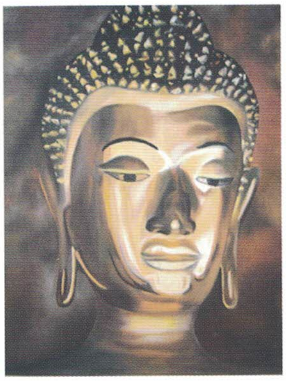

गाथा: हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।417।।

अर्थ: जिसने मानुषी भोगों को छोड़ दिया, दिव्य भोगों को भी छोड़ दिया, जो सभी भोगों के प्रति अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सभी भोगों के प्रति अनासक्त ही ब्राह्मण है
नट पुत्र की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

यह धर्म कथा और गाथा शाक्यमुनि ने एक नटपुत्र को सबोधित करके कही थी।

वह नटपुत्र तरह-तरह की नटक्रीड़ा दिखाता हुआ, एक स्थान से दूसरे स्थान विचरण कर रहा था। एक दिन उसने शास्ता से धर्मकथा सुनी और उस धर्मकथा से प्रभावित होकर घर-द्वार छोड़ दिया, प्रव्रज्या ले ली, सतत कठिन साधना की और अर्हत हो गया।

एक दिन वह भिक्षुओं के संग भिक्षाटन कर रहा था। उसके सामने एक नटमंडली खेल दिखा रही थी। उसे देखकर भिक्षुओं ने नटस्थविर से पूछा, "भन्ते ! यह नट भी उन्हीं खेलों का प्रदर्शन कर रहा है जो पहले तुम किया करते थे। क्या तुम्हारे मन में इन खेलों को एक बार फिर दिखाने की इच्छा है या वह चाह खतम हो चुकी है ? " उसने कहा, "मेरी अब कोई इच्छा नहीं है। मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है।"

गाथा: हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च, सीतिभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 418।।

अर्थ: जिसने पंचकामरूपिणी रति और अरण्यवास की उत्कंठास्वरूप अरति को छोड़ दिया, जो शांत और क्लेश रहित हो गया, जो सारे लोकों को जीत कर वीर बना है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

रति, अरति से ऊपर उठा, शांत और क्लेशरहित व्यक्ति ही ब्राह्मण है
नट पुत्र की कथा

उसकी बातें सुनकर भिक्षुओं को उस पर विश्वास नहीं हुआ। अतः वे शाक्य मुनि के पास गए और उनसे कहा कि यह भिक्षु सच नहीं बोल रहा है। तथागत ने उनकी सारी बातें सुनीं और उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! मेरा यह शिष्य अब सभी योगों (क्रीड़ा आदि कर्मों के कौशल) से ऊपर उठ चुका है।"

गाथा: चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 419।।

अर्थ: जो प्राणियों की मृत्यु और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, जो आसक्ति-रहित सुगति (सुन्दर गति) प्राप्त बुद्ध (ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

प्राणियों के मृत्यु-उत्पत्ति का अनासक्त जानकार ब्राह्मण है
वंगीस थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में वंगीस नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक विशेष सिद्धि प्राप्त कर रखी थी। वह अंगुलियों की नखों से मनुष्यों की खोपड़ी खटखटा कर बता देता था कि वह मनुष्य नरक में उत्पन्न हुआ है, मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ है, देव लोक में उत्पन्न हुआ है या वह प्रेत बना है आदि। इसे देखकर कुछ चालाक ब्राह्मणों ने विचार किया, "वंगीस का व्यवहार कर क्यों न कुछ पैसा कमाया जाए ? " यह विचार कर उन्होंने उसे लाल वस्त्र पहनाया और गाँव-गाँव साथ घूमकर प्रचार करने लगे, "ब्राह्मण वंगीस मृत लोगों की खोपड़ी बजाकर उनका पुनर्जन्मस्थान बता सकते हैं। आप लोग अपने सगे सम्बन्धियों की उत्पत्ति स्थान इनसे पूछ लें।" यह सुनकर गाँव वाले आने लगे और पैसे देकर अपने मृतक रिश्तेदारों का उत्पत्ति स्थान पूछने लगे। उनकी दुकान चल पड़ी।

कुछ दिनों बाद ब्राह्मणों ने श्रावस्ती में भी पैसा कमाने का विचार किया। वे श्रावस्ती पहुँचे और जेतवन के पास ही वासस्थान बनाकर रहने लगे। वे सुबह-सुबह धर्मकथा सुनने जाने वाले श्रद्धालुओं से कहने लगे, "हमारे वंगीस जैसा कोई भविष्यवक्ता नहीं है। यह मृत लोगों के कपाल को ठोककर उनकी उत्पत्ति स्थान बता देता है। आप यहाँ आइए और अपने सम्बन्धियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए कि उनकी उत्पत्ति कहाँ हुई है।" शास्ता के भक्त कहते, "हमारे शास्ता के सामने यह वंगीस क्या चीज है ? " इस प्रकार दोनों पक्षों में वाद-विवाद बढ़ता ही गया। अंत में उभय पक्षों ने विचार किया कि आमने-सामने ही इस बात की परीक्षा ले ली जाए कि कौन श्रेष्ठ है। ऐसा विचार कर वे वंगीस को साथ ले विहार की ओर चले।

गाथा: यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।420।।

अर्थ: जिसकी गति को न देवता जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य, जो क्षीण-आस्त्रव है, जो अर्हत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मणों की गति कोई नहीं जान सकता
वंगीस थेर की कथा

वंगीस के आने से पहले ही शास्ता ने 1. नरक 2.पशुयोनि 3.मनुष्य लोक तथा 4.देवलोक- इन चार स्थानों में लोगों के चार शिर:कपाल और एक क्षीणास्त्रव का कपाल मंगवाकर, वंगीस से पूछा, "वंगीस ! इन चारों कपालों की उत्पत्ति स्थान बताओ।" वंगीस ने हर कपाल का सही उत्तर दिया और तथागत ने इस पर उसे साधुवाद दिया। तब शास्ता ने पाँचवाँ कपाल दिखाते हुए पूछा, "यह किसका है ? " उसने इसे बहुत खटखटाया पर इसका उत्पत्ति स्थान नहीं बता पाया।

बुद्ध ने पूछा, "वंगीस ! नहीं जानते हो ? " "नहीं जानता हूँ।" "मैं जानता हूँ।" "तो वह मंत्र कृपया मुझे भी सिखाइए।" "प्रव्रज्या लेनी होगी।" तब वंगीस के मन में विचार आया, "अगर मैं यह मंत्र विधि जान लूँगा तो पूरे जम्बूद्वीप में मैं सर्वश्रेष्ठ भविष्यवक्ता हो जाऊँगा।" यह सोचकर अपने ब्राह्मण मित्रों से कहा, "आप लोग कुछ समय यहीं रहें। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

वह प्रव्रजित हुआ। साधना करने लगा। उसके ब्राह्मण मित्र आकर उससे पूछते कि मंत्रविधि प्राप्त हुई या नहीं तो वह उनसे कहता, "हो रही है। कुछ दिन और प्रतीक्षा करो।" इस प्रकार साधना करते-करते वह अर्हत् हो गया। अब उसके साथी उससे वापस चलने के लिए कहते तो वह स्पष्ट उत्तर दे देता कि अब चलना संभव नहीं है। भिक्षुओं ने भी सुना। उन्हें उसके कथन में असत्यता लगी। अत: उन्होंने शास्ता से पूछा। शास्ता ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! मेरे शिष्य वंगीस पर संदेह न करो। मेरे इस शिष्य ने जन्म-मरण का रहस्य जान लिया है।"

गाथा: यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 421।।

अर्थः जिसकी अतीत, वर्तमान या भविष्य काल में कहीं कुछ आसक्ति नहीं है, जो अकिंचन और परिग्रह रहित है, उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

जो कालातीत है वही ब्राह्मण है
धर्मदिन्ना थेरी की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

जब धर्मदिन्ना थेरी गृहस्थ आश्रम में थी तब एक दिन बुद्ध से धर्म कथा सुन उसका पति विशाख उससे कहने लगा, "अब तुम इस धन सम्पत्ति को लेकर घर चली जाओ। मैं प्रव्रज्या लेने जा रहा हूँ।" "आपके थूके हुए को कौन स्वीकार करना चाहेगा ? अतः मुझे भी प्रव्रजित करा दें।" पति ने उसे बहुत सम्मान से प्रव्रजित करा दिया। वह "धर्मदिन्ना थेरी" के नाम से प्रसिद्ध हुई।

वह संघ से अनुमति लेकर छोटे गाँव में धर्मसाधना करने चली गई और शीघ्र ही अर्हत हो गई। उसने सोचा "मेरे अर्हत्व प्राप्ति से मेरे सम्बन्धियों का भी भला हो।" यह सोचकर वह राजगृह आ गई। उपासक (विशाख) ने उसका आगमन सुना तो 'किस प्रयोजन से आई होगी' यह जानने के लिए उसके पास जाकर, उसे प्रणाम कर बैठे हुए विचार किया कि इससे यह प्रश्न सीधा पूछना अनुचित होगा, "क्या धर्मसाधना में अनुत्सुक हो गई, आर्ये ! " अतः उसने चूल वेदल्ल में आए प्रश्न पूछे ताकि उसकी मनोदशा की जानकारी मिल सके। प्रश्न और उत्तर थे :

"सत्काय क्या है ? "

"रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान उपादान स्कन्ध हैं; शास्ता ने इन्हें सत्काय कहा है।" इसके बाद उसने सत्काय दृष्टि पर प्रश्न किया। धर्मदिन्ना ने इसका भी सही उत्तर दे दिया। "अष्टांगिक मार्ग संस्कृत है या असंस्कृत ? " "संस्कृत है, विशाख।" मार्गों के बारे में पूछने के बाद विशाख ने अंत में निर्वाण के बाद की स्थिति के विषय में प्रश्न पूछना प्रारंभ किया तो थेरी ने उसे रोक दिया और बोली, "आयुष्मान ! अब तुम प्रश्न का अतिक्रमण कर रहे हो। इससे आगे सुनना चाहते हो तो शास्ता से आग्रह करो।"

यह सुन विशाख ने थेरी को प्रणाम किया और शास्ता को सारी बात बताई। शास्ता ने थेरी से सहमति जताते हुए कहा, "थेरी ने जो कहा, वह ठीक कहा। मैं भी होता तो प्रश्नों का उत्तर इसी प्रकार देता।"

गाथा: उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं न्हातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 422।।

अर्थ: जो ऋषभ (श्रेष्ठ) है, जो प्रवर (अग्र) है, जो वीर है, जो महर्षि है, जो विजेता है, जो स्थिर है, जो स्नातक है, जो बुद्ध (ज्ञानी) है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है वही ब्राह्मण है
अंगुलिमाल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा प्रसेनजित तथा रानी मल्लिका ने बुद्ध और भिक्षुसंघ को एक भव्य भोजनदान पर आमंत्रित किया। हाथियों को भिक्षुओं के पीछे चंवर पकड़कर खड़ा किया गया । इनमें एक उदंड, अप्रशिक्षित हाथी भी था। उसे थेर अंगुलिमाल के पीछे चंवर देकर छाया करने के लिए खड़ा किया गया । उस हाथी को जैसे ही अंगुलिमाल के पास लाया गया वह अन्य हाथियों की तरह सेवा करता रहा।

भोजनदान समाप्त हुआ। भिक्षुओं ने थेर अंगुलिमाल से पूछा, "जब हाथी पीछे खड़ा था तो आपको भय लग रहा था या नहीं ? " "आयुष्मानों ! मुझे कोई भय नहीं लगा।" परन्तु भिक्षुओं को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने अपने मन की शंका तथागत के सामने रखी। शास्ता ने बताया, "मेरा शिष्य क्षीणास्त्रव है। वह डरता नहीं। ऋषियों के बीच ज्येष्ठ ऋषभ (साँड़) है।"

गाथा: पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायञ्च पस्सति,
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 423।।

अर्थ: जो अपने पूर्व- निवास को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देख लेता है, जिसका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है, जो अभिज्ञा (विशिष्ट ज्ञान) में परायण है और जिसने जो कुछ करना था वह सब पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जिसका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है वही ब्राह्मण है
देवहित ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन में तथागत को वात रोग हो गया। उन्होंने उपवान स्थविर को देवहित ब्राह्मण के यहाँ से गर्म जल लाने के लिए भेजा। ब्राह्मण ने इसे 'शास्ता की सेवा का स्वर्णिम अवसर' माना और अपने नौकर के साथ गर्म जल के साथ-साथ सीरा (राब) भी भेज दिया। गर्म जल से स्नान कर और गर्म जल में सीरा का घोल पीने से उनका वात रोग ठीक हो गया।

ब्राह्मण ने शास्ता से प्रश्न किए :

(1) दान किसे देना चाहिए ?

(2) कहाँ दिया हुआ दान अधिक फलप्रद होता है ?

(3) कैसे यजमान को कैसे दिया हुआ दान दाता को फल देता है ?

शास्ता ने इन प्रश्नों के उत्तर में ब्राह्मण के गुण बताये और समझाया कि कैसे ब्राह्मण को दिया गया दान महाफलवान होता है।

DHAMMAPADA

BRAHMANA VAGGA

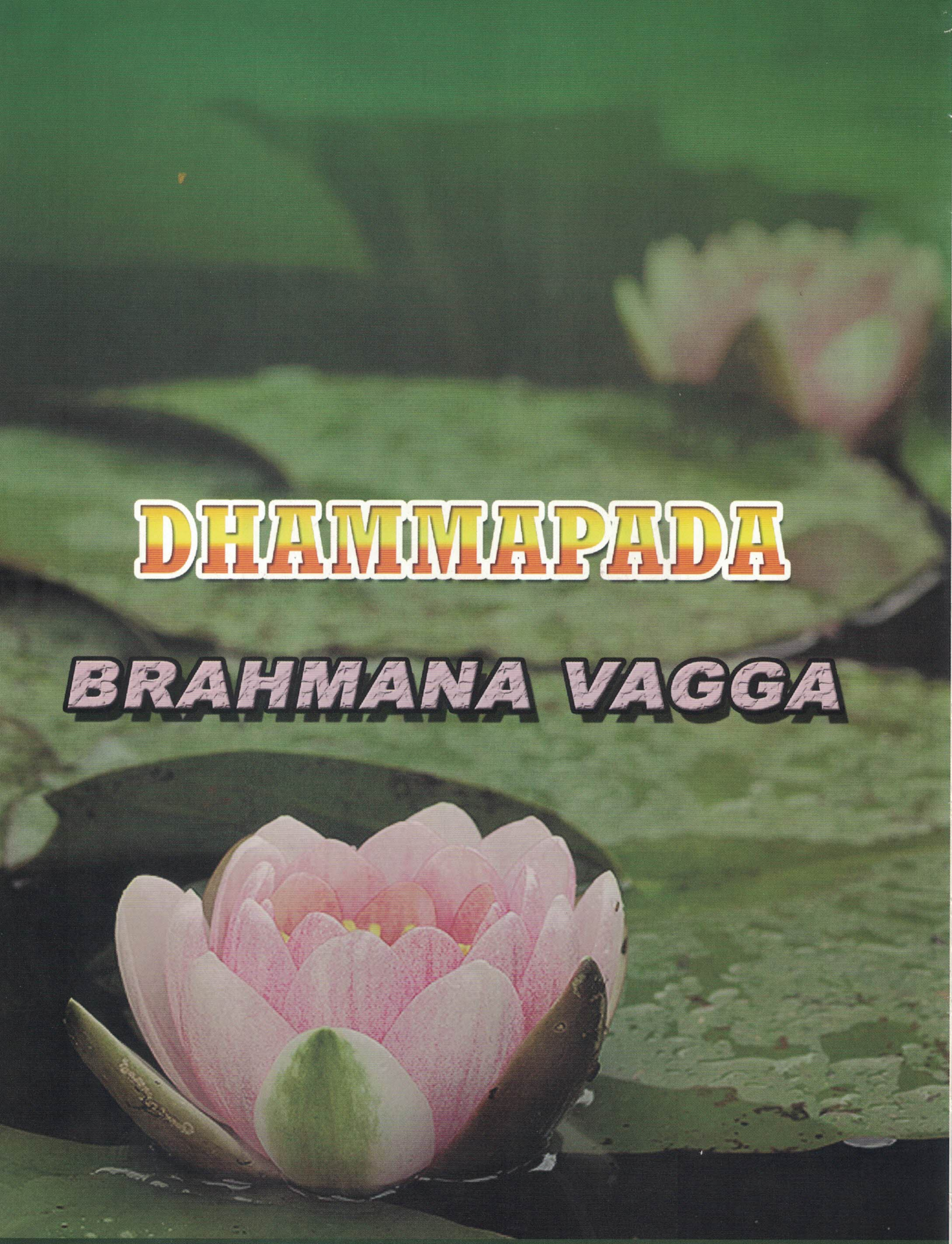

NAME OF SPONSOR

助印功德芳名

Document Serial No：101214~101217

委印文號：101214~101217

Book Title: 印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第一冊至第四冊

Book Serial No.,書號：IN071~IN074

N.T.Dollars：

340,000: [釋心葶、黃莉庭、蔡耀裕、許嫦麗、黃氏歷代祖先、蔡氏歷代祖先、許氏歷代祖先]（迴向法界大安、正法久住）。

1,360,000: 佛陀教育基金會。

Total: N.T.Dollars 1,700,000，5,000 **sets.**

以上合計：台幣 1,700,000 元，恭印 5,000 套。

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and pepole would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

※ **THE INFINITE LIFE SUTRA OF ADORNMENT, PURITY, EQUALITY AND ENLIGHTENMENT OF THE MAHAYANA SCHOOL** ※

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.
May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,

spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA

南 無 阿 彌 陀 佛

【印度 PALI 及 HINDI 文：法句經及其故事 第一冊：第一品至第七品】

財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org

This book is strictly for free distribution, it is not for sale.

यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

Printed in Taiwan
5,000 copies;June2012
IN071-10429

As this is a Dhamma text,
we request that it be treated with respect.
If you are finished with it,
please pass it on to others or
offer it to a monastery, school or public library.
Thanks for your co-operation.
Namo Amitabha!

《 印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第一冊：第一品 至 第七品 》
財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel:886-2-23951198,Fax:886-2-23913415
Email:overseas@budaedu.org
Website: http://www.budaedu.org
This book is for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।
Printed in Taiwan
IN071